Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5.3
V3

66



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

66





CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

सामवेद संहिता

भाषा-भाष्य

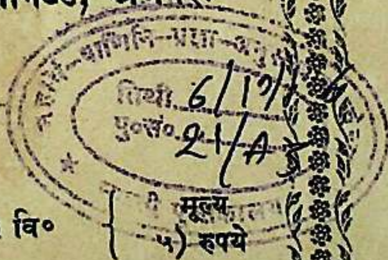
भाष्यकार—

श्री पंडित जयदेव शर्मा

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक—

आर्य-साहित्य मंडल लिमिटेड, अजमेर.



तृतीयावृत्ति | संवत् २००३ वि० | मूल्य ५) रुपये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

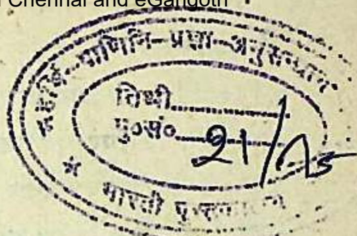
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य-साहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर के
सर्वाधिकार सुरक्षित.

मुद्रकः—
दी फ़ाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



॥ ओ३म् ॥

भूमिका

—— =:o:= ——

तमिद् वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव।

य इन्द्रस्य हृदं सनिः॥ सामवेद १३३६॥

तं धेनवो वत्समिवामृताभिर्भवस्यं हार्द महिमानमैशम्।
गिरो गुरोराद्यतमस्य नित्यं निपीयमाना विबुधैरपुष्णन्॥

(१)

वेद मानव जाति के ईश्वरप्रदत्त धर्मशास्त्र हैं। वे संख्या में चार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। सृष्टि के आदि में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा इन चार ऋषियों के हृदय में परमात्मा ने उक्त चार संहिताओं का प्रकाश किया। सृष्टि का आरम्भ हुए आर्य ज्योतिषियों की गणना के अनुसार १९६०८५३०४५ वर्ष बीत गये हैं, तदनुसार वेदों को उत्पन्न हुए भी इतने ही वर्ष बीते समझने चाहिये। इसका स्पष्ट विवरण महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदोत्पत्ति प्रकरण में किया है। चारों वेदों के चार ही विषय हैं (१) विज्ञान, (२) कर्म, (३) उपासना और (४) ज्ञान। ईश्वर से लेकर तृण पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान 'विज्ञान' शब्द से कहा जाता है। कर्म दो प्रकार का है, एक मोक्षसाधना और दूसरा इह लोक के व्यवहारों की साधना। ईश्वर की स्तुति और आत्मसाक्षात्कार पूर्वक ईश्वरप्रणिधान करना उपासना कहाती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। ज्ञानकाण्ड में ईश्वर, प्रकृति और जीव विषयक विशेष ज्ञान का विवरण है। इन चार विषयों का विशेष रूप से चार वेदों में वर्णन किया गया है। जिसपर विशेष विस्तार से 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में महर्षि दयानन्द ने 'वेदविषयविचार' विषय में बहुत विचार किया है। इस ग्रन्थ में उपासना विषय को दर्शाने वाले "सामवेद" का ही भाष्य प्रस्तुत किया गया है, जिससे भक्तिरस के पिपासु जन उपनिषदों और सूरदास, कबीर एवं भागवत आदि ग्रन्थों में जो भक्तिरस प्राप्त करते हैं उससे भी अधिक और स्वच्छ परमार्थदर्शक भक्तिरस का लाभ सामवेद में प्राप्त करें। भाष्य पढ़ने के पूर्व पाठकों के समक्ष भाष्य से सम्बद्ध अन्य विषयों पर प्रकाश डालना आवश्यक है इसलिये यह भूमिका लिखने का प्रयास है।

(२) सामवेदसंहिता

प्रकाशित सामवेद संहिताओं में से हमारी दृष्टि में प्रामाणिक पांच संहिताएं ही आई हैं:—

(१) सायणभाष्यसहित सामवेदसंहिता श्री सत्यव्रतसामश्रमी द्वारा प्रकाशित जिसको बंगाल एशियाटिक सोसायटी ने १८७६ ई० में प्रकाशित किया।

(२) सायणभाष्यसहित सामवेद संहिता जिसको श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य ने १८९२ ई० में प्रकाशित किया।

(३) अजमेर नगर से श्रीमती परोपकारिणी सभा ने मूलमात्र सामवेद संहिता प्रकाशित की है।

(४) श्री पं० तुलसीरामजी मेरठ निवासी ने मेरठ से अपने भाषा और संस्कृत भाष्य सहित प्रकाशित की है।

(५) रेव० जे० स्टीवन्सन लण्डन से एक सामसंहिता प्रकाशित की है। जगरावां निवासी श्री पं० कृपाराम शर्मा ने भी एक सामवेद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संहिता प्रकाशित की, परन्तु उसको हमने अपनी गणना में नहीं रक्खा और विशेषता न होने से उस पर विचार भी नहीं किया। उक्त पांचों प्रकाशित संहिताओं में अपनी २ विशेषता है। रेव० जे० स्टीवन्सन की छापी संहिता में अरण्य काण्ड ओर महानाम्नी आर्चिक का भाग नहीं है शेष सभी संहिताओं में उक्त दोनों भाग हैं। उक्त रेवरेण्ड महोदय ने अपनी संहिता में वे भाग क्यों नहीं समावेशित किये उसका विशेष कोई कारण उल्लेख नहीं किया। इसका उचित कारण यही प्रतीत होता है कि पंडित स्टीवन्सन ने राणायनीय शाखा के पाठानुसार ही संहिता का प्रकाश किया है। परन्तु भारतवर्ष में तीन शाखाओं का अधिक प्रचार है कौथुम शाखा गुजरात में, जैमिनीय शाखा करनाटक में और राणायनीय शाखा महाराष्ट्र में है। परन्तु क्योंकि चतुर्वेदभाष्यकार सायण के भाष्य सहित सामवेद संहिता में ये भाग उपलब्ध हैं इसलिये इन भागों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस कारण इन भागों को हमने भी अपने भाष्य में रक्खा है। यहां यह कहना भी अप्रासंगिक नहीं है कि चतुर्वेदानुवादकार पं० ग्रीफ़िथ ने भी इस अंश को अपने अनुवाद में स्थान नहीं दिया; क्योंकि वे भी स्टीवन्सन के अनुयायी हैं।

पं० जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य ने अपने प्रकाशित सायण भाष्य में इसको स्थान दिया है। इस प्रकार ऐशियाटिक सोसायटी के सत्यव्रत-सामिश्रमी के सम्पादित सायण भाष्य में भी उक्त दोनों खण्डों को स्थान प्राप्त है।

(३) शाखाभेद

अथर्ववेद परिशिष्ट के 'चरणव्यूह' प्रकरण में इस प्रकार लिखा है—

(१) "तत्र सामवेदस्य शाखासहस्रमासीद्। अनध्यायेष्वधीयानाः सर्वे ते शक्रेण विनिहताः [प्रविलीनाः]।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) तत्र केचिदवशिष्टाः प्रचरन्ति । तद् यथा—राणायनीयाः, साद्य[त्य]मुग्राः, कालापाः, महाकालापाः, कौथुमाः, लाङ्गलिकाश्चेति । कौथुमानां षड् भेदा भवन्ति । तद् यथा—सारायणीयाः, वातरायणीयाः, वैतधृताः, प्राचीनास्तैजसाः, अनिष्टकाश्चेति ।

अर्थात्—सामवेद की हज़ार शाखाएं थीं । लोग उनको अनध्याय के दिनों में भी पढ़ते थे, अतः इन्द्र ने उन सबका विनाश कर दिया । कुछ शाखाएं बची हैं जैसे राणायनीय, साद्य [त्य] मुग्र, कालाप, महाकालाप, कौथुम, और लाङ्गलिक । इनमें से कौथुम शाखा के छः भेद हैं सारायणीय, वातरायणीय, वैतधृत, प्राचीनतैजस, और अनिष्टक ।

चरणव्यूह के इस लेख से अन्य व्यूहों में कुछ भेद भी है जैसे—चरणव्यूह दर्शाते हुए वाचस्पत्य बृहदभिधान और शब्दकल्पद्रुम में लिखा है कि

"सामशाखाभेदाः यथा—आसुरायणीयाः, वासुरायणीयाः, वार्त्तान्तवेयाः, प्राञ्जलाः, ऋग्वर्णभेदाः, प्राचीनयोग्याः, ज्ञानयोग्याः, राणायनीयाश्च । राणायनीयानां नव भेदाः, राणायनीयाः, शाट्यायनीयाः (शावायनीयाः शाट्यमुग्रिया इति वा) पारायणीयाः, सात्वलाः, (सात्यसद्भवा इति वा) मौद्गलाः, खल्वलाः, महाखल्वलाः, कौथुमाः, जैमिनीयाश्च ।"

अर्थात्—इसके अनुसार आसुरायणीय, वासुरायणीय, वार्त्तान्तवेय, प्राञ्जल, ऋग्वर्णभेद, प्राचीनयोग्य, ज्ञानयोग्य, राणायनीय, ये आठ मुख्य भेद हैं जिनमें से राणायनीय शाखा के पुनः नव भेद हुए, जैसे राणायनीय शाट्यायनीय, (शावायनीय या शाट्यमुग्रिय,) पारायणीय, सात्वल या सात्यसद्भव, मौद्गल, खल्वल और महाखल्वल, कौथुम और जैमिनीय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त सामवेद का और शाखाभेद कैसे और कब हुआ इस विषय में विष्णुपुराण में उक्त शाखाओं के नामों से भिन्न २ नामों की सूचना मिलती है।

सामवेदतरोः शाखाः व्यासशिष्यः स जैमिनिः।
क्रमेण येन मैत्रेय विभेद शृणु तन्मम॥
सुमन्तुस्तस्य पुत्रोऽभूत् सुकर्माऽस्याप्यभूत् सुतः।
अधीतवन्तावेकैकां संहितां तौ महामुनी॥
सहस्रं संहिताभेदं सुकर्मा तत्सुतस्ततः।
चकार तं च तच्छिष्यौ जगृहाते महाव्रतौ॥
हिरण्यनाभिः कौशल्यः पौष्याञ्जिश्च द्विजोत्तमः।
उदीच्याः सामगाः शिष्याः तस्य पञ्चशताः स्मृताः॥
हिरण्यनाभात्तावत्यः संहिता यैर्द्विजोत्तम।
गृहीतास्तेऽपि चोच्यन्ते पण्डितैः प्राच्यसामगाः॥
लोकाक्षिः कुथुमिश्चैव कुषीदिर्लाङ्गलिस्तथा।
पौष्यञ्जिशिष्यास्तद्भेदाः संहिता बहुलीकृताः॥
हिरण्यनाभशिष्यश्च चतुर्विंशतिसंहिताः।
प्रोवाच कृतिनामासौ शिष्येभ्यः सुमहामतिः॥
तैश्चापि सामवेदोऽसौ शाखाभिर्बहुलीकृतः।

अर्थ—व्यासदेव के शिष्य जैमिनि ने शाखाओं का भेद इस क्रम से किया कि उसका पुत्र 'सुमुन्तु' हुआ। 'सुमुन्तु' का पुत्र 'सुकर्मा'। उन दोनों ने एक-एक संहिता पढ़ी। सुकर्मा ने सहस्र संहिता भेद किये। उस के दो शिष्य हुए हिरण्यनाभि कौशल्य और पौष्यञ्जि। लोकाक्षि, कुथुमि, कुषीदी और लाङ्गलि, ये पौष्यञ्जि के शिष्य थे, उनको 'उदीच्यसामग' कहते थे। और हिरण्यनाभ के पांच सौ शिष्य थे उनको 'प्राच्यसागम' कहते थे। हिरण्यनाभ का एक शिष्य 'कृति' नाम का था, उसने अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्यों को चौबीस संहिताओं का उपदेश किया। उसके शिष्य प्रशिष्यों ने भी सामवेद की बहुत शाखाएं करदीं।

इस उद्धरण में कुथुमि और लाङ्गलि ये दो नाम (अथर्व परिशिष्ट) चरणव्यूह के शाखाभेदों में भी आये हैं। प्राच्यसामग कदाचित् प्राचीन योग्य हों और शेष सब नाम नवीन ही हैं। यह पुराणप्रदर्शित शाखा भेद चरणव्यूह में कहे जैमिनीयशाखा के उपभेद को बतलाता है, परन्तु ऐसा अनुमान करने में यही बाधा है कि कौथुम और लाङ्गलशाखा स्यतन्त्र हैं, वे जैमिनीय शाखा के भेद नहीं हैं। वह बाधा भी तब नहीं रहती जब भागवतपुराण प्रोक्त शाखाभेद पर दृष्टिपात करते हैं। उसमें पौष्यञ्जि के शिष्यों का नाम लोगाक्षि, माङ्गलि, कुल्य, कुसीद और कुक्षि लिखा है। इसी प्रकार के नाम भेद से हमें पुराणोक्त शाखा भेद विशेष विश्वास योग्य प्रतीत नहीं होता।

पुराण के उद्धरण से ऐसा भी प्रतीत होता है कि व्यासदेव के समय यह शाखाभेद नहीं था, जैमिनि के शिष्यों से ये शाखाभेद हुए। और जितने २ शिष्य उतनी २ शाखाएं हो गईं। इसका तात्पर्य यही है कि गुरुभेद से शाखाभेद हुआ अर्थात् गुरुओं की प्रतिभा-भेद से शाखाओं में यत्किंचित् भेद हो जाने से ही शाखाभेद हो गया। उनमें बहुतसी शाखाएं लुप्त हो गई। क्यों? चरणव्यूह ने तो उनका कारण यही दर्शाया कि अनध्याय के दिनों में विद्यार्थियों ने पढ़ना शुरू किया, इससे कुपित इन्द्र ने वज्र से उन शाखाध्यायियों का विनाश किया। अन्ध विश्वासी लोग इस कथा पर विश्वास करने में संकोच अनुभव न करेंगे। परन्तु इसका गूढार्थ यही है कि सामवेद का स्वाध्याय गुरुपरम्परा से लोप हो गया और विनोद या गायनमात्र समझकर विद्यार्थीगण अनध्याय के दिनों में सामगान सीखने आते हों। इस पर गुरु या आचार्यों ने अपने सामवेद को गौण विषय बनते देख, अपने वेद का अपमान जान कों देना बन्द कर दिया हो और इस प्रकार मुख्य शिष्यों के अभाव से वे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाखाएं कालान्तर में गुरु-परम्परा से खण्डित हो गई हों। वैदिक युग में इन्द्र और गुरु शब्द पर्यायवाची थे, इसी आधार पर यह कथा गढ़ी गई प्रतीत होती है।

इसी प्रसंग में हम यह भी कह सकते हैं कि शेष शाखाओं के यद्यपि नाम भी लुप्त से हो गये हैं तो भी उनका कुछ आभास उपलब्ध नामों के साहचर्य से पा सकते हैं। जैसे पाणिनि व्याकरण के पैलादिगण (२ । ४ । ५९) में राणि, शब्द का पाठ है। अपत्यार्थ में 'फिञ्' प्रत्यय करने से 'राणायनि' ऐसा प्रयोग होता है। यह एक साम शाखा का प्रवर्तक हुआ है। इसी प्रकार पैल ऋक्शाखा का प्रवर्तक हुआ। इस गण में पठित और भी कितने ही नाम हैं वे भी अन्य शाखाप्रवर्तक होने सम्भव हैं। उसी प्रकार तौल्वल्यादि गण, (२ । ४ । ६१) यस्कादि (२ । ४ । ६३) गोपवनादि (२ । ४ । ६७) तिककितवादि (२ । ४ । ६८) उपकादि (२ । ४ । ६९) गण भी दर्शनीय हैं। इन गणों में भी नाना वेदशाखा प्रवर्त्तकों के नाम हैं। इसी प्रकार शार्ङ्गरवादि (४ । १ । ७३) क्रौड्यादि (४ । १ । ८०) अश्वपत्यादि (४ । १ । ८४ उत्सादि (४ । १ । ८६) बिदादि (४ । १ । १०४) गर्गादि (४ । १ । १०५) तिकादि (४ । १ । १५४) गह्वादि (४ । २ ।) १३८ शौनकादि (४ । ३ १०६) रैवतिकादि (४ । ३ । १३१) गण हैं इन में नाना शाखा-प्रवर्त्तकों के नाम आते हैं। सात्यमुग्रि आदि शुद्ध नाम भी व्याकरण सूत्रों में प्राप्त हैं इनके सहयोग में अन्य नामों की भी संगति का अन्वेषण कर लेना चाहिये।

(४) साम-ब्राह्मण

उक्त शाखाभेद पर विचार करने से यह बात भी स्पष्ट होती है कि गुरु-प्रवचन भेद से ही यह शाखाभेद हो गया है। परन्तु इससे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि सामवेद की शाखाभेद से सामसंहिता में भेद हुआ हो। क्योंकि परम्परा से मूलसंहिता एक ही थी और जैमिनि, कौमथु और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राणायनीयादि का ब्राह्मण भी छान्दोग्य एक ही है। इसी मुख्य ब्राह्मण के प्रथम पच्चीस अध्यायों को 'प्रौढ़ ब्राह्मण' बीच के पांच ब्राह्मणों को अद्भुत या 'षड्विंश ब्राह्मण' और शेष दश अध्यायों का नाम 'छान्दोग्य उपनिषद्' है। इस उपनिषद् भाग में भी प्रथम दो अध्याय 'मन्त्र ब्राह्मण' कहाते हैं और आर्षेय, सामविधान, दैवताध्याय, वंश, संहितोपनिषत् आदि नामों से शिष्ट ब्राह्मण 'अनुब्राह्मण' नाम से प्रसिद्ध हैं, इसी महाब्राह्मण को कौथुम शाखा में 'ताण्ड्य महाब्राह्मण' नाम से पुकारा जाता है।

(५) साम-संहिता

बहुत से विद्वानों का मन्तव्य है कि सामवेद मूल केवल ७५ मन्त्रों का ही हैं। और शेष समस्त मन्त्र ऋग्वेद से ही संगृहीत हैं, अतः उनका ग्रहण ऋग्वेद से ही हो जाता है। यह उनका कथन तभी ठीक हो सकता है जब कि ऋग्वेद और सामवेद दोनों संहिताओं का प्रयोजन एक ही हो। परन्तु यदि प्रयोजन भिन्न २ हैं तो संहिता में समानता होने पर भी उनका पृथक् २ होना आवश्यक है।

सामवेद के दो भाग हैं एक पूर्वार्चिक भाग और दूसरा उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक के साथ ही महानाम्नी आर्चिक भी संयुक्त ही समझा जाता है। पूर्वार्चिक में ग्रामगेय गान और आरण्यक गान दो भाग हैं। ग्रामगेय गान का तात्पर्य यह है, कि वे सामगान जो जनसमूह में गान किये जायें। आरण्यक गेय गान जो वन के परिव्राजक, मुमुक्षुमार्ग पर जीवन बिताने वाले तपस्वी यति अध्यात्मज्ञानी लोग गान करें। इसके अतिरिक्त 'महानाम्नी' आर्चिक में शक्करी छन्द को उपसर्ग पदों के साथ रक्खा है यह भी विशेष गायन रीति का निदर्शक है। इसके बाद उत्तरार्चिक में ऊहगान और ऊह्यगान का प्रतिपादन है जो एक मन्त्र के गान के अतिरिक्त दो, तीन, चार, पांच; छः ऋचाओं का एक गान है।

वास्तव में देखा जाय तो "गीतिषु सामाख्या" (जैमिनीय मीमांसा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्र) गान की रीति का नाम ही साम है। परन्तु विना छन्दोमय ऋचाओं के गान किस आधार पर वास करे। वह ऋचाओं में ही निवास करेगा। इसी लिये वेदों के सिद्धान्तरूप उपनिषद् ग्रन्थों में यही निर्णय किया है कि "ऋच्यध्यूढं साम गीयते।" ऋग्वेद में आश्रय पाये हुए साम का ही गान किया जाता है। फलतः अत्र यह एक स्पष्ट अर्थ निकल आता है कि गानक्रिया के मर्मों के आश्रयभूत मन्त्रों की संहिता सामसंहिता है। जैसा कि श्री स्वामी शबर ने मीमांसादर्शन में नवमाध्याय के २७ वें सूत्र "अर्थैकत्वाद् अविकल्पः स्यात्" पर स्पष्ट कहा है।

'सामवेदे सहस्रं गीत्युपायाः। आह कतमे गीत्युपाया नाम। उच्यते। गीतिर्नाम क्रिया ह्याभ्यन्तरप्रयत्नजन्या स्वरविशेषाणामभिव्यञ्जिका सामशब्दाभिलप्या। सा नियतप्रमाणायामृचि गीयते। तत्सम्पादनार्थोऽयमृगक्षरविकारो विश्लेषो विकर्षणमभ्यासो विरामः स्तोभ इत्येवमादयः सर्वे सामवेदे समाम्नायन्ते॥"

अर्थ—सामवेद में हजारों गीति के उपाय हैं। गीति का अर्थ है गान क्रिया। यह अभ्यन्तर प्रयत्न से उत्पन्न होकर विशेष स्वर को उत्पन्न करती है, उसीको "साम" शब्द से कहा जाता है। वह नियत प्रमाण वाली ऋचा में गाई जाती है। उस गान क्रिया को उत्पन्न करने के लिये ऋचा के अक्षरों में विकार; विश्लेष; विकर्षण; अभ्यास; विराम और स्तोभ आदि किये जाते हैं। इन सबका सामवेद में आचार्य लोग उपदेश करते हैं। परन्तु सामान्य संहिता पाठ में विकार, विश्लेष, विकर्षण अभ्यास, विराम और स्तोभ आदि के विना ही ऋचायें रहती हैं परन्तु प्रयोगकाल में उद्गाता उन ऋचाओं के वर्णों में विकार आदि करके गाता है।

(६) स्वर-चिन्ह

सामवेद संहिता में मन्त्रों पर जो १, २, ३ अंक हैं वे क्रम से उदात्त, स्वरित और अनुदात्त के बोधक हैं। ये त्रिस्वर गान के सहायक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं। ऋग्वेद में अनुदात्त का चिन्ह अक्षर के नीचे पड़ी (–) रेखा दी जाती है, सामवेद में उस पर ३ का अंक होता है। जैसे 'ब॒र्हिषि' में ब॒ अनुदात्त। है और अनुदात्त से आगे ऋग्वेद में जिस अक्षर पर कोई चिन्ह नहीं होता सामवेद में उस पर १ अंक होता है, वह 'उदात्त' होता है, जैसे 'ब॒र्हिषि' में 'र्हि'। ऐसे उदात्त अक्षर के पश्चात् जिस अक्षर पर ऋग्वेद में खड़ी रेखा होती है वहां सामवेद में का २ अंक होता है, वह स्वरित का चिन्ह है। जैसे—

ऋग्वेद में—अग्न॒ आ या॑हि वी॒तये॑

सामवेद में—अग्न आ याहि वीतये (२ ३ २ ३ १ २)

इन तीन स्वरों के अतिरिक्त 'प्रचय' और 'सन्नतर' दो स्वर और हैं, स्वरित के पश्चात् 'प्रचय' पर भी कोई चिन्ह नहीं होता। जैसे 'आ या॑हि'। अनेकों के प्रचय में अनेक अनुदात्तों में से अन्तिम अनुदात्त 'सन्नतर' होता है। जैसे—

'वी॒तये॑ गृ॒णा॒नो'

में 'णा' सन्नतर है। वह आगे के उदात्त के अधिक समीप होने से 'सन्नतर' कहाता है।

कुछ अन्य चिन्ह

सामवेद संहिता के मन्त्रों पर १, २, ३ के अतिरिक्त र, क, उ अक्षर भी दिखाई देते हैं, और कहीं कहीं ऋग्वेदीय उदात्त को भी सामवेद में २ अंक से बतलाते हैं।

उसकी पहचान यह है कि मन्त्र के आदि और अन्तिम उदात्त को २ अंक से बतलाते हैं।

आदि में जैसे—अग्न आ याहि (२ ३ १ २)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में जैसे—ऋग्वेद से गि॒रा, दि॒वि, र॒यिम् । इत्यादि ।

जहां दो उदात्त आजाते हैं, वहां प्रथम उदात्त पर १ अंक रहता है, दूसरे पर कोई चिन्ह नहीं रहता, उससे परे स्वरित पर २र लिखा जाता है । जैसे—

उत द्विषो मर्त्यस्य ।

अनेक पुस्तकों में ऐसे स्थलों में प्रथम उदात्त को १र और द्वितीय उदात्त से परे स्वरित को २र लिखा जाता है । सो पाठक सर्वत्र यही जानें कि २र चिन्ह के पूर्व १ अंक १र के स्थान में ही है ।

इसी प्रकार अनुदत्त से परे स्वरित को भी २र से बतलाते हैं, परन्तु वहां पूर्व के अनुदात्त पर '३क' रहता है जैसे—दूढ्यम्

यदि दो उदात्त एक साथ हों उनसे परे अनुदात्त हो तो प्रथम उदात्त पर २उ चिन्ह रहेगा, दूसरे उदात्त पर कोई चिन्ह नहीं रहेगा

जैसे—यो विश्वा

इस प्रकार समस्त साम-संहिताओं में स्वर चिन्हों की व्यवस्था जाननी चाहिए ।

(७) सामगान

यद्यपि इस साम-वेदभाष्य में गायन के विषय का विवरण नहीं किया और न गान योग्य सामरूप को प्रकट किया है तो भी सामविषयक गायन का साधारण परिचय पाठकों को करा देना आवश्यक है । सो नारदीय शिक्षा के अनुसार संक्षेप से देते हैं ।

(१) उरस्, कण्ठ और शिर इन तीन स्थानों से शब्द उठता है । तीनों स्थानों को क्रम से प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन और तृतीय सवन के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान जानना चाहिये। इन तीनों स्थानों पर सातों स्वर विचरते हैं। उरःस्थल में विचरते हुए सातों स्वर कानों में सुनाई नहीं देते।

सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्छनाएं और ४९ तान होते हैं। ये सब 'स्वरमण्डल' कहाता है। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत्त, निषाद, ये सात स्वर हैं। षड्ज, मध्यम, गान्धार, ये तीन ग्राम हैं। षड्जग्राम में १४, मध्यमग्राम में २० और गान्धार ग्राम में १५ तान होते हैं। ऋषि, पितर और देवभेद से प्रत्येक की सात मूर्छनाएं हैं, जैसे—नन्दी, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रावती, सुखा, और बला ये ७ देवमूर्छनाएं हैं। आप्यायिनी, विश्वभृता, चन्द्रा, हेमा, कपर्दिनी, मैत्री बार्हती, हृष्यका, उत्तरायता और रजनी ये ऋषियों की ७ मूर्छना हैं। देव, पितृ, और ऋषि इनकी मूर्छनाओं के गन्धर्व, यक्ष और मनुष्य क्रम से अनुयायी हैं। लौकिक मूर्छनाएं ऋषियों की हैं। षड्ज से देव, ऋषभ से ऋषि, गान्धार से पितर, मध्यम से गन्धर्व, पञ्चम से सबजन निषाद से यक्ष और धैवत्त से अन्य प्राणी प्रसन्न होते हैं।

सप्त स्वर

स्वर सात हैं। जिनके नाम क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्तम हैं, जो क्रम से:—

मध्यम, गांधार, ऋषभ, षड्ज, निषाद, धैवत, और पचम नाम से हैं। पूर्वोक्त पंचम को मन्द और षष्ठ को अतिस्वार्य कहते हैं।

प्रथम स्वर से भी उच्च स्वर को 'अतिक्रुष्ट' या क्रुष्टतम (प) कहते हैं, जिसका प्रयोग देव करते हैं। औरों में से प्रथम (म) का उपयोग मनुष्य, द्वितीय (ग) का गन्धर्व, अप्सराएं, तृतीय (रे) का पशुगण, चतुर्थ (सा) का पितर और पक्षिगण, पंचम (नि) का असुर राक्षस, अन्त्य (ध) का ओषधि, वनस्पति करते हैं। ऐसा सामविधान ब्राह्मण में लिखा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) गान के दस गुण हैं = रक्त, पूर्ण, अलंकृत, प्रसन्न, व्यक्त, विक्रुष्ट श्लक्ष्ण, सम, सुकुमार और मधुर।

(४) स्वरभेद पांच प्रकार का है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचित और निघात। आर्चिक में उदात्त अनुदात्त और स्वरित ये तीन ही हैं। स्वरित से परे उदात्त ही प्रचित कहाता है। स्वरित दो प्रकार का होता है एक वर्ण स्वार ओर दूसरा अतीत स्वार। उच्च और नीच दोनों के बीच को ही स्वार कहा जाता है। उदात्त में निपाद और गान्धार, अनुदात्त में ऋषभ और धैवत और स्वरित में षड्ज, मध्यम और पञ्चम रहते हैं। विशेष ज्ञान नारदीय शिक्षा एवं अन्य गानग्रन्थों से जानना चाहिये सामवेदियों में सामवेद संहिता की ऋचाओं के नाना गान स्वरूपों की कल्पना गानशास्त्र के अनुसार की है। वे गान संहिताएं मंत्र संहिता से भिन्न होती हैं। इसका कुछ नमूना दर्शाते हैः—

मन्त्र—अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि॥

गेयगान—ओ^{४}ग्नाइ। आ^{२र}या^{र} ही ३ वो^{१}इ वोईतोया$^{.२}$ २इ। तो^{१}या २इ। गृ^{१}णा^{र}नो^{२र} ह। व्यदा^{१}तोया २इ। तो^{१}या २इ : ना^{१}रे^{२र}हो ता^{१} सा २ ३। त्सा २इ। वा^{३} २ ३ ४ औ^{१र} हो वा^{३} हाँ^{३}२इ ४ षी।१।

यह गोतम ऋषि का पर्क साम कहाता है। इसी प्रकार इसी ऋषि का दूसरा पर्क इस प्रकार है।

अ^{१}ग्न^{४} आ^{४र}या^{४र} हि। वो^{४} ५ इ तया^{४} इ गृ^{र}णा^{र} नो हव्य^{२} दा १ ता^{२} ३ ये^{२}। नि हो^{३}ता २ ३ ४ सा। त्सा^{५} २ ३^{१} ४ इ^{२} वा। हो^{१} २ ३ ३ ४ इ^{३} षो^{१} ६ हा इ॥ ३॥

इन दोनों पर्कों के भीतर काश्यप ऋषि का 'बर्हिष्य' है जैसेः—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४ ५ ४र ५र ५ १ र र र
अग्न आया हो वो। तयाइ। गृणानो हव्य दाता। २ ३ या
१र र २ १ ५ १ ३ ५
इ नि होता सत्सि बर्हा २ ३। इषि। बर्हा २ इ षा १ ३४ औ
र २ १ १ १ १
ह्रो वा। बर्हीं ३ षी २ ३ ४ ५।

इसी प्रकार स्तोभ, ऊह गान और ऊह्यगानों के भी विशेष रूप निर्धारित हैं। उन ही का विशेष परिज्ञान करना सामवेद का परिज्ञान करना है।

छः साम विकार

सामगान में मन्त्र के शब्दों में ६ प्रकार की विकृति आती हैं। वे ६ 'साम-विकार' कहलाते हैं। जैसेः—

(१) विकार—अग्ने—ओग्नायि
(२) विश्लेषण—वीतये—वोइ तोयाइ
(३) विकर्षण—ये—या २ ३ यि
(४) अभ्यास अर्थात् पुनः उच्चारण—तोयार्यि तोयार्यि।
(५) विराम—गृणानो हव्यदातये—गृणानो ह। व्यदातये।

पद समास न भी हो तो भी गान की सुगमता के लिये विराम किया जाता है।

(६) 'स्तोभ', उन पदों का आना जो मन्त्र में नहीं हैं, जैसेः—

औहोवा। हाउ इत्यादि

(७) सामवेदभाष्य

अभी तक जितने भी वेदभाष्य उपलब्ध हैं वे सामवेद संहिता पर संस्कृत भाष्य ही हैं। जिनमें बहुत से तो लुप्त हो ही गये हैं। निघण्टु के टीकाकार देवराज यज्वा ने स्कन्दस्वामी, भवस्वामी, राहवदेव, श्रीनिवास,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधवदेव, उवटभट्ट, भास्कर मिश्र, भरतस्वामी इन आठ प्राचीन भाष्य कारों के नाम दर्शाये हैं। इन सब में से केवल माधवीय विवरण के कुछ अंश उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त सायण भाष्य प्राप्त है। श्री० पं० तुलसीरामजी ने भी सामवेद का एक भाष्य प्रसिद्ध किया है। इन सब भाष्यों के होते हुए भी वेद के मंत्रों का अन्वयानुसारी ऐसा भाषा-भाष्य उपलब्ध नहीं था जिसको सुगम, सुन्दर और हृदयंगम भाषा में शब्दार्थों के पृथक् २ ज्ञान करने के साथ २ पढ़ लेते। इसलिये इस भाष्य को प्रकाशित करने की आवश्यकता हुई।

इसके अतिरिक्त हम यह भी स्पष्ट शब्दों में कहना उचित समझते हैं कि अभी तक जितने भाष्य हुए हैं उनमें से एक भी ऐसा भाष्य नहीं जो सामवेद के वास्तविक उद्देश्यभूत उपासना काण्ड के लक्ष्य को दर्शा-सके। श्री सायणाचार्य ने तो यज्ञपरक अर्थ करके ही अपने कार्य को पूर्ण किया है। प्रायः जो भाष्य सायण का ऋग्वेद के मन्त्रों पर है उसको ज्यों का त्यों ही उठाकर रख दिया है। उसमें विशेष फेर फार नहीं। परन्तु क्योंकि सामवेद का विषय उपासनाकाण्ड है इसलिये सामवेद के मन्त्रों का यज्ञपरक अर्थ करना संगत प्रतीत नहीं होता। इसके अनन्तर मेरठ निवासी श्री स्वामी तुलसीरामजी का भाष्य है। उनके समस्त भाष्य में कुछ एक स्थलों को छोड़कर प्रायः सायण भाष्य को ही अनुसरण किया है। हमने उक्त दोनों भाष्यों में से किसी का भी अनुसरण नहीं किया। ऐसा करने के बहुत से कारण हैं।

(१) सायण ने अपने भाष्य में ऐतिहासिक पक्ष को बहुत पुष्टि दी है जो वेदों को साक्षात् ईश्वरवचन मानने में भारी विघातक है। इससे वेदों का महत्त्व भी बहुत घट जाता है।

(२) यज्ञपरक अर्थ कर लेने में यद्यपि सायण सफल हुआ है तो भी एक दोष उसके भाष्य में यह है कि जो विशेषण जिस पदार्थ के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य होना चाहिये वह उस पर नहीं लगता और जो विशेषण जिस पदार्थ में नहीं घटते वे उस पर बलात् लगाये जारहे हैं। उससे वेदमन्त्रों पर असत्यार्थ प्रतिपादन करने का भारी कलंक आता है। केवल यज्ञ में आये अग्नि, सोम आदि पदार्थों के वर्णन में सामवेद का अधिक भाग लगा हुआ देखकर सायण भाष्य के अनुसार विचार करने से यह प्रतीत होगा कि वेदमन्त्र में अनावश्यक गीत गा गा कर मन्त्र पूरे किये गये हैं और उनका गूढ़ तात्पर्य कुछ नहीं है। यही प्रभाव योरोप के विद्वानों पर भी पड़ा है। इसी कारण योरोप के अनुवादक भी सायण के पीछे २ पग रखते हुए उसी प्रकार असंगत अर्थ करते गये हैं जिस प्रकार सायण ने किये हैं। उससे भी बढ़कर योरोप के अनुवादकों ने कहीं २ स्वतन्त्र भी अर्थ किये हैं परन्तु ऐतिहासिक पक्ष को छोड़ कहीं भी उन्होंने वेद के यौगिक अर्थों पर विचार नहीं किया। हमारा कहने का तात्पर्य यह है कि वेदार्थ के करने में विद्या के परम भण्डार, ईश्वरीय ज्ञान के आदरणीय ग्रन्थों का जिस गम्भीरता से वेदभाष्य प्रकट होना चाहिये था वैसा अभी तक किसी ने भी करने का प्रयास नहीं किया। हम अपने मन्तव्य को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिये कुछ एक नमूने अन्य भाष्यों के उद्धृत करते हैं जिससे पाठक हमारे कथन का अभिप्राय समझ सकेंगे। जैसे—

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥

यह सामवेद का प्रथम मन्त्र है। इसमें सायण ने अग्नि शब्द से साधारण भौतिक अग्नि का ही ग्रहण किया है और इसी प्रकार समस्त आग्नेय काण्ड में अग्नि शब्द से यज्ञ के कुण्ड में प्रज्वलित अग्नि के सिवाय दूसरा पदार्थ नहीं लिया है। क्योंकि सायण लिखते हैं—

"हे अग्ने! अङ्गनादिगुणविशिष्ट त्वं आयाहि अस्मद् यज्ञं प्रत्यागच्छ। किमर्थं, वीतये हविषां चरुपुरोडाशादीनां भक्षणाय।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् हे चमक आदि गुणों से युक्त अग्ने! तू आ, अर्थात् हमारे यज्ञ में आ। क्यों? (वीतये) चरु पुरोडाश आदि हवियों के खाने के लिये। चरु आदि खाने वाला अग्नि सिवाय भौतिक अग्नि के दूसरा पदार्थ नहीं है। इससे आगे तीसरा मन्त्र है—

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्।

इस मन्त्र में अग्नि का विशेषण है 'विश्ववेदसं'। जिसका सायण स्वयं अर्थ करते हैं—

"विश्वानि वेत्ति इति विश्ववेदाः, यद् वा वेद इति धननाम, विश्वं सर्वं वेदो धनं यस्य तम्"।

अर्थात् समस्त पदार्थों को जानने हारा या समस्त साधनों का स्वामी 'विश्ववेदाः' कहावेगा। परन्तु सायण के अनुसार यह विशेषण 'अग्नि' का है। भौतिक अग्नि जड़ होने से न तो समस्त ज्ञानवान् है और न समस्त धनों का स्वामी हो सकता है। इसी प्रकार उक्त मन्त्र में 'सुक्रतु' शब्द पड़ा है। जिसका अर्थ सायण ने "निष्पादकत्वेन शोभनकर्माणम् अथवा क्रतुरिति प्रज्ञा नाम, शोभनप्रज्ञं वा" किया है अर्थात् यह अग्नि यज्ञनिष्पादक होने से 'सुक्रतु' है, या क्रतु प्रज्ञा, अर्थात् शोभनप्रज्ञ वह अग्नि है। यह विशेषण भी भौतिक अग्नि में व्यर्थ है क्योंकि जड़ अग्नि न यज्ञ का कर्ता है और न प्रज्ञावान् ही है। फलतः ये विशेषण किसी चेतनावान् पदार्थ के होने उचित हैं। यह दोष न केवल आग्नेय काण्ड के अग्नि देवता के मन्त्रों में है, प्रत्युत इन्द्र, सोम, उषा आदि देवता के मन्त्रों में भी सायणकृत अर्थों में यही दोष विद्यमान है। क्योंकि सायण ने इन्द्र को एक विशेष रूपवान्, हाथों, पैरों वाला, घोड़ों से युक्त, रथ पर चढ़ा हुआ माना है इसलिये उसमें भी "ईशानमस्य जगतः" "ईशानमस्य तस्थुषः" (१० अ० ३ । १)

२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चराचर जगत् का स्वामी आदि विशेषण नहीं घटेंगे, इसी प्रकार पावमान काण्ड में सोम का वर्णन किया है। सायण ने सर्वत्र सोम, इन्दु, पवमान आदि शब्दों से सोमलता और उसके रसों का ही ग्रहण किया है। उस लता या सोमरस में—"जनिता अग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनिता इन्द्रस्य जनितोत विष्णोः" (पू० अ० ५ । ६ । ५) इत्यादि सूर्य, इन्द्र और विष्णु का उत्पादक विशेषण नहीं घटेगा। इसी प्रकार सोम को "यो रायामानेता य इषानाम् ।" (पू० अ० ५ । ११ । ५) धनों और अन्नों का लाने वाला बतलाया गया है, यह विशेषण भी सोमरस में नहीं घटेगा।

परन्तु ये सभी मन्त्र परमेश्वरपरक हैं। अतः ये विशेषण परमेश्वर ही में मुख्यवृत्ति से घट सकते हैं इसलिये उन मन्त्रों का मुख्यार्थ परमेश्वर को और गौण अर्थ अन्य पदार्थों को दर्शावेगा। हमने अपने भाष्य में स्थान २ पर इस विशेषता को दर्शाया है और स्थान २ में वेदमन्त्रों के अर्थ को उपनिषदों और दर्शनों के उद्धरणों से पुष्ट किया है, पाठक यथा-स्थान देख लेंगे। यहां अधिक ग्रन्थ का विस्तार नहीं दिखाकर अब हम सामवेद का भाष्य प्रारम्भ करने के पूर्व वेद के सिद्धान्तों पर पाठकों का ध्यान आकर्षण करना चाहते हैं।

(८) सिद्धान्त दिशा विचार

यह हम पहले दर्शा चुके हैं कि सामवेद का मुख्य विषय उपासना काण्ड है। वेदों में सिवाय ईश्वर के और किसी देवता की उपासना प्रतिपादित नहीं की है। यह सिद्धान्त कोई नवीन नहीं है। योरोप के विद्वान् एवं सायण के मतानुयायी भले ही वेद के मन्त्रों में पर्वतों, नदियों और वृक्षों या आग, जल, वायु आदि जड़ पदार्थों की स्तुति मानते हैं परन्तु ऐसा उनका मानना उनकी वेद के सिद्धान्तों से अनभिज्ञता को बतलाता है। उन ही के पीछे चलने वाले नयी रोशनी के पढ़े भारतीय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् भी बहुत से इस भ्रमजाल में पड़ गये हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि वे लोग वेद को वेद के सिद्धान्त भाग से अलग कर लेते हैं। उनकी यही धारणा है कि वेद और उपनिषद् दो भिन्न पदार्थ हैं। उनका ऐसा समझना ही उनको भ्रम में डाल देता है। योरोप के विद्वानों की दृष्टि में उपनिषदें बाद में बनीं अर्थात् ईश्वर, जीव आदि दार्शनिक सिद्धान्तों की उत्पत्ति बाद में हुई। इसी धारणा से वे उपनिषदों को वेदों से अलग कर देते हैं। वास्तव में उपनिषदों का ज्ञान वेदों से किसी अवस्था में अलग नहीं किया जा सकता। उपनिषदें वेदों के सिद्धान्त प्रदर्शक ग्रन्थ हैं। यदि शरीर में से आत्मा को पृथक् कर दिया जाय तो शरीर केवल हाड़, मांस, चाम का मुर्दा मात्र दिखाई देता है और शरीर के अंगों की शक्तियों का चमत्कार नहीं जाना जा सकता। आंख, नाक कान, त्वचा, वाणी ये साधन और अन्तःकरण, मन ये संसार में जितना चमत्कार उत्पन्न कर रहे हैं वे सब इस जड़ शरीर से नहीं हो सकते परन्तु आत्मा के होने पर ही ये सब चमत्कार दिखाई दे रहे हैं। इसी प्रकार जब आत्मस्वरूप उपनिषद्, ब्रह्मविद्या को वेदों के शरीर से अलग कर लिया जाता है उस समय वेद के मन्त्र अग्नि, जल, नदियों और पर्वतों की स्तुतियों से भरे हुए प्रतीत होते हैं। परन्तु जब उनके आधार में ब्रह्मविद्या रूप दीपशिखा उपनिषद् को रख दिया जाता है तो वेद अध्यात्म ज्ञान का अपूर्व भण्डार दिखाई देता है। यह मन्तव्य बहुत प्राचीन काल से उपनिषत्कारों ने स्वयं स्वीकार किया है। जैसे काठक में—

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्याम्योम्
इत्येतत् ॥ (२ । १५)

"समस्त वेद जिस परम पद का पुनः २ प्रतिपादन करते, समस्त तप जिस को दर्शाते हैं, जिसको प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस पद को संक्षेप से कहता हूं 'ओम्' यह है।" अर्थात् सब वेद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर का प्रतिपादन पुनः २ करते हैं। इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय उपनिषद् में पञ्चविध आत्मा का अङ्ग-प्रत्यङ्गमय स्वरूप दर्शाते हुए पांच कोशों को दर्शाया है, वह बहुत ध्यान देने योग्य है। वहां अन्नरसमय पुरुष के पांच अंग दर्शाये गये हैं:—

अन्नरसमय—(१) शिर, (२) दक्षिण पक्ष, (३) उत्तर पक्ष, (४) आत्मा (धड़), (५) आश्रय पुच्छ।

प्राणमय—(१) प्राण, (२) व्यान, (३) अपान, (४) आकाश, (५) पृथिवी।

मनोमय—(१) यजुः, (२) ऋग् (३) साम, (४) आदेश, (५) अथर्व।

विज्ञानमय—(१) श्रद्धा, (२) ऋत, (३) सत्य, (४) योग (५) महः।

आनन्दमय—(१) प्रिय, (२) मोद, (३) प्रमोद, (४), आनन्द, (५) ब्रह्म।

ये पांचों कोश उत्तरोत्तर एक दूसरे के भीतर प्रविष्ट हैं, इनमें (१) शिरः स्थानीय शिर, प्राण, यजुः, श्रद्धा और प्रिय ये क्रमशः एक ही के सूक्ष्म, सूक्ष्मतर सूक्ष्मतमरूप है। इसी प्रकार दक्षिण पक्ष व्यान, ऋक्, ऋत, मोद, उत्तर पक्ष, अपान, साम, सत्य प्रमोद और आत्मा (धड़) आकाश, आदेश, योग, आनन्द और आश्रय (पुच्छ), पृथिवी, अथर्व, महः, ब्रह्म इनको भी समझना चाहिये। यदि इन सबका कोई एक आश्रय उपनिषत्कार ने बतलाया है तो ब्रह्म को ही बतलाया है इसी प्रकार स्थान २ पर वेदत्रयी का सार अ, उ, म् को बतलाया है। फलतः यह कहना कि ब्रह्मविद्या को वेदों से पृथक् किया जा सकता है केवल साहसमात्र है।

यदि उपनिषदों या ब्रह्मविद्या को वेदों से अलग भी करना चाहें तो भी वे अलग हो नहीं सकतीं, क्योंकि उपनिषदों की स्वतः सत्ता ही कुछ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रह जाती यदि उनका मूल काट दिया जाय। ईश उपनिषद् साक्षात् यजुर्वेद का ४० वां अध्याय है। इस अध्याय का विस्तृत विवरण बृहदारण्यक उपनिषद् यजुर्वेद के ब्राह्मण शतपथ का एक अंश है। इसी प्रकार तैत्तिरीय उपनिषद् तैत्तिरीय ब्राह्मण का एकांश है। और ऐतरेय उपनिषद् ऐतरेयारण्यक का एक अंश है। छान्दोग्य उपनिषद् छान्दोग्य ब्राह्मण के आरण्यक भाग का एकांश है। जब सभी बड़ी २ उपनिषदें वेद और वेद के व्याख्यानों के अंश ही हैं तब उनको वेद से अलग करना वैदिक ऋषियों के ज्ञान भण्डार के साथ भारी अन्याय है। जिस प्रकार दीपक को निकाल लेने से घर सूना प्रतीत होता है उसी प्रकार उपनिषदों या ब्रह्मविद्या को वेद से पृथक् कर लेने पर वेदसमुदाय भी अन्धकारमय हो जाता है, यही कारण है कि कर्मकाण्ड को ज्ञानकाण्ड से अलग कर लेने पर सिवाय अविद्या के कुछ शेष नहीं रहता। मध्यकालीन विद्वानों ने समस्त कर्मकाण्ड में वेद के मन्त्रों का विनियोग पाकर वेदों का अर्थ कर्मकाण्डपरक कर लिया। परन्तु उन्होंने यह नहीं विचारा कि उनके ऐसा करने से वेदभवन अन्धकारमय हो जायगा और वास्तव में वैसा ही हुआ भी। कर्मकाण्ड को मुख्य रखकर वेदमन्त्रों का यज्ञपरक अर्थ करने से दो प्रवृत्तियां जागीं। एक तो कल्पित मनगढ़न्त कर्मकाण्ड गढ़ २ कर उसमें वेदमन्त्रों का मनमाना विनियोग होने लगा, जिससे गोमेध, नरमेध, अश्वमेध आदि पवित्र यज्ञों का क्रियाकाण्ड भी भ्रष्ट हो गया, दूसरा वास्तविक वेदों का परमार्थ और विज्ञानमय अर्थ लुप्त हो गया। और उसमें ऐतिहासिक अर्थ और लौकिक अभिधार्थ ही लिया जाने लगा। भाष्यकारों ने अपना मतलब साधने के लिये प्राचीन ग्रंथों के उद्धरणों से काम तो लिया परन्तु वेदार्थ करने की प्राचीन शैली को नहीं अपनाया।

वेदों की सबसे उच्च कोटि की व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थों में की गई है। उनमें जहां साथ २ यज्ञ की शैली और लोक-व्यवहार को दर्शाया है वहां यज्ञ की क्रिया का अध्यात्मक अर्थ भी किया है। जब समस्त वैदिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मकाण्ड का अर्थ अध्यात्मपरक है तो कोई कारण नहीं की उसमें विनियुक्त मन्त्रों का अर्थ अध्यात्मपरक न हो। भाष्यकारों ने ब्राह्मण ग्रन्थों के इस रहस्य को नहीं समझा। इसी से वे वेदों का जब अध्यात्मपरक अर्थ नहीं लगासके तब वेद को नित्य ईश्वरज्ञान मानकर भी उनका ऐतिहासिक अर्थ करने एवं भौतिक पक्ष में अर्थ कर उनके गूढ ब्रह्मपरक विशेषणों को भी न सुलझा सके। अब हम पाठकों के समक्ष ब्राह्मणकार या उपनिषत्कार ऋषियों के मंत्रार्थ करने की रीति पर कुछ प्रकाश डालते हैं।

गर्भे नु सन्न्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयम्॥
(ऋग्वेद म० ४। सू० २७। मं० १)

इसका प्रतीयमान साधारण अर्थ है—"मैंने गर्भ में ही इन देवों के सब रूप जान लिये, मुझे सौ लोहे के कोट घेरे हुए थे और मैं श्येन या बाज पक्षी होकर बड़े वेग से निकल आया।" यह एक पहेली सी है। इस ऋग्वेद के मन्त्र का व्याख्यान ऐतरेयोपनिषद् (अ० २) में इस प्रकार है—

"पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति यदेतद्रेतः। तदेतत् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्त्ति। तद् यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज् जनयति तदस्य प्रथमं जन्म॥ १॥ तत् स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति यथा स्वमङ्गं। तथा तस्मादेनां न हिनस्ति। साऽस्यैतमात्मानमत्र गतं भावयति॥ २॥ सा भावयित्री भावयितव्या भवति। तं स्त्री गर्भं बिभर्ति। सोऽग्रे कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति। स यत्कुमारं जन्मनाऽग्रेऽधिभावयति आत्मानमेव तद् भावयति एषां लोकानां सन्तत्या। एवं सन्तता हि इमे लोकाः। तदस्य द्वितीयं जन्म॥३॥ सोऽ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्यायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते। अथ अस्य अयमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति। स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म। तदुक्तमृषिणा।

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा।

शतं मा पुर आयसीररक्षन् अधःश्येनो जवसा निरदीयमिति।

गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच। स एवं विद्वान् अस्माच्छरीरभेदादूर्ध्वमुत्क्रम्य अमुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामान् आप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत्॥

अर्थ—पुरुष में ही प्रथम यह गर्भ होता है। वह पुरुष में वीर्य रूप से रहता है। वह वीर्य सब अङ्गों से शुक्र रूप में उत्पन्न होता है। उसको पुरुष अपने ही शरीर में आत्मा रूप से धारण करता है। जब वह मैथुन द्वारा स्त्री के गर्भ में आधान करता है तब उसको उत्पन्न करता है यह उस आत्मा का प्रथम जन्म है। तब वह गर्भ स्त्री के एक अंग के समान हो जाता है, इसलिये वह उसको कोई पीड़ा नहीं देता। स्त्री भी अपने पति के ही आत्मा को अपने भीतर प्रविष्ट हुआ समझ कर उसका पालन करती है। उसका पालन करती हुई स्त्री अपने पति के पालन योग्य होती है। स्त्री उस आत्मा को अपने गर्भ में पालन पोषण करती है। उत्पन्न हो जाने पर उसका पिता उसको जातकर्म आदि द्वारा अपनाता है। पिता जो उस कुमार को पालता है एक प्रकार से अपने को ही उस रूप में विचार करता है, वह भी इसलिये कि ये लोक सन्तति द्वारा ही फैलते हैं, इसलिये कि यह लोक-सन्तति बनी ही रहे इस प्रकार पुत्र का यह जन्म आत्मा का द्वितीय जन्म है। यही आत्मा बड़ा हो जाने पर पुनः शास्त्रोक्त विधि द्वारा पिता का प्रतिनिधि होकर उसके स्थान पर हो जाता है। और इधर यह पिता का आत्मा जीवन को सफल करके बूढ़ा हो, चल बसता है। यहां से जाकर पुनः वह पैदा हो जाता है। यह उसका तीसरा जन्म है। इसी प्रकार वेदमंत्र ने भी कहा है कि—(गर्भे नु सन्निति०)—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् "मैंने गर्भ में ही देवों के सब रूप जान लिये, मुझे लोहे के सौ कोट घेरे हुए थे, श्येन पक्षी के समान मैं आत्मा बड़े वेग से निकल आया" इति। गर्भ में ही सोते हुए वामदेव ने इस प्रकार कहा। वह वामदेव इस शरीर के बन्धन को तोड़कर परलोक में सर्वाप्तकाम होकर अमृत, मुक्त हो गया।

उपनिषत्कार ने यह एक वेदमंत्र की संगति लगा कर दर्शाई है और आत्मा के अमर होने का और मुक्त होने का सिद्धान्त दर्शाया है। इसी प्रकार अन्य २ मन्त्रों की भी व्याख्या ब्राह्मणों और आरण्यकों में प्राप्त होती है। इस व्याख्या में दो ध्यान देने योग्य विचार विन्दु हैं, जैसे (१) सौ लोहे की कोटें (शतं आयसीः पुरः) और (२) बाज के समान वेग से बाहर निकलना। इन दोनों घटनाओं का वर्णन प्रायः अग्नि और इन्द्र और सोम तीनों देवताओं के विषय में रूपान्तर से आयेगा. १०० पुरी ९९ पुरी या ९० पुरी का वर्णन जैसे—

इन्द्र के विषय में—

अया वीती परिस्रव यस्त इन्द्रो मदेष्वा। अवाहन्नवतीर्नव॥
(साम० उ० अ० ६।५।१।१)

इन्द्र ने सोम के मद में ९९ पुरियों का विनाश किया है।

इन्द्र और अग्नि दोनों के विषय में जैसे—

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम्। साकमेकेन कर्मणा॥
(साम० उ० अ० १६।१।१।२)

दोनों को शत्रु के ९० पुरी का विनाशक बतलाया है।

केवल अग्नि के विषय में जैसे—

"प्रभूर्जयन्तं महाविपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम्॥",
(साम० पूर्व० अ० १।८।२)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त सभी उदाहरणों में पुरों का या परकोटों का विनाश सर्वत्र समान है और संख्या भी ९९, १००, ९० समान ही है अतः इन सबकी संगति एक ही अर्थ में होना आवश्यक है। इस प्रकार उपनिषत् ने एक मंत्र की संगति दर्शाकर वेद के ऐसे सभी स्थलों की व्याख्या कर दी है। प्रायः उपनिषत्कारों, आरण्यकारों और ब्राह्मणकारों की ऐसी ही व्याख्यान शैली देखने में आती है, जिससे वेदमन्त्रों की अध्यात्मव्याख्या स्पष्ट हो जाती है। परन्तु भाष्यकारों ने इन व्याख्याओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

अब हम सामवेद गत देवताओं पर विचार करते हैं।

(६) सामवेद के देवता

सामवेद गत देवताओं पर विचार करने के पूर्व देवता शब्द पर सामान्य रूप में विचार कर लेना उचित है। इस विषय पर वेद विषय में प्रमाण ग्रन्थ सबसे अधिक यास्क का निरुक्त है। यास्क लिखते हैं—

"यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति"।

जिस वस्तु की अभिलाषा करके मन्त्रद्रष्टा ऋषि जिस देवता में अपने अभिप्राय का स्वामित्व निश्चित जानकर स्तुति करता है उस मन्त्र का वही देवता कहा जाता है।

वेदों की ऋचायें तीन प्रकार की हैं (१) परोक्षकृत (२) प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिक। परोक्षकृत मंत्रों में देवता को प्रथम पुरुष बनाकर क्रिया में भी प्रथम पुरुष का व्यवहार किया है। प्रत्यक्षकृत मंत्रों में 'तू' इस प्रकार देवता को कह कर क्रिया में मध्यम पुरुष का प्रयोग किया है और आध्यात्मिक में 'अहं' इस प्रकार उत्तम पुरुष का प्रयोग किया गया है।

निरुक्तकार यास्क लिखते हैं—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माहाभाग्याद्देवताया: एक आत्मा बहुधा स्तूयते । एकस्य आत्मनोऽन्ये देवा: प्रत्यङ्गानि भवन्ति । अपिच सत्त्वानां प्रकृतिभूमभिर्ऋषयः स्तुवन्तीत्याहु: । प्रकृतिसार्वनाम्न्याच्चेतरेतरजन्मानो भवन्ति, इतरेतरप्रकृतयः कर्मजन्मानः आत्मजन्मानः । आत्मैव एषां रथो भवत्यात्मा अश्व आत्मा आयुधम्, आत्मा इषवः आत्मा सर्वं देवस्य० ।" इत्यादि ।।

अर्थ—देवता का बड़ा ऐश्वर्य होने से एक आत्मा का बहुत प्रकार से वर्णन किया गया है । एक आत्मा के ही अन्य देवता अङ्ग प्रत्यङ्ग हो जाते हैं । और नाना प्रकार के सामर्थ्य देखकर भी अनेक नामों से ऋषियों ने स्तुतियां की हैं । और वह आत्मा सब पदार्थों में समान रूप से मूलकरण होने से सभी नाम उस महान् आत्मा के ही होने सम्भव हैं, इस कारण से भी उस ही आत्मा की नाना नामों से स्तुति की जाती है । उस महान् आत्मा का ऐसा ही विशेष ऐश्वर्य होने के कारण वेद के देवता इतरेतरजन्मा हैं अर्थात् एक दूसरे के मूलकारण और कार्य हो जाते हैं, बहुत से कर्मभेद से देवताओं की कल्पना है । परन्तु वह सब महान् आत्मा से ही उत्पन्न हैं । वही उनका रथ है, वही अश्व है, वही आयुध है, वही इषु है, वह सब कुछ देव परम आत्मा स्वयं है । बहुत से स्थलों पर पुरुष के समान अङ्गों वाला देवता मान कर उनकी स्तुति की है, पुरुष के समान ही उसके कर्म भी दर्शाये हैं, जैसे—

'आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि' 'हे इन्द्र दो घोड़ों से आप आओ' । और जैसे····'अद्धि इन्द्र पिब च' हे इन्द्र खा और पी इसी प्रकार अचेतन पदार्थों से भी देवता की स्तुति की है । जिस प्रकार अग्नि, वायु, आदित्य, सोम, ग्रावा आदि नामों से भी बहुतसी स्तुतियां हैं । परन्तु सब स्थानों पर पुरुषों के समान ही कर्म करने वाले देवता का निरूपण किया है ।

देवता का क्या स्वरूप है ? इसकी व्यवस्था के लिये निरुक्तकार यास्क

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मत है कि तीन ही देवता हैं पृथिवी पर अग्नि अन्तरिक्ष में वायु या इन्द्र और द्यौ में सूर्य। या देवताओं के महान् ऐश्वर्य होने से और नाना कर्म होने से एक के ही बहुत से नाम हैं। जहां कर्म पृथक् २ होने से देवता पृथक् पृथक् हैं वहां जिस प्रकार बहुत से कर्म करने वाले एक ही काम को आपस में बांटकर कार्य करते हैं, उसी प्रकार वे भी रहते हैं, वे एक दूसरे के उपकारक भी हो जाते हैं। यहां इनकी व्यवस्था नरराष्ट्र के समान ही समझनी चाहिये।

और भी स्पष्टता के लिये निरुक्तकार ने इन देवताओं को तीन विभागों में बांट दिया है। हवि का वहन करना, देवताओं का आवाहन करना या दृष्टिविषयक सब काम अग्निविषयक समझा जाय। पृथिवी स्थानी देवगण अश्व, शकुनि आदि निघण्टु (प्र० ५ ख० ३) में पढ़ दिये हैं, अग्नि के संस्तविक देव इन्द्र, सोम, वरुण, पर्जन्य, ऋतु हैं। अर्थात् इन नामों से भी अग्नि की स्तुति की गई है।

इसी प्रकार मध्यस्थानी देवता निघण्टु (प्र० ५, खं० ४, ५) में पढ़ दिये गये हैं। उनमें मुख्य इन्द्र या वायु है। सब बल कर्म इन्द्र नाम से कहे जाते हैं, इसका कार्य रस का अनुप्रदान करना और और वृत्र का बध करना है। अग्नि, सोम, वरुण, पूषा, बृहस्पति, ब्राह्मणस्पति, पर्वत, कुत्स, विष्णु, वायु आदि इसके संस्तविक देव हैं। तृतीय स्थान के देवता निघण्टु (५, ख० ६) में पढ़े गये हैं। रश्मियों से रस का लेना और धारण करना आदित्य का कार्य है। इसके संस्तविक देव चन्द्रमा, वायु और संवत्सर हैं।

निरुक्तकार यास्क का यह देवता विभाग केवल भौतिक विज्ञान के वर्णन में ही लागू होता प्रतीत होता है। समाज क्षेत्र में वेदज्ञान को प्रवृत्त कराने के लिये यास्क की व्याख्या केवल यही है कि "सदेनश्वर-राष्ट्रमिव" नरराष्ट्र के समान ही वेद में देवराष्ट्र की व्यवस्था समझनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये। इस प्रकार उन्हीं देवनामों से यथास्थान राज्यप्रबन्ध और समाज की वर्णव्यवस्था का भी वर्णन निकल आयेगा। और अध्यात्म वर्णन के लिये यास्क का सिद्धांत यही है कि 'महाभाग्याद्देवतानां एक आत्मा बहुधा स्तूयते। एक ही महान् आत्मा की उसके महान् ऐश्वर्य के कारण नानारूप से स्तुति की गई है।

इसीलिये दैवतकाण्ड या ज्ञान या कर्मकाण्ड की व्याख्या कर चुकने पर स्वयं निरुक्तकार ने ऊर्ध्वमार्गगति या उपासना मार्ग पर दृष्टि डालकर लिखा है। अथैतदनु प्रवदन्ति अथैतं महान्तमात्मानमेषर्ग्गणः प्रवदति। इन्द्रम्मित्रं वरुणमग्निमाहुरिति। यह सब ऋचाओं का समूह उस महान् आत्मा का ही वर्णन करता है। इस प्रकरण में यास्क ने सोम, इन्द्र, आदित्य विष्णु आदि देवताक ऋचाओं का उल्लेख करके आध्यात्म विषय को उत्तम रीति से दर्शाया है। इसमें यही ध्यान देने योग्य बात है कि महान् आत्मा के निम्नलिखित पर्याय यास्क ने दर्शाये हैं—

हंसः। धर्मः। यज्ञः। वेनः। मेधः। कृमिः। भूमिः। विभुः। प्रभुः। शंभुः। राभुः। भुवनम्। भविष्यत्। आपः। महत्। व्योम। यशः। महः। स्वर्णीकम्। स्मृतीकम्। सतीकम्। सतीनम्। गहनम्। गभीरम्। गह्वरम्। कम्। अन्नम्। हविः। सद्म। सदनम्। ऋतम्। योनिः। अमृतस्यः योनिः। सत्यम्। नीरम्। हविः। रयिः। सत्। पूर्णम्। सर्वम्। अक्षितम्। बर्हिः। नाम। सर्पिः। अपः। पवित्रम्। अमृतम्। इन्दुः। हेम। स्वः। सर्गाः। शम्बरम्। अम्बरम्। वियत्। व्योम। बर्हिः। धन्व। अन्तरिक्षम्। आकाशम्। आपः। पृथिवी। भूः। स्वयंभूः। अध्वा। पुष्करम्। सगरः। समुद्रः। तपः। तेजः। सिन्धुः अर्णवः। नाभिः। वृक्षः। ऊधः। तत्। यत्। किम्। ब्रह्म। वरेण्यम्। हंसः। आत्मा। भवति। वधन्त्यध्वानम्। यद वाहिष्ठा शरीराणि। अव्ययं च संस्कुरुते। यज्ञः आत्मा भवति यदेनं तन्वते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन हंस आदि उक्त शब्दों से आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को वेदमन्त्रों में दर्शाया गया है। इसलिये अध्यात्म तत्त्व के खोजक को चाहिये कि वेद मन्त्र पर विचार करने के पूर्व ही प्रथम इन शब्दों की उपस्थिति को देखले और फिर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करे तो निःसन्देह मन्त्रों का आध्यात्मिक रहस्य खुल जाता है। अब हम सामवेद गत देवताओं की संक्षेप से एक २ की आलोचना करते हैं और बतलाते हैं कि किस प्रकार उपसनाकान्ड में इन देवताओं की संगति लगती है।

(१०) अग्नि

प्रथम आग्नेय काण्ड है। इस काण्ड भर में अग्नि देवता को लक्ष्य करके ही सब मन्त्र हैं। वह अग्नि क्या पदार्थ है ? इसका विवेचन वेद के सिद्धान्त या आश्रयभाग उपनिषदों में देखिये।

(१) कठोपनिषद् में नचिकेता ने गुरु यम से प्रश्न किया है—

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्र ब्रूहि तं श्रद्धधानाय मह्यम्।

आप उस स्वर्ग देने वाले अग्नि को जानते हो, मुझ श्रद्धालु को उसका उपदेश करो। इसके उत्तर में यम ने कहा है।

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नाचिकेतः प्रजानन्।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतन्निहितं गुहायाम्।
लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै०........। इत्यादि।

काठ० १।१।१३।१४॥

मैं तुमको उसी स्वर्ग देने हारे अग्नि का उपदेश करता हूँ। वह अनन्त लोकों को प्राप्त कराता और अनन्त लोकों का आश्रयस्थान है। वह सब लोकों का आदि मूलकारण है।

इस अग्नि का नाम भी 'नाचिकेत' अग्नि ही है।

पाठक समझ सकते हैं यह कौनसी अग्नि है। यह नाचिकेत आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मातरिश्वा' प्राणस्वरूप या आत्मतत्व को जानने वाला जीव, प्राणीरूप अन्न है।

आत्मा का प्रतिपादन करते हुए पुनः लिखा है:—

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निरेतद्वै तत् ।
(क० २।१।८)

गर्भिणी जिस प्रकार गर्भ को धारण करती है, उनके समान अरणियों में जो जातवेदा विद्यमान है, जागने हारे हविष्मान् पुरुषों द्वारा प्रतिदिन स्तुति करने योग्य जो अग्नि है, वह यह 'अग्नि' आत्मा है। अर्थात् आत्मा का प्रतिनिधि ही यज्ञाग्नि है दूसरा पदार्थ नहीं। फलतः यज्ञोक्त मंत्रों का मुख्य प्रतिपाद्य वह आत्मा ही है। मंत्रों का तो केवल प्रतिनिधिवाद से यज्ञों में विनियोग किया जाता है। (इस उक्त मंत्र की स्पष्ट व्याख्या देखिये अवि० सं० ७९) यह वही अग्नि है, हृदय में छुपे हुए जिसको योगी लोग ध्यान निर्मथन के अभ्यास से साक्षात् देख लेते हैं।

(२) इस रहस्य को श्वेताश्वतर उपनिषद् में बड़े उत्तम रूप में रक्खा है।

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः॥
स भूय एवेन्धनयोनिग्राह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे ॥

जिस प्रकार अपने कारण भूत अरणियों में अग्नि की मूर्ति नहीं देख पड़ती और न अग्नि के सूक्ष्मरूप का विनाश ही होता है और बाद में भी उसको उसके मूलकारणभूत ईंधन से ही मथन द्वारा प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार दोनों आत्मारूप अग्नि में भी इस देह में प्रणव के मनन से प्रकट होते हैं।

अर्थात्—स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने देह आत्मा को अधर अरणि और प्रणव ओंकार को उत्तर अरणि बनाकर ध्यानरूप मन्थन दण्ड को पुनः रगड़ २ कर ज्योतिःस्वरूप, देव, अर्थात् प्रकाशस्वरूप आत्मा का दर्शन करे।

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतः स्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥

तिलों में तेल, दही में घी, नदियों में जल और अरणियों में अग्नि जिस प्रकार उपलब्ध होती है उसी प्रकार आत्मा में ही वह परमात्मा व्यापक रूप से जाना जाता है, योगी जन उसको सत्य अर्थात् भूतहित, अहिंसा आदि यम, नियम, सत्याचरण और तप से प्राप्त करते हैं।

इसी अभिप्राय को दर्शाने वाले अन्य वाक्य भी देखने योग्य हैं। जैसे—

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥

अर्थ—अग्नि के प्रकाश को ही मानो सविता जगदुत्पादक प्रभु ने इस पृथिवीरूप देह में छिपाया था। अर्थात् पृथिवी में जिस प्रकार अग्नि है उसी प्रकार देह में आत्मा है। इसी प्रकार—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपस्तत्प्रजापतिः ॥
नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भः ऋतवः समुद्राः।
अनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्त्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा॥

इन दो मन्त्रों से अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः, नील, पतङ्ग, हरित, लोहिताक्ष आदि सब नाम उसी ब्रह्म परमात्मा के एवं स्वरूप के निदर्शक हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैत्रायणी उपनिषद् में:—

'अथ य एषोऽन्तरे हृत्पुष्करे एवाश्रितोऽन्नमत्ति स एषोऽग्निर्दिवि श्रितः सोयं कालाख्योऽदृश्यः सर्वभूतान्यत्ति ।'
(मैत्रा० ५ । २)

हृदय कमल में स्थित यह अग्नि (आत्मा) है जो अन्न खाता है और वह मोक्षधाम, द्यौः में स्थित कालाग्नि नामक परमेश्वर रूप अग्नि है जो प्रलय काल में समस्त भूतों को खाजाता है, अपने में लीन कर लेता है ।

एष हि खलु आत्मा ईशानः शंभुर्भवो रुद्रः प्रजापतिर्विश्वसृड् हिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो हंसः शान्तो विष्णुर्नारायणोऽर्कः सविता धाता सम्राड् इन्द्र इन्दुरिति य एष तपत्यग्निनापिहितः सहस्राक्षेव आनन्दमयेनैष वा विजिज्ञासितव्योऽन्वेष्टव्यः । (मैत्रायणी उप० ५ । ८)

वही आत्मा ईशान, शम्भु आदि नामों से कहा जाता है वही अग्नि ज्योतिः अर्थात् प्रकाश से आवृत होकर प्रकाशित होता है ।

शिरः पक्षसी पुच्छपृष्ठवानेषोऽग्निः । ....प्राणो वै वायुः प्राणोऽग्निः ।....असौ वा आदित्य इन्द्रः सैषोऽग्निः ॥६।३६॥.... इन्द्रोऽग्निरिव विश्वरूपः ॥

इत्यादि स्थलों में वह परब्रह्म ही अग्नि शब्द से लिया गया है उसको ही

'तस्मादग्निर्यष्टव्यश्चेतव्यः' ॥ ६ ॥ ३४ ॥

इत्यादि स्थलों में उपासना करने का उपदेश है ।

प्रश्नोपनिषद् में—

"स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते ।"

परब्रह्म की सूर्यरूप से उपासना का वर्णन किया है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम अग्नि के सम्बन्ध में और अधिक उपनिषद् वाक्यों को उठाकर लेख नहीं बढ़ाना चाहते। पाठक स्वयं हमारी दिखाई दिशा से वेदमन्त्रों के भीतर रक्खे हुए विशेषणों पर विचार करेंगे और यथास्थान उनका आध्यात्मिक तत्त्व जान लेंगे।

इसके अतिरिक्त अग्नि के सम्बन्ध में एक बात यह भी लिखना अप्रासङ्गिक न होगा कि वेद में अग्नि शब्द जहां आत्मा और परमात्मा का मुख्य नाम है वहां इसी अग्नि शब्द का प्रयोग वैदिक भाषा में आचार्य और ज्ञानी विद्वान् के लिये भी आता है। जैसा उपनयन पद्धति में आचार्य बालक की अञ्जलि पकड़कर जल छुड़ाते समय कहा करता है।

"अग्निराचार्यस्तव असौ"। कस्य ब्रह्मचार्यसि ? भवतः। इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यसि। अग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तव ॥

पार० का० २, कं० २

ये पद्धतियां प्राचीन वैदिक विशेष परिभाषा-पदों के प्रयोगों की सूचना देती हैं। हमें उनको भी भुलाना नहीं चाहिये। इसलिये हमारा अधिक बल इस बात पर है कि विशेषणों को देखकर वेदमंत्र के अर्थ करने चाहियें निरुक्तकार ने अग्नि का निर्वचन इस प्रकार किया है।

अग्निः कस्मादग्रणीर्भवति। अग्रे यज्ञेषु प्रणीयते। अङ्गं नयति संनममानः। अक्नोपनो भवति। त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायते शाकपूणिरितादक्ताद्दग्धाद् वा नीतात् ॥

अर्थात्—अग्रणी, यज्ञ में प्रथम प्रणयन करने योग्य यज्ञाग्नि, अङ्ग या देह को लेजाने वाला जीव, न गीला होने वाला विद्युत्, ज्ञान प्रकाशक आचार्य और दाहक ताप ये सब अर्थ अग्नि के हैं। इन अर्थों को यथास्थान लगाना उचित है।

इन्द्र (११)

लौकिक साहित्य में इन्द्र का अर्थ राजा है। पौराणिक साहित्य में इन्द्र एक कल्पित स्वर्ग का राजा और अपनी देव-कथाओं का विलासी पात्र है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु वैदिक साहित्य में इन्द्र का अर्थ आत्मा है। आत्मा शब्द से जीवात्मा और परमात्मा दोनों का ग्रहण है। जैसे इस देह में आत्मा है उसी प्रकार विश्वमय ब्रह्माण्ड में परमात्मा है जिसका वर्णन 'अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ' इत्यादि विशाल अलंकारों से किया जाता है। इसी को 'यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्' इत्यादि अलंकारों से ज्येष्ठ ब्रह्म बतलाया है।

यह अन्तरात्मा इन्द्र है। इसके लिये सर्व प्रसिद्ध प्रमाण देह की इन्द्रियां हैं जिनका नाम ही इन्द्र के आधार पर है। पाणिनि आचार्य ने 'इन्द्रिय' शब्द की व्युत्पत्ति लिखी है—

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा

(पा० ५ । २ । ९३)

इन्द्र आत्मा का ज्ञापक लिङ्ग, उसका देखा, उससे उत्पन्न, उससे सेवित और उसकी शक्ति से युक्त होने के कारण ही 'इन्द्रिय' कहाते हैं। इसके अतिरिक्त सब कथा कथानकों में प्रसिद्ध पुराणगत इन्द्र कोई पदार्थ नहीं है। वह भी आलंकारिक रूप से इसी इन्द्र आत्मा के सम्पन्न, सिद्ध, ऐश्वर्यवान् आदि रूपों को दर्शाया है। दूसरा इन्द्र वह परमात्मा है जिसका वर्णन वेद में स्थान २ पर आता है। जैसे '**इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव**' (साम० उत्त० अ० १६ । २८ । २ ।)

अब यह तो पाठक भाष्य में देखेंगे कि समस्त इन्द्र पर्व इन्द्र विषयक है और उत्तरार्चिक में भी इन्द्र विषयक बहुतसी ऋचाएं हैं।

यहां थोड़ासा उपनिषदों के मन्तव्यों का उल्लेख करते हैं—

(१) ऐतरेय उपनिषद् में—

'**स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यद् इदमदर्शमिती३ँ तस्मादिदन्द्रो नाम। इदन्द्रो ह वै नाम तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया हि देवाः।**

वह मुमुक्षु इस पुरुष को ही ब्रह्मरूप से देखता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कहता है 'इदम् अदर्शम्' इससे उस ब्रह्म का नाम 'इदन्द्र' है इसका ही परोक्षरूप 'इन्द्र' है।

बृहदारण्यक में—

इन्धो ह वै नाम एष यो ऽयं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषः। तं वा एतमिन्धं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते। ४। २। २॥

दक्षिण चक्षु से द्रष्टा रूप से विराजमान आत्मा ही 'इन्ध' है उसको ही 'इन्द्र' कहते हैं, स इन्द्रः स एषोऽसपत्नः (१। ५। १२), यथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी (६। ४। २२)। इन्द्रस्यायं वज्रः कृतः सार्गलः सपरिश्रमः (६। ४। २३) इन स्थलों पर इन्द्र जीवात्मावाचक है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में—

स मे इन्द्रो मेधया स्पृणोतु। (१। ४। १) शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। (१। १।१) स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। (सामवेद उत्तरा० अ० १। ८) इन स्थलों पर इन्द्र शब्द परमात्मावाचक निर्विवाद है।

यहां विवाद योग्य बात यही है कि सामवेद में इन्द्र के साथ जो तीन विशेष घटनाएं प्रायः जुड़ी हैं। एक तो इन्द्र का सोमपान, दूसरा इन्द्र का वज्र से पुर भेदन और तीसरा वृत्रहनन। उपनिषत्कार इनको क्या मानते हैं इस पर भी कुछ प्रकाश डालना उचित है।

१. सोमपान के प्रकरण को सोमदेवता के प्रकरण में स्पष्ट करेंगे। पुर भेदन के विषय को अग्नि के प्रकरण में स्पष्ट कर आये हैं। वज्र के विषय में गीता में व्यासदेव स्वयं भगवान् को ही "आयुधानामहं वज्रम्" सब आयुधों में श्रेष्ठ वज्र स्वीकार करते हैं सब दुःखों के भवबन्धन के छेदन करने हारा ईश्वर ही स्वतः ज्ञानस्वरूप सबसे उत्तम वज्र है।

काठक उपनिषद् में—

प्राण एजति निःसृतम्। महद् भयं वज्रमुद्यतम्।
य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति। (६। २)

ईश्वर की शक्ति प्राण को वज्र कहा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुरिकोपनिषद् में—

मनस्त्वस्तु क्षुरं गृह्य सुतीक्ष्णं बुद्धिनिर्मलम् ।
इन्द्रवज्र इति प्रोक्तम् ॥

ज्ञान, ध्यान में तत्पर मन को ही वज्र लिखा है। उस वज्र द्वारा सुषुम्ना सहित १०१ नाड़ियों के बन्धन को ध्यान योग से काटता है। जैसे लिखा है—

द्वासप्ततिसहस्राणि प्रतिनाड़िषु तैतिलम् ।
छिद्यते ध्यानयोगेन सुषुम्नैका न छिद्यते ।
योगनिर्मलधारेण क्षुरेणानलवर्चसा ॥
छिन्देन्नाड़िशतं धीरः प्रभावादिह जन्मनि ॥

ये शत नाड़ी ही आयसी पुर है, जिनको कहीं ९९ या ९० भी कहा जाता है। इनमें व्याप्त तैतिल = अन्धकार को ही अध्यात्म योगी वृत्र कहते हैं। इसका विवरण स्थान २ पर पाठकगण भाष्य में ही देखेंगे। इन्द्र और वृत्र की कथा की आलंकारिक व्याख्या का विस्तृत विवरण महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में स्पष्टरूप से 'ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य-विषय' में कर दिया है। उसको पुनः यहां उठाकर रखना पिष्टपेषण होगा।

(१२) सोम देवता

सोम क्या पदार्थ है इसका निर्णय कठिन है। याज्ञिक लोगों का सोम एक लता है, जिसके रस-पान करने के लिये विशेष विधि है। जो सोमपान तैयार करने की विधि महीधर आदि भाष्यकारों ने दी है वह बहुत सरल है। सर्ज की छाल, त्रिफला, सूंठ, पुनर्नवा, पीपल, गजपीपल आदि नाना ओषधियों में धान और जौ की खीलें मिला, कूटकर उनको कलश में बंद करके, उसे तीन दिन तक रक्खा जाता है और फिर उसे कम्बल के टुकड़े से छानकर उसमें दूध, मधु आदि मिलाकर पान किया जाता है। छानने और पान करने की इन सब क्रियाओं को करते समय सोम देवता के मन्त्र का पाठ किया जाता है, परन्तु उनमें सोम कोई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ नहीं गिना जाता है। इसमें प्रतिनिधि वाद से ही सोम की कल्पना करके सोमदेवताक मन्त्रों का प्रयोग किया गया है। महीधर के काल के सोम सौत्रामणि को देखकर यह कहना कि समस्त सोमदेवताक मन्त्र इसी सुरारूप सोम का वर्णन ही करते हैं यह भारी भूल होगी। ब्राह्मण ग्रन्थों ने यज्ञ में रक्खी यज्ञक्रियाओं की व्याख्या करने का यत्न किया है। उसमें वे सोम के निमित्त प्रतिनिधि पदार्थों को मन्त्र में आये शब्दों का अर्थ स्वीकार नहीं करते, प्रत्युत, जिस मुख्य अर्थ के अभिप्राय से वह शब्द मन्त्रों में पढ़ा गया है उसको ही वहां खोल कर बतला देते हैं! इस प्रकार ब्राह्मण और ऋषियों के मत से वह मन्त्र सोमद्रव्यपरक न होकर अध्यात्मपरक हो जाता है। यज्ञकाण्ड को खोलकर दिखाने एवं उसके यज्ञव्याख्यानुसार सोमपरक मन्त्रों की अध्यात्म व्याख्या कर दिखाने के लिये यहां स्थान नहीं और न यहां अवसर है। तो भी ब्राह्मणकारों ने सोम, सवन के प्रकरण मे सोम के जो २ अर्थ किये हैं उनपर पाठकों का ध्यान खींचते हैं।

जैसे—

श्रीर्वै सोमः (श० ४। १। २। ९) राजा वै सोमः (श० १४। १। ३। १२) यदाह गयोऽसि इति सोमं वा एतदाह (गो०/पू० ५। १४) सोमो वै प्रजापतिः (श० ५। १। ५। २६) यदाह श्येनोऽसि इति सोमं वा एतदाह। एष ह वा अग्निर्भूत्वा संश्यायति। (गो० पू० ५। १२) यो वै विष्णुः सोमः सः (श० ३। ३। ४। २१)। योयं (वायुः) पवते एष सोमः। (श० ७। ३। १। १) स यदाह सम्राड् असि इति सोमं वा एतदाह। एष ह वै वायुर्भूत्वा अन्तरिक्षलोके सम्राजति। (गो० पू० ५। १३) एष वै यजमानो यत् सोमः। (तै० १। ३। ३। ५) क्षत्रं वै सोमः। (श० ३। ४। १। १०) सोमो वै यशः। (तै० २। २। ८। ८) एषा केवला यत्सोमाहुतिः। (श० १।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७ । २ । १०) प्राणः सोमः । (श० ७ । ३ । १ । ४५) रेतः सोमः । (पं० १३ । ७) । सोमो वै ब्राह्मणः । (तै० २ । ७ । ३ । १) एष वै ब्राह्मणानां सभासाहः सखा । (श० १० । ७ । १ । १०) इत्यादि ।

अर्थात्—सोम के अर्थ श्री, राजा, प्राण, प्रजापति, गूढ़रूप, अग्नि, विष्णु, परमात्मा, वायु, सम्राट्, क्षत्रिय, वीर्य, यश, केवल आनन्दमय परब्रह्म का रूप, वीर्य और ब्राह्मण आदि सभी सोम शब्द से लिये जाते हैं और प्रकरणानुसार सभी अर्थ सोम के स्थान २ पर लिये भी गये हैं। प्रकरणों का परिज्ञान मन्त्र के भीतर आये विशेषणों से जाना जायगा। यदि विशेषण कुछ अर्थ बतलावें और वहां सोम के कुछ और अर्थ ले लिये जावें तो यह वेद मन्त्र के साथ बड़ा अन्याय होगा।

सोम को सोमविक्रयी से खरीदकर बड़े आदर से शकट पर लादकर उसे पत्थरों से कूटा जाता है और पुनः उसे दशापवित्रनामक वस्त्र से एक द्रोणकलश नामक घट में छान लिया जाता है। द्रोणकलश में जल होते हैं उनको 'वसतीवरी' नामक 'आपः' कहा जाता है। जिस वस्त्र से छाना जाता है उसको बालों से बना होने के कारण 'अव्या' या 'अव्यय' या 'अव्या वार' शब्द से पुकारा जाता है। उसी को दशापवित्र या पवित्र नाम से भी पुकारा जाता है। सामवेद के प्रायः बहुतसे मंत्रों में सोम को इस 'पवित्र' नामक वस्त्रखण्ड से छानने का वर्णन किया है। सायण ने प्रायः बहुतसे मन्त्रों में से सोम के छाने जाने परक कई अर्थ लिये हैं। परन्तु हमने सायणकृत अर्थों की उपेक्षा की है क्योंकि सोमलता और कूटा हुआ सोमरस जो जड़ पदार्थ हैं उसमें ऐसे विशेषणों का आना जो जड़ पदार्थ में नहीं लग सकते हमें सायणकृत अर्थों के जानने के लिये बाधित करता है। उदाहरणार्थ—

जैसे—

पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परिप्रियः।
विप्रोऽभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः॥

(अवि० सं० ५१९)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायण ने इसका अर्थ यह किया है—

"हे सोम जागरणशील छाना जाता हुआ तू मेषी = भेड़ के बालों से बने दशापवित्र नामक वस्त्रखण्ड पर बहता है, हे अंगिरों में श्रेष्ठ, मेधावी ! तू पितरों का नेता होता है, वह तू हमारे यज्ञ को मधु अर्थात् अपने रस से सींच।

सोमरस को अवश्य यज्ञ में भेड़ के बालों से बने कम्बल के टुकड़े से छाना जाता है इसमें सन्देह नहीं। परन्तु उक्त मन्त्र में 'जागृवि'-जागरणशील, 'विप्र'=मेधावी', 'अङ्गिरस्तम'=अङ्गिरसों में श्रेष्ठ, ये विशेषण ऐसे हैं जो कभी जड़ सोमरस पर लगने उचित नहीं हैं, इसलिए सायण का अर्थ अशुद्ध है, क्योंकि इसमें योग्यतारहित पदों से वाक्य बनाया गया है। जिस वाक्य के पदों में योग्यता, आकांक्षा और आसत्ति तीनों हों वही वाक्य कहाता है अन्यथा उन्मत्तप्रलाप है। इसी प्रकार 'जागृवि' आदि विशेषण किसी चेतन की आकांक्षा करते हैं, क्योंकि उनमें चेतन में लगने की ही योग्यता है, परन्तु सायण ने उन विशेषणों को एक जड़ पदार्थ पर लगा दिया है, इसलिए सायण का लिखा पदसमुदाय वाक्य नहीं बन सकता। क्योंकि जड़ सोमरस न मेधावी है, न अंगिरसों में श्रेष्ठ है और न जागरणशील है। तब प्रश्न यह होता है कि इसका सामर्थ्य क्या है (देखिये अवि० सं० ५१९ मन्त्र का आलोकभाष्य पृष्ठ २६०) 'अंगिरस्तम' सोम क्या है इस पर विचार कीजिये। इसके ऋषि द्रष्टा सप्तर्षि हैं। अर्थात् उपलिपत्कार जिन सात ऋषियों को शिर के सात प्राण बतलाते हैं उसके ज्ञाता इस तत्त्व को साक्षात् करते हैं अर्थात् सात मूर्धागत प्राण अपने में मुख्य अंगिरस्-अंग के रसरूप मुख्य आसन्य प्राण या आत्मा को कहते हैं कि हे 'अंगिरस्तम' सबसे अधिक प्रकाशमान ! हे 'जागृवि' जागरणशील ! तू कभी न सोने वाला है, शेष सब इन्द्रियां थक २ कर सो जाती हैं पर प्राणात्मा कभी नहीं सोता। यदि वह सोजाय तो मृत्यु हो जाय, सांस न चले। वह सांस चलाने के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये उस समय प्राणरूप में जागृत रहता है, वह आत्मा 'विप्रः' अर्थात् मेधावी है, मेधा बुद्धि उसके पास है, वह आत्मा (प्रियः) सबसे अधिक प्रिय, सबका पोषक है।

स्त्री भार्या होने के कारण स्त्री प्रिय नहीं, प्रत्युत अपने लिये वे वह जाया प्रिय है। फलतः यह आत्मा सबसे अधिक प्रिय है, इस प्रकार प्रिय हे सोम ! सब के प्रेरक ! तू (अव्याः वारैः) अवि के वारों, अर्थात् अवि के बाल, भेड़ के बाल नहीं, प्रत्युत अवि=चितिशक्ति, जो सब अंगों की रक्षा करती है, या अवि=प्राण, उसके वरण-व्यापार, प्रवृत्ति इन द्वारा (पुनानः) परिष्कृत होता हुआ (नः यज्ञं मध्वा मिमिक्ष) हमारे यज्ञ को अमृत अर्थात् चैतन्य से सींच।

पाठक विचार कीजिये अब कोई बात असंगत नहीं रहगई। इसी प्रकार साधक आत्मा के प्रति यह उपदेश है कि वह अपना चितिशक्ति-संचारों और प्राण के निरोधों द्वारा अपने को परिष्कृत शुद्ध करे और अपने यज्ञ, देवपूजा ईश्वरप्रणिधान को आनन्दमय और अमृतमय करे, अपने जीवन में आनन्दघन का दर्शन करे। इसमें कोई खींचातानी की बात नहीं है। स्पष्ट २ विशेषणों के बल से यहां सोम शब्द आत्मपरक है।

हमारे इस विचार के पोषक प्राचीन ब्राह्मणकारों के सिवाय एक परम वेदज्ञ महर्षि यास्क ही हैं। महर्षि यास्क ने परमात्मा और आत्मा के तत्व का वर्णन करने के लिये सोम देवता के मन्त्रों का भी उल्लेख किया है।

जैसे—

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
(अवि० सं० ५२७)

सोम मतियों का उत्पादक, द्यौ का उत्पादक और पृथिवी का उत्पादक है। यह तत्वार्थ सोमरस पर नहीं लगता क्योंकि वह द्यौ और पृथिवी को उत्पन्न नहीं कर सकता। इसलिये यास्क लिखते हैं—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अथैतं महान्तमात्मानमेतानि सूक्तानि एता ऋचोऽनुप्रवदन्ति"।

अर्थात् ये ऋचाएं महान् आत्मा का वर्णन करती हैं। इसी को जीवात्मापरक भी लगाया है। लिखते हैं—

"अथाध्यात्मं सोम आत्माऽप्येतस्मादेव इन्द्रियाणां जनिता इत्यर्थः। अपि वा सर्वाभिर्विभूतिभिर्विभूतत आत्मेत्यात्मगतिमाचष्टे।"

अर्थात् अध्यात्म पक्ष में सोम आत्मा भी इसी मन्त्र से कहा गया है क्योंकि वह (मतीनां) इन्द्रियों का उत्पादक है। अथवा वही सब विभूतियों को प्राप्त करता है इस प्रकार आत्मा की गति कही है।

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनां....सोमः पवित्रमत्येति रेभन्।

(ऋ० ८। ९६। ६)

इस मन्त्र को यास्कमुनि ने आधिदैविक पक्ष में सूर्य और अध्यात्म में आत्मापरक लगाया है। और 'दशापवित्र'='पवित्र' के सब रहस्य को स्वयं खोल दिया है। इस मन्त्र में सोम का 'श्येनो गृध्राणां' "महिषो मृगाणां" इत्यादि विशेषणों से उपदेश किया है और अन्त में कहा है कि वह 'पवित्र' पर शब्द करता हुआ जाता है। सायण के अनुसार तो "घरघराता हुआ सोम दशापवित्र नामक वस्त्र पर पड़कर छन आता है" यह अर्थ हुआ और बाकी विशेषण सब असंगत रह जाते हैं। यास्कमुनि कहते हैं—

"महिषो मृगाणामिति अयमपि महान् भवति मृगाणां मार्गणकर्मणामिन्द्रियाणां। श्येनो गृध्राणामिति श्येन आत्मा भवति श्यायतेर्ज्ञानकर्मणः। गृध्राणि इन्द्रियाणि गृध्यतेर्ज्ञानकर्मणः, यत एतस्मिंस्तिष्ठन्ति।"

अर्थात् मृगों में महिष अर्थात् मार्गण करने वाली, विषयों को ढूंढ निकालने वाली इन इन्द्रियों में सबसे बड़ा और गृध्रों में श्येन अर्थात् बाज, के समान गृध्र अर्थात् विषयों के ज्ञानसाधन इन्द्रियों में से श्येन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् ज्ञान सम्पन्न वह आत्मा है। इसी प्रकार उक्त मन्त्र में देव, कवि, विप्र और वेन ये सब नाम इन्द्रियों के हैं जो उनके भिन्न २ गुण दर्शाते हैं। उनमें यह आत्मा ही सबसे गुणशाली है, वह पवित्र अर्थात् इन्द्रियगण पर ही (रेभन्) स्तूयमान अर्थात् प्रशंसित होकर उत्तम रूप से (अत्येति) अधिकबलशाली होकर उनका भोग करता है, इस प्रकार—

'सोमं गावो धेनवो वावशानाः० ॥ अक्रान्त्समुद्रः०....
....बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥ महत्तत्सोमो महिषश्चकार० ॥

ये मन्त्र सोमपरक होकर भी आत्मपरक ही यास्कमुनि ने माने हैं और स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि—

'समुद्र आत्मा', 'इन्दुरात्मा'।

समुद्र और इन्दु दोनों शब्दों का अर्थ आत्मा है।

जब यास्क जैसा मुनि हमें सोमदेवताक मन्त्रों को आत्मा के वर्णन में लगाने की दिशा दिखाता है तो कोई कारण नहीं कि उपासना काण्ड के परम वेद सामवेद के पावन काण्ड एवं सोम सूक्तों का परम चरम अभिप्राय ईश्वर और आत्मापरक न हो। और इस विषय पर कुछ उपनिषदों के प्रमाण भी ध्यान देने योग्य हैं जिनको हम क्रम से देते हैं—

1. मैत्रेयी उपनिषद् में स्वहृदयार्चन प्रकार लिखते हुए लिखा है—

"विज्ञानोऽस्मि विशेषोऽस्मि सोमोऽस्मि सकलोऽस्म्यहम् ॥"

यहां आत्मा को ही 'सोम' कहा है। इसी प्रकार—

"सोमसंज्ञोऽयं भूतात्मा।"

स्पष्ट लिख दिया है। छान्दोग्य में कितना सुन्दर लिखा है—

"अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्। एष ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दते। अथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्। तदरश्च ह वै ण्यश्च अर्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो दिवि तदैरंमदीयं सरस्त-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दश्वत्थं सोमसवनं तदपराजिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितं हिरण्मयम् ॥"

अर्थ—यह जो 'अनाशकायन' और 'अरण्यायन' कहा जाता है। यह भी ब्रह्मचर्य का व्रत ही है क्योंकि क्षुधा पर वश करके और अरण्य वास में गुरु की अधीनता में रहकर जो ब्रह्मचर्य का पालन कर आत्मा के परम ज्ञान को प्राप्त करता है वह नष्ट नहीं होता। ब्रह्मलोक में 'अर' और 'ण्य' इन नाम के समुद्र या दो तालाब हैं। उसी का नाम तृतीय द्यौः, स्वर्ग लोक में 'ऐरंमदीय' नामक 'सरः है और 'सोमसवन' नामक 'अश्वत्थ' है। वहीं 'अपराजिता' ब्रह्मपुरी है, वहां ही प्रभु परमेश्वर का दिया ईश्वर-ज्ञान या ब्रह्मज्ञानमय स्वर्ग है, यह सब अध्यात्म ज्ञान की कथा है। यहां सोमसवन नामक अश्वत्थ आत्मा ही है, वह ऐरंमद ज्ञानानन्दमय ब्रह्म ही यहां 'सरः' ताल या रसमय मोक्षपद हैं। वही ब्रह्मपुरी है वहां ही ब्रह्म ज्ञान है। यह सब आलंकारिक वर्णन है। इसी प्रकार—

यहां सोम का अर्थ प्राण हैं।

"आर्द्रं उद्रेतसोऽसृजत त द्रु सोमाः।"

यहां सोम का अर्थ वीर्य है। मुण्डक में "सोमात्पर्जन्यः" (१।१५) यहां सोम का अर्थ सूर्य है। "यास्ते सोम प्राणांस्तां जुहोमि" (महानारायणोप० १७।६) यहां सोम का अर्थ आत्मा है।

'सोमं पिब वृत्रहन्' (महानारायणोप० २०२) यहां सोम का अर्थ ब्रह्मानन्द रस है। "अपाम सोममभृता अभूम" यहां आत्म-ज्ञान और ब्रह्मज्ञान ही सोमार्थ है। "सोमो भूत्वा रसात्मकः" (गीता) यहां सोम का अर्थ परमात्मा की शक्तिरूप समष्टि रस है। इसके अतिरिक्त सोमपान करने हारे पुरुषों के विषय में भी देखिये। "सोमपाऽभयङ्करः" (महानारा० उप० २०।५) यहां सोम का अर्थ समस्त संसार है। उसका पालन एवं प्रलयकाल में पान कर जाने हारा परमात्मा 'सोमपा' शब्द से कहा गया है "त्रैविद्या मां सोमपाः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूतपापाः" तीनों वेदों के ज्ञाता, योगाभ्यासी, ब्रह्मज्ञ, निष्पाप पुरुष 'सोमपा' शब्द से कहे गये हैं। इसी प्रकार 'इन्द्रियं सोमपीथः' (तै० १।३।१०।२) यहां इन्द्रिय को सोम अर्थात् ज्ञान का पान करने हारा कहा है। "समिधं सोम्याहर" हे सोम्य! शिष्य! समिधा ले आओ। इस स्थान में ज्ञानपिपासु शिष्य भी सोम्य कहे गये हैं। ब्रह्मविदिव भासि सोम्य (छा० उप० ४।९।२) यहां भी शिष्य को ही सम्बोधन किया गया है। उपनिषदों में सोम्य शब्द का बहुत ही अधिक प्रयोग आता है। गीता में भी—भूत्वा पुनः सोम्यवपुर्महात्मा। इत्यादि प्रयोग हैं।

इतने उद्धरणों से पाठक महोदय अवश्य सोम शब्द के विशेष अर्थों और प्रयोगों को देखकर विचार कर सकते हैं कि वेद साहित्य में सोम विषयक मन्त्रों पर किस रीति से विचार करना चाहिये। विस्तारभय से और अधिक न लिखकर यही कहेंगे कि आप स्वयं सामवेद का स्वाध्याय करें और मंत्रों पर विचार करें।

उषा देवता (१३)

कुछ मन्त्र और सूक्त उषा देवता के भी हैं। यह उषा देवता क्या पदार्थ है इसका निरूपण हम इस स्थान पर विशेष नहीं करना चाहते परन्तु आग्रह करेंगे कि इस विषयक मन्त्रों पर ही हमने विशेष विवरण खोला है, वहां देखलें।

यों तो वेद का विषय बड़ा गम्भीर है। वेद के प्रत्येक शब्द में ज्ञान भरा हुआ है। जिस दृष्टि से विचार करें उस दृष्टि से नये २ सत्य और गूढ़ तत्वों का प्रकाश होता प्रतीत होता है। परन्तु वेदों का स्वाध्याय छूट जाने से वेदमय सरस्वतीरूप कामधेनु के न तो परिपालक ही रह गये हैं और न उस रस का आस्वादन करने हारे भावुक ही रहे हैं, अस्तु।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१४) उपसंहार

उपसंहार में हम पाठकों को इस भाष्य की कुछ विशेषताओं के सम्बन्ध में भी दो एक बात कहना चाहते हैं। वेदमन्त्रों की भाष्यशैली बहुत सरल रक्खी गई है। जहां तक हो सका है वेद के प्रत्येक पद को पृथक् २ कोष्ठों में रखकर धातुज अर्थ को दर्शाते हुए मन्त्र का सरल अर्थ कर दिया है। अग्नि, इन्द्र आदि विशेष देवता वाचक शब्दों को प्रायः यथा स्थान स्पष्ट कर दिया है। केवल अर्थमात्र पढ़ने से ही उसका सरल अर्थ आप से ही आप स्पष्ट हो जाता है। विशेष मन्त्रों पर उपनिषद् आदि प्रमाण ग्रन्थों के उद्धरण देकर भावार्थ भी दर्शाया गया है। जिन शब्दों का विशेष अर्थ किया है उसको टिप्पणी देकर प्रमाणित भी किया गया है। प्रत्येक मन्त्र के साथ अन्य वेदसंहिताओं के जहाँ पाठभेद टिप्पणी में दिये गये हैं वहाँ प्रत्येक मन्त्र के साथ २ अन्य वेदों की प्रतीक भी देदी है।

(१५) सामवेद के प्रतीक संकेत

सामवेद के तीन भाग हैं एक पूर्वार्चिक, दूसरा उत्तरार्चिक और तीसरा मध्यभाग महानाम्नी आर्चिक है। पूर्वार्चिक के ४ भाग हैं (१) आग्नेय काण्ड, (२) ऐन्द्र काण्ड, (३) पवमान काण्ड और (४) आरण्यक काण्ड। ये चारों काण्ड ६ प्रपाठक में बटे हुए हैं। सायण के अनुसार इनको पांच अध्यायों में बांटा गया है। प्रपाठकों में अर्धप्रपाठक और दशतियों का विभाग है। अध्यायों में खण्डों का विभाग है। परन्तु अर्ध प्रपाठक के विभागों में भी दशतियों की संख्या बराबर आगे चलती जाती है। इसलिये पूर्वार्चिक में अर्धप्रपाठकों को हमने अनावश्यकता ही जाना है। उत्तरार्चिक में २१ अध्याय और ९ प्रपाठक हैं। इन प्रपाठकों के भी अर्धप्रपाठक हैं इनमें दशतियों का विभाग नहीं है। प्रत्युत सूक्तों का विभाग है। कई संहिताओं में पूर्वार्चिक भाग में दशतियों की संख्या अलग २ करदी है। इसलिये प्रायः सामवेद के मन्त्र की प्रतीक (पूर्वा०, प्र०, अर्द्ध०, प्र०, दश०, ऋ०) इस रीति से दर्शाते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम निवेदन

वेद के प्रगाढ विद्वानों के समक्ष मेरा यह आलोक भाष्य एक बहुत ही तुच्छ आलोक है जो चक्षुष्मान् शास्त्रालोचक धीमान् पुरुषों की दृष्टि में भी सामान्य दीपकालोक के समान है। यद्यपि नाना विद्यासूर्यों के आलोकों के समक्ष दीपकालोक नगण्य है, तो भी उनके अभाव में दीपकालोक भी लोचनों के लिये पर्याप्त आश्रय है। मार्गमात्र दर्शा देने का प्रयोजन ही इस आलोक से सिद्ध हो सकता है। गंभीर गुहागत तत्वों का प्रदर्शन करने के लिये और भी अधिक विस्तृत सूर्यालोक की आवश्यकता है। पुरातन विद्वानों के चरणचिह्नों पर चलते हुए इस तुच्छजन के आलोक प्रदर्शन में यदि कुछ त्रुटि भी हो गई हो तो मानुष स्वभाव के लिये वह असंगत नहीं, प्रत्युत बालक के गिरने के समान वह भी शोभा ही है। मेरे ग्रन्थ पर दृष्टिपात करते हुए बहुतसे विज्ञगण मेरी त्रुटि देख कर इसलिये प्रसन्न होंगे कि उनको वह बात भी ज्ञात है जो मुझे नहीं ज्ञात है। उनकी इस प्रसन्नता पर मैं भी प्रसन्न होऊंगा यदि वे महानुभाव त्रुटिस्थल पर अपना विशेष ज्ञान मुझे जनाकर महानुभावता प्रकट करें। जिससे अगला संस्करण और भी गुणसम्पन्नरूप में प्रकाशित हो। और यदि केवल अपना पाण्डित्य दिखाने के भाव से या किन्हीं अन्य दुर्भावों से कोई अन्यथा प्रलाप करेंगे और गुणग्रहण की अपेक्षा दोषग्रहण ही करने पर लगे रहेंगे तो ऐसे महानुभावों की कुचोदना पर किसी का वश नहीं और न उससे कोई सत्फल ही प्राप्त हो सकेगा। हम भी कुमारिल के शब्दों में यही कहना चाहते हैं—

आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि।
नहि सद् वर्त्मनागच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥ इति शिवम्।

विद्वानों का अनुचर
जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार.
मीमांसातीर्थ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय संस्करण की भूमिका

वेद जैसे गम्भीर विषयों पर लिखे गये विशाल ग्रन्थों को खरीदने और पढ़ने की प्रवृत्ति जनता में बहुत कम है। इस कारण मुझे यह भी आशा न थी कि इस भाष्य का द्वितीय संस्करण मुझे मेरे अपने इस जीवन में ही देखने का अवसर प्राप्त होगा, परन्तु गुणग्राही सज्जनों ने मेरे प्रयास का बहुत आदर किया। और दो वर्ष के भीतर ही भीतर सामवेदभाष्य का प्रथम संस्करण समाप्त हो गया तो भी वेदभाष्य के सहस्रों ग्राहक उसको लेने के लिये उत्सुक हो रहे हैं वे आर्य साहित्यमण्डल के कार्यालय में निरन्तर सामवेदभाष्य का तकाज़ा करते ही रहते हैं। इसी प्रयोजन से सामवेद भाष्य का द्वितीय संस्करण भी शीघ्र ही छापना पड़ा।

इस अवसर पर मुझे अपने सामवेदभाष्य को पुनः दोहरा लेने का उत्तम अवसर प्राप्त हुआ। मेरे विद्वान् मित्रों ने तथा कुछ महानुभाव उदार वेदज्ञ विद्वानों ने अपने उदार स्वभाव से ही मेरे भाष्य की प्रकाशन, मुद्रण, प्रूफ संशोधन आदि की नाना छोटी मोटी त्रुटियां दर्शाई थीं, उसके अतिरिक्त अनेक त्रुटियां मुझे स्वयं उसमें प्रतीत हुईं उन सब त्रुटियों को इस संस्करण में दूर करने का यत्न किया है। मैं उन मित्रों और महानुभावों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपने श्रम से मुझे मेरी त्रुटियां दर्शाकर अपनी महानुभावता प्रकट की है। और आगे भी समस्त विद्वानों से यही प्रार्थना है कि वे बराबर मुझे मेरी त्रुटियां और अपने विशेष २ वेद विषयक बहुमूल्य विचार से सूचित करते रहें, जिससे उत्तरोत्तर संस्करण उनके विचारों से समृद्ध और परिमार्जित होते जावें।

केसरगंज, अजमेर.
माघ सुदी दशमी, १९८७ वि०

विद्वानों का अनुचर
जयदेव शर्मा
विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय संस्करण की भूमिका

सर्व भूगोलव्यापी युद्ध की विषमस्थिति के कारण सामवेदभाष्य के समाप्त होजाने पर भी हम शीघ्र पुनः संस्करण छापने में असमर्थ थे। तो भी अनेक यत्नों से यह संस्करण वेद-प्रेमियों के हाथों में प्रस्तुत है।

इसमें भी हमने अनेक प्रकार का परिष्कार किया है, अनेक प्रकार की त्रुटियां दूर करने का प्रयास किया है, इसी से कलेवर भी कुछ बढ़ गया है। मेरे अल्पजीवन काल में यह ईश्वर की इच्छा थी कि तृतीय संस्करण हुआ, चतुर्थ संस्करण भी मेरे जीवनकाल में परिष्कृत होकर छापने का अवसर होगा तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

ज्ञानभवन आदर्शनगर
ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा
२००३ वि०

विद्वानों का अनुचर
जयदेव शर्मा विद्यालंकार
मीमांसातीर्थ.

ग्रन्थ संकेत सूची

ऋग्वेद = ऋ० । यजुर्वेद = यजु० ।
सामवेद = साम० । अथर्ववेद = अथर्व० ।
ऐतरेय ब्राह्मण = ऐ० ब्रा० । कौषीतकी ब्राह्मण = कौ० ।
शतपथ ब्राह्मण = श० ब्रा० । तैत्तिरीय ब्राह्मण = तै० ब्रा० ।
जैमिनीय तलवकार उपनिषद् = जै० उ० । गोपथ पूर्वभाग = गो० पू० ।
गोपथ उत्तरभाग = गो० उ० । सायण = सा०
सत्यव्रतसामश्रमी = स० सा० । महर्षिदयानन्द = द० ।
उणादि = उणा० । देवराजयज्वा = दे० य० ।
गीता = गी० । उपनिषद् = उप० ।
छान्दोग्य = छान्दो० । दुर्गाचार्यटीका = दु० टी० ।
निघण्टु = नि०, निघ० । निरुक्त = नि०, निरु० ।
षडविंश = ष० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका विषय-सूची

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामवेद-सूची

पूर्वार्चिकः

आग्नेयकाण्डम् (१—६१)

ऐन्द्रकाण्डम् (६२—२३७)

पावमान काण्डम् (२३८—२९८)

आरण्यकं काण्डम् (२९९—३२६)

महानाम्न्यार्चिकः (३२७—६३१)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरार्चिकः

(३३२—८२१)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

सामवेद-संहिता

पूर्वार्चिकः (छन्द आर्चिकः)

आग्नेयं काण्डम्

प्रथमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्द्धः

प्रथमोऽध्यायः

परमेश्वर की स्तुति

॥ दशतिः १ ॥ १, २, ४, ७, ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ३ मेधातिथिः काण्वः । ५ उशनाः काव्यः । ६ सुदीतिपुरुमीढावाङ्गिरसौ । ८ वत्सः काण्वः । १० वामदेवः ॥ गायत्रीछन्दः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१] अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
१ २र ३ १ २
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥ ऋ० ६ । १६ । १० ॥

भा०—हे अग्ने ! परमात्मन् ! (वीतये[1]) सर्वत्र प्रकाश देने और व्यापक होने और (हव्य-दातये) हव्य अर्थात् दान और भोग योग्य पदार्थों के प्रदान करने के लिये आप हमें (आ याहि) सदा प्राप्त हैं।

२—१. वीतये—वी गति-व्याप्ति-प्रजन-कान्ति-असन-खादनेषु ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप (गृणानः[२]) स्तुति करने योग्य, (होता[३]) सब पदार्थों के देने वाले, यज्ञ में आसन पर होता, उपदेष्टा के समान (बर्हिषि[४]) यज्ञ, आत्मा या ब्रह्माण्ड में (नि सत्सि) विराजमान हैं ।

१४२७) [२] त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
देवेभिर्मानुषे जने ॥ २ ॥ ऋ० ६ । १६ । १ ॥

भा०—हे अग्ने ! परमात्मन् ! (त्वम्) तू आप (विश्वेषाम्) समस्त (यज्ञानाम्) यज्ञों, देव-उपासनाओं का (होता) स्वीकार करने वाला और (देवेभिः[१]) देवों, विद्वानों द्वारा (मानुषे जने) मनुष्य जनों में, यज्ञ में अग्नि के समान (हितः) सर्वोपास्यरूप से है ।

[३] अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥ ऋ० १ । १२ । १ ॥

भा०—हम (विश्ववेदसम्[१]) सर्वज्ञानी, सर्वधनी, सर्वैश्वर (होतारम्) होता, सर्वप्रद, (अस्य) इस (यज्ञस्य) यज्ञ ब्रह्माण्ड के (सुक्रतुम[२]) सुक्रतु, उत्तम कर्त्ता, विधाता और ज्ञाता (अग्निं) अग्नि, सर्वप्रकाशक प्रभु को (दूतं[३]) दूत अर्थात् उपास्यरूप से (वृणीमहे) वरण

२. गृणानः—गॄ स्तुतौ । व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ।

३. होता—दाता । आह्वाता, बुलाने वाला । ईश्वर सबको अपने पास बुलाता है। और संसार में सबको खाने और परोपकार करने के लिये पदार्थ देता है।

४. बर्हिषि—बर्हिः यज्ञः, अन्तरिक्षम्, उदकम्, आसनं, कुशः ।

२—१. देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा । निरु० ।

३—१. वेदस् , वेत्तेरसुन् औणादिः । विद ज्ञाने । वेदो धनं । नि० ३ । २ । १०॥

२. क्रतुः कर्मनाम । नि० २ । १ । प्रज्ञानाम च । नि० ३ । ९ ॥

३. दूतं । दवतेरौणादिकः क्तः । दुनोति गच्छति उपतपति वा स दूतः, बहुकार्यसाधको राजभृत्यो वा । दया० उ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। इसी प्रकार बहुत उत्तम विद्वान् को भी कार्यसाधक दूत रूप से वरण करना चाहिये।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[४] अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया।
१ २ ३ १ २र
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥ ऋ० ६ । १६ । ३४ ॥

भा०—(विपन्यया) विशेष स्तुति द्वारा (द्रविणस्युः[१]) उपासकों के द्रव्य, बल और भक्तिभाव को स्वीकार करने वाला 'अग्नि', प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (समिद्धः) चमकता हुआ, (शुक्रः) शुद्ध, कान्तिमान् (आहुतः) भली प्रकार से स्तुति किया, या स्मरण किया हुआ (वृत्राणि[२]) आत्मा को घेरने वाले वा बढ़ते पापों, विघ्नों और अज्ञान-अन्धकारों को (जंघनद्) नाश करे।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[५] प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्।
२ ३ २ ३ १ २ २र
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥ ऋ० ८ । ८४ । १ ॥

भा०—(वः) तुम्हारे (प्रेष्ठम्) सबसे अधिक प्रिय, (मित्रम् इव प्रियम्) मित्र के समान प्यारे, (अतिथिम्[१]) सर्वव्यापक, अतिथि के समान आदरणीय ईश्वर की (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूं। हे अग्ने! प्रकाशस्वरूप! तू (रथं न वेद्यम्[२]) रथ के समान समस्त पदार्थों को प्राप्त कराने हारा, और रसके समान अनुभव मात्र से जानने योग्य है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[६] त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः।
३ २ ३ १ २र
उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ ६ ॥ ऋ० ८ । ७१ । १ ॥

४—१. छन्दसि परेच्छायां क्यच्। द्रविणमिति बलनाम (नि० २ । ९) धननाम पदनाम च (नि० २ । १०)

२. रक्षःप्रभृतीनि, तमांसि च। सा०। शत्रुकुलानि। मा० वि०।

५—'अग्निम्' इति पाठभेदः, ऋ०।

१. 'अतेरिथिन्' अतिथिः। अभ्यतितो गृहान् इति। नि०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! (त्वं) तू (नः) हमें (विश्वस्याः) समस्त प्रकार के (अरातेः) सुख न देने वाले, दुःखदायी, शत्रु मनुष्य से (महोभिः) उत्तम सुखसाधनों, धनों द्वारा (पाहि) पालन कर, बचा (उत) और (द्विषः मर्त्यस्य) द्वेष करने वाले मनुष्य से भी (पाहि) बचा।

कंजूस स्वामी जो भृत्यों और प्रजाओं का भाग उनको न दे और द्वेषी जो क्रोध या वैर से दूसरे को दण्ड दे, उन दोनों से रक्षा की प्रार्थना है।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[७] एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्ने इत्थेतरा गिरः ।
३ १ २ ३ १ २
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ ७ ॥ ऋ० ६ । १६ . १६ ॥

भा०—हे अग्ने ! हे प्रकाशस्वरूप ! (एहि उ) आ (ते) तेरे लिये (इत्था[1]) इस प्रकार की वैदिक सत्य वाणियों और (इतराः[2] गिरः) उनसे दूसरी, लौकिक, या देववाणी से अतिरिक्त मानुष वाणियों को मैं तेरी स्तुति में (ब्रवाणि) कहूं । उनसे भी तेरी स्तुति किया करूं। (एभिः इन्दुभिः) इन परम ऐश्वर्यों से तू (वर्धासः) महिमामें बड़ा है।

ईश्वर अपने सामर्थ्य, ज्ञान और सौम्य गुणों द्वारा सबसे बड़ा है और वैदिक और लौकिक सब वाणियां उसकी ही स्तुति करती हैं। उनसे उसी प्रभु की महिमा बढ़ती है।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
[८] आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात् ।
२ ३ १ २ ३ २
अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ ८ ॥ ऋ ८ । ११ । ७ ॥

भा०—(ते वत्सः[1]) पुत्र के समान तेरा स्तुतिकर्त्ता, उपासक (ते

७.—१. 'इत्थाः, इति पाठो विवरणसम्मतः । इत्था सत्या । मा० वि० । इत्थेत्यादन्तः सत्यनामसु पठितः । इत्थमित्यस्य छान्दसमलोपे दीर्घं रूपम् ।

२. इतराः सत्यतो अन्याः । मा० वि० ।

८—१. वदेरौणादिकः सः । उणा० ३ । ६२ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन:[२]) तेरे मनन करने योग्य सत्यज्ञान को (परमात् चित् सधस्थात्) परम उत्कृष्ट स्थान से (आ यमत्) वश करता, प्राप्त करता है। हे (अग्ने) अग्ने ! परमेश्वर ! (त्वां कामये) मैं तुझे ही चाहता हूं।

अन्तरात्मा में साक्षात् ब्रह्म से मनन करने योग्य सत्य ज्ञान को प्राप्त करता है. और ईश्वर के प्रति प्रेम प्रकट करता और उसे ही चाहता है।

[९] त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ९ ॥ ऋ० ६ । १६ । १३ ॥

भा०—हे अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! (त्वाम्) तुझे (अथर्वा[१]) अहिंसक, प्रजापति, ज्ञानी विद्वान् (विश्वस्य वाघतः) समस्त ब्रह्माण्डको वहन करने वाले (मूर्ध्नः) मूर्धा स्थान, सर्वोच्च (पुष्कराद् अधि) पुष्कर अर्थात् सबको पुष्ट करने वाले तेरे शक्तिमान् विराट्रूप से ही (निर्-अमन्थत) अरणियों से अग्नि के समान, मथन करके तुझे प्रकट करता है, तेरा ज्ञान करता है।

[१०] अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे।
देवो ह्यसि नो दृशे ॥ १० ॥ [ऋग्वेदे नास्ति]

भा०—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप ! ज्ञान मार्ग में आगे ले चलने हारे ! (अस्मभ्यम्) हमारी (महे, ऊतये) बड़ी रक्षा के लिये (विवस्वद्) विशेष सुखपूर्वक निवास योग्य ऐश्वर्य से युक्त, गृह, यज्ञ आदि को (आ भर) प्राप्त करा। क्योंकि (नः) हमारे (दृशे) देखने और मार्ग दिखाने के लिये (देवः हि असि) प्रकाशमान, विद्वान्, ज्ञानवान्, परम देव तू ही है।

इति प्रथमा दशतिः । इति प्रथमः खण्डः ।

---

२. मन ज्ञाने (भ्वादिः)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ दशतिः २ ॥ १ आयुङ्क्ष्वाहिः । २ वामदेवो गौतमः । ३, ८, ६ प्रयोगो भार्गवः । ४ मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रः । ५, ७ शुनःशेप आजीगर्तिः । ६ मेधातिथिः काण्वः । १० वत्सः काण्वः ॥ गायत्री छन्दः ॥

[११] नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।
अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥ ऋ० ८ । ७५ । १० ॥

भा०—हे अग्ने ! हे (देव)देव ! (कृष्टयः[1]) मनुष्य गण (ते) तुझे (ओजसे[2]) बल के लिये (नमः गृणन्ति) नमस्कार कहते हैं। तू (अमैः[3]) बलों से (अमित्रम्) शत्रु को (अर्दय) पीड़ित कर। भक्त भगवान् से त्राण मांगते और वन्दना करते हैं कि खल दण्डित हों।

[१२] दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् ।
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ २ ॥ ऋ० ४ । ८ । १ ॥

भा०—हे अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! (विश्व-वेदसम् समस्त धनों के स्वामी समस्त ज्ञानसंपन्न,(हव्यवाहम्)समस्त भोग्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाले, (अमर्त्यम्)कभी न मरने वाले, अमृत (दूतम्)दूत के समान परोपकारी, सर्वोपास्य, दुष्टों को पीड़ा देने हारे, (यजिष्ठम्) सृष्टिमय महान् यज्ञ के करने वाले, अथवा सबसे बड़े उपास्य, (वः , तुमको मैं (गिरा) वेदवाणी द्वारा (ऋञ्जसे[1]) अपने अनुकूल करता हूं। अथवा, हे मनुष्यो ! (वः दूतं) आप लोगों के उपास्य, सर्वेश्वर, अमृत रूप देव की (ऋञ्जसे) वाणी से स्तुति करता हूं।

[१३] उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ ३ ॥ ऋ० ८ । १०२ । १३ ॥

११—१. ऋग्वेदे विरूप आंगिरस ऋषिः । कृष्टिरिति मनुष्यनाम । नि० २।३॥ २, ओज इति बलनाम । नि० २ । ६ ॥ ३. रोगैर्बलैर्भयैर्वा । मा० वि० ।

१२—१. ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्मा । नि० ४ । ३ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे अग्ने !(हविष्कृतः) स्तुति और हव्य सम्पादन करने वाले पुरुष की (जामयः गिरः) वाणियां, भगिनियों के समान, एक ही स्थान पर उत्पन्न होने वाली, अथवा सत्य फलको पैदा करने वाली, (देदिशतीः) तेरे गुणों को प्रकट करती हुई (वायोः) सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तेरे ही (अनीके) समीप (उप अस्थिरन्) पहुंचती हैं, अर्थात् तुझ में ही तेरे ही स्वरूप वर्णन में पूर्ण रूप से घटती हैं ।

[१४] उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥ ४ ॥ ऋ० १ । १ । ७ ।

भा०—हे अग्ने ! (दिवे–दिवे) प्रतिदिन (दोषा वस्तः) रात्रि के प्रकाशक सूर्यवत् तेजस्विन् ! (वयम्) हम सब लोग (धिया) अपनी श्रद्धा बुद्धि और सत् कर्म से (नमः भरन्तः) नमस्कार करते हुए या यज्ञकी हवि प्रस्तुत करते हुए (त्वा) तुझको (एमसि) प्राप्त होते हैं ।

[१५] जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ ५ ॥ ऋ० १ । २७ । १० ॥

भा०—हे (जराबोध) स्तुतियों द्वारा ज्ञान करने, एवं प्रकट करने योग्य ! अग्ने ! ज्ञान प्रकाशमय ! (विशे–विशे) प्रजा मात्र के हितके लिये (तत् विविड्ढि) उस परम स्थान या हृदय में आप प्रवेश करो जहां लोग (यज्ञियाय) यज्ञ, आत्मा के योग्य हितैषी, उपास्य, (रुद्राय) दुष्टों को दण्ड करके रुलाने वाले आप ईश्वर के लिये (दृशीकम्) दर्शनीय (स्तोमम्) स्तुति पाठ करते हैं ।

अर्थात् जिस हृदय में कर्मव्यवस्था का भय करके दुष्टों के दण्डकर्ता ईश्वर के लिये स्तुति की जाती है, हे स्तुति द्वारा हृदय में प्रकाशित होने वाले परमात्मन् ! आप भक्ति द्वारा प्रत्येक मनुष्य के उस हृदय में प्रकट हों । फलतः, डर से ईश्वर की स्तुति करने की अपेक्षा सब लोग प्रेम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भक्ति से ईश्वर को हृदय में स्थान दें।

[१६] प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥ ऋ० १ । १९ । १ ॥

भा०—हे अग्ने! हे मार्ग दिखाने हारे प्रभो! तू (त्यं) उस (चारुम् अध्वरम्) सुन्दर, हिंसारहित यज्ञरूप, अमर आत्मा की (गोपीथाय) रक्षा करने एवं, उत्तम ज्ञानानन्द रस पान के निमित्त (प्र हूयसे) पुकारा या याद किया जाता है। तू (मरुद्भिः) विद्वानों या प्राणों द्वारा उनकी साधना से हमारे हृदय में (आ, गहि) प्रकट हो आनन्द रस पान करा।

[१७] अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः।
सम्राजं तमध्वराणाम् ॥ ७ ॥ ऋ० १ । २७ । १ ॥

भा०—हे अग्ने! तू (वारवन्तं अश्वं नै) कष्ट निवारण के साधन रूप बालों से युक्त अश्व के समान (वारवन्तं) कष्ट निवारक साधनों से सम्पन्न, अथवा अज्ञान-नाशक ज्ञानदीप्तियों और विघ्ननाशक साधनों से सम्पन्न और (अध्वराणां सम्राजं तं) हिंसारहित धर्म कार्य, यज्ञों के महान् सम्राट्, उनके प्रकाशक और उनमें स्वयं प्रकाशमान उस तुझ (अग्निं) अग्नि, प्रकाशस्वरूप; अग्रगण्य ईश्वर को (नमोभिः) हृदय के विनयों द्वारा (वन्दध्यै) हम वन्दना करते हैं।

[१८] और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे।
अग्निं समुद्रवाससम् ॥८॥ ऋ० ८ । १०२ । ४ ॥

भा०—(समुद्रवाससम्[1]) समुद्र, महान् आकाश में व्यापक, (शुचिम्) शुद्ध, (अग्निम्) वैद्युत अग्निवत् ईश्वर को (और्वभृगुवत्, अप्नवानवद्) 'और्व भृगु' पृथ्वी के गर्भगत और 'अप्नवान' जलों अर्थात्

१८—१. समुद्र इत्यन्तरिक्षनाम, नि० १ । ३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओषधि रसों में विद्यमान अग्नि के समान आपको धारक, व्यापक, सर्वाधार (आ हुवे) स्मरण करता और जानता हूं।

'और्व भृगु' अग्नि पृथ्वी के गर्भ में रहकर समस्त पदार्थों को अपने ताप से भर्जन करती और पकाती है। 'अप्नवान' अग्नि रसों और ओषधियों में शान्त भाव से रहती है और रस, अम्ल क्षार रूप में प्रकट होती है। उसी प्रकार तेजोमय कान्तिमान् ईश्वर को समस्त ब्रह्माण्ड में सामर्थ्य रूप में सबका आकर्षक धारक, और निर्माता जानना चाहिये।

[१९ अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः।
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥ ९ ॥ ऋ० ८ । १०२ । २२ ॥

भा०—(अग्निम्) अग्नि प्रकाशस्वरूप ईश्वर को (मनसा) हृदय से (इन्धानः) प्रकाशित करता हुआ, (मर्त्यः) मनुष्य (धियम्) श्रद्धा रूप बुद्धि या कर्म को (सचेत) प्राप्त हो। (विवस्वभिः) सूर्य के समान ज्ञानप्रकाशक विद्वानों द्वारा मैं (अग्निम्) उस प्रकाशस्वरूप ईश्वर को (इन्धे[1]) हृदय में प्रज्वलित करता हूं।

ईश्वर के मानस ध्यान से मनुष्य बुद्धि और कर्म को सुधारें, उत्तम विद्वानों के संग से ईश्वर का ज्ञान लाभ करें।

[२०, आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्।
परो यदिध्यते दिवि ॥ १० ॥ ऋ० ८ । ६ । ३० ॥

भा०—(परः दिवि) द्यौलोक से भी परे, सर्वोत्कृष्ट, अति अधिक दूर तक (यत्) जो सूर्य (इध्यते) प्रकाशमान है (आत् इत्) और (वासरम्) दिन को प्रकाश करने वाले जिस (ज्योतिः) सूर्य को लोग (पश्यन्ति) नित्य देखते हैं वह भी (प्रत्नस्य) अति प्राचीन, आदि काल के परम (रेतसः) वीर्यवान्, सर्वोत्पादक जगत् के विधाता ईश्वर

[1] १९—'ईधे' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ही (ज्योतिः) तेज है ।

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति । (कठ उप० २ । १५)

इति द्वितीया दशतिः । इति द्वितीयः खण्डः ।

॥ दशतिः ३॥ १ प्रयोगो भार्गवः । २, ५, भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ३, १० वामदेवो गौतमः । ४, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। ७ विरूप आंगिरसः । ८ शुनःशेप आजीगर्तिः । ९ गोपवन आत्रेयः ।१० प्रस्कण्वः काण्वः ।११ मेधातिथिः काण्वः । १२ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीप आम्बरीषः, त्रित आप्त्यो वा ।१४ उशनाः काव्यः । गायत्री ॥

[२१] अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥ ऋ० ८ । १०२ । ७ ॥

भा०—(वः) तुम्हारे (अध्वराणाम्) यज्ञों, हिंसारहित परोपकार के उत्तम कार्यों के (नप्त्रे) बन्धु सहायक, (सहस्वते) बलशाली. (वृधन्तम्) तुमको बढ़ाने वाले, (पुरुतमम्) सबसे श्रेष्ठ इन्द्रियों के स्वामी. अन्तरात्मा के समान (पुरुतमम्) और महान् लोकों के स्वामी सर्वोत्तम पालक पोषक (अग्निम्) अग्नि, परमेश्वर को (अच्छ) सबसे श्रेष्ठ जानो, उसकी साक्षात् शरण लो ।

[२२] अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद्विश्वं न्यत्रिणम् ।
अग्निर्नो वंसते रयिम् ॥ २ ॥ ऋ० ६ । १६ । २८ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि, अग्रणी राजा के समान, ईश्वर (तिग्मेन, शोचिषा) अपने तीक्ष्ण तेज से (विश्वम) समस्त (अत्रिणम्) प्रजा के धन और प्राण खाजाने वाले दुष्टों को (नि यंसत्) नियमन करता है, कर्मफलरूप सुखदुःख में भी व्यवस्था में रखता है। और वही (अग्निः) अग्नि, परसंतापक (नः) हमें (रयिं) धन और सुखमय

२२—'वनते' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन (वंसते[1]) देता है. ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

[२३] अग्ने मृड महाँ अस्यय आ देवयुं जनम् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २

इयेथ बर्हिरासदम् ॥ ३ ॥ ऋ० ४ । ९ । १ ॥

भा०—हे अग्ने ! परमेश्वर ! तू (मृड) हमें सुखी कर । तू (महान् असि) बड़ा है । (देव-युम्) विद्वान् और देव के प्रिय (जनम्) पुरुष को (अयः[1]) तुम प्राप्त होते हो । और ईश्वर (बर्हिः) यज्ञ, उपासना में (आसदम्) उपस्थित होने के लिये (इयेथ) सदा प्राप्त होते हो ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

[२४] अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः ।

१ २ ३ १ २

तपिष्ठैरजरो दह ॥ ४ ॥ ऋ० ७ । १५ । १३ ॥

भा०—हे (देव) उपास्य देव ! प्रभो ! राजन् ! हे (अग्ने) हे अग्ने ! स्वप्रकाश ! (नः) हमें (अंहसः) पाप और पापी (रीषतः) हिंसक शत्रु से (रक्ष) रक्षा कर, बचा और (अजरः) कभी बलहीन न होने वाला, सदा बलशाली तू (तपिष्ठैः) तपाने वाले तेजों, शस्त्रों से उसको (प्रति दह स्म[1]) भस्म कर डाल ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

[२५] अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

अरं वहन्त्याशवः ॥ ५ ॥ ऋ० ६ । १६ । ४३ ॥

भा०—हे देव ! हे अग्ने ! (ये) जो (ते) तेरे (साधवः) साधु स्वभाव वाले या योग साधना करने वाले (अश्वासः) अश्व के समान गतिशील. इन्द्रियां, व आज्ञाकारी, ज्ञानी साधक हैं, उनको (युङ्क्ष्व) लगा, योगाभ्यास में प्रवृत्त कर । वे गतिशील, ज्ञानी,(आशवः) हरएक कार्यमें शीघ्र सिद्धि प्राप्त करने वाले, साधक (अरम्) पर्याप्त उत्तम रूप (वहन्ति[1]) ज्ञान और उत्तम कार्य के भार को धारण करते और

२३—'असि य ईम्' इति ऋ० ।

२४—'प्रति ष्म' इति, ऋ० । २५—१. 'युक्ष्वा', 'वहन्ति मन्यवः' इति ऋ० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य तक पहुंचाते हैं।

[२६] नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम्।
सुवीरमग्न आहुत ॥ ६ ॥ ऋ० ७ । १५ । ७ ॥

भा०—हे (नक्ष्य) सब के सेवन योग्य शरण योग्य! हे (विश्पते) समस्त प्रजा के प्रति पालक! हे (आहुत!) सब से पुकारे और बुलाये और याद किये गये तथा हवि, भक्ति द्वारा आदर किये गये, पूजित! हे (अग्ने) अग्ने! (द्युमन्तं) प्रकाशस्वरूप (सुवीरम्) उत्तम सामर्थ्य वान्, उत्तम मार्ग में सब को प्रेरने हारे! तेरा (वयम्) हम (धीमहे[1]) ध्यान करते हैं।

[२७] अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥ ७ ॥ ऋ० ८ । ४४ । १६ ॥

भा०—(अयम्) यह (अग्निः) अग्नि (मूर्धा) सब का शिरोमणि (दिवः ककुत्) द्यौलोक या सूर्य के ककुद् अर्थात् सर्व श्रेष्ठ, सर्वोपरि भाग के समान उत्तम, वहन करने वाला, आश्रय और (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी का पति, स्वामी है। वही (अपाम्) सब लोकों के (रेतांसि) बीजभूत समस्त स्थावर और जंगम प्राणियों के बीजों को (जिन्वति) तृप्त करता उत्पन्न करता है, जीवन देता है।

[२८] इम मू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्।
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ८ ॥ ऋ० १ । २७ । ४ ॥

भा०—हे अग्ने! (त्वम्) तू (इमम्) इस (नव्यांसम्) नवीन, सम्पन्न, अति स्तुत्य, (सनिम्) अन्न आदि के समान सेवनीय और ऐश्वर्य के दाता (अस्माकम्) हमारे (गायत्रम्) प्राणों की रक्षा करने वाले साधन, एवं छन्द ज्ञान को (देवेषु) देवों, पांच भूतों, इन्द्रियों के सम्बन्ध में, वा विद्वानों में (प्र वोचः) उत्तम रूप से कह, प्रकट कर।

२६—१. 'देव धीमहि' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२९।तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिर ।
स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥ ऋ० ८ । ७४ । ११ ॥

भा०—हे अग्ने ! (तं, त्वा) उस पूर्व प्रकारसे स्तुत तुझको (गोपवनः) वाणियों और इन्द्रियों को वश करने वाला पुरुष (गिरा) अपनी वाणी से (जनिष्ठद्) प्रकट करता है . हे (अंगिरः) प्रकाशस्वरूप या अंगों में रस या बल के समान विद्यमान अग्ने ! हे (पावक) मल पाप आदि छुड़ाकर पवित्र करनेहारे ! (सः) वह तू हमारी (हवम्) स्तुति को (श्रुधि) श्रवण कर !

[३०] परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद् रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥ ऋ० ४ । १५ । ३ ॥

भा०—(वाजपतिः[१]) बल वीर्य, अन्न ज्ञान का स्वामी (कविः[२]) क्रान्तदर्शी, मेधावी, (अग्निः) अग्नि परमेश्वर (दाशुषे) दान करने वाले को (रत्नानि) रमणीय पदार्थ, (दधत्) देता हुआ, (हव्यानि) हवन करने योग्य पदार्थों और भक्तिपूर्वक स्तुति वचनों को (परि अक्रमीत्) स्वीकार करता है।

[३१] उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ११ ॥ ऋ० १ । ५० । १॥

भा०—(केतवः[१]) ज्ञान करने, कराने वाले, रश्मियों के समान प्रज्ञाएं या विद्वानगण, (सूर्यम्) सूर्य के समान प्रकाशमान, समस्त संसार के उत्पादक उस सविता, (जात-वेदसं) सब पदार्थों के जानने हारे या वेदों के मूल कारण (त्यं उ) उस (देवम्) परमात्मदेव को ही

२९—'यं त्वा' इति ऋ०।अङ्गिराः शरीरस्थितहेतोरशितपीतरसस्य कर्ता ।
३०—१. वाज इत्यन्नाम । नि०२।७। २. कविरिति मेधावि नाम । नि०३।१५।
३१—१. केतुरिति प्रज्ञानाम् । नि० ३ । ९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उद् वहन्ति) धारण करते हैं कि (विश्वाय) समस्त संसार तुमको (दृशे) देख ले, जान ले, अथवा उसके प्रकाश से हम समस्त जगत् को देखें।

सब विद्वान् उसे ज्ञान का मूलकारण और सब प्राणियों का प्रेरक, सबसे ऊपर बतलाते हैं कि सब उसको जानलें और उसके दिये ज्ञान से स्वयं भी सब जगत् के कार्य व्यवहारों को जानें।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
[३२] कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे।
३ १ २ ३ १ २
देवममीवचातनम् ॥ १२ । ऋ० १ । १२ । ७ ॥

भा०—हे पुरुष! तू उस (कविम्) क्रान्तदर्शी, मेधावी, सर्वज्ञ (अध्वरे सत्य-धर्माणम्[1]) यज्ञ में, जगत् में सत्य धर्मों और धारण करने योग्य क्रिया शक्तियों को धारण करने वाले, (देवम्) दिव्यगुणों से युक्त, दाता सर्वद्रष्टा (अमीव-चातनम्) दुःखदायी रोगों का नाश करने वाले (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की (उप स्तुहि) दत्तचित्त होकर स्तुति कर, उसके गुणों का वर्णन कर।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३३] शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये।
२र ३ १ २
शं योरभिस्रवन्तु नः ॥ १३ ॥ ऋ० १० । ९ । ४॥

भा०—(नः) हमारे लिये (देवीः) दिव्यगुणों से युक्त जल (अभिष्टये[1]) हमारे अभिलषित सुख कार्यों के लिये (शम्) सुखकारी, कल्याणकारी हों (नः, पीतये, शम्) हमारे पान करने के लिये भी सुखकारी हों। (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी होकर ही (अभिस्रवन्तु) सब ओर से बहें और सुखों की वर्षा करें।

(देवीः) सर्व सुखदाता प्रभु की समस्त व्यापक शक्तियां वा तन्मय

३२—१. सत्यकर्माणं। मा० वि०।

३३—१. (द्वि०) 'आपो भवन्तु', इति ऋ०। १. अभिगमाय, अभिगमनं स्नानादिभिः तत्पुनरासेचनम्। मा० वि०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें सर्व सुखदायी पदार्थ देने, हमारे पालन करने के लिये हमें शान्ति-कारक हों और हमें सदा प्राप्त हों।

[३४। कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते।
गोषाता यस्य ते गिरः ॥ १४ ॥ ऋ० ८ । ८४ । ७ ॥

भा०—[प्रश्न] हे (सत्-पते) सज्जनों के प्रतिपालक ! तुम (नूनम्) निश्चय से (कस्य) किसके (धियः) कर्मों और स्तुतियों और मनः-संकल्पों को (परिणसि) बहुधा (जिन्वसि[1]) पूर्ण करते, स्वीकार करते हो ?[उत्तर] (यस्य) जिसकी (ते गिरः) तेरे निमित्त प्रकट हुई वाणियां (गो-साता) अपनी इन्द्रियों को वश करने के लिये हैं।

जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को जीतने के लिये ईश्वर स्तुति, उपासना प्रार्थना करते हैं ईश्वर उनकी मनोकामनाएं पूर्ण करते हैं।

इति तृतीया दशतिः । इति तृतीयः खण्डः ॥

॥ दशतिः ४ ॥ १ शंयुर्बार्हस्पत्यः ३ शंयुस्तृणपाणिर्वा । भर्गः प्रागाथः । ४ वसिष्ठो मैत्रावरुणः । ५ भर्गः प्रागाथो भरद्वाजो वा । ६ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ ७ तृणपाणिः । ८ विरूपः । ९ शुनःशेप आजीगर्तिः । ८, ९ भर्गः प्रागाथो वा । १० सौभरिः काण्वः ॥ बृहती ॥

[३५] यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१॥

ऋ० ६ । ४८ । १ । ७०३॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोग (दक्षसे) बलशाली, सब

३४—१, (प्र०) परिणसः', (द्वि०) 'दम्पते' इति च ऋ० । १. परिणसि इति बहुनाम, (नि० ३ । १)

३५—१. सुपां सुलुक् इति सप्तम्याःलुक् (पा० ७ । १ । ३९) वीप्सायां द्विर्वचनम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापों को भस्म करने हारे, सर्वशक्तिमान् (अग्नये) अग्नि, परमेश्वर के (यज्ञा-यज्ञा[1]) प्रत्येक यज्ञ में और (गिरा-गिरा च) प्रत्येक वेद-वाणी से गुण कीर्त्तन करो ।(वयम्) हम भी (अमृतम्) अमृत,मृत्यु से रहित (जात-वेदसम्) वेदों के एकमात्र उत्पन्न करनेहारे सर्वज्ञ,परमेश्वर को (प्रियं मित्रं न) प्रिय मित्र के समान (प्र शंसिषम्) कीर्त्तन करें ।

[३६] पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥२

ऋ० ८ । ६० । ६ । १५४४ ॥

भा०—हे अग्ने ! परमेश्वर ! (एकया[1]) एक वेदरूप वाणी से (नः पाहि) हमारी रक्षा कर, पालन कर । (उत) और (द्वितीयया[2]) दूसरी वेदमयी वाणी से (पाहि) पालन कर (तिसृभिः[3]) तीनों (गीर्भिः) वेदवाणियों से (पाहि) पालन कर । हे (ऊर्जाम् पते) सब अन्नों और बलों के अधिपते ! हे (वसो) सब के भीतर बसने और सबको बसाने वाले वसो ! (चतसृभिः[4]) चारों वेदवाणियों से (नः पाहि) हमारा पालन कर ।

ज्ञान, विज्ञान, क्रिया और उपासना इन चार का पृथक् २ निरूपण करने से ऋग्, अथर्व, यजुः, साम चार वेद हैं । प्रत्येक से प्रजाओं का पालन करना ही मन्त्र का अभिप्राय है ।

[३७] बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत्पावक दीदिहि ॥३७

ऋ० ६ । ४८ । ७ ॥

३६–१. 'ऋ -लक्षणया' २. यजुर्लक्षणया ३. ऋगयजुः सामलक्षणाभिः ४. ऋगयजुः सामनिगदलक्षणाभिः । मा० वि० ।

३७—'रेवतःशुक्र दीदिहि द्युमत्पावक' इति ऋ० । दीदिहीति वैदिको धातुर्दीप्ति कर्मा ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (देव) दानादि गुणसम्पन्न ! (यविष्ठ्य) सबसे महान् युवतम! सब से अधिक यौवन सम्पन्न, कभी निर्बल न होने वाले, हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! हे (रेवत्) समस्त धनों के स्वामिन् ! हे कान्तिमन् ! हे (पावक) सबको अपने तेज से पवित्र करने वाले ! तू (शुक्रेण) निर्मल (शोचिषा) तेज से (भरद्वाजे) ज्ञान और बल वीर्य को धारण करने वाले पुरुष में (समिधानः) विशेष रूप से प्रदीप्त होता हुआ, (बृहद्भिः) बड़े (अर्चिभिः) कान्तियों ज्वालाओं, तेजों से (दीदिहि) प्रकाशमान हो ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
[३८][1] त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ।।४।।
ऋ० ७ । १६ । ७ ॥

भा०—हे अग्ने परमेश्वर ! हे (स्वाहुत) उत्तम रीति से यज्ञमें उपासित ! (सूरयः) विद्वान् लोग जो सबकी मति को प्रेरित करते हैं वे (प्रियासः) प्रिय (सन्तु) हों । (यन्तारः) दान करने वाले या (जनानां) प्रजाओं को (यन्तारः) नियम-व्यवस्था में रखने वाले (ये) जो (मघवानः) धन-ऐश्वर्यसम्पन्न हैं और जो (गोनाम्) गौओं, इन्द्रियों और वेदवाणियों से (ऊर्वम्) समूह को (दयन्त) पालन करते, वशमें रखते और औरों को दान करते हैं वे भी सर्वप्रिय हों ।

यहां 'गो' शब्द तत्सम समस्त उपकारक पशुओं का प्रतिनिधि है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३९] अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ।५।
ऋ० ८ । ६० । १९ ॥

भा०—हे (देव) देव ! हे अग्ने ! हे (जरितः) स्तुति या उप-

३८—'जनानामुर्वान्' इति ऋ० ।

३९—'तेपानो', 'गृहपतिः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश करने हारे ! तू (विश्पतिः) प्रजा का स्वामी है । (रक्षसः) राक्षसों, दुष्ट पुरुषों को नित्य (तपानः) सन्ताप देने हारा है । हे (गृहपते) ब्रह्माण्ड रूप गृह के स्वामिन् ! तू गृहपति के समान (अप्रोषिवान्) कभी प्रवास में न रहने वाला, सदा विश्व में विद्यमान (दिवस्पायुः) द्यौ-लोक के सूर्यादि लोकों की रक्षा करने हारा, (दुरोणयुः) सबके गृहों या देहों के बीच हृदय में स्थित एवं सब जीवों की मंगल कामना करने वाला, तू ही (महान् असि) सबसे बड़ा है ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
[४०] अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥६॥
ऋ० १ । ४४ । १ ॥ १५८०

भा०—हे अग्ने ! (त्वं उषसः) तू उषा का (विवस्वत्) वास करने योग्य, विविध सुखों, ऐश्वर्यों का साधक एवं स्वामी (दाशुषे) यज्ञादि परोपकार करने वाले पुरुष को (चित्रं राधः) नाना प्रकार का ज्ञान (आ वह) प्राप्त करा । हे (अमर्त्य) मरणरहित, नित्य ! हे (जात-वेदः) समस्त उत्पन्न पदार्थों में निवास करने वाले सबको जानने वाले, वेदों के मूल कारण (त्वं) तू (अद्य) आज (उषर्बुधः) सूर्योदय के साथ ज्ञानसम्पन्न एवं जागृत होने वाले (देवान्) प्रकाश-किरणों के तुल्य इन्द्रियगण व विद्वानों को (दाशुषे) इस दाता मनुष्य को (आ वह) पुनः प्राप्त करा ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
[४१] त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
३ २ ३ १ ३ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ २र
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ७।
ऋ० ६ । ४८ । ६ ॥ १६२३

भा०—हे (वसो) सबको बसाने वाले ! अग्ने ! (त्वं) तू (चित्रः) नाना शक्तिसम्पन्न, दर्शनीय, (ऊत्या) अपने रक्षा-सामर्थ्य से (राधांसि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनों, बलों, सामर्थ्यों को (नः चोदय) हमारे प्रति प्रेरित कर, हमें दे। (त्वं) तू (अस्य) इस (रायः) धन–ऐश्वर्य का (रथीः) रथ में बैठे महारथी के समान विजेता, या रस ग्रहण करनेहारा (असि) है और तु (नः) हमारे (तुचे) सन्तान के लिये (गाधं तु) प्रतिष्ठा ऐश्वर्य को भी (विदाः) प्राप्त करा।

[४२] त्वमित् सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः।
त्वां विप्रासःसमिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः॥८

ऋ० ८। ६०। ५॥

भा०—हे अग्ने ! हे (त्रातः) रक्षा करने हारे ! (त्वम् इत) तू ही (सप्रथाः[1]) सब प्रकार से विख्यात है। तू ही (ऋतः) सत्य, ज्ञान-स्वरूप, (कविः) मेधावी, क्रान्तदर्शी है। हे (दीदिवः[2]) देदीप्यमान, तेजःस्वरूप ! हे (समिधान) प्रकाशमान ! तुझको ही (वेधसः) स्तुति करने हारे (विप्रासः) विद्वान् लोग (आ विवासन्ति) भजन, कीर्त्तन करते और तेरे गुणों को प्रकट करते हैं।

[४३] आ नो अग्ने वयोवृधꣳ रयिं पावक शंस्यम्।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहꣳ सुनीती सुयशस्तरम्॥९

ऋ० ८। ६०। ११॥

भा०—हे अग्ने ! हे (पावक) पवित्र करने हारे ! (नः) हमें (शंस्यम्) प्रशंसा के योग्य, (वयः-वृधम्) आयु को बढाने वाला, (रयिम्) धन-ऐश्वर्य और बल (रास्व) दे। हे (उपमाते) ज्ञान सम्पन्न, हे सृष्टि के कर्त्ता ! (सुनीती) उत्तम धर्म की नीति से (नः) हमें (पुरु-स्पृहम्) जिस धन को बहुत लोग चाहते हैं और (सु-यश-

४२—१. 'सप्रथाःसर्वतःपृथुः।नै० ६।२।७। २. दीदिव : दानवन् इति। मा० वि०।
४३—'स्वयशस्तरम्' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तरम्) जिसके प्राप्त करने से उत्तम यश भी प्राप्त होता है वह (रास्व) दे।

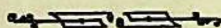
[४४] यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१०॥

ऋ० ८ । १०३ । ६ । १५८३॥

भा०—(यः) जो अग्नि, ईश्वर (विश्वा वसु) सब प्रकार के वास करने योग्य, जीवनोपयोगी धन (दयते) दान करता है या सब वास करने वाले प्राणियों की रक्षा करता है वह (होता) सबको अन्न आदि पदार्थ देने वाला (जनानाम् मन्द्रः) और सब प्राणधारी जन्तुओं को आनन्द देने हारा है। (अस्मै) इस (अग्नये) अग्नि के लिये (मधोः) मधु, ऋग्वेद के (स्तोमाः) स्तुतिपूर्ण मन्त्र (प्रथमानि) उत्तम या सबसे पूर्व प्रस्तुत (मधोः पात्रा न) मधु से पूर्ण मधुपर्क के पात्रों के समान ही (प्र यन्तु) पुरस्कार में प्रस्तुत किये जायें।

उस भगवान् की सबसे प्रथम स्तुति करनी चाहिये जो समस्त प्राणियों की रक्षा करता, सबको अन्न देता और आनन्द देता है।

इति चतुर्थी दशतिः । इति चतुर्थः खण्डः ।



॥ दशतिः ५ ॥ १ वसिष्ठो मैत्रावरुणिर्वामदेवो वा । २ भर्गः प्रागाथः । ३. ७ सौभरिः काण्वः । ४ मनुर्वैवस्वतः । सुदीतिपुरुमीढौ तयोर्वान्यतरः आंगिरसौ । ६ प्रस्कण्वः काण्वः । ८ मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च काण्वौ । ९ विश्वामित्रो गाथिनः । १० कण्वो घौरः ॥ बृहती ॥

[४५] एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥

ऋ० ७ । १६ । १ ॥ ७४९

भा०—हे मनुष्यो ! (एना) इस (नमसा) अन्न द्वारा (ऊर्जः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नपातं) बलको क्षीण न होने देने वाले, (प्रियम्) सबसे उत्तम, प्यारे (चेतिष्ठम्) सबसे अधिक ज्ञानवान् और ज्ञान कराने हारे, (अरतिम्) सर्वव्यापक स्वामी, (सु-अध्वरं) उत्तम, हिंसा से रहित, जो न मारे, न मरे, नित्य (विश्वस्य दूतम्) समस्त संसार को ज्ञान का संदेश देने वाले या सबके स्वयं संताप-निवारक, उपास्य और (अमृतम्) स्वयं नित्य, अविनाशी (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का (नमसा) नमस्कार पूर्वक (आ हुवे) स्मरण करता हूं ।

[४६] शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्त्तास इन्धते ।
अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ।२।

ऋ० ८ । ६० । १५ ॥

भा०—हे अग्ने ! परमेश्वर ! तू (वनेषु) जंगलों में अग्नि के समान, देहों में जीव के समान, सब प्राणियों के आत्माओं में और (मातृषु) माताओं के गर्भों और भूमियों में चेतन, बीजरूप से (शेषे) प्रसुप्त होकर व्याप्त रहता है । (त्वा) तुझको (मर्त्तासः) मरणधर्मा, देहवान् प्राणिगण (इन्धते) प्रदीप्त करते, प्रकट करते, तेरा ज्ञान करते हैं । तू (अतन्द्रः) आलस्य से रहित होकर (हविष्कृतः) हवि सम्पादन करने वाले पुरुष के (हव्यम्) प्रस्तुत किये ज्ञान को (वहसि) धारण करता है । (आत् इत) और अनन्तर, तू ईश्वर (देवेषु) देवों, विद्वानों और जीवों और इन्द्रियों के बीच में सबसे उत्कृष्ट होकर आत्मरूप में (राजसि) प्रकाशित होता है ।

[४७] अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ।३।

ऋ० ८ । १०३ । १ ॥ १५१५

४६–'मान्नोः', 'हव्यं' । इति ऋ० । ४७– नक्षन्त नो गिरः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(गातु-वित-तमः[1]) समस्त मार्गों, लोकों को भली प्रकार जानने वाला, पृथिवी का उत्तम ज्ञाता, वह अग्नि (अदर्शि) प्रकट होता है (यस्मिन्) जिसमें, जिसके बल पर दीक्षित लोग (व्रतानि[2]) अनेक शुभकर्मों और संकल्पों को (आ दधुः) धारण करते हैं। उस (जातम्) उत्तम प्रकार से प्रकट होने हारे, (आर्यस्य वर्धनं) श्रेष्ठ पुरुष की उन्नति करनेहारे, (अग्निम्) अग्नि, परमेश्वर को (नः गिरः) हमारी वाणियां (उप सु नक्षन्तु[3] उ) अवश्य भली प्रकार प्राप्त हों।

[४८] अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥४

ऋ० ८।२७।१॥

भा०—(उक्थे) उक्थ नाम यज्ञ में (अग्निः) अग्नि, ज्ञानी विद्वान् (पुरोहितः) पुरोहित होता है और (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञ में (ग्रावाणः) सोमसम्पादन के लिये, एवं ज्ञानयुक्त कर्म सम्पादन के लिये विद्वान् पुरोहित नियुक्त होते हैं और (बर्हिः) कुशा लाई जाती है। हे (मरुतः) देवगण, विद्वानों, प्रजाजनो, अध्यक्ष लोगो! हे (ब्रह्मणस्पते) वेदवित्, सब विद्वानों के मुख्य! हे (देवाः) विद्वान् लोगो! (ऋचा) ऋग्वेद के अनुसार (वरेण्यम्) सबसे अधिक वरण करने योग्य (अवः) रक्षा या शरण को (यामि[1]) मैं प्राप्त करूं।

[४९] अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्।
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥५

ऋ० ८।७१।१४॥

---

१. गातुरिति पृथिवीनाम। नि० १।१।

२. व्रतमिति कर्मनाम। नि० २।१। ३. नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा। नि० २।१८।

४८- 'मरुतो ब्रह्मणस्पतिर्देवान्' इति ऋ०। १. यामिइतियाच्ञाकर्मसुपठितम्। नि० ३।१९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे मनुष्य ! (शीर-शोचिषम्[1]) सुप्त ज्योति वाले, (अग्निं) अग्नि, परमेश्वर को (अवसे) अपनी रक्षा, पालन के लिये (गाथाभिः) नाना प्रकार के वेदमंत्रों और विज्ञान युक्त कथाओं से (ईडिष्व) वर्णन कर । हे (पुरुमीढ[2]) और बहुत ज्ञान से सिंचे ! विद्या-सम्पन्न पुरुष ! (अग्निम्) अग्नि, ज्ञानवान् का आश्रय (राये) धनादि विभूति प्राप्ति के लिये ले । (श्रुतम्) उसी प्रसिद्ध या बहुश्रुत विद्वान् अग्नि ज्ञानी के समान विद्वानों के उपदेशों द्वारा श्रवण करने योग्य प्रभु को (नरः[3]) नेता और नरनारी भी अपना आश्रय बनाते हैं। (सु-दीतये) प्रकाश करने के निमित्त भी वह (अग्निः) अग्नि ही (छर्दिः) दीप्तिमय प्रकाश है । अथवा (छर्दिः सुदीतये अग्निः) घर को प्रकाशित करने के लिये दीपक के समान भी वही ज्ञानमय प्रभु हृदय, गृह और ब्रह्माण्ड का भी प्रकाशक है ।

      ३ १ २   ३ १ २   ३ १   २   ३ १ २
[५०] श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
१   २   ३ १ २   ३   १ २ ३ १   २ ३ १ २   ३ २
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ॥६

ऋ० १ । ४४ । १३ ॥

भा०—हे (श्रुत्कर्ण) श्रवण करने में समर्थ, कर्णइन्द्रिय से सम्पन्न अग्ने ! ज्ञानवन् ! (श्रुधि) आप हमारा निवेदन सुनो । (स-यावभिः) समान गति, ज्ञान से सम्पन्न (वह्निभिः) कार्यभार को उठाने में दक्ष,

४९—'अग्निः सुदीतये छर्दिः' इति ऋ० ।

1. शीरं अनुशायिनमिति वा आशीनमिति वा इति । निरु० ४ । २ । १४।।
2. हे पुरुमीढ ! मदीयान्तरात्मन् ! इति मा० वि० ।
3. नर इति मनुष्यनाम । नि० २।३ । नरं नराकारम् इति मा० वि० ।
4. 'छर्दि छर्द संदीपने चुरादिः ।

५०—आसीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं प्रकाशमान (देवैः) देवों के साथ (मित्रः) मित्र. सबको स्नेह करने वाला, (अर्यमा) न्यायकारी, स्वामी के पद पर स्थित, (प्रातः-यावभिः) प्रातःकाल देवयजन स्थान में आने वाले विद्वानों के सहित (अध्वरे बर्हिषि) हिंसारहित यज्ञ एवं मान आदर योग्य उत्तम आसन पर (आ सीदतु) विराजमान हो।

१ २र ३ २ ३ २उ २ ३ १ २
[५१] प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ।७

ऋ० ८ । १०३ । २ । १५१७ ॥

भा०—(दैवोदासः अग्निः) द्युलोक में उत्पन्न होने वाला अग्नि (देवः) प्रकाशमान होकर (इन्द्रः न) चमचमाते विद्युत् या सूर्य के समान (मज्मना[1]) बलपूर्वक (मातरं पृथिवीम् अनु) समस्त प्राणियों की माता पृथिवी की ओर (प्र वि वावृते) नाना प्रकार से ढक रहा है, उस पर जालसा बिछा है और (नाकस्य) अन्तरिक्ष के (शर्मणि) आश्रय में (तस्थौ) स्थिर है।

अर्थात् सूर्यलोक से आया तेजःप्रभाव वेग से पृथिवी पर गिरता है और वायु में लीन होकर पृथिवी को छाये रहता है। सूर्य से निकलते हुए जीवन के मूलकारण 'आयनूज़' (Ions) पृथिवी माता पर पहुंचते हैं। यही वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है।

ईश्वर पक्ष में—(दैवोदासः अग्निः) तेजोमय परमेश्वर के आश्रयमें विद्यमान ज्ञानवान् (देवः) स्वयंप्रकाश (इन्द्रः न) विद्युत या सूर्य के समान जीव (मज्मना) अपने बल से (मातरम् पृथिवीम् अनु) सब प्राणियों के उत्पन्न करनेवाली माता पृथिवी पर (प्र वि वावृते) विशेष

५१—'अग्निर्देवां 'नाकस्य सानवि' इति ऋ० । 'मय्मना' इति बहुत्र, प्रायः गानग्रन्थेषु । १. मज्मनेति बलनाम । नि० २ । ९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से रहता है और पुनः (नाकस्य) नाक. स्वर्ग, सुखमय, आनन्द-मय मोक्ष के (शर्मणि) आश्रय में (तस्थौ) विराजता है।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
[५२] अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
३ १ २ १ ३क २र ३ २उ ३ १ २
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥८॥

ऋ० ८ । १ । १८ ॥

भा०—हे अग्ने ! (ज्मः[1]) पृथिवी (अध वा) और (बृहतः) विशाल, सब पर आच्छादित, (रोचनात्) कान्तिमान् (दिवः) सूर्य-मण्डल के (अधि) ऊपर भी (अया) इसी (तन्वा) रूप से (वर्द्धस्व) तू सर्वत्र फैला हुआ है । हे (सुक्रतो) सुन्दर संसार के बनाने वाले कारीगर ! हे सर्व श्रेष्ठ ज्ञानवन् !(गिरा) अपनी वेदमय ज्ञानवाणी से (मम) मेरे (जाता) प्रजाजनों का (पृण) पालन और पोषण कर।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
[५३] कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
१र ३र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनं यद् दूरे सन्निहाभुवः ॥९॥

ऋ० ३ । ९ । २ ॥

भा०—हे अग्ने ! जीव ! (त्वं) तु (वना) बन अर्थात सब भोग्य देहों की (कायमानः[1]) कामना करता हुआ (यत्) जो (मातॄः[2]) मातास्वरूप उत्पादक (अपः) कर्मों को (अजगन्) प्राप्त होता है (तत्) वह (ते) तेरा (निवर्तनं) अपने मोक्षमार्ग से भ्रष्ट होना (न प्र मृषे) सहन नहीं होता (यद्) कि (दूरे[3] सन्) विषय वा-सनाओं और कर्मबन्धनों से दूर रहकर भी (इह) इस कर्मबन्धनमय

५२—अध ग्म इति बहुत्र पाठः । १. ज्मेति पृथिवीनाम । नि० । १ । १ ॥

५३—'इहाभवः' इति ऋ० । १.चायृ पूजानिशामनयोरिति चायतेः चोःकुत्वापत्त्या । कायमानश्चायमान इति वा । निरु० ४ । २ । १४ ।
२. मातर इति नदीनाम् । नि० १ । १३ । ३. दुः । प इति पदकारः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवलोक में (आ भुवः) पुनः प्रादुर्भाव हुआ, उत्पन्न हुआ है ।

ईश्वरपक्ष में—(वना) भोग योग्य लोकों को (कायमानः) बनाने की कामना करता हुआ (यत्) जब तू (मातृः अपः) सब जगत् के उत्पादक मूल प्रकृति के परमाणुओं को (अजगन्) थाम लेता है (तत् ते निवर्तनम्) उस समय तेरा निगूढ़ व्यापार (न प्रमृषे) नहीं प्रतीत होता कि (यत् दूरे सन्) उस प्रकृति से दूर, सर्वथा भिन्न असंग रहकर भी (इह आ भुवः) इसमें व्यापक होकर सृष्टि रचने में समर्थ होता है ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[५४] नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥१०

ऋ० १ । ३६ । १९ ॥

भा०—हे अग्ने ! (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप, ज्ञानमय, प्रकाशस्वरूप (त्वाम्) तुझको (शश्वते[1] जनाय) नाना प्रकार की प्रजाओं के लिये (मनुः) मननशील पुरुष (निदधे) पूर्णरूप से प्रकाशित करता है । (यं) जिसको (कृष्टयः) मनुष्यगण (नमस्यन्ति) नित्य नमस्कार करते हैं, वह तू (कण्वे) मेधावी पुरुष के हृदय में (ऋत जातः) सत्य ज्ञान या वेद रूप से प्रकाशमान होकर (उक्षितः) आनन्द रसरूप में सिक्त होकर (दीदेथ) प्रकाशित होता है ।

इति पञ्चमी दशतिः । इति पञ्चमी खण्डः ।

इति प्रथमोऽर्धप्रपाठकः ।

॥ दशति ६ ॥—१, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणि । २,३,९ कण्वोघौरः । ४ सौभरिः काण्वः । उत्कील आत्कीलो वा कात्यः । ८ विश्वामित्रो गाथिनः ॥२ ब्रह्मणस्पतिः । ३ यज्ञः ॥ बृहती ॥

५४—१. शश्वद् इति बहुनाम (नि० ३ । १ ।)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[५५] देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१॥
ऋ० ७।१७।११ ॥ सा० १५१३ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारा (देवः) देव, इष्ट, भक्तिपात्र परमेश्वर, (द्रविणोदाः) सब प्रकार के द्रव्यों, ऐश्वर्यों, और ज्ञानों, बलों को देने हारा है। इसलिये वह (पूर्णाम्) भरी हुई (आसिचम्) स्रुवा वा आहुति की ही (विवष्टु) कामना करता है (वा) और (उत्-सिञ्चध्वं) खूब ऊपर तक आहुति भरकर डालो (वा) और (उप-पृणध्वं) उसको पुनः भरो (आत् इत्) तब शीघ्र ही (वः) तुम्हारे लिये (देवः) वह दिव्य गुण ईश्वर (ओहते[1]) अभिलषित फल देता है।

जो ईश्वर सब प्रकारके ऐश्वर्य देता है उसके प्रति सर्व समर्पण करना चाहिये, उसके निमित्त वा उसके नामपर कंजूसी से दान न देकर खुले हाथ दान करना चाहिये। पात्र में दान देने से फल भी शीघ्र एवं उत्तम प्राप्त होता है।

[५६] प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ २ ॥
ऋ० १।४०।३ ॥

भा०—(ब्रह्मणस्पतिः[1]) ब्रह्म, वेद का पालक विद्वान् या महान् ब्रह्माण्ड का पालक ईश्वर ब्रह्मणस्पति (प्र-एतु) हमें प्राप्त हो। (सूनृता) वेदवाणी (देवी) दिव्यगुणों से सम्पन्न (प्र-एतु) उत्तम रूप से हमें प्राप्त हो। (देवाः) विद्वान् या इन्द्रियगण (नर्यं) मनुष्यों के हित-

५५—'विवष्ट्यासिचम्, इति ऋ०।
१. ओहते वर्धयति। मा०वि०। वहते रूपम्। सा०॥
५६—१. ब्रह्मणस्पतिः—ब्रह्म अन्नं, तस्य पतिः। ब्रह्म वेदः, तस्य पतिः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारक, (वीरम्) वीर्यसम्पन्न, (पङ्क्तिराधसम्) पांचों ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों से साधने योग्य या परिपक्व ज्ञानसे प्राप्य वा अनेक ऐश्वर्य-मालाओं से सम्पन्न उनके साधक (यज्ञम्) यज्ञ को (नः) हमें (अच्छ[२]) भली प्रकार (नयन्तु) प्राप्त करावें।

[५७] ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्वि ह्वयामहे ॥ ३ ॥

ऋ० १ । ३६ । १३ ॥

भा०—हे अग्ने! परमेश्वर तू (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (ऊर्ध्वः) उन्नत, सर्वोच्च, सर्वोपरि होकर (सु तिष्ठ) भली प्रकार स्थिर रह। (देवः सविता न) दिव्य गुणों से सम्पन्न सविता, सूर्य या विद्वान् के समान आप (वाजस्य) अन्न ज्ञान; और ऐश्वर्य को (सनिता) देनेहारे हो। (यत्) जिस कारण (अञ्जिभिः[१]) गुणों का प्रकाश करने हारे (वाघद्भिः) यज्ञकार्य का सम्पादन करने हारे विद्वानों द्वारा हम आपको (वि ह्वयामहे) बुलाते हैं और आपकी स्तुति-उपासना करते हैं।

[५८] प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत्।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥४॥

ऋ० ८ । १०३ । ४ ॥

भा०—हे (वसो[१]) समस्त संसार को आश्रय देने वाले! (यः) जो (मर्त्तः) मरणधर्मा पुरुष (राये) अमृत धन के निमित्त (प्र निनीषति[२]) तुझ तक पहुंचना चाहता है या कोई श्रेष्ठ कार्य सम्पादन

२. अच्छ आप्तुं सम्भावयितुमिति मा० वि०।

५७—१. अञ्जिभिः स्वद्गुणप्रकाशकैः छन्दोभिः, इति मा० वि०।

५८—प्र यं राये निनीषसि' इति ऋ०।

१. वासकाग्ने। सा०। २. णी प्रापणे भ्वादिः। प्रणयनं रचनं; प्रणयः प्रेम।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहता है या तेरे प्रति प्रेम प्रकट करना चाहता है और (यः) जो (ते) तुझे (दाशत्) आत्म-समर्पण करता है (सः) वह हे (अग्ने) ज्ञानयुक्त परमेश्वर! (उक्थ-शंसिनम्) वेदवक्ता (सहस्र-पोषिणम्) हज़ारों को भरण-पोषण करने वाले (वीरम्) वीर पुत्र को (त्मना) अपने सामर्थ्य से (धत्ते) धारण करता या उत्पन्न करता है।

ईश्वर को स्मरण करने और उसको आत्मसमर्पण करने वाले याज्ञिक धर्मात्मा के घर में जो पुत्र उत्पन्न होते हैं वे स्वयं विद्वान्, वेदवक्ता और सहस्रों को पालने-पोषने में समर्थ होते हैं।

[५९] प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते ॥ ५ ॥
ऋ० १ । ३६ । १ ॥

भा०—(यं) जिस अग्नि, राजा या ईश्वर को (अन्ये इत्) अन्य पुरुष भी (सम्-इन्धते) प्रज्वलित, प्रदीप्त करते, हृदय में जगाते हैं उस (देवयतीनाम्) दिव्यगुणों से सम्पन्न होना चाहने वाली प्रभु वा देव परमेश्वर की कामना करने वाली (पुरूणाम्[1]) पालन पोषण करने में समर्थ, बलवान्, शरीर में इन्द्रियों के समान (विशां) प्रजाओं के (यह्वम्[2]) व्यवस्थापक, महान् अधिष्ठातारूप अग्नि, नायक को (सूक्तेभिः) वेद के सूक्तों द्वारा (प्र वृणीमहे) खूब अच्छी प्रकार वरण करते हैं। यहां आत्मा और राजा का भी वर्णन है।

[६०] अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ ६ ॥
ऋ० ३ । १६ । १ ॥

५९—'वचोभिरीमहे' इति ऋ०। 'सीमिदन्य ईळते' इति ऋ०।

१. पुरूणि इन्द्रियाणि। द० उ०। २. यह्व इति महन्नाम। नि० ३। ३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(अयम्) यह (अग्निः) अग्नि, परमेश्वर और राजा (सुवीर्यस्य) उत्तम वीर्य, सामर्थ्य का और (सौभगस्य) सौभाग्य का (हि) भी (ईशे) स्वामी अधिष्ठाता है। वही 'अग्नि' (रायः) समस्त धनों का (ईशे) स्वामी है। वही (सु-अपत्यस्य) सुन्दर पुत्र प्रजा का (गोमतः रायः) गौ आदि पशुओं से सम्पन्न धन-धान्य वेद-वाणि से सम्पन्न ज्ञान-ऐश्वर्य का (ईशे) स्वामी है। वही (वृत्रहथानाम्) वृत्र, विघ्नकारी पापों और पापी पुरुषों के मारने वाले बल और साधनों का भी (ईशे) स्वामी है।

[६१] त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥ ७ ॥
ऋ० ७।१६।५॥

भा०—हे अग्ने! (त्वं) तू (गृहपतिः) घर का स्वामी है, (त्वं) तू (नः) हमारे (अध्वरे) यज्ञ, हिंसारहित श्रेष्ठ कर्म में (होता)यजमान और समस्त भोग्य पदार्थों को देने और स्वीकार करने वाला या विद्वान्, दिव्य गुणों पुरुषों और शक्तियों को देने वा स्वयं वश करने वाला है। हे (विश्ववार) समस्त संसार के वरण करने योग्य या सब विघ्नों के निवारण करनेहारे रक्षक! (त्वं) तू (पोता[1]) सब कार्यों का परिशोधक, निरीक्षक, (प्र-चेताः) उत्कृष्ट मति और ज्ञान से सम्पन्न है। तू ही (वार्यम्) सब को प्रसन्न करने वाले, वरणयोग्य, श्रेष्ठ पदार्थ ऐश्वर्य को(यक्षि)देता और(यासि च[2])हमें प्राप्त कराता या स्वयं प्राप्त है।

६०—'ईशे महः' इति ऋ०।
६१—'यक्षि वेषि च' इति ऋ०।

१. पोता—शोधयिता। मा० वि०।
२. यासि याचसे इति मा० वि०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २र ३ १ २
[६२] सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्त्तास ऊतये।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अपां नपातं सुभगं सुदंससं सुप्रतूर्त्तिमनेहसम् ॥ ८॥

ऋ० ३ । ९ । १ ॥

भा०—हे अग्ने ! परमात्मन् ! (सखायः) हम सब समान ख्याति वाले (मर्त्तासः) मरणधर्मा पुरुष या इन्द्रियगण (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (अपां नपातम्[1])अपः अर्थात् कर्मों और ज्ञानों के नपात् अर्थात् अपत्य, उत्पन्न हुए महाप्राण रूप, या हम प्रजाओं को विनष्ट न होने देने वाले (सुभगम्) सुखसे सेवन योग्य, उत्तम ऐश्वर्यवान्. (सुदंससम्[2]) शुभ कर्म करने वाले. (सुप्रतूर्त्तिम्[3]) पापियों और पापों के विनाशक, (अनेहसम्[2]) क्रोध और उपद्रवों से रहित (त्वा देवम्) तुझ देव को (ववृमहे) वरण करते हैं।

इन्द्रियगण जिस प्रकार आत्मा को वरते हैं उसी प्रकार मनुष्य अपनी रक्षा के लिये इन गुणों से सम्पन्न को ही राजा,मुख्य,पति नियुक्त करे और उसी प्रकार ईश्वर को भी वरण करे।

इति षष्ठी दशतिः । इति षष्ठः खण्डः ।

॥ ७ ॥ १ श्यावाश्वो आत्रेयो वामदेवो बा गोतमो ।२ उपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः।३ बृहदुक्थो वामदेव्यः।४ कुत्स आंगिरसः। ५, ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ।७वामदेवो गौतमः। ८, १० वसिष्ठोः मैत्रावरुणि । ९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः ॥ १, ३, ५, ९ त्रिष्टुभः । २, ४ जगत्यौ । १० त्रिपाद्विराड्गायत्री ॥

६२–१. अपां नपात् । अपांपौत्रत्वं, यथा अद्भ्यः ओषधयः । ततो रसजोग्निर्विद्युत् । अथवा आपोमयः प्राणः इति मुख्यप्राणस्याद्भ्यो जन्यत्वांत्तदपत्यत्वम् ।
२. दंसः कर्मनाम (नि० २ । १), ३. तूर्वतिर्हिंसार्थः भ्वादिः ।
४. अनेहसं उपद्रवरहितं सा०।अक्रोधम् ।मां०वि०। 'सुभगं सुदीदितिं' इति ऋ०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[६३] आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम्।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥ १ ॥

(नास्ति ऋग्वेदे)

भा०—हे पुरुषो ! (हविषा) स्तुति और अन्नादि द्वारा (आ जुहोत) आदरपूर्वक आहुतियें दान करो और (मर्जयध्वम्) सत्कार करो और सुखी करो । (होतारम्) सब प्रकार के भोग्य,अन्न आदि देने वाले उस होतास्वरूप (गृहपतिम्) गृह-स्वामी के समान प्रभु को (नि दधिध्वम्) अच्छी प्रकार सेवा-शुश्रूषा और धारणा ध्यान द्वारा उसका स्मरण करो । (इडः) इला-पृथिवी, यज्ञवेदी और अन्नादि के (पदे) स्थान या अवसर पर और (पस्त्यानाम्) घरों वा प्रजाओं के बीच में (रातहव्यं) हवि, चरु आदि पुष्टिकारक पदार्थ और आनन्द के दायक स्वामी की (नमसा) नमस्कार और उपहार द्रव्यों द्वारा (सपर्यंत)पूजा सत्कार करो ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[६४]चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ १ २
अनूधा यदजीजनदधाचिदा ववक्षत्सद्यो महि दूत्यं चरन् ॥ २

ऋ० १० । ११५ । १ ॥

भा०—परमात्मा, अग्नि का श्लेष पूर्वक शिशु रूप से वर्णन । प्रथम शिशु के पक्ष में—(शिशोः[1]) उस शिशु रूप इव (तरुणस्य) तरुण अग्नि, आत्मा का भी (वक्षथः[2]) यह वहन करने का कार्य (चित्रः इत्) आश्चर्यजनक है (यः) जो (धातवे) रस पान के लिये भी

६३—१. पस्त्यानि गृहाणि । नि० ३।४। तेषु ये निवसन्ति ते पस्त्याः। मा०वि०।

६४—'अप्येति धातवे' 'यदजीजनद्' 'अधाचन ववक्ष सद्यो' इति पाठभेदाः, ऋ० ।

१. शिशोःशंसनीयस्य । मा० वि० । २. वक्षथः—वहनं गमनम् । मा०वि० ।

२. चित्रः पूज्यः । मा० वि० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मातरौ) माता पिता किसी के पास भी (न अन्वेति) नहीं जाता है। और आश्चर्य यह है कि (अनूधाः) दूध के थान के तुल्य बिना पोषक साधन के ही अब वह उत्पन्न हुआ (अध चित्) तब ही (सद्यः) तुरन्त (महि) बड़े भारी (दूत्यं चरन्) दूत के कार्य के समान गमनागमन करता हुआ (आ ववक्षत्) कार्य-भार को उठा लेता है।

ईश्वर, परमात्मा व्यापक, सर्वत्र सुप्त के समान व्यापक होने या-स्तुत्य होने से 'शिशु' है, वह नित्य सामर्थ्यवान् होने से 'तरुण' है। उसका विश्व को वहन करने या धारण करने का कार्य अद्भुत है। वह अपना बल प्राप्त करने के लिये (मातरौ) मातृभूत द्यौ और पृथिवी दोनों के अधीन नहीं रहता। वह संसार को स्वयं उत्पन्न कर चुकने पर भी 'अनूधाः' (अनु-धाः) अर्थात् स्वयं उसको धारण करता है। अतएव वह (सद्यः) निरन्तर (महि) बड़ा भारी (दूत्यं चरन्) विश्व को उपतापन या तप का कार्य करता हुआ इस संसार को (आ ववक्षत्) उठा रहा है।

३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[६५] इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व।
३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
संवेशनस्तन्वे३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥३॥

१। सूर्य, विद्युत्, आत्मज्योतिः
ऋ० १० । ५६ । १ ॥

भा०—हे आत्मस्वरूप अग्ने! (इदम्) यह प्रत्यक्ष संसार और यह लोक (ते) तेरा (एकम्) एक रूप है। (परः ऊँ) और परलोक का स्वरूप (ते) तेरा (एकम्) एक दूसरा स्वरूप है। तू इन दोनों को अतिक्रमण करके (तृतीयेन) तीसरे, उत्कृष्ट (ज्योतिषा) ज्योतिः स्वरूप से ब्रह्मज्ञान में (संविशस्व) लीन हो। वहां (संवेशनः) सुख से प्रवेश करने योग्य होकर (तन्वे) पुनः शरीर ग्रहण के लिये (चारुः) भली प्रकार गमनशील (एधि) रह, (परमे) उत्कृष्ट (जनित्रे) उत्पत्तिस्थान

६५—'संवेशने तन्वः' इति० ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में (देवानाम्) दिव्य गुण वाले अपने इन्द्रियगण के सामर्थ्यों का (प्रियः एधि) प्रेमपात्र होकर रह।

ईश्वरपक्ष में—यह प्रत्यक्ष लोक तेरा एक रूप है। पर, सूर्य आदि तेरा दूसरा रूप है। तू ही नीर्णतम, तृतीय सर्वोत्कृष्ट ज्योतिरूप सर्वत्र व्यापक है। तू व्यापक होकर (तन्वे) जगत् के विस्तार करने के लिये भी (चारुः एधि) सर्वत्र व्याप्त होता है। तू (देवानाम्) देव पञ्चभूतों या मुक्तात्माओं के परम उत्पादक रूप में भी उनका (प्रियः) प्रिय अर्थात् उनमें सबसे अधिक श्रेष्ठ है।

सायण ने इस मन्त्र को बृहदुक्थ ऋषि के मुख से अपने मृत पुत्र के प्रति कहाया है। 'तेरा यह एक अंश शरीर इस श्मशानाग्नि में जाय, दूसरा अंश प्राणवायु में मिल जाय, तीसरा अंश सूर्यज्योति में लीन हो जाय और पुनः शरीर धारण के लिये तैयार होकर सूर्यलोक में प्रसन्न होकर रह।'

[६६] इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव।४

ऋ० १। ९४। १॥

भा०—(अर्हते) पूजा सत्कार करने योग्य (जात-वेदसे) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, समस्त पदार्थों के जानने वाले, वेदों के उत्पादक ईश्वर के लिये (इमं स्तोमम्) यह स्तुति हम लोग (रथम् इव[1]) रमणीय पदार्थ, उपहार करने योग्य वस्तु के समान (मनीषया) अपनी बुद्धि से (सम् महेम) उत्तम रीति से प्रस्तुत करते हैं। (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के (संसदि) सभास्थान, संगम या सत्सङ्ग में (नः) हमारी (प्रमतिः) उत्तम मति सदा (भद्रा हि) कल्याण संकल्प वाली बनी रहे। हे अग्ने! ईश्वर! (वयं) हम लोग (तव) तेरे संग (सख्ये)

६६—१. रथमिव, यथा तक्षा रथं संस्करोति तथा। सा०। यथा रथं गमयति तथा स्तोमं गमयेम, इति मा० वि०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्रभाव में (मा रिषाम[2]) कभी कष्ट न पावें, कभी पीड़ित न हों।

३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २
[६७] मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥५॥
ऋ० ६ । ७ । १ ॥ ११४६ ॥

भा०—(दिवः) द्यौलोक के (मूर्धानं) शिरोभाग और (पृथिव्याः) पृथिवी के (अरतिम्) स्वामी, (ऋते) सत्य, यज्ञ या समस्त ब्रह्माण्ड में (आ जातम्)सर्वत्र प्रादुर्भूत, व्याप्त, (वैश्वानरम्)सब प्राणियों में व्यापक, (कविम्)मेधावी, क्रान्तदर्शी,(सम्राजम्)खूब प्रकाशमान, सब के सम्राट्, (जनानाम् अतिथिम्) मनुष्यों में अतिथि के समान अति आदर से पूजा के योग्य, (नः) हमारा (अग्निम्) अग्नि, ज्ञानवान् परमेश्वर को ही (पात्रम्[1]) हमारी स्तुतियों और सत्कार का पात्र या पालक (देवाः[2]) विद्वान् पुरुष (आसन्) मुख्य रूप से या मुखद्वारा वाणीसे (जनयन्त) प्रकट करते, बतलाते हैं।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
[६८] वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
तं त्वा गिरःसुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्वाहो जिग्युरश्वाः ॥६॥
ऋ० ६ । २४ । ६ ॥

भा०—हे (अग्ने)परमेश्वर ! (देवाः)स्तुति करने वाले या तेरे दिव्य-गुणों को जानने वाले विद्वान् लोग(उक्थेभिः) यज्ञों, ज्ञानचर्चाओं द्वारा (पर्वतस्य) पर्वत या मेघ के (पृष्ठात्) तट या एक देश से (आपः न) जलधाराओं के समान (त्वत्)तुझ से (वि जनयन्त)नानाप्रकार के कार्य सम्पादन करते या तुझे नाना प्रकार से उत्पन्न करते या प्रकट करते हैं।

६७—१. पात्रं पातारं । सा० । २. देवाः ऋत्विजः स्तोतारः । सा० ।

६८—ऋग्वेदे पाठभेदो यथा—'वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः । तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा (देवाः) दिव्यगुण के सूर्य आदि पदार्थ तुझ से, मेघ से जल-धाराओं के समान स्वयं प्रकट होते हैं। हे परमेश्वर!(गिर्वणाहः)गिरा वाणी या वाणियों द्वारा प्राप्त या ज्ञान करने योग्य अग्ने! (अश्वाः) अश्व(आजि न) जिस प्रकार संग्राम भूमि में (जिग्युः) विजय करते हैं, उसी प्रकार (सु-स्तुतयः गिरः) उत्तमरूप से गुणवर्णन करने वाली वेदवाणियां (तं त्वा) उक्त प्रकार के गुणों से सम्पन्न तुझको (वाजयन्ति) बढ़ाती हैं, पुष्ट करती हैं, तुझे समृद्ध करती हैं, अलंकृत करती हैं।

२ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ १
[६६] आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
३ २ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥७॥

ऋ० ४ । ३ । १ ।

भा०—(अध्वरस्य) कभी हिंसा का पात्र न होने वाले, कभी न मरने वाले हिंसाकर्म से रहित यज्ञ के (राजानम्) अधिपति (रुद्रम्[1]) घोर, गर्जना के साथ गमन करते हुए, दुष्टों पापियों को रुलाने वाले, (रोदस्योः) द्यौः और पृथिवी दोनों लोकों को (सत्य-यजन्) सत्य के बल से दान देने वाले, उनमें व्यक्त जगत् रूप से सत्य यज्ञ करने वाले, (होतारं) आकाश और पृथिवी से जल और अन्न की आहुति देने वाले (हिरण्य-रूपम्) मनोहर, सुवर्णवत् उज्ज्वल रूप को धारण करनेहारे, तेजोमय (अग्निम्)सूर्य के समान परमेश्वर को(अचित्तात्) चेतनारहित (तनयित्नोः[2]) अशनि अर्थात् व्यापक विद्युत् से भी (पुरा) पूर्व विद्यमान अर्थात् उससे भी उत्कृष्ट जानकर सर्व कारणरूप उसे (अवसे) अपने रक्षार्थ (कृणुध्वम्) कर लो जानो।

६६—१. रुद्रो रौतीति सतः। रोरूयमाणो द्रवतीति वा। रोदयतेर्वा, यदरुदत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमिति काठकम्।यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमिति हारिद्रविकम् इति नि० १०।१।२॥ रुद्रं रोदनस्वभावम्। मा० वि०। २. तनयित्नुरशनिः। सा०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
।७०। इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
नरो हव्येभिरीडते सबाध अग्निरग्रमुषसामशोचि ॥ ८॥
ऋ० ७ । ८ । १ ।

भा०—(अर्यः)स्वामी, राजा सब से अधिक कान्तिमान् (नमोभिः) आदर वचनों से (सम् इन्धे) खुब प्रज्वलित होता है। (यस्य) जिसका (प्रतीकम्[१]) स्वरूप (घृतेन) घृत, स्नेह, कान्ति या पुष्टिकर पदार्थों से (आहुतम्) पूरित, हरा-भरा हैं। (उषसाम् अग्रम्) उषाकाल में सबसे पूर्व प्रकट होने वाले उस अग्नि को (नरः) विद्वान् लोग (सबाधः) उद्वेगों या क्लेशों या विघ्नों से बाधित होकर (हव्येभिः) स्तुति वचनों से और उत्तम २ पदार्थों से (ईडते) भजन करते हैं। अग्नि के पक्ष में—अग्नि अन्नों से प्रज्वलित होता है। रोगों से पीड़ित लोग उसमें उत्तम चरुओं से होमते हैं।

राजा के पक्ष में—राजा आदर वचनों से आहुत होता है और शत्रुओं से पीड़ित प्रजाजन उसकी स्तुति करते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
।७१। प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २ ३ १ २
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ९ ॥
ऋ० १० । ८ । १ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि, परमेश्वर (बृहता) बड़े भारी (केतुना) विज्ञानमय प्रकाश के साथ (प्र याति)प्रकट होता है। (रोदसी)द्यौलोक और पृथिवी लोक दोनों में वह (वृषभः) सबसे श्रेष्ठ, ज्ञानों और सुखों की वर्षा करने वाला (रोरवीति) शब्द करता है,नित्य उपदेश करता है। (दिवश्चिद्) अन्तरिक्ष लोक के भी (अन्तात्) एक प्रान्त से उदित

७०-'आग्निरग्रम्' इति ऋ० । १. प्रतीकं नाम मुखं । मा० वि० ;
७१-'दिवश्चिदन्तां उपमा उदानडपां इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर (उपमाम्)समीप,हृदय देशमें ही (उद्भानड्)उदित हुआ, प्रकाशित हुआ है।(अपाम्)समुद्रोंके बीच मेघ वा सूर्यके समान लोकों एवं कर्मों और ज्ञानों के (उपस्थे) बीच वह (महिषः) महान सामर्थ्यवान् प्रभु (ववर्ध) सबसे यश और नाम में बड़ा है।

केतु=ध्वजा, ज्ञान । उपस्थे=अन्तरिक्षे ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[७२] अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १० ॥ ऋ ७ । १ । १ ॥ १३७३

भा०—हे (नरः) नेता, अग्रणी उत्तम लोगो ! (दीधितिभिः) किरणों और अंगुलियों द्वारा (अरण्योः) अरणियों के बीचमें (हस्त-च्युतम्) हाथोंके बलसे उत्पन्न हुए, अग्निके समान द्यौ और पृथिवीके बीचमें अपनी शक्ति से स्वयं स्थित, (प्रशस्तम्) सबसे उत्तम निर्दोष, (दूरे-दृशम्) दूर तक दिखाई देने वाले या दूर तक देखने वाले (गृह-पतिम्) घरके स्वामी के समान समस्त प्रजा के रक्षक, ([1]अथव्युम्) गतिशील वा स्थिर, नित्य, व्यापक (अग्निम्) अग्नि परमेश्वर को आप लोग (जनयत) प्रकट करो उसका स्वयं साक्षात्कार अन्यों को भी उसका बोध कराओ।

अर्थात् जैसे अरणियों के बीच अग्नि प्राण और अपान के बीच में आत्मा, माता पिता के बीचमें पुत्र है उसी प्रकार द्यौः और पृथिवी के बीच वह परमेश्वर शक्तिरूप से प्रकट है। उसका ज्ञान स्वयं करें और अन्यों को करावें।

इति सप्तमी दशतिः । इति सप्तमः खण्डः ॥

७२—[1]थर्वतिर्गत्यर्थः ।अगम्यम् सा०। भरतस्वामी च । अभिगन्तारं । मां०वि०। अतनवन्तमिति यास्कः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ दशतिः ८ ॥ ऋषिः—१ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । २, ५ वत्सप्रीर्भालन्दनः । ३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ४, ७ विश्वामित्रो गाथिनः । ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणः । ८ पायुर्भारद्वाजः ॥ देवता-१, २, ४—८ अग्निः । ३ सूरः पृथा । त्रिष्टुप् ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[७३] अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥१॥
ऋ० ५। १। १॥

भा०—(जनानां समिधा) लोगोंकी लगाई लकड़ी से जिस प्रकार (अग्निः) सामान्य अग्निहोत्र की अग्नि (धेनुम् इव) दुधार कपिला गाय के समान (आयतीम् प्रति उषासम्) आते हुए प्रत्येक उषाकाल में (अबोधि) प्रदीप्त होती है उसी प्रकार यह (अग्निः) अग्निके समान तेजस्वी आत्मा भी (जनानां समिधा) जनोंके प्रदीप्त प्राणरूप काष्ठोंसे (प्रति उषासम्) प्रति प्रातःकाल प्राणायामों द्वारा (अबोधि) चेतावा जाता है (उज्जिहानाः) ऊपर उड़ते हुए पक्षिगण जिस प्रकार (वयाम् प्र सिस्रते) शाखा पर जाते हैं और जिस प्रकार (यह्वाः) बड़े पुरुष (वयाम् इव) व्यापक उदारनीति की ओर बढ़ते हैं और जिस प्रकार (भानवः) सूर्य के किरण (नाकम्) आकाश की ओर (प्र सिस्रते) व्यापते हैं, उसी प्रकार (यह्वाः) बड़े२ शक्तिशाली आत्मा (उद्जिहानाः) उत्क्रमण करते हुए (वयाम्) उस व्यापक परमेश्वरी शक्ति की तरफ जाते हैं और (भानवः) ज्ञान प्रकाशसे प्रकाशित होकर आदित्य के समान तेजस्वी, योगी मुक्तजन (नाकम्) परमसुखमय, आनन्दमय परम पद को (प्र सिस्रते) प्राप्त करते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
[७४] प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥२
ऋ० १०। ४६। ५॥

७३—'सिस्रते' इति ऋ०। पक्षिण इत्यधिको भावार्थे माधवीयविवरणे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(भूः)[1] सबके उत्पत्तिस्थान,भू आदि लोकों को(प्र जयन्तम्) उत्तम रीति से विजय करने वाले(मूरैः मोहयुक्त जीवों द्वारा गृहीत (पुराम्) शरीरोंके(दर्माणम्)नाश करने वाले,उनको मुक्ति दिलाने वाले,(अमूरम्) स्वयं मोह रहित (विप्राणां)विद्वानों और उत्तम कर्म का धारक (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (वनाम्) भजन करने योग्य (धियं नयन्तम्) हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में ले जाने वाले, (हरिश्मश्रु न) सुवर्ण के समान कान्तियुक्त किरण वाले सूर्य के समान (वर्मणा) कवच से (धनर्चिम्) विभूतिमान् उस अग्नि को (धाः) हृदय में धारण कर।

त्रिपुरारि पशुपति,भूतभृत् विश्वेश्वर आदि की शिवविषयक कल्पना ब्रह्म के विषयमें इसी मन्त्र के आधार पर है। हरिश्मश्रु,हिरण्यकेश आदि शब्दों के धात्वर्थ समान हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२र ३ १ २ ३ १ २
[७५] शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
विश्वा हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु॥३

ऋ० ६।५८.१॥

भा०—हे पूषन्! अग्ने! (ते) तेरा(शुक्रं) कान्तिमान् प्रकाशमान् रूप (अन्यत्) दूसरा है। और (यजतम्) आपका मिलने वाला,उपास्य शिवरूप (अन्यत्) और है। (अहनी) ये दिन और रात के समान दोनों (विषुरूपे, भिन्न २ रूप के हैं। हे अग्ने! तू (द्यौः इव असि[1]) सूर्य के समान है। हे (स्वधावन्) अन्नपते! प्राणपते!जीवेश्वर! भूतपते! (हि विश्वा) क्योंकि तू समस्त संसार की सब प्रकार की (मायाः) मायाओं

७४—(भ्र) 'मूरा' इति ऋ०। उत्तरार्धे, 'नक्षन्तो गर्भं वनां धियं धु र्हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम्।' इति ऋ०।

१. भूग्रहणं प्रदर्शनार्थं, त्रीनपि लोकान् प्रयन्तं इति मा० वि०।

७५—'स्वधावो' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टियों को (अवसि) पालन करता है। हे (पूषन्) समस्त संसार के पोषण करने हारे ! (इह) इस लोकमें (ते) तेरा (रातिः) दान (भद्रा) कल्याण और सुख को देने वाला (अस्तु) हो।

ईश्वर ने अग्नि और सोम, प्राण और रयि दोनों से समस्त संसार को बनाया है। वह दोनों का सूर्य के समान प्रेरक है। सब चराचर सर्ग जो प्रकृति के विकार से बनी (मायाः) सृष्टियां है, उनको वही पालन करता है, यहां ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों रूपों का क्रम से वर्णन किया गया है।

१ २   ३ १ २   १   २र   ३ १   २र

[७६] इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! तू (हवमानाय) स्तुति-भजन करने वाले पुरुष के लिये (पुरु-दंसम्) बहुत कर्मों से सम्पन्न या इन्द्रियोंको पुष्टिदायक, (गोःसनिम्) गोधन, इन्द्रिय वाणी या सरस्वती विद्याके देने हारे, (शश्वत्तम्) चिरकाल तक (इडाम्) अन्न, ज्ञान, एवं भक्ति को (साध) प्राप्त करा ; (नः) हमारा (सूनुः) पुत्र, (तनयः[1]) अगली सन्तान का विस्तार करने वाला, वंशधर (विजावा[2]) नाना प्रकार की सन्तानों का उत्पन्न करने हारा (स्यात्) हो। (ते सा सुमतिः) तेरी वही शोभन मति (अस्मे) हमारे लिये (भूतु) बनी रहे।

---

७६ पुरुदंसं । सा० भा० ।

१. तनयः पुत्रः, तनोति विस्तारयति सन्ततिमिति । २. विजावा विविधं जनयिता पुत्राणां, अनेन प्रकारेण वंशस्याविच्छेद आशास्यते । मा०वि०। विजावा स्त्री विजायते, भगिनी ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २र ३ २ . ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २
[७७] प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २
दधद्यो धायी सु ते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥५

ऋ० १० । ४६ । १ ।

भा०—(यः)जो अग्नि, व्यापक प्रभु(महान्)बड़ा,(होता)स्तुतियोग्य, नाना पदार्थों का दान करने वाला,(नभोवित्)आकाश और अन्तरिक्ष में व्यापक या उसको उत्तम रूप से जानने वाला (जातः) प्रकट है, वह (नृ-सद्मा) समस्त प्राणियों में विराजमान है । वही(अपां विवर्त्ते [1])अन्तरिक्ष में, समस्त प्रजाओं के भीतर भी(धायी) धारक पोषक रूप से विद्यमान है । वही (ते) तेरे लिये (वयांसि) अन्नादि पदार्थ और आयु, को (दधत्) धारण करावे । (तनूपाः) शरीरों की रक्षा करने वाला वह (यन्ता) सबका नियन्ता (विधते) नियम से अपना कार्य सम्पादन करने वाले पुरुष को (वसूनि दधत्)नाना प्रकार के सुखसाधन देता है ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[७८] प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥६

ऋ० । ७ । ६ । १ ।

भा०—(असुरस्य [1]) प्राणों और ज्ञानों से सम्पन्न (कृष्टीनाम्) प्रजाओं के (अनुमाद्यस्य) हर्षों और सुखों में सुखी होने वाले, स्तुति योग्य, (पुंसः) अति ज्ञानी, पुरुष के (सम्राजम्) सबसे अधिक शोभा,

---

७७–'नृषद्मा' 'अपामुपस्थे' 'दधियः' धायी सन्' ऋ० ।

१. अपां विवर्त्तोऽन्तरिक्षलोकः । मा०वि०।३ धायी सुते इति पाठे धायी धारयिता, 'सुते' इत्येकं पदम् । अभिसुते इत्यर्थः । पदकारस्तु 'धायी ।सु। ते ।

७८–'प्र सम्राजो' 'प्रशस्ति' वन्देदारुं वन्दमानो विवक्मि' इति ऋ०। 'वन्दमानो विवक्मि' इति स० मा० । पुमान् पुरुमना भवति पुंसतेर्वा । निरु० ।

१. असुरिति प्रज्ञानाम नि० ३ । ९ ॥ तद्वान् असुरः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान्ति से युक्त (प्रशस्तम्) प्रशंसनीय स्वरूप को (प्र जानीत) जानो। मनुष्य (इन्द्रस्य इव) इन्द्र के समान (तवसः [२]) बलशाली उस पुरुष के (कृतानि) किये गये (वन्दमाना) स्तुति युक्त कार्यों की (वन्द-द्वारा) नमस्कार पूर्वक (प विवष्टु) अभिलाषा करे।

[७९] अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ ७ ॥
ऋ० ३ । २९ । २ ।

भा०—(अरण्योः) दो अरणियों में जिस प्रकार (जातवेदाः) अग्नि (निहितः) गुप्त रीति से रहता है, और (गर्भिणीभिः) गर्भिणी स्त्रियों द्वारा (गर्भ इव) जिस प्रकार गर्भ बड़ी सुरक्षा से पालन किया जाता है, उसी प्रकार द्यौ और पृथिवी के बीच में उनका प्रकाशक अग्नि, परमेश्वर भी (निहितः) उनके भीतर व्यापक है। और (गर्भिणीभिः) जगत् की धारक शक्तियों द्वारा (इत सुभृतः) उत्तम रूप से सुरक्षित है। (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (जागृवद्भिः) जागने वाले, सावधान, चैतन्य, ज्ञानी (हविष्मद्भिः) हव्य आदि पदार्थ और स्तवन आदि से सम्पन्न (मनु-ष्येभिः) मनुष्यों द्वारा वह (अग्निः) सर्वप्रकाशक, ज्ञानवान् परमेश्वर (ईड्यः) उपासना करने योग्य है।

[८०] सनादग्ने मृणासि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः।
अनु दह सहमूरान् कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥८॥
ऋ० १० । ८७ । १९ ।

भा०—हे अग्ने ! परसंतापकारिन् ! तू (सनात्) प्राचीन काल से (यातुधानान्) दुष्ट पुरुषों को (मृणसि) पीड़ित, दण्डित करता रहा

७९–'सुधितो गर्भिणीषु' इति ऋ० ।
८०–'क्रव्यादो' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। (पृतनासु) सेना संग्रामों में (रक्षांसि) राक्षस लोग (त्वा) तुझको (न जिग्युः) कभी भी नहीं जीत सके हैं। (मूराद्) मूढ़, (कयादः[1]) क्रव्याद, मांस खाने वाले, राक्षसों को (सह)एक ही साथ तू (अनु दह) तेज से भस्म कर डाल । वे (ते) तेरी (दैव्यायाः) दिव्यगुणों से युक्त अग्नि आदि दिव्य शक्तियों से चलने वाली (हेत्या) शस्त्र-अस्त्रों की धार से (मा मुक्षत) बच न पावें।

इति अष्टमी दशतिः । अष्टमः खण्डः ॥

॥ दशतिः ६ ॥ १ गय आत्रेयः । २ वामदेवः । ३, ४ भरद्वाजोबार्हस्पत्यः । ५ मृक्तवाहो द्विताआत्रेय वसूयव आत्रेयाः । ७, ९ गोपवनआत्रेयः । ८ पुरुरात्रेयः । १० वामदेव कश्यपो वा मारीचो मनुर्वा वैवस्वत उभौ वा ॥ अनुष्टुप् ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[८१] अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥

ऋ० ५ । १० । १ ।

भा०—हे अग्ने! प्रभो ! (ओजिष्ठम्[1]) कान्तियुक्त ,बलकारी (द्युम्नम्) धन, धान्य, सुवर्ण, रत्न आदि (अस्मभ्यम्) हमारे लिये(आ भर) प्राप्त करा । हे (अध्रिगो[2]) अक्षय सामर्थ्यवान् देव! वे रोक इन्द्रिय, वाणी, और अश्व आदिवाले राजन् ! (नः) हमारे लिये (पनीयसे) स्तुति योग्य, प्रशंसनीय, एवं व्यवहार, व्यापार आदि करने योग्य, (राये) सम्पत्ति के लिये और (वाजाय) अन्न आदि पदार्थों की प्राप्ति के लिये (पन्थाम्) मार्ग, उपाय (प्र रत्सि[3]) तैयार कर, हमें सुझा ।

---

१. कयादः । रेफवकारयोश्छन्दसि लोपः । कयादः क्रव्यादो मांसभक्षकान सा० । मांसस्य भक्षयितॄन् । मा० वि० (स०सा०)

८१—'प्र नो राया परीणसा' इति ऋ० । १. ओजो बलम् ! नि०२।९ ।२. अधृत शब्दस्याध्रिभावः । गमनं गौः । (नि०भा०) ३. रद विलेखने । भ्वादिः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[८२] यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥ २ ॥ ऋग्वेदे नास्ति

भा०—(यदि) जब पुरुष (वीरः[1]) ब्रह्मचर्य से वीर्यवान् (अनुस्यात) हो तब वह (मर्त्यः) मरणधर्मा पुरुष (अग्निम्) अग्नि के तुल्य प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की उपासनार्थ यज्ञ में अग्नि को (इन्धीत) प्रदीप्त करे, अपने अन्तरात्मा में जगावे और (आनुषक्) निरन्तर (हव्यम्) प्राण अपान रूप आहुतियों को (आजुह्वत्) उसमें समर्पण करता हुआ (दैव्यम्) देव परमेश्वर से प्राप्त होने योग्य (शर्म) सुख और शान्ति को (भक्षीत) भोग करे ।

जब मनुष्य वीर्यवान् हो तो वह गृहस्थ-प्रवेश के साथ २ अग्नि आधान करे और उसमें हव्य चरु की आहुति दे ।

[८३] त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि संच्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ३ ॥
ऋ० ६ । २ । ६ ।

भा०—हे अग्ने ! (त्वेषः) कान्तियुक्त जाज्वल्यमान(ते धूमः) तेरा धूम, बल कंपाने का सामर्थ्य, विभूति, मन्यु और कोप(दिवि ऋण्वति) समस्त द्यौ, सूर्य रूप में परिणत या प्रकट हो रहा है । वह (शुक्रः) अत्यन्त शुक्लवर्ण, कान्तियुक्त होकर (आततः) सब ओर विस्तृत है । (सूरः न) सूर्य के समान (कृपा) सामर्थ्यस्वरूप (द्युता) दीप्ति या सामर्थ्य, शक्ति से (त्वं) तू (रोचसे) सर्वत्र प्रकाशित है ।

[८४] त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ ४ ॥
ऋ० ६ । २ । १ ॥

८२—१. वीरः पुत्रः । सा० । ८३—'दिदिव पच्छुक इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे अग्ने ! (हि) जिस कारण से (त्वं) तू (क्षैतवद्) सबको निवास देनेवाली भूमि, और (यशः) अन्न, बल को (मिन्नः नै) सूर्य के समान (पत्यसे[2]) नाना प्रकार से प्राप्त या उत्पन्न करता उसको अन्न-पति धनपति के तुल्य जगत् भर को प्रदान करता है । हे (विचर्षणे) विशेषरूप से सब के द्रष्टा ! (वसो) हे सबको निवास देने वाले अग्ने ! तू (श्रवः) अन्न और ज्ञान को (पुष्टिं न) पोषण सामर्थ्य के समान ही (पुष्यसि)स्वयं बढ़ाता और पुष्ट करता है, उनमें बल उत्पन्न करता है।

[८५] प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः ।
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्त्तास इन्धते ॥ ५ ॥

ऋ० ५ । १८ । १ ॥

भा०—(पुरुप्रियः) बहुत से प्राणियों का प्यारा या इन्द्रियों को प्रेरणा या पूर्ति, सन्तुष्टि देने हारा (अग्निः) अग्नि, परमात्मा और आत्मा (अतिथिः) इस शरीर या ब्रह्माण्ड रूप गृह में व्यापक (विशः) सब प्रजाओं का अतिथिवत पूज्य है । उस की (प्रातः) प्रातःकाल, सबसे पूर्व (स्तवेत) उपासना, स्तुति करनी चाहिये (यस्मिन्) जिस (अमर्त्ये) मरण रहित, अविनाशी आत्मा के निमित्त (विश्वे) समस्त (मर्त्तासः) मरणधर्मा, शरीरधारी प्राणी (हव्यम्) अन्न रूप हवि और स्तुति को (इन्धते) प्रदान कर प्रज्वलित रखते हैं, जीवित रखते हैं ।

[८६] यद् वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद् रयिस्त्वद् वाजा उदीरते ॥६॥

ऋ० ५ । २५ । ७ ॥

८४—१ क्षितिरेव क्षेतं भरनः । २. पत्यतिरैश्वर्यकर्मा । इह दानार्थः । मा० वि० ।
८५—'विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्त्येषु रण्यति' इति ऋ० विशः धनस्य निवेशकः । सा० । विशः विड्भिः । मा० । विशः प्रजायाः अतिथिः । भरतः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (विभावसो) विशेष प्रकार की कांति युक्त धन से सम्पन्न ! (बृहद्) तू सब से अधिक (अर्च) प्रकाशमान हो। (महिषी इव[1]) जिस प्रकार इस बड़ी भारी पृथ्वी से अन्न, रत्न आदि प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (त्वद् रयिः) तुझ से ही समस्त धन और (त्वद् वाजाः) तुझ से ही समस्त अन्न, उद् ईरते) उत्पन्न होते हैं। इस कारण (यद्) जो (वाहिष्ठम्) प्राप्त करने या उपहार करने योग्य पदार्थों में सबसे श्रेष्ठ भाव, पदार्थ अन्नादि है (तत् अग्नये) वह उस परमेश्वर की प्रीति और अग्नि में आहुति के लिये ही होने चाहियें।

परमेश्वर के प्रति सदा उत्तम भावनाएं रहें और यज्ञ में सदा उत्तम सुगंध, पौष्टिक, रोग नाशक और शान्तिप्रद पदार्थ डालने चाहिये जिस से प्रजा, रोगरहित स्वच्छ, और पुष्टिकारक वातावरण, व जलादि का उपभोग कर सुखी हो।

[८७] विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम्।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ ७ ॥

ऋ० ८ । ७४ । १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) तुम लोग (विशः-विशः अतिथिम्) समस्त प्रजाओं के अतिथि के समान पूज्य या सब प्रजाओं में व्यापक (पुरुप्रियम्) सब के प्रिय (अग्निम्) अग्नि, परमेश्वर को (वाजयन्तः) अर्चना करते और बढ़ाते रहते हो। मैं (शूषस्य) सुख प्राप्ति के लिये (दुर्यम्[1]) गृह या इस देह के लिये हितकारी (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर विषयक (वचः) वाणी से (मन्मभिः) मनन करने योग्य साधनों से (वः) आप लोगों के प्रति (स्तुषे) ठीक २ प्रकार से वर्णन करता हूं।

८६—१. महिषी यथा राजभार्यामिति। मा० वि०।
८७—१. दुर्याः गृहाः। नि० ३। ४। ७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[८८] बृहद् वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥ ८ ॥

ऋ० ५ । १६ । २ ॥

भा०—हे मनुष्य (भानवे) भानु, कांतिस्वरूप (देवाय) सब के प्रकाशक (अग्नये) उस अग्नि, प्रकाशस्वरूप प्रभु के लिये (बृहद्) सब से बड़ा (वयः[1]) अन्नभाग या आयु का भाग (अर्च) भक्तिरूप में दे। (यम्) जिसको (प्रशस्तये) उत्तम कीर्त्ति होने के कारण (मर्त्तासः) मनुष्य लोग (मित्रम् इव) अपने हृदय के इष्ट मित्र स्नेही के समान (पुरः) सदा अपनी चक्षुओं के आगे (दधिरे) रखते हैं ।

[८९] अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते ॥ ९ ॥ ऋ० ८।७४।४॥

भा०—(वृत्रहन्तम्) विघ्न उपद्रव और यज्ञविनाशक दुष्ट जीवों को नाश करने वाले (ज्येष्ठम्)सब से अधिक श्रेष्ठ, प्रशंसा करने योग्य (आनवम) मनुष्यों के हितकारी (अग्निम्) अग्नि, परमेश्वर और आत्मा को (अगन्म) हम प्राप्त हों (यः)जो अग्नि (आर्क्षे[1]) नक्षत्र लोकों से और ज्ञानेन्द्रियगण से सम्पन्न, (श्रुतर्वन्)बड़े लोकों और प्राणेन्द्रियों से युक्त देह में और भौतिक बड़ी २ शक्तियों से युक्त ब्रह्माण्ड में(बृहद्-अनीकः) प्राणमय बलों और विशाल पंचभूतों के बल से युक्त होकर (इध्यते) प्रकाशित, जीवित, जागृत रहता है ।

८८– प्रशस्तिभिर्मर्तासो' इति ऋ० ।

८९– आगन्म' इति ऋ० । 'यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते' इति ऋ० ।

१. 'आर्क्ष्ये' इति पाठ मा० म० । अनवो मनुष्याः । तेभ्यो हितम् । भ०स्वा० ऋषति इति ऋक्षम् । ऋषेतरौणादिकः सः, । उ० ३ । ६६ । इन्द्रियम् ऋषेरिन्द्रियत्वं बृहदारण्यकोपनिषदि सुस्पष्टम् सप्तर्षिव्याख्याने ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[९०] जातः परेण धर्मणा यत् सवृद्धिः सहाभुवः ।
३ २उ ३ २ १ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ ३
पिता यत् कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥ १० ॥

(ऋग्वेदेनास्ति)

भा०—हे अग्ने ! आत्मन् ! तू (परेण धर्मणा) परम उत्कृष्ट तपस्या और सदाचार के बल से (जातः) उत्पन्न अर्थात प्रकट होता है (यत्) क्योंकि (सवृद्धिः) अपने साथ लगे हुए सहयोगी, कर्मचारीगण, इन्द्रियों के (सह) साथ मिलकर (आभुवः) तू सब कार्य करने में समर्थ है । यह अग्नि आत्मा (कश्यपस्य[1]) इस ज्ञान के पान करनेहारे मन का (पिता) पालक है और उसकी (माता) जन्मभूमि (श्रद्धा[2]) सत्य का धारण करनेहारी बुद्धि है और (मनुः कविः) मननशील पुरुष आत्मा ही इसका विद्वान् क्रान्तदर्शी गुरु है ।

परमात्मा के पक्ष में (परेण धर्मणा) परम उत्कृष्ट, धारण सामर्थ्य से (यत्) जो (सवृद्धिः) साथ वर्त्तमान शक्तियों के साथ (आभुवः) विद्यमान है । वह तू (कश्यपस्य पिता)सूर्य आदि लोक और ज्ञानी पुरुषों का पालक है । (अग्निः) प्रकाशस्वरूप, (श्रद्धा) सत्य का धारक, (माता) जगत् का कर्त्ता, (मनुः) ज्ञानवान् (कविः) मेधावी और पारदर्शी, उपदेष्टा गुरु है ।

इति नवमी दशतिः । इति नवमः खण्डः ।

॥ दशतिः १० ॥ १ अग्निस्तापसः । २ । ३ वामदेवः कश्यपः असितो देवलो वा । ४ सोमाहुतिर्भार्गवो भगाहुतिः सोमो वा । ५ पायुर्भारद्वाजः । ६ प्रस्कण्वः ॥ देवता—१ विश्वेदेवाः । २ अंगिरसः ॥ अनुष्टुप् ॥

९०—'कश्यपः पश्यको भवति । शत० । २. श्रदिति: सत्यनाम; नि० ३ । १० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[९१] सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ १ ॥
ऋ० १० । १४१ । ३ ॥

भा०—हम (सोमम्) शान्तिदायक सब जगत् के प्रेरक और उत्पादक (राजानम्) प्रकाशमान, (वरुणम्) सब पापों के निवारक, (अग्निम्) ज्ञान-स्वरूप, सन्मार्ग के नेता परमेश्वर का (अनु आ रभामहे) प्रतिदिन स्मरण करते हैं। (च) और (आदित्यम्) रसों के देने और ग्रहण करने हारे, अखण्ड, (विष्णुम्) सर्वत्र व्यापक (सूर्यम्) सब के प्रेरक, सर्वप्रकाशक, (ब्रह्माणम्) सब से महान्, ज्ञान के भण्डार (बृहस्पतिम्) वेदवाणी के स्वामी का नित्य स्मरण करते हैं, उसी का आश्रय लेते हैं।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
[९२। इत एत उदारुहन्दिवः पृष्ठान्यारुहन् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
प्र भूर्जयो यथा पथो द्यामङ्गिरसो ययुः ॥ २ ॥
(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(भूर्जयः[1]) पृथिवी को विजय करने हारे राजर्षि लोग (यथा) जिस प्रकार के (पथः) मार्ग से (द्यां प्रययुः) तेजोमय, द्यौलोक, या आदित्य लोक, प्रकाशमयलोक या स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार के मार्ग से (एते) ये (अंगिरसः) योगी, आत्मज्ञानी लोग भी (इतः) इस लोक से (दिवः पृष्ठानि) आदित्य के समान प्रकाशमान मोक्ष के आनन्दमय, सुखमय लोकों को (उद् आरुहन्) ऊर्ध्वगति से प्राप्त करते हैं। अपने १ धर्म के पालन से राजर्षि और ब्रह्मर्षि दोनों समान लोक में

९१— सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे । आदित्यान्०' इति ऋ० ।

९२—१. भूर्जयः भृज्जतिः पाककर्मा । हविषां पक्तारः इति सा० । भू–जयः इति पदकारः । भूः पृथिवी तां ये महावीराख्येनानुष्ठानेन जितवन्तः, ते इति (मा० वि०) भूर्जयः कार्ष्णि' ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं। अथवा (भूः) गृहस्थाश्रम को विजय करके आश्रम परम्परा से निकलकर कर्मिष्ठ लोग जिस मार्ग से मोक्ष का लाभ करते हैं उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी गृहस्थ में न जाकर भी मोक्षमय लोकों को ज्ञान के बल से प्राप्त करते हैं। मोक्षलोक, स्वर्गलोक, नरक आदि कोई पृथक् लोक नहीं, प्रत्युत इस महान् विश्व में ही आत्मा की वे दशाएं है जिनमें वह ब्रह्मानन्द के सुख प्राप्त करता है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[९३] राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईडिष्वा हि महे वृषन् द्यावा होत्राय पृथिवी ॥ ३ ॥
(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे अग्ने ! हे (वृषन्) आत्मा और मानस में आनन्द की वर्षा करने वाले प्रभो ! (त्वा) तुझको (महे) बड़े भारी विशाल (राये) अनुपम धन के निमित्त, (दानाय) अपने को आत्मसमर्पण करने के लिये हम साधक लोग (समिधीमहि) उत्तम रीति से योग द्वारा प्रज्वलित करते हैं (हि) क्योंकि (द्यावापृथिवी) द्यौलोक और पृथिवी लोक दोनों (महे होत्राय[1]) उसी परमेश्वर रूप कालाग्नि में बड़ी भारी आहुति के लिये हैं। हे साधक ! तू भी उसी की (ईडिष्व) स्तुति कर, उसी का भजन, उपासना कर।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २
[९४] दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्मेति वेरु तत्।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥ ४ ॥
ऋ० २ । ५ । ३ ॥

९३—१. होमग्रहणञ्चात्र प्रदर्शनार्थम् । मा० वि० ।

१. दधन्वे धारयति धारणेनात्र श्रवणं लक्ष्यते । मा० वि० ।

९४—'ब्रह्मापि वेरुत' इति ऋ० । 'मिवाभवत्' इति ऋ० । भर्गाहुतिः सोम ऋषिरिति सा०, दया:० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(ईम्) इस अग्नि को लक्ष्य करके ही (दधन्वे) अध्वर्यु आदि याज्ञिक जिसको धारण करते या शिष्यगण गुरुमुख से श्रवण और स्मरण करते हैं और वे होता या शिष्य आदि (ब्रह्म) वेदमन्त्र का (अनुवोचद्) पुनः पाठ या उच्चारण करते हैं (तत् उ) वह सब भी (वेः उ) ज्ञानवान् प्रकाशस्वरूप अग्नि के सम्बन्ध में ही है। क्योंकि (नेमिः चक्रम् इव) जिस प्रकार लोहे का हाल चक्र के चारों ओर उसको ढके और थामे रहता है उसी प्रकार वह अग्नि भी (विश्वानि काव्यानि) समस्त विद्वानों के बनाये काव्यों, ग्रन्थों और कार्यों को (आ भुवत्) व्याप रहा है। अर्थात् समस्त विश्व का साहित्य, इस प्रभु की ही महिमा का गान करता है।

[९५] प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्ज वीर्यम् ॥ ५ ॥
ऋ० १० । ८७ । २५ ॥

भा०—हे अग्ने ! (यातुधानस्य) हिंसक दुष्ट पुरुष का (विश्वतःपरि) समस्त संसार पर जो (हरः) उनके प्राण हरण करने वाला अत्याचारकारी बल है उसको (हरसा) दुष्ट के प्राण निकालने वाले बल, क्रोध, मन्यु से (शृणाहि) नाश कर। और (रक्षसः) दुष्ट राक्षस के (बलम्) बल, सेनाबल, (वीर्यम्) सामर्थ्य और बीज को भी (न्युब्ज) नाश कर डाल।

[९६] त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ ६ ॥
ऋ० १ । ४५ । १ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रभो ! तू (इह) इस संसार में (वसून्) सृष्टि को

९५—'शृणीहि' इति ऋ० । 'विरुज वीर्यम्' इति ऋ० ।
९६—घृ क्षरणदीप्त्योः । जुहोत्यादिः । घृतप्रुषम् तेजःप्रसारकम् । मा० वि० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसाने वाले और जीवन के मूलकारण पृथिवी आदि आठों वसुओं को (रुद्रान्)दुष्टों को रुलाने वाले, या मूढों को अन्तकाल में दुखदायी. ११ रुद्रों, नाणों को और आदान विसर्ग का कार्य करनेवाले १२ आदित्यों मासों को और (मनुजातम्)अपने मनन सामर्थ्य से उन्नतरूप में प्रकट हुए, (घृतप्रुषम्[१]) ज्ञान और कर्म से भरपूर या तेज से पूर्ण, या ज्ञान के प्रसारक जलवर्षी मेघवत् सर्वप्रिय (स्वध्वरं जनम्) सब के रक्षक, अहिंसक, मनुष्य को (यज) अपनी संगति में रख

मनुष्य सब प्राणियों से इसी बात में उन्नत है कि वह १. 'मनुजात' मननशक्ति से बना हुआ. २. 'घृतपुषम्' अपना तेज दूसरों पर फैलाने वाला, सर्वसुखदायक, ३. 'स्वध्वरं' किसी प्राणहिंसा न करने वाला हो। इन तीन गुणों के कारण वह परमात्मा के संग का लाभ करता है और देवतुल्य हो जाता है। इति द्वितीयोर्धः ।

इति दशमी दशतिः । इति दशमः खण्डः ॥ इति प्रथमः प्रपाठकः समाप्तः ॥

अथ द्वितीयः प्रपाठकः (प्रथमोऽर्धं)

॥ दशतिः १ ॥ १ दीर्घतमा औचथ्यः । २, ४ विश्वामित्रो गाथिनः । ३ गोतमो राहूगणः । ५ त्रित आप्त्यः ६ । इरिम्बिठिः काण्वः । ७, ८-१० विश्वमना वैयश्वः । ६ अजिह्वा भारद्वाजः । ५ पवमानः । ६ अदितिः ॥ उष्णिक् ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[६७] पुरु त्वा दाशिवां वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥१॥ ऋ० १ । १५० । १ ॥

भा०—हे अग्ने ! तू (दाशिवान्) नाना प्रकार के पदार्थों को देने हारा (अरिः[१]) स्वामी, ईश्वर है । अतः मैं (तव स्विद्) तेरी ही (पुरु आ वोचे)बहुत अधिक स्तुति करता हूं । और(महस्य)बड़े(तोदस्य इव[२])

६७—'दाश्वान्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहस्थ के आश्रय में सेवक के समान तेरे ही (शरणे आ) शरण में आता हूं।

[९८] प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत्।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥२॥ ऋ० ३।१०।५॥

भा०—हे मनुष्यो! (होत्राय) होता, समस्त संसार को अपने महान् जठरानल में प्रलय काल के अवसर पर आहुति करलेने वाले, वा सर्वोपदेष्टा सर्वप्रद, कृपालु, (विपाम्) विद्वानों वा वेदवाणियों के (ज्योतींषि) ज्ञान और ब्रह्मचर्यादि तपोयुक्त गुणों और सूर्य, अग्नि विद्युत् आदि प्रकाशों को (बिभ्रते) धारण करनेहारे, (वेधसे न[1]) सर्व-विधाता के समान, सब के उत्पादक (अग्नये) उस ईश्वररूप अग्नि के लिये (बृहत् वचः) विशाल ज्ञानसम्पन्न व्यक्त वाणी वेद को (भरत) प्राप्त करो, उसका उपदेश कर औरों तक पहुंचाओ, अध्ययन करो, कराओ।

[९९] अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो।
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥३॥ ऋ० १।७९।४॥

भा०—हे अग्ने! तू (गोमतः) पशु रश्मियों और इन्द्रियों तथा वेदवाणियों से सम्पन्न (वाजस्य) अन्न, धन, ज्ञान और वीर्य का (ईशानः) स्वामी है। हे (सहसो यहो) बलपूर्वक प्रकट होने वाले, महान्, (जातवेदः) सर्वज्ञ, सर्वैश्वर देव! (अस्मे) हमें (महि) बहुत उत्तम (श्रवः) अन्न, धन, कीर्ति और ज्ञान का (देहि) दान कर।

---

१. अरिरमित्र ऋच्छतेः। ईश्वरोऽप्यरिरेतस्मादेव निरु० (५।२।२।) अरिरीश्वर इति मा० वि०। शिक्षकः अरिरर्यो सेवकः इति सा०।

२. तोदः गृहस्थः इति मा० वि०।

९८—१. वेधा जगद्विधाता परमेश्वरः आदित्यादीनि ज्योतींषि करोति इति सा०।

९९—'अस्मे धेहि' इति ऋ०। विपां वाचाम्, भरतः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१००] अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज ।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥३॥ ऋ० ३।१०।७॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! तू (यजिष्ठः) सब से अधिक यजनशील, दानी, संगतिकारक है। तू (अध्वरे) पुण्य दानादि कार्य में (देवयते) विद्वानों और देव, ईश्वर की कामना करते हुए पुरुष के लिये (देवान्) विद्वानों को (यज) एकत्र कर, परस्पर संगति करा। तू स्वयं (होता) सब को दान देने और देव लोगों को आह्वान करने वाला, (मन्द्रः) सब को प्रसन्न करने वाला होता हुआ (स्रिधः) हिंसक शत्रुगण को (अति वि राजसि) अतिक्रमण करके विशेषरूप से उन पर शासन करता है, उन पर विराट् होकर रहता है।

[१०१] जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये ।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥५॥ ऋ० ६।१०२।४॥

भा०—(अयम्) यह (ध्रुवः) नित्य, कभी विचलित न होने वाला, (सप्त मातृभिः[1]) सात माताओं, सृष्टि के निर्माता पांच भूत, महत्, अहंकार इनसे (जज्ञानः) सृष्टि को प्रकट करता हुआ (श्रिये) अपने विभूतिरूप शोभा या आश्रय के लिये (मेधाम्) उत्तम धारणा शक्ति पर (आशासत) वश करता है। वही परमेश्वर (रयीणाम्) समस्त ऐश्वर्यों को (आ चिकेतत्) भली प्रकार से जानता है।

अध्यात्म में—यह ध्रुव आत्मा परमात्मा, इन्द्रियोंसे ज्ञान करता हुआ

१००—'स्रुधः' मा० वि०।

१०१—'जज्ञानं सप्तमातरः', 'वेधामशासत' 'चिकेतयत्' इति ऋ० 'अचिकेतयत' इति। सा०।

१. सप्त मातरः—सप्त छन्दांसि 'सप्त होत्राः' सप्त सोमसंस्था, इति मा० वि०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(श्रिये) अपने कल्याण के लिये (मेधाम् आशासत) मेधा बुद्धि को धारण करता है । (रयीणाम्) सब प्राणों के वीर्यों को जानता है ।

सप्त मातरः=सात प्रमाता, ज्ञान साधन, सात मुख्य प्राण हैं जिनको उपनिषत्कार सात ज्वाला, सात ऋषि, सात रथ, सात अश्व, सात अग्नि सात वह्नि आदि नामों से पुकारते हैं । 'नाचिकेत' अग्नि ध्रुव अग्नि है जिसका ज्ञान अध्रुव यज्ञकाण्ड से नहीं होता । "नह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्" । का० उप० ।। इनको ही सात छन्द, सात होता, सात सोम संस्थाओं के नामों से भी पुकारते हैं ।

[१०२] उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् ।
सा शन्ताता मयस्करदप स्रिधः ॥३॥ ऋ० ८ । १८ । ७॥

भा०—(उत स्या) और वह (अदितिः[1]) कभी खण्डित न होने वाली, दृढ, ईश्वरीय बलवती, सत्य (मतिः) मननशक्ति (दिवा) प्रतिदिन (ऊत्या) हमारी रक्षा के लिये (नः आगमत्) हमें प्राप्त हो । (सा) वह (शंताता) शान्ति उत्पन्न करने वाली (मयः करत्) आभ्यन्तर सुख और आनन्द उत्पन्न करे । और (स्रिधः[2]) शत्रु या दोष जिनका सत्य ज्ञान से बाध होना सम्भव है, ऐसे भ्रम, अज्ञान और विपर्यय मिथ्या ज्ञानों को वह (अप) दूर करे ।

[१०३] ईडिष्वा हि प्रतीव्यां३ यजस्व जातवेदसम् ।
चरिष्णु धूममगृभीतशोचिषम् ॥७॥ ऋ० ८ । २३ । १ ॥

भा०—(जात-वेदसं) पदार्थों का ज्ञान करने वाले, (चरिष्णु) व्याप-

---

१०२–'शन्ताति,' 'उतत्या' इति पाठभेदौ । 'स्रधः' 'स्रिधः' इति पाठभेदौ ।

१. सकलप्रपञ्चधारणेष्वदीना इतिस्कन्दस्वामी । अदितिर्देवमाता (भा० वि०)

२. स्रिधिर्बाधनार्थः (सा०)

१०३–'प्रतीव्यं इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक, दूरगामी ज्ञान-साधनों से सम्पन्न, (धूमम्) सबको कंपाने वाले, सब के प्रवर्त्तक, (अगृभीत-शोचिषम्) अप्रतिहत कान्ति से सम्पन्न, कभी न बुझनेवाले, अमर, (प्रति-व्यां) प्रत्येक देह या पदार्थ में व्यापक आत्मस्वरूप या ब्रह्मस्वरूप अग्नि को ही, हे पुरुष! तू (ईडिष्व हि) उपासना किया कर और (यजस्व) उसी को प्राप्त कर, उसी में आत्मसमर्पण कर।

[१०४] न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः।
यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥८। ऋ० ८। २३। १५॥

भा०—(यः) जो पुरुष (हव्य-दातये) ज्ञानदाता (अग्नये) अग्नि ज्ञानस्वरूप तेजस्वी परमेश्वर, परमात्मा और आचार्य के प्रति अपने को (ददाश) समर्पण कर देता है (तस्य) उस पुरुष का (रिपुः) शत्रु (मर्त्यः चन) मनुष्य भी (मायया) बुद्धि द्वारा (न ईशीत) कभी उस पर वश नहीं कर सकता।

[१०५] अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम्।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥९॥ ऋ० ५। ५१। १३॥

भा०—हे (सत्पते[1]) सत्पुरुषों, आर्यों के प्रतिपालक! (त्यम्) उस (वृजिनम्) पापशील त्याग करने योग्य, (रिपुम्) हिंसक शत्रु, (स्तेनम्) चोर, (दुराध्यम्) दुःख से वश करने योग्य, (दविष्ठं) हृदय से दूर, द्वेषी पुरुष को (अप-अस्य) दूर कर। और हमारे लिये उसको (सुगम्) सुख से वश करने योग्य (कृधि) बना।

[१०६] श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते।
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥१०॥ ऋ० ८। २३। १४॥

१०४—'हव्यदातिभिः' इति ऋ०।
१०५—१. सतां आर्याणां पालयितः भरतस्वा०। श्रुष्टीति क्षिप्रनाम। मा० वि०। श्रुष्टी प्रीत्या। भरतस्वा०।
१०६—'तपुषा' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (वीर) वीर्यवन्) हे विश्पते ! प्रजाके पालक ! (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! (मे) मेरे (नवस्य) नूतन (स्तोमस्य) स्तुति को (श्रुष्टी[1]) प्रेम पूर्वक श्रवण करके शीघ्र ही (मायिनः) माया छल, कपट आदि से युक्त, मायावी (रक्षसः) राक्षसों और दुष्ट भावों को (तपसा) अपने तेज से (नि दह) सर्वथा भस्म कर ।

इति प्रथमा दशतिः । इत्येकादशः खण्डः ॥

॥ दशतिः २ ॥ १,४ प्रयोगो भार्गवः सौभरिः काण्वो वा । २, ३, ५, ६, ७, सौभरिः काण्वः । ८ विश्वमना: वैयश्वः ॥ ककुप् (उष्णिक्) ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१०७] प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
३ १ २ ३ १ २
उप स्तुतासो अग्नये ॥१॥ ऋ० ८ । १०३ । ८ ॥

भा०—(मंहिष्ठाय[1]) सबसे अधिक दानशील (ऋताव्ने) यज्ञ करने हारे, सूर्यवत् सत्य प्रकाशमय, (बृहते) महान्, (शुक्र-शोचिषे)देदीप्यमान, कान्ति से युक्त (अग्नये) प्रकाशस्वरूप, ज्ञानी परमेश्वर का (उप स्तुतासः[2])हे स्तोतागण ! (गायत) उत्तम रूप से कीर्तन करो ।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१०८] प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
२ ३ १ ३ १ ३र
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥२॥ ऋ० ८ । १९ । ३० ॥

भा०—हे अग्ने ! (यस्य) जिसके (त्वम्) तू (सख्यम्) मैत्रीभाव को (आविथ) प्राप्त कर लेता है (सः) वह (तव) तेरे (सुवीराभिः) उत्तम शक्तिसम्पन्न (ऊतिभिः) रक्षासाधनों द्वारा और (वाजकर्मभिः)

१०७–१. श्रुष्टि इति स्नात्व्यादयश्चेति निपातितः । वलोपश्छान्दसः ।
१०८–'सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः' इति ऋ० ।
'सख्यमावरः' इति ऋ० । 'आवरे' इति स० सा० ।
वाजभर्मभिः इति पाठः शुद्धः, साम्नो 'वाजभर्मीय' इत्याम्नानात् (अनु०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्न के उत्पादन और ज्ञान के सम्पादन और बल के कार्यों से (तरति) सब विघ्नों को पार कर जाता है, सम्पन्न होजाता है।

[१०९] तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे।
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥३॥ ऋ० ८। १९। १॥

भा०—हे मनुष्य! (तं) उस (स्वः-नरं) सब के नेता, उसे सुखस्वरूप, मोक्षमार्ग के पथदर्शक, परम (देवम्) देव की (गूर्धय) स्तुति कर, उसके गुणों का गान कर। (देवासः) देव, विद्वान लोग, इन्द्रियां या पंचभूत उस (देवम्) प्रकाशमान देवको (अरतिम्[1]) सर्वज्ञ या अति प्रीतिमान् स्वामी (दधन्विरे) स्वीकार करते हैं। वह (देवत्रा) दिव्यगुण सम्पन्न विद्वानों पञ्चभूतों और इन्द्रियों में (हव्यम्) उनके भीतर शक्ति, ज्ञान और भोग्य पदार्थों को (ऊहिषे) पहुंचाता है।

[११०] मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः।
यः सुहोता स्वध्वरः ॥४॥ ऋ० ८। १०३। १२॥

भा०—हे मनुष्य! (नः) हमारे (अतिथिम्) अतिथि के समान पूजनीय देव के प्रति (मा हृणीथाः[2]) क्रोध या अनादर भाव मतकर। (एषः) यह (पुरु-प्रशस्तः) बहुत उत्तम प्रशंसा और आदर करने योग्य है। वह (वसुः) वास देने योग्य सबके भीतर बसने वाला और सबको बसाने वाला (अग्निः) अग्नि के समान ज्ञानरूप प्रकाश से सम्पन्न है। (यः) जो (सु-होता) उत्तम पदार्थों का दाता और प्रतिगृहीता और (सु-अध्वरः) उत्तम हिंसा रहित श्रेष्ठ कार्यों का अनुष्ठाता पालक है।

१०९–'गूर्धया,' 'हव्यमोहिरे' इति ऋ०।

[1] अरतिम् अलंमतिं सर्वज्ञमिति मा० वि०।

११०–'मा नो हृणीतामतिथिर्वसु' इति ऋ०। [2] मा हृणीथाः मा क्रोत्सीः इति। मा० वि०। हृणिः क्रुध्यतिकर्मा। नि० २। १२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

[१११] भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।

३ २ ३ १ २र

भद्रा उत प्रशस्तयः ॥५॥ ऋ० ८ । १९ । १९ ॥

भा०—(नः) हमारा (आहुतः) भली प्रकार उपासित, (अग्निः) परमेश्वर (भद्रः[3]) हमारे कल्याण के लिये हो । हे (सुभग) उत्तम ऐश्वर्यवान् अग्ने ! परमेश्वर ! (रातिः) हमारा दिया दान हमें (भद्रा) कल्याणकारी, सुखकारी हो । हमारा (अध्वरः) हिंसारहित कार्य, यज्ञ भी (भद्रः) कल्याणकारी सुख शान्ति और ऐश्वर्य का दायक हो, (उत) और (प्रशस्तयः) हमारे संकीर्त्तन आदि भी (भद्रा) कल्याणकारी सुखप्रद हों।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

[११२] यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥६॥ ऋ० ८ । १९ । ३ ॥

भा०—(यजिष्ठम्) दान आदि करने हारे, सर्वोपास्य (देवत्रा देवम्) देवों के देव, (होतारम्) सब पदार्थों के दाता, (अमर्त्यम्) अविनाशी मरणरहित, (अस्य यज्ञस्य) इस जीवनयज्ञ के (सुक्रतुम्) उत्तम प्रकार से सम्पादन करने हारे (त्वा) तुझको (ववृमहे) हम वरण करते हैं, तेरा भजन करते हैं।

१ २ ३ १ २र २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

[११३] तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासाहा सदने कञ्चिदत्रिणम् ।

३ १ २र ३क २र

मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥७॥ ऋ० ८ । १९ । १५ ॥

भा०—(अग्ने) अग्ने! परमेश्वर! (तद्) वह (द्युम्नम्) अन्न, धन, ज्ञान और बल (आ भर) हमें प्राप्त करा, जो (सदने) हमारे घरमें, यज्ञगृह में, हमारे शरणस्थान में (कञ्चित्) हर किसी प्रकार के (अत्रिणम्) पापभोगी चोर (जनस्य मन्युम्) सर्वसाधारण प्राणियों के क्रोधके पात्र (दूढ्यम्[1]) दुष्ट पुरुष को (सासाह) दबासके।

११३–'यत्सासहत्सदने' जनस्य 'दूढ्यः' इति ऋ० । 'दूढ्या' इति च स०सा० ।

१. दूढ्यः दुर्धियः पापधिय. इति नि० ५ । ४ । ३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २र ३ १ २ ३ २ २र ३ १ २ ३ २
[११४] यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।
२उ ३ २उ ३ १ २
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ ८ ॥ ऋ० ८।२३।१३॥

भा०—(यद्वा उ) जब भी (शितः) मन्यु और न्याय युक्त व्यवस्था के भंग होने पर तीक्ष्ण हुआ (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक, प्रभु (मनुषः विशे) मनुष्यों और प्रजाओं के निमित्त (सुप्रीतः) प्रसन्न, दत्तचित्त होता है, तब (अग्निः) अग्नि स्वभाव, पापों का दाहक तेजस्वी वह (विश्वा इत्) सब प्रकार के (रक्षांसि) राक्षसों को (प्रति सेधति) दूर करता है ।

राजा प्रजा को बसाने के लिये प्रजा के घातक प्राणियों और आततायी पुरुषों को तीक्ष्ण स्वभाव होकर दूर करे और प्रजा पर सदा प्रसन्न रहे ।

अध्यात्म पक्ष में—विश्पति, इन्द्रियों का राजा आत्मा जब योगादि साधनों से तीक्ष्ण होकर इस देह में स्वच्छ निर्मल, सुप्रसन्न हो जाता है तब वह आसुरी वृत्तियों पर विजय पाता है और व्युत्थानों को दूर करता है

इति द्वितीया दशतिः । इति द्वादशः खण्डः ।

इत्याग्नेयं (पर्व) काण्डम् ।

इति प्रथमोऽध्यायः ।

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकारमीमांसातीर्थविरुदोपशोभितश्रीमत्पंडितजयदेवशर्मणा विरचिते सामवेदालोकभाष्ये आग्नेयं काण्डं समाप्तम् ।

११४—'मनुष्यो विशि' इति ऋ० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

अथ ऐन्द्रं काण्डम् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

॥ दशतिः ३ ॥ ऋषिः—१ शंयुर्बार्हस्पत्यः । २ श्रुतकक्षः सुकक्षो वां आंगिरसः । ३ हर्यतः प्रागाथः । ४, ५ श्रुतकक्षः (ऋ०) सुकक्षोवा ५ (सुकक्षः) आंगिरसः । ६ इन्द्रमातरो देवजामय ऋषिकाः । ७, ८ गोषूक्तयश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । ९ मेधातिथिराङ्गिरसः । १० काण्वः ॥ गायत्री ॥

१ २ ३१ २र ३ १ ३ १ २
[११५ तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
२उ ३ २ ३ १ २
शं यद्गवे न शाकिने ॥१॥ ऋ० १ । ४५ । २२ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) तुम लोग (सत्वने[1]) वीर्यवान्, सत्य-स्वरूप, सदा विद्यमान रहने वाले (पुरुहूताय[2]) इन्द्रियगण, प्रजाओं और मनुष्यों द्वारा ज्ञान धन और भक्ति द्वारा पूजित (गवे) गौ, पृथ्वी और वेदवाणी के विद्वान् वा वृषभ के तुल्य (शाकिने न) शक्ति-मान् राजा, बैल या किसान के समान (यत्) जो (शं) कल्याणकारी है (तत्) उस इन्द्र का (सुते) अपने यज्ञ में (सचा) एक साथ मिलकर (गायत) कीर्तन करो ।

१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[११६] यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
१ २ ३ १ २र
तेन नूनं मदे मदेः ॥२॥ ऋ० ८ । ९२ । १६ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं और क्रियाओं में कुशल ! हे (इन्द्र[2]) ऐश्वर्यशील ! (यः) जो (ते) तेरा (द्युम्नितमः) कीर्तिजनक, ऐश्वर्यपूर्ण (मदः) हर्ष का कारण आनन्द रूप है (तेन)

११५—१. सत्वने 'शत्रूणां सादयित्रे' सा० । सन्=सत्यं तद्वते ।
२. पुरु इति इन्द्रियम् । दया उणा० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीसे (मदे) तृप्तिकारी आनन्दरस में तू (मदेः) स्वयं भी प्रसन्न रह और हमें भी प्रसन्न कर ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[११७] गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
३ १ २र ३ १ २
उभा कर्णा हिरण्यया ॥३॥ ऋ० ८ । ७२ । १२ ॥
यजु० । ३३ । १९ ॥

भा०—हे (गावः) गौओ ! वाणियो ! रश्मियो ! नदियो ! (अवटे[1]) यज्ञस्थान, रक्षास्थान, ईश्वररूप गंभीर स्थान में (उप वद) आओ, अपना तात्पर्य प्रकाशित करो । अर्थात् गौएं जिस प्रकार रक्षास्थान में, रश्मियें सूर्यमें और नदियें गंभीर गर्त्त, जलाशय या समुद्रमें आश्रय पाती हैं इसी प्रकार हे वाणियो ! तुम सकल रक्षक परमेश्वर में लगती हो । (मही) विशाल यह पृथ्वी और यह द्यौलोक (यज्ञस्य) यज्ञ का (रप्सुदा) उत्तम फल देनेवाले हैं । (उभा) दोनों (हिरण्यया) हरणशील, भोग्य लोकों के प्राप्त कराने में (कर्णा) साधनभूत हैं ।

[टि०—इस मन्त्र पर सब भाष्यकारों के मत भिन्न २ हैं । यजुर्वेद में महीधर और उवट के मत में—"वे गौएं कूए के समीप आवें और पृथ्वी और द्यौ यज्ञका फल देनेवालीहैं और इनके दोनों कान सोने के हैं।" सायण के मतसे="हे (गावः) यज्ञकर्त्ताओ ! तुम महावीर के पात्र की स्तुति करो यह यज्ञ का फल देता है । उस कूण्डे के दोनों कान सोनेके हैं।" स्वामी तुलसीराम के मत से-'यज्ञकुण्ड के समीप हे वाणियों !

११७—उपावतावतं इति पाठभेदः, ऋ०

१. यजुर्वेदे अवतं इत्यस्य अवटं गर्त्तमिति उवटमहीधरयोः सम्मतोर्थः अवती-त्यवतं रक्षास्थलं । अवट कूपम् ! रक्षादायकत्वादेव इन्द्रोप्यवटशब्दवाच्यः शरण्यत्वादेव । अवतीत्योम् । समानधातुवशाद् ओंकारः परमेश्वर एव सर्वस्तुतिवाचां शरणमित्यवदातम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम इन्द्रकी स्तुति करो जिससे यज्ञभूमि वेदपाठके प्रवाहवाली हो और श्रोताओं के दोनों कान प्रकाशमय हों ' इनमें कर्मकाण्ड को लक्ष्य करके यज्ञ के विनियोग के अनुसार सायण महीधरादि की पदयोजना संगत है। परन्तु अध्याहार और उन्नेयार्थता का दूषण है। यही दोष तुलसी-रामजी के अर्थ में भी है। हमारी सम्मति में 'ओम्', 'अवत' 'अवट' ये तीनों शब्द रक्षार्थक अव धातुसे बने हैं, इसलिये यह मन्त्र परमात्मा की स्तुति पर लगना चाहिये।]

[११८] अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे ।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४॥ ऋ० ८ । ९२ । २५ ॥

भा०—हे (श्रुतकक्ष) हे वेदविज्ञान को अपने कुक्षि अर्थात् हृदय में रखने वाले या कक्षा, ज्ञान-प्रकाशक वेदवाणी का श्रवण करने हारे ! विद्वन् ! (अश्वाय अरं गायत) व्यापक प्रभु या शीघ्र गमनशील, भोक्ता आत्मा के गुणों का वर्णन कर। (गवे अरं) गो ज्ञानस्वरूप आत्मा या इन्द्रियों में श्रेष्ठतम, इन्द्रियस्वरूप अन्तरात्मा का या ज्योति, रश्मि-रूप भीतरी रत्न का उत्तम रीतिसे वर्णन कर। हे विद्वानों ! (इन्द्रस्य[1]) सब इन्द्रियों के मालिक स्वयं इन्द्र, महान् आत्मा के (धाम्ने तेजः) सामर्थ्य का (अरं गायत) खूब गुण गाओ।

[११९] तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥५॥ ऋ० ८ । ९३ । ७ ॥ स० १२२२

भा०—(तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र ऐश्वर्यवान् प्रभुकी हम (वाजयामसि) ज्ञानपूर्वक स्तुति करते हैं। (महे) बड़े भारी (वृत्राय) विघ्नकारी ज्ञान

११८—'श्रुतकक्षो अरं' इति ऋ०।

१. इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा (पा० अ० ५ । २ । ९३) इतीन्द्रशब्दाद् घच् । इन्द्रियम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आवरण करने वाली तामस प्रवृत्तियों को (हन्तवे) विनाश, करने के लिये (सः) वह (वृषभः) ज्ञान और सुखों की वर्षा करने वाला और (वृषा) समर्थ, बड़ा बलवान् (भुवत्) है ।

१ २ ३ २ ३२३१२ ३१ २र

[१२०] त्वामिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।

१ २र३ १ २र

त्वं सन् वृषन् वृषेदसि ॥६॥ ऋ० १०। १५३। २॥

भा०—हे इन्द्र ! (त्वम्)तू (बलाद्)बल से,और(सहसः) शत्रुदमनकारी सहनशक्ति से (ओजसः) कान्ति और प्रभाव से (जातः सन्) प्रकट होकर ही (वृषन्) हे वृष तुल्य ! सबके भीतर उत्पादक शक्ति के देनेहारे ! समस्त सुखों के वर्षक ! (त्वं) तू (वृषा इद्) वृषा, वीर्य सेचन में समर्थ ही (असि) है, तू ही सबमें बलवान् श्रेष्ठ और सबका जन्मदाता और मूल कारण है।

३१ २र ३ २उ ३ १ २

[१२१] यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्त्तयत् ।

३ १ २ ३२ ३ २

चक्राण ओपशं दिवि ॥ ७ ॥ ऋ० ८। १४। ५ ॥

भा०—(यज्ञः)यज्ञ, प्रजापति (इन्द्रम्)आत्मा को(अवर्धयत्)बढ़ाता है (यद्) क्योंकि यज्ञ ही (दिवि) सूर्यके आश्रय, आकाश में (ओपशम्) लटकाकर (आ चक्राणः) चक्र के समान चलाता हुआ (भूमिं) भूमि को (वि अवर्तयत्) विशेषरूप से वृत्तगति में घुमाता है। इस अर्थ से 'इन्द्र' का अर्थ 'सूर्य' और 'यज्ञ का अर्थ 'सौर जगत्' या प्रवर्त्तक प्रजापति होता है। समस्त ब्रह्माण्ड में इस सौर जगत् के अनुकरण में ही यह यज्ञवेदी और छोटे अनुपात में यह देह रूप यज्ञभूमि बनी है, वेदमन्त्रों में समान रूप से तीनों का वर्णन किया गया है। अध्यात्म पक्ष में—इस जीवन यज्ञ ने इन्द्र, आत्मा के सामर्थ्य को बढ़ा दिया है अर्थात् देहरूप कर्मभूमि को नाना प्रकार की प्रवृत्तियों में बहने दिया और द्यौलोक रूप मस्तक में वह विद्यमान है, इत्यादि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २
[१२२] यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
३ २ ३ १ २
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ ८ ॥ ऋ० ८ । १४ । १ ॥

भा०—हे इन्द्र ! (यथा) जिस प्रकार (त्वम्) तू (एक इत्) अकेला ही (वस्वः) धन, विभूति, ज्ञान, जीवन-शक्ति को (ईशीय) वश करता है उसी प्रकार (यद्) यदि (अहम्) मैं जीव भी अपनी इन्द्रियों और वसुरूप प्राणों को वश करने में समर्थ होजाऊं तो (गो-सखा) इन्द्रियों के समान ही ख्याति से सम्पन्न यह (मे) मेरा आत्मा भी (स्तोता) इस ईश्वर, महान् आत्मा की स्तुति करने वाला (स्यात्) होजाय ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१२३] पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय ।
१ २ ३ २ ३ १ २
सोमं वीराय शूराय ॥ ६ ॥ ऋ० ८ । २ । २५ ॥

भा०—हे (सोतारः) ज्ञान सम्पादन करने वाले साधन मेरे इन्द्रियो ! अथवा हे ज्ञानयोगी पुरुषों ! (मद्याय) सबसे अधिक प्रसन्न होने वाले (वीराय) सामर्थ्ययुक्त वीर, विशेष प्रकार से तुम सबको प्रेरणा देने वाले, (शूराय) बलवान्, पराक्रमी आत्मा या परमात्मा के विषयक (पन्यं-पन्यम्) प्रशंसनीय, उत्तम २ (सोमम्) यथार्थ अनुभव रूप आनन्दरस को (आ धावत) प्राप्त करने के लिये शीघ्र पहुंचो, शीघ्रता करो ।

संवित्-सिद्धि प्राप्त करने वाले साधक की यही भावना होती है ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१२४] इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
१ २ ३ १ २
अनाभयिन् ररिमा ते ॥ १० ॥ ऋ० ८ । २ । १ ॥

भा०—हे (वसो) शरीर में बसने वाले देव ! या शरीर में दश

१२२—'गोषखा' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियों और अन्तःकरण आदि को बसाने वाले इन्द्र! आत्मन्! तू (इदम्) इस (सुतम्) उत्पन्न किये (अन्धः) अन्न, जीवन-धारण सामर्थ्य को (सुपूर्णम् उदरम्) खूब पेट भर कर (पिब) ग्रहण कर। हे अनाभयिन्) भयरहित वीर! यह सब सोम आदि आत्मा (ते) तेरे लिये हम (ररिम) देते हैं. भेंट करते हैं।

"भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः" इत्यादि, उपनिषद् की यहीं संगति होती है। आत्मा को राजा के दृष्टान्त से बृहदारण्यक में उत्तम रीति से समझाया है।

इति तृतीया दशतिः। इति प्रथमः खण्डः॥



॥दशतिः ४॥ ऋषिः—१, २ सुकक्षश्रुतकक्षावांगिरसौ। ३ भारद्वाजः। ४ श्रुतकक्षः। ५, ६ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। ७, ९, १० त्रिशोकः काण्वः। ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणः। गायत्री॥

२३ ३ २ ३१ २ ३ १ २
[१२५] उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्। (१४५०)
१ २
अस्तारमेषि सूर्य॥ १॥ ऋ० ८। ९३। १॥

भा०—हे (सूर्य) समस्त जगत् को प्रेरणा करने वाले आत्मन्! तू (श्रुतामघम्) प्रसिद्धि, धन ज्ञान और कीर्त्ति सम्पन्न (वृषभम्) सुख और आनन्द की वर्षा करनेवाले, सर्वश्रेष्ठ (नर्यापसम्) मनुष्यों के हितकारी कार्य करने और मनःसंकल्प करने वाले, (अस्तारम्) अपने प्रतिपक्षियों और काम, क्रोध आदि शत्रुओं को मार गिराने वाले. पराक्रमी वीर पुरुष के प्रति (इद् ह) ही तू (उद् एषि) ऊपर उठता है, उदित होता है।

सदाचारी, परोपकारी, काम, क्रोधादि के जीतने वाले पुरुषपुंगव का आत्मा सूर्य के समान उन्नति को प्राप्त होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१२६] यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य ।
२ ३ १ २ ३ १ २
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ २ ॥ ऋ० ८ । ९३ । ४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन) सूर्य के समान मेघ और अज्ञान-अन्धकार या विघ्नों के नाश करने हारे ! हे (सूर्य) समस्त जगत् के समान इस देह के प्रेरक ! हे आत्मन् ! (अद्य) आज (यत् कत् च अभि) जिस किसी पदार्थ के सन्मुख (उद् अगाः) तू उदित होता है (सर्वं तत) वह सब (ते) तेरे ही (वशे) वश में है । आत्मवान् पुरुष जिस बात पर अपना संकल्प बांधते हैं वही उनके वश में होजाता है । शौनक ने यह मन्त्र, पाप नाश करने और जगत् भर को वश करने की साधना का मूलमन्त्र लिखा है ।

यदद्यकच्चेत्युदिते रवौ स्तुत्वा पुरंदरम् ।
गृणन्नपाहते रिप्रं वश्यं वा कुरुते जगत । (ऋग्विधाने २।१८९)

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१२७] य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ३ ॥ ऋ० ६ । ४५ । १ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सु-नीती) उत्तम नीति, उपाय, साधन द्वारा (तुर्वशम्) कामनाओं से बंधे और (यदुम्) कुपथ में गये पुरुष को (परावतः) बहुत दूर से भी (आनयत्) सन्मार्ग पर लेआता है (सः) वह (नः) हमारा (युवा) सदा जवान, अजर अमर, नित्य, (सखा) इष्ट मित्र और समान ख्याति वाला, हमारे आत्मा, या हृदय देश में विराजमान परमात्मा या आचार्य है । यहां इन्द्र आत्मा, परमात्मा, आचार्य तीनों पर समान भाव से लगता है ।

'तुर्वशं'—तुर्वी हिंसायाम् । भ्वादिः । कशेरशच् । हिंसन्ति आहिंस्यन्ते व्याध्यादिभिर्वा । यद्वा तूर त्वरणहिंसनयोः दिवादिः । तुर्वशः काम एषामिति तुर्वशाः । यद्वा चतुर्षु धर्मार्थकाममोक्षेषु वश एषामिति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतुर्वशाः सन्तः, चकारलोपेन तुर्वशाः । दे० य० । तुर्वश इति मनुष्यनाम । नि० २ । ३ ।

'यदुम्'—यदुः, यमेर्दुक् इति भोजः । यम्यते नियम्यते आचार्येण अपथप्रवृत्तो राज्ञा वा । यदुरिति मनुष्यनाम । नि० २ । ३॥

तुर्वश, द्रुह्यु अनु, यदु और पुरु ये ऐतिहासिक पुरुष भी हुए हैं। सायण ने इतिहासपरक ही अर्थ किया है। परन्तु वेद में ये सब मनुष्य के पर्याय शब्द हैं। धात्वर्थों के भेद से भिन्न २ गुण के मनुष्यों के ये वाचक हैं जैसे—(१)'तुर्वी हिंसायां' धातुसे अशच् प्रत्यय करने से तुर्वश= शब्द बनता है। जो प्राणियों को मारें या व्याधिसे पीड़ित हों। (२) जिनको काम अर्थात् एषणा हो वे तुर्वश कहाते हैं।या(३)जो धर्म,अर्थ, काम,मोक्ष चारों को अपने वश करलें वे'तुर्वश' कहाते हैं। उसी प्रकार 'यदु' वे मनुष्य हैं जो कुमार्गपर पैर धरनेपर राजा व आचार्यद्वारा नियम व्यवस्थामें लाये जावें। आर्यसाहित्य में 'देव' को इष्ट बन्धु कहा जाता है और आचार्य को भी सुहृत् माना गया है। सुहृद् भूत्वा आचार्य उपदिशति' (पातं० महाभाष्य)।

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २र

[१२८] मा न इन्द्राभ्या३ दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत्।

२ ३ १ २ ३ २

त्वा युजा वनेम तत् ॥४॥ ऋ० ८ । ९२ । ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र! ऐश्वर्यवन्! (आ दिशः) चारों दिशाओं से भी (नः) हमारे (अभि) प्रति (अक्तुषु) रात्रि, अन्धकार युक्त कालों में,राजस, तामस अवस्थाओं में भी (सूरः) चुपके २ छापा मारने वाला चौर या हिंसक जन्तु या काम, क्रोध आदि शत्रु (नः मा अभि आ यमत्[2]) हम पर काबू न करले, फांस ने ले, बल्कि हम (तत्)

१२८—'मायमन्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय (त्वा युजा) तुझ अपने सहायक द्वारा उसे (वनेम[3]) मार डालें।

अक्तुः रात्रिनाम। नि० १।७॥ २. यम परिवेषणे। भ्वादिः। ३. श्नथ क्रथ हिंसार्थाः वन चेति भ्वादिः।

[१२९] एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्।
वर्षिष्ठमूतये भर॥५॥ ऋ० १।८।१॥

भा०—हे इन्द्र! (सानसिम्) उत्तम प्रकार से विभाग करने योग्य (स-जित्वानम्) अपने शत्रु पर विजय दिलाने वाले, (सदासहम्) निरन्तर आने वाले आक्रमणों को सहन करने वाले, (वर्षिष्ठम्) शत्रु पर बाणों और आयुधों की वर्षा करने वाले या बहुत अधिक (रयिम्) सेना को (ऊतये) रक्षा के लिये (आ भर) प्राप्त कर। आत्मा के पक्ष में रयिः—प्राण या आत्मिक ज्ञान, बल जो शरीर में स्थान २ पर बटा हुआ है, सब दोषोंपर विजय करता है, सब कष्टों को सहता है, सब सुखों को उत्पन्न करता है और निरन्तर गति करता है।

रयिः, रीङ् गतौ। रीयते गच्छति इति रयिः। यद्वा रातेर्दानार्थस्य। गच्छत्याक्रामति शत्रून् इति रयिः सेना। कोशायत्तत्वाद् भृतिरचिता सेना वा रयिः। सजित्वानं सदासहमिति विशेषणबलाद्रयिः सेनार्थः।

[१३०] इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम्॥६॥ ऋ० १।७।५॥

भा०—(महाधने[1]) बड़े २ संग्राम के अवसर में और (अर्भे) छोटे मोटे परस्पर के कलह या चोरों आदि के अवसर पर भी (वयम्) हम लोग (वृत्रेषु) विघ्न और उपद्रवों और विघ्नकारियों पर (वज्रिणम्) सदा तलवार या सेना=बल को या दण्ड को धारण करने हारे, (युजम्) सदा के सहायक, (इन्द्रम्) राजा को (वयम्) हम (हवामहे) बुलाते हैं, उसके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुण कीर्त्तन करते हैं यहां इन्द्र शब्द राजा वाचक है। राजा के दृष्टान्त से उपनिषदोंमें मुख्य प्राण और आत्मा का वर्णन कियागया है। आत्मा पक्ष में-(महाधने) बड़े भारी योगसाधन और (अर्भे) सूक्ष्म विचारमें भी (वृत्राणि) आत्मा पर पर्दा डालने वाली तामस. व्युत्थान वृत्तियों पर (वज्रिणम्) सूक्ष्मगति या वर्जक शक्ति अर्थात् असत् को छोड़कर सत् को ग्रहण करने वाले विवेक से युक्त आत्मा का स्मरण करें।

जैसे काठक उपनिषद् में 'यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्। महद्भयं वज्रमुद्यतम्।' कठ० वल्ली २॥

महाधनमिति संग्रामनाम (नि० ३। १८।)। अर्भो हरतेः।

[१३१] अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे।
तत्रादर्दिष्ट पौंस्यम् ॥ ७ ॥ ऋ० ८। ४५। २६॥

भा०—(इन्द्रः) राजा (सहस्रबाह्वे) हजारों प्रकार से शत्रु को परास्त करने के लिये (कद्रुवः) विद्वान् ज्ञानी के (सुतम्) ज्ञान का (अपिबत्) पान करता, उपयोग करता है (तत्र) तभी (पौंस्यम्) उसका बल (आदिष्ट) अधिक चमकता है।

बाहुर्बाधतेः. परान् बाधते इति बाहुःइति देवराजो यज्वा। कद्रुः कवतेऽसौ कद्रुर्विद्वान्। जम्वादिषु औणादिकं निपातनम्। उणा० ३। १०२॥

आत्मपक्ष में कण्व मन। बाहु=कर्म, मेघ। बाहु=जलधारा इत्यादि।

[१३२] वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन्।
विद्धी त्वाऽस्य नो वसो ॥ ८ ॥ ऋ० ७। ३१। ४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (वृषन्) हे सबसे श्रेष्ठ सुखों के वर्षा करने हारे! (वयम्) हम (आयवः) ज्ञानशील मनुष्य (त्वा) तुम

१३१—'अत्रादेदिष्ट इति ऋ०। अत्रादर्दिष्टेति स सा०।
१३२—'प्रणोनुम' 'विद्धी त्व' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (अभि प्र नोनुमः) निरन्तर प्रणाम करते हैं। हे (वसो) सबके भीतर वास करने हारे (नः) हमारे (अस्य) इस सबको तू (विद्धि) निश्चय पूर्वक जानता ही है।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१३३] आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ९ ॥ ऋ० ८ । ४५ । १ ॥

भा०—(ये) जो विद्वान लोग (अग्निम्) ज्ञानवान् आत्मा को (इन्धते) प्रज्वलित करते हैं और (येषाम्) जिनका (युवा) अजर, अमर, सदा तरुण, अक्षय बल वाला (इन्द्रः)आत्मा (सखा) मित्र है। वे (आनुषक्) निरन्तर (बर्हिः[1]) अपने कर्मबन्धन,देह को (स्तृणन्ति[2]) काट डालते हैं। आत्मा के ज्ञान और प्राण दोनों स्वरूपों को जान लेने वाले विद्वान् कर्मबन्धन से मुक्त होजाते हैं।

'बर्हि' धान्य को कहते हैं। देह की उपमा उपनिषदों में धान्य और वृक्ष से दी है। जैसे १. 'सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः। २. 'ऊर्ध्वमूल अवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।' (काठकम् उप०) 'अहं वृक्षस्य रेरिवा' (तै० उ०)।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २र
[१३४] भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
१ २ ३ १ २र
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १० ॥ ऋ० ८ । ४५ । ४० ॥

भा०—(विश्वाः द्विषः) सब द्वेष करने वालों को हे राजन् ! आत्मन् ! (अप भिन्धि) दूर ही काट डाल और (बाधः) पीड़ा पहुंचाने

१३३—१, बृहेर्नलोपश्च । बृहि वृद्धौ । यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिः, ऋ० ८ । १०२ । ४ अत्रापि बर्हिः शरीरं त्रिधातुजं वर्णितम् । यथा भागवते-'यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातौ'० इत्यादि ।

२. वृश्चति, कृन्तति, स्तृणात्यादयः पर्याया धातवः सर्वे वधकर्माणः । नि० २ । १९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले, (मृधः) संग्रामकारी, हिंसक, सेनाओं को (परि जहि) सब ओर नाश कर । (स्पार्हम्) हमारी अभिलाषा के पात्र (तद्) उस (वसु) हमारे भीतरी आत्मरूप धन को (आ भर) हमें प्राप्त करा ।

बृहदद्-आरण्यक उपनिषद् में 'नवा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । वेद के शब्दोंमें आत्मा 'स्पार्ह वसु या सबसे अधिक प्रिय धन है । 'तत् यह शब्द उस विस्मृत को याद कराता है जिसको हम अविद्या के कारण भूल गये हैं जिनको मैत्रेयीने याज्ञवल्क्य से पूछा–'येनाहं नामृतास्यां किमहं तेन कुर्याम्।यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहि' । इस पर याज्ञवल्क्य ने उक्त सिद्धान्त कहकर कहा एतावदरे खलु अमृतम् ।' यह 'तत्' अन्य उपनिषदों में भी है जैसे– 'तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदु नात्येति कश्चन । तत्त्वमसि श्वेतकेतो' इत्यादि ।

इति चतुर्थी दशतिः । द्वितीयः खण्डः ।।

॥ दशतिः ५ ॥ १ कण्वो घौरः । २ त्रिशोकः काण्वः । ३, वत्सः काण्वः । कुसीदी काण्वः । ५ मेधातिथिः काण्वः । ६ श्रुनवक्ष आङ्गिरसः । ७ श्यावाश्वः आत्रेयः ८ प्रगाथः काण्वः । १० इरिम्बिठिः काण्वः ॥ गायत्री ॥

[१३५] इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् ।
नि यामं चित्रमृञ्जते ॥ १ ॥ ऋ० १ । ३७ । ३ ॥

भा०—(एषाम्) इन मरुतों, प्राणों के (हस्तेषु[1]) हाथों में (कशा) 'कशा' चाबुक है । (यद् वदान्) यह जो बात कहते हैं (इह एव शृण्वे) उसको मैं यहां ही सुनता हूं । वह कशा (चित्रम्) अद्भुत प्रकार से (यामम्) नियम, व्यवस्था को (निऋञ्जते) साध रही है ।

'कशा' का वर्णन अथर्ववेद (का० ९ । सू० १) में किया है । जैसे–

१३५–१. हस्तो हन्तेः, प्राशुर्हनने इति। निरु० १, २, ३ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"य एति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ।"
पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथक् नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
"अग्नेर्वातान् मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ।"

साधक प्रत्यक्षदर्शी ऋषि कहता है कि मैं उन मरुतों की कशा (हन्टर) के नाद को सुनता हूं वह विचित्र प्रकार से सबको व्यवस्था में बांधे हैं। अथर्व में इसको 'मरुतामुग्रा नप्तिः' प्राणियों को उग्र रूप होकर बांधने वाली बतलाया है। इसका स्पष्ट विवरण 'त्रिपुरदहन' के अलंकार की व्याख्या में शिव के जगन्नाथ के महारथ पर मरुत् सारथि के हाथों में 'ओंकार' का हन्टर बतलाया है। शि० पु०। योगी लोग उसी ओंकार के अनाहत नाद को सुनते हैं। उसी का यहां विवरण है।

[१३६] इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ २ ॥ ऋ० ८ । ४५ । १६ ॥

भा०—(पुष्टावन्तः) पुष्टिकारक पदार्थ घास दाना आदि को हाथ में लिये पशुपालक पुरुष (यथा) जिस प्रकार स्नेह से अपने (पशुम्[1]) पालतू पशु को देखते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ! परमेश्वर ! (इमे) ये (सोमिनः) सोमरस, या आत्मज्ञान के धारण करने वाले पुरुष तेरे (सखायः) मित्र (त्वा) तुझको देखते हैं।

स्नेह-प्रदर्शनमात्र समान धर्म दिखाया गया है। आत्मज्ञान साधक पुरुष नानास्तुति, ज्ञानचर्चा एवं ध्यान, साधना द्वारा अन्तरात्मा एवं ब्रह्म को बुलाते हैं, उसके प्रेम में उसको निरन्तर निहारते हैं कि "अब दर्शन देता है, अब देता है अब ! अब ! गीता (११ । ५२) में जैसे—
"देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ।"

[१३७] समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ३ ॥ ऋ० ८ । ६ । ४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(अस्य) इस इन्द्र के (मन्यवे) क्रोध के सामने या मनन, ज्ञान-संकल्प के समक्ष (विश्वाः) समस्त (विशः) प्रजाएं (नमन्त) ऐसे झुकती हैं, जैसे (सिन्धवः) नदियां (समुद्राय इव) समुद्र में समाजाने के लिये आप से आप बढ़ती ही हुई चली जाती हैं।

इस 'मन्यु' को गीता में व्यास ने कहा है।

"कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।"

इस ऋचा की व्याख्या की गई है। जैसे—

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखं द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥
गीता ११ । २८ ।

झुकना, जैसे—'सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः'। (गीता ११।३६)।

[१३८] देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्।
वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥ ४ ॥ ऋ० ८ । ७२ । १ ॥

भा०—(वृष्णाम्) सुखों और ज्ञानों की धार बरसाने वाले (देवानाम्) विद्वान् गुरुओं या प्राणों की (इत्) ही (महत् तत् अवः) बड़ी भारी उस रक्षा या शरण को हम (अस्मभ्यम् ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (आ वृणीमहे) सब प्रकार से चाहते हैं।

तैत्तिरीय उप० (व० १। अनु० १०) में जैसे—'यदि ते कर्मविचिकित्सा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्, ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः युक्ताः आयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्त्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः। एषः आदेशः। एष उपदेशः एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५६३

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यति पाण्डव । गी०अ० ४।३४-३५॥

[१३९] सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ ५ ॥ ऋ० १ । १८ : १ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणः पते) ब्रह्मणस्पते ! ज्ञानिन् ! (सोमानाम्) ज्ञानों के योगसाधन से प्राप्त अनुभवों या रसों को प्राप्त करने के लिये (कक्षीवन्तम्) कक्ष, छाती में रहने वाले या प्रसिद्ध प्राण को(स्वरणम्)सुख से गमन करने वाला एवं देदीप्यमान, बलसम्पन्न (कृणुहि) कर (यः) जो प्राण (औशिजः) वश द्वारा साध लिया गया है ।

इस प्रकरण को तैत्तिरीयशाखा में इस प्रकार स्पष्ट किया है—"सोमं स्वरणमित्याह सोमपीथमेव अवरुन्धे। कृणुहि ब्रह्मणस्पते इत्याह ब्रह्मवर्चसमेवावरुन्धे इत्याह ।" अर्थात् ब्रह्मवर्चस्वी ब्रह्मणस्पति है । उसको ज्ञान में प्रखरता प्राप्त करने का उपदेश है । इसी प्रकार 'कक्षीवान्' के विषयमें यास्क कहते हैं "कक्षीवान् कक्ष्यावान् । उशिग् वष्टेः कान्तिकर्मणः । (नि० ६ । ३ । १) कक्षो गाहतेः क्सः इति नामकरणः । ख्यातेर्वा अनर्थकोऽभ्यासः किमस्मिन् ख्यानमिति । कषतेर्वा तत्सामान्यान्मनुष्यकक्षः।(नि० २ । १ । ४)" इस प्रकार कक्षीवान्, ज्ञानवान् ख्यातिमान् सहायवान् । औशिज=कान्तिसम्पन्न या कामनासम्पन्न।कक्षा=मनुष्य या प्राणीकी कोखें उनमें निवास करने वाला कक्षीवान् है । और वही शरीर में जठराग्नि के बल से उत्पन्न होने के कारण 'औशिज' कहाता है । ज्ञानी पुरुष उसको ज्ञान और योगसाधनों द्वारा स्वरण=अधिक सम्पन्न, बलवान्, देदीप्यमान करें ।

[१४०] बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः ।
शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ ६ ॥ ऋ० ८ । ९३ । १८ ॥

१३९—'सोमानं' इति ऋ० । १४०—'बोधिन्मना' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(नः) हमारा (शक्रः) शक्तिशाली आत्मा (वृत्र-हा) तामस आवरणों का नाश करने वाला (भूरि-आसुतिः) अति अधिक समाहित वृत्ति वाला होकर, (बोधन्मनाः) ज्ञानशील चित्त वाला (इत्) ही (अस्तु) हो। और वह (आशिषम्) आशीर्वाद, उत्तम कामना को (शृणोतु) सुने।

[१४१] अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम्।
परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥ ७ ॥ ऋ० ५। ८२। ४॥

भा०—((सवितः) सबके प्रेरक, उत्पादक, प्रकाशमान देव, आत्मन्! (नः) हमारा (प्रजावत्) अपनी प्रजाओं के समान (सौभगम्) उत्तम कल्याण (अद्य) आज, प्रतिदिन (सावीः) उत्पन्न कर। (दुःष्वप्न्यम्) चित्त मेंसे दुःसंकल्पों के कारण होने वाले तन्द्राकालिक प्रमाद को (परा सुव) दूर कर।

योग के साधनों को करते हुए साधक के आग्रहपूर्वक संयम द्वारा इन्द्रियों का बाह्य निरोध होजाने पर भी मन की पूर्व वासनाएं तन्द्राके अवसर पर दुस्वप्नों का कारण होती हैं। उनको दूर करने और शुभ विचारों के प्रबल होने की इस मन्त्र में प्रार्थना है।

[१४२] क्व३ स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः।
ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥ ८ ॥ ऋ० ८। ६४। ७॥

भा०—(वृषभः) इन्द्रियरूप गौओं में बैल के समान भोक्ता सर्व-श्रेष्ठ, मेघ के समान सुखों का वर्षक, (युवा) सदा अजर, (अनानतः) कभी किसी के आगे न झुकने वाला, स्तब्ध, (तुविग्रीवः) बहुतसी ग्रीवा वाला, इन्द्र (स्यः क्व) वह आत्मा कहां है? (तम्) उसको (कः) कौन

१४१—'अद्या नो', 'दुःष्वप्न्यं', दुष्ष्वप्न्यं' इति ऋ०।

१४२—'क्वस्य' पाठभेदः, ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ब्रह्मा) ब्रह्म को जानने वाला विद्वान् (सपर्यंति) उसकी पूजा करता है। अर्थात् हे ज्ञानी पुरुषो ! तुम उस 'अप्रतर्क्य, अवाङ्मनसगोचर सहस्रशीर्षा' पुरुष की विवेचना करो और उसके सच्चे उपासक ब्रह्मज्ञानी की भी पहचान करो।

कथमिन्द्रो बहुग्रीवः? उच्यते। परमात्मस्वरूपत्वात्। 'सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति इति मा० चि०। तुवीति बहुपर्यायः। (नि० ३। १। ३।) ग्रीवा निगरणात् क३स्येति अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोरिति प्लुतिरनुदात्तश्च (पा०)

इन्द्र बहुग्रीव किस प्रकार है ? गीता कहती है—

"....०बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बाहुबाहूरुपादम्॥'

बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं॥ अ० ११। २३॥

अनेक वक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।

सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्॥

जैसा वेद में भी लिखा है—'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्
यजु० ३१। १॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१४३] उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्।
३ १ १ २र
धिया विप्रो अजायत॥ ६॥ ऋ० ८। ६। २८॥

भा०—(गिरीणाम्)पर्वतों के (उपह्वरे)तट प्रान्त में और (नदीनां च) नदियों के (संगमे) संगम स्थान पर (धिया) ज्ञान शक्ति और कर्म के अभ्यास से (विप्रः) मेधावी पुरुष (अजायत) तैयार हुआ करता है।

तपस्वी लोग एकान्त गिरिकन्दरा और प्राकृतिक रमणीय नदीसंगमों पर ध्यान ज्ञान, तप, जप करके शक्तिमान् होते हैं। आत्मा के पक्ष में—(गिरीणाम्) मेरुदण्ड के पोरुओं के समीप और इडा पिंगला और सुषुम्ना

१४३—'संगमे च नदीनाम्' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन (नदीनाम्) नाड़ियों के संगमस्थान त्रिकुटी में ध्यान लगाने से दिव्य ज्ञानवान् पुरुष सिद्ध हो जाता है। अथवा—गिरयः स्तोतारः। नद्यः सरस्वत्यः। धीरध्ययनम्। कवियों ज्ञानप्रवक्ताओं के पास वेदवाणियोंके परस्पर संगम स्थल, सभास्थानोंमें अध्ययन करने और मनन करने से विप्र, विद्वान् ब्रह्मज्ञानी होजाता है।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
[१४८] प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः।
१ २ ३ २ ३ १ २
नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १० ॥ ऋ० । ८ । १६ । १ ॥

भा०—(चर्षणीनाम्) तत्वदर्शी, आचारवान् पुरुषों के बीच (सम्राजम्) प्रकाशमान(नव्यम्[1]) स्तुति करने योग्य,(इन्द्रम्)ऐश्वर्यसम्पन्न (नरम्) सबके नेता, (नृषाहम्) सब मनुष्यों को अपने तेज से दबाने वाले. (मंहिष्ठम्) सबसे अधिक पूजनीय परमेश्वर की (प्र स्तोत) उत्तम रीति से स्तुति करो।

चर्षणयः-चरणवन्तः चरणशीलाः । चरतेरनिरौणादिः । कृषेर्वा । यद्वा चायितारो द्रष्टारः । विचर्षणिः पश्यतिकर्मा (नि० २ । २)।

चर्षणिश्चायिता द्रष्टा इति स्कन्दस्वामी । चर्षणयो मनुष्याः । नि० २ । ३ ।।

इति पञ्चमी दशतिः । तृतीयः खण्डः ॥

॥ दशतिः ६ ॥ ऋषिः—१ श्रुतकक्ष. सुकक्षो वाङ्गिरसः । २ मेधातिथिः काण्वः । ३ गोतमोराहूगणः । ४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ५ विन्दुः पूतदक्षो वाङ्गिरसः । ६, ७ श्रुतकक्षः सुकक्षो वाङ्गिरसः । ८ वत्सः काण्वः । ९ शुनःशेप आजीगर्तिः । १० शुनःशेपो आजीगर्तिर्वामदेवो वा ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री ॥

---

१. णु स्तुतौ (तुदादिः) नव्यं स्तुतियोग्यमित्यर्थः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१४५] अपादु शिप्रयन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।
२ ३ २ ३ १ २
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ १ ॥ ऋ० ८ । १२ । ४ ॥

भा०—(शिप्री) एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने वाला या प्राणों का स्वामी, (इन्द्रः) ऐश्वर्यशील आत्मा (सु-दक्षस्य) कार्यसम्पादन में कुशल, बलसम्पन्न, (प्रहोषिणः) उत्तम रीति से हवन, दान-आदान करने वाले (इन्द्रः) प्रदीप्त, (यवाशिरः) अन्न के सारभूत अंशसे मिल कर परिपक्व (अन्धसः) प्राणधारण सामर्थ्य को (अपात्) पान या पालन करता है ।

'प्रहोषिन्'—इसकी व्याख्या देखिये (गीता अ० ४ । २३–३१ ।) इसमें बहुतसे यज्ञ दर्शाये हैं जैसे १. ब्रह्मार्पण ब्रह्महवियोग । २. इन्द्रियों की संयम में आहुति । ३. शब्दादि ग्राह्य विषयों की इन्द्रियोंमें आहुति ४. ज्ञानेन्द्रिय और ५. प्राणेन्द्रिय कर्मों की संयमाग्नि में आहुति, ६. द्रव्ययज्ञ, ७, तपोयज्ञ, ८. योगयज्ञ, ९. स्वाध्याय यज्ञ, १०. ज्ञानयज्ञ, ११. अपान में प्राण की आहुति, १२. प्राण में अपान की आहुति, १३. प्राणों की प्राणों में आहुति इत्यादि । इनके कर्त्ता सभी 'प्रहोषी' है । इनमें सबसे श्रेष्ठ सुदक्ष ज्ञानी वह है जो अपने ज्ञानाग्नि अर्थात् चेतना शक्ति में सब कर्म-शक्ति अर्थात् अन्न की जीवन शक्ति को एक करके कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है ।

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[१४६] इमा उ त्वा पुरूवसोभि प्र नोनवुर्गिरः ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
गावो वत्सं न धेनवः ॥ २ ॥ ऋ० ६ । ४५ । २५ ॥

भा०—हे (पुरुवसो) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! एवं हे इन्द्रियों में भी सामर्थ्य रूप से बसने वाले आत्मन् ! (इमाः) ये (गिरः) वाणियां वेदवाणियां (धेनवः) दूध देनेहारी (गावः) गौएं (न) जैसे अपने

१४६—१. इमा उ त्वा शतक्रतोऽभिप्रणोनुवुर्गिरः । इन्द्र वत्सं न मातरः । ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वत्सं) बछड़े के पास चली जाती हैं उसी प्रकार (त्वा) तुझको ही (अभि प्र नोनवुः) साक्षात् स्तवन करती हैं। तेरे गुण वर्णन करती हैं।

जैसे—सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' इति क० उप०।

२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
[१४७] अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्।
३ २ ३ १ २ ३ २
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥ ऋ० १।८४।१५॥

भा०—(अत्र ह) यहां निश्चय से (त्वष्टुः) दीप्तिमान्, तेजस्वी सूर्य की (गोः) गमनशील किरण का (अपीच्यम्) कुछ सुगुप्त अंश ही (चन्द्रमसो गृहे) चन्द्रमा के घर में (नाम) गया हुआ है। (इत्था अमन्वत) ऐसा मानते हैं।

इस प्रकरण में प्राण त्वष्टा है जो गर्भगत पुरुष को ९, १० मास में शनैः२ बनाता है। गर्भाशय का गुप्तभाग चन्द्रमा का घर है। जो १६ कलायुक्त है। जो क्रम से एक पक्ष में घटता और १५ दिन में बढ़कर पुनःऋतुकाल में वेला के समान उत्थित होता है। उस स्थाने पर भी सृष्टिकर्त्ता परमात्मा की ही यह जीवसर्ग-कारिणी शक्ति है जो गर्भ में भी गुप्तरूप से प्राणरूप में विद्यमान है। उस गर्भ में भी गति है। उसमें भी मुख्य प्राण, आदित्य का ही अंश प्रसुप्तरूप में शनैः २ बढ़ता है। अथवा त्वष्टा पुरुष को कहते हैं, पुरुष का वीर्यांश ही गर्भाशय में जाता है। जैसे उपनिषद में लिखा है। पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति। यदेतद् रेतस्तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः संभूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्त्ति। तद्यदा स्त्रियां सिञ्चति अथैनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म, इत्यादि (ऐत० उप० अ० २। १-६)। प्राण रयि की विवेचना करते हुए उपनिषत्कार (प्रश्न० उ०) ने पुरुष को आदित्य और प्राण और स्त्री को 'चन्द्र' और रयि' माना है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र को उद्धृत करके यास्कने लिखा है— 'अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते तदेतेनोपेक्षितव्यम् । आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति इति । सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः इत्यपि निगमो भवति । सोऽपि गौरुच्यते, अत्राह गोरमन्वतेति तदुपरिष्टाद् व्याख्यास्यामः ।*

अर्थः—आदित्य भी 'गौ' कहाता है । इसकी सूर्यकी सुषुम्ना नाम एक रश्मि चन्द्रमा को प्रकाशित करती है । जैसे यजुर्वेद (१८ । ४०) में लिखा है । इस सुषुम्ना को भी 'गौ' कहते हैं जैसे 'अत्राह गोरमन्वत' इत्यादि मन्त्र का व्याख्यान आगे यास्क ने (४ । ४ में किया है) कि 'अत्राह गोः सममंसत आदित्यरश्मयः । स्वं नाम अपीच्यं अपगतमपचितमपहितमन्तर्हितं वाऽमुत्र चन्द्रमसो गृहे । '

आधिदैविक पक्ष में यास्क का यह व्याख्यान है। परन्तु शरीर पक्षमें उपनिषदों का मूल सिद्धान्त ग्रहण करने योग्य है । उपनिषदों में गर्भ में जीव की स्थिति एवं पुष्टि और जन्म और शरीर-रचना जीवनयात्रा आदि के प्रश्नों की खूब सूक्ष्म विवेचना की है । छान्दोग्य उपनिषद् के तृतीय प्रपाठक में आदित्य की सब रश्मियों की विवेचना मुख्य प्राण को लक्ष्य करके की है ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
[१४८] यदिन्द्रो अनयद् रितो महीरपो वृषन्तमः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
तत्र पूषा भुवत् सचा ॥ ४ ॥ ऋ० ६ । ५७ । ४ ॥

भा०—(यद्) जब (वृषन्तमः) सर्वत्र, लोम २ में रस का वर्षण उत्तम रूपसे करने वाला (इन्द्रः) आत्मा (रितः) गति करने वाली (महीः अपः) बड़ी नाड़ियों में रुधिर-धाराओं को (अनयद्) समस्त

* गोशब्देनापि सुषुम्ना' नाम आदित्यरश्मिः चन्द्रमसं प्रतिगतः । अल्पत्वाच्चन्द्रमण्डलस्य रश्मिः प्रतिगतः ततःपरावृत्य पृथिव्यां ज्योत्स्नारूपेण दीप्यते । मा०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर में पहुंचाता है (तत्र) वहां (सचा)साथ ही वह (पूषा) पोषण करने वाले सामर्थ्य से युक्त (भुवत्) होता है।

आत्मा ही देह में सर्वत्र रस पहुंचाता है और पुष्टि भी करता है। विशाल ब्रह्माण्ड में ईश्वर की शक्ति वर्षा भी करती है और अन्न भी उत्पन्न करती है। लोक में मेघगत आदित्य का तेज 'पूषा' होकर वृष्टि करता है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१४६] गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम्।
३ २उ ३ १ २
युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ ५॥ ऋ० ८। ९४। १॥

भा०—(मघोनाम्) जीवन-यज्ञ के सम्पादन करने वाले ऐश्वर्यवान्! (मरुताम्) प्राणों की (माता) उत्पादक, जननी (गौः) चेतनस्वरूपा चितिशक्ति (श्रवस्युः) अन्न या ज्ञान की कामना करती हुई (धयति) अपना सोम-रूप ज्ञान पिलाती और वह स्वयं (रथानाम्) रथस्वरूप दूर तक जाने वाले प्राणेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों में (युक्ता) जुतकर (वह्नी) उन को उठा रही है। आत्मा की चेतना शक्ति इन्द्रियों को चेतन करती है वही उनको पदार्थों तक पहुंचाती है।

मरुतों की गौ की व्याख्या देखिये—अथर्ववेद (का० १० । सूक्त १०) यह 'वशा रूप गौ है।

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारः पृष्ठे अस्याः।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा॥

उसी गौ को पृश्नि' कहा है! इसका वर्णन ऋग्वेद (८।१००।१०, ११) में इस प्रकार है।

' यद्वाग् वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
चतस्रोऽनुदिश ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्विदस्याः परमं जगाम॥"

१४६—१. रथो रंहतेर्गतिकर्मणः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१५०] उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥ ऋ० ८ । ९३ । ३१ ॥

भा०—(मदानां पते) सब आनन्दों, सुखों और ज्ञान, विवेकों के पालन करने हारे, (नः) हमारे (हरिभिः) अश्वों के तुल्य ज्ञान-इन्द्रियों द्वारा (सुतम्) उत्पादित ज्ञान को (उप याहि) तू प्राप्त कर। (नः) हमारे (हरिभिः सुतम्) प्राण इन्द्रियों द्वारा किये कर्म और उनसे उत्पन्न सुख भोग को तू (उप याहि) प्राप्त हो।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१५१] इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे ।
१ २ ३ १ २र
अच्छावभृथमोजसा ॥ ७ ॥ ऋ० ८ । ९३ । २३ ॥

भा०—(अध्वरे) हिंसारहित या कभी नष्ट न होने वाले जीवनमय या आत्मज्ञानमय यज्ञ में (इष्टाः) याग करने वाले विषयरूप हवियों की आहुति प्राप्त करने वाले, (होत्राः[1]) ग्राह्य विषयाहुति को भीतर की चितिशक्ति की ज्वाला में हवन करने वाले सात ऋषि, सात इन्द्रियां (इन्द्रं वृधन्तः) आत्मा के ऐश्वर्य, ज्ञान गौरव को बढ़ाते हुए (ओजसा) ज्ञान और बलसे (अवभृथम्) पूर्ण समाप्ति के अवभृथ स्नान पर्यन्त (अच्छा) उत्तम रूप से (असृक्षत) यज्ञ करते हैं और विसर्जन करते हैं।

इस मन्त्र में बाह्य यज्ञ की आध्यात्म व्याख्या है। शिर में सात छिद्र, २ आंख, २ नाक २ कान, १ मुख ये सात ऋषि, सात होता हैं मुख्य आसन्य प्राण आत्मा 'इन्द्र' है, वाक् सरस्वती यज्ञ की सम्पादिका भिषक् है. चितिशक्ति शची है। इत्यादि वैदिक अलंकार हैं। विशेष देखो छान्दोग्य उप० (अ० ३ । ख० १६, १७।)

१५१—1. सप्तहोत्रकाः, इति सायणः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१५२] अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
३ १ २र
अहं सूर्य इवाजनि ॥ ८ ॥ ऋ० ८ । ६ । १० ॥

भा०—(अहम्) मैं (इत् हि) ही निश्चय से (पितुः) अपने पालक पिता परमेश्वर के (ऋतस्य) सत्य ज्ञान, वेद और शक्ति सामर्थ्य के लिये (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को (परि·जग्रह) सब ओर से ग्रहण करूं। (अहम्) मैं (सूर्य इव) सूर्य के समान (अजनि) होजाऊं।

चतुष्पाद् ब्रह्म की उपासना का फल उपनिषत्कार कहते हैं—"भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद।" (छान्दो० अ० ३। ख० १८।) ऋत की मेधा का ग्रहण देखिये छान्दोग्य (अ० ३। ग० १५) इसमें वसुधान कोश (खज़ाना) अपने पिता से प्राप्त किया जा रहा है। जिसका वर्णन उपनिषत्कार ने किना है—

> अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुध्नो न जीर्यति।
> दिशो ह्यस्य स्त्रक्तयो द्यौरस्योत्तरं बिलम् ॥
> स एव कोशो वसुधानस्तस्मिन् विश्वमिदं श्रितम् ॥

इसी का वर्णन देखिये तैत्तिरीय उप० (अनु० ४)।

३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २
[१५३] रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ ६ ॥ ऋ० १ । ३० । १३ ॥

भा०—(इन्द्रे) आत्मा के (सध-मादे) हमारे साथ २ हर्षयुक्त सुप्रसन्न होजाने पर (नः) हमारी (रेवतीः) प्राणेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियां (तुवि-वाजाः) खूब बलवती होजायें। (याभिः)जिनके साथ हम(क्षुमन्तः) अन्न, भोग, गृह आदि से सम्पन्न होकर (मदेम) आनन्द अनुभव करें। गृहस्थ पक्ष में—रेवतीः=स्त्रियः। राष्ट्र पक्ष में—रेवतीः=प्रजाः।

१५२—'पितुष्परि', 'जग्रम' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २
[१५४] सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम् ।
३ २ ३क २र ३ २
देवत्रा रथ्योर्हिता ॥ १० ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(सोमः) सबका प्रेरक और सबका उत्पादक और (पूषा) सबका पोषण करने हारा परमात्मा (देवत्रा) समस्त देव, पांचोंभूतों और समस्त भौतिक शक्तियों में और आत्मा देहस्थ इन्द्रियोंमें व्यापक है और वही (विश्वासां सुक्षितीनाम्) समस्त निवास योग्य भूतों, दुनियाओं और समस्त प्राणियोनियों के (रथ्योः) दोनों प्रकार के कर्म और भोग योनियों के बीच (हिता) हितकारी होते हुए स्थित ही (चेततुः) आहार व्यवहार का ज्ञान कराते हैं, एवं सन्मार्ग पर चलने के लिये चेताते हैं ।

दो ही मार्गसे ज्ञान प्राप्त होता है एक उपदेश से,दूसरी आवश्यकता या निज अनुभवसे।परमात्मा प्राणियों को एक तो सोम अर्थात् ज्ञानवान् परमगुरुके रूपमें ऋषियों के हृदय में ज्ञान प्रेरित करता है। दूसरा पूषा अर्थात् प्राणी शरीरकी आवश्यकता भूखप्यास आदिसे प्रेरित होकर पदार्थों को खोजते हैं और निजी अनुभवसे अपने हित अहितका ज्ञान करते हैं । ईश्वर दोनों रूपसे उनको ज्ञान देरहा है।जैसे रोटी के टुकड़े से कुत्ते को सधाते हैं उसी प्रकार ईश्वर भी अन्नादिकी वासनासे पृथ्वी पर अन्नादि रखकर प्राणियोंको उसके खोजने और प्राप्त करनेके मार्गमें सधाता है । जीव भी कर्मफल सुख दुःख भोग २ कर पुनः ज्ञानमार्ग पर आजाते हैं । जीवोंके भोगों की व्यवस्था करने वाला वह 'पूषा' है । विद्वानोंके हृदयमें ज्ञान प्रेरणा करने और सबको उत्पन्न करनेसे वह 'सोम' है । दो भिन्न २ व्यवस्थाओं के भिन्न भिन्न रूप पृथक् पृथक् दर्शाने के निमित्त द्विवचन का प्रयोग है ।

इति षष्ठी दशतिः । चतुर्थः खण्डः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ दशतिः ७ ॥ ऋषिः—१, ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः । २ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । ३ मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः । ५ इरिम्बिठिः काण्वः । ६, १६ मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रः । ७ त्रिशोकः काण्वः ८ कुसीदः काण्वः । ६ शुनःशेप आजीगर्तिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री ॥

[१५५] पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१०॥ ऋ० ८।९२।१॥

भा०—(वः) आप लोग (अन्धसः) जीवन धारण कराने वाले अन्नके सूक्ष्म, रस रूप सोमको (आ-पान्तम्) अभिमुख प्रत्यक्षरूप में प्राप्त करने वाले (विश्वासाहम्) सबको अभिभव करने,समस्त इन्द्रियों से बढ़ जाने वाले, सबको पराहत करने वाले, (शतक्रतुम्) सैंकड़ों कर्म करने में समर्थ, सैंकड़ों प्रज्ञाओंसे युक्त, (चर्षणीनाम्) तत्वदर्शियों के (मंहिष्ठम्) एकमात्र आनन्द देने वाले या इन्द्रियों में शक्ति देने वाले, पूजनीय, उपास्य देव, आत्मा और परमात्मा की (अभि प्रगायत) साक्षात् स्तुति करो, उसका साक्षात ज्ञान प्राप्त करो ।

[१५६] प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत ।
सखायः सोमपाव्ने ॥ २ ॥ ऋ० ७।३१।१॥

भा०—हे (सखायः) समान कीर्त्ति वाले मित्र ! (वः) आप लोग (सोमपाव्ने) सोम-ज्ञान, अन्न रस का पान करने वाले, (हर्यश्वाय) विषयों के प्रति लेजाने वाले, इन्द्रिय साधनोंसे सम्पन्न (इन्द्राय) ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र,अपने अन्तरात्मा को (मादनम्) प्रसन्न करने के लिये (प्र गायत)उत्तम रीतिसे गान करो,उसका कीर्तनकरो, उसका ज्ञान करो।

[१५७] वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ ३ ॥ ऋ० ८।२।१६॥

१५६—१. कै गै स्तुतौ। स्तुतिः प्रज्ञा इति यास्कः (नि० २।७।२१)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(वयम्) हम और (कण्वाः) मेधावी विद्वान् लोग हे (इन्द्र) आत्मन्! (त्वायन्तः) तेरी कामना करते हुए, तेरे प्रेमी तुझे प्राप्त करने में लगे हुए, (सखायः) समान ख्याति वाले, (तद्-इद् अर्थाः) उसी परम आत्म तत्व तुझको ही एकमात्र अपना इष्ट प्रयोजन जानते हुए, (त्वा) तेरी (उक्थेभिः) मन्त्रों द्वारा (जरन्ते) स्तुति करते हैं, तेरे स्वरूप का वर्णन करते, तेरा साक्षात् लाभ करते हैं।

[१५८] इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः।
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ ४ ॥ ऋ० ८ । ९२ । १९ ॥

भा०—(नः) हमारी (गिरः) वेदवाणियां (मद्वने) हर्ष, प्रसाद युक्त (इन्द्राय) आत्मा के योग्य (सुतम्) सोम, ज्ञान और उत्तम पदार्थ को (परि ष्टोभन्तु) वर्णन करें। (कारवः) कर्मण्य विद्वान् लोग (अर्कम्) उस पूजा के योग्य उपास्य देव की (अर्चन्तु) उपासना करे।

इसके पूर्व भी 'अन्धस्' सोम आदि शब्द आये हैं जिनका अर्थ यज्ञ-प्रकरणमें याज्ञिक लोगोंने सदा सोमलता का रस ही लिया है, परन्तु उपासना या आत्म-विज्ञान काण्ड में 'ज्ञान' और अन्न का सूक्ष्मरस और भोग्य पदार्थ कर्मफल ही लेना उचित है। वेदने भी इन शब्दों को उन अर्थों में प्रयोग किया है। जैसे (ऋ० ८ । ६४ । १०)—अयं ते मानुषे जने सोम पुरुषु सूयते। तस्येह प्र द्रवा पिब ॥" प्रत्येक मनुष्य में उसकी (पुरुषु) इन्द्रियों में वह सोम उत्पन्न होता है जिसके लिये हे आत्मन्! तू आ और पान कर।

[१५९] अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥ ऋ० ८ । १७ । ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (अयं) यह (सोमः) सोम, ज्ञान (ते) तेरे लिये (अधि बर्हिषि) प्रति यज्ञ और प्रति देहमें (निपूतः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा संशोधित, संस्कृत किया जाता है। (ईम्) इस समय (अस्य) इसके पान करने के लिये (एहि) आ और (द्रव) शीघ्र आ, (पिब) पान कर।

बर्हिः, यज्ञः, धान्यम्, कुशाः शरीरम्, अन्तरिक्षम् इत्यादि पर्याय हैं।

　　१　　२ ३ १ २ ३ १ २　　　३ १ २
[१६०] सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
　　३ २　３ १ २
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ ६ ॥ ऋ० १।४।१॥

भा०—(गोदुहे) दूध के दोहने के लिये जिस प्रकार (सु-दुघाम्) उत्तम रूपसे दूध देने वाली गाय को प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार (सुरूप-कृत्नुम्) उत्तम ज्ञान और कर्म सम्पादन करने वाले इन्द्र को (ऊतये) अपने को पापाचरण से बचाने के लिये (द्यवि द्यवि[१]) प्रतिदिन (जुहूमसि) हम स्मरण करते और उसकी स्तुति करते हैं।

　　३ १　２　　　３ २ ३ १　２　　３ १ २
[१६१] अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये।
　　３ १　२　３ १ २
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ ७ ॥ ऋ० ८।४५।२२॥

भा०—हे (वृषभ) अन्तरात्मा में सुखों की वर्षा करने हारे, श्रेष्ठ! (सुते) सोम=ज्ञान या साधना, कर्म के उचित रूपसे होजानेपर उसके (पीतये) रसपान करने के लिये (सुतम्) उत्तम ज्ञान का (त्वा अभि सृजामि) तेरे सन्मुख ही सम्पादन करता हूं। (तृम्प) तू उससे तृप्त हो और (मदम्) हर्ष सुख को (वि-अश्नुहि) प्राप्त कर।

योगी अवधूत लोग समाधि-रस को मद्यरसमे तुलना देते हैं और आत्मा को बुलाते हैं। धर्ममेघ समाधि की सिद्धि प्राप्त होजाने पर आत्मा की वह अवस्था होजाती है।

　　१　２　３ १　　२र ३ १ २　　３ २
[१६२] य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः।
　　१ २र ३ १ २
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥　ऋ० ८।८२।७॥

१६०—द्यवि-द्यवि इति अहर्नाम। नि० १।२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(यः सोमः) जो, सोम हे (इन्द्र) आत्मन् ! (चमसेषु[1]) चमस पात्रों में (सुतः) तैय्यार किया है वह (ते) तेरे लिये (चमूषु) छोटे २ पीने के पात्रों में भी है। (अस्य इत्) इसको ही तू (पिब) पानकर (त्वम्, ईशिषे) तू ही इसका समर्थ स्वामी है।

'चमसेषु'—सूर्यपक्ष में 'चमस' मेघ है, आत्मपक्ष में प्रत्येक पुरुषका मस्तक 'चमस' है। जैसा उपनिषद् में "अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः"। "चम्वौ द्यावापृथिव्यौ" द्यौलोक और पृथिवी लोक 'चमू' हैं। शरीर में द्यौ स्थान मस्तक ही है। उसमें भी सात इन्द्रियां उस इन्द्रके आचमन पात्र हैं, उनसे वह ज्ञान ग्रहण करता या मस्तक के कोष्ठ (Cells) ही उसके नाना प्रकार से सोमास्वादन के निमित्त पात्र हैं। इन्द्र ही आत्मा है। इस सिद्धान्तकी विशद व्याख्या देखो (ऐतरेय उप०अ० १। १३। १३–१३) "स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यद् इदमदर्शमिदमदर्शमिती३। तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवाः।'

[१६३] योगे योगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ६ ॥ ऋ० १। ३०। ७॥

भा०—(योगे-योगे) प्रत्येक समाधि काल में और (वाजे-वाजे) प्रत्येक ज्ञानप्राप्ति के अवसर में, या प्रत्येक बलकर्म के अवसर में (तवस्तरम्) अति बलशाली, अति वेगवान्, (इन्द्रम्) इन्द्र, आत्माको हम (सखायः) सब मित्रके समान प्रेमीजन (हवामहे) बुलाते हैं या उसका गुणगान करते हैं।

योगः—"तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्'। गीता०।

१६२—१. चमु, अदने स्वादिः। चमन्ति भक्षयन्ति अन्नेति (सा०) चमस इति मेघनाम। नि० १०। १॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। पात० योगसूत्र १। १॥

दों ही कार्य बलसे सम्पादन किये जाते हैं एक घोर संग्राम और दूसरा ध्यानयोग। दोनों में बली आत्माकों ही स्मरण किया और उसको ही पुकारा जाता है। योगीको "बलेषु हस्तिबलादीनि"। हाथियों का बल तक भी प्राप्त हो जाता है। संग्रामके अवसर पर भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन के आत्मा को चेताया वह वाज या संग्राम के अवसर पर 'इन्द्र' का आवाहन था।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
[१६४] आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत।
१ २ ३ १ २
सखायः स्तोमवाहसः॥ १०॥ ऋ० १। ५। १॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो! (आ एत तु) आओ और (आ निषीदत) आसने सामने आकर बैठ जाओ। हे (स्तोम-वाहसः) स्तुतियों को धारण करने हारे विद्वान् लोगो! (इन्द्रम् अभि प्रगायत) आत्मा का उत्तम रीतिसे साक्षात् दर्शन करके उसका यथार्थ वर्णन व उपदेश करो।

ताण्डय ब्राह्मण में त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश, एकविंश, त्रिणव, त्रयस्त्रिंश और चतुर्विंश, चत्वारिंश और अष्टाचत्वारिंश इस प्रकार ९ स्तोमों का वर्णन किया है। इनका विशेष प्रकार से गान करने का प्रकार उक्त ब्राह्मण में दर्शाया है।

इति सप्तमी दशतिः। इति पञ्चमः खण्डः।

॥ दशतिः ८ ॥ १ विश्वामित्रो गाथिनः। २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। ३ कुसीदी काण्वः। ४ प्रियमेधः आङ्गिरसः। ५, ८ वामदेवो गौतमः। ६, ९ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंङ्गिरसः। ७ मेधातिथिः काण्वः। १० विन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१६५] इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते ।
पिबा त्वा३ स्य गिर्वणः ॥ १ ॥ ऋ० ३ । ५१ । १० ॥

भा०—हे (राधानां पते) हे समस्त धनों, ज्ञानों और साधनों के स्वामी ! (इदम्) यह (ओजसा) बलपूर्वक श्रम से (सुतम्) निष्पादित है। (गिर्वणः) हे वाणी से कथन या प्रशंसा करने योग्य ! (अस्य) इस ज्ञान को (तु) भी (आ पिब) पान कर, प्राप्त कर।

[१६६] महाँ इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे ।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ २ ॥ ऋ० १ । ८ । ५ ॥

भा०—(महान्) बड़ा आत्मा (नः) हमारे (पुरः च) आगे सदा विद्यमान रहता है (वज्रिणे) सब भयोंके वारण करने हारे उस आत्मा की (महित्वम् अस्तु) महिमा बनी रहे। उसका (शवः) बल, ज्ञान (प्रथिना) विस्तार में (द्यौः न) द्यौलोक या सूर्य के समान व्यापक और महान् है।

[१६७] आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ ३ ॥ ऋ० ८ । ८१ । १ ॥

भा०—हे इन्द्र ! (महाहस्ती) बड़े भारी हस्त=धारक प्रयत्न वाला तू (क्षुमन्तम्) अन्न और गृहसे सम्पन्न (ग्राभम्) ग्रहण करने योग्य (चित्रम्) अद्भुत, आश्चर्यजनक ज्ञान को (दक्षिणेन) उत्तम, सम्पन्न साधन से (आ सं गृभाय) सब प्रकार से संग्रह कर।

[१६८] अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥ ऋ० ८ । ६९ । ४ ॥

भा०—हे मनुष्य ! (गोपतिं) वाणी और रश्मियों, इन्द्रियों के

१६५-'मन्वोजसा' इति ऋ०। १६६—'पुरश्च नु' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी, पालक (सत्यस्य सूनुम्) सत्यको उत्पन्न करने हारे, (सत्पतिम्), सत्य पदार्थ या सज्जनों के पालक (इन्द्रम्) इन्द्रको (यथा विदे) यथार्थ ज्ञान के लिये (अभि प्र-अर्च) साक्षात् रूप से स्तुति कर।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१६९] कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा।
२ ३ १ २ ३ २
कया शचिष्ठया वृता ॥ ५ ॥ ऋ० ४ । ३१ । १ ॥

भा०—(सदावृधः) सत्य के बल से अधिक बढ़ने वाला इन्द्र (चित्रः) ज्ञान करने योग्य, पूज्य, अद्भुत, (नः) हमारा (कया) किस अपूर्व (ऊत्या) रक्षण करने वाले सामर्थ्य या ज्ञानसे और (कया) किस (शचिष्ठया) अति शक्ति सम्पन्न, बलयुक्त या बुद्धिमत्तायुक्त आश्चर्य शक्ति से, (कया वृता) और किस व्यवहार से (नः सखा) हमारा मित्र (आ भुवद्) हो रहा है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१७०] त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्।
१ २ ३ १ २
आ च्यावयस्यूतये ॥ ६ ॥ ऋ० ८ । ९२ । ७ ॥

भा०—हे विद्वान् स्तोतः! (सत्रासाहम्) सबको एक साथ, सदा विजय कर लेने हारे (वः) तुम्हारे (विश्वासु) समस्त (गीर्षु) वाणियों में (आयतम्) विद्यमान, वर्णित (त्यत्) उस आत्मा को (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (आ च्यावयसि) साक्षात् प्राप्त कर।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[१७१] सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
३ २ ३ १ २
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ७ ॥ ऋ० १ । १८ । ६ ॥

भा०—(सदसस्पतिम्) शरीर के भीतर यथास्थान विराजमान, इन्द्रियों के पालक (अद्भुतम्) अभूतपूर्व (इन्द्रस्य प्रियम्) अन्तरात्मा के अत्यन्त प्रिय, (काम्यम्) कामना करने योग्य (सनिम्) सत् असत् का विभाग करने हारे, सर्व-प्रदाता (मेधाम्) धारणावती उत्कृष्ट आत्म-बुद्धि को देने हारे विवेक को (अहम्) मैं (अयासिषम्) प्राप्त होऊँ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३क २र३ १ २
[१७२] ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।
३ १ २ ३ १ १ २
उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे इन्द्र ! आत्मन् ! (ये) जो (पन्थाः) मार्ग (ते) तेरे (दिवः अधः) द्यौलोक, ब्रह्माण्ड, मस्तक कपाल के नीचे है (येभिः) जिन्होंसे (व्यश्वम्) नाना प्रकार के अश्वों,जीवों,वा इन्द्रियों को (ऐरयः) तू प्रेरित करता है वे और (नः भुवः) हमारे प्राण या कर्मेन्द्रिय (उत) भी (श्रोषन्तु) तेरी आज्ञा को सुनते हैं वे तेरे ही अधीन हैं ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१७३] भद्रं भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो ।
१ २ ३ ४ २
यदिन्द्र मृडयासि नः ॥ ९ ॥ ऋ० ८ । ९३ । २८ ॥

भा०—हे शतक्रतो ! हे शतप्रज्ञ ! (इन्द्र) आत्मन् ! (यद्)जब (नः) हमें आप (मृडयासि) सुखी करते हो तब (भद्रं-भद्रम्) कल्याणकारी, सुखकारी, (इषम) अन्न और (ऊर्जम्) बल को (आ भर) प्राप्त कराते हो ।

२ ३ १ २ २ ३ ३ १ २र ३ १ २
[१७४] अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
उत स्वराजो अश्विना ॥ १० ॥ ऋ० ८ । ९४ । ४ ॥

भा०—(अयम्) यह (सोमः) सोम, ज्ञान या सूक्ष्म अन्न रस (सुतः) निष्पन्न हुआ है । (अस्य) इसको (स्वराजः) प्राण के बल से गति करने वाले, या स्वयं चेतन (मरुतः) इन्द्रियगण, प्राणगण या विद्वज्जन(पिबन्ति) पान करते हैं (उत) और (अश्विना) प्राण और अपान या विद्वान् स्त्री पुरुष भी उसी का पान, साक्षात् करते हैं ।

इत्यष्टमी दशतिः । इति षष्ठः खण्डः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ दशतिः ६ ॥—१ इन्द्रमातरो देवजामयः । २ गोधा । ३ दध्यङ् आथर्वणः । ४ प्रस्कण्वः काण्वः । ५ गोतमो राहूगणः । ६ मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रः । ७ वामदेवो गोतमः । ८ वत्सः काण्वः । ९ शुनःशेपः आजीगर्त्तिः । १० उलो वातायनः॥

इन्द्रो देवता । गायत्री ॥

[१७५] ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।
वन्वानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥ ऋ० १० । १५३ । १ ॥

भा०—(ईङ्खयन्तीः) गतिशील, ज्ञानशील, (अपस्युवः) कर्म करने की इच्छावाली इन्द्रियां (जातम्) प्रकट हुए (सुवीर्यम्) उत्तम बलशाली (इन्द्रम्) आत्मा को राजा को प्रजाओं के तुल्य (वन्वानासः) भजन करती हुई या उसको प्राप्त करती, (उपासते) उसकी उपासना करती हैं ।

सायण ने इन्द्र-माताओं पर यह मंत्र लगाया है । इन्द्र आत्मा के माता, प्रसा के साधन इन्द्रियां ही यहां अभिप्रेत हैं । जैसा ऐतरेयारण्यक में लिखा है— इन्द्रियें कहा करती हैं "तव उप स्मसि" हम तेरी ही हैं । इत्यादि ।

[१७६] नकि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि ।
मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥ २ ॥ ऋ० १० । १३४ । ७ ॥

भा०—हे इन्द्र ! (देवाः) हम इन्द्रियगण (नकि इनीमसि) कुछ भी नाश वधादि नहीं करते, (नकि आ योपयामसि) और न कुछ भूल करते हैं । (मन्त्र-श्रुत्यं) मनन, संकल्प द्वारा जो कुछ हम सुन सकते हैं

१७५—'भेजानासः', 'सुवीर्यम्' इति ऋ० ।
१७६—'नकिर्देवा' 'मिनीमसि' इति च ऋ० । 'पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि संरभामहे' इति अधिकः पाठः, ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनुसार हम (चरामसि) आचरण करते हैं। प्रजा, लोकों के पक्ष में= हम मंत्र और श्रुति वेदके अनुसार चलें। हम दोष न करें।

[१७७] दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद् गामन्नाथर्वण।
स्तुहि देवं सवितारम् ॥ ३ ॥ अथर्व० ६ । १ । १ ॥

भा०—साधक[1] अपने ही आत्मा के प्रति कहता है, हे (बृहद्गाय) बृहत्साम का गान करने वाले या प्राण-स्वर से गान करनेहारे! हे(आथर्वण) जीवन का नाश न करने हारे आत्मन्! हे (गामन्)गतिशील आत्मन्! (द्युमद् दोषः) दीप्तिमान्, सब अन्धकारों का नाश करने हारा ईश्वर (आगात्) अब अन्तरात्मा में उदित होगया है। अतः उस (सवितारम्)सबको प्रेरणा करने हारे(देवम्)प्रकाशस्वरूप देव का(स्तुहि) तू कीर्त्तन कर। विशोका ज्योतिष्मती प्रज्ञा के उदय के अवसर पर साधक की यह दशा होती है।

[१७८] एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ ४ ॥ ऋ० १ । ४६ । १ ॥

भा०—(एषा) यह (उ) ही (उषाः) ज्योतिष्मती प्रज्ञा (अपूर्व्या) साधक के अनुभव में पहले कभी न आई हुई, अपूर्व, (दिवः प्रिया) मस्तक या मूर्धभाग को पूर्ण करने वाली या सूर्य के समान तेजस्वी आत्मा के अति प्रिय होती है। हे (अश्विना) गमनशील प्राण और अपान!आप दोनों के इस उत्तम दशा की प्राप्ति निमित्त(बृहत्)खूब (स्तुषे)अच्छी प्रकार गुणगान करता हूं।साधारणतःउषाके पक्षमें स्पष्ट है।

[१७९] इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः।
जघान नवतीर्नव ॥ ५ ॥ ऋ० १ । ८४ । १३ ॥

१७७–'दोषो गाय बृहद्गाय द्युमद्धेहि। आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम्'। इति अथर्व०

१. स्वात्मानमेवमामन्त्रयते। सा०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(इन्द्रः) आत्मा (दधीचः) ध्यान द्वारा प्राप्त करने योग्य परमात्मा की (अस्थभिः) तमोनाशक शक्तियों द्वारा (अप्रतिष्कुतः) किसी से भी पराजित न होकर (नव नवतीः) ८१० (वृत्राणि) ज्ञान के आवरण करने वाले विघ्नों को (जघान) नाश करता है।

आत्मा की शक्ति प्रकृति के तीन गुण सत्व, रजस्, तमस्, तीन कालों के भेद से ३ प्रकार की हुई। प्रभाव, उत्साह और मन्त्र तीने शक्तियों के भेद से २७ प्रकार की हुई। फिर सात्विकादि तीन गुणों के सम विषम होने से ८१ प्रकार की, दश दिशाओं के भेद से ८१० प्रकार की होजाती हैं। इतनी प्रकार की शक्तियों से वह इतनी ही व्युत्थान वृत्तियां पर विजय करता है।

इन्द्र की कथा आलंकारिक है, स्थानाभाव से नहीं लिखते।

२उ ३ १ २र ३ १ २ २ १ २
[१८०] इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
३ १ २ ३ १ २र
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ६ ॥ ऋ० १ । ९ । १ ॥

भा०—हे (इन्द्र)आत्मन् ! तू (इहि)आ, साक्षात् हो। (अन्धसः) प्राण की सूक्ष्म धारणाशक्ति की (विश्वेभिः) समस्त (सोम-पर्वभिः) वीर्य के पालनकारी सामर्थ्यों से तू (मत्सि)प्रसन्न और तृप्त होता है और(ओजसा) अपने बल से (महाँ अभिष्टिः)बड़ा प्रबल, अदम्य शक्ति वाला होजाता है।

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
[१८१] आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमा गहि।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
महान् महीभिरूतिभिः ॥७॥ ऋ० ४ ३२ । १ ॥

भा०—(वृत्रहन्) हे तामस आवरणों और विघ्नों के निवारक! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (महीभिः) बड़ी २ (ऊतिभिः) शक्तियों द्वारा तू (महान्) महान् है। तू (अस्माकम्) हमारे (अर्द्धम्) समीप ऐश्वर्य-मयरूपको (आ गहि) आ, प्राप्त हो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१८२] ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ८ ॥ ऋ० ८ । ६ । ५ ॥

भा०—(तत् अस्य ओजः) उस महान् आत्मा का सूर्य के समान यह ओज (तित्विषे) चमकता है (यत्) जिससे वह (उभे रोदसी) द्यौ और पृथिवी दोनों को (चर्म इव) चर्म अर्थात् चमड़े की ढाल को वीर के समान तरह (समवर्त्तयत्) सब ओर घुमा फिरा रहा है, उनको संचालित करता है । अथवा—इस आत्मा का वह सामर्थ्य है जिससे वह प्राण अपान दोनों को चर्म या धौंकनी या भाथी के समान धौंकता है ।

[१८३] अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ९ ॥ ऋ० १ । ३० । ४ ॥

भा०—(अयम्) यह साधक जिस प्रकार (कपोतः) कपोत (गर्भधिम् इव) कपोती के पास आता है उसी प्रकार (ते) तेरे पास (सम् अतसि) आता है, इसी कारण (नः) हमारे (तद् वचः) उस वचन को (ओहसे, आ ऊहसे) प्रेम से श्रवण करता जानता है ।

[१८४] वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र न आयूँषि तारिषत् ॥ १० । ऋ० १० । १८६ । १ ॥

भा०—(वातः) वायुरूप सर्वव्यापक, सब का प्राणस्वरूप, आत्मा (नः) हमारे (हृदे) अन्तःकरण में (शम्भु) कल्याण और शान्तिकारक, (मयो-भु, सुखकारी, (भेषजम्) आधि व्याधि को शान्त करनेहारे ओषधि को आ वातु) प्राप्त कराए और (नः) हमें (आयूंषि) समस्त जीवन को (प्र तारिषत्) पार कराए ।

जैसे भक्त जगन्नाथ पण्डितराज ने कहा है—

आधिव्याधिजरापराहत यदि क्षेमं निजं वाञ्छसि ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्णेति रसायनं रसय रे शून्यैः किमन्यै रसैः ॥

फलतः, इष्टदेव में ओषधि आदि की भावना भक्त कर लेते हैं।

इति नवमी दशतिः । इति सप्तमः खण्डः ।

॥ दशतिः १० ॥ ऋषिः—१ कण्वो घौर । २, ३, ६ वत्सः काण्वः । ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः । ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । ६ वामदेवो गौतमः । ७ इरिम्बिठः काण्वः । ८ सत्यधृतिर्वारुणिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

१२ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१८५] यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
३ १ २ ३ १ २
नकिः स दभ्यते जनः ॥ ५ ॥ ऋ० १ । ४१ । १ ॥

भा०—(प्रचेतसः)उत्कृष्ट ज्ञान से सम्पन्न (वरुणः)वरुण, सबसे श्रेष्ठ (मित्रः)मित्र,सबका स्नेही और(अर्यमा)अन्तर्यामी, न्यायकारी जन(यम्) जिसकी (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं (सः) वह (जनः)मनुष्य (नकिः दभ्यते) कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता । बृहदारण्यकोपनिषद् के (अ० ३)में इन देवों की पिण्ड और ब्रह्माण्ड में स्थिति का निर्णय किया है ।

३ २उ ३ १ २ ३ २३ १ २र ३ २
[१८६] गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।
३ २ ३ १ २
वरिवस्या महोनाम् ॥ २ ॥ ऋ० ८ । ४६ । १० ॥

भा०—हे साधक ! (यथा पुरा) पूर्व के समान (गव्या) गौ आदि पशुओं की इच्छा से, (अश्वया)अश्व आदि शीघ्रगमी साधनों की कामना से और (रथया) रथों की कामना से (उत) और (महोनाम्) धनों के प्राप्त करने के लिये तू (वरिवस्य) उपासना कर । अध्यात्म में-गौ=इन्द्रियां, अश्व=मन और रथ=शरीर । इन तीनों को रीति से वश करने और बलवान् बनाने की कामना से इन्द्र=आत्मा और परमेश्वर की उपासना आवश्यक है

१८५—"नू चित्स" इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१८७] इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।
३ २ ३१ २ ३ १ २
एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ ३ ॥ ऋ० ८ । ६ । १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (ते) तेरी (इमाः पृश्नयः) ये रसों तक पहुंचने वाली इन्द्रियां (ऋतस्य पिप्युषीः) ऋत=सत्य ज्ञान को पान करती हुई (एनाम्) इस अनुभवगम्य (आशिरम्) परस्फुटित हुए (घृतम्) विशेष ज्ञान, दीप्ति, कान्ति को (ऋतस्य) जल पान करके दूध को गौओं के समान (दुहते) उत्पन्न करती हैं ।

३ २ ३ २ २ ३ १ २र
(१८८) अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत ।
१ २र ३ १ २
यत् सोमेसोम आभुवः ॥ ४ ॥ ऋ० ८ । ९३ । १७ ।

भा०—हे (पुरु-नामन्) हे सहस्रों, बहुतसे नामों से पुकारे जाने वाले, हे (पुरु-नामन्) बहुत से भक्त, दुःखी, पीडित जन जिसके आगे प्रेम, भय, श्रद्धा से नमस्कृत हों ! हे (पुरुस्तुत)नाना प्रकारों से स्तुति के पात्र ! आत्मन् ! (अया गव्यया)इस इन्द्रियों के अनुकूल कामना,(धिया च) और ध्यान द्वारा भी (यत्) जो तू (सोमे सोमे)प्रत्येक सोम अर्थात् ज्ञान में (आभुवः) प्रकट होता है इसीसे तू साक्षात् किया जाता है ।

'प्रतिबोधविदितं मतम्' । इति केन उ० ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
(१८९) पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
३ १ २ ३ १ २
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ५ ॥ ऋ० १ । ३ । १० ।

भा०—(सरस्वती) वेदवाणी (पावका) हृदय को पवित्र करने वाली, (वाजेभिः) ज्ञान और कर्मों द्वारा (वाजिनीवती) शक्तिसम्पन्न होकर (धियावसुः) ध्यान, धारणा और ज्ञानाभ्यास द्वारा अन्तःकरण में

१८६—'वरिवस्य महामह' इति । ऋ० । 'मघोनाम्' इति पाठो विवरणसम्मतः ।
१८८—'आभवः' इति । ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास करने हारी (यज्ञं वष्टु) हमारे जीवन-यज्ञ को धारणा करे। ज्ञान-योग के साथ तदनुसार कर्मयोग द्वारा ही वेद के मन्त्र हृदय को पवित्र करते और जीवन को चिरायु और सफल करते हैं।

२ ३१ २र ३ २उ ३ १ २
[१९०] क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात्।
२ ३ २ ३ १ २
स नो वसून्या भरात्॥ ९॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(इमम् इन्द्रम्) इस इन्द्र आत्मा को (नाहुषीषु[1]) कर्म-बन्धन में बंधी मनुष्य प्रजाओं में (सोमस्य) गुण-कीर्त्तन और ज्ञान-सम्पादन द्वारा (कः तर्पयात्) कौन तृप्त कर सकता है? अथवा (कः) सुखमय प्रजापति (सः) वह परमेश्वर ही (नः) हमारे (वसूनि) ज्ञानों और ऐश्वर्यों को (आ भरात्) सदा प्रदान करता है।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१९१] आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
२ उ ३ १ २ ३ १ २
एदं बर्हिः सदो मम॥ ७॥ ऋ० ८। १७। १॥

भा०—हे (इन्द्र)! (हि) क्योंकि हम (ते) तेरे लिये (सुषुम) ज्ञान को उत्तम रूप से सवन, सम्पादन करते हैं, अतः तू (आ याहि) आ, प्रत्यक्ष हो। और (इमम्) इस (सोमम्) सोमरूप ज्ञान को (पिब) पान कर। (इदम्) यह (मम) मेरा दिया (बर्हिः) यज्ञ या हृदयरूप आसन है, इसमें (आ सदः) विराज।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
(१९२) महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः।
३ २ ३ १ २
दुराधर्षं वरुणस्य॥ ८॥ ऋ० १०। १८५। १॥

भा०—(मित्रस्य) मित्र आदित्य या प्राण (अर्यम्णः) अर्यमा, अन्तर्यामी आत्मा और (वरुणस्य) वरुण, अपान, (त्रीणाम्) इन तीनों का (महि अवः) बड़ी भारी रक्षा और (दुराधर्षं द्युक्षम्) असह्य तेज (अस्तु) हो।

१९०—१. नहुः इति मनुष्यनाम (नि० २। ३) नह्यन्ते कर्मभिः पूर्वकृतैः।
१९२—'मवोस्तु द्युक्षम्' इति। ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा, आदित्य या मित्र चक्षु में स्थित है। यम या अर्यमा हृदय में बैठा हुआ श्रद्धा और दक्षिणा में विराजमान हैं। रेतस्=वीर्य में वरुण स्थित है

(१६३) त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।

स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ ६ ॥ ऋ० ८ । ४६ । १ ॥

भा०—हे (पुरु-वसो) शरीर और इन्द्रियों में आवास करने हारे! (इन्द्र) आत्मन्! (हरीणाम् प्रणेतः) हे इन्द्रियों के प्रेरक! हे (स्थातः) नित्य अविचाली, कूटस्थ पुरुष! हम (त्वावतः) तेरे समान स्वामी के (स्मसि) ही हैं। उससे ही आत्मीयता दर्शाते हैं। इन्द्रियगण आत्मा को एवं प्रजागण भृत्यादि राजाको इसी प्रकार कहें

इति दशमी दशतिः। इत्यष्टमः खण्डः ॥

इति द्वितीयः प्रपाठकः समाप्तः ॥

अथ तृतीयः प्रपाठकः (प्रथमोऽर्धः)

॥ दशतिः १ ॥ ऋषिः—१ प्रगाथः काण्वः । २ विश्वामित्रो गाथिनः । ३. १० वामदेवो गौतमः । ४, ६ श्रुतकक्ष अंगिरसः । ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । ७ गृत्समदः शौनकः । ८, ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

(१६४) उत त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।

अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥ ऋ० । ८ । ६४ । १ ॥

भा०—हे (अद्रिवः[1]) संहारकारी अभेद्यशक्ति से युक्त! हे आत्मन्, जीव! (त्वा) तुझको (सोमाः) सोम, ज्ञान और ऐश्वर्य (मदन्तु) हर्ष दें। तू (राधः[2]) ज्ञान, धन (कृणुष्व) सम्पादन कर। (ब्रह्म-द्विषः)

१६४—'स्तोमा' इति । ऋ० । 1. अत्तेरद्रिः ।

२. राध साध संसिद्धौ, स्वादिः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद ज्ञान से द्वेष करने हारे पुरुषों और द्वेषयुक्त भावों को (अव जहि) नाश कर ।

१ २ ३ ५ २ ३ २ उ ३ १ २
[१९५] गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
२ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥ २ ॥ ऋ० ३ । ४० । ६ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वेदवाणियों द्वारा कीर्त्तन करने योग्य ! तू (नः) हमारा (सुतम्) सम्पादन किया स्तुतिरूप हव्य (पाहि) पान कर, स्वीकार कर । (मधोः) मधु=ब्रह्मज्ञान, अमृत, ऋग्वेद की (धाराभिः) धाराओं, ऋचाओं द्वारा (अज्यसे) तुम्हारा स्तवन, सेवन, भजन, ज्ञान किया जाता है । हे आत्मन् ! (त्वादातम् इद्) यह समस्त तुम्हारा ही प्रकाशमान (यशः) यश सामर्थ्य है ।

देखो—"य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्" इत्यादि (कठ० उप० ४ । ५ ।)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ उ ३ १ २ २र ३ २
[१९६] सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन ।
२ ३ २ ३ २उ ३ १ २
न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥ ३ ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(वः) आप लोगों को जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यशील इष्टदेव (सदा) नित्य (आ चर्कृषत्) अपने समीप आकर्षण करता है (सः) वह (नु) ही (उप सपर्यन्) निकट तम हो आदर प्रेम करता हैं । (इन्द्रः) आत्मा, परमात्मा (शूरः) शीघ्र गति वाला या ज्ञान सम्पन्न (देवः) वही देव (न वृतः) खेद है कि क्यों नहीं वरण किया जाता, लोग उसको क्यों नहीं अपनाते ? वस्तुतः वही सबसे अधिक वरण करने योग्य है ।

१९६—सपर्यतिः परिचरणकर्मा । परिचरन्निव । यथा कश्चित् कस्मैचित् परिचरन् प्रीतिमुत्पादयति तथेत्यर्थः । मा० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१६७] आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ॥ ४ ॥ ऋ० ८ । ९२ । २२ ॥

भा०—(इन्दवः) समस्त ज्ञानी पुरुष (त्वा) तुझमें (सिन्धवः, समुद्रम् इव) जिस प्रकार नदियां समुद्र में प्रवेश करती हैं उसी प्रकार (विशन्तु) प्रवेश करें । हे (इन्द्र) आत्मन् ! (त्वाम्) तुझसे (न अतिरिच्यते) कोई भी बढ़ नहीं सकता, तुझसे पृथक् नहीं रह सकता। आत्मपक्ष में—(इन्दवः) द्रवणशील इन्द्रियां, प्राणगण आत्मा रूप समुद्र में नदियों के समान प्रविष्ट हैं । उनमें से कोई भी बढ़ नहीं सकता ।

[१६८] इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ५ ॥ ऋ० १ । ७ । १ ॥

भा०—(गाथिनः) गाथाओं का गान करने वाले, सामगायक (इन्द्रम् इत्) आत्मा को ही (बृहत्) बृहत्साम द्वारा या सर्वोपरि महान् रूपमें बृहत् नाम और 'बृहत्' के पर्यायों से (अनूषत) स्तुति करते हैं । (अर्किणः) अर्चा करने हारे ऋग्वेदी (अर्केभिः) अपने स्तुतिपाठों व ऋग्वेद के मन्त्रों से (इन्द्रम्) आत्मा की ही स्तुति करते हैं और (वाणीः) यजुर्वेद के मन्त्र भी (इन्द्रम्) आत्मा की ही (अनूषत) स्तुते करते हैं ।

'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' इति काठक उप० ।

[१६९] इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् ।
वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ६ ॥ ऋ० ८ । ९३ । ३४ ॥

भा०—(इन्द्रः) परमात्मा (इषे) हमारी इच्छानुकूल (नः) हमें (ऋभु-क्षणम्) बड़े भारी, महान (ऋभुम्) तेज सम्पन्न, सत्यसामर्थ्य से युक्त, मेधावी, (रयिम्) धन, अन्न, ज्ञान का (ददातु) दान करे । (वाजी) सर्वज्ञ, ऐश्वर्यवान् वह हमें (वाजिनम्) ज्ञान एवं कर्मबल का भी (ददातु) दान करे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२००] इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभीषदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ७ ॥ ऋ० २ । ४१ । १० ॥

भा०—(अङ्ग) हे मनुष्य ! वह परमेश्वर (महद् भयम्) बड़े भारी भय को (अभि सत्) दूर करता है । भयको मुकाबला कर उसे वह (अपचुच्यवत्)परे भगा देता है । (सः हि)क्योंकि वह (स्थिरः) स्थिर, कूटस्थ और (विचर्षणिः) सब को देखने वाला, सबका निरीक्षक है ।

[२०१] इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः ।
गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥ ऋ० ६ । ४५ । २८ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वेदवाणियों द्वारा जानने और भजने योग्य ! (त्वा उ) तुझको ही (सुते-सुते) प्रत्येक ज्ञानयज्ञ में (इमाः गिरः) ये वेद-वाणियां, स्तुतियां (धेनवः गावः वत्सं न) दूध पिलाने वाली गौएं जिस प्रकार स्नेह से बछड़े के पास जाती हैं उसी प्रकार स्नेह से (नक्षन्ते) पहुँचती हैं. तेरा वर्णन करती हैं ।

[२०२] इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये ।
हुवेम वाजसातये ॥ ९ ॥ ऋ० ६ । ५७ । १ ॥

भा०—(इन्द्रा पूषणा नु) सर्वैश्वर्यसम्पन्न इन्द्र और सबके पालक पूषा परमात्मा को ही हम लोग अपने (सख्याय) मित्रता, (स्वस्तये) अपने कल्याण और (वाजसातये) ज्ञान, बल और अन्नादि सामर्थ्य प्राप्त करने के लिये (हुवेम) प्रार्थना करते हैं । एक ही प्रभु में इन्द्र और पूषा दो स्वरूप एक साथ दीखने से द्विवचन का प्रयोग है ।

[२०३] न किं इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
न क्येवं यथा त्वम् ॥ १० ॥ ऋ० ४ । ३० । १ ॥

२०१—'वत्सं गावो' इति पाठभेदः, ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वदुत्तरम्) तुझ से ऊंचा और तुझ से अधिक सूक्ष्म, परम कारण (न कि) और कोई नहीं है। हे (वृत्रहन्) आवरणकारी तामस विघ्नों को दूर करने हारे ! (त्वत् ज्यायो न अस्ति) और कोई तुझ से अधिक बड़ा, एवं प्रशंसा करने योग्य भी दूसरा नहीं। (यथा त्वम्) जैसा तू है (एवं नकि) इस प्रकार का और कोई नहीं, तू अद्वितीय है।

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः। गी० ॥

यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् ॥ कठ० उप० ॥

इति प्रथमा दशतिः। इति नवमः खण्डः ॥

॥ दशतिः २ ॥ ऋषिः—१, ४ त्रिशोकः काण्वः। २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। ३ वशोऽश्व्यो वत्सो वा काण्वः। ५ सुकक्ष आंगिरसः। ६, ७ वामदेवो गौतमः। ७ विश्वामित्रो गाथिनः। ८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। १० श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः ॥ इन्द्रो देवता ॥

[२०४] तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः।
समानमु प्र शंसिषम् ॥ १ ॥ ऋ० ८। ४५। २८ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप सब (जनानां तरणिम्) मनुष्यों को तारने वाले, भवसागर से पार करने वाले, (त्रदम्) त्राण देने वाले, कष्टों को काटने वाले, (गोमतः) इन्द्रियों और पशु आदि से सम्पन्न (वाजस्य) धन, अन्न और ज्ञान के (समानम् उ) सबके प्रति समान भाव से न्याय पूर्वक देने वाले, निष्पक्ष, सर्वव्यापक प्रभु की मैं (प्र शंसिषम्) बहुत २ स्तुति करता हूं।

[२०५] असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत।
सजोषा वृषभं पतिम् ॥ २ ॥ ऋ० १। ६। ४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (इन्द्र) परमात्मन् ! (ते) तेरे लिये (गिरः) ये वेदवाणियां (असृग्रन्) प्रकट की जाती हैं। क्योंकि (सजोषाः) सत्य प्रेम से कामना से प्रेरित स्त्री जिस प्रकार (पतिम्) पति के प्रति जाती है उसी प्रकार (वृषभम्) सर्वश्रेष्ठ, धर्म से देदीप्यमान, सबके पालक (त्वां प्रति) तेरे प्रति ही समस्त (गिरः सजोषाः) वाणियां प्रेम से से पूर्व (उद् अहासत) उठी जा रही हैं।

[२०६] सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा।
मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥ ३ ॥ ऋ० ८। ४६। ४॥

भा०—(स मर्त्यः) वह पुरुष (सु-नीथः) उत्तम मार्ग में सुख से चला जाता है (यम्) जिसकी (मरुतः) देव, विद्वान् लोग और (यम्) जिसकी (अर्यमा) न्यायकारी, (मित्रः) सबका स्नेही और (अद्रुहः) बिना द्रोह रहित पुरुष (पान्ति) रक्षा करते हैं।

[२०७] यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम्।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४ ॥ ऋ० ८। ४५। ४१॥

भा०—हे इन्द्र ! (यद् वीडौ) जो शत्रुओं से न दबने वाले, (यत् स्थिरे) जो स्थिर रहने वाले, और (यत् पर्शाने) जो विचारशील पुरुष में (पराभृतम्) रहा करता है (तद्) वह (स्पार्हं वसु) सबके अभिलाषा योग्य बल, धन और स्थिरता और ऐश्वर्य (आ भर) हमें प्राप्त करा।

[२०८] श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम्।
आशिषे राधसे महे ॥ ५ ॥ ऋ० ८। ९३। १६॥

२०६—'मित्रः पान्त्यद्रुहः', इति पाठभेदः, ऋ०।
२०७—'परिशाने' इति पाठः प्रातिशाख्यानुसारी, कौथुमानामपि।
२०८—'आ शुषे' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(वः) आप लोग (श्रुतम्) वेद में विख्यात या जगत्में प्रसिद्ध (शर्द्धम्) उत्कृष्ट बलशाली (वृत्रहन्तमम्) विघ्नों के नाश करने वालों में सबसे श्रेष्ठ की (चर्षणीनाम्) प्रजाओं की (आशिषे) उत्तम कामनाओं की पूर्ति और (महे) श्रेष्ठ (राधसे) साधना या ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (प्र) खूब उपासना करो ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[२०९] अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः ।
१ २ ३ १ २
अरं शक्र परेमणि ॥ ६ ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

भा—हे (इन्द्र) आत्मन् ! हे (शूर) शत्रुओं के हिंसक ! (त्वावतः ते) तेरे समान ! अद्वितीय तेरे ही (श्रवसे) कीर्तिगान करने के लिये हम (अरं गमेम) खूब लगे रहें । हे (शक्र) सर्वशक्तिमन् ! (परेमणि) तेरी परमता, सौंदर्य, परम रूप में ही हम (अरम्) अच्छी प्रकार (गमेम) लीन रहें, मग्न हों ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[२१०] धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ।
१ २ ३ १ २
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ ७ ॥ ऋ० ३ । ५२ । १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (नः) हमारे (प्रातः) प्रातःकालके अवसर में (धानावन्तम्) ध्यान, धारणा से सम्पन्न, (करम्भिणम्) सुख को प्रारम्भ करने वाले (अपूपवन्तम्) अति समीपता दिलाने वाले, अथवा दूर और निकट सर्वत्र विद्यमान, (उक्थिनम्) ज्ञानसम्पन्न, सोम आत्मा को (जुषस्व) प्रेम पूर्वक ग्रहण करो, उसे स्वीकार करो ।

भुँने जौ 'धाना' कहाते हैं, दही से मिले सत्तू 'करम्भ' कहाते हैं । पके पुरोडाश को 'अपूप' कहा जाता है । प्रतिनिविवाद से, सूक्ष्मतत्व जब स्पष्ट होजायं तो वे 'धाना' हैं । ध्यानयोग से विवेक द्वारा पवित्र किया सत्य ज्ञान 'सक्तु' है । उसका विशेष रस अनुभव 'दधि' है, जिसका मथन करने पर या विशेष परिपाक होनेपर प्राप्त ब्रह्मज्ञान 'अपूप' है जिसमें आत्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस ब्रह्मके समीपतम होजाता है। अथवा [अप उप-वत्=अपूपवत्]वह दूर और निकट के सब पदार्थों को प्राप्त है। उस समय अपूर्व ब्रह्मास्वाद उक्थ है, तद्वान् आत्मा 'उक्थी' है। उसको स्वीकार करने की प्रार्थना है।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[२११] अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः।

३ १र २र ३ १ २
विश्वा यदजय स्पृधः॥ ८॥ ऋ० ८। १४। १३॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (यत्) जब (विश्वाः स्पृधः) अपने से स्पर्द्धा करने वाली बाधक सब तामस व्युत्थान वृत्तियों को (अजयः) विजय करले तब (नमुचेः) कभी न पीछा छोड़ने वाले मृत्यु वा वासनामय कर्मबन्धन का भी (शिरः) शिर या आश्रय (अपां फेनेन) ज्ञान और कर्मों के बल से अथवा आप्त पुरुषों के शुद्ध ज्ञानोपदेश से (उद् अवर्त्तयः) उखाड़ डाल।

३१ ३ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[२१२] इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः।

१ २
तेषां मत्स्व प्रभूवसो॥ ९॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (इमे) ये (सोमाः) सोम, ज्ञान (ते) तेरे लिये (सुतासः) निष्पादन किये हैं (ये च) और जो (सोत्वाः) भविष्य में निष्पादन किये जावेंगे (तेषाम्) उनसे हे (प्रभू-वसो) सामर्थ्यसम्पन्न! शरीर के वासी आत्मन्! (मत्स्व) तू सदा प्रसन्न रह।

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[२१३] तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो।

३ १ २
स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय॥ १०॥ ऋ० ८। ९३। २५॥

भा०—हे (विभावसो) तेज-कान्तिसम्पन्न! (इन्द्र) आत्मन्! (सोमाः) सोम ये समस्त अन्तः—आनन्द रस (तुभ्यं) तेरे लिये (सुतासः) निष्पादन किये गये है। (बर्हिः) देहरूप यह आसन

२११—स्फायायते वर्धते स फेनः। अपः इति प्रज्ञानाम, कर्मनाम च, नि०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा ब्रह्मस्वरूप महान् आश्रय (स्तीर्णम्) विस्तृत किया गया है। तू (स्तोतृभ्यः) सत्य २ गुणकीर्तन करने वालों को (मृडय) सुखी कर।

इति द्वितीया दशतिः । इति दशमः खण्डः ॥



॥ दशतिः ३ ॥ शुनःशेपः प्राजीगर्तिः । श्रुतकक्षः आंगिरसः । ३ त्रिशोकः काण्वः । ४, ६ मेधातिथिः काण्वः । ५ गोतमो राहूगणः । ६ ब्रह्मातिथिः काण्वः । ७ विश्वामित्रो गाथिनो जमदग्निर्वा भार्गवः । ८ प्रस्कण्वः काण्वः । इन्द्रो देवता ॥

गायत्री ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[२१४] आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
१ २ ३ १ २
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥ ऋ० १ । ३० । १ ॥

भा०—(वः) आप लोग (इन्दुभिः) सोमों, ज्ञानों, स्तुतियों द्वारा (शत-क्रतुम्) सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्मों से युक्त (मंहिष्ठम्) दानशील, पूजनीय, (इन्द्रम्) आत्मा को (वाजयन्तः) बल और ऐश्वर्य की कामना करते हुए (आ सिञ्च) इस प्रकार स्नेह से मिलो (यथा) जिस प्रकार (क्रिविम्[1])कार्य-साधन करने वाले हथियार या यन्त्र को घृत तैल आदिसे सींचते हैं। अथवा-जिस प्रकार(क्रिविम्) जलपूर्ण कूप के आश्रय से(वाज-यन्तः)अन्न चाहने वाले कृषक खेत को जल से सेचन करते हैं उसी प्रकार प्रभु का आश्रय लेकर समाधि रसों से क्षेत्ररूप आत्मा को सेचन करो।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
[२१५] अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया ।
३ २ ३ १ २
इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥ ऋ० ८ । ९२ । १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! राजन् ! (अतः चित्) इस कारण से ही (शत-वाजया) सैकड़ों प्रकार के बलों से सम्पन्न और (सहस्र-

२१४—१. करोति येन स क्रिविः, (वा० उ०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाजया) सहस्रों या अनेक बलों से युक्त (इषा) या इच्छा शक्ति या सेनासहित (नः) हमें (उप याहि) प्राप्त हो ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ : ३ १ २
[२१६] आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद् विमातरम् ।
३ १ २र
क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ३ ॥ ऋ० ८ । ४५ । ४ ॥

भा०—(वृत्रहा) विघ्नों को निवारण करने हारा राजा (जातः) शक्ति सम्पन्न होकर (बुन्दम्) दण्ड देने और शत्रु का नाश करने हारे बाण या हथियार को (आ ददे) धारण करता है । और (मातरम्) अपने उत्पन्न करनेहारी मातृतुल्य प्रजा से (वि पृच्छात्) नाना प्रकार से पूछता है कि (के उग्राः) तुझे कष्ट देने वाले भयंकर कौन है और (के ह शृण्विरे) कौन हिंसा करते हैं । अथवा तुझ में (के ह शृण्विरे) कौन श्रवणशील बहुश्रुत विद्याभ्यासी और (के उग्राः) कौन उग्र, बलवान्, वीर क्षत्रिय हैं ? शक्तिधारी पुरुष को जब प्रजा राजा बनाती है तब वह राजदण्ड हाथ में लेता है और प्रजा के दुःखदायी आततायी लोगों को खूब छान-बीन करके उन को दण्ड देता है अथवा उनमें बलवान् और विद्वान् जनों को प्रजा के शासन और शिक्षण में नियुक्त करता है । आत्मपक्ष में-माता=यथार्थ अनुभवशील चित् शक्ति, बुन्द=ओंकार, वृत्र=अज्ञान, उग्र=विक्षेपक भाव या प्राणगण और श्रवणशील ज्ञानेन्द्रियगण हैं ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[२१७] बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।
१ २ ३ २ ३ १ ३
साधः कृण्वन्तमवसे ॥ ४ ॥ ऋ० ८ । ३२ । १० ॥

भा०—हम (ऊतये) रक्षा के लिये (सृप्र-करस्नम्) अपने हाथों को फैलाये (बृबदुक्थं=बृहद्-उक्थम्)अति अधिक ख्यातिमान् और (अवसे) प्रजा की रक्षा करने के लिये (साधः कृण्वन्तम्) साधना करने वाले राजा के समान परमेश्वर को बुलाते हैं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[२१८ ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् ।
३ २ ३ २ ३ १ ३
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ ५ ॥ ऋ० १ । ९० । १ ॥

भा०—(वरुणः) सब कष्टों का निवारण करने हारा (मित्रः) सब का स्नेही (विद्वान्) सर्वज्ञ, (अर्यमा) अन्तर्यामी, न्यायकारी (देवैः) विद्वान् पुरुषों से (सजोषाः) समान रूप से प्रेम करने हारे राजा के समान परमेश्वर (ऋजुनीती) धर्मयुक्त नीतिमार्ग से (नः) हम सब को (नयति) लेजावे ।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[२१९] दूरादिहेव यत् सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत् ।
३ २ ३ १ २
वि भानुं विश्वथातनत् ॥ ६ ॥ ऋ० । ८ । ५ । १ ॥

भा०—(दूरात्) दूर और (सतः) समीप विद्यमान रहकर भी परमेश्वर सूर्य के समान (यत्) जब (अरुणप्सुः) प्रातःकालिक प्रभा के समान कान्तिमान् (इह एव) यहां ही (अशिश्वितत्) चमकता है तब (भानुम्) कान्ति, प्रज्ञा या दीप्ति को (विश्वथा वि अतनत्) सब ओर फैलाता है ।

साधक की साधना की सिद्धि के लक्षण विशेष दीप्तियों का मस्तक पर विशेष रूप से चारों ओर दीखना ही है । जैसा लिखा है—

'व्यद्युतद् व्यद्युतदा न्यमीषद्' इत्यादि । केन उ० । तद् दूरे तद्ु अन्तिके इत्यादि । ईश उप० ।

१ २ ३ १र २र
[२२०] आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
३ १ २
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ ७ ॥ ऋ० ३ । ६२ । १६ ॥

२१८—'नयतु विद्वान्' इति ऋ० ।

२१९—'यत्सत्यरुणप्सुः', 'विश्वथातनत्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (मित्रावरुणौ) मित्र, वरुण, प्राण और अपान (घृतैः) दीप्तियों द्वारा (गव्यूतिम्) इन्द्रियों के मिलने के स्थाने त्रिपुटीभाग को अथवा गायों के बाड़े के समान एकमात्र आश्रयस्थान आत्मा को (आ उक्षतम्) योगज आनंद रसों से खूब सेचन करो। हे (सु-क्रतू) उत्तम प्रज्ञा और कर्म के सम्पादन करनेहारे तुम दोनों! (नः) हमारे (रजांसि) रजोभाव से युक्त इन्द्रियों को अथवा हमारे लोकों को द्यौ और पृथिवी या दिन और रात्रि के समान (मध्वा) मधु अर्थात् विशेष चेतन या संवित्सिद्धि द्वारा (उक्षतम्) सेचन करो।

प्राण और अपान की साधना से त्रिपुटी में दीप्ति और इन्द्रियों में विशेष मधुर स्फूर्ति उत्पन्न होती है जिसको 'संवित् ज्ञान' कहते हैं।

[२२१] उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत।
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ ८ ॥ ऋ० १ । ३७ । १० ॥

भा०—(त्ये) वे (गिरः सूनवः) वाणी के उत्पादक मरुद्गण, प्राणगण (यज्ञेषु) यज्ञोंमें वेदोच्चारक विद्वानों के तुल्य अपने निवास स्थान इन्द्रिय-स्थानों, कार्यव्यापारों में (काष्ठाः) अपने जानेकी दिशाओं, मार्गों पर इस प्रकार गमन करते हैं जैसे (वाश्राः) गौएं हंभारतें समय (यातवे) गति करने के लिये (अभिज्ञु) घुटने के प्रति झुककर (अत्नत) जाती हैं। यहां प्राणों के संचार का स्वरूप बतलाया गया है।

[२२२] इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढमस्य पांसुले ॥९॥ ऋ० १ । २२ । १७ । यजु० ५।१५॥

भा०—(विष्णुः) देह में सर्वव्यापक वह आत्मा (इदम्) इस

२२१—'अज्मेष्वत्नत' इति पाठः, ऋ०।
२२२—'पांसुरे', पांसुरे' इति पाठः, यजु०।

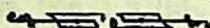
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार (वि चक्रमे) गति करता है कि (त्रेधा) तीन प्रकार से (पदम्[1]) अपनी शक्ति को (नि दधे) स्थापन करता है और (अस्य) इसकी वह शक्ति, सामर्थ्य, (पांसुले[2]) इन्द्रियों के शयन करने के स्थान, देह में (समूढम्) उत्तम रूपसे प्रकट है। परमात्मा पक्ष में–ईश्वर की शक्ति तीनों लोकों में है। 'पांसवो लोकाः' । इस ब्रह्माण्ड भर में उसकी शक्ति समूहित या व्याप्त है।

आत्मा की तीन प्रकार की शक्ति अन्न से रसका ग्रहण, इन्द्रिय से ज्ञान निष्पादन और देह में प्राण और रस का संचरण।

इति तृतीया दशतिः। इत्येकादशः खण्डः।



॥ दशतिः ४ ॥ ऋषिः–१, ७, ८ मेधातिथिः कण्वः। २ वामदेवो गौतमः। ३, ५ मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः। ४ विश्वामित्रो गाथिनः। ६ दुर्मित्रः सुमित्रो वा कौत्सः। ९ विश्वामित्रो गाथिनोऽभीपाद् उदलो वा। १० श्रुतकक्ष आंगिरसः ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

[२२३] अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय।
अस्य रातौ सुतं पिब ॥ १ ॥ ऋ० ८। ३२। २१ ॥

भा०—हे आत्मन्! तू (मन्यु-साविनम्) क्रोध को उत्पन्न करने वाले भावको (अति इहि) छोड़ दे। (सु-सुवांसम्) उत्तम रूपसे संचालन करने या उत्तम रस वा सत्यज्ञान सम्पादन करने वाले के पास (उप ईरय) सदा स्वस्थ रूप से प्राप्त हो। (अस्य रातौ) उसके आनन्द की दशा में ही तू (सुतम्) उत्तम ज्ञान का (पिब) आस्वादन कर।

१. पदं पद्यतेर्गतिकर्मणः।

२. पांसवः पादैः सूयन्ते इति वा, पन्नाः शेरत इति वा (नि० १२। १८)।

२२३–'समुपारये', 'इमं रातं सुतं पिब' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२२४] कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते ।
तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥ २ ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(महे प्र-चेतसे) बड़े भारी ज्ञानवान्, (देवाय) इष्टदेव के लिये (कद् उ) कुछ भी तुच्छसा भी या किसी सामान्य अभिप्राय से भी (वचः) वचन (शस्यते) स्तुति रूप में कहा जाय (तद् इत् हि) वह ही (अस्य) इस वक्ता का (वर्धनम्) वृद्धिकारक होता है। क्योंकि वह प्रभु महान् और सर्वोपरि चित्त वाला 'प्रचेता' है।

"अणुरप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" गीता०। ईश्वर की नित्य थोड़ी आराधना भी आत्मा के बल को बढ़ाती है।

[२२५] उक्थं च न शस्यमानं नागोरयिरा चिकेत ।
न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥ ऋ० ८ । २ १४ ॥

भा०—(अयिः) सर्वव्यापक, परमेश्वर (अगोः) इन्द्रिय या वाणी रहित, अज्ञानी मूक के (शस्यमानं) पढ़े हुए (उक्थं चन) स्तुतिपाठ को भी (न आचिकेत) क्या नहीं जानता? और क्या (गीयमानं) गाये गये (गायत्रम्) गायत्र साम को भी नहीं जानता? जानता ही है वह उसको भी स्वीकार करता ही है।

[२२६] इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः ।
हरिवान्त्सुतानां सखा ॥ ४ ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(इन्द्रः) आत्मा, परमात्मा (उक्थेभिः) गुणकीर्तनों से (मन्दिष्ठः) प्रसन्न होने वाला (वाजानां च) और ज्ञानसम्पन्न पुरुषों में (वाजपतिः) ज्ञानों का एकमात्र स्वामी, (हरिवान्) इन्द्रिय आदि ज्ञानसाधनों से सम्पन्न है। ईश्वरपक्ष में—पञ्चभूत आदि प्रकृति के विकारों

२२४—किमो विभक्तेरत् ।
२२५—'नगोररिराचिकेत' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सम्पन्न, (सुतानाम्) निष्पादित कर्मों, ज्ञानों और उत्पन्न लोकों का (सखा) मित्र है।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[२२७] आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः।
३ १ २ ३ १ २
महाँ इव युवजानिः ॥ ५ ॥ ऋ० ८ । २ । १९ ॥

भा०—हे परम आत्मन्! (नः) हमारे (सुतम्) प्रस्तुत ब्रह्मानन्द-रस या आत्मा रूप सोम के (उप आयाहि) समीप आइये, प्राप्त कीजिये। (वाजेभिः) अन्नों, ज्ञानों और बलों से (मा हृणीयथाः) हमें मत हारिये, हमें क्रोध से वञ्चित न कीजिये। आप (महान्) बड़े वीर्यवान् (युवजानिः इव) प्रपौत्र को भी अपने समक्ष देखने वाले वृद्ध के समान पूज्यतम हैं, हम आपके समक्ष अति अति बालक हैं।

'युवजानिः—'जीवति तु वंश्ये युवा (पा० ४ । १ । १६३) शास्त्रेर्युवापत्यं पुमान् इत्यादि व्याख्यानदर्शनाद्युवसंज्ञा लौकिकी शास्त्रसिद्धा च प्राचीनकालपरिचिता। जनेरौणादिकोऽनिज् बाहुलकात् (उ० ४ । ५१)

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २
[२२८] कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद् वाः।
३ १ ३ २ ३ १ २
दीर्घं सुतं वाताप्याय। ६॥ ऋ १० । १०५ । १ ॥

भा०—हे (वसो) सबके प्राणाधार, सबमें बसने और सबको बसाने वाले! (स्तोत्रं हर्यतः) स्तोत्र या वेदज्ञान का आहरण या लाभ करने वाले पुरुष के लिये तुम (कदा) कब (श्मशा) शरीर के भीतर संचरण करने वाले (वाः) जीवनरूप जल को (आ अव अरुधद्) रोकते हो? कभी नहीं। (दीर्घम्) दीर्घ, लम्बा चौड़ा (सुतम्) जीवन (वात-आप्याय) प्राण को आयमन करने वाले संयमी को ही प्रदान करते हो।

२२८—'आव श्मशा इति ऋ०। १. श्म शरीरं, (निरु०) वातम् प्राणमाप्याययति इति वाताप्यम् उदकम्। आपोमयाः प्राणाः इति श्रुतेः। म० स्वा०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा—सर्वव्यापक देव ! हे वसो ! (इमशा वाः) जिस प्रकार नहर जलको रोक कर उसे अपने मार्ग से चलाती है, उसी प्रकार हे हर्यत ! कमनीय ! हमारी स्तुति प्रार्थना आपको कब रोकेगी, आपको हमारे प्रति कब द्रवित करेगी ? और जिस प्रकार (दीर्घं सुतम्) दीर्घ काल का यज्ञ, महायज्ञ (वाताप्याय) वात-आप्य अर्थात् वायु में व्यापक जल को वृष्टि रूप से प्राप्त करने के लिये होता है उसी प्रकार भगवन् ! (दीर्घं सुतम्) आपकी दीर्घकाल तक की उपासना (वात-अप्याय) वायु, प्राण वत् प्रिय आपके स्वरूप में 'अप्यय' अर्थात् लीन, आपके स्वरूप में अवस्थित होने के लिये ही होता है ।

[२२९] ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु ।
तवेदं सख्यमस्तृतम् ॥ ७ ।   ऋ० १ । १५ । ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (ब्राह्मणात्) ब्रह्म को जानने हारे (राधसः) साधना करने वाले विद्वान् के (सोमम्)ज्ञान और अन्नादि रस को (ऋतून् अनु) प्राणों और इन्द्रियों के साथ (पिब) तु पान कर । (तव) तेरा (इदम्) यह (सख्यम्) इन्द्रियों के साथ आत्मा का या साधकों के साथ प्रभु का मैत्रीभाव (अस्तृतम्) कभी नहीं टूटता ।

[२३०] वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः ।
त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ८ ॥   ऋ० ८ । ३२ । ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! हे परमात्मन् ! हे (गिर्वणः) एक-मात्र वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ! (वयम्) हम इन्द्रियगण और हम साधकगण (अपि) भी (ते ह) तेरे ही (स्तोतारः स्मसि) स्तुति करने वाले हैं । (त्वं) तू (सोम-पाः) सोम को पान करने,जीव-जगत का पालन करने हारा होकर (नः) हमें भी (जिन्व) तृप्त कर, हमें भी बलवान्

२३०—'अपि ष्मसि' इति ऋ० ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर। जो सम्बन्ध प्रजा का राजा से और साधकों का प्रभु से है, वही इन्द्रियों का आत्मा से है।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
[२३१] एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः।
३ २ ३ १ २
सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥ ९ ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! हे (उग्र!) हे बलवन्! (पृक्षु) तुझे स्पर्श करने वाले (कासु चित् तनूषु) किन्हीं देहों में (नः) हम(नृम्णम्) मनुष्यों के मनन करने योग्य ज्ञानरूप धन को (धेहि) धारण कर और करा। हे (सत्राजिद्) समस्त सत्-पदार्थों पर विजय करने हारे! (कासु चित्) किन्हीं में (नः पौस्यं) हमें बल धारण करा।

अर्थात् तू किन्हीं को ज्ञानी, ब्राह्मण बनाता और किन्हीं को क्षत्रिय उत्पन्न करता है।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
[२३२] एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
३ २ ३ र ३ १ २
एवा ते राध्यं मनः ॥ १० ॥ ऋ० ८ । ९२ । २८ ॥

भा०—हे इन्द्र! आत्मन्! क्योंकि तू (हि) निश्चय से (वीरयुः) सामर्थ्यवान्, वीर को चाहने वाला (एव असि) ही है। और तू (शूरः) शूर और (स्थिरः एव) स्थिर ही है, इसलिए (ते मनः) तेरी मननशील मति या ज्ञान भी (राध्यम् एवं) आराधना या साधना करने योग्य ही है, अनुकरण करने योग्य है।

इति चतुर्थी दशतिः। द्वादशः खण्डः।

इति द्वितीयोऽध्यायः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

॥ दशतिः ५ ॥ ऋषिः—१, ६, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । २ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ३ वालखिल्याः । ४ नोधा गोतमः । ५ कलिः प्रागाथः । ७ मेधातिथिः काण्वः । ८ भर्गः । १० प्रगाथो घौरः काण्वो वा ॥ देवता—१—८, १० इन्द्रः । ६ मरुतः ॥ बृहती ॥

[२३३] अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥

ऋ० ७ । ३२ । २२ ॥

भा०—हे (शूर) शूर ! सर्वत्र व्यापक, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अस्य जगतः) इस जगत् के और (तस्थुषः) स्थावर संसार के भी (ईशानम्) सामर्थ्य देने वाले प्रभु, (स्वः-दृशम्) आदित्य द्वारा सबको प्रकाशित करनेहारे, या आदित्य के समान सबको समान भाव से देखने हारे (त्वा) तुझको हम (अदुग्धाः धेनवः इव) न दुही गई, दुधार गौएं जिस प्रकार अपने बछड़े को देखकर झुकती और हम्भारती हैं उसी प्रकार (नोनुमः) आदर से, प्रेम से देखते, झुकते और आपकी स्तुति करते हैं ।

[२३४] त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ २ ॥

ऋ० ६ । ४६ । १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वाजस्य सातौ) धन, अन्न, ज्ञान और बल के विभाग और प्राप्ति के अवसर पर (त्वाम् इत् हि) तुझको ही हम (कारवः) स्तुतिकर्त्ता लोग (हवामहे) स्मरण करते, पुकारते

२३४–'साता' इति ऋ० । अर्वतः अन्तर्मेघस्य । मा० । काष्ठाशब्देनवृष्टि लक्षणः आपः उच्यन्ते वि० । अथवा काष्ठा शब्देन संग्राम उच्यते ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। (वृत्रेषु) विघ्न के अवसरों पर (सत्पतिम्) सज्जनों के प्रतिपालक (त्वाम्) तुझको ही याद करते हैं। (अर्वतः) गतिशील सूर्य आदि पदार्थों के (काष्ठासु) सीमाएं नियत करने के लिये अथवा ज्ञानशील-भोक्ता इन्द्रियों की भोग-मर्यादाओं को सीमित करने के लिये (नरः) विद्वान् लोग तेरा ही स्मरण करते हैं।

अथवा—(अर्वतः) मेघ के (काष्ठासु) जलों के निमित्त अथवा—(अर्वतः काष्ठासु) वेगवान् साधनों, हिंसाकारी शत्रु के साथ होने वाले संग्रामों में विजयार्थ भी तुझे ही स्मरण करते हैं।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[२३५] अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥३॥
ऋ० ८ । ४९ । १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोग (सु-राधसम्) उत्तम ज्ञान-रूप धनसम्पन्न (इन्द्रम्) परमेश्वर को (यथा) यथार्थ रूप से (विदे) जानने के लिये (अभि-प्र-अर्च) उसकी अच्छी प्रकार उपासना करो। (यः) जो (मघवा) धन-यज्ञादि से सम्पन्न (पुरु-वसुः) अति धनाढ्य, या सब शरीरों में व्यापक रहकर (सहस्रेण इव) मानो हज़ारों प्रकारों से (शिक्षति) शिक्षाएं देता है और ऐश्वर्य प्रदान करता है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
[२३६] तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
३ २ ३ २र ३ २ ३ ३ २ ३ १ २
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥
ऋ० ८ । ८८ । १ ॥

भा०—(वः) आपके (दस्मम्) बाधक शत्रुओं का नाश करने वाले, (ऋति-सहम्) बाधाओं को दूर करने वाले, (वसोः) शरीर में आत्मा रूपमें वास कराने वाले, सबमें बसने वाले, (अन्धसः)प्राण धारण कराने वाले अन्नरसको प्राप्त करके (मन्दानम्) अत्यन्त प्रसन्न होने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्द्रम्) आत्मा को (स्वसरेषु) अपने २ देहों में हम इन्द्रियगण और विद्वान् जन उसी प्रकार (अभि नवामहे) स्तुति करते हैं जिस प्रकार (धेनवः) नवप्रसूता गौएं (वत्सं न) बछड़े के प्रति हम्भारती हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[२३७ तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
बृहद् गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ ५॥
ऋ० ८ । ६६ । १ ॥

भा०—हे इन्द्रियगण ! हे साधकजनो ! (वः) तुम्हारे (तरोभिः) वेगों, गतियों द्वारा (विदद् वसुम्) ज्ञानके प्राप्त करने हारे (सबाधः) आप लोग जब पीड़ा सहित हों तो (ऊतये)) अपनी रक्षा के निमित्त (बृहद्) बृहत् साम द्वारा (इन्द्रम्) इस ऐश्वर्यवान् प्रभु का (गायन्तः) कीर्तन करते हुए (सुत-सोमे अध्वरे) सोम निष्पादन करने (योग्य याग में जिस प्रकार (कारिणं भरं न) ऋत्विज् लोग अपने पोषण-योग्य यजमान को बुलाते हैं उसी प्रकार बुलाया करो, उसका स्मरण किया करो ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[२३८] तरणिरित् सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् । ६॥
ऋ० ७ । ३२ । २० ॥

भा०—(तरणिः) अति वेगवान् या संसार से तराने वाला, आत्मा (पुरन्ध्या) देहरूप पुरको धारण करने हारी बुद्धि को (युजा) अपना साथी बनाकर, योग समाधि द्वारा (वाजम्) अन्न आदि कर्मफल और ज्ञान ऐश्वर्य को (सिषासति) ठीक प्रकार से विवेक करता है । (तष्टा इव) जिस प्रकार बढ़ई, शिल्पी (सु-द्रुवम्) उत्तम गति करने योग्य (नेमिम्) चक्र के हालको झुकाता है । उसी प्रकार हे इन्द्रियगण ! मैं साधक (पुरु-हूतम्) प्रत्येक देह वा इन्द्रियों में बल संचार करने (वः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रम्) तुम्हारे स्वामी, आत्मा को (गिरा) वेद की ऋचा एवं स्तुति से (आ नसे) अपने प्रति झुकाता हूं उसका साक्षात् करता हूं । यह आत्माके मनोवेग को लक्ष्य करके कहा है ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[२३९] पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः॥७॥
ऋ० ८ । ३ । १ ॥

भा०—(इन्द्र) हे आत्मन् ! (नः) हम इन्द्रियों के (गोमतः) अपनी गति से सम्पादित (रसिनः) भोग या ज्ञान के सुख या बल से सम्पन्न (सुतस्य) उत्पादित ज्ञान का (पिब) पान कर,) उपभोगकर (मत्स्व) और प्रसन्न और तृप्त हो । (नः) हमारे (सधमाद्ये) एकही साथ आनन्द भोग करने के स्थान, शरीर में (आपिः) बन्धु के समान हमें सदा प्राप्त होकर तू (नः) हमें (बोधि) ज्ञानवान् कर । (ते धियः) तेरी ज्ञानमय वृत्तियां (वृधे) और भी अधिक उन्नति, वृद्धि के लिये (अस्मान्) हमें (अवन्तु) रक्षा करें ।

२उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
[२४०] त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ८ ॥
ऋ० ८ । ६१ । ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! तू (चेरवे) सेवा परिचर्या करने हारे अपने सेवक के पास (आ इहि) आ, साक्षात् हो । और (वसुत्तये) सुखसे प्राण धारण करने योग्य वसु या प्राणों का दान करने के लिये (भगम्) भजन या सेवन करने योग्य ऐश्वर्य, या सेवन योग्य प्रभु को (विदाः) प्राप्तकर, उसका ज्ञान कर । हे (मघवन्) शक्तिमन् !(गविष्टये) इन्द्रियों के इष्ट साधन करने के निमित्त (उद् वावृषस्व) उत्तम रीति से

२३९—'सधमाद्यैः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखों की वर्षा कर । (अश्वम् इष्टये उत्) और इन्द्रियों में व्याप्त जो भोक्ता रूप आत्मा अश्व है उसके भले के लिये भी उत्तम रीति से बल दान करो ।

[२४१] न हि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥९॥
ऋ० ७ । ५९ । ३ ॥

भा०—(वसिष्ठः) मुख्य प्राण (वः) तुम इन्द्रियों में से (चरमं चन) अन्तिम का भी (न हि) नहीं (परिमंसते) तिरस्कार करता है । हे (मरुतः) इन्द्रिय मार्गों में विचरण करने वाले प्राणों !(अस्माकं सुते) हमारे उत्पन्न किये हुए ज्ञानरस में (विश्वे कामिनः) सब अपने रसपान की कामना करने वाले आप लोग (सचा) एकसाथ (पिबन्तु) आनन्दामृत का पान करो । इसका विवरण देखो बृहदा० उप०(अ० ६ । १) में वसिष्ठ प्राण का प्रकरण । अथवा—(वसिष्ठः) परमेश्वर (चरमं चन नहि परि मंसते) सबसे पिछडे हुए का भी अनादर नहीं करता। हे (मरुतः) मनुष्यो ! (अस्माकम् कामिनः) हममें से जो भी परम रसके अभिलाषी हैं वे (विश्वे सचा पिबन्तु) सब आकर समाहित होकर आनन्दरस का पान करें ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः ॥ (गीता)

[२४२] मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१०॥
ऋ० ८ । १ । १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! (अन्यत् चित्) और कुछ वस्तु की

२४१—'पिबत कामिनः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मा वि शंसत) स्तुति मत करो । (मा रिषण्यत) व्यर्थ के जाल में अपना नाश मत करो, खिन्न मत होओ । (इन्द्रम् इत्) आत्मा, परमात्मा का ही (स्तोत) स्तुति करो । (सुते) उत्पादित ज्ञानयज्ञ या आनन्दमें (सचा) एकसंग (वृषणम्) सबसे श्रेष्ठ सुखों के वर्षक आत्मा के प्रति (मुहुः) बार बार (उक्था च शंसत) वेदके सूक्तों का गान करो ।

इति पञ्चमी दशतिः प्रथमः खण्डः ।

॥ दशतिः ६ ॥ ऋषिः—१. पुरुहन्मा आङ्गिरसः । २, ३ मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च काण्वौ । ४ विश्वामित्रो गाथिनः । ५ गोतमो राहूगणः । ६ नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ ७, ८, ९ मेध्यातिथिः काण्वः । १० देवातिथिः काण्वः ॥ इन्द्रो देवता ।

बृहती छन्दः ॥

[२४३] नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१॥
ऋ० ८ । ७० । ३ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा अपने को (विश्वगूर्तम्) सबसे प्रशंसित, (ऋभ्वसम्) ज्ञानसम्पन्न, महान् (ओजसा) अपने तेजसे (अधृष्टम्) किसी से न पराजित होने वाले, (धृष्णुम्) विपत्तियों को धैर्य से सहने वाले, (इन्द्रम् न) ऐश्वर्यवान् राजा के समान (कर्मणा) कर्म द्वारा अपने को (सदावृधम्) सदा उन्नतिमार्ग पर बढ़ाने वाला (चकार) बना लेता है (तम्) उसको (नकिः नशत्) कोई नाश नहीं कर सकता ।

[२४४] य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्यः आतृदः ।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२॥
ऋ० ८ । १ । १२ ॥

२४४—'इष्कर्ता विहुतं' इति ऋ० । २४३—'धृष्णवोजसम्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(यः) जो आत्मा, इन्द्र, (अभिश्रिषः) आश्लेषण करने जोड़ने वाले द्रव्य के (ऋते चित) बिना ही (पुरा) पूर्व ही (जत्रुभ्यः) जीवों के गर्दन आदि के मोहरों को उनके (आतृदः) अलग २ बिखर जाने के पूर्व ही (सन्धिम्) जोड़ों को (संधाता) जोड़ देता हैं वह (पुरु-वसुः) समस्त देहों में रहने वाला (मघवा) जीवन यज्ञ का स्वामी आत्मा (विहुतम्) शस्त्र से कटे को भी (पुनः) फिर २ (निष्कर्त्ता) खूब अच्छी तरह से वैसा ही बना देता है। इस रहस्य का स्पष्टीकरण देखो ब्राह्मणों के प्रति याज्ञवल्क्य का प्रश्न । बृह० उप० अ० ३ । ब्रा० ९। क० २८) और (अथर्ववेद कां० ११। सू० १८। मं० ११-१४)

[२४५] आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥३॥
ऋ० ८ । १ । २४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! परमेश्वर ! (हिरण्यये) एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने वाले आत्मा युक्त (रथे) रथ में, देह में (युक्ताः) लगे हुए योगाभ्यासी (आ सहस्रम्) हजारों और (आ शतम्) सैंकड़ों (ब्रह्मयुजः) ब्रह्म=अन्न की पोषक शक्ति से जुड़े हुए, अथवा (ब्रह्म-युजः) ब्रह्म, परमेश्वर को समाहित चित्त से योगद्वारा साक्षात् करने वाले (केशिनः) केश, जटावान् तपस्वी या ज्ञानतन्तुओं से सम्पन्न ज्ञानी (हरयः) हरण करने वाले घोड़ों के समान प्राणगण एवं विद्वान् जन (सोम-पीतये) सोमरस का पान करने के लिये (त्वा) तुझको (वहन्तु) वहन, धारण करें, तुझ तक पहुंचे।

[२४६] आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नियेमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि॥४॥
ऋ० ३ । ४५ । १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (मन्द्रैः) अत्यन्त प्रशंसा योग्य, उत्तम हर्ष के देने वाले, (मयूर-रोमभिः) मोर के लोमों के समान लोमों तथा आनील विद्युत् कान्तियों से सम्पन्न ज्ञानतन्तुओं से युक्त (हरिभिः) अनुभवों को तुझ तक पहुंचाने वाले ज्ञानसाधनों को (आ याहि) प्राप्त हो । (त्वा) तुझ को (केचित्) कोई भी (पाशिनः न) जाल वाले लोगों के समान बन्धनकारी प्रलोभन (न नियेमुः) न बांध लें । और तू (तान्) उनको (धन्वा इव) धनुंधारी के समान (अति इहि) धनुष से बाण के, विमान से अन्तरिक्षचारी के तुल्य हमें प्राप्त हो, अतिक्रमण कर । अथवा, राजा के पक्ष में स्पष्ट ही है ।

[२४७] त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥५॥
ऋ० १ । ८४ । १९ ॥

भा०—(अङ्ग, हे (इन्द्र) आत्मन् ! (त्वं) तू (देव) स्वयं सब का प्रकाशक होकर भी हे (शविष्ठ) सब गतिमान् और शक्तिमान् पदार्थों और ज्ञानवानों में श्रेष्ठ ! (मर्त्यम्) मरणधर्मा देह को (प्र शंसिषः) प्रशंसा योग्य उत्तम चेतन बनाता है । हे प्रभो ! तू मर्त्य, मरणधर्मा मनुष्य को उत्तम बना देता है । हे मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (त्वद्-अन्यः) तेरे से दूसरा कोई (मर्डिता) सुख का देने हारा (न अस्ति) नहीं है । इसलिये (ते) तेरी ही (वचः) स्तुतिपरक वाणी को मैं (ब्रवीमि) कहता हूं ।

[२४८] त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत् पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥६॥
ऋ० ८ । ९० । ५ ॥

२४८—'एक इदनुत्ताचर्षणीधृता' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (त्वम्) तू (ऋजीषी) ऋजु, कुटिलता रहित मार्ग में अपने भक्तों को प्रेरणा करने वाला, (शवसस्पतिः) बल का स्वामी शक्तिमान् (यशाः असि) यशःस्वरूप कीर्त्तिमान् है । (त्वम्) तू (एक इत्) अकेला ही (पुरु–अनुत्तः) देहों में बिना किसी से प्रेरित होकर स्वतन्त्र रूप से, (चर्षणीधृतिः) स्वतः सब मनुष्यों में धारक प्रयत्न, धैर्य रूप, उनका अन्तर्यामी होकर (अप्रतीनि) न दबने वाले (वृत्राणि) विघ्नों को भी (हंसि) नाश करता है ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २
[२४६] इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये॥ ९।
ऋ० ८ । ३ । ५ ।

भा०—(देवतातये) देव, विद्वानों एवं इन्द्रियों की भलाई के लिये (इन्द्रम् इद्) आत्मा या ईश्वर को ही हम (हवामहे) पुकारते है। (अध्वरे प्रयति) हिंसारहित यज्ञ के प्रारम्भ होने पर भी (इन्द्रम्) परमात्मा को हम पुकारते हैं, (समीके) समान रूप से ध्यान, विचार, ज्ञान गति करने के अवसर पर या संग्राम में हम (वनिनः) सब भक्तजन (इन्द्रम्) उस ईश्वर को ही राजा के समान स्मरण करते हैं और (धनस्य सातये) धन के विभाग और प्राप्त करने के लिये भी (इन्द्रम्) ईश्वर को (हवामहे) आह्वान करते हैं ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
[२५० । इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ॥ ८ ॥
ऋ० ८ । ३ । ३ ॥

भा०—हे (पुरूवसो) बहुत ऐश्वर्य वाले एवं बहुत लोकों को बसाने और उनमें बसने वाले ईश्वर ! (मम) मेरी (याः जो (इमाः गिरः) ये वाणियां (त्वा) तुझको (वर्धन्तु) बढ़ाती हैं, प्रसिद्ध करती हैं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (पावकवर्णाः) सबको अपने तेज से पवित्र करनेहारे, ईश्वर का वर्णन करने वाले (शुचयः) शुद्ध चित्त वाले (विपश्चितः) कर्म और प्रज्ञा का संचय करने हारे, विद्वान् लोग (त्वा) तुझको (स्तोमैः) स्तुति-मन्त्रों से (अभि अनूषत) साक्षात् कर स्तुति करते हैं।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
[२५१] उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥९॥

ऋ० ८।३।१५॥

भा०—(त्ये) वे (मधुमत्तमाः) श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या से सम्पन्न (गिरः) वेदमन्त्र और (स्तोमासः) स्तुतिमन्त्र (सत्राजितः) सदा सब कष्टों पर विजय पाते हुए, (अक्षितोतयः) अक्षय बलशाली (वाजयन्तः) ज्ञान से सम्पन्न, वेगवान्, युद्धगामी (रथा इव) रथों के समान (धनसाः) धनों को प्राप्त कराते हुए (उत् ईरते) उत्पन्न होते हैं, ऊपर आते हैं, हृदय से प्रकट होते हैं।

१ २ ३ २ ३ २ ३२उ ३ १ ३ २उ
[२५२] यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
३ १ २ ३२उ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब॥१०॥

ऋ० ८।४।३॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (गौरः) गौर मृग या इन्द्रियों के पीछे भागने वाला इन्द्रिय-भोग्य विषयों में रत व्यसनी पुरुष (तृष्यन्) प्यासा, तृष्णा से सताया हुआ (अपाकृतम्) जल से या रस से भरे (इरिणम्) जलाशय या भोग्य पदार्थ के प्रति (एति) जाता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) आत्मन् ! आप (नः आपित्वे प्रपित्वे) हमारी बन्धुता को प्राप्त करने पर (कण्वेषु) मेधावी पुरुषों में (तूयम्) शीघ्र ही (आ गहि) प्राप्त हों और (सचा) साथ ही (सु पिब)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम रूप से सोमरस का पान कर, हमें स्वीकार कर, अपना।

इति पष्ठी दशतिः । इति द्वितीयः खण्डः ।।

॥ दशतिः ७ ॥ ऋषिः—१ भर्गः प्रागाथः । २, १८ रेभः काश्यपः । ३ जमदग्निर्भार्गवः । ४, ८ मेधातिथिः काण्वः । ५, ६ नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ । ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १० भरद्वाजो वार्हस्पत्यः । देवता—१, २, ४—१० इन्द्रः । ३ आदित्याः ॥ बृहती छन्दः ॥

३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

[२५३] शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।

२ ३ १ २ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१॥

ऋ० ८ । ६१ । ५ ॥

भा०—हे (शचीपते) सब शक्तियों और प्रज्ञाओं के पालक ! हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (विश्वाभिः) सब प्रकार की (ऊतिभिः) शक्तियों से (सु शग्धि उ) तू हमारी इष्ट पूर्ति कर। हे (शूर) शूर ! (वसुविदम्) प्राणों के प्राप्त करने, कराने और जानने हारे, (यशसम्) इन्द्रियों के वीर्यस्वरूप, एवं यशस्वी (भगं न) ऐश्वर्यवान् के पीछे सेवक के समान (त्वा) तेरे (हि) ही (अनु चरामसि) हम अनुकूल चलते हैं। इन्द्रियों की आत्मा के प्रति और भक्तों की ईश्वर के प्रति उक्ति है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २

[२५४] या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ १ २

स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः॥२॥

ऋ० ८ । ९७ । १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (याः भुजः) जिन भोग करने योग्य शक्तियों को (असुरेभ्यः असुररूप प्राणों से तू (आ भरः) प्राप्त करता या प्राणों को प्रदान करता है (स्वर्वान्) सुख और प्रकाश से युक्त हे (मघवन्) यज्ञ के स्वामिन् ! तू (अस्य) इसके द्वारा (स्तोता-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रम् इत्) अपने यथार्थ गुण कथन करने वाले को ही (वर्धय) बढ़ा और (ये च) जो (त्वे) तेरे लिये ही (वृक्त-बर्हिषः) अपना यज्ञ फैलाकर बैठे हैं या तेरे में लीन होने के लिये अपने देह का बन्धन काट चुके हैं उनको बढ़ा । आत्मा प्राणों के बलों से साधक को ही आनन्द देता है और शक्ति को बढ़ाता है। राजा भी जिन ऐश्वर्यों को दुष्ट पुरुषों से छीन के लावे उनसे वह विद्वानों को और गृहस्थों तथा शत्रुनाशक वीरों को बढ़ावें। उसी प्रकार परमेश्वर जिन भोग्य ऐश्वर्यों को प्राणवान् जीवों को प्रदान करता है उनसे ही वह अपने स्तोता और भक्तों को बढ़ावे।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
[२५५] प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
वरूथ्ये३वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ३ ॥
ऋ० ८ । १०१ । ५ ॥

भा०—हे (ऋतावसो) सत्य में बसने हारे, सत्य वेदज्ञान के धनी ज्ञानिन् ! तू (मित्राय) सर्वस्नेही त्राणकारी प्रभु को प्रसन्न करने के लिये (सचथ्यं छन्द्यं वचः प्र गायत) सुन्दर छन्दोबद्ध वेदमन्त्रानुसार वचन से उसकी स्तुति कर। इसी प्रकार (अर्यम्णे) न्यायकारी उस प्रभु की स्तुति कर और (राजसु) तेज, यश से देदीप्यमान सूर्यों के बीचमें राजाओं में (वरूथ्ये वरुणे) सेनासमूह के सेनापति होने योग्य सर्वश्रेष्ठ शूरवीरवत् सबके नायक प्रभु को लक्ष्यकर (छन्द्यं वचः प्र गायत) छन्दोबद्ध वाणी का गान किया करो।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[२५६] अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥४॥
ऋ० ८ । ३ । ७ ॥

२५६—१. रुद्राः रोदनस्वभावकाः स्तुत्युपचारणशीला इत्यर्थः । रुदन्ति उपगायन्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (आयवः) दीर्घ जीवन की कामना करने वाले मनुष्य (पूर्व-पीतये) पूर्ण जीवन का रसपान करने के अभिप्राय से (त्वा) तुझको (स्तोमेभिः) वेद के स्तोत्रों द्वारा (अभि-सम्-अस्वरन्) साक्षात् ज्ञान कर गान करते हैं। (समीचीनासः) सम्यक् दृष्टि से सम्पन्न (ऋभवः) प्राणविद्या के वेत्ता, ज्ञानी लोग (त्वां सम् अस्वरन्) तुमको प्राणरूप से साधते एवं स्तुति करते हैं। और (रुद्राः[1]) ज्ञान के उपदेशक विद्वान् भक्त जन अथवा प्राणगण भी (पूर्व्यं त्वा) पुरातन, या पूर्ण, या सबसे पूर्व विद्यमान, पूजनीय तुझको ही (गृणन्त) स्तुति करते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[२५७] प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ५ ॥
यजु २२.९६   ऋ० ८ । ८९ । ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) प्राणो! वा विद्वानो! (वः) आप लोग (बृहते इन्द्राय) बड़े सामर्थ्यवान् आत्मा के लिये (ब्रह्म अर्चत) वेद द्वारा स्तुति करो; अथवा उस महान् आत्मा के साक्षात् के लिये अन्न और बल को प्राप्त करो या (ब्रह्म अर्चत) ब्रह्म परमेश्वर की उपासना करो। वह (शत-क्रतुः) सैकड़ों कर्मों और प्रज्ञाओं का स्वामी (शत-पर्वणा वज्रेण) सैकड़ों पालनकारी, पर्व वाले ज्ञानवज्र द्वारा (वृत्र-हा) विघ्नों का नाश करने हारा (वृत्रं हनति) आवरणकारी मेघ को सूर्य के समान और शत्रु को राजा के समान, अज्ञान या पाप का नाश करता है।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
[२५८] बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ ६ ॥
ऋ० ८ । ८९ । १ ॥

इति रुद्राः स्तोतारः । म० स्वा० । भा० वि० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(मरुतः) हे प्राणगण ! हे विद्वान् पुरुषो ! (वृत्र-हन्तमम्) वृत्र=अज्ञान, पाप का नाश करने में सब से श्रेष्ठ साम (बृहत्) बृहत् का उस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये (गायत) गान करो। (येन) जिससे (ऋतावृधः) सत्य ज्ञान को बढ़ाने वाले, सत्य से स्वयं बढ़ने वाले विद्वान् लोग (देवाय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (देवम्) प्रकाशमान (जागृवि) सदा जागे रहने वाले, अमर (ज्योतिः) प्रकाश को (अजनयन्) प्रकट करते हैं।

[२५९] इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ ७ ॥
ऋ० ७ । ३२ । २६ ।

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! परमात्मन् ! (यथा) जिस प्रकार (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) बेटों के लिये धन और विद्या आदि देता है उसी प्रकार (नः) हमारे लिये (क्रतुं) प्रज्ञा को (आ भर) प्राप्त करा। हे (पुरु-हूत) बहुतसी प्रजाओं द्वारा स्मरण किये गये राजा के समान आत्मन् ! परमेश्वर ! (अस्मिन् यामनि) इस विद्वानों के गमन योग्य ब्रह्ममार्ग में (नः) हमें (शिक्ष) शिक्षा दो। जिसमें हम (जीवाः) जीवगण (ज्योतिः) ज्ञानमय ज्योति को (अशीमहि) प्राप्त करें।

[२६०] मा न इन्द्र परा वृणग् भवा नः सधमाद्ये ।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥ ८ ॥
ऋ० ८ । ९७ । ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (नः) हमें (मा परा वृणक्) कभी परित्याग मत कर। (नः) हमारे (सधमाद्ये) एक संग आनन्द प्राप्त

२६०—'सधमाद्यः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के स्थान, यज्ञ देह आदि स्थानों में (भव) हमारे संग रह ।(त्वम्) तू (नः) हमारी (ऊती) एकमात्र रक्षा है । और (त्वम् इत्) तू ही (नः आप्यम्) हमारा एकमात्र प्राप्त करने योग्य उद्देश्य, लक्ष्य व बन्धु है । हे (इन्द्र) प्रभो ! तू (नः) हमें आप (मा परावृणक्) कभी मत त्यागो ।

यह इन्द्रियों का आत्मा के प्रति और भक्तों का भगवान् के प्रति वचन है । देखो बृह० उप० अ० ६ । ब्रा० १ । 'ते प्राणा होचुर्मा भगव उत्क्रमी न शक्ष्यामस्त्वदृते जीवितुमिति' । प्राण बोले—हे भगवन्, आप न जांय, आपके बिना हम जीवित न रह सकेंगे ।

[२६१] वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥९॥
ऋ० ८ । ३३ । १ ॥

भा०—(वयं) हम प्राणगण या भक्तजन (सुतावन्तः) अपने कर्मफल प्राप्त करके या ज्ञान सम्पादन करके (वृक्त-बर्हिषः) बर्हि—अर्थात् जीवन-यज्ञ को समाप्त कर या ज्ञान द्वारा देह के बन्धन को काटकर (आपः इव) अपने तट बन्धनों को तोड़कर बहने वाले जलों के समान (पवित्रस्य) पवित्र जल के तुल्य वेद के पवित्र ज्ञानों के (प्रस्रवणेषु) प्रवाहों के तटों पर गुरुजनों के समीप, हे (वृत्रहन्) अज्ञान के अन्धकार-आवरणों को छिन्न भिन्न करनेहारे देव ! (स्तोतारः) सत्यगुणों का गान करने हारे (परि आसते) बैठते हैं, तेरी उपासना करते हैं ।

प्राणों का ज्ञानमय स्तोता के रूप में बैठने का अलंकार देखो—(बृहदा० उप० अ० २ । ब्रा० २ । ३ ।) "तस्यासत ऋषयः सप्त तीरे वाग् अष्टमी ब्रह्मणा संविदाना" ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २   १ २ ३ १   २र ३ १ २ ३ १ २
[२६२] यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
३ १ २   ३ २ ३ १   २र ३ १   २र ३ १ २
यद् वा पञ्चक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥१०

ऋ० ६ । ४६ । ७ ॥

भा०—हे इन्द्र ! (नाहुषीषु) शरीर-बन्धनों में बंधी हुई प्राणधारी प्रजाओं में (यत्) जो (ओजः) तेज और (कृष्टिषु) कृषिवत् श्रम से कर्म करके कर्मफल प्राप्त करनेहारे मनुष्यों में जो (नृम्णम्) धन है (यत् वा) और जो (पञ्च-क्षितीनाम्) पांचों प्रकार की प्रजाओं वा आत्मा की पांचों भूमियों में (द्युम्नम्) कान्ति या ऐश्वर्य है वह और (सत्रा) बड़े २ (विश्वानि पौंस्या) समस्त बल, पराक्रम (आ भर) हमें प्राप्त करा ।

लघिमा, गरिमा आदि अष्ट सिद्धियें और नव निधियों तथा अन्यान्य बल की प्रार्थना है ।

इति सप्तमी दशतिः । इति तृतीयः खण्डः ।

।। दशतिः ८ ।। ऋषिः—१ मेधातिथिः काण्वः । २ रेभः काश्यपः । ३ वत्स । ४ भरद्वाजो वार्हस्पत्यः । ५ नृमेधः आंगिरसः । ६ पुरुहन्मा आंगिरसः । ७ नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ । ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणः । ९ मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च काण्वौ । १० कलिः प्रागाथः ।। इन्द्रो देवता ।। बृहती ।।

३ २ ३ १ २र ३ १ २   ३ २
[२६३] सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।
२ ३क २र   ३ १ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ २
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ १ ॥

ऋ० ८ । ३३ । १० ॥

भा०—हे (उग्र) बलवन् ! (सत्यम्) सत्य ही (इत्था) इस प्रकार का (वृषा इद् असि) तू सुखों का वर्षक ही है । और (वृषजूतिः) श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा सेवित तू (नः) हमारा (अविता) पालन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने द्वारा प्रेमी (वृषा हि श्रुविषे) वृषा' साक्षात् धर्ममय, सब सुखों का मेघवत् वर्षक ही सुना जाता है और (परावति) दूर और (अर्वावति) समीप भी तू (वृषा उ) वृषा' अर्थात् आनन्दघन ही (श्रुतः) प्रसिद्ध है।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[२६४] यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति२

ऋ० ८। ६७। ४॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिमन्! (यद्) चाहे तू (परावति) दूर मुक्ति की दशा में हो और (यद्) चाहे (अर्वावति) अति समीप, देह में विद्यमान रहे हे (वृत्रहन्) हे पापों के नाश करने हारे! (अतः) तो भी हे (इन्द्र) आत्मन्! प्रभो! (केशिभिः) विशेष ज्ञान-दीप्तियों से सम्पन्न (गीर्भिः) विद्वानों और वेदवाणियों से (द्युगद्) प्रकाश की तरफ शीघ्र जाने वाला होकर (सुतावान्) आनन्दरस का उत्पादक होता है। साधक पुरुष (त्वा) तुझको ही (आ विवासति) प्रकट करता, तेरा ही साक्षात् करता है।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
[२६५] अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महाविचेतसम्।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा॥ ३॥

ऋ० ८। ४६। १४।

भा०—(वः) आप लोग (अन्धसः मदेषु) अन्न या प्राण धारण कराने वाले चिदात्मा, या अन्धकार को दूर करने वाले ज्ञान के द्वारा प्राप्त आनन्द के अवसरों पर (महा-विचेतसम्) अत्यन्त अधिक ज्ञान और चेतना युक्त (वीरम्) वीर्यवान्, (श्रुत्यम्) श्रुति, वेद में प्रसिद्ध (शाकिनम्) सर्व शक्तिमान्, (नाम) सबको नम्र करने हारे (इन्द्रम्)

२६४—'नो वृतः' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर को (यथा वचः) जिस प्रकार वेदवचन का आदेश है उसी प्रकार (गिरा) वेद की ऋचा द्वारा (अभि गाय) साक्षात् स्तुति करो।

[२६६] इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥४॥
ऋ० ६ । ४६ । ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (मघवद्भ्यः) यज्ञ करने हारे ऐश्वर्य और विभूतिमान् अथवा निष्पाप कर्मों वाले साधकों और (मह्यं च) मेरे लिये (त्रि-धातु) वात, पित्त, कफ तीन धातुओं से बने, (त्रि-वरूथम्) तीनों दोषों का वरण करने हारे (शरणम्) देह को (स्वस्तये) कल्याण के निमित्त (यच्छ) प्रदान कर । (एभ्यः)उन उक्त कर्मठ पुरुषों की ओरसे (दिद्युम्) वज्रस्वरूप (छर्दिः) आच्छादक बन्धन को (यवय) हटा ।

[२६७] आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिम ॥५॥
ऋ० अथर्व० ८ । ६६ । ३ ॥

भा०—(सूर्यम् इव[1]) सूर्य के समान सब के प्रेरक आत्मा का (आयन्तः) आश्रय लेते हुए (विश्वा) समस्त (जाता उ) उत्पन्न हुए और (जनिमानि) आगे उत्पन्न होने हारे (वसूनि) प्राणी सब (इन्द्रस्य इव) उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के ही दिये ऐश्वर्य का (भक्षत)भोग करते, इस कारण (ओजसा) अपने बल से हम (भागं न) प्राप्त दायभाग के समान उसके ऐश्वर्य को (प्रति दीधिम) समझें और प्राप्त करें ।

[२६८] न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥ ६॥
ऋ० ८ । ७० । ७ ॥

२६७—'वसूनि जाते जनमान', 'दीधिम' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (दीर्घायो) नित्य आत्मन्! आयुष्मन्! (अदेवः) इष्ट देव से रहित (मर्त्यः) मरणधर्मा मनुष्य (तत्) उस परम (इषम्[1]) अभिलाषा के योग्य लक्ष्य को (न आप) नहीं प्राप्त करता । अथवा–(अदेवः मर्त्यः इषं न आपतत्) ईश्वर को छोड़कर मनुष्य अपने अभिलषित अन्न के समान भोग्य पदार्थ या इष्ट लोक को भी नहीं पहुंचता । अथवा–(इषं न आपतत्) अपने गन्तव्य परम पद या मार्ग को नहीं चल सकता [मा० वि०]। (एतग्वा[2]) अपने लक्ष्यको प्राप्त करने के लिये अश्व आदि साधनों से युक्त पुरुष जिस प्रकार (एतशः) अपने घोड़ों को (युयोजते) रथ में लगाता है और राहपर डाल देता है। उसी प्रकार सबको सन्मार्ग पर लेजाने वाला (इन्द्रः) महान् ऐश्वर्यशील परमात्मा ही (हरी) उसके दोनों घोड़ों आत्मा और चित्त को (युयोजते) ठीक मार्ग पर ले जाता है ।

'भगवान् के आश्रय से ही सीधा मार्ग और इष्ट फल मिलता है, नहीं तो आदमी भटक जाता है।

[२६९] आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥ ७॥
ऋ० ८ । ९० । १ ॥

भा०—(विश्वासु) सब (समत्सु) एकत्र आनन्द उत्सवों में (नः) हमारे (हव्यम्) स्तुति योग्य (इन्द्रम्) उस ईश्वर को (आ भूषत) सुभूषित करो उसका गुणगान करो । हे (वृत्रहन्) विघ्ननिवारक ! सब

२६८—युयोजते हरी इन्द्रो युयोजते', 'आपदिषं' 'य एतशा' इति ऋ० । आपतद् इषम् । इति पाठः सायणसम्मतः आप । तद् । इषमिति (तु०सा०) आपतद् ईषम्' इति मा० वि० ।

१. ईषतिर्गतिकर्मा (नि० २ । १४ ।) २. प्राप्तगन्तव्याः, इति (मा० वि०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अधिक शत्रुओं का नाश करने हारे, हे (ऋचीषम) सब स्तुतियों में समानरूप से विद्यमान वेदोक्त स्तुति के अनुरूप गुणों से सम्पन्न ! ईश्वर ! तु ही सब विघ्नों पर सर्वोत्कृष्ट विजेता है । (ब्रह्माणि) वेदस्तवन और वैदिक कर्म, (सवनानि) यज्ञ यागादि सब उपासना कर्म हैं, उनसे भक्तजन तुझको ही (उप भूषत) शोभित करते हैं ।

१२ २२ ३ २उ ३ १ २ ३ २
[२६९] तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यासि मध्यमम् ।
३ १ २२ ३ २ १ ३ १२ ३ १२
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥८

ऋ० ७ । ३२ । १६ ॥

भा०—हे इन्द्र ! (अवमम्) सबसे नीचे का (वसु) बसने योग्य पृथिवी लोक भी (तव इद्) तेरा ही है । (त्वम्) तू (मध्यमं वसु) बीच के लोक, अन्तरिक्ष लोक को भी (पुष्यसि) पोषण करता है । और तू आप (परमस्य) सबसे उत्कृष्ट (विश्वस्य) संसार में (सत्रा) सदा (राजसि) प्रकाशमान् है । अथवा-हे आत्मन् ! (अवमं वसु) निकृष्टतम प्राणी तेरा ही विकास है । (मध्यमम्) मध्यम श्रेणी के प्राणी को भी तु ही पुष्ट करता और (परमस्य) उच्च कोटि के प्राणी में भी तू ही प्रकाशित है । (त्वा) आपको (गोषु) समस्त गतिशील योनियों लोकों और आत्मपक्ष में-इन्द्रियों में से भी (नकिः) कौन नहीं (वृण्वते) वरण करता ? अर्थात् सभी चाहते हैं अथवा- (नकिः) कोई भी तुझे (न वृण्वते) नहीं रोकता । तेरी शक्ति सर्वत्र व्यापक है । लोक में लोहा, सीसा आदि अधम, चान्दी सोना आदि मध्यम, रत्नादि उत्तम वसु हैं, तू सबका स्वामी राजा है ।

२६९—'हव्य इन्द्रः' 'भूषत्', वृत्रहा', 'ऋचीषमः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२र३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[२७१] क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥९॥
ऋ० ८ । १ । ७ ॥

भा०—हे (पुरन्दर) हे देहरूप पुरी को अपनी शक्ति से विदारण करने हारे आत्मन् ! (क इयथ) तू कहां २ गति करता है ? (क इत् असि) और तू कहां रहता है । (पुरुत्रा चित् हि) बहुत से स्थलों पर या इन्द्रियों के भीतर चित्स्वरूप में (ते) तेरी (मनः मननशील संकल्प शक्ति (अलर्षि) गति करती है । हे (युध्म !) हे विषयवासना या रागद्वेषादि से युद्ध करनेहारे ! हे (खजकृत्) ख=इन्द्रियों के द्वारों में उत्पन्न विषयग्राहक सामर्थ्यों के विघातः ! (गायत्राः) स्तुति करने हारे विद्वान् जन और प्राणगण (प्र अगासिषुः) तेरी ही महिमा गाते हैं।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
[२७२] वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १०॥
ऋ० ८ । ६६ । ७ ॥

भा०—(वयम्) हम (एनम् इद्) इस (वज्रिणम्) ज्ञानरूप वज्र को धारण करनेहारे आत्मा को ही (ह्यः) गत काल में (इह) इस देह में (आ अपीपेम) खूब ज्ञानरस पान कराते रहे । (अद्य) आज (श्रुते सवने) इस वेदानुकूल यज्ञ उपासना में (तस्मा उ) उस ही इन्द्रके लिये (सुतम्) ज्ञानरस या आनन्दरस को लाओ, और (नूनम्) निश्चय से (भूषत) उसकी शोभा बढ़ाओ ।

गत जीवन में भी ज्ञान–सम्पादन किया, इस जीवने में भी करो और ज्ञान से उसकी शोभा करो । विद्यातपोभ्यां भूतात्मा । मनुः ।

इति अष्टमी दशतिः । चतुर्थः खण्डः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ दशतिः ६ ॥ ऋषिः--१, ६ पुरुहन्मा आङ्गिरसः । २ भर्गः प्रागाथः । ३ इरिमिठिः । ४ जमदग्निर्भार्गवः । ५, ७ देवातिथिः काण्वः । ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । १० बालखिल्याः (मेध्यः काण्वः) देवता—इन्द्रः । ६ इन्द्राग्नी । ४ सूर्यः ॥ बृहती ॥

[२७३] यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥
ऋ० ८ । ७० । १ ॥

भा०—(यः) जो (चर्षणीनां) द्रष्टा इन्द्रियों या मनुष्यों का (राजा) शासक प्रकाशक या उनके बीच में स्वतः प्रकाशमान है और जो (रथेभिः) रमण करने भोग करने के साधन देहों या प्राणेन्द्रियों से (याता) विषयों तक गमन करने हारा, (अध्रि-गुः) इन्द्रियों पर वश करने हारा, अधिष्ठाता है और (यः) जो (वृत्र-हा) सब अज्ञानों का नाशक, (विश्वासाम्) समस्त (पृतनानाम्) सेनाओं के समान वासनाओं तथा मनुष्यों का (तरुता) विनाशक या पार करने हारा है उस (ज्येष्ठम्) सबसे श्रेष्ठ आत्मा की मैं (गृणे) स्तुति करता हूं।

राजा और ईश्वर पक्ष पूर्व में स्पष्ट है।

'अध्रिगुः—'अधिकृतशब्दस्य अध्रिभाव इति दे० य०। पृतना इति मनुष्यनाम। नि० २ । ४ ॥ संग्रामनाम च। नि० । १७ ॥

[२७४] यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि २
ऋ० ८ । ६१ । १३ ॥

भा०—हे इन्द्र ! (यतः) जिससे हम (भयामहे) भय करते हैं (नः) हमें (ततः) उससे (अभयम्) भयरहित (कृधि) कर। हे

२७४— 'तव तन्न ऊतिभिः' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मघवन् ! (तव तत्) तेरा वह बल है कि (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (शग्धि) तू समर्थ है इस कारण (द्विषः) नाना द्वेष करने हारे (मृधः) नाना हिंसाकारी, संग्रामकारी शत्रुओं को (वि जहि) विविध उपायों से नाश कर ।

[२७५] वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥ ३ ॥
ऋ० ८ । १७ । १४ ॥

भा०—हे (वास्तोष्पते) सब बसने योग्य गृहों, और देहों, लोकों, के स्वामिन् ! आप (इन्द्रः) परमऐश्वर्यवान्, (ध्रुवा स्थूणा) अचल आधार स्तम्भ हो । और (सोम्यानां अंसत्रम्) सोमपान करने हारे इन्द्रियों और सोमपायी विद्वानों के स्कन्धदेश पर लगे कवच के समान सर्म की रक्षा करने हारे हो । आप (द्रप्सः) हृदय में द्रुत या स्रुत रस का पान करने हारे या स्वतः रसरूप और (शश्वतीनां पुराम्) अनेक, बहुतसे शत्रुओं के नगरों, गढ़ों और योगीजनों के देहों के (भेत्ता) अपने ज्ञान, वज्र से भेदन करने हारे हो और (मुनीनाम्) मननशील ध्यानियों के एकमात्र (सखा) सखा, मित्र हो ।

[२७६] बण् महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥४॥
ऋ० ८ । १०१ । ११ ॥

भा०—हे (सूर्य) सबके उत्पादक और प्रेरक ! (बट् महान् असि) तुम सचमुच बड़े हो । हे (आदित्य) सबको अपने भीतर समा लेने हारे देव ! (बट् महान् असि) तुम सचमुच बड़े हो । (सतः ते) सत् स्वरूप, सर्वत्र व्यापक तुम्हारी (महः महिमा) बहुतभारी महिमा

२७६—'पनस्यत अद्धा' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हे (पनिस्तम) स्तुति करने योग्यों में सबसे श्रेष्ठ देव ! (मह्ना) अपने महत्व से ही आप (महान् असि) बड़े हो।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[२७७] अश्वी रथी सुरूप इद् गोमान् यदिन्द्र ते सखा।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २र
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥५

ऋ० ८।४।९॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (यदा) जब (ते सखा) तेरा मित्र (अश्वी) बलवान् प्राण, इन्द्रियसम्पन्न (रथी) उत्तम देहरूप रथ से युक्त, (सु-रूपः) उत्तम रुचि या कान्तिमान् रूप से युक्त और (गोमान् इत्) उत्तम ज्ञान-इन्द्रियों और उत्तम वाणी से युक्त हो जाता है तब वह (सदा) नित्य ही (श्वात्र भाजा) धन धान्य से युक्त, सम्पन्न (वयसा) अपनी आयु से और (चन्द्रैः) आह्लादकारी या चिर काल तक आनन्दकारी सज्जनों के साथ (सभाम्) तेरे समान कान्ति या सत्संग को (उप याति) प्राप्त होता है।

जितेन्द्रिय ज्ञानी, उत्तम प्रवृत्ति से युक्त पुरुष ही सत्संग से युक्त हो जाता है। राजा और ईश्वर पक्ष में स्पष्ट है।

१र २र ३ २ ३ १ २र ३ २
[२७८] यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥६॥

ऋ० ८।७०।५॥

भा०—हे इन्द्र ! (यद् द्यावः शतम्) यदि द्यौलोक भी सैंकड़ों (उत भूमीः शतम्) और भूमियां भी सैंकड़ों (स्युः) होवें, और हे (वज्रिन्) सर्वशक्तिमन् ! (सहस्रं सूर्याः) हजारों सूर्य और (रोदसी) यह सब ब्रह्माण्ड भी (अनु जातम्) तेरे पीछे पैदा हुआ (त्वा न अष्ट) तुझे पूरी तरह से व्याप नहीं सकता।

२७७—'श्वात्रम्' इति धननाम। सा०। क्षिप्रनाम च। मा०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ज्यायान् पृथिव्याः, ज्यायानन्तरिक्षात् ज्यायान् दिवो, ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः'। इति बृहदा० उप०। एकांशेन स्थितं जगत् । गी०।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता।

यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः (गी० ११। १२)

१ २ ३ २उ ३ २क २र ३ २ ३ १ २

[२७९] यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः।

६ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ ७ ॥

ऋ० ८। ४। १॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर! (यत्) क्योंकि (प्राग्) प्राची दिशा में, पूर्व में (अपाग्) पश्चिम में, (उदग्) ऊपर में (न्यग् वा) या नीचे सर्वत्र (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (हूयसे) तेरी स्तुति की जाती है तू ही पुकारा जाता है। हे श्रेष्ठ (सिम) हे सर्वात्मन्! (पुरू) देह-धारियों में, (आनवे) प्राणधारियों में, (तुर्वशे) और इन्द्रियों के वश करने हारे योगियों या इन्द्रियों के अधीन मनुष्यों में भी तू (नृ-सूतः) नेता, उत्तम पुरुषों द्वारा अभिषिक्त नृपति के समान पूजित (असि) है।

१ २र ३ १ २र

[२८०] कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥ ८

ऋ० ७। ३२। १४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (वसो) सबको बसाने और सब में बसने हारे! (तं त्वा) उस स्मरण करने योग्य तुझको (कः मर्त्यः) कौन पुरुष (आ दधर्षति) अपमानित कर सकता है? (वाजी) ज्ञानी पुरुष (श्रद्धा) सत्य धारण करने हारा, (मघवन्) यज्ञ कर्मादि और

२७९—सिम सर्वरूप। मा०। श्रेष्ठ। सा०।

२८०—'श्रद्धा इत्ते' इति पाठभेदः, ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर (पार्ये दिवि) पार करने योग्य प्रकाश में या संसार को पार करने हारे ज्ञानप्रकाश में रहता हुआ तेरे प्रति (वाजम्) अपने ज्ञानमय भेंट को (सिषासति) तेरे अर्पण कर देता है।

[२८१] इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत् त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत्॥९
ऋ० ६ । ५९ । ६॥

भा०—(इन्द्राग्नी) इन्द्र वायु और प्राण और अग्नि, सूर्य और आत्मा के बलपर (इयम्) यह उषा या चित्-शक्ति (अपात्) बिना पैरों के भी (पद्वतीभ्यः) चरणवाली प्रजाओं से (पूर्वा) पूर्व ही (आगात्) आजाती है। (हित्वा शिरः) अपने शिरको त्यागकर (जिह्वया) अपनी व्यापन शक्ति ग्रहणशक्ति या वाणी से(रारपत्) शब्द करती हुई (चरत्) गति करती हुई (त्रिंशत् पदा) तीस पद (नि अक्रमीत्) गति करती है।

यजुर्वेद में इस मन्त्र का उषा देवता है। सायण ने उषा पक्ष में३० पद ३० मुहूर्त कहे हैं। चितिशक्ति के पक्ष में ८ वसु ११ रुद्र और १२ आदित्य ये सब शरीर में ही हैं। उन पर वश करती हैं। यद्यपि ये ३१ हैं तो भी एकादश रुद्रों में दश प्राण ११ वां स्वयं आत्मा हैं। अतः वह ३० प्राण ही गिने जायंगे। आत्मा स्वतः चितिशक्ति से भिन्न नहीं। इन्द्र, अग्नि, उषा और ३० चरण सब मिलकर ३३ देवता हुए।

[२८२] इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः॥१०
ऋ० ८ । ५३ । ५॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (मित-मेधाभिः) ज्ञानयुक्त धारणावती बुद्धियों वाली (ऊतिभिः) अपनी रक्षण शक्तियों के साथ तू (आ इहि इत्) हमें प्राप्त हो। हे (शंतम) सुखकारक ! (शंतमा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिः) अत्यन्त शान्तिदायक (अभिष्टिभिः) हमारी सुख कामनाओं सहित और हे (सु-आपे) सुख को प्राप्त करने हारे ! हे सुबन्धो ! (स्वापिभिः) सुखदायक अपने से संम्बद्ध निजी शक्तियों द्वारा तू (आ) हमें प्राप्त हो ।

इति नवमी दशतिः । पञ्चमः खण्डः ।



॥ द० १० ॥ ऋषिः—१ नृमेध आङ्गिरसः । २, ३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । ४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ५ परुच्छेपो दैवोदासिः । ६ वामदेवो गौतमः । ७ मेध्यातिथिः काण्वः । ८ भर्गः प्रागाथः । ९, १० मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ ॥ देवता १—४, ७—१० इन्द्रः । (५ अश्विनौ) । ६ वरुणः । बृहती ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[२८३] इन ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आशुं जेतारं होतारं रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम् ॥ १ ॥
ऋ० ८ ९९ । ७ ॥

भा०—(वः) आप लोग (ऊती) अपनी रक्षा के निमित्त (अजरम्) कभी जीर्ण न होने वाले (प्र-हेतारम्) इन्द्रियों या विद्वानों को उत्तम रीति से प्रेरणा करने हारे, (अप्रहितम्) स्वयं किसी से प्रेरित न होने वाले, स्वतन्त्र. (आशुम्) सर्वव्यापक, अतिशीघ्रगामी, (जेतारम्) सब के विजेता, उत्कृष्ट, (होतारम्) ज्ञान और भोग के दाता (रथीतमम्) सब देहधारियों में सबसे श्रेष्ठ, (अतूर्तम्) किसी से भी न मारे जाने वाले. अमर. (तुग्रियावृधम्) तमो-निवारक. शान्तिदायक, मेघवत् ज्ञानजल के वर्धक, आत्मा की शरण में (इत) आओ । आत्मा परमात्मा दोनों पक्षों में समान है ।

२८३—'तुग्र्यावृधम्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२८४] मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन्।
आरात्ताद् वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि॥२॥
ऋ० ७। ३२। १॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (त्वा) तेरे लिये (वाघतः) यत्न करते हुए, ज्ञानवान्, मेधावी पुरुष या इन्द्रियगण (आरे) समीप से (मा उ सु निरीरमन् चन) क्या खूब नहीं रमते हैं तेरी सेवा भक्ति नहीं करते? रमते ही हैं। इसलिये हे इन्द्र! (आरात्-तात्) दूर से (वा) भी (नः सधमादम्) हमारे एकत्र रमण करने के स्थान आत्मा, हृदय या क्रीड़ा भूमि, शरीर में (आगहि) आप व्याप्त हो। (इह वा सन्) और यहां ही रहकर (उप श्रुधि) हमारे वचन सुनो।

[२८५] सुनोत सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित् पृणन्नित् पृणते मयः॥३॥
ऋ० ७। ३२। ८॥

भा०—हे विद्वानो! हे इन्द्रियगण! (सोमपाव्ने) सोम का पान करने हारे (वज्रिणे) वज्र, तमोनाशक या वैराग्यसाधक साधनों से सम्पन्न (इन्द्राय) आत्मा के लिये (सोमम्) सोम, आनन्दरस को (सुनोत) उत्पन्न करो। उसके (पक्तीः) यज्ञ में पाक पदार्थ के तुल्य पक्वान, परिपक्वज्ञान, परिपुष्ट अनुभव (पचत) पकाओ, तैयार करो, प्राप्त करो। (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (कृणुध्वम्) यत्न करो। वह (पृणन् इत्) सबको पालन करता हुआ ही (मयः पृणते) सुख कल्याण प्रदान करता ही रहता है।

२८४—'आरात्ताच्चित्' इति ऋ०।
२८५—'सुनोता' ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

[२८६] यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥४॥

ऋ० ६ । ४६ । ३ ॥

भा०—(यः) जो आत्मा (सत्राहा) सदा सब शत्रुओं का नाशक और (विचर्षणिः) सबका द्रष्टा है । (तम् इन्द्रम्) उस ऐश्वर्यवान् को (वयं हूमहे) हम पुकारते, स्मरण करते हैं । हे (सहस्र-मन्यो) सहस्रों मन्युओं ज्ञानों से युक्त ! हे (तुवि-नृम्ण) बहुधन, ऐश्वर्यवन् ! हे (सत्-पते) सज्जनों के प्रतिपालक ! (समत्सु) हमारे संग्रामों और आनन्द उत्सवों के अवसरों पर (नः वृधे) हमारी उन्नति के लिये (भव) हो ।

अध्यात्म दृष्टि से देखो केनोपनिषद् में देवों की विजय-कथा ।

१ २ ३ २ ३ २ ३

[२८७] शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।

१ २ ३१ २र ३ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ २

मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदाचन ॥५॥

ऋ० १ । १३९ । ५ ॥

भा०—हे (शचीवसू) शक्ति स्वरूप धनसे सम्पन्न ! अपने बलपर सबको वास या जीवन देने हारे प्राण और अपान स्वरूप अश्विनो ! या हे प्रज्ञा, वाणी और कर्मके धनी स्त्री पुरुषो, (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (दिवा नक्तम्) दिन रात (नः दिशस्यतम्) हमें सम्पन्न करो । (वां रातिः) आप लोगों की दानशीलता या आहुति (मा कदा चन उप दसत्) कभी नष्ट न हो, न रुके और (अस्मद् रातिः) और हमारी दी आहुति या दान भी (कदाचन मा उप दसत्) कभी नष्ट न हो ।

२८६—'(तृ०) सहस्रमुष्क' इति पाठभेदः, ऋ० ।

२८७—'दशस्यतम्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[२८८] यद्‌ा कद्‌ा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ १ २
आदिद् वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ॥ ६॥
(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(मीढुषे) सकल संसार पर सुखों, बलों और ज्ञानों के वर्षक ईश्वर के लिये (स्तोता) स्तुतिकर्त्ता (मर्त्यः) मनुष्य (यदा कदा च) जब कभी (जरेत) स्तुति करे ! (आत् इत) तब ही (विव्रतानाम् धर्त्तारं) नाना प्रकार के कर्मों के धारण करने हारे विरुद्धाचारियों को रोकने वाले (वरुणम्) पाप-निवारक सर्व श्रेष्ठ ईश्वर को (विपा गिरा) विशेष रूप से पालन करने हारी. प्रभु के विशेष गुणों की प्रकाशक दुःख-नाशक वेदवाणी से ही (वन्देत) स्तुति करे ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २
[२८९] पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यः सम्मिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ७
ऋ० ८ । ३३ । ४ ॥

भा०—हे (मेध्यातिथे !) मेधा. बुद्धि से गम्यमान. पवित्र अतिथे ! विना किसी निर्दिष्ट काल के हृदय में विराजमान होने वाले अतिथि के समान पूज्य ! या नित्य व्यापक परमात्मन् ! (अन्धसः मदे) प्राण धारण करनेहारे पदार्थ के उद्योग या आनन्द लाभ के निमित्त(इन्द्राय)इस आत्मा के (गाः) इन्द्रियों की (पाहि) रक्षा कर । (यः) जो (इन्द्रः) आत्मा (हर्योः संमिश्लः) बाह्य और भीतरी दोनों प्रकार के इन्द्रियों से संनिकर्ष को प्राप्त होकर (हिरण्ययः) हित और सुखजनक ज्ञान लाभ करने वाला है वही(इन्द्रःवज्री)सब अज्ञानों का वर्जन करनेहारा आत्मा (हिरण्ययः) प्रकाशस्वरूप ज्योतिर्मय ज्ञान का प्राप्त कराने हारा है ।

२८८—'विपा' १. विविधमिन्द्रगुणान् प्रति आप्तया इन्द्रगुणप्रकाशिकया, (मा०) वेपयन्त्या कम्पयन्त्या दुःखाग्नौ । भ० स्वा० ।

२८९—(प्र०) 'पाहिगायान्धसो' (तृ० च०) 'हर्योऽयः सुतं सचा वज्री रथो हिरण्ययः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
[२९०] उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।
३ १ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २र ३ ३ २
सत्राच्या मघवान् त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्॥८

ऋ० ८। ६१। १॥

भा०—(इन्द्रः) आत्मा (नः) हमारे (अर्वाग्) आभ्यन्तर मानस और (इदं च) इस प्रत्यक्ष उच्चारण किये हुए (उभयम्) दोनों प्रकारके (वचः) वचनों को (शृणवत्) सुनने हारा (मघवान्) नाना ऐश्वर्यों से सम्पन्न (शविष्ठः) बलवान् आत्मा (सोम-पीतये) परमेश्वर के दिये परमसुख रूप सोमरस पान करने के लिये (सत्राच्या धिया) सत्यानुकूल सर्वदा सद् बुद्धि से सम्पन्न होकर (आगमत्) हमें प्राप्त हो।

३ २ ३ १ x २ ३ १ २ ३ १ २
[२९१] महे चन त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ॥ ९॥

ऋ० ८। १। ५॥

भा०—हे (अद्रिवः) अन्धकार का हरण करने हारे ज्ञानवन्! हे (वज्रिवः!) हे वज्र को धारण करनेहारे आत्मन्! (महे चन शुल्काय) बड़े भारी मूल्य के बदले भी (त्वा न परा दीयसे) तुझको नहीं दिया जा सकता, तुझे त्याग नहीं किया जा सकता। हे सैंकड़ों ज्ञानकर्मों से सम्पन्न! (न शताय) न सौ के बदले और (न सहस्राय) न हज़ार के बदले, और (न अयुताय) न लाख के बदले ही तुझे दिया जा सकता है। अर्थात् लौकिक अपार धन के लोभ में भी ईश्वर का त्याग न करना चाहिये।

१ २ ३ १ ३ २उ ३ १ २
[२९२] वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे १०

ऋ० ८। १। ६॥

२९०—'मघवा' ऋ०।

२९१—'त्वामद्रिवः' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (इन्द्र)आत्मन् ! (अभुञ्जतः)प्राप्त धनका भोग न करने वाले या मेरा पालन न करने हारे (मे पितुः)मेरे पितासे और (भ्रातुः) भाईसे भी आप (वस्यान् असि) अधिक श्रेष्ठ, अधिक ऐश्वर्यवान् हो । हे (वसो) वसो ! भीतर बसने हारे ! तू और (माता च) मेरी माता अथवा सब विश्व का निर्माता तुम दोनों (समा) समान रूपसे (मे)मुझ को (वसुत्वनाय) ऐश्वर्यलाभ करने और (राधसे) कार्य में सिद्धि प्राप्त कराने के लिये (छदयथः) मेरा भोजन–आच्छादन द्वारा पालन करते हो।

इति दशमी दशतिः । इति षष्ठः खण्डः ।

इति द्वितीयोऽर्धः प्रपाठकः । तृतीयः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥

अथ चतुर्थः प्रपाठकः (प्रथमोऽर्धः) ।

॥ दशतिः १ ॥ ऋषिः—१ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । २, ६, ७ वामदेवो गौतमः । मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ विश्वामित्र इत्येके । ४ नोधा गौतमः । ५ मेधातिथिः काण्वः । ८ श्रुष्टिगुः काण्वः वालखिल्या वा । ९ मेध्यातिथिः काण्वः । १० नृमेध आंगिरसः ॥ देवता—१–६, ८–१० इन्द्रः । ७ वहुः ॥ बृहती ।।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
[२६३. इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ॥१॥

ऋ० ७ । ३२ । ४ ॥

भा०—(इमे) ये (दध्याशिरः) दधि से मिश्रित सोमरसों के तुल्य ध्यान योगसे प्राप्त (सोमासः) सोम, ज्ञान (इन्द्राय) इन्द्र आत्मा के लिये (सुन्विरे) सम्पादित किये हैं, हे (वज्र-हस्त) हाथ में ज्ञान रूप वज्र को धारण किये हुए आत्मन् ! (मदाय) अपने अन्तःप्रसन्नता, हर्ष के लिये (तान् आपीतये) उनको साक्षात् पान करने के लिये (हरिभ्याम्) ज्ञान और कर्म या दोनों प्रकार के इन्द्रियों से (ओकः) इस देह में (आ याहि) तू आ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२८४] इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।
मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः २
(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे आत्मन् ! (ते मदाय) तेरे हर्ष के लिये (इमे) ये (उक्थिनः सोमाः) ब्रह्मज्ञान सम्पन्न सोम=विद्वान् जन या समस्त ब्रह्मानन्द रस (चिकित्रे) प्रतीत होते हैं । तू (मधोः पपानः) ब्रह्मविद्यारूप मधु का पान करता हुआ (नः गिरः) हमारी वेदवाणियां (उप शृणु) श्रवण कर । हे (गिर्वणः) वेदवाणियों द्वारा भजन करने योग्य देव ! तू (स्तोत्राय) गुणकीर्त्तन करने हारे पुरुष को (रास्व) अभीष्ट फल दे ।

[२८५] आ त्वा३द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥ ३ ॥
ऋ० ८ । १ । १० ॥

भा०—मैं (सबर्दुघाम्) सब प्रकार के ज्ञानरस को दुग्धरूपसे देने हारी, (गायत्र वेपसम्) स्तुति गान करने हारे की रक्षा करने हारे शरीर वाली (सु-दुघाम्) सुगमता से दुही जाने योग्य (इषम्) अन्नस्वरूप अथवा बलस्वरूप (उरु-धाराम्) बड़े भारी ब्रह्माण्ड को धारण करनेहारी या बहुत धाराएं वर्षाने वाली (अरं-कृतम्) अत्यन्त अधिक पर्याप्त धन धान्य पैदा करने हारी या सुभूषित (इन्द्रम्) परमेश्वर या आत्मारूप (त्वा) तुझ (धेनुम्) गाय कामधेनु माता की (हुवे) मैं स्तुति करता हूं ।

[२८६] न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः ।
यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ४
ऋ० ८ । ८८ । ३ ॥

२८५—१. सबरित्यमृत नाम । मा० । २८६—'यच्छिसि' इति ऋ० ।
१. भक्षणार्थस्य अत्तेर्विदारणार्थस्य दृणातेर्वा रिन प्रत्ययः । अत्ति तम इत्यद्रिर्ज्ञानी । न दीर्यते मोहादिना वा इत्यद्रिः संयमी ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! जिस प्रकार विजुली को (बृहन्तः अद्रयः वरन्ते) बड़े २ मेघ और पर्वत वरण करते हैं (न) उसी प्रकार (त्वा) तुझको (वीडवः) वीर्य-सम्पन्न, (बृहन्तः) बड़े २ (अद्रयः[२]) विद्वान् लोग (वरन्ते[१]) स्वीकार करते हैं, करते ही हैं। अथवा वे (न त्वा वरन्ते) तेरा वरण नहीं करते, विरोध नहीं करते, तेरा निषेध नहीं करते, तेरी सत्ता स्वीकार करते हैं। (यत्) क्योंकि (मावते स्तुवते) मेरे समान स्तुति करने हारे पुरुष को तू (यत् वसु शिक्षसि) जो वासयोग्य धन बल प्रदान करता है (ते तद्) तेरे दिये उस धनको (न किः आ मिनाति) कोई भी नाश नहीं कर सकता। विद्युत् पक्षमें बड़े२ (अद्रयः) मेघ या पर्वत भी उसको ढांप नहीं सकते उसके वेग को रोक नहीं सकते।

[२९७] क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे।
अयं यः पुरो वि भिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः॥५

ऋ० ८। ३३। ७॥

भा०—(सुते) जीवनयज्ञ में (सचा) इन्द्रियगण के एक साथ (पिबन्तम्) सोम का पान करते हुए आत्मा को (कः ईं वेद) कौन जाने? और कौन जाने कि (कद् वयः दधे) वह कितनी आयु धारण करता है। (यः) जो आत्मा (शिप्री) वेगवान् अपनी कर्मगति से एक देह से देहान्तर में गमन करने हारा, (अन्धसः मन्दानः) अन्न द्वारा हर्ष या तृप्ति को प्राप्त होता हुआ (ओजसा) अपने तेजसे (पुरः) अपने भोग भूमियों, देहों को (वि भिनत्ति) तोड़ डालता है और मुक्त हो जाता है।

देह में आत्मा इन्द्रियों के साथ रस भोगता है, परन्तु उसकी आयु को कोई नहीं जानता। वह अपने कर्मगति से देहों में भ्रमण करता और अन्नरस को भोगता और ज्ञान से देहमुक्त हो जाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२९८] यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
अस्माकमंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ॥६॥
(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! आत्मन्! (यत्) क्योंकि (सदस: परि) हमारे देह, घर या सभा स्थान के पास रहने वाले (अव्रतम्) व्रत या नियम का पालन न करने हारे पुरुष का तू (शासः) शासन करने हारा है, अतः तू उसे (च्यावय) अधिकार से च्युत करदे । हे मघवन्! (पुरु-स्पृहम्) इन्द्रियों या प्रजा के अभिलाषाओं के योग्य, उनके प्रिय (अस्माकम्) हमारे (अंशुम्) भाग को (वसव्ये) इसवास योग्य देह या देश में (अधि बर्हय) और अधिक बढ़ा दे ।

[२९९] त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥ ७ ॥
(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(त्वष्टा) समस्त संसार को गढ़ने वाला या कान्तिसम्पन्न (पर्जन्यः) प्रजा जनों का बरसते मेघ के समान अत्यन्त हित करने हारा (ब्रह्मणस्पतिः) वेद और वेदज्ञों का स्वामी, (अदितिः) किसीसे भी खण्डित न होने हारा, अखण्ड परमेश्वर (नः दैव्यं वचः) हमारे देव सम्बन्धी वेदवाणियों की (पातु) रक्षा करे । वही हमारे (पुत्रैः भ्रातृभिः सह) पुत्रों और भाइयों के साथ (दुः-तरम्) दुस्तर (त्रामणम्) रक्षा करने योग्य (वचः) प्रतिज्ञा वचन की (पातु) पालन करे ।

[३००] कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥८॥
ऋ० ८ । ५१ । ७ ॥

भा०—हे आत्मन्! आप (कदा चन) कभी भी (स्तरीः न असि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंसक नहीं हैं। अथवा–आप (स्तरीः) प्रसवहीन गौ के समान दूध न देने हारे नहीं हैं। प्रत्युत (दाशुषे सश्चथि) दानशील पुरुष को और भी देते हो। हे मघवन्! (ते देवस्य) तुझ देव दानशील प्रभु का (दानम्) दान (उप-उप इत् नु) बराबर समीप ही समीप (पृच्यते इत् नु) प्राप्त होता ही रहता है।

[३०१] युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः।
अर्वाचीनो मघवन् त्सोमपीतये उग्र ऋष्वेभिरागहि ॥९॥
ऋ० ८।३।१७॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम) उत्तम रीति से विघ्नों का नाश करने हारे (इन्द्र) परमेश्वर! आत्मन्! तू (हरी) दोनों प्रकार के धारण और आकर्षण बलों और दोनों प्रकार के इन्द्रियगण को (युङ्क्ष्व) नियुक्त कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (परावतः) दूर देश या इन्द्रियों से अगम्य दशा से भी तू (उग्रः) अत्यन्त वेगवान् होकर (सोम-पीतये) आनन्दरूप सोमपान करने के निमित्त (ऋष्वेभिः) दर्शन करनेहारे इन्द्रियसाधनों या मरुत् नामकों प्राणों सहित (अर्वाचीनः) साक्षात् रूपमें (आगहि) प्राप्त हो।

[३०२] त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमागहि ॥१०॥
ऋ० ८।९९।१॥

भा०—हे (वज्रिन्) वज्रको धारण करने वाले! शक्तिमन्! (भूर्णयः नरः) भरण पोषण करने हारे नेता लोग (ह्यः) पूर्वकाल में (त्वाम् इत्) तुझको ही (आ अपीप्यन्) पुष्ट करते थे। हे (इन्द्र) आत्मन्! (स्तोम-वाहसः) स्तुतिकर्त्ता या अन्न को धारण करने हारे पुरुषों की

३०१– युक्ष्वाहि इति ऋ०।
३०२—'स्तोमवाहसामिह' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तुतियों को (इह) यहां (सः) वह तू (श्रुधि) श्रवण कर और (स्वसरम्) स्वयं कर्मानुसार अर्थात् आत्मा के बल से चलने वाले, स्वयं गति करने हारे देहरूप गृह में (आ गहि) आ विराजमान हो।

इति प्रथमा दशतिः। सप्तमः खण्डः॥

॥ दशतिः २ ॥ ऋषिः—१. २. ७, ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। ३ अश्विनौ वैवस्वतौ। ४ प्रस्कण्वः काण्वः। ५ मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ। ६ देवातिथिः काण्वः। ९ नृमेध आंगिरसः। १० नोधाः गौतमः॥ देवता—५—१० इन्द्रः। १ उषाः। २, ३, ४ अश्विनौ॥ बृहती॥

[३०३] प्रत्यु अदर्श्यायत्यूऽच्छन्ती दुहिता दिवः।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी १
ऋ० ७।८१।१॥

भा०—(दिवः दुहिता) सूर्य की प्रभा के समान प्रकाशमान परमात्मा से उत्पन्न हुई शक्ति (उच्छन्ती) अन्धकार को दूर हटाती हुई (प्रति उ अदर्शि) सबको दिखाई दे रही है। वह (चक्षुषा) सर्वद्रष्टा, प्रभु के प्रकाश से (मही) महान् विस्तारयुक्त होकर (तमः) अन्धकार को उषा काल के समान अज्ञान अन्धकार को (अप वृणुते उ) दूर हटाती है। और वह (सूनरी) उत्तम नेत्री, पथदर्शिका (ज्योतिः कृणोति) सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश कर देती है। यह मन्त्र, मन्त्रमय वेदवाणी और प्रबुद्ध चिति शक्ति और उषा तीनों पर समान रूप से है। साधक की यह दशा ज्योतिष्मती विशोका प्रज्ञा का उदयकाल कहा जाता है। यह आदित्यवर्ण पुरुष के दर्शन का पूर्वरूप है।

३०३—'अपो महि व्ययति चक्षसे' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३०४] इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ २॥
ऋ० ७ । ७४ । १ ॥

भा०—हे(अश्विनौ) अश्विदेवो ! प्राण और अपान शक्तियो ! हे (वस्रौ) वास कराने हारे ! (इमाः दिविष्टयः) ये द्युस्थान या मस्तक में गति करने हारी सात इन्द्रियां (उ) भी (वाम्)आप दोनों की(हवन्ते) महिमा को बतलाती हैं। (अयम्) यह मैं आत्मा या मन (अवसे) अपने जीवन की रक्षा के लिये (वाम्) आप दोनों को (अह्वे) पुनः २ भीतर से बाहर, बाहर से भीतर बुलाता हूं हे (शची-वसू) शक्ति द्वारा वास कराने हारो ! आप दोनों (विशं-विशम्) प्रति देह में (गच्छथः) गमन कर रहे हो ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३०५] कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।
३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
घ्नता वामश्र्यया क्षयमाणोंऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥ ३ ॥
(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—[प्र० १] हे (अश्विनौ देवा) देह में व्यापक शक्तिदाता प्राण और अपान (वाम्) आप दोनों (कु-स्थः) कहां स्थित हो ? [प्र० २] (वाम्) आपको (कः मर्त्यः) कौन मरणधर्मा पदार्थ (तपानः) तप्त करता है ? [उत्तर १] (वाम्) आप दोनों (अश्र्यया) शरीर की भोजन करने की शक्ति द्वारा [घ्नता) ताड़ित होकर गति करते हो । [उ० २] (यथा आद्वन्) जिस प्रकार अन्नादि समृद्धि भोगों और ऐश्वर्यों का भोक्ता राजा, शासक (अंशुना) अपने समस्त देश व्यापी बल से (क्षयमाणः) देश भर में विराजमान होकर भृत्यों को

३०५—आद्वन्यथा—आद् । उ । अन्यथा इति मा० वि० । अभिमतान्नरसभक्षणवान् आद्वन् । सा० । 'क्षपमाणों०' इति पाठो भ० स्वा० । क्षिययाणः मा०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलाता है और तपाता है (इत्थम् उ) उसी प्रकार (आद्वन्) भोक्ता आत्मा (क्षरमाणः) देह में रहता हुआ (अंशुना) अपने व्यापक भोग-कर्म शक्ति द्वारा प्राण अपानरूप आप दोनों को तपाता है गति देता है और (अक्षया) अशना और पिपासा द्वारा आप दोनों (ऋता) पीड़ित होकर उसके शासन में गति करते हो । (इसका विवरण देखो बृह० उप० अ० १ ब्राह्मण २)

अथवा—(इत्थम्) इस प्रकार (वाम्) आप दोनों को (अक्षया) अशना–पिपासा, भूख प्यास द्वारा (क्षयपमाणः) क्षीण निर्बल करता है तब आप दोनों (ऋता) पीड़ित होते हो । (आत्-उ अन्यथा) इसके विपरीत वह आत्मा (अंशुना) अपने व्यापक सामर्थ्य से तुम दोनों को क्षुधादि से पीड़ित नहीं करता, तब आप दोनों क्षीण न होकर बलवान् बने रहते हो ।

[३०६] अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ।।४।।
ऋ० १ । ४७ । १ ।।

भा०—हे (अश्विनौ) अश्वियो ! प्राण और अपान ! (वाम्) आप दोनों के लिये (दिविष्टिषु) चेतनासम्पन्न इन्द्रियों की एषणाओं में, या देवयज्ञों में (अयम्) यह (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुर (सोमः) सोमरस अन्न रस, ज्ञानरस (सुतः)सम्पन्न किया गया है । (तिरः-अन्ह्यम्) विगत काल के सम्पादित (तम्) उसको (पिबतम्) पान करो, शरीर में ग्रहण करते हो और (दाशुषे) अपना ज्ञान या पदार्थ या प्राण को अपान में और अपान को प्राण में हविरूप से दान करने हारे साधक को(रत्नानि) रमणीय सुखकारी साधन, बल, आरोग्य (धत्तम्) प्राप्त कराओ ।

३०६—'सोम ऋतावृधा' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण-अपान का यज्ञ देखो गीता (अ०४।२६ ३०) और छान्दो० उप० अ० ३।

२ ३ १२ ३१ २३ २३ १२३१ २
[३०७] आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।
१ २ ३१ २र ३ १ २र ३ १ २
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥५॥
ऋ० ८।१।२० ॥

भा०—हे इन्द्र ! परमेश्वर (अहम्) मैं (ज्या) उत्कृष्ट, प्रशंसा योग्य (सोमस्य गल्दया[1]) सोम की धारारूप वाणी से (त्वा) तुझको (सदा आ याचन्) नित्य प्रार्थना करता हुआ (सवनेषु) यज्ञकर्मों और उपासनाओं में (मृगं न) सिंह के समान दुष्टों पर (चुक्रुधम्) क्रोध करते हुए, (भूर्णिम्) संसार भर के भरण करने हारे (ईशानम्) स्वामी, जगदीश्वर को (कः न) कौन नहीं (याचिषत) प्रार्थना करता है ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २
[३०८] अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ? १ २ ३ २
उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥६॥
ऋ० ८।४।११ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) कभी नष्ट न होने वाले ! अहिंसित ! आत्मस्थित मन ! अहंकार ! (सोमम्) सोमरूप आनन्दरस को (इन्द्रः) आत्मा (पिपासति) पान करना चाहता है । (त्वं सोमं द्रावय) तू उस आनन्द रस को बहा, उत्पन्न कर । (वृत्र-हा) विघ्न और तमों के निवारक आत्मा ने (नूनम्) निश्चय से (वृषणा) सब काम्य सुखों की वर्षा करने हारे एवं बलवान्, (हरी) हरणशील साधन, प्राण और अपान दोनों को (उप युयुजे) जोड़ता है और वह (आ जगाम च) साक्षात् समक्ष आता

३०७— 'मात्वा' इति 'याचन्नहं गिरा' इति च ऋ० ;

१. गल्देति वाङ्नाम (नि० १ ११) धमनयो वा इति (नै० ६।२४)

३०८—'(द्र०) उपनूनं' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। साधक अपने अहंकारयुक्त आत्मा से सम्बोधन करता है। देखो आप्याग्निहोत्र उप० (खं० ४) 'अहंकारोऽध्वर्युः'।

३ २ ३ २उ   ३ २ ३   २ ३ १ २
[३०९] अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः।
३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २
पुरूवसुर्हि मघवन् बभूविथ भरेभरे च हव्यः ॥ ७ ॥

ऋ० ७। ३२। २४॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! हे (ज्यायः) सबसे श्रेष्ठ, ज्येष्ठ! (कनीयसः) अपने से छोटे, अतिलघु (ईषतः) आप से माहात्म्य चाहने हारे मेरे लिये (तद् अभि आ भर) अच्छी प्रकार सब ओर से उस अभिलाषा योग्य पदार्थ को प्राप्त करा। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (हि) क्योंकि आप (पुरूवसुः) अनेक प्रजाओं को वास कराने हारे सबमें बसे, अन्तर्यामी (भरे-भरे च) और प्रत्येक यज्ञ में (हव्यः) स्तुति योग्य हैं।

१ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
[३१०] यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।
३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
स्तोतारमिद् दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥ ८ ॥

ऋ० ७। ३२। १८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यावतः त्वम्) जितने ऐश्वर्य का तू मालिक है (यद्) यदि (एतावद्) इतना ऐश्वर्य का (अहम्) मैं (ईशीय) स्वामी होजाऊं तो हे (रदावसो![1]) समस्त दान योग्य पदार्थों के देने हारे! मैं (स्तोतारम् इद्) स्तुति करने हारे, सत्य ज्ञान के दर्शाने हारे विद्वान् को ही (दधिषे) दे डालूं। (पापत्वाय) पाप कर्म के लिये (न रंसिषम्) कभी न दूं।

---

३०९ 'मघवन्त्सनादसि इति ऋ०।

३१०—'स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय' इति ऋ०।

१—'रदावसो' रदिरत्रदानकर्मा। रदत्तिवसूनि इति रदावसुः। म० स्वा०, सा०। रंसिषम्। रातेरिदं रूपम्। म०। स्वा०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[३११] त्वमि॑न्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ९ ॥
ऋ० ८ । ९९ । ५ ।

भा०—हे (इन्द्र त्वम्) तू (प्रतूर्तिषु) संग्रामों में या बल के कार्यों में (विश्वाः स्पृधः) समस्त स्पर्द्धा करने हारी सेनाओं या दुर्वासनाओं के (अभि-असि) मुकाबले पर डट जाता है और उनको परास्त करता है। हे (तूर्य) शत्रु के नाश करने हारे! (त्वम्) तू (तरुष्यतः) हिंसा करने की चेष्टा करने वाले शत्रुओं के प्रति (वृत्रतूः असि) सब उपद्रवों का नाशक है। और तू ही (अशस्ति हा) शासन को न मानने हारे विरोधी, उद्दण्डों को नाश करने हारा (जनिता) प्रजाओं के पिता के समान है।

[३१२] प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥१०॥
ऋ० ८ । ८८ । ५

भा०—(यः) जो तू परमेश्वर (ओजसा) अपने सामर्थ्य से (दिवः) द्यौलोक के (सदोभ्यः) वास भूमियों से भी (परि) परे तक (प्र रिरिक्षे) दूरतक फैला हुआ है। हे (इन्द्र) परमेश्वर! इसलिये (पार्थिवं रजः) यह पृथ्वी लोक (त्वा) तुझ को (न विव्याच) कभी व्याप्त नहीं कर सकता। तू (अति विश्वम्) इस समस्त ब्रह्माण्ड को अतिक्रमण करके (ववक्षिथ) उसको वहन करता है, धारण करता है।

इति द्वितीया दशतिः । इति अष्टमः खण्डः ।

॥ दशतिः २ ॥ ऋषिः—१, २, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । गात्सुरात्रेयो गृत्समदो वा । ४ पृथुर्वैन्यः । ५ सप्तगुरांगिरसः । ७ गौरिवीतिः शाक्त्यः । ८ वेनो भार्गवः । ९ बृहस्पतिर्नकुलो वा । १० सुहोत्रो भारद्वाजः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् ।

३१२—'प्र हि रिरिक्ष' दिवो अन्तेभ्यस्परि' 'अनु स्वधां ववक्षिथ' । ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३१ २र ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २

[३१३] असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु ॥१

ऋ० ७ । २१ । १ ॥

भा०—(गो-ऋजीकम्) इन्द्रियों द्वारा ऋजुता से प्रत्यक्ष रूप में, साक्षात् सम्बन्ध द्वारा प्राप्त (देवम्) दिव्य स्वभाव गुण युक्त, आनन्ददायक (अन्धः) ज्ञान, सोम (असावि) प्राप्त किया जाय। (इन्द्रः) आत्मा (जनुषा) उत्पत्तिकाल से, स्वभावतः ही (ईम्) अप्रत्यक्ष रूप में (अस्मिन्) इस ज्ञान में (उवोच) समवेत है, समवाय सम्बन्ध से है! अर्थात् ज्ञान आत्मा का गुण है। हे (हर्यश्व) हरणशील योग-साधनों से सम्पन्न! (त्वा) तेरा (यज्ञैः) ज्ञानयज्ञों अथवा अन्तर्योगों द्वारा (बोधामसि) हम ज्ञान करते हैं। और तू (नः) हमारे (स्तोत्रम्) सत्य ज्ञान-कथाओं को (अन्धसः मदेषु) सोमरूप ज्ञान की उत्कृष्ट आनन्द दशा में (बोध) जाना करता है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

[३१४] योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरूहूत प्र याहि
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सोमैः॥२

ऋ० ७ । २४ । १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (ते सदने) तेरे निवास योग्य गृह, इस देह में (योनिः अकारि) तेरे प्रकट होने का स्थान बना है। (तम्) उस स्थान पर हे (पुरु-हूत) इन्द्रियों या बहुतसे अङ्गों द्वारा निरन्तर स्मरण किये गये आत्मन्! (नृभिः) अपने नेता, प्राणरूप मरुतों के सहित तू (आ प्र याहि) सब ओर से हटकर वहां ही प्रकट हो और (यथा) जिस प्रकार से (नः) हमारा (वृधः) बढ़ाने हारा (चित्) और (अविता) पालनकर्त्ता (असः) बने और (वसूनि) धन,

३१३–(तृ०) 'वृषे च' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द (ददः) दान कर (सोमैः च) और सोमों द्वारा (समदः) आनन्द का उपभोग करे।

अन्तरेण तालुके य एव स्तन इवावलम्बते सा इन्द्रयोनिः। यत्रासौ केशान्तो विवर्त्तते व्यपोह्य शीर्षकपालं सत्यात्मप्राणारामं मनः आनन्दम् शान्तिसमृद्धममृतम् इति प्राचीनयोग्योपास्व (तैतिरीयोपनि० अनु० ६। वल्ली १ ॥)

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
३१५] अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान् बद्बधानाँ अरम्णाः।
३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद् वः सृजद् धारा अव यद् दानवान् हन्
॥ ३ ॥ ऋ० ५ । ३२ । १॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (त्वम्) तू ने (उत्सम्) ऊर्ध्वस्थान, मूर्धा भाग को (अदर्दः) विदारण किया और (खानि) इन्द्रिय द्वारों को (वि असृजः) रचा और (त्वम्) तूने (अर्णवान्) गतिशील (बद्बधानान्) आघात प्रतिघात करते, वा देह भर को मांसपेशियों आदि साधनों से बांधते हुए प्राणों को (अरम्णाः) व्यवस्थित किया। इस प्रकार (यद्) जब तूने (महान्तम्) बड़ाभारी (पर्वतम्) पोरुओं वाला देह (वि वः) प्रकट किया और (यत्) जो (दानवान्) ज्ञान देने हारे इन प्राणों को (अव हन्) प्रेरित करता और (धाराः) ज्ञान स्मृतिरूप धाराओं को, या अन्नरस की धाराओं को, या वाणियों को या इन्द्रिय नाड़ियों को उन छिद्रों में प्रवाह रूप से (वि सृजद्) विशेष रूप से प्रेरित करता है। इसका स्पष्टीकरण ऐतरेयोपनिषत् १म, २य, ३य खण्ड में देखिये, वहां ही इन्द्र का स्पष्टीकरण भी है। और देखो (बृहदारण्यक उप० अ० १ । ब्रा० ४)

'उत्सः उत्सरणाद् उत्सहनाद्वाउनत्तेर्वा (निरु० १०। १। ४) खानि

३१५—'अरम्णाः' सजो वि धारा अव दानवं हन्' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियाणि, (काठक उ०) पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः ।' रुणाति विसर्जनकर्मा, संयमनकर्मा वा (नि० १० । १ । ४) ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

[३१६] सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित् तुविनृम्ण वाजम्

१ २ ३ १ २र ३ २र ३ १ २ ३ ३ १ २

आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोताः ॥४॥

ऋ० १० । १४८ । १ ॥

भा०—हे इन्द्र ! (वाजं सनिष्यन्तः) भोग्य पदार्थ का सेवन करने हुए भी (सु-स्वाणासः) तेरे ही आनन्द रसों का सम्पादन करते हुए हम (त्वा स्तुमसि) तेरी स्तुति करते हैं । इसलिये (नः) हमारे लिये (सुवितम्) उत्तम बल, ऐश्वर्य, सुखको (आ भर) प्राप्त करा (यस्य) जिसकी (कोना) कामना करते हुए हम (त्मना) स्वयं आपसे आप (त्वा उताः) तेरे से रक्षित रहकर या तेरे में पिरोये हुए रहकर (तना) खूब उत्तम २ देहों, धनों, विस्तृत अनुभवों को (आ सह्याम) प्राप्त करें। प्राणों का आत्मा के प्रति और भक्तों का ईश्वर के प्रति यह वचन है ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २

[३१७] जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५

ऋ० १० । ४७ । १ ॥

भा०—हे इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् आत्मन् ! (वयं वसूयवः) हम प्राणों की या देह में स्वयं वसु होने की कामना करते हुए (ते) तेरा (दक्षिणम्) दायां, क्रिया सम्पन्न, बलवान् (हस्तम्) हाथ अर्थात् प्रबल सहारा (जगृह्म) ग्रहण करते हैं, (हि) क्योंकि हे (वसूनां वसुपते) वसुओं के बीच में प्राणों के पालक ! आत्मन् ! (त्वा) तुझको (गोनां गोपतिम्) इन्द्रियों के बीच में इन्द्रियों के स्वामी के समान (विद्म हि) निश्चय से जानते

३१६—'ससवांसश्च तु वि०', 'यस्य चाकन्त्मना तना सनुयाम' इति ऋ० ।

३१७—'जगृम्मा ते' इति पाठभेदः ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है । (अस्मभ्यम्) हमें (चित्रम्) सदा बढ़ने वाला या चितिशक्ति से युक्त या ज्ञानसम्पादन करने हारा (वृषणम्) सब सुखों का देने वाला पुष्टिकारक (रयिम्) प्राण, अन्न, बल (दाः) प्रदान कर ।

३ १ २ ३१ २ ३ १ २र ३१ २ ३ २ ३ २
[३१८] इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः
३ १ २ ३ १२ ३ २३ १ २र ३१ २ ३ १ २
शूरो नृषाता अवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥६

ऋ० ७ । २७ । १ ॥

भा०—(यत्) क्योंकि आत्मा (पार्याः) व्यापार, चेष्टा करने वाले, या भरणपोषण करने या संसार-व्यापार कराने में समर्थ (धियः) ज्ञान और कर्मों की(युनजते)आयोजना, प्रबन्ध करता है इसलिये (नरः) विद्वान् लोग (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा के समान परमेश्वर या आत्मा को(नेमधिता)संग्राम,-यज्ञ, व्यवस्था की स्थापना के अवसरों पर (हव-न्ते) उसको बुलाते या स्मरण करते हैं । (शूरः) शूरवीर (नृ-साता) मनुष्यों का उचित विभाग करने हारे (कामे च) और कामना करने योग्य (गोमति व्रजे)हमारे अभिलषित गोओं के बाड़े के समान इन्द्रियों से सम्पन्न व्रज, गोष्ठ या देह में (त्वम्) तू (नः) हमें (अवसः) अन्न, बल वा यश आदि (भज) प्राप्त करा ।

१ २ ३ १ २र ३१ २ ३१ २३ १ २ ३ १ २
[३१९] वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
१ २ ३ १२ ३२३१ २र ३ २ २ ३ १२ ३ २
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान् ॥७

ऋ० १० । ७३ । ११ ॥

भा०—(वयः) दूर तक गति करने हारे, दूरदर्शी, (सु-पर्णाः) उत्तम ज्ञान और बल की याचना करते हुए. (ऋषयः) विद्वान् लोग और आत्म पक्ष में—इन्द्रियां (नाधमानाः) सुख, ऐश्वर्य आदि की याचना करते हुए (प्रिय-मेधाः) ज्ञानमयी, व अन्नवद् ग्राह्य विषयों की प्रिय

३१८—'शवसश्चकान' आ' इति पाठभेदः, ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर (इन्द्रम् उप सेदुः) इन्द्र, आत्मा, आचार्य, परमेश्वर के समीप शिष्य पुत्र सेवक भाव से पहुंचे और कहने लगे (ध्वान्तम्) हमारे अज्ञानरूप अन्धकार को (अप ऊर्णुहि) दूर कर। (चक्षुः) हमारी दृष्टि को (पूर्धि) शक्तिमान् कर, तेज से भर दे और (निधया इव बद्धान्) जाल में बंधे हुओं के समान हमको (मुमुग्धि) मुक्त कर।

इन्द्रियों का आत्मा के प्रति, शिष्यों का ब्रह्मज्ञानी गुरु के प्रति, ऋषियों, ज्ञानियों का परमात्मा के प्रति सेवक, शिष्य और भक्तवत् यह वचन है।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[३२०। नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥८॥
ऋ० १० । १२३ । ६ ॥

भा०—हे ज्ञानस्वरूप ! तेजस्विन् ! आत्मन् ! (नाके) दुःख रहित मोक्षमार्ग में (हृदा वेनन्तः) हृदय या मन से तेरी कामना करते हुए, (उप पतन्तम्) गमन करते हुए (हिरण्य-पक्षम्) हितकारी और मनोहर पक्षों या प्राणों या साधनों से युक्त, (वरुणस्य दूतम्) सब पापों के वारण करने हारे जगदीश्वर के दूत, संदेश या ज्ञान को प्राप्त कराने हारे (यमस्य) सब के नियन्ता वायु या ईश्वर के (योनौ) प्रकट होने के स्थान या अन्तरिक्ष में (शकुनम्) शक्ति से सम्पन्न, विमानवत् (भुरण्युम्) भ्रमणशील या सब के पालन-पोषण करने हारे (त्वा) तुझको (यत्) जो (अभि अचक्षत) सर्वत्र देखते हैं। आनन्दमय ब्रह्म आत्मा के नाना पक्षों का विवरण देखो तैतिरीय उप० (आनन्द-वल्ली अनु० १ से ६ तक) वहां इस शकुन के पक्षों और पुच्छ आदि का नाना रूप से प्रदर्शन कराया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[३२१] ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाःसतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥९

(ऋग्वेदेनास्ति) अथर्व० ५ । ६ । १ ॥ अथर्व० ४ । १ । १ ॥

भा०—(वेनः)ज्ञानवान्, तेजस्वी, परमात्मा (प्रथमम्)सबसे प्रथम (जज्ञानम्) प्रादुर्भूत या प्रकट होते हुए (ब्रह्म) बृहदाकार ब्रह्माण्ड को (अतः पुरस्ताद् सीम्)इस समस्त संसार की रचना के पूर्व ही(सु-रुचः) उत्तम कान्तियों का (वि आवः) पुञ्ज बनाकर प्रकट करता है। (सः) वह परमात्मा (बुध्न्याः) आकाश में उत्पन्न हुए (अस्य उपमाः) उसके ही सदृश (वि-ष्ठाः) विशेष रूप से स्थिति करने हारे अनेक दिशाओं ब्रह्माण्डों को और (सतः च)इस समस्त सत् रूप में प्रकट जगत् (असतः च) और अव्यक्त प्रकृति के (योनिम्) मूल आश्रय को भी (वि वः) वही प्रकट करता है।

[३२२] अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय।
विराप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यस्मै स्थविराय तक्षुः १०

ऋ० ६ । ३२ । १ ॥

भा०—विद्वान् लोग (महे वीराय) बड़ेभारी वीर, (तवसे) बलवान्, (तुराय) वेगवान्, (विरप्शिने) महान्, ज्ञानवान्, (वज्रिणे)विघ्नों और उपद्रवों के निवारक, वज्र, बल के धारण करने वाले (स्थविराय) अचल कूटस्थ (अस्मै) इस परमात्मा के लिये (पुरु-तमानि) बहुत से (अपूर्व्या) उसको पूर्ण रीति से वर्णन करने हारे, अपूर्व (वचांसि) नाना वचन (तक्षुः) प्रकट करते हैं।

इति तृतीया दशतिः । नवमः खण्डः ॥

॥ दशतिः ४ ॥ ऋषिः-१, २, ४ तिरश्चीराङ्गिरसो द्युतानो मारुतो वा । ३ बृहदुक्थो

३२२—'वचांस्यासा स्थविराय तक्षम्' । ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामदेव्यः । ५ वामदेवो गौतमः । ६, ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणः । ७ विश्वामित्रो गाथिनः । ९ गोरिवीतिः शाक्त्यः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः १—५, ७—९ विराट् त्रिष्टुप् । ६ त्रिपदा विराट् ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

[३२३] अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः ॥१

ऋ० ८ । ९६ । १३ ॥ अथर्व० २० । १३६ । ७ ॥ 136

भा०—(द्रप्सः) द्रवणशील, गतिमान् (कृष्णः) विलेखन, संकर्षण या संन्निकर्ष करने हारा मुख्य प्राण वा वीर्यरस (दशभिः) अर्थों को प्रकाशित करने हारे (सहस्रैः) वेगवान् सहस्रों प्राणों सहित (इयानः) गति करता हुआ (अंशुमतीम्) व्यापनशील चेतना से युक्त चितिशक्ति का (अव अतिष्ठत्) आश्रय लेता है। (इन्द्रः) आत्मा (शच्या धमन्तम्) अपनी शक्ति द्वारा श्वास प्रश्वास लेते हुए (तम्) उसको (आवत्) प्राप्त होता है। (नृमणाः) सब नरों में मनन शक्ति रूप वह आत्मा (स्नीहितिम्) अवघात करते हुए उस प्राण को वह (अध अप द्राः) नीचे अंगों में भी प्रेरित करता है। अथवा चेतन आत्मा ही गर्भस्थ डिम्ब वा देह में रह कर उसके नाशक नाना कारणों को स्वतः दूर करता है। प्राण की गति को अपान तथा अन्यान्य अधोगामी स्थानों में प्रेरण करने और रोग नाश करने में आत्मा के प्रबल संकल्प ही कारण हैं। इस मन्त्र को सायण आदि भाष्यकारों ने कृष्ण नामक असुर को मारने की कथा गढ़ कर लगाया है, वह असंगत है। श्वास घात - कृष्ण

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

[३२४] वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः

३ १ २ ३ १ २ ३ २ २उ ३ १ २

मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥ २ ॥ ऋ० ८ । ९६ । ७ ॥

३२३—'स्नेहितीर्नृमणा' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(वृत्रस्य) आवरणकारी, इस तामस देह के (श्वसथाद्) श्वास-प्रश्वास से (ईषमाणः) गति करते हुए (विश्वे देवाः) सब देव-गण, मरुद्गण, मुख्य प्राण, चक्षु आदि (ये) जो (सखायः) मित्रवत् (त्वा) तुझको (अजहुः) छोड़ देते हैं, अन्तर्मुख न होकर बहिर्मुख हो जाते हैं, तो भी हे आत्मन् ! (ते सख्यम्) तेरा मैत्रीभाव(मरुद्भिः) उन प्राणों, इन्द्रियों से (अस्तु)बना ही रहता है। (अथ) इसी कारण (इमा) इन (विश्वाः) समस्त (पृतनाः) भरण-पोषण योग्य प्राणियों के देहों को तू (जयासि) अपने वश रखता है।

ईष् गतिहिंसादर्शनेषु, भ्वादिः। ईषं् उञ्छे, भ्वादिः। पृतना इति मनुष्यनाम, (नि० २। ४।)।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
[३२.] विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २० ३ १ २र
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान॥ ३॥
ऋ० १० । ५५ । ५ ॥ अथर्व० ९ । १० । ९ ॥

भा०—(विधुम्) विधमनशील, धौंकनी के समान विशेष रीति से शरीर में गति करने वाले, (समने)समान रूप से प्राण धारण करने के कार्य में(बहूनाम्)बहुतों को (दद्राणम्) गति देने वाले (युवानं सन्तम्) युवा, बलशाली होते हुए मुख्य प्राण को भी (पलितः) पुराण पुरुष, आत्मा (जगार) अपने भीतर लीन कर लेता है। (देवस्य) उस आत्म-देव के (काव्यम्) क्रान्तदर्शी विद्वान् के जानने योग्य, सूक्ष्म ज्ञान-सामर्थ्य को (पश्य) देख (ह्यः) जो भूत काल में (समान) निरन्तर जीवित रहा, (सः अद्य) वह आज (महित्वा) उस 'स्व' अपने महिमा या बड़े सामर्थ्य रूप में (ममार) अपने प्राण रूप को त्याग

३२५—१. यो ह्यः प्रातोऽद्य ममार सः ह्यः परेद्युः सम्यग् जीवति पुनर्जन्मान्तरे प्रादुर्भवतीत्यर्थः। सायणः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता है, अर्थात् देह बन्धन त्याग कर परम पुरुष में ही लीन हो, मुक्त हो जाता है।

देखो स्पष्टीकरण उपनिषदों के अप्यय-प्रकरण, एकायन-प्रकरण और स्व-महिमा में संप्रतिपत्ति-प्रकरण।

परमेश्वर पक्ष में—(विधुम्) चन्द्र को जिस प्रकार पूर्ण हो जाने के बाद भी सूर्य अमावास्या में ग्रस लेता है उसी प्रकार (बहूनाम्) बहुत से प्राणों के बीच में सबसे अधिक (युवानं सन्तम्) युवा, अति बलवान् सत् स्वरूप (विधुं दद्राणम्) चन्द्र के समान आल्हादकारी एवं गतिशील आत्मा को (पलितः) सर्वव्यापक, पुराण परमेश्वर (जगार) अपने भीतर ले लेता है। (देवस्य) उस महान् परमेश्वर के बनाये (काव्यं पश्य) इस संसारमय ज्ञानस्वरूप कवि, विद्वान् परमेश्वर की बनाई रचना को देख कि (अद्य ममार) जो आज मरता है (सः) फिर दूसरे दिन वह (समान) प्राणधारी होकर जीता है। अर्थात् पुनः जन्म लेता है। और जो ही जगत् अब नष्ट होता है वह पुनः बनता है।[1]

देखो अथर्ववेद पलित सूक्त। का० ६ । ९ । १ ॥

[३२६] त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥४

ऋ० ८ । ९६ । १६ ॥ अथर्व० २० । १३९ । १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (त्वं ह) तू ही (जायमानः) प्रकट होते समय (त्यत्-सप्तभ्यः) उन सातों (अशत्रुभ्यः) कभी न सोने हारे, निरन्तर चलने वाले शीर्षण्य प्राणों का (शत्रुः) एकमात्र सुलाने हारा, अपने में लीन करने हारा या शातयिता, उनके वेग को कम करने वाला, अथवा उनको इन्द्रियरूप में शिरोदेश में फोड़कर बनाने वाला (अभवः) है। और उसके बाद तू ही (गूढे) गुहा या बुद्धि में स्थित (द्यावा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवी) अन्तरिक्ष एवं सूर्य और पृथिवी के समान मूर्धाभाग और शेष शरीरभाग को (अनु अविन्द) प्राप्त करता है। और (विभुमद्भ्यः) सत्तावान्, बलवान् (भुवनेभ्यः) प्राणों से (रणम्) रमण, विनोद, आनन्द की मात्रा स्वयं (धाः) धारण करता है, अर्थात् भोग करता है।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[३२७] मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुम्
३ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥ ५ ॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (दुवस्युः) परिचर्या, सेवा की इच्छा करने हारा तू (अर्यः) अपनी गतिशील इन्द्रियों को (तरुषीः) पदार्थों या भोग्य विषयों तक चले जाने योग्य (करोषि) कर लेता है। इस कारण मैं (मेडिं न) मेल करने हारे, योगी के समान (वज्रिणम् वर्जन करने वाले, बल, वैराग्य द्वारा सब पदार्थों के ज्ञानपूर्वक संग त्याग से सम्पन्न, (भृष्टिमन्तम्) इन्द्रियों को आश्रय देने हारे (वृषभम्) सबसे श्रेष्ठ, (स्थिरप्स्नुम्) कूटस्थ अचल, नित्य, ध्रुव (द्युक्षम्) प्रकाशस्वरूप (वृत्र-हणम्) तमःस्वरूप देहबन्धन को नाश करने हारे (त्वा) तेरी मैं (गृणीषे) स्तुति करता हूं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३२८] प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्
२ ३ १ २र १ ३ २
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ ६ ॥ ऋ० ७ । ३१ । १० ॥

भा०—(वः) आप लोग (महे वृधे) महिमा से बढ़ने वाले (महे) बड़े भारी आत्मा के लिये (प्र भरध्वम्) उत्तमरूप से हव्य पदार्थ अन्न और ज्ञान का संग्रह करो (प्र-चेतसे) उत्कृष्ट ज्ञानसम्पन्न आचार्य, आत्मा या परमेश्वर के निमित्त (प्र-सुमतिम्) उत्तम २ विचार या उत्तम मनन (कृणुध्वम्) किया करो। हे (इन्द्र) आत्मन् ! (चर्षणि-प्राः) विद्वानों

३२८–'प्र वो महे महिवृधे' 'प्र चर', इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को ज्ञान से पूर्ण करनेहारा तू (पूर्वीः विशः) पालन करनेहारी श्रेष्ठ धर्मात्मा प्रजाओं के पास (प्र चर) उत्तम रूप से आओ, प्राप्त होओ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
३२९] शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानि॥७

ऋ० ३। ३०। २२॥

भा०—(अस्मिन्) इस (भरे) भरण पोषण करने हारे (वाजसातौ) अन्न और ज्ञान के साधन कार्य में (शुनम्) ज्ञानसम्पन्न, सर्वव्यापक, सुखस्वरूप, (मघवानम्) ऐश्वर्यसम्पन्न, (नृतमम्) सबसे उत्तम नेता,(शृण्वन्तम्)सबकी प्रार्थनाओं को सुनने हारे,(उग्रम्)दुष्टों के प्रति उग्र स्वभाव वाले, (समत्सु) संग्रामों और उत्सवों में(वृत्राणि) उपद्रवकारियों विघ्नों को (घ्नन्तम्) नाश करने हारे, (धनानि) नाना विभूतियों को (संजितम्) स्वयं जीतने हारे (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा के समान (समत्सु) योगज हर्षों या आनन्द प्राप्ति के अवसरों में (वृत्राणि घ्नन्तम्) आवरणकारी तामस भावों, व्युत्थान कारणों का नाश करने वाले और (धनानि सं-जितम्) ऐश्वर्यों पर विजय करने वाले आत्मा और परमेश्वर को (हुवेम) हम स्मरण करें, पुकारें।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३३०] उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि॥८

ऋ० ७। २३। १॥

भा०—हे (वसिष्ठ) वायु ! या विद्वन् ! (श्रवस्या)ज्ञान की प्राप्ति के लिये (ब्रह्माणि) वेदमन्त्रों का (उद् ऐरत) उच्चस्वर से पाठ करो। (समर्ये) यज्ञ आदि विद्वानों की संगति में (इन्द्रम्) उस परमात्मा की (महय) उपासना कर (यः) जो (श्रवसा) अपने सामर्थ्य से

३२९—'धनानाम्' ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विश्वानि) समस्त ब्रह्माण्डों को (आ ततान) रचता है और (यः) जो (मे) मुझ (ईवतः) ज्ञानी उपासक, तेरे समीप आये शरणागत भक्त पुरुष के (वचांसि) वचनों को (उपश्रोता) समीपतम होकर श्रवण करता है।

३ १र २र ३ १र २र ३ १ २र ३ १ २र
[३३१] चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्छद्यात्।
३ १ २र ३ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥ ६ ॥

ऋ० १० । ७३ । ९ ॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर का (यद्) जो (चक्रम्) सृष्टिक्रम (अप्सु) प्रजाओं व प्रकृति परमाणुओं में (आ निषत्तम्) विद्यमान है (उत उ) और (अस्मै) इस सृष्टिचक्र के लिये (मधु इत) विशेष मधुर, अन्नादि जीवनरस को ही (चच्छद्यात्) गुप्तरूप से रखता है और (यद्) जो (ऊधः) ऊपर उठा हुआ रस का भण्डार, समुद्र, मेघ और पर्वत (पृथिव्याम्) इस पृथिवि पर (अति-सितम्) खूब बलपूर्वक बंधा हुआ है उससे ही वह (गोषु) गौओं पृथिवियों, भूमियों, इन्द्रियों में और (ओषधीषु) ओषधियों में (पयः) पान करने योग्य, पोषक रसको (अदधाः) आधान करता, धारण करता है।

अन्न से प्राणिगण, मेघों से अन्न, यज्ञ से मेघ कर्म से यज्ञ, ब्रह्मसे कर्म, अक्षर से ब्रह्म, आत्मा) ऐसा 'चक्र' है. देखो (गी० अ० ३।१४,१५)

इति चतुर्थी दशतिः । दशमः खण्डः ॥

॥ दशतिः ४ ॥ ऋषिः—१ अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः । २ भरद्वाजो बार्हस्पत्य गर्गो वा भारद्वाजः । ३ वसुक्रुद्वा वासुक्रो विमदो वा ऐन्द्रः । ४—६, ६, वामदेवो गौतमः । ७ विश्वामित्रो गाथिनः । ८ रेणुर्वैश्वामित्रः । १० गोतमो राहूगणः ॥

देवता—१—७, ६, १० इन्द्रः । ७ पर्वतेन्द्रौ ॥

त्रिष्टुप् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[३३२] त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम्।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१॥
ऋ० १०। १७८। १॥

भा०—हम लोग (त्यम्) उस (वाजिनम्) ज्ञान वेग, कर्म से युक्त, (देवजूतम्) देवों, विद्वानों और इन्द्रियों से पूजित, तर्पित (सहोवानम्) सहनशीलता एवं बल से युक्त, (रथानां तरुतारम्) इन रथरूप देहों वा गतिशील नक्षत्रों और ग्रह, उपग्रहों को गति तथा परस्पराकर्षण की अद्भुत व्यवस्था द्वारा चलाने हारे, (अरिष्ट-नेमिम्) शुभ मार्ग में सबको नियम में संचालन करने हारे, (पृतनाजम्) सब मनुष्य प्रजाओं के भीतर प्रकट होने वा उनको प्रेरणा देने हारे, (आशुम्) सर्वत्र व्यापक या कर्मफल के दाता या भोक्ता (तार्क्ष्यम्) अत्यन्त वेगवान् या व्यापक परमात्मा और आत्मा का (इह) यहां इस अन्तःकरण में (आ हुवेम) आह्वान करते हैं।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[३३३] त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥ २ ॥
ऋ० ६। ४७। ११।

भा०—(त्रातारम् इन्द्रम्) अन्नादि से पालक वा आगत भयों से बचाने वाले परमेश्वर को, (अवितारम् इन्द्रम्) रक्षक ईश्वर को और यज्ञों, उपासनाओं से (सु-हवम्) सुख से स्तुतियोग्य, या सुगमता से स्मरण करने योग्य, (शूरम्) वीर्यवान्, (इन्द्रम्) परमात्मा को, (शक्रम्) शक्तिमान्, (पुरु-हूतम्) इन्द्रियों या प्रजाओं से पूजित, (इन्द्रम्) परमात्मा और आत्मा की (नु) ही (हुवे) मैं स्तुति करता हूं। (इदं

३३२—तूर्णमश्नुते इति तार्क्ष्यः। तार्क्ष्य इति अश्वनाम। नि० १। १४॥
३३३—'शूरमिन्द्र', 'ह्वयामि शक्र', 'धात्विन्द्रः', इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हविः) इस योग्य स्तुति को (मघवा) वह ऐश्वर्ययुक्त प्रभु (इन्द्रः) आत्मा (वेतु) स्वीकार करे ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २

[३३४] यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यां ३ विव्रतानाम् ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद् वि सेनाभिर्भयमानो वि राधसा ।३

ऋ० १० । २३ । २ ॥

भा०—(वज्र-दक्षिणम्) विघ्नों और पापों के निवारण करने के कार्य में चतुर, (वि-व्रतानाम्) निकम्मे या विपरीत कर्मों में जाने वाले (हरीणाम्) इन्द्रियों के (रथ्याम्) उत्तम सारथी (इन्द्रम्) आत्मा की हम (यजामहे) उपासना करते हैं । वह (श्मश्रुभिः[१])शरीर में व्याप्त शिराओं द्वारा सबको (दोधुवद्) गति देता हुआ (ऊर्ध्वधाः) सब से उच्च (भुवद्) रहता हुआ, सेनापति के समान (सेनाभिः) अपनी त्रासकारिणी सेनाओं, के समान बन्धनरज्जुओं द्वारा (भयमानः) भय-भीत करता हुआ, (राधसा) धनादि ऐश्वर्य से (वि भुवद्) विशेष रूप से विविध सामर्थ्यवान् होता है ।

भयानक (भीम) और मनोहर (क्रान्त) गुणों से राजा के समान परमेश्वर भी शक्ति और ऐश्वर्य से सबको भयप्रद और सेव्य भी है ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

[३३५] सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।

३ २ ३ १ २र ३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥४॥

ऋ० ४ । १७ । ८ ॥

भा०—(सत्राहणम्)सब विघ्न और उपद्रवों के नाशक (दाधृषिम्) सबको दबाने वाले (तुम्रम्) सबके प्रेरक. (अपारम्) अपार, (वृषभम्) सबसे श्रेष्ठ, (सु-वज्रम्) उत्तम वज्र को धारण करने हारे, (महाम्)

३३४—'रथ्यं विव्रतानाम्', 'प्र श्मश्रुदो,' 'ध्वर्धथाभूद्' 'द्रवमानो' इति ऋ० ।

१. श्मनि शरीरे शेरत इति श्मश्रवः सिराः । श्म शरीरं निरु० ३।१।५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े भारी और (यः वृत्रहन्ता) जो वृत्ररूप अज्ञान को मारता और (उत वाजं सनिता) ज्ञान और अन्न का विभाग कर देनेहारा, (सु-राधाः) उत्तम साधनों और धनों से सम्पन्न या उत्तमरूप से आराधन करने योग्य (मघानि दाता) ऐश्वर्यों और कर्मफलों को देनेहारा है उसको (इन्द्रम्) 'इन्द्र' कहो, जानों।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३३६] यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा
३ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥५॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(यो मर्त्तः) जो मनुष्य (वनुष्यन्) मारने की इच्छा से (नः अभि दाति) हम पर प्रहार करता है। (उगणा वा) या अपने को बहुतसे योद्धाओं सहित बलवान्, (तुरो वा) या आवेश में आया हुआ, या अतिहिंसक, शस्त्रसम्पन्न (मन्यमानः) मानता हुआ (क्षिधी[1]) प्राणविनाशक, क्षयकारी (युधा) हथियार से (शवसा वा) या बल से हमारे प्रति (अभि दाति) आता और प्रहार करता है, हे परमेश्वर ! सेनापते ! (त्वोताः) हम तेरे से रक्षित होकर (वृषमणः) खूब पुष्ट, बलवान् होकर (तम्) उस दुष्ट के प्रति (अभि स्याम) मुकाबले पर डट जांय और उसे पराजित करें।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३३७] यं वृत्रेषु क्षितयः स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते।
१ २२ ३ २ ३ १ २२ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १२ २२
यं शूरसातौ यमपामुपज्मन् यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥६॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(यम्) जिसको (वृत्रेषु) उपद्रव और विप्लवों के अवसर पर या ज्ञान के आवरण करनेहारे कारणों के उपस्थित होने पर (क्षितयः)

३३६—१. क्षयो धीयतेऽनेन। तृतीयैकवचनस्य पूर्वसवर्णः । सा० । म० स्वा० । 'क्षिध उपक्षपये । मा० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश निवासी प्रजाएं और देह की इन्द्रियां (स्पर्द्धमानाः) एक दूसरे से बढ़ने की इच्छा करने हारी (हवन्ते) स्तुति करती हैं, (यम्) जिसको (युक्तेषु) संग्रामों में या योगक्रियाओं में योगरत पुरुषों के बीच (तुरयन्तः) परस्पर हिंसा करते हुए या व्युत्थान दशाओं पर या विक्षेपों पर विजय करते हुए साधक (हवन्ते) स्मरण करते हैं। (यं शूर-सातौ) जिसे शूरवीरों के संग्राम में स्मरण किया जाता है। (यम् अपासु)जिस को आप्त प्रजाओं के बीच में पुकारा जाता है और (यम् उपज्मन) जिसको भूमि पर वृष्टि अन्न आदि लाभ के लिये याद किया जाता है और (यं विप्रासः)जिसको ज्ञान के अभिलाषी विद्वान् लोग (वाजयन्ते) स्तुति करते हैं वस्तुतः (स इन्द्रः) वह इन्द्र है।

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ २ ३ १ २
[३३८] इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आवहत सुवीराः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥७॥

ऋ० ३ । ५३ । १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! और हे (पर्वत) सबको पूरण, पालन और तृप्त करने हारे परमेश्वर ! आप दोनों (बृहता रथेन)बड़े रथ या रमण साधन के द्वारा (सु-वीराः) उत्तम वीर्यसम्पादक या उत्तम सन्तानजनक,(वामीः) मनोहर (इषः) अन्नादि भोग्य पदार्थ (आ वहतम्) प्राप्त कराओ। हे (देवा) दोनों दानशील देवो ! (अध्वरेषु) यज्ञ आदि हिंसारहित जीवोपकारी कार्यों में (हव्यानि) आदान योग्य पदार्थों को (वीतम्) स्वीकार करो। (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा और (इडया) अन्न और वाणी से के उत्तम अंशों से (मदन्ता) प्रसन्न, तृप्त होते हुए (वर्धेथाम्) पुष्ट होओ। अध्यात्म पक्ष में—इन्द्र=आत्मा और पर्वत= शरीर, आधिभौतिक में इन्द्र=सूर्य, पर्वत=मेघ या विद्युत और पर्वत।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
[३३९] इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत् सगरस्य बुध्नात्।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥ ८ ॥ ऋ० १० । ८९ । ४ ॥

भा०—जो परमेश्वर (सगरस्य बुध्नात्) अन्तरिक्ष के प्रदेश या पेन्दा से मेघ के समान (अपः प्रैरयत्) जलों को नीचे वर्षण करता है और (यः) जो (अक्षेण) धुरे के बल पर स्थिर (चक्रियौ इव) दो चक्रों के समान (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (पृथिवीम् उत द्याम्) पृथिवी और द्यौलोक को (तस्तम्भ) थामे हुए है। उस (इन्द्राय) सर्वशक्तिमान् ईश्वर के लिये (अनिशित-सर्गाः) अखण्डित रचना वाली (गिरः) वेदवाणियां उसीकी स्तुति करती हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[३४०] आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवाँ जगम्याः।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
पितुर्नपातमादधीत वेधा अस्मिन् क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥ ९ ॥
ऋ० १० । १० । १ ॥

भा०—हे इन्द्र ! (सखायः) तेरे समान ख्याति चाहने वाले, तेरे स्नेही (सख्या) मित्रभाव से (त्वा) तुझको (आ ववृत्युः) प्रेम करते हैं या अपनाते हैं। तू (तिरः) तिर्यग् योनियों में (पुरु) इन्द्रियों या प्रजाओं में (चिद्) चेतनावान् होकर (अर्णवान्) देहों में (जगम्याः) प्रविष्ट है, इनको प्राप्त है। तू (अस्मिन् क्षये) इस निवासयोग्य लोक या देह में (प्र-तराम्) अति उत्तम प्रकार से (दीद्यानः) प्रकाशमान होता हुआ (वेधाः) ज्ञान स्वरूप होकर हे प्रभो ! (पितुः न) सबके पालन करने

३३९—'प्रैरय' 'चक्रिया' इति ऋ०
३४०—"ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्। पितुर्नपातमादधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः"। इति ऋ०।

१. यमी ऋषिः, ऋग्वेदे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हारे पिता परमेश्वर के समान (पातम्) हमारी रक्षा (आदधीत) कर। इन्द्रियों का आत्मा के प्रति, प्रजा का राजा या परमेश्वर के प्रति कथन है।

२ ३१ २ ३२उ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[३४१]को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात्॥१०

ऋ० १ । ८४ । १६ ॥

भा०—(अद्य) वर्त्तमान में (ऋतस्य) इस गतिमान् जीवित देह-रूप रथ के (धुरि) धुरा में (शिमीवतः) कामना वा क्रिया करने हारे (भामिनः) आवेश से युक्त, (दुः हृणायून्) दुःशील, (अप्सुवाहः) अपने अभिलषित पदार्थों में शरीर को लेजाने वाले, (मयोभून) सुख उत्पन्न करनेहारे, (गाः) बैलों के समान, इन्द्रियों को (कः) कौन (युङ्क्ते) लगाता है ? (एषां आसन्) इनके मुख में (यः) जो (एषाम्) इनकी (भृत्याम्) भरण पोषण सामग्री को (ऋणधत) उत्तम रूप से देता है और उनका पालन पोषण करता है (सः) वह ही (जीवात्) जीवन धारण करता है।

इति पञ्चमी दशतिः । एकादशः खण्डः ।

॥ दशतिः ६ ॥ ऋषिः—१ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । २ जेता माधुच्छन्दसः । ३, ६ गौतमो राहूगणः । ४ अग्निर्भौमः । ५, ८ तिरश्चीराङ्गिरसः । ७ नीपातिथिः काण्वः । ९ विश्वामित्रो गाथिनः । १० शंयुर्बार्हस्पत्यः ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप ॥

३४१—'आनश्रिपूर्हृणस्वनो' इति ऋ० ।

अथवा (पुरु नित्न अर्णवान् स्मां आ जगन्थाः) तू बहुत २ दया का सागर होकर भक्त जनों को प्राप्त होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
[३४२] गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥
निः ५-५ ऋ० १।१०।१॥

भा०—हे शतक्रतो ! (त्वा) तुझको लक्ष्यकर (गायत्रिणः) गान करनेहारे उद्गाता, सामगायक (गायन्ति) गान करते हैं । (अर्किणः) ऋग्वेदी विद्वान् (त्वा अर्चन्ति) वेदमन्त्रों द्वारा तेरे गुणगान करते हैं । (ब्रह्माणः) और अथर्ववेद या चारों वेदों के विद्वान् ब्रह्मा लोग (त्वा) तुझको (वंशम् इव)अपने वंशधर, या प्रथम पुरुषों ध्वज-दण्ड के समान (उद् येमिरे) उठाते, उन्नत करते, उच्चकोटि पर मानते हैं ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३४३] इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
३ १ २ ३ १ २ १ २ २ ३ २ ३ १ २
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ २ ॥
यजु: १२.२६ ऋ० १। ११।१।

भा०—(विश्वाः गिरः) समस्त वेदवाणियां (समुद्र-व्यचसम्) आकाश के समान सर्वत्र व्यापक, (रथीनां रथीतमम्) महारथियों में सर्वश्रेष्ठ महारथी के समान देहधारियों में सब से विराड् देह, ब्रह्माण्ड को धारण करनेहारे, सबके प्रेरक, (वाजानाम्) सब ज्ञानवान् पुरुषों के (सत्पतिम्) सच्चे स्वामी, या सज्जनों के पालक और (पतिम्) सबके पालक (इन्द्रम्) परमेश्वर को (अवीवृधन्) बड़ा कहती हैं, उसकी महिमा को बढ़ाती हैं ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[३४४] इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥ ३ ॥
ऋ० १ । ८४ । ४ ॥

भा०—हे इन्द्र ! (इमम्) इस(अमर्त्यम्)मरणधर्मा पुरुषों को प्राप्त न होने वाले, या कभी नष्ट न होने वाले, दिव्य,(ज्येष्ठम्)सब से उत्कृष्ट,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मदम्) आनन्दस्वरूप, (सुतम्)योगज ज्ञानसम्पन्न रस को (पिब) पान कर। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (सादने) उत्पन्न होने की स्थिति में (शुक्रस्य) शुद्धस्वरूप, शुक्र, कान्ति की (धाराः) धारणाशक्ति, धारा या प्रवाह (त्वा) तेरे प्रति (अभि अक्षरन्) बहते हैं।

पतंजलि ने योगसूत्र में स्पष्ट लिखा है–'निर्विचारवैशारद्ये अध्यात्मप्रसादः'। जिस पर व्यासदेव ने लिखा है "अशुद्ध्यावरणमलापेतस्य प्रकाशात्मनो बुद्धितत्त्वस्य रजस्तमोभ्यामनभिभूतः स्वच्छः स्थितिप्रवाहो वैशारद्यम्। यदा निर्विचारस्य समाधेर्वैशारद्यमिदं जायते तदा योगिनो भवति अध्यात्मप्रसादः। भूतार्थविषयः क्रमाननुरोधी स्फुटः प्रज्ञालोकः'। ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा। (पात० सू०) तस्मिन् समाहितचित्तस्य या प्रज्ञा जायते तस्या 'ऋतंभरा' इति संज्ञा भवति। अन्वर्था च सा। नच तत्र विपर्यासज्ञानगन्धोऽपि।।" इसी प्रकार ऐतरेय उप० में भी लिखा है। अर्थात् निर्मल चित्त होजाने पर स्वच्छ स्थिति प्रवाह होजाता है तब योगी के सत्यज्ञान का प्रज्ञा-नयन खुल जाता है।

१ २ ३२उ ३ १ २
[३४५] यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः।
२ ३ १ २ ३ १ २
राधस्तन्नो विदद्वस उभया हस्त्याभर ॥ ४॥

ऋ० ५। ३९। १॥

भा०—हे (अद्रिवः)सब अन्धकारों को दूर करनेहारे इन्द्र! (मे) मेरा (इह) इस संसार में (यद्) जो (त्वादातम्) तेरे से दानरूप में मुझे प्राप्त करने योग्य(नास्ति) नहीं है (तद् राधः) वह धन या सिद्धि है (चित्र) पूजनीय! हे (विदद्वसो) विद्वानों के एकमात्र प्राणस्वरूप! (नः) हमें (उभया हस्त्या भर) दोनों हाथों से, दिल खोलकर दे।

३४५—'यदिन्द्र चित्र मेह नास्ति' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[३४६] श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ ५ ॥
ऋ० ८ । ९५ । ४ ॥

भा०—हे इन्द्र ! (यः) जो (त्वा) तुझे (सपर्यति) उपासना करता है उस (तिरश्च्याः)पूर्ण रूप से शरीर में गति करनेहारे प्राण या पारंगत, ज्ञानी साधक की (हवम्) स्तुति को (श्रुधि) श्रवण कर, स्वीकार कर । हे इन्द्र ! तू (महान् असि) बड़ा है, इसलिये (सु-वीर्यस्य) उत्तम वीर्यसम्पन्न (गोमतः) पशु एवं इन्द्रिय और वाणी आदि से युक्त (रायः) धनों और ज्ञानों से हमें भर दे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३४७] असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ६ ॥
ऋ० १ । ८४ । १ ॥

भा०—हे इन्द्र ! (ते) तेरे लिये (सोमः)सोम, ऐश्वर्य और ज्ञानानन्द (असावि) उत्पन्न किया जाता है । हे (शविष्ठ) अति बलिष्ठ ! हे (धृष्णो) सबको पराभ्त करनेहारे ! (आगहि) आ, समीप आ (इन्द्रियम्) यह इन्द्रिय और चित्त अथवा तेरी विभूति या ऐश्वर्य (त्वा) तुझको (सूर्यः न) सूर्य जिस प्रकार (रश्मिभिः) अपनी रश्मियों से (रजः) इस ब्रह्माण्ड को पूर देता है उसी प्रकार (आ पृणक्तु) सब ओर से भर दे ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[३४८] एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥
ऋ० ८ । ३४ । १ ॥

भा०—हे इन्द्र ! अपने (हरिभिः) ज्ञान प्राप्त करानेहारे साधनों, इन्द्रियों से (कण्वस्य)कणों से संचित इस देह, या देही, या प्रज्ञावान् आत्मा की (सु-स्तुतिम्) उत्तम स्तुति या उपभोग को (उप आयाहि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त कर और भोग कर। हे (दिवावसो) अपने तेज से प्राणरूप होकर बसनेहारे जीव ! (अमुष्य) उस तेरे (दिवः) इस द्यौलोक को (शासतः) शासन करनेवाले जगदीश्वर के (दिवम्) दिव्य, कान्तिमान् प्रभु को (यय) चला जा, प्राप्त कर।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[३४९] आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥

ऋ० ८। ९५। १॥

भा०—हे गिर्वणः ! वेदवाणियों द्वारा ज्ञान करने योग्य (सुतेषु) योगसाधनों में, यज्ञों में (गिरः) वेदवाणियां (रथीःइव) वेगवान् रथारोहियों के समान (त्वा अस्थुः) तेरे ही प्रति आती हैं। (गावः) वे वेदवाणियां (धेनवः वत्सं न) गौएं जैसे अपने बछड़े के प्रति आती हैं उसी प्रकार (त्वा अभि सम् अनूषत) तेरी ही प्रत्यक्षरूप से स्तुति करती हैं।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[३५०] एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान् ममत्तु ॥ ६ ॥

ऋ० ८। ९५। ७॥

भा०—हे विद्वानो ! आप लोग (आ इत) आओ, (नु) और (शुद्धं इन्द्रम्) विद्या और तप से पवित्र (शुद्धेन साम्ना) स्वरसंस्कारों से शुद्ध सामगान द्वारा (शुद्धैः उक्थैः) पवित्र ऋग्वेद के मन्त्रों द्वारा (वावृध्वांसम्) महिमा से बड़े (इन्द्रम्) परमेश्वर को (स्तवाम) हम सब, स्तुति करें। (शुद्धः) शुद्धिजनक तपों और कर्मों से यह (आशीर्वान्) शुभ आशीर्वादों से युक्त होकर (ममत्तु) आनन्द प्रसन्न रहे।

३५०—'शुद्ध आशीर्वान्' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२　३१　२३　१　२३　२　३२३　१२
[३५१] यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
१२　३　१　२र३१　२　३　१　२
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १ ॥
ऋ० ६ । ४४ । १ ॥

भा०—(यः) जो स्वयं (रयिंतमः) सबसे उत्तम ऐश्वर्यवान् है और (यः द्युम्नैः) जो कान्तियों, ओजों और ऐश्वर्यों से (द्युम्नवत्-तमः) अत्यन्त अधिक कान्तिसम्पन्न, ऐश्वर्यवान् है (सः) वह परमेश्वर (वः) आप लोगों को (रयिम्) जीवन, धन दे । हे परमेश्वर ! (हे स्वधापते) हे समस्त स्वयं अपने को धारण करने हारे जीवों के पालक ! (सुतः) तैयार किया हुआ (सोमः) सोम, ज्ञान, आनन्दरस या समस्त ऐश्वर्य ही (ते मदः) तेरे हर्ष का साधन (अस्ति) है ।

इति षष्ठी दशतिः । इति द्वादशः खण्डः ।

इति तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

॥ दशतिः ७ ॥ ऋषिः—१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । २ वामदेवो गौतमः शाक्तपूतो वा । ३ प्रियमेध आङ्गिरसः । ४ प्रगाथः काण्वः, । ५ श्यावाश्व आत्रेयः । ६ शंयुबार्हस्पत्यः । ७ वामदेवो गौतमः । ८ जेता माधुच्छन्दसः ॥ देवता—१—४, ६, ८ इन्द्रः । ५ मरुतः । ७ दधिक्रावा । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

१　२　३　१　२　३　१　२　३　१　२
[३५२] प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
३　२　३　२　३　२　३　१　२
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दघ्वने नरः ॥ १ ॥
ऋ० ६ । ४२ । १ ॥

भा०—(अस्मै पिपीषते) इस सोम पान करने की इच्छा वाले, (विश्वानि विदुषे) समस्त पदार्थों के जानने हारे, (अरं-गमाय) सर्व-

---

३५१—'यो रयिं वो' इति छ० ।
३५२—'दध्वने नरे' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापक, (अपश्चा दघ्वने) कभी पीछे न जाने वाले, प्रत्युत सब के अग्रनेता, (नरः जग्मये) मनुष्यों को सन्मार्ग पर ले जानेहारे परमेश्वर रूप नेता के लिये (प्रति भर) प्रतिदिन अपने आपको समर्पण कर ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[३५३] आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम्
३ १ २ ३ २ ३ ३ २उ ३ १ २
महान्तं पूर्विनेष्ठाम् । उग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(नः) हम लोग (वयःशयम्) जीवन भर को समाप्त करने हारे, कालरूप, (महान्तम्) बड़े भारी, (गह्वरेष्ठाम्) हृदयगुहा में स्थित, (वयः) जीवनप्रद, (वयःशयम्) जीवन भर में व्यापक बल को (आ) हमें प्रदान कर । और (पूर्विनेष्ठाम्) प्रारम्भ काल से संसार को नियम से चलाने हारे (महान्तम्) उस महान् परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं । हे पुरुष ! (उग्रं वचः) उग्र, कठोर वचन को (अप अवधीः) आप दूर मार भगा और सौम्यगुण सीख के सब हृदयों में महान् प्रभु का आवास जानकर और उसी को समस्त संसार का व्यवस्थापक जान कर किसी को कठोर वाणी से मत सता ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[३५४] आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥ ३ ॥

ऋ० ८ । ६८ । १ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार से हम (रथम्) अपने इस रमण साधन=रथरूप देह को (सुम्नाय) उत्तम मनन करने योग्य ज्ञानरूप धन की प्राप्ति के लिये(आवर्त्तयामसि)पुनः २ धारण करते हैं,उसी प्रकार हे (शविष्ठ) बलवान् ! (तुवि-कूर्मिम्) नाना प्रकार के महान् कार्यों के सम्पादन करनेहारे (ऋती-सहम्) इन्द्रियों और दुःखदायी विषयों के

३५४—'इन्द्र शविष्ठ सत्पते' । इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिभावक, (सत्पतिम्) सज्जनों के स्वामी, (त्वा) तुझ परमेश्वर को भी (आवर्त्तयामसि) बार २ अपने में धारण करते हैं। मोक्षार्थ ज्ञान-प्राप्ति के लिये जहां पुनः २ जन्म ग्रहण करना आवश्यक है वहां मोक्ष के लिये पुनः २ भगवदाराधन भी आवश्यक है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
[३५५] स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे॥ ४॥
ऋ० ८। ६३। १॥

भा०—(सः) वह (वेनः) विद्वान् कान्तिमान् (महनाम्) पूजनीय पुरुषों में से भी (पूर्व्यः) सबसे पूर्व, पूजा के योग्य है जो (क्रतुभिः) कर्मों और ज्ञानों द्वारा (आनजे) सबको प्रेरित या प्रकट करता है। (यस्य द्वारा) जिसको साधन बनाकर (मनुः पिता) मननशील स्वामी, परमात्मा (देवेषु) विद्वान् पुरुषों में (धियः) अपनी बुद्धियों को (आनजे) प्रेरित करता है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २
[३५६] यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते॥ ५॥
(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(यद्) जहां और जब भी (रथेषु) रमणसाधन या वेगवान् साधनों पर, गतिशील इन्द्रियों के आश्रय (आशवः) शीघ्रगामी मरुद्गण, प्राणगण (भ्राजमानाः) कान्तिमान् तेजस्वी होकर (ई) इस आत्मा के (मदिरम्) पुष्टिकर (मधु) ज्ञान या आनन्द की मात्रा को (पिबन्तः) पान करते हुए (वहन्ति) पहुंचा देते हैं वे (तत्र) वहां (श्रवांसि) वेदवचनों, अनाहत नादों को (कृण्वते) साक्षात् करते हैं। जैसा कहा है—

३५५— महाना' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च ।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम् ।"

(योग व्या० भा० । सू० ४८)

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[३५७] त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥ ६ ॥

ऋ० ६ । ४४ । ४ ॥

भा०—(वः) आप लोगों के प्रति मैं (त्यम् उ) उस ही (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (विश्वासाहम्) सब को सहन करने हारे, (नरम्) नेता, (शचिष्ठम्) सब से अधिक शक्तिमान्, (विश्व-वेदसम्) सबको जानने हारे, सर्वज्ञ, (अप्रहणम्) किसी से न मारे जाने हारे, (शवसः-पतिम्) बल के द्वारा सबके पालक स्वामी प्रभु की (गृणीषे) स्तुति करता हूं, उनका उपदेश करता हूं ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[३५८] दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ७ ॥

ऋ० ४ ३९ । ६ ॥

भा०—(जिष्णोः) सब पर विजय प्राप्त करने हारे, (वाजिनः) बलवान् (अश्वस्य) सर्वव्यापक, (दधि-क्राव्णः) शरीर को धारण करके योनि से योनि में गति करने हारे, आत्मा, अथवा ब्रह्माण्ड भर को स्वयं धारण करके उसे चलाने हारे परमेश्वर का (अकारिषम्) मैं वर्णन करता हूं । वह (नः) हमारे (मुखा)रूपादि विषयों को भीतर लेने वाले मुख, इन्द्रियों को (सुरभि) उत्तम रूप से कार्य करने में समर्थ, बलवान्, कर्म निपुण, (करत्) करे और (नः आयूंषि) हमारे जीवनों को (प्र तारिषत्) तार दे, कृतार्थ करे, बढ़ावे ।

३५७—'नर मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम्' इति ऋ० ।

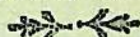
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
[३५९] पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २१ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ८ ॥
ऋ० १ । ११ । ४ ॥

भा०—(पुरां भिन्दुः) समस्त देहों को कारण में लय कराकर उनका भेदन कराने हारा, सबको मुक्ति देनेहारा, (युवा) सबका संगी, (कविः)सबके हृदयों के भीतर का भी जानने हारा, क्रान्तदर्शी,मेधावी (अमितौजाः) अनन्तशक्ति और बल से युक्त, (विश्वस्य कर्मणः धर्त्ता) समस्त ब्रह्माण्ड के कार्यों को धारण करने हारा, (वज्री)सबका संहारक, सर्वशक्तिमान्, (पुरुस्तुतः) सबसे स्तुति करने योग्य, एकमात्र उपास्य देव (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यशील परमेश्वर ही है ।

इति सप्तमी दशतिः । प्रथमः खण्डः ॥



॥ दशतिः ८ ॥ ऋषिः—१, ३, ५ प्रियमेध आङ्गिरसः । २, १० वामदेवो गौतमः । ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ७ अत्रिर्भौमः ८ प्रस्कण्वः काण्वः । ९ आप्त्यस्त्रितः ॥ देवता—१—७ इन्द्रः । ८ उषाः । ९ विश्वेदेवाः । १० ऋक्सामे ॥ अनुष्टुप् ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३६०] प्र प्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥ १ ॥
ऋ० ८ । ६९ । १ ॥

भा०—(वः)आप लोग(मन्दद्-वीराय)वीरों से सम्मानित,(इन्दवे) ऐश्वर्यशील परम-आत्मा के समक्ष (त्रिष्टुभम्) मन, वाणी और कर्म तीनों द्वारा प्रशंसित, (इषम्) सोम आदि अन्न या अभिलषित कामनाओं को (प्र प्र) उत्तम रीति से प्रकट करो । (पुरं-धी) इस देह या ब्रह्माण्ड रूप पुर को धारण करने हारी (धिया) उत्तम कार्यकर्त्री बुद्धि से वह परम आत्मा (मेध-सातये) पवित्र अन्न और ज्ञान की प्राप्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कराने के लिये (वः) आप लोगों को (आ विवासति) प्राप्त होता और अभिलषित फल प्रदान करता है।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[३६१] कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य॥ २॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(स्वर्विदः) ज्योतिःस्वरूप सुख को साक्षात् करनेहारे (धीराः) विद्वान् लोग (यौ) जिन प्राण और अपान को (कश्यपस्य) योगी, साधक, द्रष्टा आत्मा के (स-युजौ) नित्य के सहयोगी, साथी (आहुः) बतलाते हैं और (ययोः) जिनके (विश्वम् अपि) सभी (व्रतम्) कर्मों को (यज्ञं निचाय्य आहुः) जीवन या प्राणापानमय यज्ञ रूप ही निश्चय करते हैं।

सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात, प्राण और अपान, चित्त और अहंकार, मन, बुद्धि आदि साथी समझने चाहियें। आधिदैविक पक्ष में मित्रावरुण, इन्द्र-अग्नि सूर्य और मेघ लेने चाहियें।

आरोगो भ्राजः पटरः पतङ्गः स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभासः। इति सप्त आदित्या तत्र कश्यपोऽष्टमः। स महामेरुं न जहाति। (तै०) आरोग, भ्राज आदि सात ज्ञान-ग्राहक इन्द्रिय हैं, आठवां आत्मा कश्यप, है, वह ध्रुव है। वह मूर्धस्थ होने से मेरु दण्ड को नहीं छोड़ता।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३६२] अर्चत प्रार्चता नरः प्रियमेधासो अर्चत।
१ २ ३ २ ३२उ ३ २ ३क२र
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत॥ ३॥

ऋ० ८। ६९। ८॥

भा०—हे (प्रिय-मेधासः) उत्तम बुद्धि वाले (नरः) पुरुषो! आप (पुरम् धृष्णु इद्) इस पुर, ब्रह्माण्ड और इस पिण्ड को धारण करनेहारे आत्मा और परमात्मा की ही (अर्चत) स्तुति करो, (प्र अर्चत) और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तमरूप से गुणगान करो और उसकी खूब (अर्चत) उपासना करो । हे (पुत्रकाः) पुरुषों को दुःखों से त्राण करने हारे लोगो ! उसी की (उत अर्चन्तु) प्रार्थना उपासना किया करो ।

3 1र 2र3 1 3 1 2 3 1 2
[३६३] उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
3 1 2र 3 1 2 3 1 2 3 1 2
शक्रो यथा सुतेषु नो रारणत् सख्येषु च ॥४॥ ऋ० १।१०।५॥

भा०—(पुरुनिष्षिधे) इन्द्रियों या प्रजाओं में सब प्रकार की गति देनेहारे, व्यापक (इन्द्राय) आत्मा की (वर्धनम्) महिमा दर्शाने वाला, (उक्थम्) वेदमन्त्र (शंस्यम्) उच्चारण करना चाहिये (यथा) जिससे (शक्रः) वह सर्वशक्तिमान् ईश्वर (सुतेषु) हमारे पुत्र, पौत्रों या यज्ञों में और (सख्येषु च) मित्रों और मित्रता के कार्यों में भी (नः) हमें (रारणत्) निरन्तर प्रसन्न रक्खे ।

3 1 2 3 2 3 1 2 3 1 2
[३६४] विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।
1 2 3 2 3 1 2 3 1 2
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ५ ॥
ऋ० ८ । ६८ । ४ ॥

भा०—हे (मरुतः) इन्द्रियगण ! या प्रजाओ ! (विश्वानरस्य) समस्त संसार के नेता, (अनानतस्य) किसी के आगे न झुकने वाले किसी से न हारने वाले, (शवसः) बल के (पतिम्) पालक ईश्वर को (चर्षणीनाम्) सब प्रजाओं के (एवैः च) व्यवहारों, गमनशील साधनों, प्राणों सहित और (रथानाम् ऊतये) इन देहस्वरूप रथों की रक्षा के लिये (वः) आप लोगों को (हुवे) आह्वान करता हूं ।

2 3 1 2 3 1 2र 3 1 2र 3 1 2
[३६५] स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः ।
3 1 2र3 2 3 1 3 2उ 3 1 2
ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ६ ॥
ऋ० ६ । २ । ४ ॥

३६५— ऋधद् यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते ऊती ष०' ; इति ऋ० ।
'सच युस्ने इति पाठ सा०, भ० स्वा० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे ईश्वर ! (यः) जो (नरः) पुरुष (ते) आप (दिवः) प्रकाशमान, सर्वसुखदाता के (धिया) ध्यान करने से (शमतः) शान्तवृत्ति (सर्तस्य) पुरुष के (सघा=सखा) समान व्यवहार करता, उसका मित्र ही है (सः) वह (बृहतीः दिवः) महान् दिव्यस्वरूप, परम सुखरूप आपकी (ऊती) रक्षा में ही (द्विषः) अपने आगे आने वाले सब अप्रिय पदार्थों को (अंहः इव) पाप के समान (तरति) पारकर जाता है।

[३६६] विभ्रोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय ॥ ७ ॥

ऋ० ८ । ३८ । १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (विभ्रोः) नाना सामर्थ्यवान् (ते) तेरे (राधसः) धन की (रातिः विभ्वी) दानराशि बड़ी भारी है। हे (शत क्रतो) सैकड़ों ज्ञानों और कर्मों से सम्पन्न ! हे (विश्व-चर्षणे) समस्त संसार के द्रष्टः ! हे (सुदत्र) उत्तम दाता ! (नः) हमें भी (द्युम्नम्) उत्तम धन (मंहय) दान करो।

यजु० अ० ३० में इस विचित्र धन का विभाग दर्शनीय है।

[३६७] वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ८ ॥

ऋ० १ । ४९ । ३ ॥

भा०—हे (अर्जुनि) ! गमनशीले ! हे रश्मियों, कान्तियों से सम्पन्न (उषः) प्रभात वेला के समान हृदय के अन्धकारों को नाश करने वाली प्रज्ञे ! (ते ऋतून् अनु) तेरी प्रेरणाओं के पीछे २ (दिवः) द्यौः, सूर्य के

३६६—'द्युम्ना सुक्षत्र' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान तेजस्वी आत्मा, या प्रकाशित मूर्धाभाग के (अन्तेभ्यः परि) दिशाओं के परले सिरे या प्रान्तभागों से (पतत्रिणः) उड़नेहारे (वयः) पक्षिगण के समान परमहंस विद्वान्गण, और अध्यात्म में इन्द्रियगण (द्विपात्) और दो पाये मनुष्य और (चतुष्पाद्)चौपाये पशु (चित्)भी (प्रारन्)गति करते हैं। यह उषा के रूपक में चितिशक्ति का वर्णन किया गया है। द्यौ=मूर्धा। पतत्रि=ज्ञान इन्द्रियगण। द्विपात्=हाथ,चतुष्पाद्=पैर आदि। विशोका प्रज्ञा का उदय ही उषा का उदय कहा गया है।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २
[३६८] अमी ये देवा स्थन मध्य आरोचने दिवः।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः॥ ६॥
ऋ० १। १०५। ५॥

भा०—(ये अमी देवाः) जो ये देवगण (आ रोचने)कान्तिमान् (दिवः मध्ये) द्यौलोक के मध्य में (स्थन) विद्यमान हैं। हे देवो ! मैं आप से प्रश्न करता हूं कि (वः) आप लोगों का (ऋतं कद्) सत्य २ तत्त्व क्या है ? (कद् अमृतम्)आपका अमृतस्वरूप किस प्रकार का है ? (वः) आपको (प्रत्ना) प्राचीन (आहुतिः) स्मरण करने और तर्पण करने का पदार्थ क्या है ? अर्थात् आपका प्राचीन मूलभूत नाम और वास्तविक द्रव्य क्या है ?

इन तीनों प्रश्नों के क्रम से उत्तर देखिये ऋ० १। सू० १०५। मन्त्र १२, १५, १६।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[३६९] ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते।
१ २र ३ २ ३ १ २
वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः॥ १०॥
(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(याभ्याम्) जिन ऋग्वेद और सामवेद से (कर्माणि) यज्ञ आदि समस्त संसार के कर्म (कृण्वते) करते हैं उन (ऋचं) ज्ञानमय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद और (साम) सर्वज्ञव्यापक सामवेद का (यजामहे) हम स्वाध्याय करते हैं। (ते) वे दोनों (सदसि) यज्ञों और सभाओं में (राजतः) विराजते हैं और (देवेषु) विद्वानों में (यज्ञम्) यज्ञ, दानादि को (विवक्षतः) वहन करते हैं, प्राप्त कराते हैं।

इत्यष्टमी दशतिः । द्वितीयः खण्डः ।

॥ दशतिः ९॥ ऋषिः—१ रेभः काश्यपः । २ सुवेदाः शैरीशिः शैलूषिर्वा । १, ३ वामदेवो गौतमः । ४, ७, ८ सव्यः सत्यो वा आङ्गिरसः । ५ विश्वामित्रो गाथिनः । ६ कृष्णः कृष्टो वा आङ्गिरसः । ९ भरद्वाजो वार्हस्पत्यः । १० मेधातिथिः काण्वः । ११ कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता—१—८, १०, ११ इन्द्रः । ९ द्यावापृथिवी ॥ छन्दः—१—९, ११ जगती । १० महापङ्क्तिः ॥

१ २ ३१ ३१२३१२३१ २ ३१२ ३१२ ३ १

[३७०] विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे

२ ३१२ ३ २ ३१२३१ २र २१२ ३ १ २

क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१॥

ऋ० ८ । ९७ । १० ॥

भा०—(विश्वाः) समस्त (पृतनाः) सेनाएं वा युद्ध व्यापार करनेहारे (नरः) नेता लोग (सजूः) परस्पर मिलकर (अभिभूतरं) सबसे अधिक सामर्थ्यवान्, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यसम्पन्न वीर को अपना स्वामी (ततक्षुः) बनाते हैं, और (राजसे) अपने अधिक बलरूप से शोभा पाने के निमित्त (वरे) अत्यन्त उत्तम (स्थेमनि) स्थिर (क्रत्वे) कार्य में

१—शैरीषिः शैलूषिरिति पाठभेदौ । सुवेदः इति सा० । सुवेदः इति मा० वि०, म० स्वा० ।

३७०—'क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरि, 'उतोग्रं' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आसुरीम्) सब विघ्नकारियों के संहारक (उग्रम्) उग्र, (ओजिष्ठम्) कान्तिसम्पन्न, बलवान्, (तरसम्) वेगवान्, (तरस्विनम्) आलस्यरहित, चतुर पुरुष को (इन्द्रं जजनुः च) अपना इन्द्र, प्रभु भी प्रकट करते हैं। अध्यात्मपक्ष में—इन्द्रिय जीव को अपना स्वामी चुनते हैं। देखो (बृहदारण्यक उप० ६ । १ ।)

१ २ ३ १ २ ३ २र ३ २र ३ १ २ ३२ ३२
[३७१] श्रत् ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्दस्युंनर्यं विवेरपः ।
२ २उ ३ १ २ ३ १ ३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उभे यत्त्वा रोदसी धावतामनु भ्यसात्ते शुष्मात्पृथिवीचिदद्रिवः २
ऋ० १० । १४७ । १ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) अखण्ड ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! (प्रथमाय) सबसे श्रेष्ठतम, सबसे पूर्व विद्यमान, सब के आदि कारण (मन्यवे) माननीय या ज्ञानस्वरूप (ते) तुझे (श्रत् दधामि) सत्य रूप मानकर धारण करता हूं, तुझे सत्य ज्ञानस्वरूप मानता हूं । (यद्) क्योंकि तू (दस्युम्) नाशक उपद्रवी को (अहन्) मारता है और (नर्यम्) मनुष्यों के हितकारी (अपः) जल आदि पदार्थों, कर्मों और ज्ञानों को (विवेः) प्रकट करता है । (यत्) और क्योंकि (त्वा) तेरे बल पर ही (रोदसी) द्यौलोक और पृथिवी लोक (उभे) दोनों (धावताम्) गति कर रहे हैं । हे (अद्रिवः) ज्ञान और बल से युक्त सब के संहारकारिन् ! (पृथिवी चित्) यह अतिविस्तृत अन्तरिक्ष भी (ते शुष्मात्) तेरे बल से (अनु भ्यसात्) भय करता है ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २र ३ १ २
[३७२] समेतविश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद् भूरतिथिर्जनानाम्
२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषन्तं वर्तनीरनुवावृत एक इत् ॥३॥
(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे (विश्वाः) समस्त प्रजाओ ! (ओजसा) अपने ओज या

३७१—'अहन्यद् वृत्रं' इति 'उभे यत्त्वा भवतो रोदसी अनु रेजते' इति च ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेज से (यः एकः एव भूः) जो स्वयं अकेला, सामर्थ्यवान् सत्स्वरूप, समस्त जगत् का उत्पादक है, (जनानाम् अतिथिः) और जो समस्त प्राणियों के भीतर व्यापक वा समस्तजनों के बीच अतिथिवत् पूज्य है, उस (पतिं) सब के पालक परमेश्वर की शरण में (सम् एत) । आजाओ (सः पूर्व्यः) वह सब से पूर्व विद्यमान, अनादि होकर भी (नूतनम्) नये बने इस जगत् पर विजयी है, उस को वश करता है, (तं वर्त्तनीः अनु वावृते) उसी की ओर मार्ग जा-रहा है। और (सः एकः इत्) वह एक मात्र अद्वितीय है।

'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।' यो० सू० ।

नान्यः पन्था विद्यते अयनाय । यजु० ।

[३७३] इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः॥४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (प्रभूवसो) ! प्रभूत धनसम्पन्न ! हे (पुरु-स्तुत) सब प्रजाओं से स्तुति किये गये ! (ये वयम्) जो हम (त्वा आरभ्य) तुझ से ही प्रारम्भ करके (चरामसि) यात्रा कर रहे हैं (इमे ते) ये वे हम सब (ते) तेरे ही हैं। हे (गिर्वणः) वाणियों के एकमात्र विषय ! (गिरः) इन सब वेदवाणियों को (त्वत् अन्यः) तुझ से दूसरा कोई (नहि सघत्) प्राप्त नहीं होता, अर्थात् वे सब स्तुति तेरी ही हैं। (तत्) इसलिये (नः वचः) हमारी वाणी को तू (क्षोणीः इव) माता पृथ्वी के समान (प्रति हर्य) स्वीकार कर, श्रवण कर। जैसे सब पदार्थ फेंके जाकर भूमि पर ही आ गिरते हैं उसी प्रकार सब स्तुति वाणियां ईश्वर परक ही हैं। इस कारण हे भगवन् ! हमारी वाणियों को तू ही स्वीकार कर।

३७३—'प्रति नो हर्य तद् वचः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
[३७४]चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या३ मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥ ५ ॥
ऋ० ३ । ५१ । २ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (चर्षणीधृतम्)समस्त मनुष्यों को धारण करने हारे, (मघवानम्) ऐश्वर्यसम्पन्न, (उक्थ्यम्) वेदमन्त्रों से स्तुति करने योग्य, (वावृधानम्) महिमा में बड़े (पुरुहूतम्) प्रजाओं से पूजित, (अमर्त्यं)अमर, नित्य (दिवेदिवे जरमाणम्) प्रतिदिन स्तुति किये गये (इन्द्रम्)परमेश्वर को (बृहतीः गिरः)हमारी बृहती छन्द की वेदवाणियां अथवा महान् पूज्य,अतिज्ञानसम्पन्न,बहुतसी स्तुतियां(सुवृक्तिभिः) अन्तःकरण के अनेक अज्ञान मलों को दूर करने वाले वचनों सहित। (दिवेदिवे) नित्य(अभि अनूषत)साक्षात् सत्य स्वरूप वर्णन करती हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[३७५]अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ १ ३ १ २
परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये॥६
ऋ० १० । ४३ । १ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (मर्यं पतिम्) अपने पतिरूप पुरुष को (जनयः) स्त्रियां (परि ष्वजन्त) आलिंगन करती हैं और जिस प्रकार अभीष्ट प्राप्ति के लिये (शुन्ध्युम्) व्यवहार में शुद्ध, (मघवानं न) धन सम्पन्न महाजन के पास प्रजा आती हैं उसी प्रकार (स्वर्युवः) आनन्द और स्वर्ग के सुखका संग कराने हारी, (सध्रीचीः) एकसाथ पढ़ी गई (विश्वाः मतयः) समस्त स्तुतियें (वः) आप लोगों की (अच्छ उशतीः) उत्तम रूप से कामना करती हुई (इन्द्रम् अनूषत) उस परमेश्वर की ही स्तुति करती हैं ।

३७५— परिष्वजते' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[३७६] अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम्
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभिविप्रमर्चत ॥७॥
ऋ० १ । ५१ । १ ॥

भा०—(त्यम्) उस चिरस्मरणीय (मेषम्) सब सुखों के वर्षानेहारे, (पुरुहूतम्) प्रजाओं के स्तुतिपात्र, (ऋग्मियम्) ऋचाओं अर्थात् वेदमन्त्रों में प्रतिपाद्य, ऋचाओं से जानने योग्य, (वस्वः अर्णवम्) सब जीवनोपयोगी साधनों, प्राणों और वास कराने हारे ब्रह्माण्डों और ऐश्वर्यों के एकमात्र महासमुद्र, (मंहिष्ठम्) दानशील, (विप्रम्) ज्ञानी, (इन्द्रम्) उस ईश्वर को (भुजे) अपने पालन पोषण और रक्षा के निमित्त (अभि अर्चत) निरन्तर स्तुति करो (यस्य) जिसके (द्यावः न) अनेक कार्य व्यवहार, प्रकाश किरणों के तुल्य (मानुषं विचरन्ति) मनुष्यलोक को नाना प्रकार से सुख भोगार्थ प्राप्त होते हैं।

अथवा—(यस्य मानुषं द्यावो न विचरन्ति) जिसके ज्ञान सीमा से द्यौलोक सूर्यादि नक्षत्र भी परे नहीं हैं। (मा० वि०)

[३७७] त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभुवः साकमीरते।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमिन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥८॥
ऋ० १ । ५२ । १ ॥

भा०—हे मनुष्य ! (त्यम्) उस (सुमेषम्) उत्तम सुखों के वर्षक, (स्वर्विदम्) स्वर्ग, मोक्ष का आनन्दलाभ करानेहारे की तू (महय) पूजा कर। (यस्य सुभुवः) जिस उत्तम सत्तावान्, सबके मूलकारण ईश्वर के बनाये, (शतम्) सैकड़ों कार्यस्वरूप ब्रह्माण्ड (साकम् ईरते) एक साथ गति कर रहे हैं। अथवा (यस्य) जिसके शासन में (शतं सुभुवः) सैकड़ों सुखद उत्तम सत्ताएं (साकम् ईरते) एक साथ गतिशील हैं मैं (अवसे) रक्षा के लिये (सु-वृक्तिभिः) उत्तम स्तुतियों द्वारा

३७७—'सुभुव' अपठितमपि महत्नामैतद्द्रष्टव्यम्। मा० वि०।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अत्यं वाजं न) अतिक्रमण करनेहारे घोड़े के समान (हवन-स्यदम्) उत्तम स्तुतियों से हृदयों में द्रवित होने वाले (रथम्) रमणीय, परम मनोहर, रसस्वरूप सुख से लोकान्तर में जाने के लिये रथवत् एकमात्र साधन (इन्द्रम्) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, परम ईश्वर को (आ ववृत्याम्) पुनः २ वर्त्तन करूं, पुनः स्मरण करूं, जपूं, पुनः उसकी शरण में आऊं।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३७८] घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ९॥

यजु० ३४.४५ ऋ० ६ । ७० । १ ।

भा०—(घृतवती) दीप्ति और जल से युक्त, (भुवनानाम् अभिश्रिया) समस्त भुवनों और प्राणियों के आश्रयरूप (उर्वी) बहुत बड़ी, (पृथ्वी) बहुत विस्तृत, (मधु-दुघे) समस्त प्राणियों के जीवनरूप रस का दोहन करनेहारी, (सु-पेशसा) सुन्दर मनोहर रूप वाली, (भूरि-रेतसा) बहुत प्रकार के स्थावर जंगमों के बीजों को धारण करनेहारी, (अजरे) नित्य, कभी नाश न होने वाली (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और पृथिवी (वरुणस्य धर्मणा) सर्वश्रेष्ठ, सबके वरण करने योग्य, परमेश्वर के सामर्थ्य से(वि-स्कभिते)अधर आकाश में पृथक् २ खड़ी हैं।

३१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[३७९] उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव।
३ १ २ ३ १ २ १ १ २ ३ २
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम्।
३ १ २र ३१२ १ २र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १० ॥

ऋ० १० । १३४ । १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (यद्) जो (उभे) दोनों (रोदसी) द्यौ और पृथिवी को(उषाः इव)प्रातःकालिक सूर्यप्रभा के समान(आ पप्राथ) चारों ओर से प्रकाशवत् विस्तृत कर देते हो इसी कारण (महीनां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान्तम्) बड़ों में बड़े (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (सम्राजम्) राजा-स्वरूप आपको (देवी जनित्री) दिव्य गुणवाली वेदमाता (अजीजनद्) वैसा ही प्रकट करती है, (भद्रा जनित्री) कल्याणकारिणी वेदमाता वा जगन्माता, प्रकृति (अजीजनत्) वैसा ही जगत् रूप में आपके महान् स्वरूप को प्रकट करती है ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
[२८०] प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥११
ऋ० १ । १०१ । १ ॥

भा०—(मन्दिने) हर्ष, आनन्दयुक्त ईश्वर के लिये (पितुमत्) सारवान् (वचः) वाणियां (प्र अर्चत) खूब उच्चारण करो । (यः) जो अपने प्रभाव से (कृष्ण-गर्भाः) पाप को अपने भीतर धरनेहारी दुष्प्र-वृत्तियों को (ऋजिश्विना) सरल ज्ञान से (निःअहन्) नाश करता है । (अवस्यवः) रक्षण की इच्छा करने हारे हम (वृषणम्) सुख वर्षण करने हारे (वज्र-दक्षिणम्) विघ्नविनाशकों में श्रेष्ठ (मरुत्वन्तम्) प्राणों और प्रजाओं के आश्रय परमेश्वर को हम (सख्याय) अपने मित्रभाव के लिये (हुवेमहि) आह्वान करते हैं ।

इति नवमी दशतिः । तृतीयः खण्डः ।

॥ दशतिः १० ॥ ऋषिः—१ नारदः काण्वः । २, ३ गोसूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । ४ पर्वतः काण्वः । ५—७, १० विश्वमना वैयश्वः । ८ नृमेधः आंगिरसः । ९ गोतमो राहूगणः ॥ इन्द्रो देवता ॥ उष्णिक् ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
[३८१] इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥१॥ ऋ० ८ । १३ । १ ॥

३८०—'हवामहे' इति ऋ० । गर्भस्राविण्युपनिषद् ।
३८१—दक्षासा महान हि सः इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (सुतेषु सोमेषु) सोमरूप हर्षकारी ज्ञान-दशाएं उत्पन्न होने पर (उक्थं क्रतुम्) वेदानुकूल प्रशंसनीय, स्तुत्य कर्म और ज्ञान को (वृधस्य दक्षस्य विदे) अत्यन्त बढ़े हुए बल के लाभ के लिये (पुनीषे) प्राप्त करता है। क्योंकि (महान् हि सः) वह ईश्वर महान् है। संचितसिद्धियों की प्राप्ति के अनन्तर अणिमादि सिद्धियों का जय होता है, तभी वह साधक आत्मा महान्, सम्राट् आदि बनता है।

[३८२] तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमाविवासत ॥२॥ ऋ० ८। १५। १॥

भा०—(पुरु-हूतम्) समस्त प्राणों या प्रजाओं से स्मरण किये गये, (पुरु स्तुतम्) प्राणों या प्रजाओं द्वारा स्तुति किये गये, (तम् उ) उसका ही (अभि प्र गायत) कीर्त्तन करो। हे विद्वान् लोगो! (तविषम्) महान्, सर्वशक्तिमान्, (इन्द्रम्) ईश्वर को ही (गीर्भिः) वेदवाणियों से (आ विवासत) साक्षात् लाभ करो, उसकी उपासना करो, उसी के गुणों का वर्णन करो।

[३८३] तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम्।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥३॥ ऋ० ८। १५। ४॥

भा०—हे (अद्रिवः) ज्ञानसम्पन्न! (ते) तेरे (तं) उस (वृषणं) सब प्राणियों के पोषक (पृत्सु सासहिम्) सब संघर्षों में भी कभी नष्ट न होने वाले सर्व विजयी, सब से बढ़कर (लोक-कृत्नुम्) संसार के उत्पादक (हरि-श्रियम्) दुःख हरणशील, ज्ञानियों के आश्रय लेने योग्य (मदम्) आनन्द-रस दायक की प्रभु की (उ) ही (गृणीमसि) चर्चा किया करें।

३८३—'पृत्सु' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
[३८४] यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद् वा घ त्रित आप्त्ये ।
१ २ ३२ ३१ २३ १ २र
यद् वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥४॥ ऋ० ८ । १२ । १६॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (यत सोमम्) जिस सोम, सबके प्रेरक, सर्वोत्पादक वीर्य या परमानन्दरस को (विष्णवि) सर्वव्यापक ईश्वर में (यद् वा घ) या (आप्त्ये) परम समाधि में प्राप्त (त्रिते) तीनों भूमियों को क्रमण करने वाले योगयुक्त आत्मा में, (यद् वा मरुत्सु) वा जो प्राणों, इन्द्रियों में योग द्वारा पाते हैं उन सब (इन्दुभिः) आनन्दों से हे देव ! आत्मन् ! तू ही (सु मन्दसे) आनन्दस्वरूप प्रकट होता है ।

आनन्द की मीमांसा देखो (तैत्तरीय उप० आनन्दवल्ली)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २
[३८५] एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।
३ २उ ३ १ २र ३ १ २
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥५॥ ऋ० ८ । २४ । १६ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) अहिंसक पालक ! (सदावृधः) सदा बढ़ने वाला, महामहिम, (वीरः) सामर्थ्यवान्, प्रभु (एवा हि) ही (स्तवते) स्तुति किया जाता है । अतः (मधोः अन्धसः) मनोहर, आनन्दकारी प्राणधारक सामर्थ्य के (मदिन्तरम्) अति अधिक आनन्दप्रद तृप्तिकारी अंश को उसी के लिये (आ सिञ्च) आसेचन कर, प्रयोग कर । अन्न और मधु की विवेचना बृहदारण्यक उपनिषद् में स्पष्ट है ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
[३८६] एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
१ २र ३ २
प्र राधांसि चोदयते महित्वना । ६॥ ऋ० ८ । २४ । १३ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (इन्द्राय) उस इन्द्र के लिये (इन्दुम्) आह्लादकारी कान्तिसम्पन्न, ज्ञानमय सोम, आत्मा का (आ सिञ्चत) सेचन करो, आत्मा को प्रभु की ओर प्रवाहित करो जिससे वह (सोम्यं

३८५—'मध्वो,' 'चाध्वर्यो अन्धसः' इति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधु । शान्तिदायक मधु, आनन्दरस का (पिबाति) पान करे, वही (महित्वना) अपनी महिमा से ही (राधांसि) बहुतसी विभूतियां (प्र चोदयते) प्रकट करता है, प्रदान करता है ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[३८७] एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
३ १ २र ३ २उ ३ २
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ।७॥ ऋ० ८ । २४ । १९॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! (एत उ नु) आओ और (स्तोम्यम्) स्तुति के योग्य,(नरम्)नेता,(इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की (स्तवाम) स्तुति करें । (यः) जो (विश्वाः कृष्टीः) समस्त मनुष्यों पर (एक इत्) अकेला ही (अभि अस्ति) व्यापक महान् शासक है ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
[३८८] इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥८॥ ऋ० ८ । ९८ । १ ॥

भा०—हे विद्वान् सामगायको ! (बृहते) महान् (विप्राय) विद्वान् त्रिविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारे (ब्रह्म-कृते) ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने हारे (विपश्चिते) मेधावी, सर्वज्ञ (पनस्यवे) स्तुति के योग्य (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (बृहत् साम) बृहत् नामक साम (गायत) गान करो ।

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[३८९] य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥९॥ ऋ० १ । ८४ । ७॥

भा०—(यः) जो (एक इत्) अकेला ही (दाशुषे मर्त्ताय) दानशील पुरुष को (वसु विदयते) नाना रूप से धनधान्य देता है (अङ्ग) हे मनुष्यो ! वह (इन्द्रः) परमेश्वर (अप्रतिष्कुतः) सबसे बढ़कर,किसी से भी पराजित न होने वाला (ईशानः) सबका स्वामी है ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[३९०] सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१०॥ ऋ० ८ । २४ । १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! (वज्रिणे) सर्व विघ्ननिवारक, वज्ररूप ज्ञान को धारण करने हारे (इन्द्राय) परमेश्वर के प्रतिपादन के लिये (ब्रह्म) वेद प्रतिपादित ब्रह्मज्ञान की (आशिषामहे) हम कथा चर्चा करें । (वः) आप लोगों के प्रति मैं (नृतमाय उ) उस पुरुषोत्तम (धृष्णवे) सबसे बढ़ जाने और सबको पराजय करने हारे, परम वशी, परमेश्वर के यथार्थ स्वरूप का (स्तुषे) वर्णन करता हूं ।

इति दशमी दशतिः । चतुर्थः खण्डः ॥

इति चतुर्थ प्रपाठके द्वितीयोऽर्धः । इति चतुर्थः प्रपाठकः ॥

अथ पञ्चमः प्रपाठकः (प्रथमोऽर्धः)

॥ दशतिः १ ॥ ऋषिः—१ प्रगाथो घौरः । २ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ३ नृमेध आङ्गिरसः । ४ पर्वतः काण्वः । ५ ७ इरिमिठिः काण्वः । ६ विश्वमनाः वैयश्वः । ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ॥ देवता—१—४, ८ इन्द्रः । ५. ७ आदित्याः । ६ अग्निः ॥ छन्दः —उष्णिक् । ८ विराडुष्णिक् ॥

 ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[३६१] गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये ।
 १ २र ३ १ २र
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥ १ ॥ ऋ० ८ । ६२ । ८ ॥

भा०—हे (शचीपते) सर्वशक्तिमन् ! हे इन्द्र ! (यत्) क्योंकि तू (ओजसा) अपने सामर्थ्य और बल से (वृत्रम्) आवरणकारी अज्ञान अन्धकार को (हंसि) विनाश करता है । अतः (ते) तेरे (शवः) बल की (देव-तातये) विद्वानों के लिये (उपमाम्) अनुरूप (गृणे) स्तुति करता हूं । अर्थात् बल के सभी कार्यों में सर्वत्र इन्द्र की ही उपमा दी जाती है ।

३६१— उपमं इति ऋ० । 'भद्राः इन्द्रस्य रातयः' इति ध्रुवपदमधिकम् ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[३९२] यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।
३ १ २र ३ १ २र
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥

ऋ० ६ । ४३ । १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (यस्य मदे) जिसके तृप्तिकारक प्रसाद और आनन्द स्वरूप (दिवोदासाय) प्रकाश के आश्रयस्थान सूर्य, आदित्य ब्रह्मचारी के लिये (त्यत् शम्बरं) उस शान्तिवर्षक मेघ या धर्म-मेघस्थ आत्मा के स्वरूप को (रन्धयन्) साधता हुआ. (सः सोमः) वह सोम, साधक योगी, ओषधिरस के समान (ते) तेरी प्राप्ति के लिये (अयंम्) वह (सुतः) तैयार हुआ है । तू उसे (पिब) पान कर, अपने शरण में ले, स्वीकार कर ।

१ २ ३ १ २
[३९३] एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
३ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥३॥ ऋ० ८ । ९८ । ४ ॥

भा०—हे इन्द्र ! हे (प्रिय) प्रिय ! सबसे उत्कृष्ट ! हे (सत्राजिद्) सबको विजय करने हारे ! हे (अगोह्य) अगोप्य ! सब के प्रति प्रकाश करने योग्य ! कभी न छिपने हारे ! तू (दिवः पतिः) सूर्य का भी स्वामी (गिरिः न) पर्वत के समान (विश्वतः पृथुः) सब प्रकार से विशाल है । तू (नः) हमारे समीप (आ गधि) आ ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[३९४] य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
२ ३ २ ३ २र २ ३ १ २
येना हंसि न्या३त्रिणं तमीमहे ॥४॥ ऋ० । ८ । १२ । १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) बलिष्ठ ! (यः) जो (सोम-पातमः) अति अधिक सोम, आनन्दरस पान करने में श्रेष्ठ (मदः) अत्यन्त तृप्त. हृष्ट या दत्तचित्त. आनन्दमय, सुप्रसन्न होकर तू (चेतति) ज्ञानवान् हो जाता है (येन) जिससे तू (अत्रिणम्) दूसरों के कर्म-फल को छीनकर स्वयं खाजाने वाले डाकू के समान तृष्णा, काम क्रोध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या क्षोभ युक्त चित्त को (नि आ हंसि) विनाश करता, वश कर लेता है हम (तम्) उस आत्मा को (ईमहे) ज्ञान करें ।

[३९५] तुचे तुनाय तत् सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥५॥ ऋ० ८ । १८ । १८ ॥

भा०—हे (सुमहसः) तेजस्वी (आदित्यासः) आदित्यरश्मियों के समान ज्ञान युक्त विद्वान् गुरुओ ! (नः तुचे) हमारे पुत्र, (तुनाय) और सन्तान चलाने हारे पौत्र और (नः) हमारे (जीवसे) जीवन के लाभ के लिये (तत्) वह (द्राघीयः) दीर्घ (आयुः) आयु (सुकृणोतन) भली प्रकार करो ।

[३९६] वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥६॥ ऋ० ८ । २४ । २४ ॥

भा०—हे (वज्रहस्त)वज्र को हाथ में लिये वीरके समान बलवन् ! ज्ञानवन् ! (निर्ऋतीनां) दुष्ट चित्तवृत्तियों के (परि-वृजम्) परित्याग को (वेत्थ हि) तुम वैसे ही जानो जैसे (शुन्ध्युः) शोध लगाने वाला गुप्तचर या परिशोधन करने हारा आदित्य (परि-पदाम्) चारों तरफ़ जाने हारे चोरों या पक्षियों को स्थान त्याग के लिये आवश्यक होता है ।

सूर्योदय होने पर जैसे पक्षी अपना घोंसला त्याग कर भागते हैं जैसे गुप्तचर के भय से चोर स्थान त्याग कर भागते हैं इसी प्रकार ज्ञान होजाने पर दुष्टचित्त वृत्तियां हृदय छोड़कर भागती हैं ।

[३९७] अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।
आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥७॥ ऋ० ८ । १८ । १०

३९५—'तुचे तनाय' 'समहसः' इति च पाठभेदः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (आदित्यासः)आदित्य रश्मियो! विद्वान् पुरुषो! प्राणो! (नः) हमारे (अमीवाम्) रोग को (अप सेधत) दूर करो, (स्निधम् अप) हमारे बाधाजनक भीतरी शत्रु को दूर करो और (दुर्मतिम्) दुष्ट मति वाले पुरुष, तथा दुःखदायी दुःसंकल्प को (अप सेधत) दूर करो। (नः) हमें (अंहसः) पाप से (युयोतन) पृथक् करो।

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[२९८] पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वायं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ ८ ॥ ऋ० ७ । २२ । १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन्! (सोमम् पिब) सोम, आनन्दरस का पान कर। हे (हर्यश्व) हरणशील अश्वरूप प्राणों से युक्त! (सोतुः) प्रेरणा करने हारे सारथि के (बाहुभ्याम्) बाहुओं से (सुयतः) उत्तम रूप से नियन्त्रित (अर्वा न) घोड़े के समान (सः) वह आनन्दरस (यम्) जिसको (अद्रिः) मेघ के सदृश वर्षण करने वाला धर्ममेघ समाधि (ते) तेरे लिये (सुषाव) उत्पन्न करता है वह (त्वा मन्दतु) तुझको आनन्दित करे।

इति प्रथमा दशतिः। पञ्चमः खण्डः।

॥ दशतिः २ ॥ ऋषिः—१—६, ९, १० सौभरिः काण्वः। ७, ८ नृमेधः आङ्गिरसः। देवता– इन्द्रः। ३, ६ मरुतः ॥ ककुप् ॥

१ ३ २ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २
[२९९] अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
३ १ २ ३ १ २
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥ ऋ० ८ । २१ । १३ ॥

भा०—हे इन्द्र! (त्वम्)तू (जनुषा)अपने प्रकट होने के काल से स्वभावतः ही (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित, अजातशत्रु (अना) विना नेता के, विनायक, (अनापिः) बन्धु बान्धवों से रहित, अद्वितीय, (सनाद्) पुराण पुरुष (असि) है तो भी (युधा इत्) योग द्वारा ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आपित्वम्) तुम बन्धुता को (इच्छसे) चाहते हो, स्वीकार करते हो।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
[४००] यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये ॥ २ ॥ ऋ० ८ । २१ । ९ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! जो (नः) हमारे लिये (इदम्-इदम्) यह, यह, नाना प्रकार का, उत्तम उत्तम (पुरा) पहले काल में, पूर्व जन्म में (वस्यः) आच्छादन योग्य, या निवासयोग्य, भोग्य देह आदि (प्र आनिनाय) प्राप्त कराता रहा, (तम् उ इन्द्रम्) उसी आत्मा या परमेश्वर की (नः) आप के प्रति (स्तुषे) स्तुति करता हूं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[४०१] आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः
३ १ २
दृह्ला चिद् यमयिष्णवः ॥ ३ ॥ ऋ० ८ । २० । १ ॥

भा०—हे मरुतो! प्राणो ! और विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (आ गन्त) आओ, (मा रिषयत) पीड़ित और दुःखी मत होओ । हे (प्रस्थावानः) आगे प्रस्थान करने हारो ! (समन्यवः) क्रोधयुक्त या ज्ञानयुक्त होकर (मा अप स्थात) बुरे मार्ग पर मत भटको, क्योंकि आप लोग (दृह्ला चित्) दृढ़, बलवान् पदार्थों को भी (यमयिष्णवः) नियमन कर लेते हो, वश करने में समर्थ हो।

१ २ ३२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[४०२] आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते ।
१ २
सोमं सोमपते पिब ॥ ४ ॥ ऋ० ८ । २१ । ३ ॥

भा०—हे (अश्वपते !) इन्द्रियों के स्वामिन् ! हे (गोपते) वाणी के मालिक ! हे (उर्वरापते) प्रजनन-शक्ति के स्वामिन् ! हे (सोमपते !) ज्ञानवन् ! तू (सोमं पिब) सोम, ज्ञान, आनन्द और बल का पान वा पालन कर, उसका लाभ कर ।

४०१—'स्थिराचिन्नमयिष्णवः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[४०३] त्वया ह स्विद् युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि।
संस्थे जनस्य गोमतः ॥ ५ ॥ ऋ० ८। २१। ११॥

भा०—हे (वृषभ!) सर्वश्रेष्ठ! (त्वया ह स्विद्) तुझे ही (युजा) सहायक द्वारा (गोमतः) वाणी से सम्पन्न (जनस्य) पुरुषों के (संस्थे) संघ में (श्वसन्तं प्रति) श्वास लेते हुए प्राणी के प्रति (ब्रुवीमहि) तेरी स्तुति करते हैं।

[४०४] गावश्चिद् घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः।
रिहते ककुभो मिथः ॥६॥ ऋ० ८। २०। २१॥

भा०—हे (मरुतः) मरुद्गण! प्राणो! विद्वानों! आप लोग (गावःचित्) गतिमान्, ज्ञानवान् रहते हुए ही (समन्यवः) ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति से युक्त (सबन्धवः) सब समानभाव से एक स्थान पर ही बंधे हुए, प्रेम से युक्त (सजात्येन) समान स्थान पर या समान जाति में उत्पन्न होने के कारण (मिथः) परस्पर (ककुभः) विस्तृत होकर भी (रिहते) परस्पर मिलते हैं।

[४०५] त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे।
आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥ ऋ० ८। ९८। १०॥

भा०—हे (शत-क्रतो) सैकड़ों प्रज्ञावाले! हे (वि-चर्षणे) सब लोकों के द्रष्टः! हे (इन्द्र) आत्मन्! हमें (नृम्णम्) धन और (ओजः) बल (आ भर) प्राप्त करा। और (पृतनासहम्) सेनाओं का मुकाबला करने हारे या प्रजा का भार सहन करने हारे (वीरम्) वीर, सामर्थ्य-वान् पुरुष को (आ भर) प्राप्त करा।

[४०६] अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे।
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥८॥ ऋ० ८। ९८। ७॥

४०६—'कामान्महः ससृज्महे' इति 'उ दवयन्ते' इति च ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! हे (गिर्वणः) वाणियों के एकमात्र पात्र ! (उदा इव) जिस प्रकार जल (उद्भिः) अन्य जलों में (रमन्त) मिल जाते हैं उसी प्रकार हम (कामे)अपनी कामनाओं द्वारा (त्वा उप ईमहे) तेरे पास आते हैं और (ससृग्महे) तेरे साथ मिल जाते हैं।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[४०७] सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।
३ १ २र
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥ ऋ० ८ । २१ । ५ ॥

भा०—(यथा वयः) रश्मियों के समान (गोश्रीते) गोरस से मिश्रित, (मधौ) मधुर, (मदिरे) आनन्दप्रद, (विवक्षणे) विशेष सुख या मुक्ति में लेजाने वाले, (ते) तेरे स्वरूप में हम (सीदन्त) विराजमान होकर हे (इन्द्र) आत्मन् ! (त्वाम्) तेरी (अभि नोनुमः) प्रत्यक्ष रूप से स्तुति करते हैं, अर्थात् तेरे आनन्द-रस में मग्न होकर हम तेरी स्तुति करते हैं ।

३ २ ३ १ २ २ २उ ३ १ २ ३ १ २
[४०८] वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तो ऽवस्यवः ।
१ २ ३ १ २
वज्रि चित्रं हवामहे ॥ १० ॥ ऋ० ८ । २१ । १ ॥

भा०—हे वज्रिन् ! हे (अपूर्व्य) अपूर्व ! सबसे आदि में विद्यमान (वयम्) हम लोग (अवस्यवः) अपनी रक्षा चाहने हारे, (स्थूरं न) गुणों में अधिक स्थितिमान् पुरुष को जिस प्रकार (कच्चित्) कोई प्रजा लोग भरण पोषण करते हैं उसी प्रकार (चित्रम्)पूजायोग्य (त्वाम्) तुझ को (भरन्तः) भरण या धारण करते हुए (हवामहे) हम तेरी स्तुति करते हैं ।

इति द्वितीया दशतिः । षष्ठः खण्डः ॥

॥ दशतिः २ ॥ ऋषिः—१-८ गौतमः । ९ त्रितः । १० अवस्युः ॥ देवताः—१-८ इन्द्रः । ९ विश्वेदेवाः । १० अश्विनौ ॥ पंक्तिश्छन्दः ॥ पञ्चमः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1005)

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
[४०९] स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ ३ २
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम्
॥ १ ॥ ऋ० १ । ८४ । १० ।

See Dharma-deva on Sama.

भा०—सूर्य और राजा के दृष्टान्त से आत्मा और ईश्वर का वर्णन करते हैं । (गौर्यः) शुभ्र किरणों या गमनशील सेनाओं के समान इन्द्रियां या चित्तवृत्तियां और प्रजाएं (विषूवतः) सर्वव्यापक, (मध्वः) सब मनोहर गुणों से युक्त, मधुर, (स्वादोः) तृप्तिकारक परमानन्द रस का (इत्था) इस प्रकार से (पिबन्ति) पान करती हैं कि (याः) जो वे (वृष्णा) सबे परम आनन्द बरसानेहारे इस इन्द्र के साथ (सयावरीः) गमन करती हुई (मदन्ति) आनन्द लाभ करती हैं और (वस्वीः) आवास करने हारी वे (स्व-राज्यम्)अपने ही राष्ट्र के समान देह या इस संसार रूप ईश्वर के कुटुम्ब की (अनु शोभथाः) शोभा बढ़ाती हैं । ('मधु' की व्याख्या देखो बृहदा० २ । ५)

३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[४१०] इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निःशशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम्
॥२॥ ऋ० १ । ८० । १ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) ! हे (शविष्ठ) सर्वशक्तिमन् ! (इत्था) इस प्रकार से (हि) निश्चय (सोमे) उस आनन्दरस के बल पर (इत्) ही (मदः) आनन्दयुक्त विद्वान् जिस प्रकार (ब्रह्म) वेद द्वारा (वर्धनम्) अपने ज्ञान की वृद्धि या उन्नति (चकार) करता है, (अहिम्) सूर्य जिस प्रकार मेघ को भेदन करता है उसी प्रकार(स्वराज्यम्) अपने राष्ट्र या प्रताप को (अनु अर्चन्) प्रकट करते हुए आप अपने (ओजसा)बल

४०९—'शोभसे' इति ऋ० ।

४१०—'मदे ब्रह्मा' इति ऋ० । पृथिवीत्यन्तरिक्षनाम । मा० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (पृथिव्याः) इस पृथिवी या अन्तरिक्ष के (अहिम्) आवरणकारी मेघवत् विघ्न को (निःशशाः) विनाश करते हैं। अध्यात्म-वेदियों की स्वराज्य की चर्चा उपनिषदों में स्थान २ पर है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
[४११] इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
२उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र३ १ २
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत्।
॥ ६ ॥ ऋ० १ । ८१ । १ ।

भा०—(इन्द्रः) परमेश्वर (मदाय) प्रजाजनों के हर्ष करने के लिये और (शवसे) बल के लिये (वावृधे) बहुत बड़ा है। वह (वृत्रहा) सब विघ्नों का नाश करने वाला (नृभिः) अपनी प्रजाओं के साथ (वाजेषु) संग्रामों और ज्ञान-यज्ञों में (नः प्र आविषत्) हमारी उत्तम रीति से रक्षा करता है। (ऊतिम्) अपनी रक्षा स्वरूप (तम् इव) उसको ही (महत्सु) बड़े २ (आजिषु) ज्ञान-चर्चा के स्थानों या संग्रामों, और यज्ञों में और (अर्भे) छोटे कार्य सूक्ष्म हृदयावास में भी (हवामहे) उसका हम स्मरण करते हैं। अर्भ, अल्प, दभ्र, दहर आदि का विवरण छान्दोग्य, और केन दोनों उपनिषदों में स्पष्ट है। आजि=चरम सीमा। राजा के पक्ष में—आजि=संग्राम।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
[४१२] इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्।
२ ३ २ ३ १ २ ३२उ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्मायया वधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्
॥ ५ ॥ ऋ० १ । ८० । ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! हे (अद्रिवः) मेघ के समान आनन्द और ज्ञान के घन ! अखण्ड या अखण्डित शक्तिशालिन् ! हे (वज्रिन्) वीर्यसम्पन्न ! (तुभ्यम् इव) तेरा ही (वीर्यम्) बल सामर्थ्य (अनुत्तम्) कहीं रुका नहीं है । (यत् ह) क्योंकि (त्यम्) उस

४१२—'मृगं तमु त्वं मायया' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मायिनम्) माया, अज्ञान या प्रकृति के जाल में पड़े (मृगम्) ज्ञान के विलोपक चोर के समान देह और मनको (मृगम्) अथाह सुख के खोजी पशु के समान प्यासे. तृष्णालु जीव को (मायया) अपने प्रज्ञा के बल से (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) स्व महिमा की सत्ता को प्रकट करता हुआ तू (अवधीः) विनाश करता है, मारता है। या प्राप्त होता है, (तव त्यत् वीर्यम्) वह भी तेरा ही बल, प्रताप है।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
[४१३] प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५॥
ऋ० १ । ८० । ३ ॥

भा०—(स्वराज्यम् अनु) आत्मा के मोक्षरूप स्वराज्य प्राप्त करने के लिये (अर्चन्) साधना करता हुआ हे (इन्द्र) आत्मन् ! (प्रेहि) आगे बढ़ (अभि इहि) सम्मुख आ ! (धृष्णुहि) बाधाओं को दबा । (ते वज्रः) तेरा वज्र, बल (न) कभी नहीं (नियंसते) दबता । हे (इन्द्र) आत्मन् ! (ते) तुझे (नृम्णं हि) निश्चय से ऐश्वर्य प्राप्त होगा । तू (शवः) अपने बल से (वृत्रं हनः) वृत्र रूप विघ्न अज्ञान को मार और (अपः जय) सब कर्मों, प्रजाओं पर विजय प्राप्त कर ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[४१४] यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः
॥ ६ ॥ ऋ० १ । ८१ । ३ ॥

भा०—(यद्) जब (आजयः) संग्राम या ब्रह्मकथा प्रसङ्ग (उद्-ईरते) उठ खड़े होते हैं तब (धृष्णवे) सब का पराभव करनेहारे के सन्मुख (धनम्) धन, प्राप्तव्य पदार्थ, ऐश्वर्य (धीयते) रक्खा जाता है। हे. (इन्द्र) आत्मन् ! (मदच्युता हरी) हर्ष वर्षाने वाले और हरणशील अपने प्राण और अपान दोनों अश्वों को (युङ्क्ष्व) अपने रथ में लगा ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[प्र०१] (कं हनः) तू किस शत्रु या विघ्न का नाश करता है ? और [प्र०२] (कं) तू किस सहायक, साधन या योगाङ्ग को (वसौ) अपने देह या चित्त में (दधः) धारण करता है ? [उ० १] हे इन्द्र ! (वसौ) इसी आवास स्थान, अन्तरात्मा में (दधः) धारण कर और [उ० २] (अस्मां दधः) हमें धारण कर । यह भक्तों का भगवान् के प्रति, इन्द्रियों का आत्मा के प्रति, प्रजा का राजा के प्रति समान रूप से वचन है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

[४१५] अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २

अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी

॥ ७ ॥ ऋ० १ । ८२ । २ ॥

भा०—(स्वभानवः विप्राः) स्वयं योगाभ्यास और तपस्या से प्रदीप्त होने वाले, तेजस्वी विद्वान्, मेधावी लोग (अक्षन्) सब प्रकार के आनन्दों का भोग करते हैं, (अमीमदन्त) और हर्ष को प्राप्त होते हैं। वे (प्रियाः) सबको प्रिय लगने वाले, काम्य पदार्थों और कामनाओं को (अव अधूषत) परित्याग करते, झाड़ देते, गिरा देते हैं वे सर्वत्यागी, अवधूत हो जाते हैं। हे (इन्द्र) परमात्मन् ! वे (नविष्ठया) अत्यन्त प्रशंसनीय (मती) शुभ संकल्प या स्तुति से (अस्तोषत) तेरी स्तुति करते हैं। अतः उन पर प्रसन्न होकर (ते हरी) तू अपने अश्वों, हरणशील वाहनों ज्ञान और कर्म रूप घोड़ों को या सम्प्रज्ञात समाधियों की (अनु योज) साधना कर।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

[४१६] उपो षु शृणुही गिरो मघवन् माऽतथा इव ।

३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ १र३ २उ क २र ३ १ २

कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद् योजा न्विन्द्र ते हरी॥८॥

पा०-भे- आदर्थयास : ऋ० १ । ८२ । १ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! (उप सु शृणुहि उ)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू सावधान होकर सुन, (गिरः) तू हमारी वाणियों की (अतथा इव) पूर्व के विपरीत, प्रतिकूल, शत्रु के समान (मा) उपेक्षा मत कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सूनृतावतः) सत्य और प्रिय वाणी बोलने हारे (नः) हमको तू (कदा इद्) कब (करः) अपनाएगा? (अर्थयासे इत्) आपसे प्रार्थना ही की जाती है। हे (इन्द्र) आत्मन्! (ते हरी योज नुं) तू अपने अश्वों, व्यापक साधन प्राण अपान को अब लगा। अथवा सबीज निर्बीज दोनों का अभ्यास कर।

३ १ २ ३ २ १ २र ३ १ २ ३ २
[४१७] चन्द्रमा अप्स्वाऽऽन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९॥ ऋ० १।१०५।१॥

भा०—(अप्सु अन्तरा) ध्यान धारणाओं, संकल्पों विकल्पों या वासना जालों में से (चन्द्रमाः) अत्यन्त आह्लादकारी, (सुपर्णः) उत्तम गतिशील आत्मा, (दिवि) द्यौ लोक में चन्द्र के समान, या सूर्य में प्रकाशस्वरूप परमात्मा की ओर (धावते) गति करता है। हे (विद्युतः) विशेषरूप में प्रकट होने वाली विद्युत्स्वरूप कान्तियो! हे (हिरण्य-नेमयः) सुवर्ण के समान चित्ताकर्षक धाराओं वाली कान्तियो! हमारे इन्द्रियगण या अज्ञानी जनसाधारण अज्ञान में होने से (वः पदं न विन्दन्ति) तुम्हारा स्वरूप ज्ञान प्राप्त नहीं करते। हे (रोदसी) द्यौ और पृथिवी, ऊर्ध्वगामी द्यौस्वरूप प्राण, अधोगामी पृथिवीस्वरूप अपान, आप दोनों के (अस्य) इस रहस्य का ज्ञान (मे वित्तम्) मुझे लाभ कराओ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[४१८] प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम्।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १० ॥ ऋ० ५।७५।१॥

४१८—'स्तोमेन प्रति भूषति' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (अश्विनौ) प्राण और अपान ! (वसु-वाहनम्) आवास सकारी आत्मा को वहन करने हारे, (वृषणम्) कर्मफल भोग की वर्षा करने वाले (प्रियतमम्) अत्यन्त प्रिय, (प्रति-रथम्) प्रत्येक रथ रूप देह में (ऋषिः) तत्वदर्शी, (स्तोता) सत्य गुणों का वर्णन करने हारा, (स्तोमेभिः) वेदमन्त्रों द्वारा (वाम्) आप दोनों को (प्रति भूषति) उत्तम रूप से अलंकृत करना चाहता है । हे (माध्वी)मधु-विद्या, ब्रह्म विद्या के जानने हारो ! (मम हवम्) मेरी स्तुति, गुण-वर्णना को (श्रुतम्) श्रवण करो ।

इति तृतीया दशतिः । सप्तमः खण्डः ॥

॥ दशतिः ४ ॥ ऋषिः—१, ७ वसुश्रुत आत्रेयः । २, ४ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्, वासुक्रो वा । ३ सत्यश्रवाः आत्रेयः । ६ गोतमो राहूगणः । कुल्मलः शैलूषिर्वा । ८ अंहोमुग् वामदेव्यः ॥ देवता—१, २, ७ अग्निः । ३ उषाः । ४ सोमः । ५, ६ इन्द्रः ८ विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१—७ पंक्तिः । ८ उपरिष्टाद् बृहती ॥

[४१९] आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥ ऋ० ५ । ६ । ४ ॥

भा०—हे (देव) प्रकाशस्वरूप ! (अग्ने) ज्ञानवन् ! (द्युमन्तम्) प्रकाशस्वरूप (अजरम्) अविनाशी (ते) आपको (इधीमहि) प्रदीप्त करते हैं, चैतन्य करते हैं । (द्यवि) द्युलोक में (यद्) जो (स्या) वह (ते) आपकी (पनीयसी) प्रशंसनीय (समिद्) कान्ति (दीदयति) चमक रही है । (स्तोतृभ्यः) सत्य गुण वर्णन करने हारों को हे देव ! आप (इषम्) अन्न और ज्ञान की प्रेरणा (आ भर) प्राप्त कराओ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२   २२   ३ १ २
[४२०] आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
३ १ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥२॥
ऋ० १० । २१ । १ ॥

भा०—हे देव ! (वि वक्षसे) आप सबको धारण करने हारे सबसे महान् हो। इसलिये (स्व-वृक्तिभिः) उत्तम, दोषरहित निज स्तुतियों से हम लोग (शीरम्) सबके भीतर ज्ञान-रस रूप से शयन करने हारे, (पावक-शोचिषम्) पवित्र करने वाली दीप्ति से युक्त, (वः) हमारे और तुम्हारे (वि-मदे) विशेष आनन्द लाभ करने के लिये (यज्ञेषु) यज्ञों में (स्तीर्ण-बर्हिषम्) बर्हिः=धान्य या कुश, आसन या इस देह को फैलाये हुए(होतारम्)सबको जीवन योग्य उत्तम पदार्थों के देने हारे या सबको अपने पास बुलाने वाले (त्वा) तुझ (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप ईश्वर को (होतारं न) अपने यज्ञ के होता के समान (आ वृणीमहे, वि वृणीमहे) वरण करते हैं और विशेष स्तुति करते हैं।

(११४०)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[४२१] महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।
१ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २२ ३ १ २
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥ ऋ० ५ । ७९ । १ ॥

भा०—हे (अश्व-सूनृते)आत्मा की सत्यस्वरूप वाणि ! हे(सु-जाते) उत्तमरूप से प्रकट होने वाली ! (वाय्ये) वरण करने योग्य ज्ञान और प्रकाश से सम्पन्न ! (सत्य श्रवसि) सत्य वेदज्ञान में (यथाचित्) जिस प्रकार हे (उषः) ! हे सब पापों के दहन करने हारी (दिवित्मती) ज्योतिः स्वरूपा तू उषा(महे) बड़े भारी (राये)दिव्यधन, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये (अद्य) आज (बोधय) हमें, जगा, ज्ञानवान् कर।

४२०—'यज्ञाय स्तीर्णं बर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[४२२] भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥ ४ ॥ ऋ० १० । २५ । १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (वि वक्षसे) आप महान् हो । आप (नः) हमारे (मनः) मन और (दक्षम्)आत्मा या बल को (उत)और (क्रतुम्) कर्म को (भद्रम्) कल्याण के प्रति (अपि वातय) प्रेरित करो । (अथ) और (ते) तुझ (अन्धसः) अन्धकार को दूर करने और प्राण धारण करानेहारे प्रभु के (मदे) हर्षकारी (सख्ये) प्रेम में हमें (यवसे) घास के प्रेम में (रणाः गावः न) आनन्द प्रसन्न गौवों के समान (वि वः) स्वीकार करो, अपनाओ ।

[४२३] क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ५ ॥ ऋ० १ । ८१ । ४ ॥

भा०—(महान्) सबसे बड़ा वह परमात्मा (भीमः) सबको भय से चलाने और कंपाने वाला (अनु-स्वधम्)स्वधा स्वरूप जीव या प्रकृति के प्रति (क्रत्वा) अपनी क्रिया शक्ति और प्रज्ञा से (शवः) अपनी क्रिया शक्ति या बल या ज्ञान सामर्थ्य को (आ ववृते) प्रेरित करता है और (श्रिये) समस्त संसार को आश्रय देने के लिये (ऋष्वः) वह महान् (शिप्री) शक्तिशाली, (हरिवान्) हरण करने या आकर्षण करने वाला, (उपाकयोः) समीपतम (हस्तयोः) आघातकारी साधनों, हाथों में (आयसं वज्रम्)लोहे के बने खड्ग को वीर के समान (आयसम्) अयस अर्थात् स्नेह और वेग के बने (वज्रम्) पतन और पाप निवारक साधन को (आ दधे) धारण करता है ।

४२२—'रणन गावो' इतिपाठः, ऋ० । ऋग्वेदे (१० । २० । १) इत्यत्र 'भद्रा' दि 'मनोऽ'न्तः पाठ एव केवलम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरने अपनी शक्ति प्रकृति में दी समस्त ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया, प्रत्येक परमाणु और पिण्ड में आघात प्रयत्न उत्पन्न किया और ऐसी निरन्तर की गति उत्पन्न की कि अपनी गति के बल पर ही आकाशका प्रत्येक पिण्ड निराश्रय खड़ा है। 'हस्तयोः' यह द्विवचनान्त प्रयोग उपमावश है। वीर राजा और अध्यात्म पक्ष में स्पष्ट है।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[४२४] स घा तं वृषणं रथमधितिष्ठाति गोविदम्।
१र २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क ३क २र ३ १ २
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी
॥ ६ ॥ ऋ० १ । ८२ । ४ ॥

भा०—हे इन्द्र! (यः) जो (हारियोजनम्) इन्द्रियों को वश करने हारे योग साधन और (पात्रम्) क्रिया साधन को (पूर्णम्) उचित प्रकार से पूर्ण रूप से (चिकेतति) जानता है (स घ) वही (तम्) उस (वृषणम्) सुखप्रद, (गो-विदम्) इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करने वाले चेतन (रथम्) रथपर (अधि तिष्ठति) स्वामी होकर सवारी करता है। हे (इन्द्र) आत्मन् (ते हरी) तुम अपने अश्वों-प्राण, अपान दोनों को (योज नु) इस समय समाधि योग से जोड़ो।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र १ २
[४२५] अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर
॥ ७ ॥ ऋ० ५ । ६ । १ ॥

भा०—(तम्) उसको (अग्निं) ज्ञानवान्, सब का नेता आचार्य या ईश्वर (मन्ये) मानता हूं या उसको अग्नि-तेज रूप से मनन करता हूं (यः वसुः) जो वसु अर्थात् सबके भीतर वास करने हारा, सबको वास देने हारा है। (यम्) जिसमें (धेनवः) वाणियें, इन्द्रियां और रश्मियां हैं उसी प्रकार जैसे गौवें (अस्तम्) घर में (यन्ति) आती हैं या (अस्तं

४२५—'नमन्ति' इति पाठभेदः' ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यंति) आश्रय को प्राप्त होती हैं और (आशवः) व्यापन स्वभाव वाले (अर्वन्तः) प्राण या वायु आदि पञ्च भूत (अस्तम्) गृहस्वरूप जिसमें आश्रय लेते हैं और (नित्यासः) नित्य, अविनाशी, (वाजिनः) ज्ञानवान् मुक्त आत्माएँ विद्वान् लोग भी जिसको (अस्तम्) अपना गृह या शरण समझ कर आश्रय करते हैं। हे सर्वाश्रय ! (स्तोतृभ्यः) स्तोता, विद्वान् लोगों को (इषम्) अन्न एवं अपनी ज्ञान प्रेरणाएँ (आ भर) प्राप्त कराओ।

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[४२९] न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २र ३१ ३ २ ३ १ २
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः

॥ ८ ॥ ऋ० १० । १२६ । १ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् पुरुषो ! (यम्) जिस (मर्त्यम्) मरणधर्मा देहवान् पुरुष को (अर्यमा) वह न्यायकारी, (मित्रः) सब का प्रेमी, (वरुणः) सबको पाप से बचाने हारा, जगदीश्वर (स-जोषसः) अत्यन्त प्रेमपूर्वक (द्विषः अति) विघ्न या बाधाकारियों या अप्रीति करने हारों से दूर कर लेता है (तम्) उसको (अंहः न अष्ट) पाप नहीं स्पर्श करता, (दुरितं न) और दुष्ट चरित भी उसको नहीं व्यापता ।

इति चतुर्थी दशतिः । अष्टमः खण्डः ।

दशतिः ५ ॥ ऋषिः—२ ६ त्र्यरुण-त्रसदस्यू (त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः)। ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । ८ वामदेवो गौतमः । वाजिनां स्तुतिः ९ १, ३—५, १० ऐश्वराः धिष्ण्या अग्नयः ॥ देवता—१—६, १० पवमानः । ७ मरुतः । ८ अग्निः । ९ वाजिनः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५, ७, १० द्विपदा पंक्तिः । ८ पंदपंक्तिः । ९ परोष्णिक् । २, ६ त्रिपदा अनुष्टुप् पिपीलिकामध्या ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १   २र
[४२७] परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥
ऋ० ९ । १०९ । १ ॥

भा०—हे (सोम) आनन्दरस को बहाने वाले, सब दुःखों के ओषधिरूप, परमरस स्वरूप ऐश्वर्यवन् ! (स्वादुः) ओषधिरस के समान परम आनन्ददायक आप (मित्राय, सबको स्नेह करनेहारे (पूष्णे) सब को पोषण करनेहारे, (भगाय)सबके भजन,सेवन करने योग्य (इन्द्राय) उस ऐश्वर्य के इच्छुक जीव के लिये (परि प्र धन्व[1]) चारों ओर उत्तम-रूप से गति कर बहो ।

२ १ २र ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ २ १ २
[४२८] पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
३ २ ३ १ २ ३ १
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥२॥ ऋ० ९ । ११० । १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (वाज-सातये)ज्ञान या धन या अन्न के लाभ के लिये (वृत्राणि) सब आवरणकारी विघ्नों को (सक्षणिः) सहनशील होकर आप (परि प्र धन्व)चारों ओर से मार भगाओ । (ऋणया)ऋणों के नाश करने हारे आप (द्विषः) अप्रीति से वर्तने वाले शत्रुओं के (तरध्यै) विनाश करने के लिये (नः) हमें (ईरसे) प्रेरित करो ।

१ २   ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
[४२९]पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ ३ ॥ ऋ० । ९/१०९ । ४ ॥

भा०—हे (सोम) सबके प्रेरक परमात्मन् ! आप (महान् समुद्रः) बड़े भारी समुद्र हैं.समस्त रसों और आनन्दों के स्रोत और भण्डार हैं, (देवानाम्)समस्त देवों,भूतों और इन्द्रियों के(पिता) पालक और प्रेरक हैं, अतः (विश्वा धाम) समस्त तेजों को या समस्त आत्मा के निवास-

४२७—१. धन्वतिर्गतिकर्मा, (नि०) रिवि रवि धवि गत्यर्थाः । भ्वा० ।
४२८—'ईयसे' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान रूप देहों लोकों या हृदयों के प्रति (परि पवस्व) आप द्रवित होइये । उनमें आनन्द रस का संचार कीजिये ।

[४३०] पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ ४ ॥ ऋ० ९ । १०९ । १० ॥

भा०—हे सोम !(निक्तः)स्नान किया हुआ,निष्णात शुद्ध.(वाजी) ज्ञानवान् विद्वान्, (अश्वः) क्रियानिष्ठ, सधाया हुआ पुरुष और घोड़ा जिस प्रकार (धनाय) धनोंपार्जन या संग्राम के लिये जाता है उसी प्रकार (महे) बड़े (धनाय) गतिशील या धन्य (दक्षाय) कर्मनिष्ठ साधक जीव के लिये आप (पवस्व) द्रवित हों कृपायुक्त हों, आनन्द रूप में प्रकट हों ।

[४३१] इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥ ५ ॥ ऋ० ९ । १०९ । १३ ॥

भा०—(अपाम् उपस्थे) जलों के समीप या प्रजाओं के समीप या कर्म और ज्ञानों के बीच में (मदाय चारुः) हर्ष उत्पन्न करने में श्रेष्ठ, (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (भगाय) सौभाग्य, ऐश्वर्य या उचित कर्मफल के आनन्दभोग के निमित्त (इन्दुः) ऐश्वर्यशील सोम, जीव (पविष्ट) गति करता है या प्रकट होता है ।

[४३२] अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥६॥ऋ० ९ । ११० । २ ॥

भा०—हे सोम ! (महे)बड़े भारी तेरे(अर्य-राज्ये)श्रेष्ठ, जितेन्द्रिय पुरुषों के राष्ट्र में (त्वा अनु) तेरे अनुकूल (सं मदामसि) रहने में हम खूब प्रसन्न होते हैं। हे(पवमान)सबके प्रेरक शासक ! (वाजान् अभि) शत्रुओं या इन्द्रियों, ऐश्वर्यों के प्रति तू निर्विघ्न होकर (प्र गाहसे) गति करता है; उनमें रमण करता है । राजा, आत्मा और परमात्मा के प्रति प्रजाओं, इन्द्रियों और भक्तों का वचन है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[४३३] क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥७॥
ऋ० ७ | ५६ | १ ॥

भा०—(ईं) ये (व्यक्ताः) प्रकट हुए, (सनीडाः) एक ही देह में आश्रय किये हुए, (मर्याः) देहधारी प्राणियों के हितकारी (अथ) और (स्वश्वाः) सुख से पदार्थों का भोग करने हारे, (रुद्रस्य) इस समस्त संसार को रुलाने हारे, उस देव,मुख्य प्राण के(के)कौन हैं ? इस आश्चर्य से किये प्रश्नका उत्तर ऋ०मं०६।५६ सूक्त की अगली ऋचाओं में दिया है ।

[४३४] अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥ ८ ॥ ऋ० ४ | १० | १ ॥

भा०—हे अग्ने ! (अद्य) आज हम (ओहैः) आह्वान करने योग्य (स्तोमैः) स्तुतिपूर्ण सूक्तों द्वारा (अश्वं न) अश्व के समान समस्त संसार के वहन करने हारे, (क्रतुम्) जगत् के कर्त्ता शिल्पी के समान ब्रह्माण्ड के बनाने हारे, (भद्रम्) कल्याणकारी, (हृदि-स्पृशम्) हृदय तक को छूने हारे, हृदयंगम (तम्) उस प्रसिद्ध तुझको लक्ष्य कर (ऋध्याम) स्तुति करते हैं, साधना करते हैं ।

[४३५]आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मन् देवस्य सवितुःसवम्।
स्वर्गाँ अर्वन्तो जयत ॥ ९ ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)
(यजुः० १० | ६ ॥ अथर्व० ९ | २३ ॥)

भा०—(वाजिनः) ज्ञानवान् (मर्याः) मरणधर्मा प्राणी, (देवस्य) सबके दाता,(सवितुः)सबके प्रेरक परमात्मा के(वाजं सवम्)ज्ञान सम्पन्न सर्ग या प्रेरणा, आदेश को(आविः अग्मन्)प्रकट रूप से प्राप्त करते हैं । हे (अर्वन्तः) ज्ञानशील पुरुषो ! (स्वर्गान्) सुख और आनन्द के प्राप्त कराने वाले इन मुक्ति सुखों को (जयत)विजय करो उनको प्राप्त करो ।

[४३६]पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाँ अवीनामनु पूर्व्यः॥१०॥
ऋ० ६ | १०६ | ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे सोम! (पूर्व्यः) सबसे पूर्व, सबका आदि मूलकारण, (द्युम्नी) कान्तिमान्, (सु-धारः) समाज और संसार को उत्तम रूप से धारण करनेहारा, (अवीनाम्)गतिशील, आत्माओं में सबसे(महान्)बड़ा परम-आत्मा तू (अनु पवस्व) सब को पवित्र कर, सन्मार्ग में प्रेरणा कर।

इति पञ्चमी दशतिः नवमः खण्डः ।

इति पञ्चमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥

अथ पञ्चमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः

॥ दशतिः ६ ॥ ऋषिः—३ त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः । ७ सम्पातः (संवर्त आंगिरसः) शेषाणां ऋषयो नोपलभ्यन्ते तत्र वामदेवो गौतमः । देवता—१—५, ८—१० इन्द्रः । ६ विश्वेदेवाः । ७ उषाः ॥ द्विपदा १, ६, ८, 'पंक्तिविराड् वा गायत्री । २, द्विपदा अनुष्टुप् ३ । २ । त्रिष्टुप् । ५, बृहती । १० जगती गायत्री वा ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३

[४३७] विश्वतोदावन् विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥ १ ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे (विश्वतो दावन्) सबका संहार करने या सबको दान करनेहारे संहर्त्तः ! या दातः ! (यं त्वा) जिस तुझ (शविष्ठम्)बलवान् को (ईमहे) याचना, प्रार्थना करते हैं कि (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (आ भर) सुख सामग्री प्राप्त कराओ।

३ २ ३ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

[४३८] एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ २ ॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(यः ऋत्वियः) जो ऋतुओं में प्रकट होने हारा (इन्द्रः) ऐश्वर्यशील, सूर्यरूप कालात्मा परमेश्वर है (एषः ब्रह्मा)वही सबसे बड़ा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सबको बढ़ाने वाला (नाम श्रुतः) विख्यात है। (गृणे) मैं उसकी स्तुति करता हूं।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

[४३९] ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ३॥

ऋ० ५। ३१। ४॥ उत्तरार्धः।

भा०—(ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानी पुरुष (अर्कैः) वेदस्तुतियों द्वारा (इन्द्रम्) इन्द्र की (महयन्तः) पूजा करते हुए (अहये) मेघ या न नाश होने वाले अन्धकार को (हन्तवा) नाश करने के लिये (उ) ही (अवर्धयन्)उसको बढ़ाते हैं, उसकी महिमा का वर्णन करते हैं। अथवा (अहये) इस समस्त संसार को (हन्तवा) संहार करने के कारण (उ) ही (अवर्धयन्) उसकी महिमा गाते हैं।

गत्यर्थस्य एतेरयतेरंहतेर्वा व्याप्त्यर्थस्य, आङ् पूर्वाद् हन्तेर्वा, नञो हन्तेर्वा, अहिः। अथवा—'य एतत् सर्वमन्तवत् तस्मादहिः' इति वाजसनेयब्राह्मणे।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

[४४०]अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूतं द्युमन्तम् ॥४

ऋ० ५। ३१। ४॥ पूर्वार्धः॥

भा०—जिस प्रकार (अनवः)प्राणधारण करनेहारे मनुष्य (अश्वाय) समस्त देश में गमन करने के निमित्त (रथम्) रमण साधन या गमन साधन या वेगवान् यान=रथ को(तक्षुः)बनाते हैं। उसी प्रकार (अनवः) विद्वान् जन (अश्वाय) भोक्ता जीव के लिये (रथं तक्षुः) रसस्वरूप परमेश्वर की साधना करते हैं। (त्वष्टा) सबको रचने हारा शिल्पी, विश्व विधाता, हे (पुरुहूत) सबसे स्तुति योग्य! आपके (द्युमन्तम्) दीप्तिमान् (वज्रम्)सर्व विघ्ननिवारक, तमोनिवारक सूर्य रूप वज्र को बनाते हैं।

१ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ० २र ३ १ २ ३ २ २ ३ २

[४४१]शं पदं मघं रयीषिणे न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ५

(ऋग्वेदे नास्ति)

४३९—४४०—अवस्युरात्रेय ऋषिः ऋ०। 'तक्षात्' ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०--(शं) शान्तिकारक (पदम्) स्थान और ज्ञान, (मघम्)धन धान्य और क्रतु योगादि का उत्कृष्ट फल पहले (रयीषिणे) सुखसामग्री या ऐश्वर्य को अन्यों के लिये परोपकार में लगा देने वाले के लिये होता है। (अव्रतः) निकम्मा, मूर्ख. तपस्या आदि न करने हारा, अकर्म और निषिद्ध कर्म करने हारा पुरुष (कामम्) यथेष्ट फल को (न हिनोति) नहीं प्राप्त कर पाता, क्योंकि (रयिम्) वह धन धान्य को (न स्पृशत्) छूता भी नहीं अर्थात् दान भी नहीं करता।

२ ३ २ ३ १ २ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

[४४२]सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥६॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(गावः) ज्ञानी परिव्राजक, गमनशील किरणें या गौएं (शुचयः) सदा ज्ञान के प्रकाश से युक्त, कान्तिमान् सदा शुद्ध और (विश्व-धायसः) समस्त संसार को ज्ञान-रसपान कराने वाले, सबको पुष्ट करने हारे और सबको रस पिलाने हारे होते हैं। क्योंकि (देवाः) विद्वान्, दानी और प्रकाशमान पदार्थ, (सदा) सदा (अरेपसः) निर्दोष और निष्पाप होते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र १ ३ १ २र

[४४३]आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥७॥

ऋ० १० । १७२ । १॥

भा०—हे उषः ! तू (वनसा) तेज के साथ (आ याहि)आ, प्रकट हो। (गावः) जिस प्रकार गौवें दूध भरे थनों से सबको पुष्ट करती हैं उसी प्रकार (गावः) तेरी रश्मियां (ऊधभिः) वहनशील शक्तियों द्वारा सबको पालन पोषण करके (वर्तनिम्) तेरे मार्ग को (सचन्त) प्राप्त करती हैं, तेरा अनुगमन करती हैं।

४४३—ऋग्वेदे संवर्त आंगिरस ऋषिः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[४४४] उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे इन्द्र ॥८॥
ऋग्वेदे नास्ति ।

भा०—ऋषिर्नोपलभ्यते । हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (मधुमति) मधु से सम्पन्न (प्रक्षे) विशाल जगन्मय प्लक्ष, सर्वोत्तम निवास योग्य लोकमय विशाल ब्रह्माण्ड में (क्षियन्तः) निवास करते हुए हम जीव (रयिम्) अपने उत्तम कर्म फलों को (पुष्येम) समृद्ध रूप में प्राप्त करें । और उनसे वृद्धि को प्राप्त करें । और (ते धीमहि) तेरा ध्यान व धारणा द्वारा धारण करें नित्य मन-चिन्तन व निदिध्यासन करें ।

१ २ ३ ३ १ ३ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २र
[४४५] अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥६
ऋग्वेदे नास्ति ।

भा०—ऋषिर्नोपलभ्यते । (स्वर्काः) उत्तम कान्ति सम्पन्न, तेजस्वी, उत्तम अर्चना करने हारे, प्रभुभक्त ज्ञानी (मरुतः) प्रजाएं वा अध्यात्म में—प्राणगण, (अर्कम्) अपने शक्तिदाता, सूर्य रूप आत्मा व परमात्मा की (अर्चन्ति) स्तुति व उपासना करते हैं (सः) वह (युवा) बलवान्, सर्व शक्तिमान् सबको सुख दुःखों का प्राप्त कराने वा छुड़ाने वाला, (इन्द्रः) आत्मा परमेश्वर (श्रुतः) विख्यात कीर्त्ति वाला (आ स्तोभति) उनकी रक्षा करता है, उनके शत्रुजनों का सब दिशाओं में विनाश करता है ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २
[४४६] प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते १०
ऋग्वेदे नास्ति ।

भा०—(वः) आप लोग (वृत्र-हन्तमाय) वृत्रों को विनाश करने में श्रेष्ठ, (विप्राय) ज्ञानवान् (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (गाथं) ऐसी गान या स्तुति को (प्र गायत) गाओ (यं) जिसको वह (जुजो-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षते) चाहता है, स्वीकार करता है, जो उसके यथार्थ गुणों का वर्णन करती है।

इति षष्ठी दशतिः । दशमः खण्डः ।

॥ दशतिः ७ ॥ ऋषिः—१ पृषध्रः काण्वः सम्पातो वा । २ ३, ४ बन्धुः सुबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा । ५ संवर्त्त आङ्गिरसः । ६ भौवन आप्तयः । ७ कवष ऐलूषः । ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ९ (?) आत्रेयः । १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ॥ देवता—१, २ अग्निः । ३, ४, ८, १० इन्द्रः । ५ उषाः । ६, ७, ९ विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, २, ५, ७ द्विपदा पंक्तिः । ३, ४ पञ्चदशाक्षरा आसुरी गायत्री । १० एकपदा अष्टाक्षरा [प्राजापत्या] गायत्री ॥ ६, ८, ९ द्विपदा [साम्नी] त्रिष्टुप् ॥

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
[४४७] अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् न सुमद्रथः ॥ १ ॥

ऋ० ८ । ५६ । ५ पू० ॥

भा०—(सुमद्-रथः) शोभायुक्त, रमणीय, तृप्तिकारी रस से युक्त या यश कान्ति या गतिसाधन देह से युक्त, (चिकितिः) ज्ञानवान् (अग्निः) परमात्मा हृदय या ब्रह्माण्ड में और आत्मा देह में (हव्यवाड् न)अन्नादि चरु खाने वाले भौतिक अग्नि के समान (अचेति) चैतन्य है, जागृत है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
[४४८] अग्ने त्वं नो अन्तमः उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥२॥

ऋ० ५ । २४ । १ । पूर्वार्धः ॥ यजु० ३ । २५ । ४८ पू० ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! (त्वं) तू (नः) हमारा

४४७—'चिकितुः' 'हव्यवाट्स'० इति ऋ० ।
४४८—'भवा' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अन्तमः) समीपतम (त्राता) रक्षक (शिवः) कल्याणकारी, शिवस्वरूप और (वरूथ्यः) सेनानायक के समान वरण करने योग्य (भुवः) हो।

[४४९] भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥ ३ ॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(महोनां) बड़े २ देवों के बीच में (अग्निः) महान् परमेश्वर (भगं नः) सूर्य के समान (चित्रः) चयन करने योग्य, अद्भुत या पूजा करने योग्य है। वह (रत्नम्) रमणीय शक्ति को (दधाति) धारण करता है।

[४५०] विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन् यदि वेह नूनम् ॥ ४ ॥ अथवा

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे (विश्वस्य प्र स्तोभ) सबके संहारक, सबके उत्कृष्ट पूजापात्र ! तू (पुरः वा) पूर्वकाल में भी (सन्) विद्यमान रहा (यदि वा) और (इह) इस वर्त्तमान काल में भी (नूनम्) तू निश्चय से विद्यमान है। अर्थात् जैसे तू पहले था वैसे अब भी है। तू त्रिकाल में सत् है।

[४५१] उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्त्तयति वर्तनिं सुजातता ॥५॥

ऋ० १० । १७२ । ४ ॥

भा०—(उषा) अन्धकार को नष्ट करने वाली उषा (स्वसुः) जिस प्रकार रात्रि के (तमः) अन्धकार को (सु-जातता) अपने उत्तम प्रादुर्भाव के कारण (अप) दूर कर देती है और राहगीर को (वर्त्तनिं) सन्मार्ग में (संवर्त्तयति) रखती है, उसी प्रकार विशोका प्रज्ञा का उदय भी (स्वसुः) स्वयं सरण करने वाली अविद्या के अन्धकार को दूर करती और आत्मा के परम गन्तव्य ब्रह्म मार्ग को प्रकाशित कर देती है।

[४५२] इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ ६॥

ऋ० १० । १५७ । १ ॥

४५२—'सीषधामे—' ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(इन्द्रः च) आत्मा और (विश्वे देवाः च) सब इन्द्रिय रूप देव मिलकर (इमा भुवना) इन समस्त भुवनों, पदार्थों को हम (सीषधेम कम्) प्राप्त करें, वश करें ।

२ ३ २ ३ १-२ ३ २उ ३ १ २ २ ३ १ २
[४५३] वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥ ७ ॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(यथा) जिस प्रकार (पथा) मार्ग पाकर (स्रुतयः) बहने वाली जलधाराएं बह जाती हैं उसी प्रकार (रातयः) नाना पदार्थों की दानराशियां, हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वद्) तुझ से (वि यन्तु) विविध प्रकार से निकल कर हमें प्राप्त हों ।

३ १ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[४५४] अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८

ऋ० ६ । १७ । १५ ॥

भा०—(अया) इस प्रकार परमेश्वर की गुणस्तुति से (देवहितं) परमेश्वर के दिये हुए (वाजं) ज्ञान, बल और अन्न को (सनेम) हम प्राप्त करें, करावें और (सुवीराः) उत्तम पुत्रों से युक्त, वीर्यवान् सामर्थ्य-वान् होकर (शत-हिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्दित, सुप्रसन्न, सन्तुष्ट होकर रहें ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[४५५] ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र।६।

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(मित्रः वरुणः) मित्र और वरुण, सूर्य और मेघ मिलकर (ऊर्जा) विद्युत्रूप बल, पराक्रम से युक्त होकर (इडाः) जिस प्रकार भूमियों को जलों से (पिन्वत) सेचन करते हैं उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा दोनों मिलकर समाधि काल में आत्मा की मनो-भूमियों को धर्म-मेघ के रस से आ सेचित करें । और हे (इन्द्र) मेघ ! आप (इषं) अन्न की फसल को (पीवरीं) खूब अधिक मात्रा में, ज़ोरों पर, कसरत से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कृणुहि) उत्पन्न करते हो उसी प्रकार हे आत्मन् ! आप (इषं) अभिलाषायोग्य परम सुख की अधिक मात्रा को (कृणुहि) उत्पन्न करो ।

२ ३ २ २
[४५६] इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ १० ॥

(ऋग्वेदे नास्ति) यजु० ३६ । ८ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा ही (विश्वस्य) समस्त ब्रह्माण्ड को (राजति) प्रकाशित करता है । और उसमें स्वयं प्रकाशित होता है, उस पर शासन करता है ।

इति सप्तमी दशतिः । एकादशः खण्डः ।

॥ दशतिः ८ ॥ ऋषिः—१, १० गृत्समदः शौनकः । २ गौरांगिरसः । ३, ५, ६ परुच्छेपो दैवोदासिः । ४ रेभः काश्यपः । ६ एवयामरुत् आत्रेयः । ७ अनानतः पारुच्छेपिः । ८ नकुलः ॥ देवता—१, ३, ४, १० इन्द्रः । २ सूर्यः । ५ विश्वेदेवाः । ६ मरुतः । ७ पवमानः सोमः । सविता । ६ अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ७, ६ अत्यष्टिः । २, ४, ६ अतिजगती । ८, १० अतिशक्वरी ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
[४५७] त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोमम-
३ १ २ २ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
पिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् । स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ १ ॥

ऋ० २ । २२ । १ ॥

भा०—(महिषः) बड़ा पूजनीय (तुवि शुष्मः) बड़ा बलशाली (तृम्पत्) सबको तृप्त करने हारा आत्मा (त्रिकद्रुकेषु) तीनों लोकों में

४५६—'जति, शंनोऽस्तुद्विपदे शंचतुष्पदे ।' यजु०
४५७—'तृम्पत्सोम', 'यथावशत्', 'सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

(विष्णुना) सर्वव्यापक परमेश्वर से (सुतम्) प्रेरित या उत्पादित, (यवाशिरम्) यव आदि अन्नों से मिले हुए (सोमम्) ओषधिरसों के समान ज्ञान और आनन्द को (यथावशम्) अपनी शक्ति के अनुसार (अपिबद्) पान करता है । (स ईं) वही इस प्रकार (महि कर्म) बड़े २ काम (कर्त्तवे) करने के लिये भी (ममाद) सदा प्रसन्नचित्त रहता है । वह (महाम् उरुं सैनं) बड़े भारी, नाना दिशा में, नाना प्रकार की शक्तिरूप सेनाओं के स्वामी, विश्वक्सेन (देवं) परमात्म देव को (देवः) प्रकाशमान, ज्ञानवान् होकर (सश्चत) प्राप्त होता है । वह (सत्यः इन्दुः) सच्चा, सब का आह्लाद करने हारा या ऐश्वर्य और विभूतिमान् होकर (सत्यम्) सत्यस्वरूप (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर को भी प्राप्त होता है ।

ताण्ड्यमहाब्राह्मणे—'स एतान् स्तोमान् अपश्यत् ज्योतिर्गौरायुरिति । इमे वै लोकाः स्तोमाः । अयमेव ज्योतिरयम्मध्यमो गौरसावुत्तम आयुः । ऋग्भाष्ये दयानन्दस्तु 'त्रिकद्रुकेषु लोकेषु' ।

३२ ३२३१ २ ३१ २ ३२ ३२उ २ १२
[४५८] अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।
३ २ ३१२ ३२३ १२ ३ ३२३ १२ ३ १२
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे
३१ २ ३२
मन्युमन्तश्चिता गोः ॥ २ ॥

(ऋग्वेदे नास्ति) अथर्व० का० ७ । २२ । १, २ ॥

भा०—(अयं) यह (सहस्र-मानवः) सहस्रों मननशील विद्वानों से उपासित (दृशः) दर्शनीय, (कवीनाम्) क्रान्तिदर्शी, मेधावी लोगों से (मतिः) एकमात्र मनन करने योग्य, (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप, (विधर्म) नाना प्रकार की प्रजाओं को धारण करने हारा, (ब्रध्नः) सबको प्राणसूत्र में बांधने हारा, महान्, सूर्य के समान परमात्मा

४५८–'सहस्रमानो दृशे', 'विधर्मणे', 'समीरयन्', 'मन्युमन्तमाश्चिमे,' अथर्व०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्वसरे) स्वयं सरण करने हारे, दिन = जीवनकाल में या इस संसार में (समीचीः) उत्तम प्रकार से हृदय में प्रवेश करने द्वारा, (अरेपसः) तम और पाप के लेप से रहित, रजोभाव से शुद्ध, (सचेतसः) ज्ञान-युक्त, (उषसः) विशुद्ध ज्योतिर्मय दशाओं, उषाओं, प्रज्ञाओं को (सम् ऐरयत्) उत्तम रीति से प्रेरित करता है। जो (गोः) सूर्य के (मन्यु-मन्तः) अत्यन्त ज्ञान-प्रकाशवान् नाना (चिताः) एकत्र हुए किरणों के समान होता है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
[४५६] ऐन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्ता
१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३
राजेव सत्पतिः। हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ ३ ॥

ऋ० १ । १३० ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! जिस प्रकार (अयम्) यह (सत्पतिः) सज्जनों का या सत्य का प्रतिपालक यजमान (विदथानि) यज्ञों में (राजा इव) राजा के समान (सत्पतिः) सज्जनों का पालक होकर (अस्ता राजा इव) शत्रुओं पर वाण आदि फेंकने वाला, वीरंधनुर्धारी राजा जिस प्रकार शत्रु आदि के संकटों को दूर करने के लिये प्राप्त होता है उसी प्रकार तू (नः) हमारे पास (परावतः) दूर देशों से भी (उप आयाहि न) आ ही तो जा। (पुत्रासः पितरं न) जिस प्रकार पुत्र लोग पिता की (वाजसातये) दायभाग की प्राप्ति के लिये स्तुति करते हैं उसी प्रकार हम भी (प्रयस्वन्तः) अन्नादि हवि को आपके अर्पण करने के लिये अपने हाथों में लिये हुए (वाज-सातये) अन्न और ज्ञान के लाभ के लिये (सुतेषु) इन यज्ञ-स्थानों में (मंहिष्ठम्) सबसे

४५६—'अस्तं', 'स्वावयं प्र–' 'सुतेष्वा पु'– ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े दानशील (त्वा) तुझको (आ हवामहे) आह्वान करते हैं, आदर से याद करते हैं।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
[४६०] तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं
१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३
श्रवांसि भूरि। मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त राये नो
१ २ ३ १ २ ३ २
विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥४॥ ऋ० ८ । ९७ । १३ ॥

भा०—(तम्) उस (मघवानम्) धन धान्य, सम्पत्ति, विभूतियों से सम्पन्न, (उग्रम्) वेगवान्, (सत्रा) सत् पुरुषों के त्राता, (भूरि श्रवांसि) नाना प्रकार की बल, शक्तियों, ज्ञानों, वेद-ऋचाओं को (दधानम्) धारण करते हुए (अप्रतिष्कुतम्) किसी से भी न पराजित, (इन्द्रम्) वीर राजा के समान परमेश्वर को (जोहवीमि) स्मरण करता हूँ। वह (मंहिष्ठः) सबसे महान्, दानशील (गीर्भिः) वेदमन्त्रों द्वारा (यज्ञियो) यज्ञ के कार्यों में (आ ववर्त) पुनः २ स्मरण किया जाता है, आवृत्ति किया जाता है। वह (वज्री) सब विघ्नों का नाशक (नः) हमारे लिये (राये) धन प्राप्त करने के लिये (विश्वा) सब (सुपथा) उत्तम २ मार्ग, द्वार, साधन (कृणोतु) करे, खोल दे।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
[४६१] अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्धो दिव्यं
२ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे। यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा
३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २उ
सन्दाय नव्यसे। अध प्र नूनमुपयन्ति धीतयो देवाँ
३ २ ३ १ २
अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥ ऋ० १ । १३९ । १ ॥

४६०—'शवांसि' 'ववर्त्तद्' इति ऋ०।

४६१—'तच्छर्धो,' 'विवस्वति', 'संदायि नव्यसा,' 'प्र सु न उप यन्तु' 'अच्छा' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(धिया) आधानकर्म या ध्यानबल से (पुरः) साक्षात् (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप देव अग्नि को (दधे) धारण करता हूँ, (त्यत् शर्द्धः) उसके बल में (दिव्यं) प्रदीप्त ज्योति को (अनु वृणीमहे) हम निरन्तर प्रत्यक्ष वरण करते वा प्राप्त करते हैं और (इन्द्र-वायू) आत्मा और प्राण दोनों को (वृणीमहे) साक्षात् करते हैं। (यत्) जो दोनों (ह) निश्चय से (नव्यसे) सदा नवीन (विवस्वते) सूर्य या सूर्य के समान आत्मा के (नाभौ) आकर्षण शक्ति में (संदाय) अच्छी प्रकार अल्प २ प्राणों को अर्पण करके, जोड़कर (क्राणा) समस्त देहों को रचते हैं। (अध) और हम (धीतयः) ध्यान योग से उपासना करने हारे या अध्ययन द्वारा ज्ञान सम्पादन करने हारे (धीतयः इव) रश्मियों के समान या विद्वानों या आगे जाने हारी अंगुलियों या शिष्यों के समान (देवान्) देवों, विद्वानों के (नूनं प्र उपयन्ति) अत्यन्त समीप पहुंचते हैं।

[४६२] प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवया-मरुत्। प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ ६ ॥ ऋ० ५ । ८७ । १ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुत्वते) पवनों वाले मेघ के लिये (गिरिजाः) बिजुलियां चलती हैं। उसी प्रकार (वः मतयः) आपकी बुद्धियां या स्तुतियां (गिरिजाः) बड़े मस्तक वाले विद्वान् प्रवक्ताओं से उत्पन्न हुई (महे) बड़े (मरुत्वते) वायुओं और प्राणों के बलों से युक्त या प्रजाओं से युक्त, (विष्णवे) व्यापक जगदीश्वर को (यन्तु) पहुंचे। (एवया-मरुत्) और प्राणों को चलानेवाला मुख्य प्राणस्वरूप आत्मा भी उसी (शर्धाय) बलवान्, (यज्यवे) जीवनयज्ञ के सम्पादक, (सुखादये) उत्तम आयुधों से भूषित (तवसे) वीर्यवान् (भन्दद्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इष्टये) कल्याणकारी यज्ञ के पात्र, (धुनिव्रताय) सब को कम्पन करने वाले, कर्म करनेहारे, (शवसे) बलस्वरूप उस ईश्वर के (प्र यातु) खोज में प्रवृत्त होजायं।

[४६३] अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः। धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः। विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ ७ ॥ ऋ० ६ । ११ । १ ॥

भा०—(सयुग्वभिः) साथ योग देनेहारे सहायकों द्वारा (सूरः न) जिस प्रकार प्रेरक नेता (विश्वा द्वेषांसि तरति) सब शत्रुओं को तर जाता है उसी प्रकार (सयुग्वभिः) अपने सहायक इन्द्रियगणों, अश्वों, योग-साधनों द्वारा (सूरः) सबका प्रेरक, विद्वान्, सूर्य के समान तेजस्वी (हरिः) गतिशील आत्मा (अया) इस (हरिण्या) अज्ञान हरने वाली (रुचा) ज्योति से (पुनानः) मल आदि का परिशोधन करता हुआ (विश्वा द्वेषांसि) सब प्रकार के विरोधियों को (तरति) पार कर जाता है। इस (पृष्ठस्य) सबके धारण करने हारे सोम की (धारा) धारण पोषण करने हारी शक्ति (रोचते) सर्वत्र प्रकाशित होती है। वह (हरिः) सर्व-व्यापक, सर्वदुःखहारक, (अरुषः) सर्व प्रकार से प्रकाशमान, (पुनानः) सबको प्रेरित करता हुआ, (यत्) जो वह (विश्वा रूपा) सब पदार्थों या आकाशस्थ पिण्डों को (ऋक्वभिः) प्रकाश-ज्ञानयुक्त (सप्तास्येभिः) शिरोगत सात प्राणों, ज्ञानेन्द्रियों द्वारा या विशाल ब्रह्माण्ड में सब नक्षत्रों को चलाने हारे सात महावायुओं द्वारा (परि यासि) घेरे बैठा है, व्यापक है।

[४६४] अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्नधामभि प्रियं मतिम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युत-त् सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥८॥
(ऋग्वेदे नास्ति) यजु० ४ । २५ ॥ अथर्व० ७ । १४ । १, २ ॥

भा०—(ओण्योः सवितारं) द्यौ और पृथिवी के उत्पादक, (कवि-क्रतुं) क्रान्तदर्शी एवं ज्ञानसम्पन्न मेधावी, (सत्यसवम्) सत्य को प्रकट करने हारे, (रत्नधाम्) रमणीय विभूतियों को धारण करने वाले, (अभि-प्रियम्) सबके प्रिय, (मतिम्) मनन-योग्य (त्यं देवम्) उस देव की (अभि-अर्चामि) साक्षात् स्तुति करता हूँ। (यस्य) जिसकी (ऊर्ध्वा) ऊर्ध्व = ऊपर को जाने वाली या सबसे ऊपर विद्यमान (भाः) सूर्यरूप तेजः कान्ति, (अमतिः) अचिन्त्य, अद्वितीय (सवीमनि) जगत् के उत्पत्ति कार्य में (अदिद्युतत्) सर्वत्र प्रकाशित होती है। वह (हिरण्य-पाणिः) क्रियारूप या गतिरूप हाथों वाला, अथवा तेजोमय किरणों वाला (सु-क्रतुः) उत्तम कारीगर (कृपा) अपने सामर्थ्य से (स्वः) सब प्रकाशमान सूर्य आदि द्यौलोक और परम सुख को (निः-अमिमीत) बनाता और देता है।

[४६५] अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ६ ॥
ऋ० १ । १२७ । १ ॥

भा०—मैं (दास्वन्तं) दान करने हारे, सबके दाता, (वसोः) उस वास करने वाले (सहसः) बलरूप जीवात्मा के (सूनुम्) प्रेरक (जात-

४६४—'मतिम् कविम्।' यजु०। 'कृपात् स्वः' इति अथर्व०।

४६५—'विभ्राष्टिमनुवष्टि' इति ऋ०। 'वसुं' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदसम्) समस्त भूतिमान् धन आदि पदार्थों के उत्पन्न करने हारे, (विप्रं न) विप्र, मेधावी पुरुष के समान (जात-वेदसम्) समस्त उत्पन्न हुए पदार्थों के जानने हारे, (अग्निम्) परमेश्वर को (होतारम्) इस महान् ब्रह्माण्डरूप यज्ञ का कर्त्ता (मन्ये) स्वीकार करता हूँ (यः) जो (ऊर्ध्वया) ऊपर आकाश में स्थित ज्वाला द्वारा (स्वध्वरः) उत्तम अहिंसित अविनाशी, हिंसारहित यज्ञ का करनेहारा (देवाच्या) देवों तक पहुंचने हारे (कृपा) सामर्थ्य से (शुक्र-शोचिषः) अत्यन्त दीप्त कान्ति वाले, (सर्पिषः) सर्वव्यापी, प्रसरणशील (घृतस्य) कान्तियुक्त सूर्य या अग्नि में आहुति किये घी के समान (विभ्राष्टिम् अनु) विशेष भर्जन करने वाले प्रताप और तेज के साथ स्वयं (वष्टि) विराजमान, प्रकाशित हो रहा है ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[४६६] तव त्यं नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं
३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३
कृतम् । यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः । भुवो
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्जं शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥१०॥

ऋ० २ । २२ । ४ ॥

भा०—हे (नृतः) समस्त संसार को नचाने या अपनी इच्छानुकूल चलाने हारे ! (त्यत्) वह (अपः) कर्म (प्रथमम्) सबसे उत्कृष्ट (दिवि) द्यौलोक में भी (पूर्व्यं) सबसे पूर्व (प्र-वाच्यम्) उत्तम रीति से वर्णन करने योग्य (कृतम्) किया हुआ सर्ग (तव) तेरा ही है । (यः) जो (शवसा) अपने वेग या बल से (देवस्य) प्रकाशमान, विजिगीषु, महाप्राणधारी हिरण्यगर्भ के (असुम्) पवनरूप प्राण को (रिणन्) गति देता हुआ (अपः) नाना लोकों को (प्र अरिणः) प्रकृष्ट वेग से चला रहा है । और वह देव (विश्वम्) समस्त (अदेवम्) न प्रकाशित होने वाले, मृतप्राय, नाना पृथिवी आदि लोकों, पिण्डों को भी (ओजसा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने बल से, कान्ति से (भुवत्) व्याप्त होकर उनमें (ऊर्जम्) अन्नादि खाद्य पदार्थ और जीवनमय पदार्थ (विदेद्) प्राप्त करता है, उत्पन्न करता है। वह (शतक्रतुः) सैकड़ों कर्मों को करने हारा शिल्पी (इषं विदेत्) हमें जीवन, प्राण और अन्न दे।

इत्यष्टमी दशतिः। इति द्वादशः खण्डः।

इति ऐन्द्रं (पर्व) काण्डम्।

इति चतुर्थोऽध्यायः॥

ऐन्द्रकाण्डस्य मन्त्र-संख्या ३५२



१ ४६६—'भुवद्' 'विदादिषम्' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पावमानं काण्डम् ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।



॥ दशतिः १ ॥ ऋषिः—१,४ अमहीयु राङ्गिरसः । २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । ३ भृगुर्वारुणिः जमदग्निर्वा भार्गवः। ५ त्रित आप्त्यः। ६ कश्यपो मारीचः। ७ जमदग्नेर्भार्गवः। ८ दृढच्युत आगस्त्यः। ९, १० काश्यपोऽसितो देवलोवा। पवमानः सोमो देवता ॥ गायत्री ॥

३ १ २ ३१ २र ३ १ २र
[४६७] उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे ।
६८२ ३२उ ३ २ ३ १ २
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ६१ । १० ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (ते) तेरे (अन्धसः) प्राणधारण सामर्थ्य से (जातम्) उत्पन्न हुए (दिवि-सद्) द्यौलोक, सूर्य में विद्यमान (उग्रम्) उग्र, उत्कृष्ट (शर्म) सुख, शरण और (महिः श्रवः) महान् ज्ञान या बल, अन्न को (भूमि) भूमि पर के पुरुष भी (आददे) प्राप्त करते हैं। अर्थात् सूर्य में विद्यमान जीवन, सुख और ज्ञान-दीप्ति आदि को हम भूमि पर भी प्राप्त करते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[४६८] स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
६८९ १ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २ ॥ ऋ० ९ । १ । १ ॥

भा०—हे (सोम) सबके प्रेरक ईश्वर ! आप (स्वादिष्ठया) अत्यन्त रस-दायक (मदिष्ठया) अत्यन्त हर्ष या आनन्दकारक (धारया) अपनी धारण शक्ति से (पवस्व¹) सब में व्यापक हो । (इन्द्राय) इस आत्मा के

४६७—'दिविषद्' इति ऋ० । ४६८—१. पवतिर्गतिकर्मा (नि० २ । १४)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पातवे) पान करने के लिये यह सोम, ज्ञानानन्द रस (सुतः) उत्पन्न किया जाता है ।

१ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २
[४६९] वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
३ १ २ ३ १ २
विश्वा दधान ओजसा ॥ ३ ॥ ऋ० ९ । ६५ । १० ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (वृषा) धर्मस्वरूप, सुखों का वर्षक, सबसे श्रेष्ठ, (मत्सरः) सबको तृप्त करनेहारा और आनन्दस्वरूप होकर सबके हृदयों में व्यापक, (मरुत्वते) प्राणों और समस्त वायुओं और प्रजाओं के स्वामी आत्मा, सूर्य, ईश्वर और राजा के लिये (धारया) अपनी धारक पोषक शक्ति द्वारा (विश्वा) समस्त प्राणियों, लोकों और प्रजाओं को अपने (ओजसा) बल से (दधानः) धारण करता हुआ (पवस्व) प्रकाशित हो ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[४७०] यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।
३ १ २ ३ २
देवावीरघशंसहा ॥ ४ ॥ ऋ० ९ । ६१ । १९ ॥

भा०—हे (सोम) परमेश्वर ! (यः) जो (ते) तेरा (मदः) आनन्द या हर्ष-प्रकाश, (देवावीः) देवों, विद्वानों या इन्द्रियगण में प्रकट होता है और जो (अघशंसहा) पाप की शिक्षा देने वाले दुष्ट पुरुष या अचेतनता और अज्ञान का नाशक ज्ञान रूप और काम क्रोधादि दुष्ट भावों का भी नाश करता है (तेन) इस (अन्धसा) प्राणशक्ति से (आ पवस्व) प्रकट हो ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[४७१] तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
१ २ ३ १ २
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ५ ॥ ऋ० ९ । ३३ । ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (धेनवः) दुधार (गावः) गौएं (मिमन्ति) अपना दूध देने के लिये हंभारती हैं उसी प्रकार (तिस्रः वाचः) तीनों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदसंहितायें अपना २ विज्ञान, ज्ञान और कर्म का रस पान कराने के लिये (उद्-ईरते) अपना २ अभिप्राय प्रकट करती हैं और (हरिः) सर्वव्यापक जगदीश्वर एवं विद्वान् (कनिक्रदत्) अपनी ध्वनि या उपदेश मेघ के समान करता हुआ, ज्ञान और सुखों के वर्षक रूप से (एति) हमें प्रतीत होता है ।

[४७२] इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥ ऋ० ९ । ६४ । २२ ॥

भा०—हे इन्दो ! ऐश्वर्यशील ! (मरुत्वते) मरुत् प्राणों, वायुओं और समस्त तीव्र, वेगवान् बलशाली पदार्थों के स्वामी (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (मधुमत्-तमः) मधु के उत्तम रूप से धारण करने हारा तू (अर्कस्य) ज्ञान के सूर्य, प्रकाश या जीवन रूप यज्ञ के (योनिं) उत्पत्तिस्थान पर (आसदम्) विराजमान होने के लिये (पवस्व) प्रकट हो ।

[४७३] असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ७ ॥ ऋ० ९ । ६२ । ४ ॥

भा०—(गिरि-ष्ठाः) पर्वतों या मेघों में स्थित और विद्वानों की वाणियों में स्थित या विद्वानों में रहने वाला, (अंशुः) सर्वव्यापक (अप्सु) कर्मों और ज्ञानों को उत्पन्न करने में (दक्षः) बलशाली, सोम, आनन्दरस (असावि) प्रकट होता है । वह (योनिम्) अपने प्रादुर्भाव होने के स्थान में (श्येनः न) श्येनस्वरूप, प्रशंसनीय, स्तुतियोग्य आत्मा के समान हो (आसदत्) विराजमान होता है । आत्मा के समान परमात्मा भी हृदय में विराजमान है ।

४७२—'ऋतस्य' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[४७४] पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥८॥ ऋ० ९ । २५ । १ ॥

भा०—हे (हरे) हरित तेजस्वी वर्ण! अथवा पापहरणशील, गतिशील, सर्वव्यापक ! (दक्ष-साधनः) समस्त कार्यों को करने हारा (मदः) आनन्द रूप तू (मरुद्भ्यः) प्राणस्वरूप या प्रजारूप (देवेभ्यः) दानशील पुरुषों या इन्द्रियों को और (वायवे) सर्वव्यापक आत्मा के (पीतये) उपभोग के लिये (पवस्व) प्रकट हो ।

[४७५] परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥९॥ ऋ० ९ । १८ । १ ॥

भा०—(सोमः) सोम, वह आनन्दमय (स्वानः) सबको प्रेरित करता हुआ या स्वयं प्रकाशित होता हुआ (गिरि-ष्ठाः) वाणी और हृदय में विद्यमान भी (पवित्रे) पवन साधन, शोधक या स्वतः पवित्र हृदय में (अक्षरत्) क्षरित होता है, द्रवित होता है, प्रकट होता है । हे (सोम) हे सर्वप्रेरक ! आनन्दमय ! तू (मदेषु) सब आनन्दों में (सर्व-धा) सब रूपों से उनको धारण करता हुआ, तन्मय होकर (असि) विद्यमान है ।

[४७६] परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।
स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१०॥ ऋ० ९ । ९ । १ ॥

भा०—(कविः) क्रान्तदर्शी, मेधावी, सोम, आत्मा (नप्त्योः) अभिसवन करने के फल-कों, या द्यौ और पृथिवी के समान प्राण और अपान दोनों के बीच (हितः) विद्यमान (दिवः) सूर्य या ज्योति के (प्रिया) प्रिय

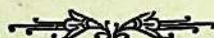
४७४—१, हरे पापहर्त्तः इति सायणः ।
४७५—'सुवानः' 'अक्षरा' इति ऋ० । ४७६—सुवाना इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वयांसि) आत्माओं, जीवों तक वह (कवि-क्रतुः) ज्ञानानुसार कार्य करने हारा (स्वानः) ब्रह्मज्ञान को प्रकट करने हारे विद्वानों द्वारा (परि याति) सर्वत्र प्रचलित हो जाता है, सर्वत्र चर्चा किया जाता है।

इति नवमी दशतिः । प्रथमः खण्डः ।



॥ द० १० ॥ ऋषिः—१ कविर्मेधावी । २ श्यावाश्व आत्रेयः । ३ त्रित आप्त्यः । ४, ८ अमहीयुराङ्गिरसः । ५ भृगुर्वारुणिः । ६ काश्यपो मारीचः । ७ निध्रुविः काश्यपः । ९, १० काश्यपोऽसितो देवलो वा ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ छन्दः—गायत्री ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[४७७] प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।
६६९ ३ २ ३ १ २
सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ३२ । १ ॥

भा०—(मद-च्युतः) आनन्द को बहाने वाले (सोमासः) सौम्य स्वभाव वाले विद्वान् या आनन्दरस (विदथे) यज्ञ या ज्ञान के अवसर पर (सुताः) नियुक्त या अभिषिक्त, द्रवित होकर (मघोनाम्) हवि या धनादि से सम्पन्न (नः) हमारे (श्रवसे) ज्ञान, कीर्ति, अन्न प्राप्त करने के लिये (प्र अक्रमुः) उत्तम रूप से प्रवृत्त होते हैं।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[४७८] प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।
६५४ १ २ ३ १ २
वनानि महिषा इव ॥ २ ॥ अपो ऋ० ९ । ३३ । १ ॥

भा०—(ऊर्मयः) जिस प्रकार समुद्र की तरंगें पुरुषों को समुद्र से नाना देशों के भीतर पहुंचा देती हैं या जैसे (महिषाः) बड़े २ लादू पशु भैंसे आदि पीठ पर उठाकर, उनके वाहन बन कर दूर देशों तक पहुंचा

४७७—'मघोनः' इति ऋ० । ४७८—'नयन्ति' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देते हैं उसी प्रकार (विपश्चितः) विद्वान्, ज्ञानवान्, कर्मवान् (सोमासः) सौम्य स्वभाव वाले जन (अपः) प्रजाओं को (वनानि) उत्तम सेवन करने योग्य पदार्थों के प्रति (नयन्त) प्राप्त कराते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[४७६] पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।
३ २ ३ १ १
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥ ऋ० ९ । ६१ । २८ ॥

भा०—हे इन्दो ! हे विद्वन् ! आत्मन् ! (सुतः) तु तैयार होकर (जने) राष्ट्र में (पवस्व) प्रकट हो । और (नः) हमें (यशसः) कीर्तिसम्पन्न (कृधि) बना, (विश्वाः द्विषः) समस्त द्वेष करने वालों को (अप जहि) नाश कर ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[४८०] वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
१ २ ३ ३ १ २
पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥ ऋ० ९ । ६५ । ४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! आत्मन् ! हे (पवमान) सबको पवित्र करने-हारे ! (वृषा हि असि) तू सब सुखों का वर्षण करनेहारा है । (भानुना) सूर्य या कान्ति से (द्युमन्तम्) दीप्तिमान् (स्वः-दृशम्) सुख या सब के द्रष्टा (त्वा) तेरी हम (हवामहे) स्तुति करते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
[४८१] इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः ।
३ १ २र ३ १ २
सृजदश्वं रथीरिव ॥ ५ ॥ ऋ० ९ । ६४ । १० ॥

भा०—(चेतनः) चेतनास्वरूप (कवीनाम्) क्रान्तदर्शी, तत्वज्ञों का (प्रियः) अत्यन्त आदर और प्रेम का पात्र, (मतिः) मननशील (रथीः इव) सारथी के समान (अश्वम्) अश्व = इन्द्रियगण को (सृजत्) प्रेरणा करता और (पविष्ट) व्यवहार में प्रवृत्त होता है ।

४८१—'मती' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२ ३ २ ३१ २ ३ १ २र ३ २
[४८२] असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
३ १ २ ३ १ २र
शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ६ ॥ ऋ० ९ । ६४ । ४ ॥

भा०—(वाजिनः) बलवान् (आशवः) शीघ्रकारी, आलस्यरहित (शुक्रासः) कान्तिमान्, (सोमासः) योगिजन, (गव्या) गौ या वाणी की कामना से (अश्वया) अश्व अर्थात् इन्द्रियों को वश करने की इच्छा से और (वीरया) वीर्य, सामर्थ्य लाभ करने की इच्छा से (प्र असृक्षत) प्रयत्न करते आगे बढ़ते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[४८३] पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
३ १ २र ३ १ २
वायुमा रोह धर्मणा ॥ ७ ॥ ऋ० ९ । ६३ । २२ ॥

भा०—हे (देव) द्योतमान रसस्वरूप आत्मन् ! (पवस्व) तू प्रकट हो और (आयुषक्) साथ ही, सर्वप्रिय होकर (ते मदः) तेरा आनन्दप्रवाह (इन्द्रं गच्छतु) आत्मा के पास जावे । और तू (धर्मणा) अपने धारक प्रयत्न से (वायुम्) प्राणवायु को (आरोह) वश कर, उस पर आरूढ़ हो ।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
[४८४] पवमानो अजीजनद् दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
१ २ ३ २ ३ २
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥ ऋ० ९ । ६१ । १६ ॥

भा०—(पवमानः) जिस प्रकार बहता वायु (दिवः चित्रं तन्यतुम् बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः न) सूर्य या आकाश में व्यापक, संचित होने योग्य, विशाल ज्योतिर्मय अग्नि को संघर्ष द्वारा (अजीजनत्) प्रकट करता है उसी प्रकार (पवमानः) अन्तःकरण और बुद्धितत्त्व को विमल

४८३—'आयुषक्'—आयुषु मनुष्येषु सक्तः, मनुष्यैः सेव्यमानः इति वा । भ० स्वा० । सुजनमनाः मा० वि० । अनुसक्तं यथा भवति । सा० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाला, साधक, योगी (दिवः) सूर्य के समान द्युलोक, मूर्धा के (चित्रम्) विचित्र, आदर योग्य (वैश्वानरम्) सब नरों में व्यापक, (बृहत्) विशाल (ज्योतिः) प्रकाश को (अजीजनत्) प्रकट करता है।

[४८५] परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा।
मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥ ऋ० ९ । १० । ४ ॥

भा०—(स्वानासः) सवन किये, सुसम्पादित (इन्दवः) ऐश्वर्य-युक्त विद्वान्जन (मदाय) अति आनन्द के लिये (बर्हणा) बहुत बड़ी (गिरा) वेदवाणी से (मधोः) मधु, सारभूत आनन्दरस की (धारया) धारा या धारणा शक्ति से (परि अर्षन्ति) सर्वत्र प्रकाशित होते या व्यापते हैं।

[४८६] परिप्रासिष्यदत् कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः।
कारुं बिभ्रत् पुरुस्पृहम् ॥ १० ॥ ऋ० ९ । १४ । १ ॥

भा०—(कविः) तत्वदर्शी, विद्वान् (सिन्धोः) आनन्दमय समुद्र के (ऊर्मौ) तरङ्ग में (अधि श्रितः) बहता हुआ (पुरु-स्पृहम्) प्रजा के प्रेमपात्र (कारुम्) आत्मारूप शिल्पी को (बिभ्रत्) धारण करते हुए जहाज़ के समान (परि प्र असिष्यदत्) सब ओर वेग से गमन करता है।

अर्थात् जिस प्रकार शिल्पी को भरण पोषण करता हुआ विद्वान् राजा शिल्प से पोतादि बनवा कर सिन्धु पर विचरण करता है, उसी प्रकार साधक (कारुम्) क्रियावान् आत्मा को साथ लेकर मोक्षानन्द सागर में प्रवेश करता है।

इति दशमी दशतिः। द्वितीयः खण्डः।

इति द्वितीयोऽर्धः। पञ्चमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥

४८५—'परि सुवानास', 'सुता अर्षन्ति' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ षष्ठः प्रपाठकः (प्रथमोऽर्धः) ।

॥ दशतिः १ ॥ ऋषिः—१, ८, ९ अमहीयुराङ्गिरसः । २ बृहन्मतिराङ्गिरसः । ३ जमदग्निर्भार्गवः । ४ प्रभूवसुराङ्गिरसः । ५ मेध्यातिथिः काण्वः । ६, ७ निध्रुविः काश्यपः । १० उचथ्य आंगिरसः ॥ पवमानो देवता ॥ गायत्री ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २र
[४८७] उपोषु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
१ २ ३ १ २
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ६१ । १३ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग या इन्द्रियगण (जातम्) उत्तम गुणों से सम्पन्न उत्तम रूप से उत्पन्न, (अप्तुरम्) प्रजाओं या इन्द्रियों, प्राणों, या कर्मों, ज्ञानों, देहस्थ रसों में व्यापक, गतिमान्, (गोभिः) गौओं, उनके दुग्धों, वाणियों, इन्द्रियों, रश्मियों से (परि-ष्कृतम्) सुशोभित, सुमिश्रित, (भङ्गम्) सब दुःखों और शत्रुओं के तोड़ने हारे (इन्दुम्) इस आत्मरूप सोम या परमेश्वर के आनन्दरस को (सु उप अयासिषुः) सुखपूर्वक, अनायास प्राप्त करते हैं । ईश्वर, आत्मा, राजा और सोमरस चारों पक्षों में स्पष्ट है ।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
[४८८] पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
३ २ ३ १२ ३ १ २
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ २ ॥ ऋ० ९ । ४० । १ ॥

भा०—(विचर्षणिः) विविध प्रजाओं का द्रष्टा, (सोमः) राजा के तुल्य आत्मा (विश्वाः) समस्त (मृधः) संग्रामों को (पुनानः) पवित्र करता हुआ, सबके कलह मिटाता हुआ, (अभि अक्रमीत्) प्रत्यक्षरूप से सबको व्यवस्थापक रूप में पार कर जाता है, वह सबसे ऊंचा होकर विराजता है । उस (विप्रम्) मेधा बुद्धि से सम्पन्न, ज्ञानी को

४८७—भङ्गं भञ्जकम् असुररचकाम् । भ० स्वा० । शत्रूणां भञ्जकम् । सा०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान्जन (धीतिभिः) अपनी मतियों और स्तुतियों से (शुम्भन्ति) अलंकृत करते हैं।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
[४८९] आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः।
२ ३ १ २
इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥ ऋ० ९ । ६२ । १९ ॥

wilt-9-74-8; 4.27.5

भा०—(सुतः) अभिषिक्त राजा जिस प्रकार राष्ट्र में प्रवेश करता है उसी प्रकार विद्वान्, ज्ञानी, साधक योगी का आत्मा (कलशम्) सोलह कलाओं से बने इस औंधे पात्र रूप मस्तक या ब्रह्माण्ड में (आविशन्) व्याप्त होता हुआ (विश्वाः) समस्त (श्रियः) उत्तम आश्रयस्थानों, सम्पदाओं, ज्ञाननाड़ियों एवं सब लोकभूमियों में (अभि अर्षत्) व्याप्त होता है। (इन्दुः) वही इन्दु परमैश्वर्यसम्पन्न सिद्धयोगी, (इन्द्राय) उस महान्, ऐश्वर्यवान् आत्मा को प्राप्त करने के लिये (धीयते) प्रस्तुत होजाता है, उसका ध्यान करता है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २
[४९०] असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः।
१ २ ३ १ २
कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥ ऋ० ९ । ३६ । १ ॥

wilt 9-74-8 4-27.5

भा०—(यथा) जिस प्रकार (रथ्यः) रथयोग्य (वाजी) वेगवान् अश्व (कार्ष्मन्) आकर्षण करने हारे युद्धस्थल में (सुतः) प्रेरित होकर (चम्वोः) दोनों सेनाओं के बीच (पवित्रे) पैंतरे पर (नि-अक्रमीत्) वेग से दौड़ता है। उसी प्रकार यह आत्मा (सुतः) ऐश्वर्य से युक्त होकर (चम्वोः) निष्पादन फलको, द्यौ और पृथिवी, प्राण और अपान के बीच (पवित्रे) पवित्र व गति करने हारे प्राण वायु में (कार्ष्मन्) सब इन्द्रियों को कर्षण करने हारे आत्म संयममय संग्राम में (रथ्यः) इस देह के योग्य (वाजी) वेगवान् अति बलवान् (असर्जि) होकर (नि-अक्रमीत्) नाना स्थानों में गमन करता है। सोम और रथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के घोड़े के दृष्टान्त से मुख्य प्राण और ब्रह्माण्ड के विधारक सूत्रात्मा वायु का वर्णन है।

२उ १ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
[४९१] प्र यद् गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
घ्नन्तः कृष्णामपत्वचम् ॥ ५ ॥ ऋ० ९ । ४१ । १ ॥

भा०—(यत्) जो (गावः न) किरणों के समान (भूर्णयः) सब के पालन करने हारे वा क्षिप्रगामी, (त्वेषाः) कान्तिमान् (अयासः) गतिशील हैं वे (कृष्णां) कृष्ण, कर्षण करने वाली, हानिकारक (त्वचम्) त्वचा, ऊपर की खाल या देखावे, अन्धकार, ढोंग, देहबन्धन को (घ्नन्तः) विनाश करते हुए (प्र अक्रमुः) विचरते हैं।

अर्थात् जिस प्रकार (गावः) किरणें अन्धकार आवरण को वा त्वचा के रोगों को दूर करती हैं, देह की पोषक हैं, उसी प्रकार ज्ञानी अज्ञानावरण को दूर करके आगे बढ़ें।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[४९२] अप घ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।
३ १ २र ३ १ २
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ६ ॥ ऋ० ९ । ६३ । २४ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! हे रसरूप (मत्सरः) हर्षकारी होकर विचरने हारा तू (क्रतुवित्) सब उत्कृष्ट ज्ञान और कर्मों का जानने और लाभ कराने हारा (मृधः) परस्पर के कलहों, संग्रामों या पाप-बन्धनों को (अप घ्नन्) विनाश करता हुआ (अदेवयुम्) देवों,

---

४९१—'प्रये गावो' इति ऋ० । भूर्णयः भ्रमणशीलाः, मा० । भर्तारः भ० स्वा० । क्षिप्राः मा० ।

४९२—'मृधः = मृधि उन्दने भ्वादिः, उन्दनं क्लेदनं । मृधः सङ्गदोषाः, बन्धनानि कर्मसङ्गा इति वा । मृधः संग्रामान् पाप्मनश्च । मा० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों, शुभगुणों के प्रतिकूल, नास्तिक, ईश्वर को न चाहने वाले (जनम्) पुरुष को (नुदस्व) परे कर ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[४६३] अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।
३ १ २र ३२
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥   ऋ० ९ । ६३ । ७ ॥

भा०—हे विद्वन् ! रसरूप (यया) जिस (धारया) धारा या धारण-पोषण शक्ति से (मानुषीः) मनुष्य (अपः) प्रजाओं या प्राणों को (हिन्वानः) प्रेरित करता है (यया) जिससे (सूर्यम्) सूर्य के समान सबके प्रेरक राजा या विद्वान् गुरुको (अरोचयः) सब में प्रकाशित करता है (अया) उस धारा से (पवस्व) तू भी सर्वत्र प्रकाशित हो । अर्थात् जो शक्ति सूर्य को चमकाती है वही मनुष्यों का प्राणाधार है ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[४६४] स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।
३ १ २ ३ २ ३ २
वव्रिवांसं महीरपः ॥ ८ ॥   ऋ० ९ । ६१ । २२ ॥

भा०—हे रसरूप ! (यः) जो (महीः) बहुत सारे (अपः) जलों, कर्मों, प्राणों या लिंग-शरीरों और प्रज्ञानों को (वव्रिवांसम्) आवरण किये; रोके हुए (वृत्राय) आवरणकारी मेघ के समान अज्ञान, अन्धकार या कर्मबन्धन को (हन्तवे) विनाश करने के लिये (इन्द्रम्) सूर्य के समान आत्मा की (आविथ) रक्षा करता है (सः) वह तू (पवस्व) प्रकाशमान हो ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २
[४६५] अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
३ १ २ ३ १ २र
अवाहन् नवतीर्नव ॥ ९ ॥   ऋ० ९ । ६१ । १ ॥

भा०—हे रसरूप ! (ते) तेरे (मदेषु) आनन्द-रसों में बह कर (इन्द्रः) आत्मा (नवतीः नव) ९९ वर्ष (यः) जो (अवाहन्) पार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर जाता है (अया) इस (वीती) रीति से (परि स्रव) देह में व्याप्त रह, गति कर। ऐतिह्य पक्ष में इन्द्र का ९९ नम्बर की पुरियों का विनाश करना आदि आलंकारिक है।

१ २ ३ १ २र ३२उ ३ १ २ ३ ३ २
[४९६] परि द्युक्षं सनद् रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा ।
३ १ २ ३ २ ३ २
स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥ १० ॥ ऋ० ९ । ५२ । १ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! आनन्दमय ! (नः) हमें (अन्धसा) जीवन धारण सामर्थ्य से, (द्युक्षं रयिम्) कान्तिस्वरूप धन को (परि सनद्) प्रदान कर, और (नः वाजं भरद्) हमें अन्न और ज्ञान प्राप्त करा। हे (सोम) विद्वन् ! (स्वानः) सम्पादित होता हुआ, ऐश्वर्यवान् तू (पवित्रे) पवित्र करनेहारे दशा पवित्र नामक वस्त्रखण्ड के समान पवित्र, शुद्ध हृदय या ब्रह्म में तू (आ अर्ष) स्वयं व्यापक, विराजमान हो और विचर।

इति प्रथमा दशतिः । तृतीयः खण्डः ॥



॥ दशतिः २ ॥ ऋषिः—१ मेध्यातिथिः काण्वः । २, ७ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । ३ उचथ्य आङ्गिरसः । ४ अवत्सारः काश्यपः । ५, ६ निध्रुविः काश्यपः । ८, ९ काश्यपो मारीचः । १० असितः काश्यपो देवलो वा । ११ कविर्भार्गवः । १२ जमदग्निर्भार्गवः । १३ अयास्य आङ्गिरसः । १४ अमहीयुराङ्गिरसः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ गायत्री ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
[४९७] अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
१र २र
सं सूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥ ऋ० ९ । २ । ६ ॥

४९६—'परीद्युक्षः' 'सनद्रयिः' 'सुवानो' इति ऋ० ।
४९७—'सूर्येण रोचते' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(वृषा) वर्षणशील, (हरिः) सबको गति देने हारा, जगदीश्वर (महान्) सबसे बड़ा (मित्रः न) सबके प्रति स्नेही, सूर्य के समान (दर्शतः) दर्शनीय, (सूर्येण) अपने प्रेरक बल और तेज से (सं दिद्युते) उत्तमरूप से प्रकाशित होता है।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[४९८] आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
२ ३२ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥ ऋ० ९ । ६५ । २८ ॥

भा०—हे प्रभो ! (ते) तेरे (मयः-भुवम्) शान्ति और कल्याण के जनक, (वह्निम्) सुखों के प्राप्त कराने वाले, (पान्तम्) पालक, (पुरु-स्पृहम्) सबके अभिलाषा योग्य, (दक्षम्) बल की (अद्य) इस समय हम (आ वृणीमहे) सब प्रकार से याचना करते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
[४९९] अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय ।
३ १ २ ३ १ २
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥ ऋ० ९ । ५१ । १ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) यज्ञनिष्पादक ! (अद्रिभिः) पाषाण-खण्डों से जिस प्रकार सोमरस निकाला जाता है उसी प्रकार ज्ञानोत्पादक गुरुओं द्वारा (सुतम्) निष्पादन किये (सोमम्) ज्ञान या आनन्द-रस को (पवित्रे) दशा पवित्र नामक वस्त्र-खण्ड के समान विवेकशील चित्त में (आनय) प्राप्त करा और (पातवे) पान करनेहारे (इन्द्राय) आत्मा के लिये (पुनाहि) इसे विमल, और स्वच्छ कर ।

२३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
[५००] तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
३ २ ३ १ २
तरत् स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ऋ० ९ । ५८ । १ ॥

भा०—(सः) वह (मन्दी) स्तुति करने हारा, स्वतः तृप्त आत्मा

४९९—'पुनीहि' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर जाता है (अया) इस (वीती) रीति से (परि स्रव) देह में व्याप्त रह, गति कर । ऐतिह्य पक्ष में इन्द्र का ९९ नम्बर की पुरियों का विनाश करना आदि आलंकारिक है ।

१ २ ३ १ २र ३२उ ३ १ २ ३ ३ २
[४९६] परि द्युक्षं सनद् रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा ।
३ १ २ ३ २ ३ २
स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥ १० ॥ ऋ० ९ । ५२ । १ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! आनन्दमय ! (नः) हमें (अन्धसा) जीवन धारण सामर्थ्य से, (द्युक्षं रयिम्) कान्तिस्वरूप धन को (परि सनद्) प्रदान कर, और (नः वाजं भरद्) हमें अन्न और ज्ञान प्राप्त करा । हे (सोम) विद्वन् ! (स्वानः) सम्पादित होता हुआ, ऐश्वर्यवान् तू (पवित्रे) पवित्र करनेहारे दशा पवित्र नामक वस्त्रखण्ड के समान पवित्र, शुद्ध हृदय या ब्रह्म में तू (आ अर्ष) स्वयं व्यापक, विराजमान हो और विचर ।

इति प्रथमा दशतिः । तृतीयः खण्डः ॥



॥ दशतिः २ ॥ ऋषिः—१ मेध्यातिथिः काण्वः । २, ७ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । ३ उचथ्य आङ्गिरसः । ४ अवत्सारः काश्यपः । ५, ६ निध्रुविः काश्यपः । ८, ९ काश्यपो मारीचः । १० असितः काश्यपो देवलो वा । ११ कविर्भार्गवः । १२ जमदग्निर्भार्गवः । १३ अयास्य आङ्गिरसः । १४ अमहीयुराङ्गिरसः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ गायत्री ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
[४९७] अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
१र २र
सं सूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥ ऋ० ९ । २ । ६ ॥

४९६—'परीद्युक्षः' 'सनद्रयिः' 'सुवानो' इति ऋ० ।
४९७—'सूर्येण रोचते' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(वृषा) वर्षणशील, (हरिः) सबको गति देने हारा, जगदीश्वर (महान्) सबसे बड़ा (मित्रः न) सबके प्रति स्नेही, सूर्य के समान (दर्शतः) दर्शनीय, (सूर्येण) अपने प्रेरक बल और तेज से (सं दिद्युते) उत्तमरूप से प्रकाशित होता है।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[४९८] आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
२ ३२ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥ ऋ० ९ । ६५ । २८ ॥

भा०—हे प्रभो ! (ते) तेरे (मयः-भुवम्) शान्ति और कल्याण के जनक, (वह्निम्) सुखों के प्राप्त कराने वाले, (पान्तम्) पालक, (पुरु-स्पृहम्) सबके अभिलाषा योग्य, (दक्षम्) बल की (अद्य) इस समय हम (आ वृणीमहे) सब प्रकार से याचना करते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
[४९९] अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय ।
३ १ २ ३ १ २
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥ ऋ० ९ । ५१ । १ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) यज्ञनिष्पादक ! (अद्रिभिः) पाषाण-खण्डों से जिस प्रकार सोमरस निकाला जाता है उसी प्रकार ज्ञानोत्पादक गुरुओं द्वारा (सुतम्) निष्पादन किये (सोमम्) ज्ञान या आनन्द-रस को (पवित्रे) दशा पवित्र नामक वस्त्र-खण्ड के समान विवेकशील चित्त में (आनय) प्राप्त करा और (पातवे) पान करनेहारे (इन्द्राय) आत्मा के लिये (पुनाहि) इसे विमल, और स्वच्छ कर ।

२३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
[५००] तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
३ २ ३ १ २
तरत् स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ऋ० ९ । ५८ । १ ॥

भा०—(सः) वह (मन्दी) स्तुति करने हारा, स्वतः तृप्त आत्मा

४९९—'पुनीहि' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तरत्) इस देहबन्धन को तर जाता है। वही (सुतस्य) उत्पन्न हुए (अन्धसः) अन्धकार के नाशक ज्ञान और आनन्दरस की (धारा) धारा, या शक्ति द्वारा (धावति) ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है। वही (तरत्) अज्ञान को पार करके (मन्दी) अत्यन्त आनन्दमय होकर (धावति) परम शुद्ध होकर ब्रह्म को प्राप्त होजाता है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[५०१] आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम्।
३ १ २र
अस्मे श्रवांसि धारय ॥ ५ ॥ ऋ० ९। ६३। १॥

भा०—हे (सोम) आनन्दरस रूप आत्मन्! तू (सहस्रिणम्) सहस्रों (सुवीर्यम्) उत्तम सामर्थ्य से सम्पन्न (रयिम्) धन को (आ पवस्व) प्राप्त करा। (अस्मे) हमें (श्रवांसि) नाना ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्न (धारय) धारण करा।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
[५०२] अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः।
३ १ २ ३ २
रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ ६ ॥ ऋ० ९। २३। २॥

भा०—(प्रत्नासः) पुराने, प्राचीन, शाश्वत (आयवः) जीवन की कामना करने वाले पुरुष (नवीयः) अत्यन्त स्तुतियोग्य, उत्तम (पदम्) प्राप्तव्य ब्रह्मपद या ज्ञातव्य ज्ञान को (अनु अक्रमुः) अनुसरण करते हैं। वे (रुचे) अपनी दीप्ति-प्रकाश के निमित्त (सूर्यम्) सूर्य के समान प्रेरक मुख्य प्राण को या परमेश्वर को (जनन्त) सामर्थ्यवान् बनाते, उसकी सब शक्तियों की भावना करते या साक्षात् करते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[५०३] अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत्।
३ २ ३ २ ३ २
सीदन् योनौ वनेष्वा ॥ ७ ॥ ऋ० ९। ६५। १९॥

५०३—'सीदन् श्येनो न योनिमा' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (सोम) सबके प्रेरक ! हे (द्युमत्तम) प्रकाशमान् पदार्थों में सबसे श्रेष्ठ ! (वनेषु) सेवन करने योग्य पदार्थों और कर्मफलों में या ब्रह्माण्डों में, (योनौ) अपने आश्रयस्थान पर (सीदन्) विराजमान होकर (आ) विचर और (द्रोणानि अभि) द्रवणशील, विनाशशील इन कलशस्वरूप देहों में भी (रोरुवत्) प्राणरूप से नाद करता हुआ तू (आ अर्प) व्याप्त हो ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
[५०४] वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देवं वृषव्रतः ।
१ ३ १ २
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ ८ ॥ ऋ० ९ । ६४ । १ ॥

भा०—हे (सोम) आत्मन् ! (वृषा) सब काम्य-सुखों के वर्षक आप (द्युमान्) दीप्ति से युक्त (असि) हो । हे (देव) सुखों के देनेहारे ! (वृषा) तू सबसे श्रेष्ठ (वृषव्रतः) धर्मानुकूल कार्य करने और सुखों के वर्षाने वाले मेघ के समान (वृषा) स्वतः सर्वसुखों के वर्षक, आनन्दप्रद धर्म मेघस्वरूप होकर (धर्माणि) सबको धारण करने वाले नियमों को (दध्रिषे) धारण करता, निर्माण करता, स्थापन करता है ।

३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
[५०५] इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
१ २ ३ १ २र
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ ९ ॥ ऋ० ९ । ६४ । १३ ॥

भा०—हे (सोम) आत्मन् ! तू (मनीषिभिः) मनन करने वाले या मन को तेरे प्रति प्रेरणा करने वाले विद्वान् साधकों द्वारा (मृज्यमानः) विवेचना किया गया, परिशोधित किया हुआ होकर (धारया) निरन्तर आनन्द के प्रवाह रूप में (इषे) अन्न और ब्रह्म सम्पादन के निमित्त (पवस्व) प्रकट हो । और (रुचा) अपनी कान्ति द्वारा ही हे (इन्दो)

५०४—'दधिषे' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्यसम्पन्न ! प्राणशील ! तू (गाः) वाणियों या इन्द्रियों के प्रति भी (अभि इहि) प्राप्त हो ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[५०६] मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।
२ ३ १ २ ३ २
अव्या वारेभिरस्मयुः ॥ १० ॥ ऋ० ९ । ६ । १ ॥

भा०—हे सोम ! (वृषा) वर्षणशील, सुखों का वर्षक, (देवयुः) देवों, विद्वानों, इन्द्रियों का हितकर तू (मन्द्रया) आनन्ददायक (धारया) रसरूप धारा से (पवस्व) प्रवाहित हो, और (अस्मयुः) हमारा हितकारी (वारेभिः) विघ्ननिवारक बलों से (अव्याः) हमारी रक्षा कर । अथवा (अव्याः) चिति शक्ति के (वारेभिः) आवरण करनेहारे कोशों में से भी तू (पवस्व) क्षरित होकर प्रकट हो ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २
[५०७] अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः ।
३ १ २र
मन्दान इद् वृषायसे ॥ ११ ॥ ऋ० ९ । ४० । १ ॥

भा०—हे (सोम) आत्मन् ! (अया) इस (सु-कृत्यया) उत्तम सदाचाररूप विधि से तू (महान् सन्) बड़ा होता हुआ (अभि अवर्धथाः) साक्षात् बढ़ा और (मन्दानः) हर्ष से (इद्) ही (वृषायसे) मेघ के समान सुखों का वर्णन और उत्तमध्वनि, नाद का उपदेश कर ।

३१ २र ३ १ २र ३ १ २
[५०८] अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति ।
३ २र २र ३ २
हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥ ऋ० ९ । ६२ । १० ॥

भा०—(अयम्) यह आत्मा (विचर्षणिः) सबको विशेष रूप से देखने वाला, (पवमानः) सबको शुद्ध, पवित्र करता हुआ, सर्वव्यापक (सः) वह (बृहत्) बहुत अधिक (आप्यम्) प्रजाओं के हितकारी वस्तु

५०६—'अव्यो वारेष्वस्मयुः' इति ऋ० ।

५०७—'सोम', 'महश्चिदभ्यवर्धत', 'मन्दान उद्वृषायते' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्न और ज्ञान को (हिन्वानः) प्रेरित करता हुआ (चेतति) जाना जाता, या स्वयं ज्ञानवान् होता, या ज्ञान ग्रहण करता है।

१ २ ३ १२ २२ ३ १२ २२
[५०९] प्र न इन्दो महे तुन ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि।
३ २ ३ २ ३ १ २
अभि देवाँ अयास्यः ॥ १३ ॥ ऋ० ६ । ४४ । १ ॥

भा०—हे (इन्दो) ऐश्वर्यसम्पन्न ! आप (महे तुने) विशाल ज्ञान प्राप्त करने के लिए (नः) हमारे लिये (ऊर्मिं न) तरङ्ग के समान (बिभ्रद्) हर्ष उत्पन्न करता हुआ (अर्षसि) प्रकट हो और (देवान् अभि) देवों, विद्वानों, ज्ञानयोगियों के प्रति (अयास्यः) 'अयास्य' अर्थात् मुख्य प्राण रूप में प्रकट होते हो। 'अयास्य' का वर्णन बृहदारण्यक उपनिषद् में देखो।

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
[५१०] अप घ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः।
३ १ २ ३ २
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १४ ॥ ऋ० ९ । ६१ । २५ ॥

भा०—(सोमः) ज्ञानवान् आत्मा (मृधः) काम क्रोध आदि आत्मा के साथ युद्ध करने वाले आभ्यन्तर शत्रुओं को (अपघ्नन्) विनाश करता हुआ (अराव्णः) अदानशील, कृपण वृत्तियों को भी (अप) दूर करता हुआ (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के (निष्कृतम्) स्थान, मोक्षपद को (गच्छन्) प्राप्त होता है।

इति द्वितीया दशतिः । चतुर्थः खण्डः ।



॥ दशतिः ३ ॥ ऋषिः—भरद्वाजः काश्यपो गोतमोऽत्रिर्विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठश्चैते सप्तर्षयः क्रमशः ॥ पवमानः सोमो देवता ॥ बृहती ॥

५०९—'महेतन' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
[५११] पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१॥
ऋ० ९ । १०७ । ४ ॥

भा०—हे (सोम) आत्मन् ! तू (धारया) धारा से (अपः वसानः) कर्मों और प्रजाओं, प्राणों या लिङ्ग शरीरों में व्याप्त होकर सबको (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अर्षसि) विराजता है । (रत्नधा) रमणीय पदार्थों का पोषक (ऋतस्य) इस जीवन या ज्ञान के (योनिम्) मूलकारण में (आ सीदसि) स्थित है । और स्वयं (हिरण्ययः) कान्तिस्वरूप या सब इन्द्रियगण के लिये हित और रमणीय होता हुआ (देवः) सबका तर्पक, (उत्सः) सबके प्रति रस का सञ्चार कराने हारा जीवन व आनन्द का एकमात्र उद्गम है । यहां शुक्र, ज्ञान और योग-साधन से प्राप्त विशेष आनन्दमय अनुभव का वर्णन है ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
[५१२] परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥
ऋ० ९ । १०७ । १ ॥

भा०—(अध्वर्युः) इस जीवनयज्ञ या योगयज्ञ का सम्पादक, (सोमम्) अन्तरात्मा के आनन्द को (अद्रिभिः) मेघों से जल के समान, और विद्वानों से ज्ञानों के समान योगसाधनों द्वारा (सुषाव) पैदा करता है । (यः) जो सोम (नर्यः) मनुष्यों का हितकारी, (अप्सु) प्रजाओं या कर्मों या प्रज्ञाओं, प्राणों के (अन्तरा) बीच में (दधन्वान्) व्याप्त रहता है, (यः सोमः) जो सोम (उत्तमम्) उत्तम (हविः) हविः = तृप्ति, परम संतोष और परम आनन्द का साधन है, उसको हे

५११—'देव' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक जनो ! (इतः) इस हृदयस्थान से (सुतम्) उत्पन्न हुए को (परिषिञ्चत) सब ओर को बहाओ ।

१   २   ३ १   २र   ३ १   २र ३ १ २
[५१३] आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विंशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥३॥
ऋ० ६ । १०७ । १० ॥

भा०—हे (सोम) आत्मन् ! (अद्रिभिः) योगसाधनों या योगियों द्वारा (सुष्वानः) उत्पन्न या साक्षात् किया जाकर (अव्यया) अवि, भेड़ के वालों के बने, छानने के कपड़े के समान, तमोमय (वाराणि) आवरणों को (तिरः) पार करता हुआ (जनः न पुरि) जिस प्रकार वीर पुरुष परकोट लांघता हुआ नगर में प्रवेश करता है उसी प्रकार (चम्वोः) चमसों या द्यौ और पृथिवी में, और आत्मा, मस्तक के दोनों भागों में, (विशद्) प्रवेश करता हुआ, (हरिः) सब तमोमय वाधाओं को दूर करता हुआ (वनेषु) सेवन करने योग्य स्थान, हृदय में (सदः) स्थिति (दध्रिषे) प्राप्त करता है । ब्रह्मानन्द, आत्मानन्द या योगज सुख का समान रूप से वर्णन है ।

१   २   ३१ २ ३ २ ३१ २ ३   १ २
[५१४] प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
३ १   २र   ३ १   २र ३ २ ३ १ २   ३ १ २
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥
ऋ० ६ । १०७ । १२ ॥

भा०—हे (सोम) आत्मन् ! (देव-वीतये) देवों, विद्वानों, इन्द्रियो के अथवा परमेश्वर के ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (अर्णसा) जल के समान ज्ञान, विशेष अनुभव या प्राणशक्ति से (सिन्धुः न) महान् नदी या समुद्र के समान (पिप्यसे) बढ़ता है । और (मदिरः) हर्ष का उत्पादक, (जागृविः) निरन्तर जागने वाला, (अंशोः) व्यापनशील

५१३—'सुवानो' 'दधिषे च' ऋ० ।

 CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा के (पयसा) ज्ञान या स्वाभाविक आनन्द रस से मिलकर (मधुश्चुतम्) मधुर आत्मज्ञान को बहाने वाले (कोशम्) आनन्दमय कोश या परम सुख की निधि को (अच्छ) साक्षात् प्राप्त हो ।

मधु और देवों के मधुच्युत् कोश का वर्णन अथर्ववेद और बृहदारण्यक उपनिषत् (अ० २ । ५) में उत्तम रूप से वर्णित है ।

[५१५] सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥५॥

ऋ० ९ । १०७ । ८ ॥

भा०—हे (सोम) आत्मन् ! (सोतृभिः) सवन करनेहारे साधकों द्वारा (अवीनाम्) इन्द्रियों के (स्नुभिः) मार्गों से (अधि स्वानः उ) सवन किया जाता हुआ (हरितया) गतिशील (अश्वया) व्यापक चेतना से (मन्द्रया) आनन्दजनक (धारया) प्रवाह के रूप में (याति) हृदय में प्रकट होता है अर्थात् (मन्द्रया धारया याति) उत्तम अश्व के समान आनन्दजनक धारा के रूप में प्रकट होता है अर्थात् जैसे राजा तेज़ घोड़ी पर दुड़की चाल से चलकर नगर में सर्वत्र जाता है उसी प्रकार (सोम) आत्मानन्द भी मन्द्रा धारा, सुखप्रद वाणी से हृदय में प्रकट होता है ।

[५१६] तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि ॥६

ऋ० ९ । १०७ । १९ ॥

भा०—हे (सोम) परम रस ! (तव सख्ये) तेरी मित्रता में (अहम्) मैं (इन्द्र) आत्मा (रारण) निरन्तर रमण करूं । हे (बभ्रो !) समस्त प्रजा के भरण-पोषण करने हारे ! (पुरूणि) ये इन्द्रियां या प्रजायें (मां) मुझ को (नि-अव-चरन्ति) नीची वृत्तियों में ले दौड़ती हैं । इसलिये (तान्) उन (परि-धीन्) चारों ओर से घेरे हुए वैरी रूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन इन्द्रियों को (अति इहि) पार करले, वश करले, उनपर विजय कर जिससे वे विषयरसों में न लागकर भीतरी आनन्द की ओर ही अन्तर्मुख होजायें।

३ १ २ ३ १ २र
[५१७] मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि।
३ र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ ३क २र
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ ७ ॥

ऋ० ६। १०७। २१॥

भा०—हे (सु-हस्त्या) उत्तम हाथ की अंगुलियों के समान दश प्राण साधनों से युक्त ! अथवा अज्ञान को उत्तम रीति से हनन करनेहारे कुशल ! (सोम) आत्मन् ! तू (समुद्रे) समुद्र, आनन्द-रस के उत्पत्तिस्थान हृदयाकाश में (मृज्यमानः) पवित्र होता हुआ (वाचं) व्यक्त वेदवाणी को (इन्वसि) प्रेरित करता है। हे (पवमान) हृदय को पाप से शून्य एवं पवित्र करनेहारे ! आप(पिशङ्गं)पीले,सुवर्ण के समान कान्तिमान् , (बहुलं) अति अधिक (पुरुस्पृहं)प्रजाओं और इन्द्रियों के स्पृहा, अभिलाषा के विषय (रयिं) भोग्य पदार्थ, ऐश्वर्य विभूति को (अभि अर्षसि) स्वतः व्यापता है।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[५१८] अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ / १ २
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः॥८

ऋ० ६। १०७। १४॥

भा०—(सोमासः)सोम=सौम्य स्वभाव के, शान्त, तपस्वी (आयवः) दीर्घजीवी, (मद-च्युतः) हर्ष, सुख का प्रकाश करनेहारे, मौजी (मत्सरासः) स्वयं गौरव से परिपूर्ण, आनन्दयुक्त, (मनीषिणः) मन को अपने वश करने हारे, योगिजन (समुद्रस्य) उमड़ते हुऐ आनन्दसागर की

५१७—'सुहस्त्य इति ऋ०।
५१८—'अधिविष्टपि', 'मत्सरासः स्वर्विदः' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अधि विष्टपे) चरम सीमा में स्थित होकर (मद्यं) हर्षजनक (मदं) आनन्दरस को (अभि पवन्ते) चारों ओर बहाते या साक्षात् करते हैं ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २

[५१९] पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।

१र २र ३१ २ ३१ २

त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥६॥

ऋ० ९ । १०७ । ६ ॥

भा०—हे (सोम) आत्मन् ! (जागृविः) जागरणशील, (अव्याः) अवि, चेतना या प्राण के (वारैः) वृत्तियों चेष्टाओं या ऊहापोहों द्वारा (पुनानः) पवित्र करता हुआ (प्रियः) सबका प्रिय, (विप्रः) मेधावी, (त्वं) तू (अङ्गिरस्तमः) सबसे अधिक प्रकाशमान, आनन्दरूप परमरस में (परि अभवः) प्रकट होता है । तू (नः) हमारे (यज्ञम्) जीवन-यज्ञ को (मध्वा) उस आनन्दरूप मधु से (मिमिक्ष) सींच दे, भर दे ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २

[५२०] इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।

३१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमीं मृजन्त्यायवः ॥१०॥

ऋ० ९ । १०७ । १७ ॥

भा०—(सुतः) सोमरस के समान तैयार किया हुआ, छाना हुआ, परिशोधा हुआ (मदः) आनन्दस्वरूप (सोमः) सोम (मरुत्वते) प्राणों, प्रजाओं और मध्यस्थानीय मरुद्गण के अधिपति (इन्द्राय) आत्मा, राजा और परमात्मा के लिये (पवते) बहता है । वह (सहस्र-धारः) सहस्रों शक्तियों के रूप में (अव्यम्) अवि = चेतनामय मनःसाधन को (अति) अतिक्रमण करके (अर्षति) प्रकट होता है । (तम्) उस (ईं) इस सोम रस को (आयवः) परम आयु से सम्पन्न साधक लोग (मृजन्ति) और भी परिष्कृत करते हैं । अवि, मेषी रूप चेतना का वर्णन अथर्ववेद में विस्तार

५१९—'जागृविरव्यो 'वारे' अभिवोंगिरस्तमो' 'मिमिक्ष नः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से है। जैसे—अविर्वै नाम देवतर्तेन परीवृता। तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः। अथर्व० (१० । ८ । ३१)

इसका वर्णन वशा, ब्रह्मगवी, मेषी, शतौदना, मधुकशा आदि नाना नामों से वेदों में आया है। यही सप्तर्षियों की ब्रह्मण्वती है जिसका सोम वत्स और छन्दः पात्र है, ब्रह्म और तप उसका दूध है। इत्यादि। अथर्व० ८ । १० (४) १४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[५२१] पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १
त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्मन् देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥११॥
ऋ० ९ । १०७ । २३ ॥

भा०—हे (सोम) आत्मानन्द ! (विश्वानि) समस्त (वार्या) आवरणकारी बाधाओं को (अभि) मुक़ाबला करके, उनको हटाकर (वाज-सातमः) ज्ञान और बल से सम्पन्न होकर (पवस्व) प्रकाशित हो। (त्वं) तू हे (सोम) परमरस ! हे (विधर्मन्) नाना प्रकार से पोषण करने वाले (मत्सरः) आनन्द रस में बहने वाला, (समुद्रः) समुद्र के समान हृदय में उमड़ने वाला (देवेभ्यः) द्योतमान, प्रकाशमान, ज्ञानी, दिव्यगुणी, साधकों या इन्द्रियों के लिये भी (प्रथमे) श्रेष्ठ कर्म, मुख्य उपदेश में (पवस्व) प्रकट हो।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[५२२] पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभिप्रयांसि च
॥ १२ ॥ ऋ० ९ । १०७ । २५ ॥

भा०—(पवमानाः) पवित्र, परिशोधित किये गये, (मत्सराः)

५२१—'वाजसातये' 'काव्या' 'समुद्रं' इति ऋ०।

५२२—'पवमाना' 'अभिप्रयांसि' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्दरस में विचरण करने वाले (धारया) अपनी धारणा के बल से (पवित्रम्) पवित्र, पावन करनेहारे ज्ञान को (अति) अति अधिक (असृक्षत) उल्लेख करते हैं। (मरुत्वन्तः) मरुत्, प्राणों से युक्त (इन्द्रियाः) आत्मा के ऐश्वर्य से युक्त, (हयाः) गतिशील, ज्ञानी, होकर (मेधाम्) मेधा (प्रयांसि) और बलों को (अभि) साक्षात् प्राप्त करते हैं।

इति तृतीया दशतिः । पञ्चमः खण्डः ।

॥ दशतिः ४ ॥ ऋषिः—१, ९ उशनाः काव्यः । २ वृषगणो वासिष्ठः । ३, ७ पराशरः शाक्त्यः । ४, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणः । ५, १० प्रतर्दनो दैवोदासिः । ८ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ पवमानो देवता ॥ त्रिष्टुप् ॥

[५२३] प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभिवाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हीरशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥

ऋ० ९ । ८७ । १ ॥

भा०—हे (सोम)! परम आनन्दरस! (प्र द्रव तु) तू क्षरित हो। और (कोशम्) कोश, ब्रह्माण्ड, मूर्धास्थान को (परि निषीद) व्याप्त करके विराजमान हो और (नृभिः पुनानः) विद्वान् पुरुषों से पवित्र या विवेचित, परिशोधित होकर (वाजम्) ज्ञान के प्रति (अभि अर्ष) साक्षात् प्रवाहित हो, ज्ञान को प्राप्त हो। (वाजिनम्) बलवान्, वेगवान् (अश्वं न) अश्व को जिस प्रकार (मर्जयन्तः) परिमार्जन करते हुए, झाड़ते पोंछते हुए या सान्त्वना देते हुए (रशनाभिः) बागों से पकड़ कर संग्राम में ले जाते हैं उसी प्रकार (वाजिनम्) ज्ञान विभूति से युक्त सोमरूप (त्वा) तुझ आत्मा को परिमार्जन या शोधन करते हुए (रशनाभिः) योगसाधनाओं से (बर्हिः) हृदयरूप यज्ञ में या बृहत् ब्रह्म में (नयन्ति) लेजाते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[५२४] प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र १ २
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् २
ऋ० ९ । ९७ । ७ ॥

भा०—(उशनाः इव) विद्वान् मेधावी, सौम्यस्वभाव, (देवः) विद्वान्, सुखप्रद होकर (काव्यम्) सुन्दर काव्य, वेदज्ञान या संसार के रहस्य को (प्र ब्रुवाणः) उत्तम रीति से वर्णन, उपदेश करता हुआ (देवानाम्) वसुओं, रुद्रों और आदित्यों एवं इन्द्रिय गण, और प्राण अपान आदि नव प्राणों के (जनिम्) प्रादुर्भाव होने के रहस्य को (आ विवक्ति) स्पष्ट रूप से बतलाता है । और (महिव्रतः) विशाल कर्म और प्रज्ञा का करने वाला, (शुचि-बन्धुः) अपने शुद्ध तेज द्वारा सबको अपने साथ बांधने हारा, सब पवित्र हृदयों का बन्धु, (पावकः) सबको पवित्र करने हारा, अग्निस्वरूप (वराहः = वर-आहः) श्रेष्ठ उत्तम वाणी का बोलने हारा (रेभन्) उत्तम ज्ञानोपदेश करता हुआ (पदा) प्राप्त करने योग्य ज्ञान रहस्यों को और उत्तम स्थानों, ज्ञानदशा और सुखप्रद दशाओं को (अभि एति) प्राप्त होता है ।

'उशनाः— वशेः कनसिरौणादिः । वश कान्तौ अदादिः ।

३ १र २र ३ १ २ ३र ३ १ २ ३ १र २र ३ २
[५२५] तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो
३ २
वावशानाः ॥ ३ ॥ ऋ० ९ । ९७ । ३४ ॥

भा०—(वह्निः) ज्ञान का वहन करने वाला (तिस्रः वाचः) ऋग्, यजुः, साम स्वरूप तीन वेदवाणियों को (प्र-ईरयति) उत्तम रूप से प्रकट करता है । (ऋतस्य) सत्य, ज्ञान और यज्ञ को (धीतिम्) धारण करने वाली (ब्रह्मणः) ब्रह्म या वेदज्ञ की (मनीषाम्) मनको प्रेरणा करने वाली वाणी, स्तुति को भी प्रेरित करता है । जिस प्रकार गौएं गोपाल के पास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजाती हैं उसी प्रकार ये (गावः) गोरूप वेदवाणियां मानो अपना रहस्य-तत्व (पृच्छमानाः) पूछती हुई (गोपतिम्) वेदवाणियों के परिपालक विद्वान् के पास (यन्ति) पहुंच जाती हैं, (मतयः) मननशक्तियां या सुन्दर विचार धाराएं भी (वावशानाः) अपने अनुकूल पालक की कामना करती हुई (सोमम्) उस शम, दम आदि गुणसम्पन्न तत्त्वज्ञानी के पास (यन्ति) चली जाती हैं।

ऋषि यास्क के मत से—'वह्निरात्मा भवति। स तिस्रो वाच ईरयति प्रेरयति विद्यामतिबुद्धिमताम्। ऋतस्यात्मनः कर्माणि ब्रह्मणो मतानि। अयमेवेतत्सर्वमनुभवति, इति आत्मगतिमाचष्टे। अर्थात् वह्नि आत्मा है। वह तीन वाणियों को प्रेरित करता है विद्या, मति और बुद्धि को। ऋत अर्थात् आत्मा के कर्म ब्रह्म को अभिमत हैं। यह ही सब अनुभव करता है इस प्रकार इस मन्त्र में आत्मा की गति कही है। विवरणकार माधव के मत में विद्या अर्थात् महत् तत्व, बुद्धि अर्थात् अहंकार, मन अर्थात् प्रधानता से पांचों ज्ञानेन्द्रियां, आत्मा इनको प्रेरित करता है। ऋतरूप आत्मा को धारण करने वाली मन की प्रेरणा ब्रह्म के अनुकूल होती है। इन्द्रियं रूप गौएं गोपति आत्मा से उसको पूछती हैं अर्थात् सोमरूप आत्मा की कामना से उसी में लीन हो जाती हैं।

३ २ ३२ ३१ २ ३१ २ ३२ ३२ ३ १२ ३ १ २
[५२६] अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥४॥
ऋ० ९।९७।१॥

भा०—(अस्य) इस विद्वान् आत्मा के (प्रेषा) प्रेरण करने वाले (हेमना) स्वर्ण के समान कान्ति वाले तेज से (पूयमानः) पवित्र, परिशुद्ध होता हुआ (देवः) अति दीप्तिमान् या सबको आनन्दरस का देने हारा, (देवेभिः) इन्द्रियगण के साथ (रसम्) आनन्द रस का (सम् अपृक्त) सम्पर्क करा देता है। उस समय (सुतः) वह प्रकट होकर (रेभन्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश करते हुए ज्ञाता के समान अनाहत ध्वनि करता हुआ (पवित्रम्) परम पावन पद को (परि-एति) प्राप्त होता है और (मिता इव) जिस प्रकार कार्यकर्त्ता आकर (पशुमन्ति) पशुओं से युक्त (सद्म) घर में आता है और पशु को जोतकर रथ में लगाता है उसी प्रकार वह (होता) साधक (मिता) ज्ञानी होकर (पशुमन्ति) पशुरूप इन्द्रियगण से युक्त (सद्म) इस शरीर को (परि-एति) पूर्ण वश कर लेता है। सोमरस के प्रादुर्भाव होने पर साधक की वृत्तियां स्वयं संसार के भोगों से विरत होकर आत्मानन्द में लग जाती हैं, उसी दशा को दर्शाया गया है।

[५२७] सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥५॥
ऋ० ९ । ९६ । ५ ॥

भा०—(मतीनां) सब मनोवृत्तियों का (जनिता) प्रादुर्भाव करने हारा, (दिवः) सूर्य के समान प्रकाशमान, तेजःपुञ्ज का (जनिता) उत्पादक, (पृथिव्याः) पृथिवी के समान विस्तृत त्वचा का (जनिता) उत्पादक, (अग्नेः) अग्निरूप वाणी का (जनिता) उत्पादक, (सूर्यस्य) सूर्यरूप चक्षु का (जनिता) उत्पादक, (इन्द्रस्य) प्राणरूप इन्द्र का (जनिता) उत्पादक, (विष्णोः) सर्वव्यापक आकाश के समान श्रोत्र या हृदयाकाश का (जनिता) उत्पादक वह (सोमः) आत्मा (पवते) प्रकट होता है। (देखो निरुक्त यास्क परि० २ । २२)

समष्टि व्यष्टि रूप से ब्रह्माण्ड में परमात्मा और पिण्ड में आत्मा समानरूप से स्पष्ट हैं। इसका विवरण देखो (कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद् अ० १, प्रतर्दनेन्द्र-संवाद)

[५२८] अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि॥६॥
ऋ० ९ । ९० । २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(वाणीः) वेद की वाणियां या आत्मा का निरूपण करने हारी सब वाणियां (त्रि-पृष्ठम्) वाणी, मन और काय तीनों स्थानों पर स्पर्श करने वाले, (वृषणम्) सब सुखों, ज्ञानों और बलों के वर्षक, (वयः-धाम्) प्राणरूप बल को धारण करने हारे, (अङ्गोषिणम्) प्रत्येक अङ्ग में निवास करने वाले, आत्मा को (अभि अवावशन्त) नित्य कामना करती हैं अर्थात् अपना सब गुप्त रहस्य उसी के प्रति प्रकट करती हैं और वह (वना) सब देहों में (वसानः) निवास करता हुआ (वरुणः) सबको व्याप्त करने वाला, सबके वरण योग्य, नदियों के लिये, (सिन्धुः न) महासमुद्र के समान (वार्याणि) सबके मनन करने हारे, वरण योग्य धनों को (रत्न-धाः) रत्नों को धारण करनेहारा, होकर (वि-दयते) नाना प्रकार से प्रदान करता या पालन करता है।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ ३ १र २र ३ २
[५२९] अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः॥७

ऋ० ९। ९७। ४०॥

भा०—(बृहत् सोमः) वह बड़ा विशाल सोम, सबका प्रेरक और उत्पादक परमात्मा और आत्मा (स्वानः) प्रकट होता हुआ (अद्रिः) कभी न टूटने वाला, अभेद्य, नित्य, अमर आत्मा (वृषा) सब सुखों का वर्षाने हारा, (अव्ये) अविनाशी, चिन्मय (पवित्रे) सबको पवित्र करने हारे (सानोः अधि) आनन्दस्वरूप ब्रह्म में या मूर्धा प्रदेश में (वावृधे) बढ़ता है, अपनी महिमा को अनुभव करता है। वह (समुद्रः) समुद्र के समान सब इन्द्रियों का एकमात्र आश्रयस्थान, (प्रथमे) अति उत्कृष्ट (विधर्मन्) नाना आश्रयस्थानों में या अन्तरिक्ष स्थानों में या इन्द्रियों के

५२९—'धामाङ्गृषिणं' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिद्र देशों में (प्रजाः) अपनी प्रजाओं को, इन्द्रियगणों को, (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ, (भुवनस्य) इस ब्रह्माण्ड और इस देह का (गोपाः) पालक (अक्रान्) सबको लांघ कर बैठा है, वह सबसे परे विद्यमान है। इसका रहस्य गीता, बृहदारण्यक, ऐतरेय आदि में स्पष्ट किया है। आत्मा परमात्मा दोनों पक्षों में यास्क ने लगाया है (यास्क परि० २ अ०)।

[५३०] कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥८॥

ऋ० ६ । ६५ । २ ॥

भा०—(आ सृज्यमानः) सब ओर से प्रकट होता हुआ (पुनानः) शुद्ध पवित्र रूप से प्रकट होकर (हरिः) सर्वव्यापक, आत्मा (वनस्य) भोग्य या सेवन करने योग्य इस देह के (जठरे) मध्य भाग में (सीदन्) विद्यमान, (नृभिः) मनुष्यों द्वारा, (यतः) संयत होकर (गाम्) वाणी को (निर्णिजं) अति शुद्ध, परिमार्जित (कृणुते) करता है, उसी को (कनिक्रन्ति) उपदेश करता है। (अतः) इसलिये आप लोग (स्वधाभिः) स्व = अपनी धारणा शक्तियों, या स्व = आत्मा को धारण करनेहारी चिति शक्तिद्वारा (मतिम्) मनन, विचार (जनयत) करो, उसकी साधना, उपासना, स्तुति आदि करो।

[५३१] एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥९॥

ऋ० ६ । ८७ । ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (वृष्णः) वर्षणशील (ते) तेरे लिये (एषः स्यः) यह वह (सोमः) आत्मा सोम, आनन्दरूप रस (वृषा) आनन्द का वर्षक (मधुमान्) ब्रह्मज्ञान रूप मधु से युक्त (पवित्रे) पवित्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिर्मय रूप में (परि अक्षाः) चारों ओर से स्रवित होता है । वह (सहस्र-दाः) हज़ारों सुखों का देने वाला, (शत-दाः) सैकड़ों शक्तियों का देने वाला, (भूरि-दावा) बहुत आनन्द को देने वाला, (शश्वत्-तमं) निरन्तर, स्थायी, नित्य, (बर्हिः) महान् आत्मा में (वाजी) बल, ज्ञान से सम्पन्न होकर (अस्थात्) स्थिति प्राप्त करता है ।

[५३२] पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये।
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ १० ॥

ऋ० ९ । ९६ । १३ ॥

भा०—हे (सोम) आत्मन् ! (मधुमान्) मधुर ब्रह्मरस से युक्त, (ऋतावा) सत्यज्ञान से युक्त, (सानोः अधि) हृदय देश या मस्तक भाग में (अव्ये) अवि-चेतना या प्राण के बने चित्त पर भी (अपः) नाना ज्ञान वृत्तियों को (वसानः) आच्छादित करता हुआ (पवस्व) प्रकट हो । (घृतवन्ति) दीप्ति या ज्योति से सम्पन्न (द्रोणानि) कलशों, मस्तकों में (मदिन्तमः) अति हर्ष आनन्द या आत्मा में संतोष उत्पन्न करने वाला (मत्सरः) हर्ष के रूप में हृदय में व्यापने वाला (इन्द्रपानः) आत्मा के एक-मात्र पान करने योग्य होकर (अव रोह) नीचे की ओर वह आ ।

इति चतुर्थी दशतिः । षष्ठः खण्डः ।

॥ दशतिः ५ ॥ ऋषिः—१प्रतर्दनः । २, १० पराशरः शाक्त्यः । ३ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः । ४ वसिष्ठो मैत्रावरुणः । ५ कर्णश्रुत् मृडीको वा वासिष्ठः । ६ नोधा गौतमः । ७ कण्वो घौरः । ८ मन्युर्वासिष्ठः । ९ कुत्स आङ्गिरसः । ११ कश्यपो मारीचः । १२ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ पवमानो देवता ॥ त्रिष्टुप् ॥

५३२—'वृषा वृष्णो', 'सहस्रसाः शतसा' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २र २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[५३३] प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना
३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवांत्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१॥

ऋ० ६ । ६६ । १ ॥

भा०—(सेनानीः) सेना का नायक, (शूरः) बलवान्, शूरवीर, सेनापति जिस प्रकार (रथानां अग्रे) रथों, रथारोही सैनिकों के आगे (गव्यन्) पृथिवी के विजय के लिये (प्र एति) आगे २ बढ़ता है और (अस्य सेना) इसकी सेना (हर्षते) उत्साह से प्रसन्न होती है, वह (सोमः) वीर राजा (सखिभ्यः) अपन मित्रों के लिये (भद्रान्) अति कल्याणकारी, सुखदायक (इन्द्र-हवान्) ऐश्वर्ययुक्त राजोचित आह्वानों, पुकारों और आज्ञावचनों को (कृण्वन्) करता हुआ (रभसानि) अति वेग वाले (वस्त्रा) ढक देने वाले शत्रु के आक्रमणों को (आ दत्ते) हटा देता है उसी प्रकार (सेनानीः) इन्द्रियगणों का नेता (रथानाम् अग्रे) रमण योग्य आनन्दप्रद देहों, या आभ्यन्तर रसों के मुख्य पद में स्थिर होकर (गव्यन्) वाणियों, या इन्द्रियसामर्थ्यों को, या आत्मभूमियों पर वश करता हुआ (प्र एति) आगे बढ़ता है । (अस्य सेना हर्षते) इसके समस्त इन्द्रिय, प्राणगण, या साधक प्रसन्न होते हैं । (सखिभ्यः) मित्र साधकों या प्राणगण को वह (भद्रान्) ऐश्वर्ययुक्त (इन्द्र-हवान्) आत्मा के नाना ज्ञानसामर्थ्य (कृण्वन्) प्रदान करता हुआ (रभसानि वस्त्राणि) अति वेग से युक्त प्रबल आच्छादक आवरणों को (आदत्ते) दूर कर देता है । इन्द्रियां तन्मुख हो जाती हैं । इन्द्र अर्थात् आत्मा के संस्मरण उस समय मंगल व सुख जनक जंचते हैं और तामस आवरण आत्मा के सामने से हटने लगते हैं ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
[५३४] प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन् वारं यत् पूतो अत्येष्यव्यम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पवमान पवसे धाम गोनां जनयन्त्सूर्यमपिन्वो अर्कैः॥२
ऋ० ९ । ९७ । ३१ ॥

भा०—हे सोम आनन्दमय ! (मधुमतीः) अति आनन्ददायक मधु से मिली हुई, ब्रह्मज्ञान की (ते धाराः) तेरी रस-धाराएं तब (प्र असृग्रन्) खूब उत्पन्न होती हैं (यत्) जब तू (पूतः) छने हुए ओषधि रस के समान पवित्र होकर (अव्यम्) प्राणमय कोश में से (अति एषि) पार होकर प्रकट होता है । हे (पवमान) पवित्रकारक ! (गोनां) इन्द्रियों के भीतर तू अपना (धाम) तेजोरूप रस (पवसे) चुआता है और वहां (जनयन) प्रकट होकर (अर्कैः) अपनी पवित्र किरणों से (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी साधक को (अपिन्वः) आनन्दरस से पूर्ण करता है । इस दशा में आदित्य के समान साधक तमतमाता, तेजस्वी हो जाता है ।

१ २ ३उ २र ३ १र २र ३ १र २र
[५३५] प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
स्वादुः पवतामतिवारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः॥३॥
ऋ० ९ । ९७ । ४ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (महते) बड़े भारी (धनाय) खजाना प्राप्त करने के लिये (प्र गायत) उत्तम रीति से स्तुति गान करो । और (देवान्) विद्वानों की हम (अभि-अर्चाम) सब प्रकार से अर्चा, पूजा, सत्कार और प्राणों की साधना करें । (सोमं हिनोत) सोम, आत्मानन्दमय रस को प्रेरित करो, प्राप्त करो । (अव्यं वारं) प्राणमय आवरण को (अति) पार करके (स्वादुः) आनन्दकारक आनन्दरस (पवताम्) प्रस्रवित हो और (इन्दुः देवः) वह प्रकाशमान, ऐश्वर्यवान् देव (कलशम्) इस घट,

५३४—'अत्येष्यव्यान्' 'ज्ञानः' इति ऋ० ।

५३५—'स्वादुः पवते' 'देवयुर्नः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देह, हृदयाकाश, या सोलहों कला वाले आत्मा में, घट में सोमरस के समान स्वच्छ होकर, (आ सीदतु) राष्ट्र में राजा के समान आ विराजमान हो।

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
[५३६] प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्नयासीत्।
३ १ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥४॥
ऋ० ९ । ९० । १ ॥

भा०—(हिन्वानः) सबको प्रेरण करने वाला, (रोदस्योः जनिता) सूर्य और पृथिवी के समान प्राण और अपान दोनों का उत्पादक, या प्रेरक (वाजं सनिषन्) ज्ञान, बल और अन्न का विभाग या प्रदान करता हुआ (रथः न) रथ, या रमणीय सूर्य के समान योगी या स्वच्छ आत्मा (प्र अयासीत्) उत्कृष्ट मार्ग से गति करता है और (आयुधा) उत्तम हथियार, योगसाधनों से (इन्द्रम्) आत्मा या परमात्मा की ओर (गच्छन्) जाता हुआ (सं-शिशानः) अच्छी प्रकार और भी तीक्ष्ण, प्रखर तेजस्वी होता हुआ (विश्वा वसु) समस्त जीवन के वास हेतु सम्पदाओं को (हस्तयोः) अपने वश में (आदधानः) करता हुआ (प्र अयासीत्) आगे २ बढ़ता चला जाता है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
[५३७] तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥५॥
ऋ० ९ । ९७ । २२ ॥

भा०—(वेनतः) कान्तिमान्, अज्ञान, तम से पार ज्ञानी (मनसः) मननशील योगी की (वाग्) वाणी (यदि) जब आनन्दरस को (ज्येष्ठस्य) इस ज्येष्ठ इन्द्र, आत्मा के (धर्मन्) धारण करनेहारे, (द्युक्षोः) प्रदीप्त,

५३६—'सनिष्यन्' इति ऋ० ।

५३७—'धर्मणिक्षोरनीके' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित तेज के (अनीके) प्रमुख स्थान में (तक्षत्) प्रकट करता है । (आत्) तब (वरम्) वरण करने योग्य (जुष्टम्) सेवनीय, (पतिम्) अपने पालक (कलशे इन्दुम् ईम्) इस हृदय में साक्षात् द्रवित होने वाले आनन्दमय रस के पास (गावः) इन्द्रिय या प्राणगण (आ वावशानाः) अत्यन्त कामना करती हुई गौओं के समान (आयन्) आजाते हैं । आनन्द रस के वर्णन में जब वाणी मग्न होजाती है तब और इन्द्रिय-वृत्तियां भी अन्तर्मुख हो जाती हैं ।

[५३८] साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥६॥
ऋ० ९ । ९३ । १ ॥

भा०—(धीरस्य) ध्यानवान् योगी की (साकम्-उक्षः) एक साथ ज्ञान या आनन्दरस का सेचन करने हारी (दश स्वसारः) दश बहनों के समान, स्वयं सरण करनेहारी दश (धनुत्रीः) प्रेरण करने वाली (धीतयः) ध्यानवृत्तियां, इन्द्रियां, या स्तुतियां (मर्जयन्त) आत्मा को निरन्तर अधिक-अधिक पवित्र करती हैं । (हरिः) सब दुःखों को हरण करनेहारा आत्मानन्दरस (सूर्यस्य) कान्तिमान्, मुख्य, आदित्य के समान उज्ज्वल आत्मा के (जाः) स्त्रियों के समान उसके अधीन प्रकट चित्तवृत्तियों के प्रति (परि अद्रवत्) बहता है । और वह स्वयं (अत्यः न वाजी) वेगवान् अश्व के समान (द्रोणम्) पात्र या कलश में सोम रस के समान द्रवित होने वाले आत्मा में (ननक्षे) व्याप्त हो जाता है ।

[५३९] अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयान् व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥७॥
ऋ० ९ । ९४ । १ ॥

५३९—'सूर्येन विश,' इति 'कवीयन्' इति च ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(वाजिनि-इव शुभः) जिस प्रकार घोड़े पर आभूषण एक से एक बढ़कर शोभा देते हैं और (सूरे न विशः) जिस प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा के आश्रित प्रजा के लोग उस पर अपनी भेंट व श्रद्धाञ्जलि चढ़ाने में एक से एक बढ़ते हैं, उसी प्रकार (विशः) अन्तः-प्रवेश करनेहारी (शुभः) शोभादायक, कल्याणकारिणी (धियः) चित्तवृत्तियां भी (अस्मिन्) इस राजा रूप आत्मा के अधीन (अधि स्पर्द्धन्ते) एक से एक बढ़ने का यत्न करती हैं। और (मन्म) जिस प्रकार अपने मन को हरने वाले (व्रजं न) गौवों के बाड़े में गोपालक (पशुवर्धनाय) अपने पशुओं की वृद्धि करता है उसी प्रकार (कवीयान्) क्रान्तदर्शी विद्वान्, आत्मा (अपः वृणानः) चित्तवृत्तियों या नाना कर्मों या प्राणगण या लिंग शरीरों को वश करता हुआ (पशु-वर्धनाय) इन्द्रिय रूप पशुओं की दर्शन शक्ति को बढ़ाने के लिये (मन्म) मनोमय, संकल्प-मय (व्रजम्) गमन या प्राप्त करने योग्य परमपद, आत्मस्वरूप ब्रह्म में (पवते) प्रवेश करता है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[५४०] इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥८

ऋ० ९।९७।१० ॥

भा०—(वाजी) ज्ञान और बल से सम्पन्न (इन्दुः) हृदय में द्रवणशील (सोमः) आत्मानन्दरस (मदाय) आनन्द, हर्ष की वृद्धि करने के लिये (सहः) सहन करने योग्य बल को (इन्द्रे) आत्मा में (इन्वन्) प्रेरित करता हुआ (गो-नि-ओघा) रश्मियों या ज्ञान वाणियों, स्तुतियों को नीची तरफ बहाने वाला होकर चन्द्र के समान, अथवा दुग्ध-मिश्रित सोमरस के समान (पवते) क्षरित होता है। उस समय वह

५४०—'पर्यरातीर्वरिवः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्दरस (रक्षः) आत्मोन्नति के बाधक, विघ्न करने वाले कारण को भी ((हन्ति) नाश करता है और (अरातिम्) प्रिय न लगने वाले अप्रिय कारण को (परि बाधते) दूर करता है। (वृजनस्य) समस्त बल का (राजा) स्वामी होकर वही (वरिवः) वरणीय आत्मगुण धन, अणिमादि सिद्धि और नव तुष्टियों को (कृण्वन्) प्रकट करता है।

[५४१] अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व।
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥९॥

ऋ० ९ । ९७ । ५२ ॥

भा०—हे (इन्दो) हृदय में बहने वाले आनन्दरस ! (अया) इस (पवा) पवित्र करने हारी धारा से (एना) इन (वसूनि) वास या जीवन के साधन प्राण या ऐश्वर्यों को (पवस्व) प्रेरित कर, प्रकट कर। हे (इन्दो) सोम ! (मांश्चत्वे) मन के एकमात्र गमन स्थान, मनोहर (सरसि) जलाशय में जल के समान, कलश में ओषधि रस के समान मानस हृदय में तू (प्र धन्व) द्रवित हो। (यस्य) जिस तेरे (जूतिं) वेग को (ब्रध्नः) सूर्य के समान रश्मियों और आकर्षण से अपने साथ इन्द्रियों को बांध रखने वाला आश्रय रूप आत्मा (चित्) भी (वातः न) वायु के समान (धात्) धारण करता है और (पुरु-मेधाः) नाना प्रकार की धारणावती बुद्धियों का मालिक, साधक (नरम्) नायक आत्मा को (तकवे) परमपद तक पहुंचने के लिये (धात्) धारण करता है।

ब्रध्नः—बध्नातेरौणादिनक्, वन्धेश्च ब्रध्नादेशः। उणा० ३ । ५ ॥

[५४२] महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥१०॥

ऋ० ९ । ९७ । ४१ ॥

५४१—'ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(महिषः) महान् आत्मा (महत्) बड़ा भारी कार्य तो (तत्) यह (चकार) करता है (यद्) कि (अपां गर्भः) सब कर्मों, प्रज्ञाओं और प्राणों को अपने भीतर ग्रहण करने में समर्थ होकर (देवान्) सब इन्द्रियों को (अवृणीत) अपने भीतर छुपा कर आवृत करके सुरक्षित रखता है । (पवमानः) व्यापनशील प्राण और वायु (इन्द्रे) आत्मा और मेघ में (ओजः) बल और विद्युत् तेज (अदधात्) प्रदान करता है (यत्) जिससे (इन्दुः) शरीर में व्यापक एवं द्रवणशील वीर्य, (सूर्ये) सबके प्रेरक और उत्पादक सूर्य-रूप मुख्य प्राण में (ज्योतिः) प्रकाश, कान्ति को (अजनयत्) उत्पन्न करता है ।

१ २ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[५४३] असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ ॥११॥

ऋ० ६ । ६१ । १ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (रथ्ये) रथों से विजय करने योग्य (आजौ) संग्राम में (धिया) प्रज्ञा और कर्म से विचारपूर्वक (वक्वा) सबको वचनोपदेश या आज्ञा करने वाला सेनापति (असर्जि) नियत किया जाता है, उसी प्रकार इस (रथ्ये) शरीर—साधना योग्य, अथवा परमरस के प्राप्त करने वाले, एक से दूसरे देह में जाने वाले आत्मा के हितकारी (आजौ) योग साधनों के यज्ञ रूप संग्राम में (धिया) ध्यान, धारणा द्वारा (वक्वा) ओंकारादि जप और स्तुति मन्त्रों को बोलने वाला साधक ही (असर्जि) सेना-पति के रूप में नियत किया गया है । वह स्वयं (प्रथमा) सब से श्रेष्ठ, (मनीषा) मन या मनन करने हारे साधन की ईषा, प्रेरणा, चेष्टा की आश्रय चिति शक्ति है जिसमें (मनोता) मनकी सब वृत्तियां ओत-प्रोत हैं । (अधि सानोः) अति उन्नत प्रदेश में (दश स्वसारः) दश बहनों के समान एक ही आश्रय रूप आत्मा के अधीन स्वयं सरण करने हारी दश प्राण वृत्तियां

५४३—'प्रथमो मनीषा' 'सदनानि' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वह्निम्) सबके वहन करने वाले आत्मा को (मृजन्ति) परिष्कृत, सुशोभित करती हैं और (सदनेषु) अपने २ स्थानों में (अच्छ) प्राप्त होती हैं।

३ २ ३२ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[५४४] अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ।
३ २ ३१ २ ३ २ २ १र २र ३ २ ३१ २
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥९॥

ऋ० ९ । ९५ । ३ ॥

भा०—(मनीषाः) मनन करने वाले आत्मा की ईषा अर्थात् चेष्टा करने वाली, ध्यानवृत्ति ही (अपां ऊर्मय इव) जलों की तरङ्गों के समान, प्राणों की तरङ्ग (ततुराणाः) अति वेगवती होकर (सोमम्) आनन्दरस रूप आत्मा को (अच्छ) उत्तम रीति से (प्र-ईरते) द्रवित करती हैं। वे ध्यानमयी बुद्धिवृत्तियां ही (नमस्यन्तीः) उस आत्मा को आदर से नमस्कार करती हुई, उसके प्रति झुकती हुई, अन्तर्मुख होकर (उशन्तम् उशतीः) कामनायुक्त प्रेमी को प्रेम करने वाली प्रियतमाओं के समान, मानो स्वयं कामना वाली होकर या प्रकाशस्वरूप तेजोधारा के समान चमकती हुई स्वयं वे (वशन्तम्) प्रकाश के पुंजस्वरूप आत्मा को ही प्रियतम के समान (उप यन्ति) उसे प्राप्त करतीं और उसमें ही (सं विशन्ति च) लीन हो जाती हैं, उसके संग सो सी जाती हैं। और (आ च विशन्ति) उसी रूप में प्रकट होती हैं, तन्मय हो जाती हैं।

इति पञ्चमी दशतिः । सप्तमः खण्डः ॥

इति प्रथमोऽर्धः प्रपाठकः ॥

॥ दशतिः ६ ॥ ऋषिः—१ अन्धीगुः श्यावाश्विः । २ नहुषो मानवः ॥ ३ ययातिर्नाहुषः । ४ मनुः सांवरणः । ५, ८ अम्बरीषो वार्षागिरः । ऋजिश्वा च भारद्वाजः । ६, ७ रेभसूनू काश्यपौ । प्रजापतिर्वाच्यः ॥ पवमानो देवता ॥ छन्दः—१—६, ८, ९ अनुष्टुप् । ७ बृहती ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[५४५] पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे।
६२६ ३ १ २ ३ १ २ ३क२र
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥
ऋ० ९। १०१। १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! (वः) आप लोग (पुरोजिती) आगे बहिर्मुखता को विजय करने हारी (अन्धसः) जीवन को धारण करने वाली शक्ति से सम्पन्न सोम के (सुताय) उत्पन्न, (मादयित्नवे) अतिपरम आनन्दजनक रस को प्राप्त करने और उसकी रक्षा के लिये (दीर्घजिह्व्यम्) लम्बी जीभ वाले, दूर तक विषय-रस लेने हारे। अति-तृष्णालु इस (श्वानम्) कुक्कुर के समान लोभी, भोगी मनको (अप श्नथिष्टन) विषयों के रस से दूर रख कर शिथिल करो।

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[५४६] अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति।
८१८ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ २ ॥
ऋ० ९। १०१। ७ ॥

भा०—(पूषा) पुष्टिकारक, (भगः) सब के भजन, सेवन योग्य, कल्याणकारी, ऐश्वर्यवान्, (रयिः) कांतिजनक, परम धनस्वरूप (अयम्) यह (सोमः) परमानन्द स्वभाव (पुनानः) सब बाह्याभ्यंतर को पवित्र करता हुआ या स्वयं शुद्ध, पवित्र रूप में प्रकट होता हुआ (अर्षति) द्रवित होता है। (विश्वस्य) समस्त (भूमनः) विशाल, भूमास्वरूप आत्मा का (पतिः) पालक होकर (रोदसी) द्यौ और पृथिवी दोनों को (वि अख्यत्) अपने तेज से प्रकाशित करता है।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[५४७] सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ३ ॥
ऋ० ९। १०१। ४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(मधुमत्-तमाः) आत्मा के आनन्द रस के अनुभव से युक्त (मन्दिनः) आनन्द और हर्ष के जनक (सुतासः) तैयार किये, प्रकट हुए (सोमाः) परमानन्द-रस और विद्वान् जन (पवित्रवन्तः) पवित्र-स्वरूप को धारण करने वाले, शीसिदशा में वर्त्तमान (इन्द्राय) आत्मा के लिये (अक्षरन्) क्षरित होते हैं, उसकी ओर बहे चले आते हैं। हे सोमरसो ! (वः) तुम्हारे (मदाः) आनन्द, हर्ष (देवान्) इन्द्रियगण या विद्वान् जनों को (गच्छन्तु) प्राप्त हों जिससे वे अन्तर्मुख हो जायं।

[५४८] सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ ४ ॥

ऋ० ६ । १०१ । १० ॥

भा०—(गातु-वित्-तमाः) मार्ग को उत्तम रीति से जानने हारे, (इन्दवः) आत्मा के प्रति साक्षात् द्रवित होने वाले, कान्तिस्वरूप, (सोमाः) ब्रह्मरस या योगिजन (मित्राः) हृदय, अन्तःकरण के मित्र या सब के मित्र, (अरेपसः) निर्दोष, निर्मल, निष्पाप, (स्वाध्यः) उत्तम ध्यानयोग के साधक (स्वः—विदः) प्रकाश के प्राप्त कराने हारे सर्वज्ञता के दायक, (स्वानाः = सुवानाः) प्रकट होते हुए (पवन्ते) क्षरित होते, प्राप्त होते या विचरते हैं।

सोमरस, आत्मानन्द और योगियों का समानरूप से वर्णन है।

[५४९] अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥ ५ ॥

ऋ० ६ । ६८ । १ ॥

भा०—हे (इन्दो) दीप्यमान सोम विद्वन् ! (नः) हमें

५४८—सुवानाः, इति ऋ० ।

५४९—'अभि', 'पुरुस्पृहम्', 'विश्वासहम्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वाज-सातमं) अन्न, ज्ञान, बल देने वाले, (शत-स्पृहं) सैकड़ों की अभिलाषा के पात्र, (सहस्र-भर्णसं) सहस्रों का भरण, पोषण करने हारे, (तुवि-द्युम्नं) बहुत ऐश्वर्य या तेज से सम्पन्न (विभा-सहम्) विशेष दीप्ति को भी मात करने वाले, अति तेजस्वी (रयिम्) उस दिव्य धन, आत्मा का (अभि अर्ष) प्रकाश कर, उसको प्राप्त कर, उस तक पहुंच।

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[५५०] अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥ ६ ॥
ऋ० ६। १००। १॥

भा०—(मातरः) गौएं, माताएं (पूर्वे आयुनि) पूर्व, बाल अवस्था में (जातं) नये उत्पन्न हुए (वत्सं) बच्चे को (न) जिस प्रकार (रिहन्ति) चाटती हैं, स्नेह से चूसती हैं, उसी प्रकार (अद्रुहः) समस्त संसार के प्राणियों के प्रति द्रोह का त्याग करनेहारे, अहिंसा के पालक, साधक (इन्द्रस्य) भीतरी आत्मा के (काम्यम्) अत्यन्त कामना वा स्नेह के विषय, जीवनरस के (अभि नवन्ते) निमित्त झुकते हैं, उसकी रक्षा करते हैं, उसको स्नेह करते हैं। योग के प्रथम अंग अहिंसा का निरूपण किया है।

'अहिंसा, सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानाम् अनभिद्रोहः। इति व्यासभाष्यम्। अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः सर्वप्राणिनां भवति'। (यो० सू०। व्या० भा०) सब कालों में सब प्रकार से प्राणियों का द्रोह न करना अहिंसा है। अहिंसा पालन से समस्त प्राणी वैर त्याग देते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[५५१] आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम्।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ २ १र २र ३ १ २
शुक्रा वियन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥ ७ ॥
ऋ० ६। ६६। १ ॥

५५१—'धनुस्तन्वन्ति', 'शुक्रां व्ययन्त्यसुराय निर्णिजं' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(हर्यताय धृष्णवे) अति प्रेमयुक्त राजा के लिये जिस प्रकार उसके सैनिक (पौंस्यं धनुः तन्वन्ति) बलयुक्त धनुष तानते हैं, जी-जान से शत्रु पर प्रहार करते हैं उसी प्रकार विद्वान्‌जन (हर्यताय) सबके अभिलाषा के योग्य, कमनीय (धृष्णवे) सब वृत्तियों को दबाने हारे, उस सोम अर्थात् आत्मा के हित के लिये(पौंस्यम्)मर्दानगी दर्शाने वाले (धनुः) धनुष, कामरूप धनु को (तन्वन्ति) साधते, वश करते हैं। अथवा परम पुमान् परमेश्वर के नाम ओंकाररूप धनुष को तानते हैं, उसका जप और मनन करते हैं । और (महीयुवः) महत्व की आकांक्षा करने हारे साधक (विपाम् अग्रे) विद्वान् मेधावी पुरुषों के समक्ष (असुराय) प्राणों के प्रेरक इस आत्मा के (निर्णिजे) स्वरूप को शोधन करने के लिये (वियन्ति) विशेष रूप से जाते हैं । पौंस्य धनुष का तानना = ब्रह्मचर्य का पालन और विद्वानों के पास जाना = स्वाध्याय है ।

ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियोपस्थसंयमः । ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः । यस्यलाभादप्रतिघान् गुणान् अणिमादीन् उत्कर्षयति । सिद्धश्च विनेयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवति ।(व्यासभाष्ये) स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ।(यो० सू०) तस्य वाचकः प्रणवः । २७ । तज्जपस्तदर्थभावनम् । २८ । ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥ उपस्थ इन्द्रिय का संयम ब्रह्मचर्य है । इससे वीर्य प्राप्त होता है । इससे अखण्ड बल प्राप्त होता है। इसी के बल पर आचार्य शिष्यों में ज्ञान स्थापन करता है । स्वाध्याय से परमेश्वर में भक्ति होती है । 'ओ३म्' परमेश्वर का नाम है । उसकी भावना और विचार से शीघ्र आत्मा का साक्षात् होता और सब विघ्न दूर होते हैं ।

२ ३ १ २ ३१र २र १ ३ २ ३ १ २
[५५२] परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।

३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १र २र
यो देवान् विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ॥ ८ ॥

ऋ० ९ । ९८ । ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(हर्यतं) सब के मनों को हरनेवाले अति कान्तियुक्त, (हरिम्) सर्वव्यापक, सब दुःखों के हरणकारी, (बभ्रुम्) कान्तिमान्, सबके भरण पोषण करने हारे, (त्यम्) उस आत्मा को (वारेण) वरण करने वाले भीतरी अन्तःकरण द्वारा या दोषों का वारण करने वाले प्रतिपक्ष-भावना या वितर्क-बाधन अर्थात् कृत, कारित और अनुमोदित लोभ मोह आदि द्वारा किये हिंसा आदि कर्मों के त्याग द्वारा स्वच्छ करते हैं । (यः) जो आत्मा (विश्वान् देवान्) समस्त देवों इन्द्रियगण को भी (मदेन) आनन्द-रस के (सह) साथ (परि गच्छति) भर देता है, प्राप्त होता है।

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् । वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्ष-भावनम् । (यो० सू० २ । ३३, ३) । प्रतिपक्ष भावना से वितर्कों के नष्ट होजाने पर योगी को सिद्धि के शीघ्र ही लक्षण प्रकट होते हैं।

[५५३] प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ ९ ॥

ऋ० ९ । १०१ । १३ ॥

भा०—(अन्धसः) अज्ञान अन्धकार के नाश करने वाले, परमानन्द स्वरूप सोमरस को (प्र-सुन्वानाय) उत्पन्न करने हारे साधक के लिये प्रकट हुई (तत् वचः) उस सोम की अनाहत वाणी को (मर्तः) साधारण मरणधर्मा पुरुष जिसको अमृत, सोमरस प्राप्त नहीं हुआ, वह (न वष्ट) नहीं प्राप्त कर सकता । (भृगवः) ज्ञानाग्नि से अज्ञान और पाप को भून डालने वाले ज्ञानी लोग जिस प्रकार (मखं न) कर्मकाण्ड को दूर कर देते हैं उसी प्रकार (अराधसम्) साधना न करने हारे, (श्वानम्) कर्मफल के लोभी, कुक्कुर के समान, त्यक्त भोगों को पुनः २ चाहने वाले, वान्ताशी चित्त को (अप हत) मार भगाओ ।

इति षष्ठी दशतिः । अष्टमः खण्डः ।

५५३—'प्र सुन्वानस्य', 'वृततद्वचः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ दशतिः ७ ॥ ऋषिः—१—३, ५ कविर्भार्गवः । ४ ऋषिगणः । ६ सिकता निवावरीः, ऋषिगणो वा । ७ वेणुर्वैश्वामित्रः । ८ वेनो भार्गवः । ९ भारद्वाजो वसुः । १० वत्सः । ११ अग्निर्मौमः । १२ पवित्र आङ्गिरसः । पवमानो देवता ॥ जगती ॥ निषादः ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३
[५५४] अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु
१ २ १ २र ३ २ १२उ ३ २ ३ १ २
वर्धते । आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्
२ ३
विचक्षणः ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ७५ । १ ॥

भा०—(चनः-हितः) पाकयोग्य अन्न के समान प्रवचन करने योग्य परिपक्व ज्ञान के निमित्त धारण किया गया (यह्वः) महान् आत्मा (येषु) जिन विशेष गुणों के आधार पर (अधि वर्धते) समस्त प्रजाओं के हृदयों में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है उन सब (प्रियाणि) अत्यन्त प्रिय (नामानि) नामों, या विशेषणों या सबको नमाने वाले महान् कर्मों में (अभि पवते) साक्षात् रूप से प्रकट होता है । वही (बृहतः) सबको बढ़ाने वाले (सूर्यस्य) सबके प्रेरक परमात्मा के बनाये (विश्वञ्चम्) समस्त प्राणियों को प्राप्त होने वाले (रथम्) इस देह-रथ को (विचक्षणः) साक्षी, द्रष्टास्वरूप होकर (अधि-आ-अरुहद्) अधिरोहण करता है, उस पर शासन करता और उसका भोग करता है ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[५५५] अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद्देवेषु हरयः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो
१ २
धियः ॥ २ ॥ ऋ० ९ । ७९ । १ ॥

५५५—'प्रसुवानासो बृहदिवेषु हरयः । वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ०—(हरयः) स्वयं हरणशील, गतिशील, (अचोदसः) विना किसी के बाह्य बल के, स्वयं प्रेरित (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् जीव, (स्वानासः) प्रकृष्ट रूप से प्रकट हुए (देवेषु) देवों, दिव्यगुणयुक्त विद्वानों या इन्द्रियों के बीच में (नः) हमें (बृहत्) खूब (धन्वन्तु) प्राप्त हों और (नः) हमारे (अर्यः) अरि, शत्रुस्वरूप, (अरातयः) सुख, काम्यफल के न देने वाले (इषयः) केवल कामोपभोग या अन्न की कामना करने वाले, कामी, तृष्णालु इन्द्रियगण (अश्नानाः) भोग करते हुए (वि चित्) न (सन्तु) रहें। (नः) हमें (धियः) उत्तम ध्यानवृत्तियों, ज्ञान और उत्तम कर्मों का (सनिषन्तु) प्रदान करें।

३ २उ   ३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

[५५६] एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः

३ २ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभ्यृ१तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा

३ १ २

च धेनवः ॥ ३ ॥   ऋ० ९ । ७७ । १ ॥

आ०—(एषः) यह सोम (इन्द्रस्य) आत्मा के (वज्रः) वज्र के समान सब विघ्नों और पापों का नाशक (वपुषः) बीजों को वपन करने हारे से भी अधिक, श्रेष्ठ (वपुष्टमः) बीज वपन करने वाला, वीर्यवान् (कोशे) हृदय-कोश, आभ्यन्तर मनोमय कोश के बीच में (मधुमान्) ब्रह्मानन्द के मधुर रस से पूर्ण (प्र-अचिक्रदद्) उत्कृष्ट रूप से अनाहत नाद उत्पन्न करता है। जिस प्रकार (वाश्राः) हम्भारव करती हुई (सु-दुघाः) उत्तम दूध देने हारी (धेनवः) दूध पिलाने वाली गौएं (पयसा) दूध से (अर्षन्ति) धाराएं बहाती हैं उसी प्रकार ये (घृत-श्चुतः) कान्ति की धाराएं बहाने वाले (ऋतस्य) ज्ञान के (सु-दुघाः) दोहने वाले परमानन्दरस (च) भी (अर्षन्ति) हृदय में क्षरित होते हैं, प्रकट होते हैं।

५५६—'वपुषो वपुष्टरः', 'अभीमृतस्य', 'पयसेव' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा'। (पातं० सू०)
उस दशा में सत्य ज्ञान वाली 'प्रज्ञा' का उदय होता है।

[५५७] प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम्। मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ४ ॥ ऋ० ९ । ८६ । १६ ॥

भा०—(इन्दुः) प्रकाशमय जीव आत्मा (इन्द्रस्य) इन्द्र, परमेश्वर का (सखा) समान नाम रूप धारण करने वाला उसके (निष्कृतं) पद, ज्ञान, स्थान, मोक्ष को भी (अयासीद्) प्राप्त हो जाता है तो भी (सख्युः) अपने सखा परमात्मा की (सं-गिरम्) उत्तम वेदवाणी, आज्ञा या शक्ति को (न) नहीं (प्र मिनाति) पार करता, नहीं मापता, नहीं उल्लंघन करता। वह (सोमः) सोम्य स्वभाव होकर (युवतिभिः) युवति स्त्रियों के साथ (मर्य इव) जिस प्रकार मर्द, युवा पुरुष (सम् अर्षति) संग करता है उसी प्रकार वह अपनी (युवतिभिः) सदा साथ रहने वाली प्राण और ज्ञानवृत्तियों सहित (शत-यामना) सैकड़ों प्रकार से जाने योग्य (पथा) मार्ग से (कलशं) षोडश-कलासम्पन्न ब्रह्म या आनन्दमय कोश में (सम् अर्षति) विचरण करता है।

[५५८] धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः। हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥ ५ ॥ ऋ० ९ । ७६ । १ ॥

भा०—(दिवः) द्यौलोक के समान देहमें मूर्धाभाग, या प्रकाशरूप सूर्य या ज्ञान का (धर्त्ता) धारण करने वाला (कृत्व्यः) योग साधनों

५५७—'शतयाम्ना' इति ऋ०।
५५८—'कृणुते नदीष्वा' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा उत्तम रूप से ज्ञान करने योग्य, (रसः) आनन्दरस स्वरूप (देवानाम्) ३३ देवों, इन्द्रियों और विद्वानों का (दक्षः) बलदाता, (नृभिः) मनुष्यों द्वारा (अनु-माद्यः) हर्ष प्राप्त करने योग्य, (अत्यः न) गमन करने हारे अश्व या आत्मा के समान (सत्वभिः) अपने सात्विक विभूतियों द्वारा (नदीषु) अपनी अनाहत नाद करने वाली धाराओं में, नदियों में जल के समान (वृथा) विना प्रयत्न के, स्वभावतः (पाजांसि) नाना प्रकार के बल (कृणुषे) प्रकट करता है ।

[५५९] वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः । प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन् मनीषिभिः ॥ ६ ॥ ऋ० ९ । ८६ । १९ ॥

भा०—(वृषा) सुखों का वर्षण करने वाला (सोमः) सोम (मतीनाम्) मनन शक्तियों वा ज्ञान वृत्तियों को (विचक्षणः) विविध प्रकार से साक्षात् करने वाला (अह्नाम्) दिनों, (दिवः) आकाश और (उषसां) प्रभात वेलाओं के समान, प्राणों, मूर्धाभाग और तेज-दीप्तियों के (प्रतरीता) खूब बढ़ाने वाला (सिन्धूनाम्) देह की नाड़ियों में (प्राणा) जीवन सञ्चार करने वाला आनन्दरस (इन्द्रस्य) आत्मा के (हार्दि) हृदय में (मनीषिभिः) मन की प्रेरणाओं द्वारा (आ विशन्) प्रवेश करता हुआ (अचिक्रदद्) भीतर २ नाद करता है ।

[५६०] त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि । चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ ७ ॥ ऋ० ९ । ७० । १ ॥

भा०—(यद्) जब (ऋतैः) सत्य ज्ञानों से आत्मा स्वयं (अवर्धत)

५६०—'दुदुह्रे' 'पूर्व्ये' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समृद्ध हो जाता है तब (अस्मै) इस के लिये (सप्त) सात (धेनवः) रसपान कराने वाली गौवों के समान ये सात इन्द्रियां जो मस्तक के सात छिद्रों में विराजमान हैं, (परमे) सब से उत्कृष्ट (व्योमनि) अपने रक्षास्थान मूर्धा, या ब्रह्माण्ड—कपाल में विराजमान होकर (सत्याम्) सत्यस्वरूप, यथार्थ (आशिरम्) ज्ञानधारा को (त्रिः) ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान इन तीनों प्रकारों से (दुदुह्रिरे) दोहन करती हैं। और (अन्या) अन्य (चत्वारि भुवनानि) चारों देह के भागों या अवस्थाओं को (निर्णिजे) परिशोधन करने के लिये वह (चारूणि) उत्तम कान्ति और बल से युक्त (चक्रे) कर देता है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
[५६१] इन्द्राय सोम सुषुतः परिस्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः
॥ ८ ॥ ऋ० ९ । ८५ । १ ॥

भा०—हे (सोम) ब्रह्मानन्दरस ! (सु-सुतः) उत्तम रीति से उत्पन्न होकर तू (इन्द्राय) आत्मा के लिये (परि स्रव) बह, प्रकट हो, (अमीवा) शरीरगत रोग (रक्षसा) मनोगत बाधक विघ्नों के (सह) साथ (अप भवतु) दूर हो। (द्वयाविनः) अमीवा और रक्षः अर्थात् शरीरगत रोग और मन की कुटिलता दोनों से भरे हुए पापी लोग (ते रसस्य) तेरे रस को (मा मत्सत) पाकर कभी प्रसन्न न हों। (इह) इस योगसाधना में (इन्दवः) अन्तःकरण में प्रकट होने वाले रस (द्रविणस्वन्तः) द्रुत गति वाले होकर बहते (सन्तु) रहें।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १
[५६२] असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा
२र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अचिक्रदत्। पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं
३ १ २ ३ १ २
घृतवन्तमासदत् ॥ ९ ॥ ऋ० ९ । ८२ । १ ॥

५६२—'पर्येत्यव्ययं' 'आसदम्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(राजा इव) राजा के समान (दस्मः) दर्शनीय, सबका शरण्य, (अरुषः) अरुणवर्ण, देदीप्यमान, कान्तिमान्, (वृषा) मेघ के समान सुखों का वर्षक, (हरिः) सबको हरण करने वाला, या सर्वव्यापक नेता, (सोमः) योगी आत्मा (असावि) तैय्यार किया गया है। जो (गा अभि) इन्द्रियों, वाणियों और जलों के प्रति (अचिक्रदत्) अपना नाद करता है। और (पुनानः) प्रकाशमान होता हुआ (अव्ययम्) कभी क्षीण न होने वाले, अभेद्य (वारम्) निवारक, रुकावट को भी (अति-एषि) पार कर जाता है। और (श्येनः न) गतिशील आत्मा बाज के समान अपने (घृतवन्तं) अत्यन्त दीप्ति युक्त (योनिम्) मूलकारण, आश्रय परमेश्वर को (आसदत्) प्राप्त करता है।

[५६३] प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः। बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥ १० ॥ ऋ० ९। ६८। १॥

भा०—(मधुमन्तः) मधुर रस वाले, ब्रह्मज्ञानी, (इन्दवः) सौम्य-गुणसम्पन्न, सबके आल्हादक, ब्रह्म की तरफ़ जानेहारे योगी, (धेनवः गावः न) दूध देनेहारी गौएं जिस प्रकार अपने बच्चे के प्रति (प्र असिष्यन्दत) अपना दूध प्रवाहित करती हैं उसी प्रकार (देवम्) प्रकाशस्वरूप उपास्य देव के प्रति (अच्छा) साक्षात् (प्र-असिष्यदन्त) गति करते हैं। और वे (बर्हि-सदः) महान् ब्रह्म में रमण करने वाले, (वचनवन्तः) वेदवाक्यों का अनुसरण करते हुए (ऊधभिः) ऊर्ध्व, मूर्धास्थान में आनन्दरस धारण करने हारे स्थानों से (परि-स्रुतम्) चुए हुए (निर्णिजम्) अति शुद्ध पवित्र आनन्दरस को (उस्रियाः) सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमान होकर (धिरे) धारण करते हैं, या पान करते हैं।

५६३—'वचनावन्त' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[५६४] अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाऽभ्यञ्जते।
सिन्धोरुऽच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु
गृभ्णते ॥ ११ ॥ ऋ० ९ । ८६ । ४३ ॥

भा०—योगी, साधक, भक्तजन (अञ्जते) साक्षात् करते हैं, (वि-अञ्जते) उसको नाना प्रकार से प्रकट करते हैं (सम्-अञ्जते) उसमें उत्तम रीति से अपने को लीन करते हैं, तब (क्रतुं) कर्म करनेहारे आत्मा के आनन्द को (रिहन्ति) आस्वादन करते हैं, उसका रस लेते हैं, उसको सतृष्ण हृदयों से पान करते हैं। (मध्वा अभि-अञ्जते) उसको भीतरी आनन्दरस के साथ एकरस कर लेते हैं। वे (हिरण्य-पावाः) ज्ञान से आत्मा को परिष्कार करने वाले (सिन्धोः) समुद्र के समान सर्वत्र गतिशील, या कर्मबन्धनों से बंधे जीवों को धारण करनेहारे आनन्द के अगाध सागर परमात्मा के (उत्-श्वासे) अपनी ओर ऊपर की तरफ़ प्रबल श्वास या प्राण के आकर्षण बल में (पतयन्तम्) गति करते हुए (उक्षणम्) आनन्दवर्षी (पशुम्) द्रष्टा जीव को (अप्सु) अपने ही प्रज्ञानों में (गृभ्णते) ग्रहण करते हैं, ज्ञान करते हैं। अथवा (सिन्धोः) गतिशील प्राणों के (उच्छ्वासे) ऊर्ध्व अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र की ओर की गति में (पतयन्तं उक्षणं पशुं) धावन करते हुए आनन्दवर्षी द्रष्टा जीवात्मा को (हिरण्य-पावाः) हिरण्यमय, दीप्तिमान् ढक्कने को भी पार करने हारे साधक (अप्सु गृभ्णते) अपने ही प्रज्ञानों या प्राणों के बीच में साक्षात् करते हैं।

[५६५] पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद् वहन्तः सं तदाशत॥१२॥
ऋ० ९ । ८३ । १ ॥

५३४—'मधुनाऽभ्यञ्जते', 'पशुमाप्सु' इति ऋ० ।

५६५—'तत्समाशत' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानरूप ब्रह्म के स्वामिन्! प्रभो! (ते) तेरा (पवित्रम्) पवित्र ज्ञान (विततम्) बड़ा विस्तृत, सर्वत्र व्यापक है। (प्रभुः) प्रकृष्ट सामर्थ्यवान् आप (विश्वतः) सब प्रकार से (गात्राणि) सब देहों में (परि-एषि) व्यापक हो। (अतप्त-तनूः) इस शरीर को तपस्याओं, योगसाधनाओं द्वारा तप्त न करने वाला, तपहीन (आमः) कच्चा पुरुष (तद्) उस तेरे पवित्र ज्ञानमय स्वरूप को (न अश्नुते) नहीं प्राप्त करता। (शृतासः) तपोमय अग्नि में परिपक्व विद्वान् (इत्) ही (वहन्तः) ज्ञान को स्वयं धारण करने हारे (तद्) उस सुख को (सम् आशत) उत्तम रीति से प्राप्त करते और भोगते हैं।

इति सप्तमी दशतिः। नवमः खण्डः।



॥ दशतिः ८ ॥ ऋषिः—१, ७, ११ अग्निश्चाक्षुषः। २ चक्षुर्मानवः। ३, ४, ६, १० पर्वतनारदौ काण्वौ काश्यप्यावप्सरसौ शिखण्डिन्यौ वा। ५ त्रित आप्त्यः। ६ मनुराप्सवः। ८, १२ द्वित आप्त्यः। पवमानो देवता। उष्णिक्। ऋषभः॥

२ ३१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
[५६६] इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१॥ ऋ० ९। १०६। १॥

भा०—(इमे) ये (सुताः) उत्पन्न किये हुए (हरयः) हरणशील, मनोहर (श्रुष्टे जातासः) व्यापक आत्मा में प्रादुर्भाव हुए या सुखस्वरूप ईश्वर में लीन हुए, (स्वः-विदः) प्रकाश, ज्ञान और आनन्द का लाभ करनेहारे, (इन्दवः) सौम्य गुण वाले, साधक योगी (वृषणम्) सुखों के वर्षक (इन्द्रम्) उस परमात्मा को (अच्छ यन्तु) भली प्रकार प्राप्त होते हैं।

५६६—'श्रुष्टी जातास' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[५६७] प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।
द्युमन्तं शुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥२॥ ऋ० ६ । १०६ । ४॥

भा०—हे (सोम) सौम्यगुण वाले ! (इन्दो) ईश्वर के प्रति रस-प्रवाह के समान गति करनेहारे साधक ! (जागृविः) जागरणशील, कभी आलस्य, तन्द्रा को न प्राप्त होकर, (इन्द्राय) उस ईश्वर या आत्मा को लक्ष्य करके (परि स्रव) बह, आगे बढ़, (द्युमन्तम्) कान्तियुक्त, (स्वर्विदम्) समस्त पदार्थों का ज्ञान लाभ कराने वाले (शुष्मम्) आत्मज्ञान रूप बल को (आ भर) सञ्चित कर ।

[५६८] सखाय आ निषीदत पुनानाय प्र गायत ।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥३॥ ऋ० ६ । १०४ । १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रगण ! (आ निषीदत) आओ, बैठो । (पुनानाय) योग-साधन द्वारा अपने त्रिविध मलों का शोधन करनेहारे आत्मा के विषय में (प्र गायत) उत्तम रूप से सत् स्तुति करो, उसका वर्णन करो । और (शिशुं न) जैसे बालक को (श्रिये) मात्र शोभा के लिये सजाते हैं उसी प्रकार उस (शिशुम्) सबके भीतर शयन करने हारे आत्मा को (यज्ञैः) ज्ञान और कर्म दोनों प्रकार के यज्ञों द्वारा (श्रिये) आत्म सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये (परि भूषत) सब प्रकार से अलंकृत करो, उसकी शोभा बढ़ाओ ।

[५६९] तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्त्तिभिः ॥४॥ ऋ० ६ । १०५।१॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! (वः) आप लोग (तम्) उस (पुनानम्) तपस्या आदि से मलों को शोधन करने हारे साधक या

५६९—'यज्ञैः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य प्राण की (मदाय) आनन्द की प्राप्ति के लिये (अभि गायत) साक्षात् गुण स्तुति करो । और (गूर्त्तिभिः) स्तुतियों द्वारा और (हव्यैः) उत्तम सात्विक पदार्थों और विचारों द्वारा, (शिशुम् न) जिस प्रकार मधुर अन्नों का (स्वदयन्त) रस चखाकर बालक को वश करते हैं उसी प्रकार (शिशुम्) सबके भीतर विद्यमान आत्मा को (स्वदयन्तः) अमृत का रसास्वादन कराकर अपने वश कर, उस तक पहुंचो ।

[५७०] प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥५॥ ऋ० ६ । १०२ । १ ॥

भा०—(प्राणा) देहों को प्राण देने वाली (महीनाम्) बड़ी भारी ईश्वरीय शक्तियों में (शिशुः) प्रसुप्त रूप से विद्यमान, व्यापक चित् रूप आत्मा (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (दीधितिम्) दीप्ति, किरण या धारणा को (हिन्वन्) प्रेरित करता हुआ (विश्वा) समस्त (प्रिया) उत्तम प्रिय पदार्थों को (द्विता) दो प्रकार से, समष्टि व्यष्टि रूप से, स्थूल और सूक्ष्म भेद से या गृहीत और ग्राह्य, या विषयी और विषय भेद से (परि भुवत्) व्याप्त करता है ।

[५७१] पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥६॥ ऋ० ९ । १०६ । ७ ॥

भा०—हे (सोम) रस स्वरूप ! हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (देववीतये) देवों, विद्वानों, इन्द्रियों, पञ्च भूतों को कान्तिमान्, बलवान्, ज्ञानवान् करने के लिये तू (धाराभिः) अपनी धारण पोषण करने हारी शक्तियों द्वारा (ओजसा) अपने बल से (पवस्व) प्रकट हो । और (मधुमान्) ज्ञानवान् तू (नः) हमारे (कलशं) देह या अन्तःकरण में (आ सदः) अधिष्ठित रूप में आ, विराजमान हो ।

५७०—'क्राणा' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[५७२] सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥७॥ ऋ० ९ । १०६ । १० ॥

भा०—(पुनानः सोमः) सोम इसके समान स्वच्छ कान्तिमान् आनन्दरस या मल आदि से रहित अन्तःकरण वाला, शम आदि गुणों से सम्पन्न सोम नाम योगी जन (ऊर्मिणा) अपनी ऊर्ध्व गति से (अव्यं वारम्) अज्ञान के आवरण को (वि धावति) पार कर जाता है। (पवमानः) वह और भी अधिक उज्वल और पवित्र होकर (वाचः) वेदवाणी के (अग्रे) उत्तम, रहस्य भाग में (कनिक्रदत्) गति करता हुआ स्तुतियों में मग्न हो जाता है।

[५७३] प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते ।
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥८॥ ऋ० ९ । १०३ । १ ॥

भा०—(वेधसे) स्वयं कर्म के विधाता मेधावी (पुनानाय) अन्तः-करण को मल आदि से रहित करने वाले (सोमाय) शम, दम आदि सौम्य गुणों से युक्त आत्मा या योगिजन के लिये (वचः) सब अध्यात्म वाणियों का (प्र-उच्यते) प्रवचन किया जाता है, उपदेश किया जाता है। (मतिभिः) अपनी मनन-क्रियाओं द्वारा स्वयं उपासक (जुजोषते) उस सोमस्वरूप अपने ही आत्मरस का सेवन करता है। हे उपासक लोगो ! जिस प्रकार (भृतिं न) श्रमी को नियम से भरण पोषण का द्रव्य या आजीविका दी जाती है उसी प्रकार उस आत्मा की शक्ति को बढ़ाने वाली (भृतिं) भरण, पोषणकारिणी चिति शक्ति को (भर) नियम से अभ्यास द्वारा बढ़ाओ, पुष्ट करो।

द्वितो नाम ऋषिः स्वात्मानं प्रत्याह, इति सायणः। सोमाय 'मेधाविने' इति माधवः।

५७२—'अव्यो वारं' इति ऋ०।

५७३—'वच उद्यतम्' इति ऋ०। 'उद्यतं' इति सायणः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1692

[५७४] गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव ।
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥९॥ ऋ० ९ । १०५ । ४॥

भा०—हे (इन्दो) सौम्यगुणयुक्त ! आत्मन् । हे (सु-दक्ष) उत्तम कर्म के साधक ! (सुतः) स्वयं शुद्ध ऐश्वर्य युक्त होकर (नः) हमें (गोमत्) ज्ञानवाणियों से युक्त (अश्ववत्) सम्पन्न, अधिक सामर्थ्य वाली इन्द्रियों से युक्त धन (धनिव) दो । और (गोषु) हमारी वाणियों या इन्द्रियों में (शुचिं वर्णं च) कान्तियुक्त तेजस्वी वर्ण को (धारय) धारण करो ।

[५७५] अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥१०॥ ऋ० ९ । १०४ । ४॥

भा०—(अस्मभ्यं) हमें (वसुविदं) प्राणों, ऐश्वर्यों का ज्ञान, जीवन का लाभ कराने हारे (त्वा) तुझको (वाणीः) सब वेदवाणियां (अभि अनूषत) यथार्थ वर्णन करती हैं । हे आत्मन् ! (ते वर्णम्) तेरे वरण करने योग्य स्वरूप को (गोभिः) इन वेदस्तुतियों द्वारा (अभि वासयामसि) आच्छादित करते हैं, ढकते हैं, अलंकृत करते हैं ।

[५७६] पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद् यशः ॥११॥ ऋ० ९ । १०६ । १३॥

भा०—(हर्यतः) हरण-गमन करने योग्य, सब का प्राप्य, कामना योग्य, प्रिय, (हरिः) सर्व दुःखहारी, सुखकारी सोम, आत्मा (रंह्या) वेग से (ह्वरांसि) कुटिल, कष्टकारी विघ्नों को भी (अति पवते) अतिक्रमण करके विराजता है । हे सोम ! (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेहारे,

५७४—'धन्व', 'शुचि ते', 'गोषुदोधरम्' इति ऋ० ।

५७६—'अभ्यर्षंत' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

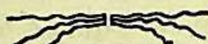
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थ गुणवक्ताओं को (वीरवद्) सामर्थ्यसम्पन्न (यशः) तेज (अभि अर्ष) प्रदान कर ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[५७७] परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अभि वाणीर्ऋषीणां सप्तानूषत ॥१२॥ ऋ० ६ । १०३ । ३ ॥

भा०—(पुनानः) मल आदि से रहित, स्वच्छ रूप में प्रकट होने वाला या क्षरित होनेवाला (सोमः) आत्मा (मधुश्चुतं) मधुर आनन्द रस को चुआने वाले आनन्दमय (कोशं) कोश को (परि अर्षति) व्याप्त कर लेता है । (ऋषीणां) ब्रह्माण्ड या मूर्धा, शिर-देश में स्थित सातों प्राणस्वरूप ऋषियों की (सप्त वाणीः) सात वाणियां, सातों ज्ञान-प्रवाह (अभि-अनूषत) आत्मा की साक्षात् स्तुति करते हैं ।

इति अष्टमी दशतिः । इति दशमः खण्डः ।



॥ दशतिः ६ ॥ ऋषिः—१ गौरिवीतिः शाक्त्यः । २ ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः । ३, ८ ऋजिश्वा भारद्वाजः । ४ कृतयशा आङ्गिरसः । ५ ऋणञ्चयो राजर्षिः । ६ शक्तिर्वासिष्ठः । ७ उरुराङ्गिरसः । पवमानो देवता । १–४, ६ ककुप् । ५ । यवमध्या गायत्री । ७, ८ प्रगाथः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[५७८] पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥ ऋ० ९ । १०८ । १ ॥

भा०—हे (सोम) परमेश्वर ! हे (मधुमत्-तमः) सब से अधिक आनन्द और ज्ञानसम्पन्न ! (क्रतुवित्-तमः) ज्ञान की प्राप्ति और कर्मों का ज्ञान करने या कराने हारों में सबसे श्रेष्ठ, (मदः) आनन्दस्वरूप आप (इन्द्राय) विभूतिसम्पन्न आत्मा के लिये (पवस्व) प्रकट होइये ।

५७७—'सप्तनूषत' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप (मदः) अत्यन्त आनन्दस्वरूप होकर (द्युक्ष-तमः) सब दिव्य, तेजःसम्पन्न पदार्थों में आप ही सबसे श्रेष्ठ और (महि) सबसे महान् हैं।

[५७९] अभि द्युम्नं बृहद् यश इषस्पते दीदिहि देव देवयुम्।
वि कोशं मध्यमं युव ॥ २ ॥ ऋ० ९ । १०८ । ९ ॥

भा०—हे (इषस्पते) अन्न, एवं ज्ञान और मानस प्रेरणा के स्वामिन्! हे देव! (देवयुम्) विद्वानों और समस्त दिव्य लोकों को अपने वश करनेहारे, आपके प्रति हम प्रार्थना करते हैं कि (बृहद् यशः) बहुत अधिक यश, अन्न, ज्ञान, सामर्थ्य (द्युम्नम्) और धन, बल को (अभि दीदिहि) साक्षात् प्रकाशित करो, और (मध्यमम्) बीच के (कोशम्) आवरण करने वाले मनोमय, विज्ञानमय कोश को (वि युव) काट दो अर्थात् उन कोशों को काट कर आप आनन्दमय कोश में प्रवेश कराओ।

[५८०] आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्।
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥३॥ ऋ० ९ । १०८ । ७ ॥

भा०— हे साधकगण! जिस प्रकार (अप्तुरं) वेग से जाने वाले (रजस्तुरं) धूलि को वेग से उड़ाने हारे, वेगवान् (अश्वं न) अश्वको सजाते और निहलाते धुलाते, उसे स्वच्छ रखते, प्रसन्न रखते, पुष्ट करते हैं, उसी प्रकार (स्तोमं) स्तुति योग्य, (अप्तुरम्) ज्ञान और कर्मों से प्राप्त करने योग्य, (रजस्-तुरम्) समस्त लोकों में व्यापक (वन-प्रक्षम्) सबके आत्माओं में कूटस्थरूप से व्यापक, फलों को जैसे वृक्ष देता है उसी प्रकार, सेवन करने योग्य आनन्दरसों को देने वाले (उद-प्रुतम्) ज्ञान से परिपूर्ण, शान्ति के दायक, (अश्वं) व्यापक आत्मरस

५७९—'देवयुः' इति ऋ० ।
५८०—'वनक्रक्षम्' इति ऋ० । 'वनक्रचम्' इति केचित् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (आ स्रोत) अपने हृदय में प्रकट करो । (परि सिञ्चत) पुनः उसके आनन्दमय रसों का आ सेचन करो ।

[५८१] एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् ।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥४॥ ऋ० ९ । १०८ । ११ ॥

भा०—(एतम् उ) इस ही (मद-च्युतं) हर्ष रस के बरसाने हारे (सहस्र-धारं) सहस्रों लोकों को धारण करने वाले या सहस्रों सुख-धाराओं के बहाने वाले, (वृषभं) सुखों के वर्षक, (दिवः) सूर्य के समान प्रकाशक, लोकों या ज्ञान प्रकाश का (दुहम्) दोहन करने वाले (विश्वा वसूनि) सब प्राणों और समस्त वास के देने हारे वसु रूप लोकों को (बिभ्रतम्) धारण करने वाले आत्मा, परमात्मा को (आस्रोत) प्राप्त हो, उपासना करो ।

[५८२] स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ ५ ॥ ऋ० ९ । १०८ । १३ ॥

भा०—(यः) जो (रायाम्) ऐश्वर्यों, (यः वसूनाम्) जो समस्त प्राणों और सूर्यादि लोकों और (यः इडानाम्) समस्त भूमियों, ज्ञानधाराओं और अन्नों का (आनेता) प्राप्त कराने हारा है और (यः सुक्षितीनां आनेता) जो उत्तम निवास योग्य शरीरों, क्षेत्रों का नेता, निर्माणकर्त्ता है (सः सोमः) वह सबका प्रेरक आत्मा और परमात्मा (सुन्वे) हृदय देश में साक्षात् उपासना करने योग्य है ।

[५८३] त्वं ह्या३ङ्ग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयन् ॥ ६ ॥ ऋ० ९ । १०८ । ३ ॥

५८१—'दिवो दुहः' इति ऋ० । 'दिवोदुहं' इति सा० ।
५८३—'त्वंह्यं१' ग दैव्या', 'घोषयः' इति ऋ० । 'घोषः' इति सा० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(अङ्ग पवमान) हे सर्वव्यापक जगदीश्वर ! (द्युमत्-तमः) सबसे अधिक कान्तिमान् (त्वं हि) तू ही (दैव्यं) दिव् = अन्तरिक्ष द्युलोक या देव, पञ्च भूतों और दिव्य गुणयुक्त समस्त पृथिवी आदि लोकों की (जनिमानि) उत्पत्तियों और प्रकट होने वाले अद्भुत २ विकासों के मूलकारणों का (अमृतत्वाय) नित्य, निरन्तर विद्यमान अमृतस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करने के लिये (घोषयन्) उपदेश करता है।

२ १ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[५८४] एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः।
१ २ ३ २ ३ १ २
क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥ ७ ॥ ऋ० ६। १०६। ५॥

भा०—(सुतः) निष्पन्न, अभिव्यक्त आनन्दरस (अव्याः वारेभिः) चितिशक्ति के आवरणों से पार होकर (मदिन्तमः) अति अधिक आनन्द से समृद्ध (अपां) जलों के (ऊर्मिः इव) प्रवाह या तरंग के समान, ज्ञानों, कर्मों का तरंग (धारया) अपनी निरन्तर धारा या धारक शक्ति या वाणी से (क्रीडन्) संसार में क्रीड़ा सी करता हुआ, लीला करता हुआ (स्यः एष) जिसको ढूंढते हैं वह यह (पवते) हृदय देश में प्रकाशित होता है।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
[५८५] य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ८ ॥
ऋ० ६। १०८। ६॥

भा०—(यः) जो सोम (उस्रियाः) ऊर्ध्व गति करने वाली (अप्याः) कर्म और ज्ञान की बनी हुई (गाः) गतिशील इन्द्रियों को (ओजसा) अपने बल से (अन्तः अश्मनि) अश्मा = व्यापक या प्रस्तर के समान किसी से न हारने वाले, परिपक्व 'अश्माखण' नामक मुख्य

५८५—'अप्या अन्तरश्मनो' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण के भीतर (निर्-अकृन्तत्) बनाता है, निर्माण करता है और जो (गव्यम्) ज्ञानसम्बन्धी और (अश्व्यम्) कर्म या मनः सम्बन्धी (व्रजम्) इन्द्रियगण को (अभि तत्निषे) अपने चारों ओर विस्तारित करता है, हे (धृष्णो !) सबको विजय करने हारे परमात्मन् ! तू हमारे (वर्मी इव) कवचधारी सुरक्षित योद्धा के समान (आ रुज) सब विघ्न बाधाओं को दूर कर ।

इति नवमी दशतिः । एकादशः खण्डः ।

इति द्वितीयोऽर्धः ।

इति पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ।

इति षष्ठः प्रपाठकः समाप्तः ।

इति सौम्यं पावमानं काण्डं समाप्तम् ।



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ षष्ठोऽध्यायः

अथ आरण्यकं काण्डम्*

(तृतीयोऽर्धः)

॥ दशतिः १० ॥ ऋषिः—१ शंयुर्बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । २ वसिष्ठो मैत्रावारुणिः । ३, ६ वामदेवो गौतमः । ४ शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो देवरातो वैश्वामित्रो वा । ५ गृत्समदः । ७, ८ अमहीयुः । ९ आत्मा ॥ १–३ इन्द्रः । ४ वरुणः । ५, ७, ८ पवमानः । ६ विश्वेदेवाः । ९ अन्नम् ॥ छन्दः— १ बृहती । २, ९ त्रिष्टुप् । ३, ७, ८ गायत्री । ४, ५ चतुष्पदा गायत्री । ६ एकपदा गायत्री ॥

[५८६] इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।
यद् दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥ १ ॥

ऋ० ६ । ४६ । ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (ज्येष्ठम्) अत्यन्त प्रशंसनीय (ओजिष्ठम्) कान्ति और बल से युक्त, (पुपुरि) पूर्ण करने वाला, (श्रवः) ज्ञान (नः) हमें (आ भर) प्राप्त कराओ । हे (वज्र-हस्त[1]) सब विघ्नों को निवारण करने हारे ज्ञान और वैराग्यरूप वज्र को अपने हाथ में लिये हुए, या ज्ञानरूप वज्र से अज्ञान-तम-का हनन करने हारे परमात्मन् ! हे (सु-शिप्र[2]) उत्तम दाढ़ों या रश्मियों वाले तेजस्विन् !

* क्वचित्संहितासु काण्डमिदं न लभ्यते, अत एव तासु 'य ऊर्जिया' इति ऋचोऽन्त्यपादाभ्यासो दृश्यते इति हेतोरत्रैव पूर्वार्चिकस्य समाप्तिरिति विज्ञायते । क्वचिच्चाभ्यासो न दृश्यते, षष्ठोध्यायश्च तृतीयार्धप्रपाठकरूपेणैव लभ्यते । केचिदिममध्यायं परिशिष्टमिव मन्यते । विविधा हि देवता अत्र स्तूयन्ते इति प्राक्परिगणितकाण्डत्रयाद् भिन्नमिदमारण्यकं काण्डं व्यवहरन्ति ।

५८६—'आभरं', 'ये नेमे चित्र वज्रहस्त,' 'ओभे' इति ऋ० ।

१. हस्तो हन्तेः (निरु०), २. शिप्रं सर्पतेः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त संसार का प्रलयकाल में भक्षण करने वाले ! अथवा उत्तम ज्ञानी और बलशाली ! (यद्) जिसको (दिधृक्षेम) हम धारण करना चाहते हैं उस ज्ञान को (उभे रोदसी) इस लोक और परलोक दोनों में (पप्राः) पूर्ण कर, प्राप्त करा। अथवा धारण करने योग्य समस्त ज्ञान और चेतना को ब्रह्माण्ड में तू पूर्ण कर रहा है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[५८७] इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमा विश्वरूपं यदस्य ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥ २ ॥ ऋ० ७ । २७ । ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) परमात्मा (जगतः) जंगम प्राणिसंसार का और (चर्षणीनाम्) मानव का और (अधि-क्षमा) इस पृथिवी पर (विश्व-रूपं) नाना प्रकार के पदार्थ, जीव या ब्रह्माण्ड (यत्) जो भी हैं (अस्य) इस सब का (राजा) स्वामी है। (ततः) वह सर्वव्यापक ईश्वर (दाशुषे) दानशील पुरुष को ही (वसूनि) जीवनोपयोगी नाना ऐश्वर्य (ददाति) देता है। वही (उपस्तुतम्) सबसे स्तुति किया गया (राधः) धन और ज्ञान (अर्वाक्) हमें (चोदद्) दे।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २३क २२
[५८८] यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः ।
१ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ ३ ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(यस्य) जिस (रजः-युजः) कान्ति, ज्योति से युक्त या प्रकृति के रजोगुण से योग करने हारे आत्मा का (तुजे जने) दानशील पुरुष में (इदम्) यह (स्वः) सुखकारी, दिव्य, समस्त (वनम्) सेवन करने योग्य नाना सम्पदा (आ) सब ओर विद्यमान हैं उस (इन्द्रस्य) परमात्मा का (रन्त्यम्) रमणीय ऐश्वर्य भी (बृहत) बहुत अधिक बड़ा है।

५८७—'अधिक्षमि', 'विषुरूपं', 'उपस्तुतः' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २र ३ १ २
[५८९] उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥ ४ ॥
ऋ० १ । २४ । १५ ॥

भा०—हे (वरुण) सर्वव्यापक, सब पापों के निवारक, सर्वश्रेष्ठ परमात्मन् ! (उत्तमम्) उत्कृष्ट अपने (पाशम्) पाश, प्राकृतिक तेजोमय सात्विक बन्धन को (उत्-श्रथाय) उत्तम भोगों द्वारा शिथिल कर और (अधमम्) निकृष्ट तामस, काम मोह आदि से बने बन्धन को (अव श्रथाय) नीचे, निम्न कोटि के भोगों द्वारा ढीला कर । और (मध्यमम्) मध्यस्थानीय राजस-बन्धन, आवेश, क्रोध, लोकैषणा आदि को (वि श्रथाय) नाना प्रकार के भोगों से शिथिल कर । (अथ) और हे (आदित्य) सब को अपने भीतर लेने हारे ! तेजस्विन् ! (तव व्रते) तेरी नियम-व्यवस्था में (वयम्) हम (अनागसः) निरपराध, निष्पाप होकर (अदितये) दीनतारहित होने में (स्याम) समर्थ हों ।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[५९०] त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत्
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५॥
ऋ० ९ । ९७ । ५८ ॥

भा०—हे सोम ! जगदीश्वर ! (पवमानेन) समस्त संसार को पवित्र करने हारे (त्वया) तुझ सहायक से (भरे) फल प्राप्त करानेहारे इस जीवन में (शश्वत्) निरन्तर (कृतम्) अपने उत्तम किये कर्म ही (वि चिनुयाम) विशेष रूप से संग्रह करें । (मित्रः) स्नेहवान्, (वरुणः) सब पापों का निवारक, (अदितिः) कभी न खण्डित होने-वाला, अखण्ड, (सिन्धुः) समुद्र के समान सर्वव्यापक, सब का आश्रय, (पृथिवी) पृथिवी के समान सबको धारण करने हारा (उत) और

५८९—'अथा वयमादित्य व्रते तवा०' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(द्यौः) सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप (नः) हमें (तत्) वह अभिलषित उत्तम फल (मामहन्ताम्) प्रदान करे ।

३ १ २र ३ २उ ३ २
[५९१] इमं वृषणं कृणुतैकमिन् माम् ॥ ६ ॥

भा०—हे प्राणो ! विद्वानो ! (इमं माम्) इस मुझ (एकं) अकेले को (वृषणम्) सब सुखों का वर्षण करने हारा (कृणुत इत्) बनाओ ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३
[५९२] स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
३ १र २र
वारिवोवित् परि स्रव ॥ ७ ॥ ऋ० ९ । ६१ । १२ ॥

भा०—(सः) वह सोम (नः) हमारे (इन्द्राय) ऐश्वर्यशील, (यज्यवे) जीवनयज्ञ के कर्त्ता, (वरुणाय) व्यवस्थापक, वरुणस्वरूप जीव, अन्तरात्मा (मरुद्भ्यः) और प्राणस्वरूप इन्द्रियों या भीतरी पञ्च प्राणों के लिये (वरिवः-वित्) हितकारी पदार्थों को दाता होकर (परि स्रव) हमारे प्रति प्रकट हो । हमारे प्रति दयाशील होकर द्रवित, स्नेहपूर्ण, दयार्द्र हो ।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २
[५९३] एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
१ २
सिषासन्तो वनामहे ॥ ८ ॥ ऋ० ९ । ६१ । ११ ॥

भा०—हे जगदीश्वर ! आप (अर्यः) सब के स्वामी (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (विश्वानि) समस्त (एना) ये (द्युम्नानि) धन, रत्न आदि (आ) हमें प्राप्त करावें । हम (सिषासन्तः) उनको सेवन करने या सब में बांट देने की इच्छा से (वनामहे) याचना करते हैं ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[५९४] अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यो मां ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥ ९ ॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

यजु : ३३.१. अ० १. कं० .७६
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(अहम्) मैं महान् आत्मा सर्वोपरि परम आत्मा (ऋतस्य) इस सत् अभिव्यक्त जगत् से (प्रथमजाः) प्रथम हो हिरण्यगर्भ रूप में प्रकट हुआ (अस्मि) हूँ। (देवेभ्यः) देवताओं, पञ्चभूतों, इन्द्रियों से भी (पूर्वः) पूर्व मैं विद्यमान रहा। मैं ही (अमृतस्य) कभी विनाश न होने वाले, नित्य आत्मा का (नाम) स्वरूप हूँ। (यः) जो (माम्) मुझको, मेरे स्वरूप को अन्यों के प्रति (एव) इस प्रकार से (ददाति) दान करता अर्थात् जो ब्रह्म या आत्म-ज्ञान का उपदेश करता है (सः इत्) वही (मा) मेरी (आवत्) रक्षा करता है। (अहम् अन्नम्) मैं अन्न के समान प्राण को धारण कराता हूँ। मैं ही (अन्नम्) अन्न रूप से सबको धारण करता हूँ। मैं ही (अदन्तम्) कर्मफल का भोग करने वाले जीवों को (अद्मि) अपने में मग्न कर लेता हूँ।

ब्रह्म की अन्नोपासना उपनिषदों में कही है। 'अत्ता चराचरग्रहणात्' (वेदा० सू०)

इति दशमी दशतिः प्रथमः खण्डः।

॥ दशतिः ११ ॥ ऋषिः—१ श्रुतकक्ष आङ्गिरसः। २ पवित्र आङ्गिरसः। ३, ४ मधुच्छन्दो वैश्वामित्रः। ५ प्रथो वासिष्ठः। ६ गृत्समद शौनकः। ७ नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ ॥ देवता—१, ३, ४, ७ इन्द्रः, ५ पवमानः सोमः। विश्वे देवाः। ६ वायुः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ गायत्री। २ जगती। ५ त्रिष्टुप् ॥ ७ अनुष्टुप् ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[५९५] त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च।

ऋ० ८. ९३-१३

१ २ ३ २ ३ १ २
परुष्णीषु रुशत् पयः ॥ १ ॥ ऋ० ८।९३।१३॥

५९५—१. इरावतीं परुष्णीत्याहुः। पर्ववती भास्वती, कुटिलगामिनी (निरु० ९।२६)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे आत्मन्! (त्वं) तू ही (कृष्णासु) प्राणों को कर्षण करने हारी पिङ्गला नाम नाड़ियों और (रोहिणीषु) प्राणों का रोहण, परिवर्धन करने वाली इड़ा नाड़ियों में और (परुष्णीषु[1]) पौरु २, या अंग २ में निवास करनेहारी, ज्ञानवाहिनी चित्कुण्डलिनी, सुषुम्ना आदि नाड़ियों में (रुशत्) कान्तिमय (पयः) तेज या रस को सूर्य के समान (अधारयः) धारण करता है[2]। सूर्यपक्षमें–कृष्णा = रात्रियें, रोहिणी = उषाएं, परुष्णी[3] = दिन मध्याह्नवेला।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २
[५६६] अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः॥२॥

ऋ० ९। ८३। ३॥

भा०—(उषसः) साधक की साधना के अवसर पर त्रिपुटी में प्रकट होने वाली कान्ति का (पृश्निः) आदित्य ही (अग्रियः उक्षा) सब से प्रथम सुखों का सेचन करने हारा, (भुवनेषु) समस्त प्राणों और प्राण-कोशों में (वाजयुः) बल की कामना करने हारा आनन्दघन आत्मा, (अरूरुचद्) प्रकाशित होता है। (मायाविनः) चिति शक्ति या प्रज्ञा, प्रेरणा या ज्ञान से सम्पन्न देवरूप इन्द्रियां या अग्नि आदि पांचों भूत (अस्य मायया) इसकी ही माया, प्रकृति या ज्ञान शक्ति से सम्पन्न होकर (नृ-चक्षसः) मनुष्यों के द्रष्टा (पितरः) सबके पालन करने हारे (ममिरे) पदार्थों का ज्ञान करते हैं या सृष्टि के पदार्थों की रचना करते हैं और (गर्भम्) हिरण्यगर्भस्वरूप विराट्रूप को (आदधुः) धारण करते हैं। आत्मा, परमात्मा दोनों पक्षों में स्पष्ट है। अध्यात्म में–(पितरः) प्राणगण।

२. द्रष्टव्यं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायाम् 'इमं मे गङ्गे यमुने' इत्यादि व्याख्यानम् (प्र० ३०) ।३। परम-उष्णवत्यो घटिकाः। दया० ॥

५६६—'उक्षा मिमेति भुवनानि' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २
[५९७] इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ३ ॥ ऋ० १।७।२॥

भा०—(इन्द्र इत्) आत्मा ही (वचः-युजा) वाणीमात्र से योग रखने वाले (हर्योः) हरण करने वाले अश्वों, शक्तियों, ज्ञान, कर्म और इन्द्रियों को (सचा) एक साथ (संमिश्लः आ) मिला कर रखने वाला है। वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वज्री) संहारक शक्ति से युक्त और (हिरण्ययः) सूर्य के समान कान्तिमान् रूप वाला या स्वतः हित, प्रिय, रमणीय और गतिशील आत्मा है।

१ ३ १ २ ३ १ २
[५९८] इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥ ऋ० १।७।४॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (उग्रः) उग्र स्वभाव के आप (उग्राभिः ऊतिभिः) उग्र, अति वेगवाली शक्तियों द्वारा (वाजेषु) ज्ञानों और बलों के कार्यों में और (सहस्र-प्रधनेषु च) बलशाली सहस्रों, अनेकों एकत्र होने के अवसरों या युद्धों में (नः) हमारी (अव) रक्षा करो।

१ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
[५९९] प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत्।
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमाजभारा वसिष्ठः॥५॥
ऋ० १०।१८१।१॥

भा०—(यस्य) जिसके (प्रथः) विस्तार करने वाला, प्राण और (स-प्रथः) उस विस्तार करने वाले का साथी अपान यह दोनों ही (नाम) स्वरूप हैं वह (वसिष्ठः) मुख्य आत्मा (आनुष्टुभस्य) प्रतिदिन स्तवन करने योग्य (यत्) जो (हविषः हविः) ग्रहण करने योग्य द्रव्य हवि का भी हवि, अर्थात् उत्तम हवि है उस 'अमृत' (रथन्तरम्) देहरूप रथ को चलाने, प्रेरणा करने वाले मुख्य प्राण को (धातुः) सबके पालन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोषण करने हारे और (सवितुः) सबके उत्पादक (विष्णोः) सर्व व्यापक परमात्मा के पास से ही (आ जभार) प्राप्त करता है ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[६००] नियुत्वान् वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते ।
१ २ ३ २ ३ २
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ ६॥ ऋ० २ । ४१ । २ ॥

भा०—हे (वायो) प्राण ! या व्यापक आत्मन् ! आप (नि-युत्वान्) नियमकारी बलों से सम्पन्न (आ गहि) हमें प्राप्त हों । (अयम्) यह (शुक्रः) कान्तिमान् सूर्य और देह में वीर्य, आज (ते) तेरे (अयामि) नियम में बंधा है । आप (सुन्वतः) योग साधना करने हारे, (गृहम्) ग्रहण करने वाले आभ्यन्तर इन्द्रिय, मन में भी (गन्तासि) प्राप्त होते हैं ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २
[६०१] यज्जायथा अपूर्व्यं मघवन् वृत्रहत्याय ।
१ २ ३ २ २ ३ २ १ ३ १ २र
तत् पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ ७ ॥

ऋ० ८ । ८९ । ५ ॥

भा०—हे (अपूर्व्यं) अद्वितीय ! आदि मूलकारण ! हे (मघवन्) समस्त विभूतियों के स्वामिन् ! (यत्) जो तू (वृत्र-हत्याय) आवरणकारी तामस बन्धन को नाश करने के लिये (जायथाः) प्रकट होता है (तत्) वह तू (पृथिवीम्) इस विशाल भूमि को भी (अप्रथयः) प्रकट करता है और (दिवम् उत् उ) द्यौलोक को भी (अस्तभ्नाः) मध्य आकाश में थामता है ।

इति एकादशी दशतिः । इति द्वितीयः खण्डः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ दशतिः १२ ॥ ऋषिः—१, ५, ७, १० वामदेवो गौतमः । २, ३ गौतमो राहूगणः । ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । ६ गृत्समदः शौनकः । ८, ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ११ हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । १२, १३ विश्वामित्रो गाथिनः । देवता—१ प्रजापतिः । २, ३ पवमानः । ५, १३ अग्निः । ७ रात्रिः । ८ वैश्वानरः, विश्वे देवाः । १० लिङ्गोक्ताः । ११ इन्द्रः । १२ सर्वात्मा अग्निर्वा । छन्दः—१, ७ अनुष्टुप् । २, ३, ५, ६, ११—१३ त्रिष्टुप् । ४ गायत्री । ८, ९ जगती । १० महापंक्तिः ।

[६०२] मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः ।
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥१॥ अथर्व० ६ । ६९ । ३॥

भा०—(परमेष्ठी) परम, उत्तम स्थान पर स्थित, परमात्मा (प्रजापतिः) समस्त स्थावर और जंगम प्रजा का पालक (दिवि) आकाश में जिस प्रकार (द्याम् इव) सूर्य को स्थित करता है उसी प्रकार (मयि) मुझ में (वर्चः) बल, तेज, (अथो) और (यशः) यश (अथो) और (यज्ञस्य) आत्मा या परमेश्वर का (यत्) जो (पयः) मोक्ष नामक परम आनन्दरस है उसको (दृंहतु) नित्य बनाये रक्खे ।

[६०३] सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥२॥
ऋ० १ । ९१ । १८ ॥

भा०—हे (सोम) परमात्मन् ! (अभि-माति-षाहः) अभिमान करने हारे पुरुषों को दण्ड देने वाले (ते) तेरे (पयांसि) पोषक ज्ञानरस, (वाजाः) समस्त ऐश्वर्य और अन्न, और (वृष्ण्यानि) समस्त बल (सं, समु, सं यन्तु) प्राप्त हों और तू आप (आप्यायमानः) खूब परिपूर्ण होता हुआ (अमृताय) इस अमृत, जीव के लिये (दिवि)

६०२—'तन्मयि प्रजापतिर्दिवि' इति अथर्व० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोक्षरूप स्वर्ग में (उत्तमानि) उत्तम (श्रवांसि) ज्ञानों, बलों और सुखों को (धिष्व) धारण करा ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[६०४] त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
१ २र ३ २ १ २ ३ १ २र ३ ३ २र
त्वमाततन्थोर्वा३न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ ३ ॥

पा-मे यजु: ३४/२२ ऋ० १ । ९१ । २२ ॥

भा०—हे (सोम) परमात्मन् ! (त्वं) तू (इमाः) इन (विश्वाः) समस्त प्रकार की (ओषधीः) ओषधियों, वनस्पतियों को (अजनयः) उत्पन्न करता है । (त्वम् अपः) तू ही समस्त रसों को उत्पन्न करता है । और (त्वं गाः) तू ही समस्त गौ आदि पशुओं और भूमियों को पैदा करता है । (त्वं) तू ही (ज्योतिषा) सूर्य आदि के प्रकाश से (तमः) अन्धकार को (वि ववर्थ) विविध प्रकारों से दूर करता है । अध्यात्मपक्ष में—ओषधिः—देह । अपः—ज्ञान और कर्म । गाः—इन्द्रिय, चित्तवृत्तियां । सोम—आत्मा । तमः—तामस आवरण ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[६०५] अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
१ २ ३ १ २
होतारं रत्नधातमम् ॥ ४ ॥ ऋ० १ । १ । १ ।

भा०—(यज्ञस्य देवम्) समस्त यज्ञों, उपासनाओं के उपास्य देव (पुरोहितम्) प्रकाशमान, ज्ञानवान्, पूज्य, साक्षीरूप से अन्धकार में दीपक के समान ज्ञान-प्रकाश प्राप्त करने के लिये आगे मुख्य स्थान पर स्थापित, (ऋत्विजम्) ऋतुओं, आदित्यों और प्राणों द्वारा पूजनीय, (होतारम्) सबको धारण करने और सब सुखों को प्रदान करनेहारे, सबके प्रतिपालक, (रत्न-धातमम्) समस्त रमणीय पदार्थों को धारण करने वाले, (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप, सबके अग्रणी, प्रकाशक परमात्मा की (ईडे) स्तुति करता हूँ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २३१र २र
[६०६] ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन्।
१ २ ३ २ ३क १र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥ ५॥
ऋ० ४।१।१६॥

भा०—(ते) वे विद्वान् लोग (गोनां) वेद वाणियों के (प्रथमं) सबसे प्रथम, श्रेष्ठ, आदिमूल (नाम) उत्पत्ति स्थान को (अमन्वत) मनन करते हैं और वे (त्रिः सप्त) इक्कीस प्रकार से (परमं नाम) परम नाम की (जानन्) जिज्ञासा करते हैं। (ताः) वे वाणियां (जानतीः) सब रहस्य जनाती हुई (क्षाः) अपनी निवासभूमियों आदि मूलकारणों की (अभि अनूषत) स्तुति करती हैं। और (यशसा) तेज से (अरुणीः) अरुण वर्ण वाली, (गावः) किरणों के समान वाणियों में (आविर्भुवन्) प्रकट होती हैं।

वाणियों के २१ प्रकार के नाम २१ प्रकार के छन्द हैं जैसे—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती ये सात। अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, अतिधृति ये सात। और कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संस्कृति, अतिकृति, उत्कृति ये सात। सब मिल कर २१ हुए।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र
[६०७] समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ा २र ३ २ ३ ा ा २
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः॥ ६॥
गीता - ११-२८ ऋ० ८ ४४/२५ ऋ० २।३५।३॥

भा०—जिस प्रकार (अन्याः नद्यः) भिन्न २ नदियां (सं यन्ति) परस्पर मिल जाती हैं और (अन्याः) और भिन्न २ नदियां (उपयन्ति)

६०६—'नाम धेनोः' सप्त मातुः परमाणि विन्दन्' 'तज्जानतीरभ्यनूषत आ आविर्भवदरुणीर्यशसा गोः,' इति ऋ० ॥
६०७—'अपां नपाते परितस्थुरापः' इति ऋ० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीप देशों में गमन करती हैं और (समानं) समानरूप से एक ही (ऊर्वं) विशाल समुद्र को (पृणन्ति) भरा करती हैं, उसी प्रकार (आपः) ईश्वर तक को प्राप्त कराने वाली (नद्यः) समृद्ध स्तुति वाणियां अथवा आप्त प्रजाएं (अन्याः) नाना प्रकार की प्राणधारी जीव प्रजाएं (सं यन्ति) एक साथ मिल जाती हैं और (अन्याः उपयन्ति) बहुतसी अन्य भी समीप ही मिलकर एक प्रकार के अर्थ का बोध कराती हैं और (समानम् ऊर्वम्) समान ही रूप से उस विशाल महान् परमेश्वर को (पृणन्ति) स्तुति करती हैं और वे (आपः) ज्ञान और कर्म का उपदेश करने हारी वाणियां (शुचयः) शुद्ध प्रकाश करनेहारी (तम् उ शुचिम्) उसही शुद्ध पवित्र (दीदिवांसम्) देदीप्यमान (अपां नपातम्[1]) समस्त वेद के ज्ञानों और कर्मों के एकमात्र आश्रय ईश्वर को (उपयन्ति) प्राप्त होती हैं । (आपः = वाणियां, बुद्धियां, प्रजाएं, आप्तजन, लोक, नद्यः = स्तुतियां, वाणियां, नदियां) ।

[६०८] आ प्रागाद् भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्संति ।
अभूद् भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो राज्ञी ॥ ७ ॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(राज्ञी) सुख के देनेहारी रात्रि के समान ब्रह्मविद्या (विश्वस्य) समस्त (जगतः) जंगम संसार का (नि-वेशनी) आश्रय-स्थान और (भद्रा) कल्याणकारिणी है । वह (अह्नः) कभी नाश न होने वाले, अमर, सूर्य, आत्मा या अमर परमेश्वर की (युवतिः) उदय-कालीन सूर्य के साथ संगत उषा और तेजस्वी पुरुष के संग स्त्री के समान ही सदा सत्संगति करानेवाली, (भद्रा) साधकों को सुख देनेहारी (आ) सब ओर (प्र अगात्) प्रकट होती है और (केतून्) किरणों के समान ज्ञानों को (सम् ईर्त्संति) प्राप्त कराती है ।

१. नपात्—नेत्युपमार्थः । पतन्ती व यत्र स नपात् "नपात्" इति निपातः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[६०९] प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
जातवेदसे । वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव
३ १ २ ३ १ २
पवते चारुरग्नये ॥ ८ ॥ ऋ० ६ । ८ । १ ॥

भा०—(प्रक्षस्य) सब के भीतर सम्पर्क करने हारे, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, (वृष्णः) सुखों के वर्षक, (अरुषस्य) कान्तिमान्, (जातवेदसे) समस्त पदार्थों के जाननेहारे परमेश्वर के (महः) पूजनीय तेज को (विदथा) ज्ञान काल में या यज्ञ में (नः) हमारी (वचः प्र) वाणी उत्तम रूप से वर्णन करे, (नव्यसे) स्तुति करने योग्य (वैश्वानराय) समस्त नरों में नाना प्रकार से व्यापक (अग्नये) उस ज्ञानस्वरूप, सबके अग्रणी, परमात्मा के लिये (शुचिः) शुद्ध, (मतिः) ज्ञान, संकल्प, (सोम इव) प्रेरक ब्रह्मानन्द के समान (चारुः) अत्यन्त उत्तम रूप में (पवते) प्रकट होता है ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३
[६१०] विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च
१ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३
मन्म । मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद् वो
१ २
अन्तमा मदेम ॥ ९ ॥ ऋ० ६ । ५२ । १४ ॥

भा०—हे (विश्वे देवाः) समस्त दिव्यगुण सम्पन्न विद्वानो ! आप लोग (मम) मेरे (मन्म) मनन करने योग्य (यज्ञम्) इष्ट उपासना को (शृण्वन्तु) सुनो । वह (उभे रोदसी) द्यौ और पृथिवी दोनों लोक और (अपां नपात् च) समस्त प्रजाओं, प्रज्ञाओं और कर्मों का आश्रय ईश्वर भी उसको श्रवण करता है । (वः) आपके (वचांसि) वचनों को (मा परिचक्ष्याणि) मैं परित्याग न करूं, प्रत्युत उनको (सुम्नेषु इव)

६०९—'पृक्षस्य' 'सप्रः प्रतुवोच' 'जातवेदसे' 'नव्यसीं' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख के अवसरों में भी (वोचं) उच्चारण करूं । (वः अन्तमाः) आप लोगों के अत्यन्त समीप होकर हम (मदेम) आनन्दित रहें ।

[६११] यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती ।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।
यशसा ३ स्याः संसदोऽहम् प्रवदिता स्याम् ॥ १० ॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(मा) मुझको (द्यावापृथिवी) द्यौलोक और पृथिवी का (यशः) यश प्राप्त हो । मुझे (इन्द्र-बृहस्पती) सूर्य और वायु का (यशः) यश प्राप्त हो । (भगस्य) ऐश्वर्य सम्पन्न ईश्वर का (यशः) यश (विन्दतु) प्राप्त हो । (यशः) यश मुझे (मा) मत (प्रति-मुच्यताम्) छोड़े । (अहम्) मैं (यशसा) कीर्त्तिमान् होकर (अस्याः) इस (संसदः) उत्तम प्रकार से विद्वानों को अपने में स्थिति प्राप्त कराने हारी सभा या इस ब्रह्मविद्या का (प्र वदिता) प्रवक्ता, ज्ञानोपदेशक (स्याम्) होजाऊं।

[६१२] इन्द्रस्य नु वीर्य्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ ११ ॥

ऋ० १ । ३२ । १ ॥

भा०—(इन्द्रस्य) विद्युत् या सूर्य के समान बलवान्, शक्तिमान् परमेश्वर के (वीर्याणि) नाना पराक्रम के उन कार्यों को मैं (प्रवोचं नु) कहता हूँ (यानि) जिन (प्रथमानि) अतिश्रेष्ठ महत्त्वपूर्ण कार्यों को (वज्री) अणु से अणु तक को पृथक् करने हारा परमेश्वर (चकार) किया करता है । वह (अहिम्) कभी नष्ट न होने वाले, स्वभावतः विद्यमान अन्धकार को (अहन्) विनाश करता है, स्वयं (अनु) बिजुली जिस

६१०—'यज्ञिया' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार मेघों से जलों और पर्वतों से झरनों को पैदा कर देती है उसी प्रकार वह भी अज्ञानरूप 'अहि' का नाश करके (अपः) प्रज्ञानों को (ततर्द) प्रवाहित करता है। और (पर्वतानां) बड़े २ पर्वतों के (वक्षणा) नदियों के समान विद्वानों के हृदय-ग्रन्थियों या अंगों से बने देहादि बन्धनों को (प्र-अभिनत्) काट देता है।

[६१३] अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्।
त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥१२

ऋ० ३ । २६ । ७ ॥

भा०—मैं (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर (जन्मना) श्रवण, मनन, निदिध्यासन की अपेक्षा बिना किये ही, स्वभावतः (जात-वेदाः) समस्त पदार्थों का जानने वाला (अस्मि) हूँ। (मे) मेरा (चक्षुः) सबको देखने और दिखाने वाला साधन (घृतम्) अतिदीप्तिमान् है। (मे आसन्) मेरे मुख्य स्थान या मुख अर्थात् स्वरूप में (अमृतम्) कभी नाश न होने वाला अमृत, मोक्ष है। और मैं (त्रि-धातुः) समस्त पदार्थों को तीन बलों से धारण करने वाला (अर्कः) तेजःस्वरूप सूर्य, (रजसः) समस्त लोकों को (विमानः) निर्माण करता हुआ (अजस्रम्) कभी नाश न होने वाला, अविनाशी, सदा वर्तमान, (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप और (सर्वम्) सर्वव्यापक (हविः) हवि = भोग्य पदार्थों का दाता भी मैं ही (अस्मि) हूँ।

[६१४] पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥१३॥

ऋ० ३ । ५ । ५ ॥

६१३—'विमानो घर्मो' इति ऋ०।

६१४—'पाति प्रियं रिपो अग्रं' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(विपः) मेधावी, ज्ञानी (अग्निः) परमेश्वर (वेः) गतिशील पृथिवी के (अग्रम्) गमन के (पदम्) मार्ग को (पाति) सुरक्षित करता है। (यह्वः) वह महान् (सूर्यस्य) सूर्य के (चरणम्) चलने के मार्ग को भी (पाति) पालन करता है (नाभा) नाभिस्थान, केन्द्र अथवा अन्तरिक्ष या बन्धनस्थान मूर्धा में (अग्निः) यह अग्नि ही (सप्त-शीर्षाणम्) सात शिर के वासी प्राणों के स्वामी जीव को भी (पाति) रक्षा करता है। (ऋष्वः) दर्शनीय देव या (देवानाम्) अग्नि आदि देवों और विद्वानों को आनन्दकारक आत्मा या इन्द्रियों के ग्राह्य विषय की भी (पाति) रक्षा करता है।

इति द्वादशी दशतिः । तृतीयः खण्डः ।

॥ दशतिः १२ ॥ ऋषिः—१, २, ८—१२ वामदेवो गौतमः । ३—७ नारायणः । देवता—अग्निः । २ क्रतुः । ३—६ पुरुषः । ७ स्रष्टा । ८ द्यावापृथिवी । ६, ११ इन्द्रः । १० आत्मा । १२ गौः ॥ छन्दः—१, २ पङ्क्तिः । ३—७, ६, १० अनुष्टुप् ॥

[६१५] भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद् रयिं वर्चो दृशेऽदाः ॥१॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! हे (समिधान) प्रकाशमान ! हे (दीदिवः) देदीप्यमान ! (अन्तः आसनि) प्रत्येक आश्रय स्थान देह में, मुख में जीभ के समान (भ्राजन्ती) प्रकाशस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, चित्-शक्तिरूप (जिह्वा) ज्ञान ग्रहण करने हारी शक्ति (चरति) विचर रही है। हे अग्ने ! (स त्वम्) वह तू (वसुविद्) वास कराने हारे प्राणों या ऐश्वर्यमय लोकों को जानने या कर्मानुसार प्राप्त कराने हारा (नः) हमें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पयसा) अन्न, ज्ञान, पुष्टिकारक पदार्थ के साथ (रयिं) जीवन और (वर्चः) बल और कान्ति, रक्षा सामर्थ्य (अदाः) प्रदान कर ।

३ १ २र ३ १ २र
[६१६] वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १र २ ३ १र २र
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥ २ ॥

भा०—(वसन्त इत्) वसन्त ही (नु) निश्चय से रमण करने योग्य है । और (ग्रीष्मः) ग्रीष्म भी (इत् नु) निश्चय से (रन्त्यः) आनन्द लाभ करने योग्य है । (वर्षाणि) वर्षाकाल और (अनु शरदः) बाद में आने वाले शरत् के दिन और (हेमन्तः) हेमन्त और (शिशिरः) शिशिर (इत्) ये सभी (नु) निश्चय से (रन्त्यः) जीवन का आनन्द लाभ करने के लिये ही हैं ।

ऋतुनामों से ईश्वर को याद किया गया है । (वसन्तः) सब प्राणियों को बसाने हारा वह परमात्मा (इत् नु) ही तो केवल (रन्त्यः) आनन्द लाभ करने योग्य है । (ग्रीष्मः) सबको ग्रास करने हारा परमात्मा भी आनन्द ही देता है । (वर्षाणि) सब सुखों की वर्षा करने वाला (अनु शरदः) तथा उनके समान ही सब दुःखों का नाश करने वाली शक्तियों और (हेमन्तः) सब पदार्थों को प्रेरणा या ताड़ना करने वाला और (शिशिरः) शनैः २ प्रत्येक पदार्थ की आयु, बल और शरीर को घिसाने वाला काल रूप परमात्मा (इत् नु) ही (रन्त्यः) एकमात्र आनन्द लाभ कराने वाला है ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[६१७] सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ ३ ॥

ऋ० १० । ९० । ४ ॥ यजुः० ३१ । ४ ॥

६१७—'स भूमिं विश्वतो वृत्वा' इति ऋ० । 'सर्वतः स्पृत्वा' इति यजुः० ।
'सहस्रशीर्षा' इति यजुः० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(सहस्रशीर्षाः) सहस्रों शिरों वाला, (सहस्राक्षः) हज़ारों आंखों वाला, (सहस्रपात्) हज़ारों पगों वाला, (पुरुषः) पुरुष, ईश्वर विराट् (सः) वह (भूमिम्) ब्रह्माण्ड नामक भुवन को (वृत्वा) घेरकर, व्याप्त होकर और भी (दशाङ्गुलम्) दश अङ्गुल अर्थात् दशों दिशाओं से भी (अति अतिष्ठत्) परे तक विराजमान है।

१० अङ्गुल–परमात्मा के दशों दिशा में फैलने वाली व्यापक शक्तियां हैं। आत्मपक्ष में भूमि–नाभि, दश अङ्गुल दश इन्द्रिय। सर्वं व्यापक सर्वान्तर्यामी और सब का नियामक होने से समस्त प्राणियों के लक्षों शिर, आंखों और पैरों को लक्ष्य करके ईश्वर को सहस्रशीर्षा आदि विशेषणों से गौण रूप से दर्शाया है। अथवा ब्रह्माण्डगत नाना द्यौलोक उस के शिर हैं, प्रकाशमान नाना सूर्य उसकी चक्षुएं और नाना वास योग्य भूमियां उसके चरण हैं।

३ २ ३ २उ ३ १ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[६१८] त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
२ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २
तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ॥ ४॥

ऋ० १० । ९० । ४ । यजुः० ३१ । ४ ॥

भा०—(पुरुषः) इस महान् ब्रह्माण्ड पुर में शयन करने हारा सर्वव्यापक, परमात्मा (त्रि-पात्) सत्, चित्, आनन्दस्वरूप (उद् ऐत्) सबसे उत्कृष्ट होकर, सब पर वश किये हुए अधिष्ठाता के समान होकर वर्त्तमान है। (अस्य) इसका (पादः) ज्ञान और क्रियारूप शासन ही (इह) इस ब्रह्माण्ड पर (पुनः) वार वार (अभवत्) सत्तारूप में प्रकट होता और विलीन होता है। (तथा) और वही (विष्वङ्) सर्वत्र (अशन-अनशने अभि) भोजन करने हारे प्राणियों और न भोजन करने हारे स्थावर, जड़ पदार्थों में भी (वि-अक्रामत्) व्यापक है।

६१८—'साशनानशने' इति ऋ० यजुः० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २र ३ २ ३२उ ३ १ २
[६१९] पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ५ ॥

ऋ० १० । ९० । २ पूर्वार्ध, ३ उत्तरार्ध, यजुः० ३१ । २ पू० । ३ उ० ॥

भा०—(यद् भूतम्) जो अबतक उत्पन्न जगत् है, (यत् च भाव्यम्) और जो भविष्यत् काल में उत्पन्न होने वाला जगत् है (इदं सर्वम्) यह सब (पुरुष एव) पुरुष ही है । अर्थात् (सर्वा) समस्त (भूतानि) उत्पन्न हुए पदार्थ और प्राणिगण (अस्य पादः) इसके चरण हैं, इससे व्याप्त हैं या इसके एक चतुर्थांश हैं, या कार्य होने से उस प्रभु स्वामी के ज्ञापक हैं । और (अस्य त्रिपाद्) इसके तीन चरण (दिवि) अपने प्रकाशस्वरूप में (अमृतम्) विनाशरहित, अमृतरूप सत्, चित्, आनन्द हैं । अर्थात् कार्यरूप जगत् विकार को प्राप्त होता है । वह ब्रह्म का एक पाद है और अमृतस्वरूप तीन शक्तियां सत्, चित्, आनन्द, वह उसके निज अमृत, अविनाशी, अविकारी कारणस्वरूप हैं ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[६२०] तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ ६ ॥

ऋ० १० । ९० । ३ ॥ यजु० ३१ । ३ पू०, २ उ० ॥

भा०—(तावान्) इस संसार में जितना (अस्य) इस जगत् का (महिमा) विस्तार है (ततः) उससे भी (ज्यायान्) बड़ा वह (पूरुषः) पुरुष; परमेश्वर है । (उत) और वही (अमृतत्वस्य) इस अमर जीव संसार का (ईशानः) स्वामी है (यत्) जो (अन्नेन) अन्न या कर्मफल भोग के द्वारा (अति रोहति) मूल कारण से कार्य को उत्पन्न करता है अर्थात् संसार को उत्पन्न करता है ।

६२०—'एतावानस्य' अतो ज्यायां' इति ऋ०, यजु० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

[६२१] ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।

२ ३१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ २

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ७ ॥

ऋ० १० । ६ । ५ ॥ यजु० ३ । ५ ॥

भा०—(ततः) उस पुरुष से (विराड्) हिरण्यगर्भ नामक ब्रह्माण्ड (अजायत) उत्पन्न हुआ । (विराजः अधि) उस विराट् से (पूरुषः) पुरुष, जीव उत्पन्न अर्थात् प्रकट हुआ, (सः) वह विराट् ही (अति अरिच्यत) सबसे बड़ा रहा । (पश्चात्) उसके पश्चात् उसने (भूमिम्) इस भूमि को और (अथो पुरः) इन देहों को या इन सौर जगतों को भी उत्पन्न, प्रकट किया ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३

[६२२] मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितम-

१ २र १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३

भि योजनम् । द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चत-

१ २

मंहसः ॥ ८ ॥ अथर्व० ४ । २६ । १ ॥

भा०—हे (द्यावा-पृथिवी) सबको प्रकाश देनेहारे गुरो ! सूर्य के समान प्रकाशक परमात्मन् ! और पृथिवी के समान विस्तृत विशाल प्रकृति ! मैं (वाम्) आप दोनों को (सु-भोजसौ) उत्तम पालन करने वाले (मन्ये) मानता व जानता हूँ । आप दोनों (अमितम्) अपरिमित अनन्त (योजनम्) इस संसार को (अप्रथेथाम्) विस्तृत कर रहे हो । हे (द्यावा-पृथिवी) पूर्वोक्त पुरुष और प्रकृति ! आप हमारे लिये (स्योने) सुखकारक (भवतम्) होओ । (ते) वे दोनों आप (नः) हमें (अंहसः) पाप से (मुञ्चतम्) मुक्त करो ।

६२२—"मन्ये वां द्यावा"......"मभिता योजनानि । प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो०" इति अथर्व० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[६२३] हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ॥ ६ ॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरी (श्मश्रूणि) किरणें (हरी) हरणशील, सर्वव्यापक हैं (उत उ) और (ते हरी) तेरे गतिमान् अश्व, प्राण और अपान (हरितौ) सब शरीरों को गति में रखने वाले व सर्वत्र विद्यमान हैं । (तं त्वा) उस परम स्मरणीय तुझको (वनर्गवः) सुन्दर वाणियों वाले (कवयः) मेधावी (पुरुषासः) पुरुष (स्तुवन्ति) स्तुति करते हैं ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २
[६२४] यद् वर्चो हिरण्यस्य यद् वा वर्चो गवामुत ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा संसृजामसि ॥ १० ॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(हिरण्यस्य) हरणशील मन, सुवर्ण या सूर्य का (यद् वर्चः) जो बल, तेज है (उत वा) और (यत्) जो (वर्चः) तेज, बल (गवाम्) इन्द्रियों का या किरणों का है और जो (वर्चः) तेज (सत्यस्य) सत्यस्वरूप (ब्रह्मणः) वेद का है (तेन) उससे हम (मा) अपने आत्मा को (संसृजामसि) युक्त करें ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २ ३ १ २
[६२५] सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन् ।
२ ३ १ ३ १ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ॥ ११ ॥

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे (इन्द्र) परमात्मन् ! हे (विरप्शिन्) हे सत्यज्ञानमय ! (नः) हमें (तत्) वह (सहः) बाधक, दोषों को दबाने वाला सहन, बल और (ओजः) तेज, पराक्रम (दद्धि) प्रदान करो जिससे आप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अस्य महतः) इस महान् संसार पर (ईशे) प्रभुता करते हो। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! (नः) हमारे आप (क्रतुं न) कर्म के समान ही (नृम्णं) उपभोग योग्य धन धान्य और (स्थविरम्) स्थिर (वाजम्) बल, अन्न और ऐश्वर्य (कृधि) करो और (नः) हमारे (स-हना) हथियारों वाले हिंसक (शत्रून्) शत्रुओं को (श्वभ्रेषु) नाना विघ्नों में (कृधि) डाल।

[६२६] सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त ॥१२

(ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—हे गौओ ! आप (सह-ऋषभाः) सांडों के साथ और (सह-वत्साः) बछड़ों के साथ (द्व्यूध्नीः) दोहरे स्तनमण्डल को वहन करती हुई (विश्वा) नाना प्रकार के (रूपाणि) रूप (बिभ्रतीः) धारण करती हुई (उत् एत) उन्नति को प्राप्त होओ। (अयं लोकः) यह लोक (वः) तुम्हारे लिये (उरुः पृथुः) खूब बड़ा विशाल (अस्तु) रहे। (इमाः) ये (आपः) जल (सु-प्र-पाणः) उत्तम पान करने वाले स्थानों से सज्जित रहे। (इह स्त) तुम यहां रहो। रश्मियों के पक्ष में—ऋषभ, सूर्य, वत्स, ग्रह आदि और रस धारण करने हारे दो ऊधस् मेघ और पर्वत हैं। इन्द्रियों के पक्ष में—ऋषभ—आत्मा, परमात्मा। वत्स—मन। दो ऊधस् ज्ञान और कर्म। आपः—प्रज्ञान और लोक।

इति त्रयोदशी दशतिः। चतुर्थः खण्डः।

॥ दशतिः १४ ॥ ऋषिः—१ शतं वैखानसाः। विभ्राट् सूर्यपुत्रः। ३ कुत्स आङ्गिरसः। ४—६ सार्पराज्ञी। ७—१४ प्रस्कण्वः॥ देवता—१ अग्निः पवमानः। २—१४ सूर्यः। ४—६ आत्मा वा॥ छन्दः—२ जगती। ३ त्रिष्टुप्। १, ४—१४ गायत्री॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[६२७] अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ६६ । १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (नः) हमें (आयूंषि) आयु (पवसे) प्रदान कर । (नः) हमें (ऊर्जम्) बल और (इषम्) अन्न (च) भी दो । (दुच्छुनाम्) बुरे पागल कुक्कुर के समान लोभ और क्रोध से अन्धे पुरुषों को (आरे) दूर ही (बाधस्व) पीड़ित कर ।

[६२८] विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्त्ति बहुधा
वि राजति ॥२॥ ऋ० १० । १७० । १ ॥ यजु० ३३ । ३० ॥

भा०—(विभ्राट्) विशेषरूप से देदीप्यमान सूर्य के समान स्वतःप्रकाश, परमात्मा (बृहत्) बड़ा भारी (सोम्यं) उत्पादक और प्रेरक गुणों से युक्त (मधु) जीवनरस को (पिबतु) पान करे अर्थात् अपने भीतर धारण करे । और (यज्ञ-पतौ) यज्ञ, जीवनयज्ञ या अन्य देवपूजा आदि सत्कर्मों के अनुष्ठाता पुरुष को (अवि-ह्रुतम्) सरल, अकुटिल, धार्मिक (आयुः) जीवन (दधत्) धारण कराता है । (यः) जो परमात्मा (वात-जूतः) वात, वायु के समान गतिमान् शक्तियों से युक्त होकर (त्मना) स्वयं (प्रजाः) प्रजाओं को (अभि रक्षति) रक्षा करता है, (पिपर्त्ति) पालन पोषण करता है और (बहुधा वि राजति) बहुत प्रकारों से सबके ऊपर शासक रूप से विराजमान है ।

[६२९] चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३
ऋ० १ । ११५ । १ ॥

६२८—'प्रजाः पुपोष पुरुधा' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(देवानाम्) दिव्यगुण वाले विद्वानों और सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु आदि वसु और प्राण आदि रुद्रों और १२ आदित्यों के (अनीकम्) प्राण, बल देनेहारे, प्रमुख (चित्रम्) पूजनीय, (मित्रस्य) स्नेहवान्, (वरुणस्य) पापनिवारक (अग्नेः) प्रकाशस्वरूप लोकों का (चक्षुः) प्रकाशक या द्रष्टा (उद्–अगाद्) उदय को प्राप्त होता है। वह और (द्यावापृथिवी) द्यौलोक, पृथिवीलोक और (अन्तरिक्षं च) अन्तरिक्ष को भी (आप्राः) व्याप्त करनेहारा है और (जगतः) जंगम संसार और (तस्थुषः च) स्थावर संसार का (आत्मा) गति देनेहारा, उनका आत्म-स्वरूप अधिष्ठाता, (सूर्यः) सबका प्रेरक और उत्पादक है ।

[६३०] आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥

ऋ० १० । १८९ । १ ॥ यजु० ३ । ६ ॥

भा०—(अयं) यह (गौः) गमनशील, सर्वत्रव्यापक या वेद-वाणीस्वरूप, (पृश्निः) सर्वान्तर्यामी समस्त संसार के तेजः-पुञ्जों को स्पर्श करनेहारा, (पुरः) साक्षात् (आ अक्रमीत्) प्रकट होता है। और (मातरम्) ज्ञान के प्राप्त करने हारे ज्ञाता के (पुरः) समक्ष ही (असदत्) विराजता है (च) और (पितरम्) अपनी प्रजाओं और तत्स्थानीय इन्द्रियों के पालक को भी (स्वः) सुखस्वरूप होकर (प्रयन्) प्राप्त होता है ।

जिस प्रकार सूर्य, पृथिवी, माता पिता और अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं उसी प्रकार परमेश्वर विद्वानों और प्रजापालकों के हृदय में प्रकट होता है। वे ईश्वर के प्रेम से प्रजा का पालन और उपकार करते हैं ।

[६३१] अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ५ ॥ ऋ० १० । १८९ । २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर की (रोचना) सबको रुचिकर, प्रेममयी दीप्ति (प्राणद्) प्राण प्रदान करती हुई (अपानती) प्राण वायु को बाहर करती हुई (अन्तः) देह के भीतर (चरति) गति करती है, कर्मफल-भोग करती है। (महिषः) वह महान् परमात्मा (दिवम्) सूर्य को भी (वि-अख्यत्) प्रकाशित करता है।

[६३२] त्रिंशद्धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ६ ॥ ऋ० १० । १८९ । ३ ॥

भा०—वह परमात्मा (वस्तोः) दिन के (त्रिंशद् धाम) तीसों स्थान, तीसों घड़ियों तक (द्युभिः) दीप्तियों से (वि राजति) हृदय में विराजता है। (वाक्) यह वेदवाणी, उसी (पतंगाय) सर्वव्यापक ईश्वर के लिये (प्रति धीयते अह) प्रत्येक पुरुष द्वारा मनन करने योग्य है।

[६३३] अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ ७ ॥ ऋ० १ । ५० । २ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ २ (नक्षत्रा) नक्षत्र (विश्व-चक्षसे) सब के दर्शक, प्रकाशक, (सूराय) सूर्य के कारण (अप यन्ति) लोप को प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार हे परमात्मन्! (विश्व-चक्षसे सूराय) समस्त प्राणियों के प्रकाशक, सब के प्रेरक आपके उदय होने के कारण (त्ये) वे (तायवः) हृदय के चोर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि भीतरी पाप (अप यन्ति) दूर भाग जाते हैं।

[६३४] अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ८ ॥ ऋ० १ । ५० । ३ ॥

६३४—'अदृश्रमस्य' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(भ्राजन्तः) प्रकाशमान् (अग्नयः) तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष (यथा) जिस प्रकार सब प्राणियों पर दृष्टि रखते हैं उसी प्रकार (अस्य) इस परब्रह्म परमेश्वर के (केतवः) ज्ञान कराने वाले (रश्मयः) किरण (जनान् अनु) जन्म लेने वाले प्राणियों को (अदृश्रन्) बराबर दीखते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[६३५] तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
२ ३ १ २ ३ २
विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ६ ॥ ऋ० १ । ५० । ४ ॥

भा०—हे (सूर्य) सबके प्रेरक परमात्मन् ! आप (तरणिः) सबको इस भवबन्धन के पार तारने वाले, (विश्व-दर्शतः) समस्त संसार में एकमात्र दर्शनीय, (ज्योतिष्कृद्) समस्त सूर्य आदि प्रकाशमान ज्योतियों को पैदा करने हारे, (असि) हैं। आप ही (विश्वम्) समस्त (रोचनम्) मनोहर, कान्तिमान् सुन्दर पदार्थों को (आभासि) प्रकाशित करते हो। सूर्य एक सैकण्ड में २३०० योजन जाने से और रोगों से पार करने के कारण 'तरणि' और ग्रहों को प्रकाशित करने वाला होने से 'ज्योतिष्कृद्' कहाता है।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[६३६] प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।
३ २उ ३क २र ३ २
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ १० ॥ ऋ० १ । ५० । ५ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! आप (देवानाम्) विद्वानों, प्राणों और सब सूर्य चन्द्र आदि दिव्य पदार्थों के (विशः) भीतर निवास करने वाली प्रज्ञाओं के (प्रत्यङ्) सामने और (मानुषान्) मनन करने हारे प्राणियों के (प्रत्यङ्) सन्मुख और (स्वः) द्यौलोक, आनन्दमय मोक्ष के (दृशे) दर्शन करने के निमित्त (विश्वम्) समस्त संसार के (प्रत्यङ्) प्रति (उद्–एषि) उदय को प्राप्त होते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[६३७] येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
१ २ ३ १ २
त्वं वरुण पश्यसि ॥ ११ ॥ ऋ० १ । ५० । ६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (पावक) सबको पवित्र करनेहारे ! हे (वरुण) सब अनिष्टों का वारण करने हारे परमात्मन् ! (येन) जिस (चक्षुषा) चक्षु से (जनान्) जन्तुओं को (भुरण्यन्तम्) भरण पोषण करने हारे तुझको हम देखते हैं उसी प्रेममय चक्षु से (त्वम्) तू समस्त जीवों को (पश्यसि) देखता है।

१२ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[६३८] उद् द्यामेषि रजः पृथ्वह्मा मिमानो अक्तुभिः।
२ ३ १ २
पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥१२॥ ऋ० १ | ५० | ७ ॥

भा०—हे (सूर्य) सबके प्रेरक, उत्पादक परमेश्वर ! (अक्तुभिः) व्यापनशील, शक्तियों द्वारा (पृथुः) विशाल (रजः) समस्त लोकसमूह को (अह) और (द्याम्) समस्त सूर्य और द्यौलोक के भी (जन्मानि) जन्म लेने वाले समस्त पदार्थों और प्राणियों को (पश्यन्) देखता (उद् एषि) उदय को प्राप्त होता है।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
[६३९] अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः।
१ २ ३ १ २
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ १३ ॥ ऋ० १ | ५० | ९ ॥

भा०—(सूरः) सबको प्रेरणा करने हारा परमात्मा (रथस्य) सब देहों में आत्मा के साथ (शुन्ध्युवः) शुद्ध ज्ञान प्राप्त करने वाली, (नप्त्यः) कुमार्गों पर न गिराने वाली इन्द्रियों को (अयुक्त) जोड़ देता है और (ताभिः) उन द्वारा ही (स्व-युक्तिभिः) अपनी शक्तियों के द्वारा (याति) वह सर्वत्र व्यापक है।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[६४०] सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य।
३ १ २
शोचिष्केशं विचक्षण ॥ १४ ॥ ऋ० १ | ५० | ८ ॥

६३८—'वि द्यामेषि' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे (सूर्यं) सबके प्रेरक और उत्पादक ! हे (देव) प्रकाशमान ! हे (विचक्षण) सबके आत्मन् ! (रथे) इस शरीररूप रथ में (त्वा) तुझको (शोचिष्-केशं) कान्तियुक्त किरणों वाले (सप्त हरितः) सात ज्ञान प्राप्त कराने वाले इन्द्रियगण (वहन्ति) धारण करते हैं अर्थात् वे तेरी शक्ति से अनुप्राणित हैं ।

इति चतुर्दशी दशतिः । पञ्चमः खण्डः ।

इति षष्ठः प्रपाठकः समाप्तः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः । इत्यारण्यकं काण्डम् ।

इति सामवेद-संहितायां पूर्वार्चिकः समाप्तः ॥

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकारपदवीविभूषितेन मीमांसातीर्थोपाध्यलंकृतेन श्री पण्डित-जयदेवशर्मणा विरचिते सामवेदस्यालोकभाष्ये आग्नेयैन्द्रपावमानारण्यककाण्ड-चतुष्टयात्मकः सामवेदसंहितायाः पूर्वार्चिकाख्यो भागः समाप्तः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

अथ महानाम्न्यार्चिकः *

प्रजापतिऋषिः । इन्द्रस्त्रैलोक्यात्मा देवता ।

[१]

३ १ २   ३ २ ३ १र २र   ३ १ २
[६४१] विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः ।
१ २   ३ १ २
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो ॥ १ ॥

३ २उ   ३ १ २ ३   २   २
[६४२] आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वाऽ३ र्नांशुः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥ २ ॥

३ २उ   ३ २ ३ १र   २र
[६४३] एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।
१ २   ३ २ ३ १ २   ३ २ ३
शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस ।
१ २ ३ १ ३ १ २
आ याहि पिब मत्स्व ॥ ३ ॥

भा०—(१) हे (मघवन्) परमेश्वर ! (विदाः) आप सब कुछ जानते हैं । अतः (गातुम्) मार्ग को (विदाः) आप प्राप्त करावें, आप (दिशः) दिशाओं का (अनुशंसिषः) उपदेश करें, हमें लक्ष्य तक पहुंचने की दिशा दर्शावें । हे (पूर्वीणाम्) पूर्ण (शचीनाम्) शक्तियों के (पते) स्वामिन् ! हे (पुरुवसो) समस्त प्रजाओं के भीतर बसने और उनको बसाने वाले ! या अति अधिक धन सम्पन्न ! (शिक्ष) हमें शिक्षा करो, नियमों का उपदेश करो ।

---

* अयमार्चिकः नतु छन्द-आर्चिके नाप्युत्तरार्चिके । सर्वत्र एवमेव पूर्वोत्तरयोर्मध्ये पठितत्वात् परिशिष्टमिति केचित् । तदयुक्तम् । सर्वत्र सामसंहितासु तथोपलब्धेः । यज्ञे च होतुः पृष्ठेऽस्य विनियोगदर्शनाच्च । १. सोपसर्गाया अस्याः शक्वर्याः सामगैः खण्डत्रयं कृतम् । तत्र प्रथमे आद्यपादद्वयमुपसर्गः, द्वितीये मध्यमपादद्वयमुपसर्गः, तृतीये चान्तिमपाद उपसर्गः । शेषैः सप्तभिः पादैरष्टाचरैः षट्पंचाशदक्षरा शक्वरी पूर्यते । सर्वत्र रेखाङ्किताः पादा उपसर्गाः ज्ञेयाः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे त्रैलोक्यपते ! हे (प्रचेतन) उत्कृष्ट चेतनासम्पन्न ! चिन्मय जगदीश्वर ! हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् ! आप (स्वः न) सबको प्रेरणा करने वाले सूर्य के समान (अंशुः) सर्वव्यापक, (आभिः) इन (अभिष्टिभिः) अभीष्ट उपासनाओं से (इषे) अन्न और जीवन प्राप्त करने के लिये और (द्युम्नाय) ज्ञानस्वरूप प्रकाश प्राप्त करने के लिये (नः) हमें (प्रचेतय) उत्तम रीति से ज्ञानवान् करो ।

(३) हे (मंहिष्ठ) सबसे महान् ! सबसे बड़े दाता और पूजा के योग्य ! हे (वज्रिवः) पापों का वर्जन करने हारे, ज्ञान से सम्पन्न ! आप (शक्रः) शक्तिमान् (एव हि) ही हैं । अतः हे (शविष्ठ) सबसे अधिक बलशालिन् ! सर्वव्यापक, वज्रिन् ! आप हमें (राये) धन, ज्ञान, शक्ति, तेज और (वाजाय) बल, अन्न के निमित्त (ऋञ्जसे) समर्थ करो । हे वज्रिन् ! (ऋञ्जसे) आप हमें समर्थ बनाओ । (आयाहि) आप हमारे हृदय में प्रकट होओ । (पिब) यह ज्ञान, स्तुतिमय भक्तिरस मेरे हृदय पात्र में से पान करो या स्वीकार करो (मत्स्व) और आनन्दमय होकर विराजो ।

[२]

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[६४४–६४६] विदा राये सुवीर्यं भवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु ।
१ २ ३ १ २ २र ३ १ २
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥ ४ ॥
१र २र ३ १ २ ३ २उ ३ २
यो मंहिष्ठो मघोनामंशुर्न शोचिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३र २र
चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥५॥
२ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥६॥

६४४–६४६—रेखाङ्किताः पादा उपसर्गाः । शेषैः सप्तभिः पादैः शक्वरी ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—हे त्रैलोक्यपते ! आप हमें (राये) श्रेष्ठ धन, आत्मज्ञान के प्राप्त करने के लिये प्रथम (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य, सामर्थ्य, ब्रह्मचर्य को (विदाः) प्राप्त कराओ । (यः) जो (शूराणाम्) शूरवीरों में भी (शविष्ठः) सब से अधिक बलवान् है । हे (मंहिष्ठ) सबसे महान् ! (वज्रिन्) बलवन् ! पापनाशक ! आप (वाजानां पतिः) समस्त ऐश्वर्यों, ज्ञानों, और बलों के पति (भवः) हैं । और (वशान्) आपके वशीभूत समस्त लोकों के (अनु) अनुकूल हितके लिये उन पर (ऋञ्जसे) वश करते हो ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (मघोनाम्) समस्त ऐश्वर्य वालों में (मंहिष्ठः) सबसे बड़ा दाता है वही (अंशुः न) समस्त संसार में अपनी प्रसरणशील रश्मियों से व्यापक सूर्य के समान (शोचिः) शुद्ध, कान्तिमान् है । हे (चिकित्वः) सर्वज्ञ ! आप (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्यशाली (नः) हमें भी (विदे) ज्ञान और बल को प्राप्त कराने के लिये (अभि नय) आगे ले चलो । हे मनुष्य ! तू (तम्) उसकी ही (स्तुहि) स्तुति कर ॥५॥

भा०—(हि) क्योंकि (शक्रः) सर्व शक्तिमान् परमेश्वर ही (ईशे) सब का शासन करता है इसलिये (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (अपराजितम्) किसी से भी न हारे हुए, (जेतारम्) सब पर विजय करने वाले उस परमात्मा को (हवामहे) हम स्मरण करते हैं । (सः) वह (नः) हमारे (द्विषः) शत्रुओं को (सु अर्पद्) विनाश करे । वह महान् परमेश्वर ही (क्रतुः) सब दुनियां का कर्ता (छन्दः) वेदज्ञानमय, सब का रक्षक, (ऋतम्) सत्यस्वरूप और (बृहत्) सबसे बड़ा है ॥ ६ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

[६४७] इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

स नः स्वर्षदति द्विषः स नः स्वर्षदति द्विषः ॥ ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२ ३ १ २ ३ १२ २२
[६४८] पूर्वस्य यत्त अद्रिवोऽशुर्मदाय ।
३ १२ २२ ३ १ २
सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्त्तिः शविष्ठ शस्यते ।
३ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं सन्न्यसे ॥ ८ ॥

३ १२ २२ ३ २ १
[६४९] प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै ।
२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥ ९ ॥

भा०—(धनस्य) परमैश्वर्य को (सातये) प्राप्त करने के लिये हम (अपराजितं जेतारं) न हारे हुए, पराक्रमी विजेता (इन्द्रं) परमात्मा को (हवामहे) पुकारते हैं । (सः नः द्विषः अति स्वर्षद् २) वह हमें शत्रुओं से पार करे, वह हमें हमारे शत्रुओं से पार करे ॥ ७ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) ज्ञानस्वरूप, अखण्ड ! सबके प्रलय करने हारे ! (पूर्वस्य) सबके पूर्व विद्यमान, मूल कारण तेरा (यद्) जो स्वरूप (अंशुः) सर्वव्यापक (मदाय) आनन्द देने के लिये है, हे (वसो) सबको बसाने हारे ! वह (नः सुम्ने) हमारे सुख के लिये हमें (आ धेहि) प्रदान कर । हे (शविष्ठ) सर्व शक्तिमान् ! तेरा (पूर्तिः) सबका पालन पोषण करने वाला स्वरूप ही (शस्यते) प्रशंसा किया जाता है । (नूनम्) निश्चय से आप (शक्रः) शक्तिमान् होकर (वशी) सब पर वश करने हारे हो । (तत्) इसीलिये उस (नव्यं) स्तुतियोग्य आपको ही (संन्यसे) मैं अपने हृदय में आराध्यदेव के समान स्थापन करता हूँ ॥ ८ ॥

भा०—हे (प्रभो, वृत्रहन् समर्थ ! हे विघ्नविनाशक ! हम स्त्री पुरुष, गुरु या शिष्य (जनस्य) प्राणियों के (अर्येषु) बड़े २ स्वामियों के भी ऊपर विद्यमान (ब्रवावहै) तेरी स्तुति करते हैं । (यः) जो आप (गोषु) वेदवाणियों में (गच्छति) प्रतिपाद्य अर्थ के रूप में व्याप्त हैं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह (सखा) हमारे आत्मा के मित्र, (सु-शेवः) उत्तम रीति से सेवा करने योग्य (अद्वयुः) एकमात्र अद्वितीय हैं ॥ ९ ॥

अथ पञ्च पुरीषपदानि

३ २
[६५०] (१) एवाह्योऽ३ऽ३ऽ३ऽ३व ।

भा०—हे इन्द्र ! परमेश्वर आप (एव) ऐसे (हि) ही (एव) निश्चय से हो ।

२ ३ १ २
(२) एवां ह्यग्ने ।

हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (एवं हि) आप निश्चय से ऐसे प्रकाश-स्वरूप ही हो ।

३ १ २
(३) एवाहीन्द्र ।

हे (इन्द्र) सर्वैश्वर्यसम्पन्न ! सब के प्रकाशक, स्वयं प्रकाशमान ! (एव हि) निश्चय आप ऐसे ही हो ।

३ १र २र
(४) एवा हि पूषन् ।

हे (पूषन्) सबके पोषण करने हारे परमात्मन् ! (एव हि) आप ऐसे ही हो ।

३ १र २र
(५) एवा हि देवाः ॥

हे (देवाः) हे समस्त देवगण ! दिव्यगुणों से सम्पन्न पदार्थो ! एवं विद्वानो ! (एव हि) आप सब परमेश्वर के गुणों से ही इस प्रकार के हो !

इति पञ्च पुरीषपदानि ।

(पुरीषोत्सर्ग)

इति महानाम्न्यार्चिकः समाप्तः ।

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकार—मीमांसातीर्थोपाध्यलंकृतेन श्रीपण्डितजयदेवशर्मणा विरचिते सामवेदस्यालोकभाष्ये सामवेदसंहितायाः महानाम्न्यार्चिकाख्यो भागः पूर्तिमगात् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❀ ओ३म् ❀

सामवेदसंहितायाः

उत्तरार्चिकः ।

प्रथमः प्रपाठकः (प्रथमोऽर्धः)

अथ प्रथमोऽध्यायः

ऋषिः—१ असितः काश्यपो देवलो वा । २ कश्यपो मारीचः । ३ शतं वैखानसा आङ्गिरसः । ४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ५ विश्वामित्रो गाथिनः जमदग्निर्वा भार्गवः । ६ इरिमिठः काण्वः । ७ विश्वामित्रो गाथिनः । ८ अमहीयुराङ्गिरसः । ९ सप्तर्षयो भरद्वाज-कश्यप-गौतम-विश्वामित्र जमदग्नि वसिष्ठाः । १० उशनाः काव्यः । ११ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १२ वामदेवो गौतमः । १३ नोधा गौतमः । १४ कलिः प्रागाथः । १५ पुष्कलोऽग्निः । १६ संहितः । १७ शफः । १८ अन्धीगुः श्यावाश्विः । १९ आन्धीगवः कविः । २० अग्निर्वैश्वानरः । २१ साकमश्वः । २२ सौभरिः काण्वः । २३ नृमेध आंगिरसः ॥ देवता —१—३, ८—१०, १५—१९ सोमः । ४, २०, २१ अग्निः । ५ मित्रावरुणौ । ६, ११, १३, १४, २२, २३ इन्द्रः । ७ इन्द्राग्नी । १२ सर्वे देवाः ॥ छन्दः—१—८, १२, १५, २१ गायत्री । ९, ११, १४, २० बृहती (प्रगाथः) । १० त्रिष्टुप् । १६, २२, काकुभः प्रगाथः । १७ उष्णिक् । १८ अनुष्टुप् । १९ जगती ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
[६५१] उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
३ २ ३ १ २र
अभि देवां इयक्षते ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[६५२] अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः ।
देवं देवाय देवयु ॥ २ ॥

[६५३] स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ११ । १-३ ॥

भा०—(१) हे (नरः) मनुष्यो ! (अस्मै) इस (पवमानाय) शुद्धिकारक (देवां अभि इयक्षते) देवों, विद्वानों के प्रति अपना ज्ञान प्रदान करते हुए (इन्दवे) परमेश्वर की (उप गायत) स्तुति गान करो, उपासना करो ।

(२) (ते) तेरे (देवम्) दिव्यगुणसम्पन्न (देवयु) देवों, विद्वानों से अभिलषित, (पयः) पोषणकारी आनन्द रस को (अथर्वाणः) अहिंसक तपस्वी लोग (मधुना) मनन करने योग्य ब्रह्मज्ञान के संग (अशिश्रयुः) मिलाकर आस्वादन करते हैं ।

(३) हे (राजन्) देदीप्यमान परमेश्वर ! (सः) वह तू (नः) हमारे (गवे) ज्ञानेन्द्रियगण या पशु सम्पत्ति में (शं) कल्याण, सुख (पवस्व) प्रदान कर । (जनाय) हमारी समस्त प्रजाजन को, (शम्) सुख कल्याण हो और (अर्वते) कर्मेन्द्रियों या अश्वादि सेनाङ्गों में (शं) शान्ति सुख हो । और हमारे (ओषधीभ्यः) उष्णता, प्रताप या तेज को धारने हारे लोगों को भी (शम्) सुख हो ।

[६५४] दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा ।
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥

[६५५] हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत् ।
सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[६५६] ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे ।
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३ ॥ २ ॥ ऋ० ९ । ६४ । २८—३० ॥

भा०—(१) (सौमाः) सौम्य गुणों से युक्त विद्वान् योगीजन, (शुक्राः) शुक्ल-कर्म अर्थात् निष्पाप कर्म करने हारे, (गवाशिरः) अपनी इन्द्रियों पर वश करने हारे, (दविद्युतत्या) अधिक प्रकाशमान (रुचा) कान्ति और (परिस्तोभन्त्या) सर्वत्र गुणवर्णन करने हारे (कृपा) प्रशंसनीय सामर्थ्य से युक्त रहते हैं ।

(२) (यथा) जिस प्रकार (वनुपः) हिंसक योद्धा लोग (सीदन्तः) विशेष पैतरों पर रहते हुए आक्रमण करते हैं या जिस प्रकार (वाजी) बलवान् घोड़ा (हेतृभिः) हण्टरों से (हिन्वानः) ताड़ा गया (वाजम्) युद्ध के मैदान में (अक्रमीत्) दौड़ता है उसी प्रकार (वाजी) ज्ञानवान् पुरुष (हेतृभिः) लौकिक कष्टों या हेय, त्याज्य दुःखों से (हिन्वानः) प्रेरित होकर (हितः) सन्मार्ग में आकर (वाजम्) ज्ञानपथ पर (अक्रमीत्) कदम रख देता है ।

(३) हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! मेधाविन् ! हे (सोम) सोम्यगुणों से युक्त महानुभाव ! विद्वन् ! (दिवा) प्रकाश, ज्ञान के बल पर (ऋधक्) दूर २ भी, लोक के (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सं-जग्मानः) गमन करता हुआ तू (सूर्यः) सूर्य के समान (दृशे) सबको सत्य पदार्थों के दर्शाने के लिये (पवस्व) सर्वत्र जा ।

[६५७] पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत ।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १ ॥

[६५८] अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये ।
अवावशन्त धीतयः ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[६५६] अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ ३ ॥ ३ ॥ ऋ० ६ । ६६।१०–१२ ॥

भा०—(१) हे (कवे) मेधाविन् ! विद्वान् पुरुष ! हे (वाजिन्) ज्ञानवन् ! (अर्वन्तः न) जिस प्रकार रथ दौड़ाते हुए पुरुष के घोड़े बराबर सरपट होजाते हैं उसी प्रकार (ते पवमानस्य) योगसाधना के मार्ग पर गमन करते हुए तेरे (श्रवस्यवः) ज्ञान को प्राप्त करने हारे (सर्गाः) प्रयत्न (असृक्षत) आप से आप सफल होने लगते हैं ।

(२) (धीतयः) ध्यान करने हारे साधक लोग (अव्यये) कभी न क्षीण होने वाले, दा प्राणमय (वारे) आवरण के ऊपर (मधुश्चुतम्) मधु, ब्रह्मानन्द रस को चुवाने वाले (कोशम्) आनन्दमय कोश को (अच्छा) उत्तम रीति से (असृग्रम्) प्रकट करते हैं और (अवावशन्त) उसी की कामना करते हैं । अर्थात् तामस आवरण पार करके वे ज्ञानमय आनन्द को प्राप्त करते हैं और उसी में मग्न होजाते हैं ।

(३) (धेनवः गावः) दुधारी गौएं जिस प्रकार (अस्तं न) घर को स्वयं आजाती हैं उसी प्रकार (इन्दवः) ऐश्वर्यसम्पन्न, ज्ञान से प्रकाशित चित्त वाले विद्वान् लोग (समुद्रम्) उत्तम रीति से उमड़ने वाले आनन्द-सागर, परम धाम, (ऋतस्य योनिम्) सत्य, ज्ञान और समस्त यज्ञ के मूल कारण परमेश्वर को (अच्छ) भली प्रकार (आ, अग्मन्) प्राप्त होते हैं ।

इति प्रथमः खण्डः ।

—:०:—

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[६६०] अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
३ २र ३ १ २
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

१ २ २ १ २ ३ १ २
[६६१] तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि ।
३ १ २
बृहच्छोचा यविष्ठय ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३२ ३ २ ३१ २
[६६२] स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि ।
३ १ २ ३ १ २
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ऋ० ६ । १६ । १०—१२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल संख्या [१] पृ० १ ॥

(२) हे (अंगिरः) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (तं) उस प्रसिद्ध (त्वाम्) तुझ परमेश्वर को (समिद्भिः) दीप्ति के साधन ज्ञानों और (घृतेन) देदीप्यमान तेज से (वर्धयामसि) हम आपको बढ़ाते हैं, आपकी विशालता प्रकट करते हैं, अतः हे (यविष्ठ्य) सबसे अधिक सामर्थ्य वाले ! सर्वशक्तिमन् ! (बृहत्) आप अति अधिक (शोच) हृदय में प्रकाशित हों ।

(३) हे देव ! अग्ने ! विद्वन् ! प्रभो ! आप हमें (पृथु) अति विशाल, (बृहत्) बड़े, (सुवीर्यम्) उत्तम सामर्थ्य युक्त (श्रवाय्यम्) श्रवण करने योग्य वेदज्ञान को (अच्छ) भली प्रकार (विवाससि) प्रकट करें ।

१ २ ३ १ २र
[६६३] आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
२ ३ १ २
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ १ ॥
३ १ २ ३ २ ३ १ २र
[६६४] उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः ।
३ २
द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ २ ॥
३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
[६६५] गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् ।
३ १ २र
पातं सोममृतावृधा ॥ ३ ॥५॥ ऋ० ३ । ६२ । ~~१६—१८~~ ॥ 16-18

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल संख्या [२२०] पृ० ११३ ॥

(२) हे (मित्रावरुणा) प्राण और अपान ! तुम दोनों (शुचि-व्रतौ) शुद्ध पवित्र कर्म करनेहारे, (उरु-शंसौ) अति प्रशंसनीय, (नमः-वृधौ) ज्ञान बल, अन्न और स्तुति से बढ़ने वाले (दक्षस्य) आत्मा के (मह्ना) महान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्य से और (द्राघिष्ठाभिः) अति दीर्घ दृष्टियों से आप (राजथः) प्रकाशित होते और सबके ऊपर विराजमान रहते हो।

(३) तुम दोनों (ऋतावृधा) सत्य और ज्ञानयज्ञ के बढ़ाने हारे, (जमदग्निना) हृदय के भीतर प्रकाशित, अग्निस्वरूप आत्मा या परमेश्वर के ज्ञान से प्रज्वलित आत्मा वाले योगी द्वारा (गृणानौ) अपने सामर्थ्य को प्रकट करते हुए और प्राण और अपान (ऋतस्य) इस जीवनयज्ञ, या उपासना, या योगयज्ञ के (योनौ) मूल भाग में (सीदतम्) स्थिति को प्राप्त करो और (सोमम्) सर्वप्रेरक बल को (पातम्) प्राप्त करो।

[६६६] आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
पेदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

[६६७] आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

[६६८] ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥ ६ ॥ ऋ० ~~८।१७।१३~~ ॥ ८-१६।१-३

भा०—(१) व्याख्या देखो मन्त्र संख्या [१९१] पृ० १०१ ॥

(२) हे (इन्द्र) आत्मन् ! (ब्रह्मयुजा हरी) ब्रह्म, ब्रह्मविद्या या वेद मन्त्रों के ज्ञानपूर्वक योग युक्त, समाहित होने वाली (हरी) गतिशील प्राण और अपान, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय (केशिना) दीप्तियों से युक्त होकर (त्वा) तुझको (वहताम्) आगे, उन्नति पथ पर लेजावें। और तू (नः) हमारे (ब्रह्माणि) वेदमन्त्रों को (शृणु) सुन और मनन कर। ज्ञानी पुरुषों का अपने आत्मा के प्रति सम्बोधन है।

(३) हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (वयम्) हम (ब्रह्माणः) ब्रह्मज्ञानी लोग (सोम-पाः) सोमरस का पान करने वाले (सुतावन्तः) सम्पादित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोम मय आनन्दरस को प्राप्त होकर (युजा) समाधि द्वारा (त्वा) तुझ (सोम-पाम्) सोम, समस्त विश्व का पान अर्थात् आदान या वश करने हारे परमेश्वर को (हवामहे) पुकारते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
[६६९] इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्।
३ २ २ ३ ३ ३ २
अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥
१ २ ३ १ २र ३ १ २ १ ३ १ २
[६७०] इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः।
३ १ २ ३ २ ३ २
अया पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥
१ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[६७१] इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे।
१ २र ३ २
ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३॥७॥ ऋ० ३ । १२ । १-१-३॥

भा०—(१) हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् आचार्य! और ज्ञानसम्पन्न अग्ने! उपदेशक! जिस प्रकार वायु और सूर्य सब जगत् की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार (अस्य मध्ये) इस संसार के बीच में (इषिता) समस्त बातों का ज्ञान कराने हारे (गीर्भिः) अपनी वाणियों से और (धिया) अपनी धारणावती बुद्धि से (नभः) समस्त जगत् की ओर (वरेण्यं सुतम्) वरण करने योग्य, श्रेष्ठ पुत्र की (पातम्) रक्षा करो। अथवा--(नभः) सब को एक सूत्र में बांधने वाले (वरेण्यम्)--श्रेष्ठ (सुतं) ज्ञान और आनन्द का (पातम्) उत्तम रीति से स्वयं पान करो, और अन्यों को कराओ, उपदेश करो।

(२) हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्य के स्वामिन् इन्द्र! राजन्! और अग्ने! ज्ञान के स्वामिन्! विद्वन्! ब्राह्मण! जो (चेतनाः) चेतनास्वरूप (यज्ञः) आत्मा (युवाम्) आप दोनों को (जिगाति) प्राप्त है आप उस (जरितुः) सत्य गुणगान करने हारे पुरुष के (सचा) साथ रहकर (अया) इस प्रत्यक्ष शक्ति से (इम सुतम्) इस उत्पन्न संसार का (पातम्) पालन करो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) मैं (कवि-च्छदौ) मेधावी पुरुष के आच्छादन, सत्संग और रक्षा करने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् और (अग्निम्) ज्ञानवान् पुरुष को (यज्ञस्य) इस पूज्य आत्मा में (जूत्या) भीतरी ज्योति से (वृणे) वरण करता हूँ, अपनाता हूँ। (तौ) वे दोनों (इह) इस संसार में (सोमस्य) समस्त ऐश्वर्य के द्वारा (तृम्पताम्) स्वयं तृप्त हों, और सबको तृप्त करें।

इति द्वितीयः खण्डः।

---

[६७२] उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे।
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१॥

[६७३] स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
वरिवोवित् परिस्रव ॥ २ ॥

[६७४] एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्।
सिषासन्तो वनामहे ॥३॥८॥ ऋ० ९। ६१। १०, १२, ११॥

भा०—इन तीनों ऋचाओं का व्याख्यान क्रम से देखो अविकल संख्या [४६७] पृ० २२८, और [५९२, ५९३] पृ० २९८॥

[६७५] पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
५११ आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः॥१॥

[६७६] दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत्।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः॥२॥९
ऋ० ९। १०७। ४; ५॥

भा०—(१) इसकी व्याख्या देखो अविकल संख्या [५११] पृ० २५६।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (विचक्षणः) चतुर, बुद्धिमान्, (वाजी) ज्ञानी, (ऊधः) उन्नति के पथ में ले जाने वाले, (दिव्य) दिव्य (धौतं) मल और भीतरी पाप आदि से मुक्त शुद्ध पवित्र, (प्रियम्) उत्तम, (प्रत्नम्) प्राचीन अनादि (सधस्थम्) नित्य साथ रहने वाले, (मधु) मनन योग्य आत्मानन्द या ज्ञान को (आसदत्) प्राप्त हो जाता है और बाद में वही योगी (नृभिः) ज्ञानवान् पुरुषों से भी (आपृच्छ्यम्) गुरुओं से प्रश्नपूर्वक ज्ञान करने योग्य (धरुणम्) सबके आश्रयभूत ईश्वर को (अर्षसि) प्राप्त होता है ।

१ २र २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
[६७७] प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
[६७८] स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः
३ २
पृथिव्याः ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २ ३ २ ३ १ २
[६७९] ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३
स चिद् विवेद निहितं यदासामपीच्यां३ गुह्यं नाम
१ २
गोनाम् ॥ ३ ॥ १० ॥ ऋ० ९ । ८७ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल संख्या [५२३] पृ० २६२ ॥

(२) (इन्दुः) ऐश्वर्यशील, (देवः) देव, ईश्वर और राजा (स्वायुधः) उत्तम आयुधों से युक्त, (अशस्ति-हा) शासन न मानने वालों का नाश करने वाला, (वृजना) सेनाबलों की (रक्षमाणः) रक्षा करता हुआ, (देवानां पिता) सब देवों, विद्वानों का पालक (सु-दक्षः) उत्तम बल-

६७८—(२) 'वृजिना' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाली, कार्यकर्त्ता (दिवः) ज्ञान प्रकाश, और दिव्यगुण सम्पन्न सूर्य, द्यौलोक और सात्विक पुरुषों को (वि-स्तम्भः) थामने वाला, वशकारक (पृथिव्याः) इस पृथिवी, और राष्ट्र का एकमात्र धारण करने हारा है ।

(३) (ऋषिः) अतीन्द्रिय ज्ञानों का द्रष्टा, (विप्रः) ज्ञानवान्, मेधावी, (जनानां पुरः एता) समस्त जनों, जीवों का नायक के समान अग्रेसर, (ऋभुः) सत्य ज्ञान से अति प्रकाशमान, (धीरः) कर्म और प्रज्ञानों का दाता, (उशनाः) सब पर वश करने वाला, एकमात्र योगी (काव्येन) ज्ञानमय वेद साहित्य द्वारा (आसाम्) इन (गोनां) वेदवाणियों का (अपीच्यम्) मनोहर, गुप्त, (गुह्यम्) हृदय से जानने योग्य (निहितम्) भीतर रक्खा हुआ (नाम चिद्) सार (विवेद) स्वयं जाने और औरों को जनावे ।

इति तृतीयः खण्डः ।

---

[६८०] अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥

[६८१] न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे
॥ २ ॥ ११ ॥ ऋ० ७ । ३२ । २२–२३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल संख्या [२३३] पृ० ११९ ।

(२) हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! परमेश्वर ! (त्वावान्) तेरे जैसा (अन्यः) दूसरा (दिव्यः) दिव्य गुणों से युक्त (न जातः) न पैदा हुआ और (न जनिष्यते) न पैदा होगा । और तेरे जैसा अन्य (पार्थिवः) इस विशाल-संसारका कोई पदार्थ, या पृथ्वी का मालिक भी (नजातः न जनिष्यते) न हुआ और न होगा । हम (अश्वायन्तः) अश्व और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौओं या प्राण और कर्मेन्द्रियों को चाहने वाले, (वाजिनः) ज्ञान और बल के इच्छुक होकर (त्वा हवामहे) तेरी स्तुति करते हैं ।

[६८२] कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥

[६८३] कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥

[६८४] अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतये ॥ ३ ॥ १२ ॥ ऋ० ४ । ३१ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल संख्या [१६९] पृ० ९३ ।

(२) (मंहिष्ठः) पूजनीय, (सत्यः) सत्यस्वरूप, (मदानाम्) हर्षों, आनन्दों के बीच में (कः) कौनसा (अन्धसः) जीवन धारण कराने वाला या अन्धकार का नाश करने वाला परम रस है जो (आ रुजे) आरोग्य के लिये अथवा (दृढा चिद् वसु) दृढ़ वास योग्य दुर्गादिरूप बन्धनों को (आरुजे) तोड़ने के लिये (त्वा) आपको (मत्सत्) आनन्दित व उत्साहित करता है ।

(३) हे इन्द्र ! आप (नः) हमारे (सखीनाम्) मित्र (जरितॄणाम्) सद्विद्या का उपदेश करने वाले विद्वानों के (ऊतये) रक्षा के लिये (शतम्) सौ वर्षों तक (अविता) रक्षक (भवासि) बने रहें ।

[६८५] तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥

[६८६] द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३२ ३ १२ ३१ १ ३ १ २ ३ १२ २२
द्युमन्तं वाजं शतिनं सहस्त्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२॥
॥ १३ ॥ ऋ० । ८ । ८८ । १-२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल संख्या [२३६] पृ० १२० ।

(२) (द्युक्षं) दिव्य गुणों में निवास करने हारे (सुदानुम्) उत्तम दाता, (तविषीभिः) बलों से (आवृतम्) घिरे हुए, परिपूर्ण, (पुरुभोजसं) प्रजाओं के पालक से हम (क्षुमन्तं) निवास योग्य-गृहादिसम्पन्न (शतिनम्) सैकड़ों (सहस्त्रिणम्) सहस्त्रों सुखों और लाभों से युक्त (गोमन्तम्) गो, वाणी-वेदवाणी और गो, भूमि और गोपशु आदि धन से पूर्ण (वाजम्) ज्ञान और ऐश्वर्य को (ईमहे) याचना करते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[६८७] तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
३ १२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
बृहद् गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१॥
२उ ३ १२ २२ ३ २ ३२उ ३ १ २ ३ १२ २२
[६८८] न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ २ ३१ २२
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥२॥
॥ १४ ॥ ऋ० ८ । ८८ । १-२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखिये अविकल संख्या [२३७] पृ० १२१ ।

(२) (यं) जिस (शिप्रम्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष या आत्मा को (दुध्राः) बड़ी कठिनता से रोके जाने योग्य, अदम्य, क्रोध, काम आदि के वेग भी (न वरन्ते) वारण नहीं करते, नहीं घेरते और (न स्थिराः) स्थिर, तामसभाव या आलस्य आदि भी जिसको नहीं रोक सकते और जिसको (मुरः) मरणशील क्षणिकभाव भी विचलित नहीं कर सकते, वह आत्मा (अन्धसः) सोमरस, जीवनदायक, अज्ञान नाशक ज्योति के (मदेषु) आनन्दों में (शशमानाय) स्तुति, उपासना करते हुए (सुन्वते) योग साधना करनेहारे (जरित्रे) अन्यों को सत्विद्या का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेश करनेहारे साधु पुरुष को (उक्थ्यम्) वेदमय ज्ञान (आदृत्य) आदरपूर्वक (दाता) प्रदान करता है ।

इति चतुर्थः खण्डः ।

---

[६८९] स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

[६९०] रक्षोहा विश्वचर्षणिरभियोनिमयोहते ।
द्रोणे सधस्थमासदत् ।

[६९१] वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः ।
पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥ १५ ॥ ऋ० ९ । १ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल संख्या [४६८] पृ० २३८ ।

(२) (रक्षोहा) राक्षसों, दुष्ट पुरुषों का नाशक (विश्व-चर्षणिः) संसार का द्रष्टा, प्रभु (अयोहते द्रोणे) लोह के बने कूंडे में जलराशि के समान (अयोहते) गतिदायक शक्ति से गतिमान् (द्रोणे) जगत् में व्यापक होकर (सधस्थम्) साथ ही स्थिर रहने वाले, स्वाभाविक (योनिम्) इस अन्तरिक्ष को (अभि आसदत्) सर्वत्र व्याप्त किये हुए हैं ।

(३) हे (वृत्र-हन्तम) आवरणकारी तम, अज्ञान के नाशक परमात्मन् ! आप (वरिवः–धातमः) नाना प्रकार से वरण करने योग्य धनों, रत्नों को धारण करने हारे, (मंहिष्ठः) और सब से बड़े दानी (भुवः) हैं । आप ही (मघोनाम्) बड़े २ धनाढ्यों को भी (राधः) धन (पर्षि) देकर पूर्ण करते हो ।

[६९२ पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[६६३] यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥ २ ॥
॥ १६ ॥ ऋ० ९ । १०८ । १–२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५७८] पृ० २९४ ।

(२) हे परमात्मन् ! (ते) आपके (यस्य) जिस आनन्दकारक रस को (पीत्वा) पान करके (वृषभः) अपने अन्तरात्मा में सुख का वर्षण कराने हारा आत्मा (वृषायते) गोरूप इन्द्रियों में भोक्ता के समान उनमें बल का आधान करता और उनका भोग करता है । और (स्वः-विदः) सुख और प्रकाश को प्राप्त करानेहारे (अस्य) इस सोमरस को (पीत्वा) पान करके ही (सः) वह (सु-प्र-केतः) उत्तम ज्ञान करनेहारा आत्मा (इषः) सब मन की कामनाओं को (अभि अक्रमीत्) इस प्रकार पार कर लेता है जैसे(एतशःवाजं न) वेगवान् घोड़ा या सवार संग्राम को ।

[६६४] इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

[६६५] अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥

[६६६] अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत् समप्सुजित् ॥ ३ ॥ १७ ॥
ऋ० ९ । १०६ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५६६] । पृ० २८९ ।

(२) (अयम्) यह (सानसिः) सबके सेवन और भजन करने

६६४—(३) 'गृहीत' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य, (सुतः) उत्पादित आनन्दरस (इन्द्राय) आत्मा के (भराय) भरण, पोषण, उन्नति के लिये ओषधिरस के समान (पवते) क्षरित होता है। वह (सोमः) सोम्य स्वभाव, सबका प्रेरण करने हारा योगी (जैत्रस्य) काम क्रोधादि पर विजय व वश करने हारे आत्मा को (चेतति) ऐसे जान लेता है (यथा विदे) मानो उसे साक्षात् प्राप्त ही कर लेता है।

(३) (इन्द्रः) आत्मा (मदेषु) अपने आत्मिक ज्ञान के आनन्द प्रवाहों में (सानसिम्) सेवन भजन करने और (ग्राभम्) ग्रहण करने योग्य (वज्रम्) काम क्रोधादि के वर्जन करने में समर्थ ज्ञानशक्ति को (आ अस्येत्) चारों ओर फेंके, फैलावे । (च) और (अप्सुजित्) क्रियाओं, प्रज्ञानों और प्राणों पर विजय प्राप्त करने हारा योगी (सं भरत्) अज्ञान का नाश या ज्ञान का संग्रह करता हुआ (वृषणम्) सुखों की वर्षा करने हारे उस परमात्मा को (गृभ्णाति) पकड़ता, उसका आश्रय लेता, उसे प्राप्त हो जाता है।

[६९७] पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥

[६९८] यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ २ ॥

[६९९] तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।
यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥ ३ ॥ १८ ॥ ऋ० ९ । १०१ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५४५] पृ० २७२ ।

(२) (इन्दुः) वह परम ऐश्वर्य, विभूतियों से सम्पन्न योगी (अश्वः

६९७—(३) 'यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न) अश्व के समान (कृत्व्यः) कर्म करने में कुशल होता है । (यः) जो (पावकया) पवित्र करने वाली (धारया) धारणा या ज्ञान-धारा से (सुतः) निष्पन्न, निष्णात, उसमें निष्ठ होकर (परि प्र स्यन्दते) चारों तरफ़ अपने ज्ञान-उपदेशों द्वारा विचरण करता है ।

(३) (तम्) उस (दुरोषम्) दुःखकारी रोष या दाह, प्रताप या तेज वाले (सोमम्) सोम्य योगी के पास (नरः) लोग (विश्वाच्या धिया) विश्वव्यापी प्रेमबुद्धि से (अभि) आते हैं । मनुष्यों को चाहिये कि वे (अद्रयः) पर्वत के समान स्थिर, अभेद्य हृदय या मेघ के समान आदरपूर्ण, उदार हृदय होकर (यज्ञाय) दान आदि शुभ कार्यों के निमित्त (सन्तु) लगे रहें ।

[७००] अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते । आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद् विचक्षणः ॥ १ ॥

[७०१] ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या-अदाभ्यः । दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां३ नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः ॥ २ ॥

[७०२] अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये । अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजसि ॥ ३ ॥ १९ ॥ ऋ० ९ । ७५ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [५५४] पृ० २८२ ।

७००—(२)'अधि रोचने' इति ऋ० । (३)'अभीमृतस्य' 'विराजति' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (ऋतस्य) सत्यवादी, योगाभ्यासी की (जिह्वा) वाणी (प्रियम्) अति उत्तम, हृदय को तृप्त करने वाले, (मधु) आनन्दजनक रस और ज्ञान को (पवते) बहाती है। (अस्याः) इस (धियः पतिः) सत्य धारणा या बुद्धि का स्वामी और (वक्ता) सत्य वाणी का बोलने हारा (अदाभ्यः) कभी नाश नहीं किया जा सकता, पापियों से मार कर दबाया नहीं जा सकता। तब वह योगी (पुत्रः) अपने मा बाप का सुपुत्र (पित्रोः) मा बाप से भी (अपीच्यम्) अज्ञात, (तृतीयम्) तीसरे (दिवः अधि रोचनम्) दिव्य गुण वाले ज्ञानप्रकाश से युक्त, सूर्य के समान सर्वत्र प्रकाश करने वाला, विद्वानों के समाज की शोभा बढ़ाने वाला (नाम) स्वरूप या तेजस्वी पद (दधाति) प्राप्त करता है। एक माता का प्रेम का नाम, एक पिता का व्यावहारिक नाम, तीसरा वह प्रतिष्ठित नाम जिससे दुनिया उसका आदर करती है, जैसे महर्षि, महात्मा, लोकमान्य, देशबन्धु आदि। यहां सत्यवाणी सोम है।

(३) वह योगी आत्मा (द्युतानः) दीप्तिमान् होकर (नृभिः) नयन करने हारे प्राणों से (येमाणः) नियन्त्रित होकर (हिरण्यये) हिरण्मय, आनन्दमय (कोशे) कोश में (आ अव अचिक्रदद्) शनैः २ प्रवेश करता है। (ऋतस्य) सत्यमय ज्ञान के (दोहनाः) दोहन या पूर्ण करने वाले प्रवाह (ईम्) इसकी (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं, वे उसके भीतर प्रकट होते हैं। (त्रि-पृष्ठे) तीन प्राणों के स्पर्श या संगम-स्थान त्रिपुटी स्थल पर (उषसः) प्रातःप्रभा के समान विशोका प्रज्ञाओं के बीच (अधि वि राजसि) विराजमान होता है।

इति पञ्चमः खण्डः।

३ २ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २
[७०३] यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २ ३ १   २र
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २र ३ १ २
[७०४] ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
२ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
भुवद् वाजेष्वविता भुवद् वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२०॥
ऋ० ६ । ४८ । १, २ ॥

आ०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [३५] पृ० १५ ।

(२) (ऊर्जः) बल को (नपातम्) न क्षीण होने देने वाले इस 'अग्नि' का मैं वर्णन करता हूँ । (सः) वह (हिना) तो सदा (अस्मयुः) हमारा हितकारी है । (हव्य-दातये) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को दान करने वाले उस परमात्मा को हम भी (दाशेम) अपना आत्मा समर्पण करें । वह (वाजेषु) संग्रामों या बल के कार्यों में (अविता) रक्षक (भुवद्) होता है और (वृधे) हमारी उन्नति के अवसरों पर (तनूनाम्) देहों और देहधारियों का (त्राता) पालक (उत) भी (भुवद्) होता है ।

२ ३ १ २र ३ १ ३ १ २ ३ १ २
[७०५] एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
३ १ २ ३ १ ३
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १ ॥

२ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[७०६] यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।
२ ३ १ २
तत्र योनिं कृणवसे ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २र
[७०७] न हि ते पूर्तमक्षिपद् भुवन्नेमानां पते ।
२ ३ १ २
अथा दुवो वनवसे ॥३॥२१॥ ऋ० ६ । १६ । १६–१८ ॥

आ०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [७] पृ० ४ ।

(२) हे (अग्ने) ज्ञानी आत्मन् ! हे परमात्मन् ! (यत्रक्वा च) जहां कहीं, जिस भूमिका पर भी तू (ते) अपने (मनः) चित्त या मनन करनेहारे आत्मा में (उत्तरम्) उन्नत (दक्षं) कर्म, बल (दधसे) धारण करे (तत्र) वहां तू (योनिं) आश्रयस्थान, स्थिरस्थिति (कृणवसे) बना ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! आत्मन् ! हे (नेमानाम् पते) इन्द्रियों और शरीर के पालक ! प्रभो ! (ते पूर्त्तम्) तेरा पूर्ति या तृप्ति करने वाला तेज या बल (अक्षिपद्) इन्द्रियों का नाश करने वाला (नहि) न (भुवद्) हो। (अथ) और इस कारण (दुवः) परिचर्या, सेवा या साधना को (वनवसे) स्वीकार कर।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
[७०८] वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः।
१ २ ३ १ २
वज्रिं चित्रं हवामहे ॥ १ ॥
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
[७०९] उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
२२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम्
॥ २ ॥ २२ ॥ ऋ० ८। २१। १-२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४०८] पृ० २०८।

(२) हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (कर्मन्) समस्त कर्मों में (ऊतये) रक्षा और ज्ञान के निमित्त (त्वा) आपको (उप) उपासना करते हैं। (सः) वह (युवा) बलवान् (उग्रः) तेजस्वी है (यः) जो (धृषत्) शत्रु, काम, क्रोधादि को पराजित करता है। हे (इन्द्र) प्रभो ! (त्वामिद् हि) तुझको ही हम (सखायः) मित्र जीवगण मिलकर (सानसिम्) सबके प्रति समान रूप से आश्रय करने योग्य (अवितारम्) रक्षक रूप से (ववृमहे) वरते हैं।

१ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[७१०] अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे।
३ २ ३ १ २ ३ २ २
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ १ ॥
१ २र ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
[७११] वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि।
३ १ २ ३ १ २
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
[७१२] युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचो-
१ २ ३ १ २ ३ १ २
युजा इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥३॥२३॥ ऋ० ८।९८।७—९॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४०६] पृ० २०७।

(२) हे (अद्रिवः) न विनाश होने वाले ज्ञान को धारण करने हारे! हे (शूर) सर्वशक्तिमन्! नदियों से (वाः न) जिस प्रकार जलमय समुद्र भरता है उसी प्रकार (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (ब्रह्माणि) ब्रह्मज्ञान या वेदमन्त्र (वावृध्वांसम् चित्) सबसे बड़े महान्, पूज्य (त्वा) तुझको (यव्याभिः) तुझ तक पहुंचने वाली स्तुतियों से आदर पूर्वक (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं, अर्थात् वे तेरी महिमा को उनसे बढ़ाते हैं।

(३) (इषिरस्य) सबको प्रेरणा करने वाले ईश्वर की (गाथया) स्तुति द्वारा ही योगी लोग (उरुयुगे) विशाल २ समाधि वाले (उरौ) विशाल (रथे) रमण-योग्य स्थान इस देह या रसस्वरूप आत्मा में, रथ में घोड़ों के समान (वचोः-युजा) वाणी द्वारा ही समाहित या वश होजाने वाले (हरी) हरणशील प्राण और अपान दोनों को (युञ्जन्ति) योग से अपने वश कर लेते हैं। वे ही दोनों (स्वः-विदा) ज्योति और सुख को प्राप्त कराने हारे (इन्द्र-वाहा) आत्मा के वहन करने वाले दो अश्वों के समान हैं।

इति षष्ठः खण्डः।

इति प्रथमोऽध्यायः। इति प्रथमोऽर्धः प्रपाठकः॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः।

द्वितीयोऽर्धः प्रपाठकः।

ऋषिः—१, ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः। २, ८, १३, १४, १५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। ३ मेध्यातिथिः काण्वः। प्रियमेधश्चाङ्गिरसः। ५ इरिमिठिः काण्वः। ६ कुसीदी काण्वः। ७ त्रिशोकः काण्वः। ९ विश्वामित्रो गाथिनः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । ११, (१) शुनःशेपः आजीगर्तिः । १२ नारदः काण्वः । १६ अवत्सारः काश्यपः । १७, (२,३) मेध्यातिथिः काण्वः । १८, (३) असितः काश्यपो देवलो वा (२) अमहीयुराङ्गिरसः । १९ त्रित आप्त्यः । २० भरद्वाजादयः सप्त ऋषयः । २१ श्यावाश्वः । २२ (१) (२) अग्निश्चाक्षुषः प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ॥ देवता—१—१२ इन्द्रः । १३ अग्निः । १४ उषाः । १५ अश्विनौ । १६—२० सोमः पवमानः ॥ छन्दः—१, (२, ३) ११, १६—१९, २१ गायत्री । १२, २२ (१, २) उष्णिक् । १३—१५, २० बार्हतः प्रगाथः । १ (१) अनुष्टुप् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२
[७१३] पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
३ १२ ३१२३ २ ३ ३ २
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥
३ १ २ ३१ २ ३ २ १ २
[७१४] पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यां३ऽ सनश्रुतम् ।
२ ३ १ २
इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥
२ ३ १ २ ३ १ २ ३१२ २२ ३ २
[७१५] इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः ।
३१ २ ३ १ २
महाँ अभिज्ञ्वायमत् ॥ ३ ॥ १ ॥ ऋ० ८ । ९२ । १—३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१५५] पृ० ७७ ।

(२) (पुरु-हूतम्) इन्द्रियों द्वारा, या प्रजाओं द्वारा अपनी रक्षा के निमित्त पुकारे गये, (पुरु-स्तुतं) प्रजाओं या इन्द्रियों द्वारा स्तुति किये गये, (गाथान्यम्) गाथारूप, वेदवाणियों के श्रवण द्वारा प्राप्त करने योग्य, (सनश्रुतम्) सदाकाल से गुरुजनों के उपदेशों द्वारा सुने गये, विशेष पुरुष-आत्मा को (इन्द्रः) इन्द्र, (इति) इस प्रकार (ब्रवीतन) कहो । राजा, आत्मा, परमात्मा सर्वत्र समान है ।

(३) (इन्द्र इत्) परमेश्वर ही (नः) हमें (महोनाम्) दिव्य

७१३—(२) 'गाथान्यं' । (३) 'महोनां' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेजों से युक्त महान् (वाजानाम्) अन्नों और बलों का (दाता) प्रदान करने वाला, (नृतुः) सबको अपने बल पर नचाने वाला, सबका नेता, संचालक, (महान्) सबसे बड़ा (अभि-ज्ञु) सर्वज्ञ (आयमत्) सबको व्यवस्था में बांधता है ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[७१६] प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत ।
१ २ ३ १ २
सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥
२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २उ ३ १ २
[७१७] शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
३ २ ३ १ २
चकृमा सत्यराधसे ॥ २ ॥
१ २ ३ २उ ३ १ २
[७१८] त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
१ २ ३ १ २
त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥ २ ॥ ऋ० ७ । ३१ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१५६] पृ० ८७ ।

(२) (यथा) जिस प्रकार (नरः) नेता लोग (सु-दानवे) उत्तम दानी के लिये (द्युक्षं) दिव्य विशेषणों से युक्त (उक्थं) स्तुति करते हैं उसी प्रकार प्रत्येक पुरुष उस (सु-दानवे) उत्तम दानी परमेश्वर के लिये (द्युक्षं) श्रेष्ठ, दिव्य, (उक्थं) ओंकार पद वाली वेदमन्त्रमय स्तुति (शंसेद्) उच्चारण करे । हम भी (सत्य-राधसे) सत्य ही से प्रकट होने वाले, या सत्यरूप उसी परमात्मा की स्तुति (चकृम) करें ।

(३) हे (इन्द्र) ईश्वर ! (त्वं) तू (नः) हमारे (वाज-युः) ज्ञान और अन्न, बल का देने वाला, (त्वं गव्युः) तू आप ही इन्द्रिय, वाणी और रश्मियों गौवों का देने वाला है । और हे (शत-क्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्मों के करने वाले ! हे (वसो) सबको बसाने वाले परमात्मन् ! (त्वं) तू ही (हिरण्ययुः) स्वर्ण के समान मनोहर, हितकारी, प्रिय, काम्य पदार्थों का भी देने वाला है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २   ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[७१९] वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
१ २ ३ १ ३
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥
१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[७२०] न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
२उ ३र १ २
तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥ २ ॥
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
[७२१] इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
१ २ ३ २ ३ १ २
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥३॥ ३ ॥ ऋ० ८ । २ । १६–१८ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१५७] पृ० ८७ ।

(२) हे (वज्रिन्) हे ज्ञान-वज्र के धारक इन्द्र ! (अपसः) कर्म के (नविष्टौ) प्रारम्भ में मैं (अन्यद्) और किसी की (न घ ईम्, आ पपन) स्तुति नहीं करता । (तव इत् उ) तेरा ही (स्तोमैः) स्तुतियों द्वारा (चिकेत) ज्ञान करता हूँ ।

(३) (देवाः) विद्वान् लोग या इन्द्रियगण (सुन्वन्तं) प्रेरणा या आज्ञा करते हुए या सोम सवन या ईश्वरोपासना या ज्ञान-ऐश्वर्य लाभ करते हुए पुरुष को ही (स्पृहयन्ति) प्रेम करते हैं । (स्वप्नाय) सोते हुए आलसी पुरुष को (न स्पृहयन्ति) प्रेम नहीं करते । (अतन्द्राः) आलस्य रहित होकर ही ये विद्वान्, देव या इन्द्रियगण (प्रमादं) अत्यन्त हर्ष को (यन्ति) प्राप्त होते हैं !

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[७२२] इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
३ १ २ ३ १ २
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥
२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[७२३] यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।
१ २ ३ २ २
इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[७२४] त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ॥३॥४॥ ऋ० ८ । ९२ । १९–२१ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१५८] पृ० ८८ ।

(२) (यस्मिन्) जिस इन्द्र में (विश्वाः श्रियः) समस्त विभूतियां (अधि) अधिक शोभा देती हैं और जिसमें (सप्त संसदः) उत्तम प्रकार से अपने स्थिति प्राप्त किये हुए होता स्वरूप सात इन्द्रियगण (रणन्ति) ज्ञान-यज्ञ में आनन्द लाभ करते हैं उस (इन्द्रम्) आत्मा को (सुते) योग यज्ञ में ऋतम्भरा सिद्ध होने पर (हवामहे) हम पुकारते हैं उसका स्मरण, चिन्तन, स्तुति करते हैं ।

(३) (देवासः) देवगण (त्रिकद्रुकेषु) तीनों लोकों में (चेतनं) आत्मारूप (यज्ञं) यज्ञ का (अत्नत) अनुष्ठान करते हैं (तं) उसको (इद्) ही (नः) हमारी (गिरः) वेदवाणियां (वर्धन्तु) बढ़ावें, उसी की महिमा गावें ।

इति प्रथमः खण्डः ।

—:०:—

[७२५] अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ १ ॥

[७२६] शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः ।
आखण्डल प्र हूयसे ॥ २ ॥

[७२७] यस्ते शृङ्गवृषो णपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।
न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥३॥५॥ ऋ० ८ । १७ । ११–१३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [१५९] पृ० ८८ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे (शाचि-गो) समर्थ शक्तिशालिन् ! इन्द्रियों, रश्मियों और वाणियों से युक्त आत्मन् ! हे (शाचि-पूजन) शक्तियों के कारण पूजने योग्य ! (ते) तुझ (रणाय) रमणीय देव के लिये (अयम्) यह (सुतः) उत्पन्न हुआ समस्त संसार भोग अर्थात् वशवर्त्ती रहने के लिये है । हे (आखण्डल) अन्धकार को तोड़कर नाश करने हारे विवेकी आत्मन् ! (प्र हूयसे) तुझको ही अच्छा प्रकार बुलाया, स्तुति किया जाता है ।

(३) हे (इन्द्र) आत्मन् ! (यः) जो (ते) तेरा (शृङ्ग-वृषः नपात्) अज्ञान नाश करनेहारे वृषस्वरूप आत्मा को न गिराने हारा, (कुण्ड-पाय्यः) कुण्ड अर्थात् रमण करने वाले प्राणों द्वारा पान करने योग्य, (प्र-नपात्) आत्मा की रक्षा करने वाला ज्ञानरस है (अस्मिन्) इसमें योगी (मनः) मननशील ध्यान को (नि आ दध्रे) नियत, या स्थिर रूप से धारण करता है ।

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
[७२८] आ तू न इन्द्र द्युमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय ।
३ १र २र
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[७२९] विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् ।
३ १र २र
तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥

१ २र ३ १र २र ३ १ २
[७३०] न हि त्वा शूर देवा न मर्त्तासो दित्सन्तम् ।
३ २उ ३ १ २
भीमं न गां वारयन्ते ॥३॥६॥ ऋ० ८ । ८१ ।१—३॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल संख्या [१६७] पृ० ९२ ।

(२) हे इन्द्र (त्वा) तुझको हम (अवोभिः) तेरी रक्षाओं, ज्ञानों और कृपाओं के कारण (तुवि-कूर्मिम्) बहुत से कर्मों के करनेहारा (तुवि-देष्णं) बहुतसे धन सम्पदाओं का दाता, (तुवि-मघम्) बहुत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम धनों, ज्ञानों से सम्पन्न (तुवि-मात्रं हि) बहुतसे ज्ञान साधनों से युक्त भी (विद्म) जानते हैं ।

(३) हे शूर ! (भीमं) भयजनक (गां न) जिस प्रकार सांड को कोई हटाने का साहस नहीं करता, उसी प्रकार (भीमं) सबको भयजनक, सर्वव्यापक (दित्सन्तं) दान की कामना करते हुए तुझको (न देवाः) न विद्वान् लोग और (न मर्त्तासः) और न साधारण लोग (वारयन्ते) वारण करते हैं ।

[७३१] अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥

[७३२] मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।
मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥ २ ॥

[७३३] इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ॥३॥७॥ ऋ० ८ । ४५ । २२-२४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [१६१] पृ० ८९ ।

(२) हे (इन्द्र) आत्मन् ! (मूराः) मूर्ख (अविष्यवः) तुझे पालने पोषने की चेष्टा करने हारे भोगी विलासी लोग (त्वा) तुझे (मा दभन्) नाश न करें, (मा उपहस्वानः) तुझ पर उपहास करनेहारे, तेरी उपेक्षा करनेवाले भी तेरा विनाश न करें । और (ब्रह्म-द्विषः माकीम्) वेद और ब्रह्मज्ञान का प्रेम न रखने वाले तेरा कभी सेवन न करें, तेरा कभी आनन्द लाभ न करें ।

मूर्ख लोग देह की पालना कर आत्मा का नाश करते हैं, उपहासकारी लोग नास्तिक भी आत्मा का नाश करते हैं, पापों में वह जाते हैं और वेद और ब्रह्मविद्या के द्वेषी भी आत्मज्ञान का आनन्द नहीं पाते ।

६८०—[२] 'ब्रह्मद्विषा' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) (यथा) जिस प्रकार (गौरः) गौर मृग (सरः) जल से भरे तालाब पर जाकर जल पीता है उसी प्रकार से इन्द्र, आत्मन्! तू यहां इस हृदय में विराज कर ब्रह्मानन्द के रस को (पिब) पान कर। (इह) यहां ही (गो-परीणसं) इन्द्रियगण से परिवृत, जितेन्द्रिय (त्वा) तुझको (महे राधसे) बड़ी भारी ब्रह्मज्ञान—साधना के लिये (मन्दन्तु) साधक लोग आनन्दित करते हैं, जगाते हैं।

[७३४] इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्।
अनाभयिन् ररिमा ते ॥ १ ॥

[७३५] नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः।
अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥

[७३६] तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः।
इन्द्र त्वास्मिन् त्सधमादे ॥३॥८॥ ऋ० ८ । २ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [१२४] । पृ० ६६ ।

(२) (नदीषु) नदियों में (निक्तः) स्नान कराये गये (अश्वः न) अश्व के समान (नृभिः) नेता लोगों द्वारा (धौतः) मलादि छुड़ाकर शुद्ध किया गया (अश्नैः) सूक्ष्म तत्वों तक पहुंचने, एवं आत्मानन्द का भोग करने हारे विद्वानों द्वारा (सुतः) उत्पन्न किया, सोमरस, आत्मज्ञान (अव्याः) चिति शक्ति या प्राण के (वारैः) प्रकट करने हारे योगाङ्गरूप साधनों द्वारा (परि-पूतः) परिशोधित, (नदीषु निक्तः) प्रवाह के रूप में बहने वाली ज्ञानधाराओं में शुद्ध होता है।

(३) (यथा) जिस प्रकार हम (गोभिः) गो-रसों, दुग्धों से (श्रीणन्तः) मिलाते और परिपाक करते हुए (यवं) यव के बने पक्वान्न को (स्वादुं) आनन्ददायक यवागू पाक (अकर्म) बना लेते हैं उसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार (तं) उस ज्ञानमय आत्मा को (ते) वे साधक लोग (गोभिः) ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त रसों या तेजोमय ध्यानरश्मियों या वेद वाणियों द्वारा स्तुतियों व उनके अध्ययन से (श्रीणन्तः) मिलाते, परिपक्व या दृढ़ करते या अभ्यास करते हुए (अस्मिन्) इस (सध-मादे) आनन्दजनक समाधि-दशा में हे (इन्द्र) आत्मन् ! (त्वा) तुझको (स्वादुं) स्वादु, अति हर्षदायक रूप से (अक्रमं) साक्षात् करते हैं।

इति द्वितीयः खण्डः ।

---

[७३७] इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते ।
पिबा त्वाऽस्य गिर्वणः ॥ १ ॥

[७३८] यस्ते अनु स्वधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम् ।
स त्वा ममत्तु सोम्य ॥ २ ॥

[७३९] प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
प्र बाहू शूर राधसा ॥३॥१॥ ऋ० ३ । ५१ । १०-१२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [१६५] पृ० ९२।

(२) हे इन्द्र ! (ते) तेरा (यः) जो (स्वधाम्) स्व-अर्थात् अपने स्वरूप में धारणा करने के (अनु) अनन्तर (असत्) प्रकट होता है (सुते) उस उत्पन्न आनन्द में तू हे आत्मन् ! (तन्वं) अपने स्वरूप को (नि यच्छ) नियमित कर, समर्पित कर। हे (सोम्य) सोमरस के समान पान करने योग्य आत्मन् ! (सः) वह ज्ञानरस (त्वा) तुझको (ममत्तु) अति आनन्दित करे ।

(३) हे (इन्द्र) आत्मन् ! वह ज्ञानरस और आनन्दरस (ते कुक्ष्योः) तेरे ज्ञान और कर्मरूप दोनों पार्श्वों को और (शिरः) शिर को (ब्रह्मणा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मज्ञान द्वारा (प्र अश्नोतु) व्याप्त करे या दुःखों को बाधे। और हे शूर! (ते बाहू) तेरी बाहुओं को (राधसा प्र) बल, ऐश्वर्य से पूर्ण करे।

आत्मा के द्रोनों कोखों और शिर का व्याख्यान देखो (तैत्ति० उप० १)।

[७४०] आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत।
सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

[७४१] पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥

[७४२] स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्या।
गमद् वाजेभिरा स नः ॥३॥ १० ॥ ऋ० १। ५। १-३ ॥

भा०—(१) व्याखया देखो अवि० सं० [१६४] पृ० ९१।

(२) (पुरूणां) प्रजाओं और इन्द्रियों में सबसे (पुरु-तमम्) श्रेष्ठ (वार्याणाम्) वरण करने योग्य ज्ञानों और धनों के (ईशानम्) स्वामी (इन्द्रम्) राजा और आत्मा की (सुते सोमे) उत्पन्न किये इस आनन्द-कारी, सबके प्रेरक, भोग्य रस या ज्ञानरस या ऐश्वर्य में मग्न होकर सब (सचा) साथ मिलकर (अभि प्र गायत) गान करो, इसकी स्तुति करो।

(३) (स घ) वही आत्मा (नः) हमारी (योगे) समाधिदशा में (आ भुवत्) साक्षात् होता है। (सः राये) वही नाना ज्ञान, तप, रूप धनप्राप्ति के अवसर में और (सः) वही (पुरन्ध्या) नाना पदार्थों को स्मृतिरूप से या देह को धारण करने हारी बुद्धि द्वारा भी (आ भुवत्) प्रत्यक्ष साक्षात् होता है। (सः नः) वह हमारे पास (वाजेभिः) ज्ञानों द्वारा (आ गमत्) प्राप्त हो।

[७४३] योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[७४४] अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ २ ॥

[७४५] आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥३॥११॥ ऋ० १ । ३० । ७, ६, ८ ॥

भा० —(१) व्याख्या देखिये अवि० सं० [१६३] पृ० ९० ।

(२) (प्रत्नस्य) बहुत प्राचीन (ओकसः) परम आश्रयरूप मोक्ष के प्रति (नरं) लेजाने वाले (तुवि-प्रतिं) बहुतों की कामना पूर्ण करने हारे परमेश्वर को (अनु हुवे) पुनः २ प्रतिदिन स्मरण करूं (यं) जिस (ते) तुझको (पिता) हमारे पालन करनेहारे साक्षात् गुरु, आचार्य आदि (पूर्वं) हमसे पहले (हुवे) स्तुति करते रहे ।

(३) (यदि) यदि वह परमेश्वर (नः) हमारी (हवम्) स्तुति को (उप श्रवत्) सुनले तो वह (सहस्रिणीभिः) सहस्रों बलशालिनी (ऊतिभिः) रक्षा करनेहारी शक्तियों से और (वाजेभिः) सहस्रों सत्य ज्ञानों के सहित (आ अगमत् घ) साक्षात् प्रकट ही होजावे ।

[७४६] इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥ १ ॥

[७४७] स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥

[७४८] तमु हुवे वाजसातय इन्द्र भराय शुष्मिणम् ।
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥ १२ ॥
ऋ० ८ । १३ । १—३ ॥

७४८—(३) 'तमुह्वे' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३८१] पृ० १९८ ।

(२) (सः) वह परमेश्वर (प्रथमे) सबसे श्रेष्ठ (व्योमनि) विशेष रूप से शरण प्राप्त करने योग्य, (देवानां सदने) विद्वान्, ज्ञानी और मुक्त पुरुषों के आश्रय या निवास करने योग्य लोक में (वृधः) सबसे बड़ा है। वह (सु-पारः) उत्तम रूप से ज्ञान करने योग्य, और कष्टों से तराने वाला (सु-श्रवस्तमः) उत्तम यश और ज्ञान का धारण करनेहारा, (समत्सु-जित्) समस्त कर्मबन्धनों या बन्धनों में फंसे जीवों में सबसे उत्कृष्ट एवं आदि मूल कारण प्रकृति पर भी वश करने वाला है।

(३) (तम्) उस (भराय) भरण पोषण करनेहारे, अथवा (भराय = हराय) कर्मजाल को हरण करके मुक्तिमार्ग में लेजाने वाले (शुष्मिणम्) सर्वशक्तिमान् को ही मैं (इन्द्रं) 'इन्द्र' नाम से (वाज-सातये) ज्ञान, बल और अन्नादि के प्राप्त करने के लिये (हुवे) पुकारता हूँ उसी से इन पदार्थों की याचना करता हूँ। वह परमात्मा (नः) हमारे (सुम्ने) सुखप्राप्ति और (वृधे) वृद्धि करने के निमित्त (अन्तमः) अति समीप का, अन्तरंग (सखा) मित्र है।

इति तृतीयः खण्डः ।

---

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र३ १ २
[७४९] एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
३ १ २र ३ १ २ ३१ २२ ३ २ ३ १ २
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
[७५०] स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम्
॥ २ ॥ १३ ॥ ऋ० ७ । १६ । १—२ ॥ यजु० ३ । ५ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४५] पृ० २० ।

(२) (सः) वह परमात्मा (अरुषा) दीप्तिमान्, (विश्व-भोजसा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व, समस्त संसार का भोग कराने हारे पालक सूर्य और पृथिवी दोनों को (योजते) नियुक्त करता है। (सः) वह (सु-आहुतः) उत्तम रूप से कीर्त्तित परमात्मा ही (दुद्रुवत्) सर्वत्र व्यापक है । (सः) वही (सु-ब्रह्मा) उत्तम ज्ञानवान्, सबका उत्पादक है और वही (यज्ञः) महादानी, यज्ञस्वरूप, (सु-शमी) उत्तम कर्म करने वाला, सर्वोपरि शान्त गुणसम्पन्न है। (वसूनां) वास करने हारे (जनानां) जन्तुओं के (राधः देवं) उस आराधनीय देव की उपासना करो ।

[७५१] प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३ऽच्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥

[७५२] उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥२॥१४॥

ऋ० ७ । ८१ । १, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३०३] पृ० १६५ ।

(२) (सूर्यः) सबका प्रेरक, उत्पादक परमात्मा ! (उस्रियाः) वास करने योग्य किरणों और भूमियों को (सचा) एक साथ सूर्य के समान (उत् सृजते) प्रकट करता है और (उद्यन्) उदित होता हुआ भी स्वयं (नक्षत्रम्) अपने स्थान से च्युत न होने वाले नक्षत्र के समान स्थिर तथा व्यापक (अर्चिवत्) तेजोमय है । हे (उषः) पापदाह करने वाली ज्योतिष्मति ! प्रज्ञे ! (तव इत्) तेरे और (सूर्यस्य च) सूर्य के समान तेजोमय आत्मा के (वि उषि) प्रखर तेज से प्रकट होने के अवसर में (भक्तेन) भजन करने योग्य उस इष्टदेव से (सं गमेमहि) हम सत्संग करें, उसका ध्यान करें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ १
[७५३] इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
अयं वामह्वऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१॥
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[७५४] युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु
॥ २ ॥ १५ ॥ ऋ० ७ । ७४ । १, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३०४] पृ० १५६ ।

(२) (अश्विना) हे अश्वियो ! प्राण अपान नामक नेताओ ! या विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (चित्रं) संग्रह करने योग्य, विविध प्रकार के (भोजनं) भोग योग्य पदार्थ (ददथुः) देते हो । और (सूनृतावते) सूनृता, नाम वेदवाणी को धारण करनेहारे के लिये धन (चोदेथां) प्रदान करते हो। आप (स-मनसा) समान मन वाले होकर (अर्वाग्) नीचे की ओर या (अर्वाग्) इन्द्रियों के प्रति जानेहारे (रथं) अपने वेग या वेगवान् आत्म या मन और शरीर को (नि यच्छतं) नियन्त्रित करो, वश करो और आप दोनों (सोम्यं मधु) सोमरसयुक्त मधुररस उत्तम शुद्धवायु, और आरोग्यता का (पिबतम्) पान करो ।

प्राणायाम का अभ्यासी प्राण को अपान में और अपान को प्राण में आहुति दे और ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का पालन करे ।

इति चतुर्थः खण्डः ।

---

३ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[७५५] अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्र अह्रयः ।
१ २ ३ १र २र
पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥ यजु: २।७५

७५५—१. 'अह्रयो गाव' इति महीधरः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १र २ १र ३ २ ३ १र २र
[७५६] अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति ।
३ २ ३ २ ३ १र २र
सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥
३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
[७५७] अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।
१ २ ३ १र २र
सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ १६ ॥ ऋ० ९ । ५४ । १—३ ॥

भा०—(१) (अस्य) इस सोमस्वरूप परम आत्मा की (प्रत्नाम्) अनादि काल से चली आई, पुरानी (द्युतम्) वेदज्ञानरूप कान्ति को (अनु) अनुसरण करके (अद्रयः[१]) निःसंकोच, माननीय, विद्वान् लोग (सहस्र-साम्) सहस्रों फलो को देने वाले, (शुक्रम्) शुद्ध, पापरहित (ऋषिं) अतीन्द्रिय बातों को दिखलाने हारे (पयः) ज्ञान, वेदराशि को (दुदुह्रे) दोहन करते, उससे ज्ञान प्राप्त करते हैं ।

(२) (अयं) यह सोम (सूर्यः इव) सूर्य के समान (उपदृग्) समस्त पदार्थों और सब प्राणियों, सब लोकों का द्रष्टा है । (अयं) यह सोम (सरांसि) समस्त लोकों में (धावति) व्यापता, प्रकाश करता और गति देता है, (दिवम्) आकाश के (सप्त) सात प्रकार के (प्रवतः आ) गतिमान् पदार्थों को चलाता है । अध्यात्मपक्ष में—जीव, प्राणात्मा (सरांसि) इन्द्रियों में स्वयं गति करता है और द्यौः अर्थात् मूर्धास्थान में (सप्त प्रवतः) सात शीर्षण्य प्राणों को भी गति देता है ।

(३) (अयं) यह (सोमः) सोम, परमात्मा (देवः) सर्वसुख-दाता (सूर्यः न) सूर्य के समान (विश्वानि) समस्त (भुवना उपरि) लोकों के ऊपर (पुनानः) उनको गति देता हुआ और पवित्र करता हुआ (तिष्ठति) शासन करने वाले अधिष्ठाता के रूप में विराजमान है ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २
[७५८] एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । ९.३.९
१ २ ३ १ २
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ३ । ९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[७५९] एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि ।
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ २ ॥ ऋ० ९ । ४२ । २ ॥

[७६०] दुहानः प्रत्नमित् पयः पवित्रे परि षिच्यसे ।
क्रन्दं देवाँ अजीजनः ॥ ३ ॥ १७ ॥ ऋ० ९ । ४२ । २ ॥

भा०—(१) (एषः) यह सोम (देवः) ज्योतिर्मय आत्मा (प्रत्नेन) अनादिकाल से चले आये (जन्मना) जन्म, जननशक्ति या उत्पन्न होने के सामर्थ्य से (देवेभ्यः) इन्द्रियों के लिए भोगार्थं (सुतः) प्रकट होकर, देह रूप में उत्पन्न होकर (हरिः) हरणशील, उनको गति देनेहारा होकर (पवित्रे) प्राण और अपान के बने, भोग द्वारा क्षय करके दुष्कृत मलशोधन करने वाले, देहरूप साधन में (अर्षति) गति करता है ।

प्राणापानौ पवित्रे । तै० ३ । ३ । ४ । ४ ॥

(२) (एषः) यह सोमस्वरूप जीव (प्रत्नेन) अनादिकाल से वर्त्तमान (मन्मना) मनन शक्ति द्वारा (देवेभ्यः) अपनी दिव्यगुण वाली इन्द्रियों के भोग के निमित्त (देवः) स्वयं प्रकाशस्वरूप, चेतन (कविः) मेधावी ज्ञानी होकर भी (विप्रेण) मेधावी, विशेष शक्तिप्रद परम-ब्रह्म प्रजापति के साथ (परि वावृधे) सब प्रकार से उन्नति को प्राप्त होता है ।

प्रजापतिर्वै विप्रः । देवाः विप्राः । शतपथ ६ । ३ । १ । १६ ॥

(३) हे सोम ! (प्रत्नम् इत्) पुराने, अनादिकाल से चले आये आये (पयः) प्राण, जीवन को ही (दुहानः) रस या जीवनरूप में दुहता हुआ तू (पवित्रे) पवित्र करने हारे प्राण और अपान युक्त देह में या परम पावन ज्ञान के द्वारा ही (परि सिच्यसे) पवित्र किया जाता है, वृद्धि को प्राप्त होता है । (क्रन्दन्) शब्द करता हुआ, 'सोऽहं' का नाद करता हुआ

७५९—'धारया पवते सुतः ।' इति ऋ० । ७६०—'अजीजनत्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

या 'ओं' का नाद करता हुआ, प्राण बल से तू (देवान्) इन्द्रियगण को (अजीजनः) प्रकट करता है ।

प्राणाः पयः ॥ शत० ६ । ५ । ४ । १५ । और १२ । ३ । ३ । ३१ । अन्तर्हितमिव वा एतद् यत् पयः । ताण्ड्य० ८ । ९ । ३ ।

[७६१] उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे ।
पवमान विदा रयिम् ॥ १ ॥ ऋ० ६ । १६ । ६ ॥

[७६२] उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥२॥ ऋ० ६ । ६१ । १३ ॥

[७६३] उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
अभि देवाँ इयक्षते ॥ ३ ॥ १८॥ ऋ० ९ । ११ । १ ॥

भा०—(१) हे (पवमान) पावन करने वाले ! हे सोम ऐश्वर्यवन् ! (अप-तस्थुषः) नीचवृत्ति से स्थिति रखने हारों को (उप शिक्ष) शिक्षा दो कि वे अपनी बुरी वृत्ति को छोड़कर भले मार्ग में आवें । (शत्रवे) शत्रु को (भियसम्) भय (आधेहि) दिलाओ । हे प्रभो ! (रयिम्) धन, प्राण, ऐश्वर्य उत्तम देह व बल को (विद) प्राप्त कराओ ।

अग्निर्ऋषिः पवमानः । ऐ० २ । ३७ ॥ प्राणो वै पवमानः ॥ श० २ । २ । १ । ६ ॥ आत्मा वै पवमानः । तां० ७ । ३ । ७ ॥ पुष्टं वै रयिः । श० २ । ३ । ७ । १३ । वीर्यं वै रयिः । श० १३ । १४ । २ । १३ ॥ पशवो वै रयिः ।

(२) व्याख्या देखो अवि० सं० [४८७] पृ० २४६ ।

(३) व्याख्या देखो अवि० सं० [६५१] पृ० ३३१ ।

इति पञ्चमः खण्डः ।

७६२—'अपां नयन्त्यूर्मयः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[७६४] प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।
वनानि महिषा इव ॥ १ ॥

[७६५] अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥

[७६६] सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥३॥१५॥ ऋ० ९ । ३३ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [४७८] पृ० २४२ ।

(२) (बभ्रव) बभ्रु वर्ण वाले काषाय वस्त्रधारी विद्वान् वा प्रजा को विवान ऐश्वर्य से पुष्ट करने वाले लोग (ऋतस्य) ज्ञान और तप की (धारया) धारणा से (शुक्राः) कान्तिमान्. (द्रोणानि) राष्ट्रों के प्रति (अभि) आकर (गोमन्तम्) वेदवाणी से युक्त या पश्वादि से सम्पन्न (वाजं) ज्ञान या धन को (अक्षरन्) उत्पन्न करते, प्रदान करते हैं। अथवा अध्यात्म में—(बभ्रवः) पुष्टिकारक प्राण और (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (धारया) धारण करने वाली ऋतंभरा प्रज्ञा व वेद वाणी से (शुक्राः) कान्ति या ज्योति से सम्पन्न होकर (द्रोणानि) प्राणेन्द्रियों के प्रति (अक्षरन्) प्रवाहित होते हैं। और (गोमन्तं) वाणी से युक्त (वाजं) ज्ञान को (अभि अक्षरन्) साक्षात् प्रकट करते हैं ।

राष्ट्रं द्रोणकलशः । ता० ६ । ६ । १ । प्राणा वै द्रोणकलशः । ता० । ६ । ५ । १५ ।

(३) (सुताः सोमाः) उत्पन्न हुए ये ज्ञान या आनन्दप्रद समस्त पदार्थ (वायवे) प्राणस्वरूप (वरुणाय) ज्ञानी (विष्णवे) सर्वव्यापक

७६६—'अपन्ति' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म में लीन (इन्द्राय) आत्मा के लिये और (मरुद्भ्यः) विद्वानों के लिये (अर्षन्तु) प्राप्त हों।

[७६७] प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ १ ॥

[७६८] आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः
॥ २ ॥ २० ॥ ऋ० ९ । १०७ । १२, १३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखिये अवि० सं० [५१४] पृ० २५७ ।

(२) (हर्यतः) हरण करने योग्य, प्रिय (अर्जुन[1]) इन्द्र, आत्मा (प्रियः) प्राणों का प्रिय, इष्ट (सूनुः न) पुत्र के समान (मर्ज्यः) संभाल कर, धो, पोंछ कर, साफ़ स्वच्छ करने योग्य है। वह (अत्के) सर्वव्यापक ब्रह्म में (आ अव्यत) मग्न होजाता है और (तम् ईम्) उसको ही (गभस्त्योः) दीप्तिस्वरूप प्राण और अपान, इड़ा और पिंगला के बीच की (नदीषु) धाराओं या नाड़ियों में (अपसः) वेगवान् प्राण या ध्यान वृत्तियों को उसी प्रकार (आ हिन्वन्ति) प्रेरित करता है (यथा) जिस प्रकार (अपसः) वेगवान् सुभट (रथं) अपने रथ को प्रेरित करते हैं, आगे बढ़ाते हैं।

१. अर्जुनो ह वा इन्द्रो यदस्य गुह्यं नाम ॥ श० ५ । ४ । ३ । ७॥

[७६९] प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।
सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

७६९—'मघोनः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ ३र ३ १ २ ३ २
[७७०] आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
२ ३ १ २र
अत्यो न गोभिरज्यते ॥ २ ॥
१ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[७७१] आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
२ २ ३ ३ ३ १ २
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥३॥२१॥ ऋ० ९ । ३२ । १, ३, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४०७] पृ० २४२ ।

(२) (आत्) और (गणं) उत्पन्न होने वाले (ईं) इस शरीरगत प्राणगण को (हंसः) आत्मा (यथा)जिस प्रकार से (अवीवशत्) वश करता है उसी प्रकार वह परमात्मा (विश्वस्य) समस्त संसार के (मतिं) मनों, ज्ञान साधन बुद्धियों को भी (अवीवशत्) वश करता है । और (अत्यः न) जिस प्रकार अश्व (गोभिः) नाना प्रकार की चालों से (अज्यते) अपने गुण प्रकट करता है उसी प्रकार वह आत्मा अपनी इन्द्रियों की नाना सुःख, दुख ज्ञान आदि गतियों से और वह प्रभु अपने बनाये गतिशील पिण्डों और वेदवाणियों से अपनी सत्ता और स्वरूप को प्रकट करता है ।

(३) (आत्) और (ईम्) उस आत्मा को (त्रितस्य) तीनों लोकों में प्राप्त परमात्मा की (योषणः) सेवन, व प्रीति करने योग्य (अन्तः) शक्तियां (अद्रिभिः) अविनाशी साधनों से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभुके (इन्दुम्) अत्यन्त आह्लादकारक (हरिम्) अति महोहर, सर्वं दुःखहारी अनन्द रस को (पीतये) प्राप्त कर उसका पान करने, उसमें मग्न होने के लिये (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं, उसे उत्साहित करती हैं ।

३ १ २ २ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[७७२] अया पवस्व देवयू रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः ।
२ ३ १ २
मधोर्धारा असृक्षत ॥ १ ॥ ऋ० ९ । १०६ । १४ ॥

७७२—(१) द्वितीयतृतीयपादयोर्विपर्ययः, ऋग्वेदे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३२ ३ १उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[७७३] पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
ऊक २र ३ १ २ ३२३ १ २
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद् यशः ॥२॥ ऋ० ६ । १०६ । १३ ॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
[७७४] प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद् वचः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ ३ ॥ २२ ॥
ऋ० ६ । १०१ । १३ ॥

भा०—(१) हे सोम ! योगिन् ! (देवयुः) अर्थों का प्रकाश करने वाले विद्वानों और इन्द्रियगणों से युक्त होकर (अया) इस (धारया) धारणा, ज्ञान और आनन्द की धारा द्वारा (पवस्व) प्रकट हो । तब (रेभन्) स्तुति करता हुआ तू (विश्वतः) सब प्रकार से (पर्यर्षि) व्याप्त या निष्ठ हो और तब (मधोः) मधुर, आनन्दजनक (धाराः) ज्ञानधारा और आनन्दरस की धाराएं (असृक्षत) उत्पन्न हों ।

(२) व्याख्या देखिये अविकल सं० [५७६] पृ० २९३ ।

(३) व्याख्या देखिये अविकल सं० [५५३] पृ० २८१ ।

इति षष्ठः खण्डः ।

इति द्वितीयोऽध्यायः ।

इति द्वितीयोऽर्धः । इति प्रथमः प्रपाठकः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयः प्रपाठकः (प्रथमोऽर्धः) ।

ऋषिः—जमदग्निर्भार्गवः । २, ५, १५ अमहीयुराङ्गिरसः । ३ कश्यपो मारीचः । ४, १० भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा भार्गवः । ६, ७ मेधातिथिः काण्वः । ८ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । ११ उपमन्युर्वासिष्ठः । १२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंयुर्बार्हस्पत्यः। १३ प्रस्कण्वः काण्वः वालखिल्या आङ्गिरसः। १६ नहुषो मानवः। १७ (११२) सिकतानिवावरीः (३) पृश्नयोऽजाः। १८ श्रुतकक्षः सुकक्षो वाङ्गिरसः। १९ जेता माधुच्छन्दसः॥ देवता—१—५, १०, १५—१७ पवमानः सोमः। ६ अग्निः। ७ मित्रावरुणौ। ८, १२—१४, १८, १९ इन्द्रः। ९ इन्द्राग्नी॥ छन्दः—१—१०, १५, १८ गायत्री। ११ त्रिष्टुप्। १२—१४ प्रागाथं बार्हतम्।

१६, १९ अनुष्टुप्। १७ जगती॥

[७७५] पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः।
अभि विश्वानि काव्या॥ १॥

[७७६] त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन्।
पवस्व विश्वचर्षणे॥ २॥

[७७७] तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे।
तुभ्यं धावन्ति धेनवः॥३॥१॥ ऋ० ९। ६२। २५-२७॥

भा०—(१) हे सोम! सबके प्रेरक! आप अपनी (चित्राभिः) पूजनीय (ऊतिभिः) शक्तियों और रक्षा-कार्यों और ज्ञानों सहित (वाचः) हमें वेदवाणियां (पवस्व) प्राप्त कराते हो। और (विश्वानि) समस्त (काव्या) क्रान्तदर्शी, मेधावी पुरुषों की वाणियों के (अभि) साक्षात् द्रष्टा हो।

(२) हे (विश्व-चर्षणे) समस्त संसार देखने हारे! हे (सोम) सर्वोत्पादक! जिस प्रकार मेघ या वायु स्वरूप सोम शब्द करता हुआ समुद्र से भरे जल को पृथ्वी पर बरसाता है इसी प्रकार (अग्रियः) सबके अग्रणी, सबसे प्रथम वर्त्तमान, सबसे मुख्य, अनादि (वाचः) वेदवाणियों को

७७५—(२) 'विश्वमेजय' इति ऋ०। (३) 'तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ईरयन्) प्रकट करते हुए आप (समुद्रियाः) भली प्रकार उन्नति की ओर लेजाने वाले (अपः) कर्मों को (पवस्व) उपदेश करते हो ।

(३) हे (कवे !) मेधाविन् ! हे (सोम) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक, रसस्वरूप ! (महिम्ने) विशाल महिमास्वरूप (तुभ्यं) तेरे लिये (इमा भुवना) ये समस्त लोक (तस्थिरे) स्थिर हैं । (तुभ्यं) तेरे लिये ये (धेनवः) वाणियां और नदियां (धावन्ति) गति कर रही हैं, प्रकट होती हैं, दौड़ रही हैं । अर्थात् ये समस्त लोक और वेदवाणियां, नदियां कामधुक् भूमियां तेरी ही महान् सत्ता को प्रकट करने के लिये हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[७७८] पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।
२ ३ २ ३ १ २
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[७७९] यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः ।
१ २ ३ १ २ ३ २
तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥ २ ॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
[७८०] या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।
३ २ ३ २
रक्षा समस्य नो निदः ॥३॥२॥ ऋ० ९ । ६१ । २८-३०॥

भा०—(१) हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! आप (सुतः) सामर्थ्यवान् (वृषा) सब सुखों के वर्षाने वाले (पवस्व) हमारे समीप प्रकट होओ । और (जने) जनसमूह में (नः) हमें (यशसः) यशस्वी (कृधि) करो । और (विश्वा) समस्त (द्विषः) हमसे अप्रीति करने हारे, हमारे अनिष्टकारियों को (अप जहि) दूर करो ।

(२) हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (यस्य ते) जिस तेरे (सख्ये) मित्र भाव में रहते हुए (पृतन्यतः) सेनाएं लेकर चढ़ाई करने हारे विरोधियों

७७८—(२) द्वितीयतृतीययोः पादयोर्विपर्ययः, ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (वयं सासह्याम) हम पराजित करते हैं उस (तव) तेरे (उत्तम) उत्तम (द्युम्ने) तेज या ऐश्वर्य या बल के अधीन हम सदा रहें ।

(३) हे प्रभो ! (या) जो (ते) तेरे (तिग्मानि) तीक्ष्ण (भीमानि) भयानक (आयुधा) हथियार (धूर्वणे) हिंसाकारियों के नाश के लिये (सन्ति) हैं उन द्वारा (नः) हमारी (समस्य) समस्त (निदः) निन्दाकारियों से (रक्ष) रक्षा कर ।

राजा के प्रति योजना भी स्पष्ट है ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[७८१] वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।
२ ३ १ २
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[७८२] वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः ।
१र २र३ १र २र
स त्वं वृषन् वृषेदसि ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र
[७८३] अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः ।
१ २ ३ १र २र
वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥ ३ ॥ ऋ० ६ । ६४ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखिये अवि० सं० [५०४] पृ० २५३ ।

(२) हे (वृषन्) सबसे महान् सब सुखों के वर्षा करने हारे ! हे (सोम) सर्वोत्पादक ! सर्वप्रेरक ! (वृष्ण्यः) वर्षणशील (ते) तेरा (शवः) बल और ज्ञान (वृष्ण्यं) सुखवर्षक है । अतएव (वृषा) सब सुखों की वृष्टि करने हारे होने और सबको अपने बल से बद्ध करने हारा होने से तू 'वृषा' है । तेरा (वने) भजन सेवन भी सुखदायक है और (सुतः) तेरी प्रेरणा भी सुखदायक है इससे भी सुख सेवन के कारण (वृषा) 'वृषा' है । (स त्वं) वह तू (वृषा इत्) सच्चा सुखवर्षक सच्चा बन्धु (असि) है ।

७८१—(२) 'वृषा मदः', 'सत्य' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (वृषा) सब सुखों के वर्षक आप (अश्वः न) भोक्ता आत्मा के समान (गाः) ज्ञानेन्द्रियों को (सं चक्रदः) अच्छी प्रकार नादित करो, ज्ञानवान् करो और (अर्वतः) अश्व के समान दौड़ने हारी प्राणेन्द्रियों को भी (सं चक्रदः) बलवान् करो । अथवा (अश्वः न) राष्ट्र या राजा जिस प्रकार अपने गौ आदि पशुओं को अधिक समृद्ध और बलवान् बनाता है उसी प्रकार आप सर्वव्यापक, सर्वेश्वर होकर (गाः) वेदवाणियों का उपदेश करते हैं और (अर्वतः) ज्ञानी पुरुषों को उपदेश करते हैं । आप (नः) हमारे (दुरः) द्वारों को (राये) इष्ट ज्ञानरूप धन के निमित्त (वि वृधि) और अधिक खोल दो ।

[७८४] वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
पवमान स्वर्दृशम् ॥ १ ॥

[७८५] यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः ।
द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥ २ ॥

[७८६] आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।
इहो ष्विन्दवा गहि ॥३॥ ४ ॥ ऋ० ९ । ६५ । ४, ६, ५ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [४८०] पृ० २४३ ।

हे (सोम) आत्मन् ! (आयुभिः) मनुष्यों या प्राणों द्वारा (मर्मृज्यमानः) परिशोधित होकर (यद्) जब (अद्भिः) योगाभ्यास के कर्मों द्वारा या ज्ञान धारणाओं और प्राणायाम आदि के अभ्यासों द्वारा (परिषिच्यसे) पुनः २ स्वच्छ किया जाता है तब (द्रोणे) इस मूर्धास्थल या देह में (सधस्थम्) अपने साथ ही स्थिर, कूटस्थ परम आत्मा को भी (अश्नुषे) प्राप्त कर लेता है ।

७८५—'मृज्यमानो गभस्त्यो वृषा' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) हे (स्वायुध) उत्तम आयुधों से सम्पन्न समाधि में ध्येय इष्टदेव के संग मिलने के लिये उत्तम यम नियम के साधनों से सम्पन्न आत्मन् ! आप (मन्दमानः) आनन्दमय होकर (सुवीयम्) उत्तम सामर्थ्य को (आ पवस्व) प्रकट करो। हे (इन्दो) ऐश्वर्यवान् ! द्रवणशील, रस रूप से बहने वाले ! (इह उ) यहां ही इस अन्तःकारण में (सु आ गहि) उत्तम रूप से आ, प्रकट हो।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[७८७] पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः।
३ १ २र
सखित्वमा वृणीमहे ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[७८८] ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया।
१ २
तेभिर्नः सोम मृडय ॥ २ ॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[७८९] स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम्।
१ २ ३ १ २
ईशानः सोम विश्वतः ॥३॥ ५ ॥ ऋ० ६ । ६१ । ४—६ ॥

भा०—(१) हे परमात्मन् ! (पवित्रम्) समस्त शरीर को पवित्र करने वाले मेरे आत्मा या अन्तःकरण को (अभि उन्दतः) साक्षात् द्रवित करते हुए, आपकी तरफ बहाते हुए, भावयुक्त बनाते हुए (पवमानस्य) सबके परम पावन (ते) आपके (सखित्वं) मित्रभाव को हम (आ वृणीमहे) वरण करते हैं।

(२) हे (सोम) समस्त संसार के उत्पादक ! प्रेरक ! (ये) जो (ते ऊर्मयः) तेरी शक्तियां (धारया) समस्त संसार को धारण करने हारी शक्ति के रूप में (पवित्रम्) हमारे पवित्र, अन्तःकरण में (अभि क्षरन्ति) प्रकट होती हैं तू (तेभिः) उनसे (नः) हमें (मृडय) सुखी कर।

(३) हे (सोम) सर्वप्रेरक ! (सः) वह अतिप्रसिद्ध आप (ईशानः) समस्त संसार पर वश करने हारे स्वामी (नः) हमें (पुनानः) पवित्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए (रयिं) प्राण और रयि—चितिशक्ति या ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त कराइये और (वीरवतीम्) बलसम्पन्न (इषम्) अन्न आदि पदार्थों वा इच्छा शक्ति को (विश्वतः आभर) सब ओर से प्राप्त कराइये ।

इति प्रथम खण्डः ।

—:०:—

[७९०] अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

[७९१] अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्ते विश्पतिम् ।
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

[७९२] अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।
असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥ ६ ॥ ऋ० १ । १२ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [३] पृ० २ ।

(२) विद्वान् लोग (अग्निम्—अग्निम्) सबके आगे विद्यमान प्रकाश-स्वरूप, ज्ञानप्रद, आचार्यरूप सर्वोत्तम अग्नि और सब पापों के विनाशक (विश्पतिं) सब प्रजाओं के स्वामी, (पुरुप्रियं) समस्त प्रजाओं के प्रेम-पात्र, (हव्यवाहं) समस्त स्तुतियों को धारण करने वाले परमात्मा को ही (हवीमभिः) स्तुति करने योग्य मन्त्रों से (सदा) नित्य (हवन्ते) स्मरण करते हैं, पुकारते हैं ।

(३) हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! आप (देवान्) दिव्यगुणयुक्त सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु, अग्नि आदि देवों और विद्वानों को (वृक्त-बर्हिषे) देह-बन्धनों को काट देनेहारे, जीवन्मुक्त, कुशल पुरुष के लिये (इह) इस संसार में (जज्ञानः) उनके सब रहस्यों को प्रकट करते हुए (आ वह) हमें प्राप्त कराओ । आप (होता) सबको अपने भीतर आहुतिरूप में वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी शरण में ले लेने हारे, एवं सबको सुख ऐश्वर्य के दाता होकर (नः) हमारे (ईड्यः) एकमात्र स्तुति योग्य हैं ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[७९३] मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये ।
२ ३ २ ३ १ २
या जाता पूतदक्षसा ॥ १ ॥
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[७९४] ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।
२ ३ १२ २२
ता मित्रावरुणा हुवे ॥ २ ॥
१ २ ३ १ २ ३ १२ १२ ३ १ २
[७९५] वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
१ २ ३ १ २
करतां नः सुराधसः ॥ ३ ॥ ७ ॥ ऋ० १ । २३ । ४–६ ॥

भा०—(१) (वयं) हम लोग (सोम-पीतये) समाधि से उत्पन्न होने वाले उस ब्रह्मानन्द रस का पान करने के लिये (मित्रं) स्नेह करने योग्य प्राण, मन, चित्त और (वरुणं) शरीर के विघ्नों का वारण करने हारे अपान को (हवामहे) परस्पर में आहुति देते या उनको वश करते हैं। (या) जो दोनों (पूत-दक्षसा) पवित्र कर्म करने हारे, मल के शोधक होकर (जाता) विद्यमान एवं प्रकट हैं ।

(२) मैं (ता) उन (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण दोनों को (हुवे) पुकारता हूँ (यौ) जो दोनों (ऋतेन) जीवनमय यज्ञ से या सत्य के बलपर (ऋतावृधौ) वास्तविक सत्य और जीवन की वृद्धि करने हारे (ऋतस्य) सत्य आत्मा की (ज्योतिषः-पती) आनन्दमय विशोका, ज्योति के पालन करने हारे हैं ।

(३) (वरुणः) वरुणस्वरूप अपान (अविता) देह को दुःखों से बचाने वाला (प्र भुवत्) होता हुआ और (मित्रः) मित्र, प्राण (विश्वाभिः) सब प्रकार की (ऊतिभिः) रक्षण शक्तियों से (नः) हमारे (सु-राधसः) उत्तम साधनाएं (करताम्) सिद्ध करें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ २र ३ १ २ ३ १ ३
[७९६] इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
२ ३ १ २
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

२ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[७९७] इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २
[७९८] इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
३ १ ३ १ २ ३ १ २
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
[७९९] इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।
२उ ३ १ ३
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥४॥८॥ ऋ० १ । ७ । १, २, ४, ३ ॥

(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१९८] पृ० १०४ ।

(२) व्याख्या देखो अविकल सं० [५९७] पृ० ३०५ ।

(३) व्याख्या देखो अविकल सं० [५९८] पृ० ३०५ ।

(४) (इन्द्रः) ऐश्वर्यशील परमात्मा (दीर्घाय) दूर देश तक के पदार्थों को (चक्षसे) दर्शन करने अर्थात् दिखलाने के लिये (दिवि) आकाश में सूर्य के समान उच्च ज्ञान में (सूर्यं) तेजस्वी विद्वान् को (आ रोहयद्) स्थापित करता है । और (गोभिः) रश्मियों द्वारा (अद्रिम्) मेघ के समान आनन्दवर्षी आत्मा को (ऐरयत्) विशेष रूप से प्रेरित करता है ।

१ २ ३ १र १र ३ १ २ ३ १र २र
[८००] इन्द्र अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे ।
३ १र २र ३ १ २
धिया धेना अवस्यवः ॥ १ ॥

१र २र ३ १ २ ३ १र २र २ ३ १ २
[८०१] ता हि शश्वन्त इडत इत्था विप्रास ऊतये ।
३ २ ३ १ २
सबाधो वाजसातये ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २
[८०२] ता वां गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।
३ १ २ ३ १ २
मेधसाता सनिष्यवः ॥३॥९॥ ऋ० ७ । ९४ । ४-६ ॥

आ०—(१) (इन्द्रे) ऐश्वर्यशील, (अग्ना) ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित और अन्धकारमय, अज्ञान मार्गों में अग्नि के समान पथदर्शक विद्याप्रदाता, अग्निस्वरूप परम आचार्य में (नमः) आदरपूर्वक नमस्कार और (बृहत्) बहुत (सुवृक्तिम्) उत्तम गुण स्तुतियों का (आ ईरयामहे) प्रयोग करें । और (अवस्यवः) ज्ञान, रक्षा, तेज और उत्तमगुणों की कामना वाले होकर हम (धिया) ध्यान और मननपूर्वक (धेनाः) ज्ञानरस पान कराने वाली वेदवाणियों का उच्चारण करें ।

(२) (विप्रासः) मेधावी विद्वान् लोग (ता) इन्द्रस्वरूप और अग्निस्वरूप परम गुरुओं के प्रति (शश्वन्तः) अनादि काल से (ऊतये) आत्मरक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (इत्था) इसी प्रकार की सत्यवाणियों द्वारा (सबाधः) एक दूसरे से समान रूप से बँधे हुए विद्वान् जन (वाज-सातये) ज्ञानप्राप्ति के लिये (ईडते) स्तुति करते हैं ।

(३) हम (वि-पन्यवः) विशेष स्तुतिकर विद्वान्जन (प्र-यस्वन्तः) ज्ञानी, श्रमी, प्रयत्नशील, (मेध-सातौ) पवित्र ज्ञान और बुद्धि की प्राप्ति के लिये (सनिष्यवः) भजन करने की कामना से (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (ता वां) उन आप दोनों को (हवामहे) स्तुति करते हैं ।

इति द्वितीयः खण्डः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[८०३] वृषा पवस्व धारया । मरुत्वते च मत्सरः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा दधान ओजसा ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
[८०४] तं त्वा धर्त्तारमोण्योऽ३ऽष्पवमान स्वर्दृशम् ।
३ १र २र ३ १ २
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[८०५] अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।
३ २ १ २
युजं वाजेषु चोदय ॥३॥१०॥ ऋ० ९ । ६५ । १०–१२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [४६९] पृ० २३९ ।

(२) हे (पवमान) समस्त संसार को गति देने हारे परमात्मन् ! (ओण्योः) दुःखों को दूर करने वाले, आकाश और पृथिवी दोनों के (धर्तारं) धारण करने वाले (स्वर्-दृशम्) परमसुख या ज्ञान के प्रकाश को दर्शाने हारे, (वाजिनं) ज्ञान और बल के भंडार (तं त्वा) उस आपको (वाजेषु) बल के कार्यों, संग्राम आदि के अवसरों पर (हिन्वे) स्मरण करता हूँ।

(३) हे सोम ! (हरिः) सब दुःखों के हरण करने हारे आप (अया) इस (विपानया) विशेष रूप से पान करने योग्य (धारया) ब्रह्मानन्द की धारा से (चित्तः) चेतनामय स्वरूप से पृथक् प्रकट होकर हमें प्राप्त हों और (वाजेषु) ज्ञानों और ऐश्वर्यों में आप (युजम्) योग करने हारे इस साधक को (चोदय) प्रेरित करो ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ २ ३२
[८०६] वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् ।
१ २ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २
[८०७] रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
१ २ २ ३ १ २ ३ १ ३ २र ३ १ २
पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ।
३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[८०८] एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन् वधस्नुम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः
॥ ३ ॥ ११ ॥ ऋ० ९ । ९७ । १३—१५ ॥

८०५—(१) 'नदयन्नेति' 'प्रचेतयन्नर्षति' इति ऋ० ।

[२] "नमयन् वधर्त्रैः" इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) (शोणः) गतिमान्, सर्वत्रव्यापक (वृषा) सब सुखों की वर्षा करने हारा परमात्मा (अभि कनिक्रदद्) साक्षात्, सर्वत्र शब्द या ज्ञानोपदेश करता हुआ, या मेघ जिस प्रकार (गाः) भूमियों को जल से सींचता है और महावृषभ जिस प्रकार गर्जता हुआ गौओं में वीर्य सेचन करता है और आचार्य वा उपदेशक जिस प्रकार गम्भीर उपदेश से शिष्यों वा प्रजाजनों रूप भूमियों को या उनकी चित्तभूमियों को ज्ञान से सींचता है उसी प्रकार (नदयन्) प्रतिध्वनि करता हुआ (पृथिवीम्) पृथिवी (उत द्याम्) और आकाश में सर्वत्र (एषि) व्यापक है (इन्द्रस्य इव) भीतर बैठे २ अपने अन्तरात्मा के समान उसकी (वग्नुः) वाणी (आजौ) हृदय में (शृण्वे) सुनता हूँ। वह तू (प्रचोदयन्) अन्तःकरणों को प्रेरित करता हुआ, सब आत्माओं को ज्ञानवान् करता हुआ (इमाम् वाचम्) वेदवाणी या स्तुति को (आ अर्षसि) सर्वत्र प्रकट करता, एवं प्राप्त होता है।

१. शुन गतौ इत्यस्माच्छोणः।

(२) हे (सोम) सर्वोत्पादक! (रसाय्यः) आनन्द रस से परिपूर्ण, (पयसा) ज्ञान से (पिन्वमानः) तृप्त करता हुआ, (मधुमन्तं) मधुर, ज्ञान, ब्रह्मविद्या से युक्त (अंशुम्) व्यापक आत्मा को तू (एषि) प्राप्त होता है। हे (पवमान) समस्त आत्माओं को पवित्र करने हारे! तू (इन्द्राय) अन्तरात्मा के लिये (परि सिच्यमानः) रसके समान सेचन किया जाता हुआ, पुनः २ ध्यान किया गया (सन्तनिं) निरन्तर बंधी धारणा को (कृण्वन्) दृढ़ करता हुआ (एषि) हृदय में आ, विराज, प्रकट हो।

(३) हे (सोम) आनन्दमय! रसस्वरूप! (मदिरः) हर्ष को जागृत करने हारा (उद-ग्राभस्य) सत्य ज्ञानरूप जल के ग्रहण करने हारे आत्मा के (वधस्नुं) विद्युत् द्वारा ताड़ना करने पर स्रवण करने वाले मेघ के समान, प्राणों के वश करने पर धर्ममेघ द्वारा आनन्द रसको वर्षा देने हारे, चित्त या आत्मा को (नमयन्) अपने अधीन करता हुआ (पवस्व एव) तू अवश्य प्रकट हो। और (रुशन्तं) कान्ति से सम्पन्न (वर्णं) वरण करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य स्वरूप को (परि भरमाणः) सब ओर से धारणा करता हुआ (सिक्तः) सर्वत्र व्याप्त या आनन्द से पूर्ण होकर (गव्युः) समस्त इन्द्रियों को प्रेरणा करता हुआ हमारे प्रति (परि अर्ष) सर्वत्र स्रवित हो, प्रकट हो ।

इति तृतीयः खण्डः ।

---

१२ २र ३ १ २र ३ १ २
[८०९] त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
२ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वा काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥
१२ २र ३ १ ३ १ २ ३ १ २
[८१०] स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः ।
१ २र ३ २र ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
गामश्वं रथ्यमिन्द्र संकिर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥ १२

ऋ० ६ । ४६ । १—२ ॥

भा०—व्याख्या देखो अवि० सं० [२३४] पृ० ११९ ।

(२) हे (चित्र) पूजनीय ! समस्त प्राणियों को ज्ञान और चेतना के देने हारे ! (वज्र-हस्त) खड्ग के धारण करने वाले वीर पुरुष के समान ज्ञानमय खड्ग को अज्ञान अन्धकार के नाश के लिये धारण करने हारे ! हे (अद्रिवः) अभेद्य, अखण्डनीय बलधारक ! परमात्मन् ! (धृष्णुया स त्वं) वह आप सबका धर्षण करने वाले, (महः) महान्, तेजःस्वरूप (स्तवानः) सबकी स्तुतियों के पात्र होकर (जिग्युषे) इन्द्रियों पर विजय करने हारे पुरुष के प्रति (वाजं न) जिस प्रकार ज्ञान ऐश्वर्य आप देते हैं उसी प्रकार (रथ्यं) इस रथरूप देह के हितकारी हमें (गाम्) गौ—ज्ञानेन्द्रियों और (अश्वम्) अश्व, कर्मेन्द्रियों को भी (सत्रा) उत्तम रीति से (सं किर) प्रदान करो ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२
[८११] अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः । सहस्रेणेव शिक्षति ॥१॥
३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
[८१२] शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
३ १ २ ३ १ २ २र ३ १ २ ३ १ २
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥२॥
॥ १३ ॥ ऋ० ८ । ४९ । १ — २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [२३५] पृ० १२० ।

(२) (धृष्णुया) अपनी इन्द्रियों पर और चित्त के शत्रु काम, क्रोध आदि को वश करने वाला पुरुष या (शतानीकः इव) सैकड़ों सेनाओं के पति विजिगीषु पुरुष के समान (प्र जिगाति) उत्तम प्रकार से आगे बढ़कर विजय कर लेता है । (दाशुषे) आत्म समर्पण करने हारे के लिये (वृत्राणि) उसको घेर लेने वाले पाप विकल्पों को भी वह प्रभु (हन्ति) विनाश करता है । (अस्य) इस (पुरु-भोजसः) इन्द्रियों के भोग भोगने हारे आत्मा के (दत्राणि) त्याग वा दान किये हुए विषय पदार्थ ही (गिरेः इव वृत्राणि) मेघ से बरसे जलों के समान या पर्वत से झरते झरनों के जलोंके समान आनन्दों को बहाने वाले आनन्द घन, ज्ञानोपदेशक परमेश्वर से बहते (रसाः) आनन्दरस ही इसको (प्र पिन्विरे) अति अधिक तृप्त और पूर्ण करते हैं ।

२ ३ १र २र ३ १ २
[८१३] त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
१ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥
१ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २
[८१४] मत्स्वा सुशिप्रिन् हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥१४॥
ऋ० ८ । ६६ । १-२ ॥

८१३—'सुशिप्र' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३०२] पृ० १५४।

(२) हे (सु-शिप्रिन्) उत्तम ज्ञानसम्पन्न! (हरि-वः) व्यापनशील शक्तियों से युक्त हे (गिर्-वणः) वाणियों के एकमात्र पात्र! (तं) उस तुझ इष्टदेव को हम (ईमहे) प्राप्त होते हैं। हे देव! (वेधसः) विद्वान् मेधावी लोग (त्वया) तुझ से, तेरे उत्तम गुणों से (भूषन्ति) अपने आपको अलंकृत करते हैं। तू स्वयं (मत्स्व) अपने ही में आनन्दस्वरूप होकर रह। हे (उक्थ्य) प्रशंसा के योग्य (श्रवांसि) सब श्रवण करने योग्य श्रुतियां (तव) तेरा ही (उपमानि) ज्ञान देने हारी हैं।

इति चतुर्थः खण्डः।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
[८१५] यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा।
३ १ २ ३ २
देवावीरघशंसहा॥ १॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[८१६] जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे।
१ २ ३ १ २
गोषातिरश्वसा असि॥ २॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[८१७] सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः।
१ २ ३ २उ ३ २
सीदञ्छ्येनो न योनिमा॥ ३॥ १५॥

ऋ० ९। ६१। १९–२१॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४७०] पृ० २३९।

(२) हे सोम! सर्वोत्पादक! सर्वप्रेरक! तू (अमित्रियं) मित्रता या स्नेह से शून्य (वृत्रं) हृदय को अज्ञान से घेरने वाले पाप को (जघ्निः) नाश करने वाला है। और (दिवे-दिवे) दिनों दिन (वाजं) ज्ञान, बल और अन्न, पुष्टि को (सस्निः) देने हारा है। और तू ही (गो-सातिः अश्व-सः) ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को भी शक्ति देने वाला (असि) है।

८१४—(२) 'गोत्रा, उ अश्वसा' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे सोम ! सर्वैश्वर्यवन् ! ज्ञान के दातः ! (सु-उपस्थाभिः धेनुभिः न) सुख से समीप प्राप्त होने वाली, सुशील गौएं जिस प्रकार मधुर दुग्ध प्रदान करतीं हैं उसी प्रकार तू (सु-उपस्थाभिः) आचार्य के समीप जाकर सुख से प्राप्त करने योग्य (धेनुभिः) ब्रह्मास्वाद, रस का पान कराने हारी वेद और उपनिषद् की ज्ञान-वाणियों से (सम्मिश्लः) उत्तम रीति से युक्त होकर (अरुषः) अतिरोचक, कान्तिसम्पन्न (भुवः) होता है और तभी (श्येनः न) बाज के समान शीघ्र गतिकारी एवं ज्ञानवान् आत्मा रूप (योनिम्) अपने आश्रय रूप, शरणप्रद परमेश्वर में (आ सीदन्) साक्षात् विराजमान होता है ।

अथवा—(सु-उपस्थाभिः धेनुभिः न) सुशील गायों से जिस प्रकार (अरुषः) लाल सांड (संमिश्लः भुवः) युक्त रहे और जिस प्रकार (श्येनः न योनिम् आसीदत्) बाज़ अपने आश्रय स्थान पर जाता है उसी प्रकार उत्तम रूप से स्थिर रहने वाली, रसप्रद इन्द्रियों या वाणियों द्वारा युक्त होकर आत्मा अपने गृह के समान परम आश्रयप्रद शरण, परब्रह्म में मग्न होजाता है ।

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[८१८] अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
५४५ पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद् रोदसी उभे ॥ १ ॥
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[८१९] समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ २ ॥
१ २र ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
[८२०] य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
१ २र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥ ३ ॥ १६ ॥
ऋ० ९ । १०१ । ७-९ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५४६] पृ० २७७ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (प्रियाः) मनोहर (गावः) वाणियां या इन्द्रियां (घृष्वयः) परस्पर स्पर्द्धा करती हुईं या अति तेजोयुक्त होकर (मदाय) आनन्द प्राप्त करने के लिये (सम् अनूषत उ) आत्मा की स्तुति करती हैं । (पवमानासः) हृदय को विमल करते हुए (इन्दवः) परमैश्वर्यसम्पन्न साधक (सोमासः) शम, दम आदि से सम्पन्न होकर मुमुक्षु गण (पथः) मोक्ष साधनों का (कृण्वते) अनुष्ठान करते हैं ।

(३) हे (पवमान) सबके हृदयों को पवित्र करने हारे परमात्मन् ! (यः) जो तू (ओजिष्ठः) सबसे अधिक बल, कान्ति और तेज से युक्त है वह तू (श्रवाय्यं) श्रवण करने योग्य, श्रुति से ज्ञान करने योग्य रसरूप है । (तम्) उस परम आनन्द रस को हमें (आ भर) प्राप्त करा । (यः पञ्च-चर्षणीः अभि, जो पांचों ज्ञानद्रष्टा इन्द्रियों को व्याप्त करता है, (येन) जिससे हम (रयिं) पुष्टि, वीर्य या ऐश्वर्य को (वनामहे) प्राप्त किया चाहते हैं वह भी हमें प्राप्त करा ।

[८२१] वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः । प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन् मनीषिभिः ॥ १ ॥

[८२२] मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशां असिष्यदत् । त्रितस्य नाम जनयन् मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन् ॥ २ ॥

[८२३] अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् । अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ३ ॥ १७ ॥ ऋ० ९ । ८६ । १९-२१ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—व्याख्या देखो अविकल सं० [५५९] पृ० २८५ ।

(२) (पूर्व्यः) सबसे आदि में वर्तमान, आज (कविः) ज्ञानी मेधावी, आत्मा (मनीषिभिः) मन को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाले विद्वान् (नृभिः) पुरुषों द्वारा (यतः) संयत, नियमित किया गया (पवते) प्रकट होता है और (कोशान्) पांचों कोशों को (परि असिष्यदत्) व्याप लेता है उन पर अपना अधिकार कर लेता है। (त्रितस्य) तीनों स्थानों पर अर्थात् कण्ठ के ऊपर शिर, मध्यभाग और मूल इन तीनों स्थानों पर व्याप्त (इन्द्रस्य) आत्मा के (नाम) स्वरूप को (जनयन्) प्रकट करता हुआ (मधु) ज्ञानस्वरूप अमृत रस को (क्षरन्) चुआता, बहाता हुआ (वायुम्) प्राणबल को (सख्याय) अनुकूल मित्रता वा स्नेह के रूप में (वर्धयन्) बढ़ाता है, पुष्ट करता है ।

(३) (अयं) यह सोम (पुनानः) क्षरित होता हुआ (उषसः) प्रकाशित तेजःपटल को (अरोचयत्) और अधिक उज्ज्वल कर देता है । (अयं) और यह सोम (सिन्धुभ्यः) शरीर के भीतर बहने वाली ज्ञान-धाराओं या नाड़ियों को (उ) भी (लोककृत्) अधिक कान्तिमान् करने वाला (अभवत्) होता है । (अयं सोमः) यह सोम, ब्रह्मानन्दरस (त्रिः सप्त) २१ प्रकारों से (आशिरं) आनन्दरस को (दुदुहानः) उत्पन्न करता हुआ (हृदे) हृदय में (मत्सरः) आनन्द बहाता हुआ (चारु) उत्तम रूप से (पवते) प्रकट होता है ।

३ २ २र ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
[८२४] एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
एवा ते राध्यं मनः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
[८२५] एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
१ २ ३ १ २
अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२उ   ३ १ २   ३ १र २र
[८२६] मोषु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
१   २ ३ २ ३ १ २
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥ १८ ॥

ऋ० ८ । ९२ । २८–३० ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल संख्या [२३२] पृ० ११८ ॥

(२) हे (तुवीमघ) ऐश्वर्यवन् ! (इन्द्र) आत्मन् ! (विश्वेभिः) समस्त (धातृभिः) धारण करने वाले लोग (रातिः) तेरे दिये दान को (एव) ही (धायि) धारण करते हैं । (अध चित्) और हे (इन्द्र) आत्मन् ! आप (नः) हमारे (सचा) सदा सहायक हो ।

(३) हे (वाजानां पते !) ज्ञानों, ऐश्वर्यों, बलों के स्वामिन् ! योगिन् ! आप (ब्रह्मा इव) ब्रह्मा, वेदज्ञ विद्वान् के समान सदा सावधान रहते हुए (तन्द्रयुः) कभी आलस्ययुक्त, निकम्मा (मा उ षु भुवः) नहीं रहते, प्रत्युत (गोमतः) इन्द्रियों के सम्पादित ज्ञान से मिले (सुतस्य) योगज सुख को (मत्स्व) आनन्द–लाभ करते हो । प्रायः केवल ज्ञानी लोग अजगरी वृत्ति धारण कर लेते हैं । परन्तु ज्ञान, बल दोनों से युक्त पुरुष को तो उत्तम कर्म सदा करते रहना उचित है ।

२ ३ १ २   ३ १ २ . ३ १ २
[८२७] इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३   १ २
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥
३ १ २   ३ २ ३ १ २
[८२८] सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
२ ३ १   २र   ३ १ २ ३ १ २
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥
३ १र २र   ३ २ ३ १   २र   ३ १ २
[८२९] पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न विदस्यन्त्यूतयः ।
३ १र   २र ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ २
यदा वाजस्य गोमतस्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥ १९ ॥

ऋ० १ । ११ । १–३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३४३] पृ० १७९ ॥

(२) हे (शवसस्पते) बलों के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने हारे ! (ते सख्ये) तेरे प्रेम भाव था मित्रभाव में रहते हुए हम (वाजिनः) बलशाली, ऐश्वर्यवान्, ज्ञानी होकर (मा भेम) भय न करें (जेतारं) सबसे उत्कृष्ट (अपराजितं) किसी से पराजित न होने वाले (त्वाम्) तुझ को (अभि प्र नोनुमः) साक्षात् प्रणाम करते हैं ।

(३) (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्य के दाता परमेश्वर के (पूर्वीः) सब से आदि काल से चले आये (रातयः) दिये दान और (ऊतयः) रक्षाएं (न विदस्यन्ति) कभी नाश को प्राप्त नहीं होतीं, वे कभी नहीं खुटतीं (यद्वा) जब वह (स्तोतृभ्यः) सद्गुणों के प्रकाशक विद्वानों को (गोमतः) ज्ञान वेदवाणियों से युक्त (वाजस्य) बल या ज्ञान के (मघम्) ऐश्वर्य को भी (मंहते) प्रदान करता है ।

इति षष्ठः खण्डः

इति तृतीयोऽध्यायः । इति द्वितीयप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्द्धः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

द्वितीयोऽर्धः ।

ऋषिः—१ जमदग्निर्भार्गवः । २ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा भार्गवः । ३ कविर्भार्गवः । ४ कश्यपो मारीचः । ५ मेधातिथिः काण्वः । ६, ७ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ९ सप्तर्षयः [भरद्वाज-कश्यप-गोतमात्रि-विश्वामित्र-जमदग्नि-वसिष्ठाः] । १० पराशरः शाक्त्यः । ११ पुरुहन्मा आङ्गिरसः । १२ मेध्यातिथिः काण्वः । १३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १४ त्रित आप्त्यः । १५ ययातिर्नाहुषः । १६ पवित्र आङ्गिरसः । १७ सौभरिः काण्वः । १८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । १९ तिरश्चीराङ्गिरसः ॥ देवता—१—४, ६, १०, १४—१६ पवमानः सोमः । ५, १७ अग्निः । ६ मित्रावरुणौ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७ मरुत इन्द्रश्च । ८ इन्द्राग्नी । ११—१३, १८, १९ इन्द्रः ॥ छन्दः—
१—८, १४ गायत्री । ९ (३) द्विपदा विराट् । १० त्रिष्टुप् । ९ (१,२)
११, १३ बार्हतः प्रगाथः । १२ बृहती । १५, १६ अनुष्टुप् । १९ जगती ।
१७ (१) विषमा ककुप् । (२) समा सतोबृहती । १८ उष्णिक् ॥

३१ २ ३१ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २
[८३०] एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
१ २ ३ १ २र
विश्वान्यभिसौभगा ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[८३१] विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
१ २ ३ २ ३२ १ २
त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ २
[८३२] कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
इडामस्मभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ६२ । १–३ ॥

(१) जिस प्रकार (तिरः) तिरछे रूप से थामे हुए (पवित्रं) दशा पवित्र नामक वस्त्र खण्ड पर (एते) ये (आशवः) शीघ्र गति करनेहारे सोम ओषधि के रस (विश्वानि) समस्त (सौभगा) सौभाग्यों को (अभि) प्राप्त करने के लिये (असृग्रम्) छोड़े जाते हैं, प्रवाहित किये जाते हैं उसी प्रकार (आशवः) व्यापनशील, (इन्दवः) आह्लादकारक, आनन्द रस (एते) ये (तिरः) सत्स्वरूप, (पवित्रं) शुद्ध, मलादि दोषों से रहित चित्त में (विश्वानि सौभगान अभि) समस्त ऐश्वर्यों को साक्षात् करने के लिये (असृग्रम्) प्रवाहित हैं ।

इस मन्त्र से समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई ऐसा बहुतसे विद्वानों का मत है । तदनुसार सृष्टि प्रकरण में (आशवः) गतिशील, (इन्दवः) प्रकाशमान पिण्ड (एते) ये सब (विश्वानि सौभगानि अभि) समस्त ऐश्वर्यों को साक्षात् प्रकट करने के लिये (पवित्रम् तिरः) सत्यस्वरूप, परम ब्रह्मरूप मूलकारण को आश्रय करके (असृग्रम्) उत्पन्न होते हैं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (वाजिनः) ज्ञानवान् सोम, शम दम आदि साधनों से सम्पन्न विद्वान् लोग (पुरु) बहुत से (दुरिता) दुष्ट कर्मों को (वि-घ्नन्तः) नाश करते हुए (त्मना) अपने सामर्थ्य से (अर्वतः) प्राणों की (कृण्वन्तः) साधना करते हुए (तोकाय) अपने सन्तान के लिये, अथवा अपने विविध दुःखों के नाश करने के लिये, या अगली जन्म-परम्परा के सुधार के लिये (सु-गा) सुखपूर्वक अनुगमन करने योग्य उत्तम मार्ग बनाते हैं।

(३) और वे ही विद्वान् लोग (गवे) ज्ञानस्वरुप ब्रह्म के लिये (सु-स्तुतिम्) उत्तम स्तुति (कृण्वन्तः) करते हुए (अस्मभ्यं) हमारे लिये (वरिवः) धन और (इडाम्) उत्तम अन्न और (संयतं) उत्तम व्यवस्था (अभि अर्षन्ति) प्रकट करते हैं।

[८३३] राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १ ॥

[८३४] आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर।
सुष्वाणो देववीतये ॥ २ ॥

[८३५] आ न इन्दो शातग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम्।
वहा भगत्तिमूतये ॥३॥२॥ ऋ० ६। ६५। १६, १८, १७॥

भा०—(१) (राजा) प्रकाशमान् रूप में (पवमानः) प्रकट होता हुआ, आत्मानन्द रस (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष से मेघ के समान अन्तःकरण से (यातवे) जाने के लिये (मनौ अधि) मननशील चित्त के भीतर (मेधाभिः) प्रज्ञाओं, कर्मों द्वारा (ईयते) व्याप्त होता है।

(२) हे (सोम) आत्मन्! तू (देव-वीतये) विद्वानों की इष्टसिद्धि के लिये (सुष्वाणः) स्वतः उत्पन्न होता हुआ (नः) हमें (वर्चसे) दीप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान्तिमान् तेजस्वी होने के लिये (सहः) सहनशीलता (शुवः) वेग और उसी प्रकार का (रूपं न) कान्तिमय उज्ज्वल रूप (आ भर) प्राप्त करो।

(३) हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! आप (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये हमें (शतग्विनं) सैकड़ों गौओं और (स्वश्व्यं) उत्तम २ घोड़ों से युक्त (गवां पोषं) गौओं भूमियों से प्राप्त होने योग्य पुष्टिकारक पदार्थ और (भगत्तिम्) सेवन करने योग्य, उत्तम ऐश्वर्य (आ वह) प्राप्त कराइये।

[८३६] तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः।
चारुं सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥

[८३७] संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामाहिव्रतं मदम्।
शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥

[८३८] अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः।
सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥ ३ ॥

[८३९] अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे।
अभिष्टिकृद् विचर्षणिः ॥ ४ ॥

[८४०] विश्वस्मा इत् स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम्।
गोपामृतस्य विर्भरत् ॥ ५ ॥ ३ ॥

ऋ० ९ । ४८ । १—५ ॥

भा०—(१) हे परमेश्वर ! (नृम्णानि) नाना धनों को (बिभ्रतं) धारण करते हुए (दिवः) द्यौलोक या सूर्य के (सधस्थेषु) समान स्थान, अन्तराकाश में विद्यमान अनन्त लोकों में (चारुं) व्यापक (महः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान् (त्वा) तुझको हम (सुकृत्यया) उत्तम पुण्य कर्म करके (ईमहे) प्राप्त होते हैं।

(२) और पुनः (संवृक्त-धृष्णुं) आत्मा का धर्षण करने हारे काम क्रोधादि नाना शत्रुओं का मूल काट डालने वाले, (उक्थ्यं) वेदमन्त्रों से स्तुति करने योग्य, (महा महिव्रतं) बड़े भारी पूजनीय कर्म करने वाले (शतं पुरः) सैकड़ों देहों के समान ब्रह्माण्डों के भोक्ता, या सैकड़ों देहधारियों को (रुरुक्षिणं) उच्च लोक-मोक्ष में उठा लेने वाले (मदं) अति आनन्ददायक, सुखस्वरूप आपको हम प्राप्त होते हैं।

(३) (अतः) इसी कारण (त्वा राजानं) तुझ समस्त संसार के प्रकाशक स्वामी के पास हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्म से सम्पन्न ! (दिवः) सूर्यलोक का भी (रयिः) समस्त बल और ऐश्वर्य (त्वा अभि अयद्) तुझको ही प्राप्त है। तू ही (सुपर्णः) उत्तम ज्ञान और शक्ति से सम्पन्न होकर समस्त संसार को (अव्यथी) बिना व्यथा या पीड़ा अनुभव किये ही (भरत्) पालन पोषण और धारण करता है।

(४) (अध) और (वि-चर्षणिः) सब संसार का द्रष्टा, निरीक्षक तू (अभिष्टि-कृद्) सबको अभीष्ट कर्मफल देने वाला होकर (इन्द्रियं) इन्द्र अर्थात् जीवात्मा से युक्त देहों को प्रेरित करता हुआ (ज्यायः) बहुत बड़े (महित्वम्) महान् सामर्थ्य को (आनशे) धारण करता है। अथवा (इन्द्रियं ज्यायः महित्वम् आनशे) परमैश्वर्य युक्त, सबसे अधिक बड़े महान् सामर्थ्य को प्राप्त है।

(५) (विः) देह से देहान्तर में गति करने हारा, पक्षी के समान यह जीव आत्मा (विश्वस्मा) सब प्रकार के (इत्) ही (स्वः) सुखों या ज्ञानों को (दृशे) दर्शन करने के लिये (साधारणं) समस्त लोकों को समान रूप से धारण करने हारे, (रजस्तुरम्) समस्त लोकों को गति देने हारे (ऋतस्य) समस्त जगत् और ज्ञान की (गोपाम्) रक्षा करनेहारे परमात्मा को (भरत्) अपने चित्त में धारण करे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[८४१] इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
१ २ ३ १ २र
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २
[८४२] पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
हरे सृजान आशिरम् ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[८४३] पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥३॥४॥ ऋ० ६ । ६४ । १३–१५ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५०५] पृ० २५३ ।

(२) हे (गिर्वणः) वाणियों के एकमात्र पात्र ! प्रभो ! हे (हरे) सब दुःखों के हरण करने हारे (आशिरं) इस शीर्ण होने वाले देह को (सृजानः) बनाता हुआ, (पुनानः) स्वतः मलरहित, पवित्र, बन्धनरहित होकर भी (जनाय) उत्पन्न होने हारे इस मनुष्य के लिये (वरिवः) ज्ञानरूप उत्तम धन, और (ऊर्जं) अन्न आदि बल (कृधि) उत्पन्न कर और प्रदान कर ।

(३) हे परमात्मन् ! (वाजिभिः) विद्वानों द्वारा (हितः) समाधि में साक्षात् किया हुआ और धारण किया गया (द्युतानः) प्रकाशस्वरूप (पुनानः) सब मलों को शोधता हुआ (देव-वीतये) दिव्यगुणों के प्राप्त कराने के लिये (इन्द्रस्य) आत्मा के (निः-कृतम्) आवासस्थान, हृदय देश में (याहि) आ, विराजमान हो ।

इति प्रथमः खण्डः ।

—(०)—

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[८४४] अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।
३ २ ३क २र
हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[८४५] यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति ।
तस्य स्म प्राविता भव ॥ २ ॥

[८४६] यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति ।
तस्मै पावक मृडय ॥३॥ ५॥ ऋ० १ । १२ । ६, ८, ९ ॥

भा०—(१) जिस प्रकार (अग्निना) अग्नि से (हव्यवाड्) चरु आदि हविः-पदार्थों को जलवायु आदि पदार्थों तक पहुंचाने वाला (जुह्वास्यः) जुहू नामक यज्ञ पात्र या ज्वालारूप मुख वाला (अग्निः) आहवनीय अग्नि (समिध्यते) प्रज्वलित किया जाता है । अथवा जिस प्रकार एक अग्नि से दूसरा अग्नि जला लिया जाता है । उसी प्रकार (युवा) तरुण (कविः) विद्वान् मेधावी दूसरे विद्वान् से ज्ञान प्राप्त करता और (गृहपतिः) एक गृहस्थ भी दूसरे गृहस्थ से अपनी सत्ता को पाता है ।

(२) हे (अग्ने) अग्ने ज्ञानवन् ! ज्ञानप्रकाशक (यः) जो (हविष्पतिः) सब हव्य पदार्थों का स्वामी, जीव (त्वां) तेरा (सपर्यति) भजन करता है, हे देव ! (तस्य) उसके आप (प्र अविता) रक्षा करने हारे (भव स्म) अवश्य होइये ।

(३) (यः) जो (हविष्मान्) उत्तम अन्नों और पदार्थों का स्वामी (देव-वीतये) विद्वानों या भौतिक दिव्य गुणों और पदार्थों को प्राप्त करने के लिये (अग्निं) अग्नि के समान ज्ञानस्वरूप, सर्वप्रकाशक परमात्मा की (आ विवासति) उपासना करता है । हे (पावक) सबको पवित्र करनेहारे परमेश्वर ! आप (तस्मै) उसको (मृडय) सुख शान्ति दें ।

[८४७] मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
धियं घृताचीं साधन्ता ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २
[८४८] ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा ।
१ २ ३ १ २
क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ २ ॥ क्रतुम्
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
[८४९] कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया ।
१ २ ३ १ २
दक्षं दधाते अपसम् ॥ ३ ॥ ६ ॥ ऋ० १ । २ । ७–९ ॥

भा०—(१) मैं (पूत-दक्षं) पवित्र, निष्पाप कर्म करनेहारे, पवित्र बल वाले,(मित्रं) सबके स्नेही और सबको मृत्यु के भय से बचानेहारे, ब्रह्माण्ड में वर्त्तमान सूर्य के समान और देह में वर्त्तमान प्राण के समान (रिशादसं) शत्रुओं के समान कष्टदायी रोगों का विनाश करने वाले, (वरुणं च) और बलिष्ठ प्राणवायु या भीतरी अपान वायु और उसके समान सब कष्टों के निवारक तेरा (हुवे) रहस्यपूर्ण अध्यात्म पदार्थों के ज्ञान के साथ २ ज्ञान करता हूँ। (घृताचीं) जिस प्रकार सूर्य और वायु जल को ऊपर और सर्व देशों में ले जाते हैं उसी प्रकार वे दोनों प्राण और अपान भी शरीर की कान्ति को बढ़ाने वाले घृत या शुक्ररूप रस को सर्वत्र प्राप्त कराने हारी (धियं) क्रिया को (साधन्ता) साधने वाले होते हैं। उसी प्रकार हे परमेश्वर ! मृत्यु से त्राण करने वाला स्नेहमय मित्र रूप और दुःखों का निवारक तेरा रुद्र और वरणीय वरुण रूप दोनों ही (घृताचीं धियं साधन्ता) आनन्द रस व ज्ञानप्रकाश को प्राप्त कराने वाली बुद्धि को साधते हैं।

(२) (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण दोनों (ऋतेन) गति, ज्ञान और सत्य के बल पर (ऋत-वृधौ) जल से बढ़ने हारे वायु, सूर्य के समान, ऋतरूप ब्रह्म की शक्ति से बढ़ने वाले (ऋत-स्पृशा) जल के द्रावक सूर्य, वायु के समान (ऋत-वृधौ) ज्ञान-तेज का सर्वत्र प्रचार करने हारे (बृहन्तं) बड़े भारी (क्रतुं) संसार रूप यज्ञ को, अर्थात् समस्त ब्रह्माण्डों और समस्त पिण्डों को (आशाथे) व्याप्त किये हुए हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण (कवी) क्रान्तदर्शी सब प्रकार के व्यवहारों का दर्शन करने हारे, (तुवि-जाता) बहुत से कारणों से प्रसिद्ध, (उरु-क्षया) नाना जगत् के पदार्थों में व्यापक (दक्षं) बल और पाप वाहक तेज, और (अपसं) क्रिया को (दधाते) धारण करते, प्रदान करते, स्थापन करते हैं।

१ २ १ ३ २र ३ १ २र
[८५०] इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा।
३ १ २ ३१२
मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥
१ २र ३२उ ३ १२३ १ २ ३२
[८५१] आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।
१ २ ३ १ २ ३ १२
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ २ ॥ नाम-उदक नाम
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[८५२] वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः।
१ २ ३ २ ३ १ २
अविन्द उस्रिया अनु ॥३॥७॥ ऋ० १। ६। ७, ४, ५ ॥

(१) हे प्राण! तू (अबिभ्युपा) भयरहित (इन्द्रेण) इन्द्रस्वरूप आत्मा के साथ (संजग्मानः) संगति करता हुआ (सं दृक्षसे हि) दिखाई देता है, इस कारण तुम दोनों प्राण और आत्मा (समान-वर्चसा) समान कान्ति वाले होकर (मन्दू) आनन्द के उत्पादक होते हो। जीव और परमात्मा के पक्ष में, एवं सूर्य और वायु के पक्ष में भी स्पष्ट है।

(२) मरुद्गण, इन्द्रियां या दशों प्राण (स्वधाम् अनु) अपने स्वरूप या देह को स्वयं धारण करने में समर्थ जीवात्मा के साथ (आत्) बाद में (पुनः) फिर २ (गर्भत्वम्) गर्भरूप से (एरिरे) प्रकट होते हैं और (यज्ञियं) जीवनरूप यज्ञ के योग्य (नाम) संज्ञा को (दधानाः) धारण करते हैं। आधिदैविक पक्ष में—स्वधा = जलके साथ वायुएं आकाश में गर्भित होकर यज्ञ के योग्य जलवर्षा कराते हैं।

(३) जिस प्रकार सूर्य का तेज गुहा अर्थात् अन्तरिक्ष में किरणों द्वारा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थों तक पहुंचता है और उनके भीतर प्रवेश करने हारी वायुओं से अन्तरिक्ष में जल को धारण करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) आत्मन् ! (गुहा चित्) भीतरी गुहा, गर्भस्थान में भी (वीडु-चित्) अति दृढ़ स्थान को (आरुजत्नुभिः) पीड़ित करते हुए (वह्निभिः) वहन करने वाले प्राणों से प्रकट होकर (अनु) पश्चात् (उस्रियाः) अपनी किरणस्वरूप इन्द्रियों द्वारा (अनु अविन्दः) तू ज्ञेय पदार्थों को प्राप्त कर। अथवा हे (इन्द्र) आत्मन् ! तू गुहारूप हृदय देश में विराजमान होकर भी दृढ़ शरीर के भागों को फोड़ कर जीवन को वहन करने वाले इन प्राणों से अपने (उस्रियाः) ज्ञानेन्द्रियों को प्राप्त करता है।

[८५३] ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम्।
इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ १ ॥

[८५४] उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे।
ता नो मृडात ईदृशे ॥ २ ॥

[८५५] हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती।
हथो विश्वा अप द्विषः ॥३॥८॥ ऋ० ६। ६०। ४–६॥

भा०—(१) मैं (ता) उन (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि या परमात्मा आत्मा दोनों को (हुवे) स्तुति करता हूँ (ययोः) जिनके आधार पर (इदं) यह (विश्वम्) विश्व (पप्ने) व्यवहार योग्य प्रसिद्ध होता है। और (ययोः) जिन्हों के आधार पर यह जगत् (पुरा कृतम्) प्रथम काल में भी बनाया गया था, जो इसको कभी (न मर्धतः) विनष्ट नहीं होने देते।

८५३—३. 'हतो' ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) उन (मृधः) हिंसक शत्रुओं को (वि-घनिना) विशेषरूप से आघात करने हारे, (उग्रा) वेग वाले, (इन्द्राग्नी) पूर्व उक्त इन्द्र और अग्नि दोनों को (हवामहे) स्वीकार करते, स्तुति करते हैं जिनके आधार पर हम और (ता) वे दोनों (नः) हमें (ईदृशे) इस प्रकार के जीवन संग्राम में भी (मृडातः) सुखी करते हैं।

(३) (आर्या) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले वे दोनों (वृत्राणि) मेघों के समान आवरक विघ्नों को (हथः) आघात करते, या नाश करते हैं। (सत्पती) और वे दोनों सज्जनों के पालक (दासानि) नाशकारी पदार्थों को (हथः) विनाश करते हैं और (विश्वा) समस्त (द्विषः) शत्रुओं को (अप हथः) दूर मार भगाते हैं।

इति द्वितीयः खण्डः ।

---

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[८५६] अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥१॥
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
[८५७] तरत् समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥२॥
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २र
[८५८] नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्र्यः ॥३॥
॥ ९ ॥ ऋ०, ९ । १०७ । १४–१६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५१८] पृ० २४९ ।

(२) (पवमानः) समस्त मलों को शोधन करने हारा (राजा)

८५६—१. "मत्सरासः स्वर्विदः' इति ऋ० ।

२. 'अर्षन् मित्रस्य,' 'प्र हिन्वान' इति ऋ० ।

३. 'देवः समुद्रियः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य के समान तेजस्वी आत्मवशी योगी (देवः) विद्वान् (ऊर्मिणा) अपनी उच्च गति द्वारा (बृहत्) बड़े (ऋतम्) सत्यज्ञान स्वरूप परिपक्व (समुद्रं) समस्त रसों के आश्रय ब्रह्म को (तरत्) प्राप्त हो जाता है। और (मित्रस्य) सबके स्नेहशील प्राणस्वरूप (वरुणस्य) सब पापों के निवारक परमात्मा को (धर्मणा) यम नियम पूर्वक प्राप्त धारक बल से, या सदाचार से (हिन्वानः) सन्मार्ग में गति करता हुआ स्वयं (बृहत्) बड़े (ऋतं) सत्य ज्ञानस्वरूप अनन्त ब्रह्म को (प्र अर्प) प्राप्त होता है।

(३) (नृभिः) विद्वान् नेताओं, या प्राणों के द्वारा (येमाणः) सुव्यवस्थित (राजा देवः) प्रकाशस्वरूप योगी आत्मा (हर्यतः) सबके प्रेमका पात्र (वि-चक्षणः) और सब का साक्षी रूप होकर (समुद्रियः) महान् रससागर में आनन्द प्राप्त करने वाला होकर उसी में मग्न हो जाता है।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २
[८५९] तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो
३ २
वावशानाः ॥ २ ॥

१ २ १ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २
[८६०] सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः
३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पृच्छ मानाः। सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमं अर्का-
३ २ ३ १ २
स्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[८६१] एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति
१ ३ १ २ ३ १र २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्दमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरन्धिम्
॥ ३ ॥ १० ॥ ऋ० ६ । ६७ । ३४-३६ ॥

८५९—३. 'बृहता रवेण' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५२५] पृ० २६२ ।

(२) (धेनवः) दुग्धपान कराने हारी (गावः) गौओं के समान ज्ञानरस का पान कराने वाली, ज्ञानवाणियां, वेदवाणियां व उपनिषदें (सोमं) सोमस्वरूप आत्मा या परमात्मा के प्रति (वावशानाः) कामना प्रकट करती हैं । उसी को चाहती, अथवा उसी की स्तुति करती, उसी के गुणों का प्रकाश करती हैं । और (विप्राः) मेधावी पुरुष (मतिभिः) अपने मननों द्वारा (सोमम्) उसी रसस्वरूप आत्मा की (पृच्छमानाः) जिज्ञासा करते हैं । वही (सोमः) रसरूप आत्मा (पूयमानः) विशुद्ध स्वरूप (सुतः) अन्तर्हृदय में प्रकट होकर (ऋच्यते) स्तुति किया जाता है । और (अर्काः) सूर्य के समान तेजस्वी, वेद के विद्वान् ज्ञानी पुरुष (सोमे) उसी परमात्मा के विषय में (त्रिष्टुभः) तीनों प्रकार से मनसा, वाचा, कर्मणा, उसकी स्तुति करने हारे होकर उसकी (सं नवन्ते) अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं ।

(३) हे (सोम) रसस्वरूप ! आप (परि-सिच्यमानः) बार २ निदिध्यासन द्वारा साक्षात् किया गया, (पूयमानः) विशुद्धरूप (स्वस्ति) कल्याणकारी होकर (नः आपवस्व एव) हमारे प्रति प्रकट ही हों । और (बृहता) बड़े भारी (मदेन) आनन्दरस से (इन्द्रम्) आत्मा को (आ विश) प्राप्त कर और (वाचं) वाक्शक्ति को (वर्धय) बढ़ाओ । और (पुरन्धिम्) देह रूप पुर को धारण करने हारी चितिशक्ति या बुद्धि प्रभा को (जनय) प्रकट करो । इति तृतीयः खण्डः ॥

[८६२] यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१॥

[८६३] आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ॥
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिं चित्राभिरूतिभिः
॥ २ ॥ ११ ॥ ऋ० ८ । ७० । ५—६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२७८] पृ० १४२ ।

(२) हे (वृषन् !) सुखों की वर्षा करने हारे परमात्मन् ! हे (शविष्ठ !) सर्वशक्तिमन् ! आप (महिना) बड़े भारी (शवसा) बल, शक्ति, सामर्थ्य से (विश्वा) समस्त (वृष्ण्या) सुखवर्षक और जलवर्षक सबके पोषक मेघ, पृथिवी आदि पदार्थों को (आ पप्राथ) पूर्ण कर रहे हो, सब में व्याप्त हो । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (वज्रिन्) पापनाशक ज्ञान के स्वामी ! (गोमति) इन्द्रियों से सम्पन्न इस (व्रजे) गतिशील नश्वर देह में (चित्राभिः) नाना आदरणीय (ऊतिभिः) रक्षाओं या ज्ञानधाराओं से (अस्मान्) हमारा (अव) पालन कर, हमें पुष्ट कर ।

[८६४] वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥१॥

[८६५] स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आगम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥२॥

[८६६] कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३॥१३॥

ऋ० ८ । ३३ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२६१] पृ० १३३ ।

(२) हे (वसो) सब को वास देने हारे परमात्मन् ! (सुते) इस उत्पन्न जगत् में (एके) बहुत से (उक्थिनः) ज्ञानी, स्तोता लोग (त्वा) तुझ को ही (निः स्वरन्ति) पुकारते हैं, तेरी ही स्तुति गाते हैं । (तृषाणः) प्यासा पुरुष जिस प्रकार (ओकः) जल के स्थान के प्रति आता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) परमेश्वर ! आप (स्वब्दी इव) उत्तम जलवर्षी मेघवान् वायु के समान (वंसगः) शुभागमन युक्त होकर इस (सुतं) अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न किये पुत्ररूप संसार के प्रति (कदा) कब (आगमः) आएंगे, कब कृपादृष्टि और आनन्दवृष्टि करेंगे ?

अथवा भक्त अपने आत्मा के प्रति कहता है—हे (वसो) आत्मन् ! बहुत से ज्ञानी अपने ज्ञानमय हृदय में तुझे ही स्वर से गाते हैं। जिस प्रकार प्यासा जल के प्रति जाता है उसी प्रकार तू भी उत्कण्ठित होकर, उत्तम मेघवान् वायु के समान मनोहर गति वाला होकर कब हृदय देश में प्रकट होगा और धर्ममेघ रूप में सुख की वर्षा करेगा ?

(३) हे (मघवन् !) सम्पूर्ण धनों और यज्ञों के स्वामिन् ! हे (विचर्षणे !) समस्त संसार के द्रष्टः ! हे (धृष्णो) सहनशील ! समस्त संसार के भार को वहन करने हारे ! सब कष्टों और दुष्टों को दलन करने हारे ! आप (कण्वेभिः) मेधावी पुरुषों के निमित्त (सहस्रिणम्) सहस्रों ऐश्वर्यों से युक्त (धृषद्) बाधक विरोधियों को पराजित करने वाले (वाजं) बल को (आ दर्षि) देते हैं। उस ही (पिशङ्ग-रूपं) अत्यन्त मनोहर, पीतवर्ण के सुवर्ण आदि और (गोमन्तम्) गौ आदि पशुओं से युक्त (वाजं) धन की (मक्षू) निरन्तर हम (ईमहे) याचना करते हैं।

[८६७] तरणिरित् सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥१॥
[८६८] न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत्।
सुशक्तिरिन्मघवं तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥२॥
॥ १३ ॥ ऋ० ७ । ३२ । २०-२१ ॥

(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२३८] पृ० १२१।

(२) (द्रविणोदेषु) द्रविण-धन और ज्ञान के दान करने हारे उदार पुरुषों के विषय में (दुःस्तुतिः) बुरी निन्दा (न शस्यते) नहीं कही

८६७—२. 'न दुष्टुती मर्त्यो विदन्ते वसु' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती और (स्रेधन्तं) दूसरों की हिंसा करने हारे पापी पुरुष को (रयिः) धन, प्रजा और पुष्टि (न नशत्) नहीं प्राप्त होता। (यत्) जो (पार्ये) पालन करने हारे (दिवि) आकाश या सूर्य में (मावते) मेरे जैसे पुरुष के लिये (देष्णं) दान करने योग्य तेज, जलवृष्टि आदि पदार्थ हैं। हे मघवन्! (तुभ्यं इत्) तेरी ही वह (सु-शक्तिः) उत्तम शक्ति है।

इति चतुर्थः खण्डः।

---

[८६९] तिस्रो वाच उदीरत गावो मिमन्ति धेनवः।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ १ ॥

[८७०] अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः।
मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥ २ ॥

[८७१] रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।
आ पवस्व सहस्रिणः ॥३॥१४॥ ऋ० ६। ३३। ४-६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४७१] पृ० २३९।

(२) (ब्रह्मीः) ब्रह्म, वेद की वाणियें (ऋतस्य मातरः) सत्य का ज्ञान कराने हारी (यह्वीः) उस महान् परमेश्वर की प्रतिपादक होने से महान् गुण वाली हैं। वे (दिवः) आकाश में सूर्य के समान, परम तेज और दिव्यगुणों में ज्ञान के स्वरूप में (शिशुं) शयन करने वाले, व्यापक परमात्मा को (मर्जयन्तीः) परिमार्जन करती हुई, उसके गुणों को उत्तरोत्तर अभ्यास द्वारा अधिकाधिक स्वच्छ रूप में प्रकट करती हुई उसको ही (अभि-अनूषत) साक्षात् रूप से स्तुति करती हैं।

८६९—२ 'मर्मृज्यन्ते' इति ऋ०।

८७१—२ 'ईशान ओजसा' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) हे (सोम) सबके उत्पादक ! परमेश्वर ! (अस्मभ्यं) हमारे लिये (सहस्रिणः) सहस्रों पदार्थों से सम्पन्न (रायः) धनों से पूर्ण (चतुरः) चारों (समुद्रान्) समुद्रों या उन्नति के साधन रूप या नाना ऐश्वर्यों और सुखों के उत्पादक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों को (विश्वतः) सब ओर से (आ पवस्व) प्राप्त करा ।

[८७२] सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ १ ॥

[८७३] इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥ २ ॥

[८७४] सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ३ ॥ १५ ॥

ऋ० ९ । १०१ । ४–६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५४७] पृ० २७८ ।

(२) (इन्दुः) सोम्य गुणवाला ऐश्वर्य गुण-सम्पन्न आनन्दस्वरूप, सोममय ईश्वर (इन्द्राय) इस आत्मा के हित के लिये (पवते) प्रकट होता है । (इति) इस प्रकार (देवासः) विद्वान् लोग (अब्रुवन्) कहते हैं । और वही सोम (ओजसः) विशेष बल और प्रभाव के कारण (विश्वस्य) समस्त संसार का (ईशानः) प्रभु और (वाचः-पतिः) वेदवाणियों का स्वामी होकर (मखस्यते) यज्ञों द्वारा पूजा करने योग्य है ।

(३) (सहस्र-धारः) सहस्रों धारण शक्तियों से सम्पन्न, सहस्रों ब्रह्माण्डों को धारण करने हारा, सहस्रों वेदवाणियों का उपदेष्टा, (समुद्रः) समस्त रसों का भण्डार, या समुद्र के समान महान्, समस्त विश्व को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने में से उत्पन्न करने हारा, (वाचम् ईङ्खयः) समस्त विश्व की वेदमय वाणियों को प्रकट करने हारा, (रयीणां) समस्त जड़ और चेतन पदार्थों और ऐश्वर्यों का (पतिः) स्वामी और (इन्द्रस्य) इस आत्मा का (सखा) परम मित्र (सोमः) सबका प्रेरक और उत्पादक परमात्मा (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (पवते) प्रकट हो।

[८७५] पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥१॥

[८७६] तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन्। अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधि रोहन्ति तेजसा ॥ २ ॥

[८७७] अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥ ३ ॥ १६ ॥ ऋ० ६ । ८३ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५६५] पृ० ~~२९५~~ (२८६)।

(२) (तपोः) समस्त संसार को तपाने हारे, सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर का (पवित्रं) पवित्र करने हारा, परम पावन स्वरूप (दिवः पदे) आकाशस्थ समस्त दिव्य तेजोमय पदार्थों में (विततं) व्याप्त है। (अस्य) इस परमेश्वर के (अर्चन्तः) गुणों को प्रकट करते हुए (तन्तवः) नाना तन्तु, यज्ञमय सूत्र (वि अस्थिरन्) नाना प्रकारों से विद्यमान हैं। (अस्य) इसके (आशवः) व्यापक और अति वेगवान् सामर्थ्य या शक्तियां (पवितारं) सबके शोधक व स्वयं गतिशील सूर्य और वायु को (अवन्ति) नष्ट होने से बचाते हैं। और इसी कारण आकाशस्थ नाना सूर्य रूप नक्षत्रगण, (तेजसा) तेज के रूप में (दिवः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश के (पृष्ठं) सबसे उन्नत भाग में (तेजसा) तेज सहित भी (अधि रोहन्ति) पहुंचे हुए हैं।

(३) व्याख्या देखो अविकल सं० [५९६] पृ० ३०४।

इति पञ्चमः खण्डः।

---

[८७८] प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे।
उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥

[८७९] आ वंसते मघवा वीरवद् यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत्
॥ २ ॥ १७ ॥ ऋ० ८। १०३। ८, ९ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [१०७] पृ० ५७ ।

(२) (मघवा) ऐश्वर्यवान् (समिद्धः) प्रकाशमान, (द्युम्नी) यशस्वी, कान्तियुक्त, (आ-हुतः) विद्वानों से पुकारा गया परमात्मा (वीरवद्) सामर्थ्य से पूर्ण पुत्र, भृत्य, मित्र आदि से युक्त (यशः) अन्न और तेज (आ वंसते) प्रदान करता है। (अस्य भवीयसी) सबसे अधिक शक्तिशाली (सुमतिः) उत्तम मनन या संकल्प शक्ति (नः) हमें (वाजेभिः) नाना बलों, ऐश्वर्यों और ज्ञानों सहित (कुवित्) बहुधा (आगमत्) आवे, प्राप्त हो।

[८८०] तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम्।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

[८८१] येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ ३ ३ १ २र ३ १ २
[८८२] तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥ १८ ॥

ऋ० ८ । १५ । ४-६ ॥

आ०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [३८३] पृ० १९९ ।

(२) (येन) जिस सामर्थ्य से हे इन्द्र, परमेश्वर ! आप (आयवे) जीवन के साधक, प्राणायाम के अभ्यासी और (मनवे) मननशील पुरुष के प्रति अपनी (ज्योतींपि) ज्ञानदीप्तियों को (विवेदिथ) प्राप्त कराते हो प्रकाशित करते हो, उस ही सामर्थ्य से (मन्दानः) आनन्दपूर्ण होकर (अस्य) इस (बर्हिषः) महान् ब्रह्माण्डरूप यज्ञ के आश्रय बन कर (वि राजसि) विराजते हो ।

(३) हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (उक्थिनः) ज्ञानी लोग (अद्य चित्) आज तक भी (पूर्वथा) पहले के समान ही (ते) तेरी (अनु ष्टुवन्ति) निरन्तर स्तुति करते हैं । तू (वृष-पत्नीः) भीतरी आनन्दरस वर्षण करने हारे इन्द्र के सामर्थ्यों का पालन करने हारी (अपः) शक्तियों और बुद्धियों को (दिवे-दिवे) प्रतिदिन, नित्य (जय) विजय कर, उन पर वश कर ।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[८८३] श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ १ ॥
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
[८८४] यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम ॥ २ ॥
१ २ २ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ क
[८८५] तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थ्यानि वावृधुः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥ १९ ॥

ऋ० ८ । ९५ । ४-६ ॥

आ०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३४६] पृ० १८१ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे इन्द्र ! (यः) जो (ते) तेरे लिये (नवीयसीम्) अति सुन्दर, अति स्तुति करने हारी (मन्द्रां) गम्भीर (गिरं) वाणी को (अजीजनत्) प्रकट करता है उस ज्ञानी, मननशील पुरुष को तू (ऋतस्य) सत्यज्ञान को (पिप्युषीम्) पुष्ट करनेहारी (प्रत्नां) अति प्राचीन (चिकित्वन्मनसं) ज्ञानशील मन से संयुक्त (धियं) बुद्धि या धारणा शक्ति को [पूर्धि] प्रदान करता है ।

(३) (तं) उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यशील परमात्मा को (उ) ही हम नित्य (स्तवाम) स्तुति करें (यं) जिसकी (गिरः) वेदवाणियां और (उक्थानि) उपदेश युक्त वचन, उपनिषद् आदि गुरु जनों के वचन (वावृधुः) सदा महिमा बढ़ाते हैं । हम अल्पशक्ति जीव (अस्य) उस परमात्मा के (पुरूणि) नाना प्रकार के (पौंस्या) बल से किये जाने वाले विश्वसर्जन, धारण और प्रलय आदि पौरुष कर्मों को, या बलयुक्त नाना ऐश्वर्यों को (सिषासन्तः) नाना प्रकार से उपयोग और सेवन करते हुए (वनामहे) उसकी स्तुति या भजन करते हैं ।

इति ४४: खण्डः ।

इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ।

इति द्वितीयः प्रपाठकः समाप्तः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ तृतीयः प्रपाठकः (प्रथमोऽर्धः) ।

ऋषिः—१ आकृष्टा माषाः । २ अमहीयुराङ्गिरसः । ३ मेध्यातिथिः काण्वः । ४, १२ बृहस्पतिराङ्गिरसः । ५ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निः । ६ सुतंभर आत्रेयः । ७ गृत्समदः शौनकः । ८, २१ गोतमो राहूगणः । ९, १३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १० दृढच्युत आगस्त्यः । ११ सप्तर्षयः । १४ रेभः काश्यपः । १५ पुरुहन्मा आङ्गिरसः । १६ असितः काश्यपो देवलो वा । १७ (१)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तिर्वासिष्ठः (२) उरुराङ्गिरसः । १८ अग्निश्चाक्षुषः । १९ प्रतर्दनो दैवोदासिः । २० प्रयोगो भार्गव, अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः, अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः ॥ देवता—१—५, १०—१२, १६—१८ पवमानः सोमः । ६, २० अग्निः । ७ मित्रावरुणौ । ८, १३—१५, २१ इन्द्रः । ९ इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१, ६ जगती । २—५, ७—१०, १२, १६, २० गायत्री । ११, १५ प्रागाथम् (बृहती सतोबृहती च) । १३ विराट् । १४ (१) अतिजगती (२, ३) उपरिष्टात् बृहती । १७ प्रागाथं विषमा ककुप्, सतोबृहती । १८ उष्णिक् । १९ त्रिष्टुप् । २१ अनुष्टुप् ॥

[८८६] प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि । प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥ १ ॥

[८८७] उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः । यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ॥ २ ॥

[८८८] विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि यन्ति केतवः । व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ३ ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ८६ । ४, ६, ५ ॥

भा०—(१) हे (पवमान) परमपावन व्यापक परमात्मन् ! (ते) तेरी (आश्विनीः) सर्वत्र व्यापक, (दिव्याः) दिव्यगुणयुक्त, (स्थाविरीः) निरन्तर

(१) 'पवमान धाजुवा', 'प्रान्तऋषयः स्थावरीरसृक्षत' इति ऋ० ।

३. 'व्यानशिः' 'धर्मभिः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिर रहने वाली, (धेनवः) सबको आनन्दरस का पान कराकर तृप्त करने वाली शक्तियां (पयसा) ज्ञान, बल और आनन्दरस एवं जल के द्वारा (धरीमणि) धारण करने हारे आत्मा या अन्तरिक्ष में (प्र-असृग्रन्) उत्तमरूप से प्रकट होती हैं। हे (ऋषिपाण) ऋषियों, मन्त्रद्रष्टा ज्ञानी पुरुषों द्वारा भजन करने योग्य आत्मन्! परमात्मन्! (ये) जो (वेधसः) विद्वान् पुरुष (त्वा मृजन्ति) तेरे शुद्ध रूप को साक्षात् करते हैं (ते) वे (स्थाविरीः) स्थिर कूटस्थ धारारूप धारणाओं को (अन्तरिक्षात्) अपने अन्तःकरण रूप भीतरी साक्षात् करने वाले साधन, मन या अन्तःकरण से (प्र असृक्षत) तेरा ज्ञान सम्पादन करते, तेरी साधना करते हैं, निदिध्यासन करते हैं। आत्मपक्ष में—ऋषि = इन्द्रियगण।

(२) (पवमानस्य) समस्त संसार में व्यापक, सबको गति देने हारे, परमेश्वर के (केतवः) ज्ञान कराने वाले (रश्मयः) किरण (ध्रुवस्य सतः) सत्स्वरूप उस कूटस्थ ब्रह्म के (उभयतः) जड़ और जंगम दोनों प्रकार के संसार के प्रति (परि यन्त) व्याप्त होरहे हैं। (यद् ई) जब भी (हरिः) समस्त संसार को गति देने और समस्त दुःखों को हरने हारा ईश्वर (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (अधि-मृज्यते) विवेक द्वारा साक्षात् किया जाता है तब (सत्ता) हृदयों में सत्यस्वरूप होकर विराजमान वह (कलशेषु) सब शरीरों में भी विद्यमान (योनौ) उनके मूल आश्रय, अन्तरात्मा में घुसकर (सीदति) विराजता है।

(३) हे (विश्व-चक्षः) समस्त संसार को देखने वाले परमात्मन्! (सोम) सबके उत्पादक! (सतः) सत्यस्वरूप, महान् (प्रभोः) सर्व शक्तिमान्, (ते) आपके (केतवः) सूर्य के किरणों के समान महिमा को जतलाने वाले चिह्न और ज्ञापक शक्तियां (विश्वा) समस्त (धामानि) लोकों में (परि यन्ति) फैली हुई हैं। और आप (वि-आनशी) सर्वव्यापक (विश्वस्य भुवनस्य पतिः) समस्त संसार के स्वामी (धर्मणा) अपने धारण करने हारे बल से सर्वत्र व्यापक हैं और सबसे ऊपर विराजमान हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
[८८९] पवमानो अजीजनद् दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
१ २ ३ २ ३ २
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १
[८९०] पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः ।
२उ ३ १ २
वि वारमव्यमर्षति ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[८९१] पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् ।
२ ३ २ ३ २र ३ २
ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥३॥२॥ ऋ० ९ । ६१ । १६–१८ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४८४] पृ० २४४ ।

(२) हे (पवमान) सर्वव्यापक ! परमपावन परमेश्वर ! (तव) तेरा (रसः) रस, आनन्दमय (मदः) हर्षकारक (अदुच्छुनः) दुष्ट कुत्ते के समान भोग तृष्णावाली इन्द्रियों के स्पर्श से दूर, अथवा पागल कुत्ते के समान दुःखदायी काम, क्रोध आदि भीतरी शत्रुओं से रहित होकर (अव्यं) आत्मा के (वारं) वरण करने योग्य स्वरूप को (वि अर्षति) व्याप लेता है ।

(३) (पवमानस्य) अन्तःकरण को पवित्र करने हारे या प्रकाशित करने हारे (ते) तेरा (रसः) आनन्दरस (दक्षः) ज्ञान और बल रूप (द्यु-मान्) कान्तिमय होकर (विराजते) विशेष रूप से चमकता है । और वह (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप (विश्वम्) समस्त (स्वः) सुखों को (दृशे) प्रकाशित कर दर्शाने हारा है ।

२उ ३ १ २३ ३ २ ३ २ ३ १ २
[८९२] प्र यद् गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
१ २ ३ २क ३ १ २
अन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
[८९३] सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३२
साह्याम दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥

२. 'पवमानस्य ते रसो' ३. 'पवमानरसस्तव' इति पादयोर्व्यत्ययः, ऋ०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
[८९४] शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
१ २ ३ १ २ ३ २
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[८९५] आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
१ २ ३ १ २
अश्ववत् सोम वीरवत् ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २र
[८९६] पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[८९७] परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
सरा रसेव विष्टपम् ॥६॥३॥ ऋ० ९ । ४१ । १—६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४९१] पृ० २४८ ।

(२) (सुवितस्य) सब संसार को उत्तम रूप से शासन करने हारे, सबके प्रेरक परमात्मा की (मनामहे) हम शरण में जाते और ध्यान करते हैं जिससे (सेतुम् अति) मर्यादा और सामाजिक बन्धन व्यवस्था को तोड़ने हारे, (दुराध्यम्) कष्टसाध्य, बेकाबू, दुर्दान्त (अव्रतम्) कर्तव्य कर्मों से गिरे हुए, निकम्मे (दस्युम्) प्रजा के विनाशक, डाकू आदि अपराधी या आत्मा के नाशक काम, क्रोध आदि को (सासह्याम) हम विजय करें ।

(३) जैसे (दिवि) आकाश में (विद्युतः) विजुलियां (चरन्ति) गति करती हैं उसी प्रकार जब आत्मा की या ब्रह्मानन्दरस की (विद्युतः) विशेष कान्तियां, दीप्तियां, (दिवि) समस्त संसार में या मूर्धारूप ब्रह्माण्ड में (चरन्ति) वेग से गति करती हैं तब (शुष्मिणः) अति बलवान् (पवमानस्य) अन्तःकरण को पवित्र करने हारे और आनन्द का

८९५—'मनामहे', 'दुराध्यं', 'साह्वांसो' 'अश्ववद् वाजवत्सुतः' इति ऋ० ।
८९६—'स पवस्व विचर्षण' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षण करने हारे व्यापक ब्रह्म का (स्वनः) घोष (वृष्टेः) मेघ के समान (शृण्वे) सुनता हूं। धर्ममेघ समाधि के अवसर में अनाहत आत्मरूप पर्जन्य-ध्वनि का यह वर्णन है।

(४) हे (सोम !) परमात्मन् ! (इन्दो) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! आप हमें (गोमत्) गौओं, वाणियों और इन्द्रियों से सम्पन्न (अश्ववत्) घोड़ों और प्राणों और वेगवान् साधनों से युक्त (वीरवत्) पुत्रादि वीर पुरुषों से युक्त और (हिरण्यवत्) सुवर्णादि से युक्त, उत्तम, तेजस्वी, हितकारी, मनोहर (इषं) अन्न, प्रबल इच्छा शक्ति और शासन आदि ऐश्वर्य और (महीस्) बड़ी प्रसिद्धि को (आ पवस्व) प्राप्त कराओ।

(५) हे (विश्व-चर्षणे) समस्त संसार को देखने हारे परमात्मन् ! (रश्मिभिः) किरणों से (सूर्यः न) जिस प्रकार सूर्य (उषाः) उषाओं को और (मही रोदसी) बड़े भारी आकाश और पृथिवी दोनों को तेज से पूर्ण करता है उसी प्रकार आप भी उनको (आ पृण) पूर्ण करते और पालन करते हो। आप हमारे प्रति (पवस्व) अपनी कृपा दर्शाइये।

(६) हे (सोम) सर्वोत्पादक प्रभो ! (स्रुत्या इव) जिस प्रकार जल से पूर्ण नदी (विष्टपम्) मैदान में बहती है, उसी प्रकार आप भी (शर्म-यन्त्या) सुख देने हारी (धारया) अपनी धारणा, समर्थ शक्ति या आनन्दरस की धारा से (विश्वतः) सब ओर से (नः) हमारे प्रति (परि सर) प्राप्त होइये।

इति प्रथमः खण्डः।

---

३ १ २   ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[८९८] आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
यत्र देवा इति ब्रुवन् ॥ १ ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[८९९] परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।
३ २ ३ १ २र
वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २उ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २
[६००] अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ।
१ २ ३ १र २र
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[६०१] सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा।
३ १ २ ३ १ २
विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ४ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[६०२] आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः।
१ २ ३ १ २
इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[६०३] समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥६॥४॥ ऋ० ६। ३६। १-६ ॥

भा०—(१) हे (बृहन्मते) महान् ज्ञानसम्पन्न महती बुद्धि से युक्त परमात्मन्! आप (आशुः) सर्वत्र व्यापक होकर (प्रियेण) अतिमनोहर, श्रेष्ठ (धाम्ना) धारणशील तेज से (परि अर्ष) व्याप्त हो रहे हैं। (यत्र देवाः) जहां विद्वान्गण या दिव्यगुण से युक्त पृथ्वी, जल, वायु आदि पदार्थ हैं वहां आप भी व्यापक हैं, वे आप से भिन्न वा पृथक् सत्ता परिस्थिति, वा बल नहीं रखते। (इति) इस प्रकार आप (ब्रुवन्) उपदेश करते हैं।

(२) हे (सोम) परमात्मन्! (अनिष्कृतम्) संस्कार या परिष्कार से रहित स्थान, गर्भाशय या भूमि को (जनाय) जन्तुओं के उत्पत्ति के लिये (परिष्कृण्वन्) संस्कृत, स्वच्छ, परिष्कृत करते हुए (इषः) मनोकामनाओं, पुष्टिकारक पदार्थों वा ओषधियों और अन्नों को (यातयन्) वहां स्वयं उत्पन्न करते हुए आप (दिवः) सूर्यलोक, आकाश या पुरुष दोनों पक्षों से (वृष्टिं) जलवर्षण, बीजवपन आदि क्रिया के कार्य को (परि स्रव) करवाते हैं। समष्टि और व्यष्टि रूप से सृष्टि की उत्पत्ति समान रूप से वर्णित है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) (यः) जो सोम (दिवः परि) सूर्य में (रघु-यामा) हलका सूक्ष्म रूप होकर विचरता है (सः) वह (पवित्रे) मलादि दोष रहित, (सिन्धोः) स्रवण करने हारे जल के (ऊर्मा) संघात रूप में (पवित्रे) पवित्र, शोधन किये स्वच्छ रूप में (वि क्षरत्) नाना प्रकार से क्षरित होता है।

(४) (सुतः) सबका प्रेरक वह सोम, सर्वोत्पादक (ओजसा) अपने सामर्थ्य से (पवित्रे) स्वच्छ मलरहित स्थान में (त्विषिम्) कान्ति को (दधानः) धारण करता हुआ (विरोचयन्) विविध पदार्थों, तत्वों, शक्तियों, गुणों को प्रकाशित करता हुआ और (विचक्षाणः) समस्त पदार्थों को देखता और दिखाता हुआ अति (आ एति) सर्वत्र व्यापक है।

(५) (सुतः) वह सबका प्रेरक, शुक्रवत् सर्वोत्पादक (परावतः) दूर के (अथो) और (अर्वावतः) समीप के लोकों को (आविवासन्) प्रकाशित करता है। (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त सृष्टि या आत्मा जन्म के निमित्त (मधु) आनन्दकारी, मधु वर्ण शुक्र के तुल्य ही मधुर ज्ञानरूप से (सिच्यते) सेचन किया जाता है।

(६) (समीचीनाः) उत्तम उद्देश्य से एकत्र हुए विद्वान् लोग (हरिं) सर्वव्यापक परमात्मा को (अद्रिभिः) दृढ़ साधनों द्वारा (हिन्वन्ति) साक्षात् करते हैं, और (इन्द्राय) अपने आत्मा के (पीतये) ज्ञान और आनन्दरस के पान कराने के लिये (इन्दुम्) हृदय में कान्ति रूप से द्रवित होने वाले आनन्दरस की (अनूषत) स्तुति करते हैं।

[१०४] हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम्।
महामिन्दुं महीयुवः ॥ १॥

[१०५] पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः।
विश्वा वसून्या विश ॥ २॥

१०४—(२) 'देव देवेभ्यस्परि' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[९०६] आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।
३ १ २ ३ १ २
इषे पवस्व संयतम् ॥ ३ ॥ ५ ॥ ऋ० ६ । ६५ । १–३ ॥

(१) (उस्रयः) गतिशील, (स्व-सारः) स्वयं सरण या गमन करने वाली (जामयः) भार्याओं या भगिनियों के समान ये इन्द्रियां या प्रजागण (महीयुवः) महत्व की आकांक्षा करती हुई (महीम्) पूजनीय (इन्दुं) आह्लादक उस आनन्दमय (सूरं) प्रेरक और उत्पादक (पतिं) पति के समान पालक को (हिन्वन्ति) स्तुति करती और प्राप्त होती हैं ।

(२) हे (पवमान) सर्वव्यापक, परमपावन परमात्मन् ! (देवेभ्यः) विद्वानों के निमित्त (सुनः) प्रकट होकर आप (विश्वा) समस्त (वसूनि) आवास-योग्य लोकों में रुचा-रुचा अति रोचक कान्ति से (आ विश) व्यापक हैं ।

(३) हे (पवमान) परमपावन, सर्वव्यापक ! (देवेभ्यः) दिव्य-गुण-सम्पन्न विद्वानों की (दुवः) प्रार्थना, उपासना और कामनाओं को पूर्ण करने के लिये (सु-स्तुतिं) उत्तम प्रशंसा योग्य स्तुतिरूप वेदवाणी और (इषे) अन्नादि पदार्थों के लिये (वृष्टिं) आनन्दरस की वृष्टि को (संयतम्) नियमपूर्वक (आ पवस्व) प्रदान कीजिये । अर्थात हे परमेश्वर ! विद्वान् पुरुषों के सुख के लिये अन्नों के लिये नियमपूर्वक वृष्टि और भजन और उपासना के लिये उत्तम स्तुति रूप वेदवाणी प्रदान करें ।

इति द्वितीयः खण्डः ।

---

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
[९०७] जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
नव्यसे । घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद् वि भाति
३ २ ३ १ २
भरतेभ्यः शुचिः ॥ १ ॥
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २र
[९०८] त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वने-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वने । स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २ ॥

[९०६] यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते । इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन् नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥ ३ ॥ ६ ॥ ऋ० ५ । ११ । १, ६, २ ॥

भा०—(१) (जनस्य गोपाः) समस्त जनों और जन्तुओं का रक्षक, (जागृविः) सदा जगरणशील, कभी आलस्य न करने वाला (सु-दक्षः) उत्तम बल से सम्पन्न, (घृत-प्रतीकः) घृत, दीप्ति विशेष, ओजस्विता से सर्वत्र पहिचानने योग्य, (शुचिः) शुद्ध, स्वच्छ अन्तःकरण वाला, निष्कपट (अग्निः) नेता के समान सबके आगे चलने वाला, आचार्यस्वरूप, अग्नि के समान तेजस्वी नायक, परम पुरुष, सबके (नव्यसे) नये २ अपूर्व (सुविताय) कल्याण के लिये (अजनिष्ट) प्रकट होता है। और वही (बृहता) बड़े भारी (दिवि-स्पृशा) आकाश को स्पर्श करने वाले सूर्य-समान तेज से (भरतेभ्यः) भरण पोषण करने हारे विद्वान् पुरुषों के लिये (द्युमत्) ज्ञानमय प्रकाशस्वरूप होकर (वि भाति) विशेष रूप से शोभा देता है। अग्नि और सूर्य के दृष्टान्त से विद्वान् और ईश्वर का वर्णन किया गया है।

(२) हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (वने-वने) जिस प्रकार जंगल २ में, या काष्ठ २ में आग गुप्तरूप से रहती है उसी प्रकार जीव जीव में (शिश्रियाणं) व्यापक (गुहा-हितं) हृदय में छुपे हुए (त्वां) तुझको (अंगिरसः) ज्ञानी लोग प्रत्येक पदार्थ में (अनु अविन्दन्) खोज करते और प्राप्त करते हैं। (सः) वह आप (सहः) सर्वशक्तिमान् (मथ्यमानः) हृदयदेश में पुनः प्रत्याहरण या मनन

९०९—'समीधिरे' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने योग्य, (महत्) महान् हैं। हे (अंगिरः) ज्ञानस्वरूप ! (त्वां) आपको (सहसस्पुत्रं) योगशक्ति, या योगबल से पुरुष की पापों से रक्षा करने हारा (आहुः) कहते हैं। आत्मा, विद्वान्, परमात्मा और अग्नि चारों पक्षों में स्पष्ट है।

(३) (नरः) विद्वान् लोग (यज्ञस्य) देवपूजा एवं संगति आदि धर्मकार्य के (केतुं) बतलाने वाले, (प्रथमं पुरोहितं) सब से प्रथम, साक्षीरूप से स्थिर परमेश्वर को (त्रि-सधस्थे) तीन प्राणों के एकत्र होने के प्रदेश, त्रिपुटी में (सम्-इन्धते) प्रज्वलित करते हैं। (सः) वह (बर्हिषि) इस जीवन यज्ञसे सम्पन्न, बराबर वृद्धि को प्राप्त, ज्ञान और जीवन रूप यज्ञ में (इन्द्रेण) इस आत्मा और (देवैः) इन्द्रियों के साथ (होता) सबको अपनी ओर बुला लेने हारा, सब सुखों का दाता (सु-क्रतुः) उत्तम प्रज्ञान और कर्म करने हारा, सबका रचयिता परमात्मा (यजथाय) यज्ञ सम्पादन या आनन्द प्रदान करने के लिये (स-रथं) समान रूप से रमण करने योग्य हृदय-देश में (नि सीदन्) विराजमान होता है। आधिदैविक पक्ष में—इन्द्र = महान् विद्युत् और देव = अन्य पंचभूत और बर्हिः = अन्तरिक्ष, यजथ = ब्रह्माण्ड-रूप यज्ञ।

३ १ २ ३ १र २र
[९१०] अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा।
२र ३ १ २ ३ १ २
ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ १ ॥
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
[९११] राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे।
३ १ २
सहस्रस्थूण आशाते ॥ २ ॥
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[९१२] ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती।
१ २ ३ १ २
सचेते अनवह्वरम् ॥ ३ ॥ ७ ॥ ऋ० २।४१।४-६॥

भा०—(१) हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण, प्राण और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदान के समान अध्यापक और शिष्य ! (ऋत-वृधा) सत्य ज्ञान और जीवन को बढ़ाने वाले (वां) आप दोनों के लिये (अयं) यह (सोमः) ओषधियों का रस, या जीवन का रस, या ज्ञान (सुतः) तैयार है। (मम इव) मेरा ही (हवं) आह्वान, आदेश (श्रुतम्) आप लोग श्रवण करो।

जिस प्रकार प्राण और उदान सब रस ग्रहण करके जीवन को बढ़ाते हैं, उसी प्रकार सत्यज्ञान के वर्धक अध्यापक और शिष्य भी ज्ञान का रस लेते हैं। उनके प्रति सब लोग अपना प्रेम प्रकट करें।

(२) हे मित्र और वरुण ! प्राण और अपान आप दोनों (राजानौ) इस शरीर के राजा, (अनभिद्रुहा) परस्पर द्रोह न करने हारे (उत्तमे) उत्कृष्ट (ध्रुवे) नित्य (सहस्रस्थूणे) सहस्रों स्तम्भों के समान सत्कर्मों के आश्रय विराजमान (सदसि) भवनरूप, सत्यरूप, सर्वाश्रय आत्मा में (आशाते) उपविष्ट हों। प्राण और उदान, अध्यापक और शिष्य, राजा और राजमन्त्री ब्रह्म और जीव तथा जीव और मन सबका वर्णन समान है।

(३) (तौ) वे दोनों (घृतासुती) प्रदीप्त तेज को उत्पन्न करनेहारे, (आदित्या) आदित्य के समान प्रकाशमान, अखण्डित, (दानुनः पती) धनों के स्वामी (सम्राजा) सम्राट् के समान तेजस्वी मित्र और वरुण, प्राण और उदान (अनवह्वरं) सरल, कपटादि रहित होकर (सचेते) परस्पर मिलकर कार्य करते हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
[९१३] इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
३ १ २ ३ १र २र
जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥
३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[९१४] इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपाश्रितम् ।
१ २ ३ १ २
तद्विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥
२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
[९१५] अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
२ ३ ३ १ २ ३ २
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥८॥ ऋ० १ । ८४ । १३-१५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१७९] पृ० ९६ ।

(२) (पर्वतेषु) पोरुओं वाले मेरुदण्ड के मोहरों में (अपश्रितं) स्थित (अश्वस्य) शरीर में व्यापक, आत्मा का (यत्) जो (शिरः) मुख्य अंश है उसको (इच्छन्) चाहता हुआ इन्द्र, आत्मा (शर्यणावति) हृदय–देश में (तद्) उसको (विदद्) प्राप्त करता है ।

मधुविद्या या ब्रह्मविद्या का उपदेश करने वाला दधीचि का शिर अश्वियों ने काट दिया, वह शर्यणावत् तालाब में पड़ा था । उसको इन्द्र ने अपना वज्र बनाने के निमित्त उसी स्थान पर पाया । ऐसी कथा प्रसिद्ध है । इस अलंकार में ध्यान धारणा से सम्पन्न योगी आत्मा 'दधीचि' है । उसका ब्रह्मज्ञानोपदेशक शिरोभाग जो प्राण और उदान को ठीक गति का शिक्षण करता है मस्तक भाग में है । काम, क्रोधादि पर वश करने वाला इन्द्र, आत्मा उसी चित् केन्द्र की खोज करता है जिसके प्राण और अपान वश में हैं । वह उसको मध्य मस्तक में पाता है और ८१० प्रकार की मनोवृत्तियों पर वश करता है । यह अलंकार है ।

(३) व्याख्या देखो अवि० सं० [१४७] पृ० ८१ ।

३१ २३१ २र३१२ ३१२
[९१६] इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः ।
३२३ १२
अभ्राद् वृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥

३१ २३२उ ३१२ ३१२३१२
[९१७] शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः ।
३ १२ ३१२
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

१ २३१२ ३१ ३३१ २र
[९१८] मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।
१ ३ ३२
मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥ ९ ॥ ऋ० ७ । ९४ । १-३ ॥

भा०—(१) हे (इन्द्राग्नी) सूर्य और अग्नि के सदृश गुरु शिष्य, ब्रह्म और जीव ! (वाम्) आप दोनों का (इयं) यह (पूर्व्यस्तुतिः) प्राचीन या पूर्ण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य गुण वर्णन (अस्य) इस (मन्मनः) मननशील विद्वान् पुरुष से (अभ्राद्) मेघ से (वृष्टिः इव) वर्षा के समान (अजनि) प्रकट होता है।

(२) हे (इन्द्राग्नी) गुरु शिष्य के समान ब्रह्म और जीव! (जरितुः) स्तुति करने हारे विद्वान् के (हवम्) आह्वान या स्तुति को तुम दोनों (शृणुतं) श्रवण करो। और (गिरः) वेदवाणियों को (वनतं) सेवन करो। आप दोनों (ईशाना) ऐश्वर्यवान् होते हुए (धियः) सब प्रकार के कर्मों को (पिप्यतं) पूर्ण करते और सफल करते हो।

(३) हे (नरा) नेताओ! (इन्द्राग्नी) गुरु, शिष्य! या अध्यापक उपदेशक! या परमेश्वर और आचार्य! सूर्य और अग्नि के समान ब्रह्म और जीव! आप दोनों (नः) हमें (पापत्वाय) पापकार्य के लिये और (अभिशस्तये) पराधीनता या हिंसा कार्य के लिये और (निदे) निन्दा-जनक कार्य, या निन्दा करने के लिये भी (मा मा मा रीरधतं) कभी किसी के वश में नहीं होने दें।

इति तृतीयः खण्डः।

---

[९१९] पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥

[९२०] त्वं देवैः शोभते वृषा कवियोनावधि प्रियः।
पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥

[९२१] पवमान धिया हितोऽभियोनिं कनिक्रदत्।
धर्मणा वायुमारुहः ॥ ३ ॥ १० ॥ ऋ० ९।२५।१,२,२ ॥

९१९—'वृत्रहा देववीतये' इति ऋ०।

९२१—'वायुमाविशः' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४७४] पृ० २४१।

(२) (वृषा) सब सुखों का वर्षण करने वाला, (पवमानः) सब को ज्ञानदान से पवित्र करने हारा, सर्व प्रेरक, सर्व व्यापक (अदाभ्यः) किसी से हिंसा न करने योग्य, (प्रियः) सबको प्रिय, सबको पूर्ण, प्रसन्न और सुखी करने हारा (कविः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी, मेधावी (योनौ अधि) अपने आश्रय में ही (देवैः) अन्य विद्वानों, या सहचर इन्द्रियगणों, या वायु आदि देवों के साथ (सं शोभते) शोभा देता है।

राजा, योगी आत्मा, परमात्मा सब के पक्ष में समान है।

(३) हे (पवमान) आत्मन् ! (धिया) ध्यान के बल से (अभि-योनिं अपने मूलस्थान, आश्रय, हृदयदेश में (हितः) स्थिर होकर (कनिक्रदत्) मेघवत् अनाहत नाद या ईश्वर की स्तुति करता हुआ (घर्मणा) अपने धारक प्रयत्न द्वारा (वायुम्) प्राणवायु पर (आ अरुहः) वश कर।

[९२२] तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि ॥१॥

[९२३] तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२॥११॥

ऋ० ९। १०७। १९–२०॥

(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५१६] पृ० २५८।

(२) हे (सोम) परमात्मन् ! हे (बभ्रो) समस्त संसार के भरण पोषण करने हारे परमेश्वर ! (नक्तं) रात में (तव) तेरे (उत) और (दिवा) दिन में भी (ते) तेरे ही (ऊधनि) रसमय कोश में (अहं) मैं (दुहानः) रस प्राप्त करता हुआ (ऊधनि शकुना इव)

९२२—'सख्याय बभ्र' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उषाकाल के अवसर में पक्षियों या रश्मियों के समान हम (घृणा) दीप्ति से (तपन्तं) जाज्वल्यमान (सूर्यम्) सूर्य के समान सर्वाधार (परः) जगत् से परे, परमदेव आपको देखकर (अति पप्तिम) कर्मबन्धन को पार करके मोक्ष को प्राप्त हो जाय ।

[९२४] पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥

[९२५] आ योनिमरुणो रुहद् गमदिन्द्रो वृषा सुतम् ।
ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥

[९२६] नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ १२ ॥

ऋ० ९ । ४० । १–३ ॥

(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४८८] पृ० २४६ ।

(२) (अरुणः) अरुणवर्ण, कान्तिमान्, सोम (योनिम्) मूलस्थान, हृदय-देश में (आ रुहद्) प्रकट होता है और (वृषा) सुखों का वर्षक (इन्द्रः) आत्मा (सुतम्) आनन्दस्वरूप में प्रकट हुए उसके प्रति (गमद्) जाता है, उसकी ओर झुकता है । वह आनन्दस्वरूप परमात्मा मेरे (ध्रुवे) स्थिर (सदसि) आश्रयस्थान, आत्मा में (सीदतु) सदा विराजमान हो ।

(३) हे (इन्दो) सोम ! (अस्मभ्यं) हमारे लिये (सहस्रिणं) सब सुखों से युक्त (महां) विशाल (रयिम्) ऐश्वर्य को (विश्वतः) सब ओर से (नः आ पवस्व नु) अवश्य प्राप्त करावे ।

इति चतुर्थः खण्डः ।

९२४—'गमदिन्द्र वृषा सुतः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[९२७] पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥

[९२८] यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

[९२९] बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् । इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥ १३ ॥

ऋ० ७ । २२ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० (३९८) पृ० २०५ ।

(२) हे (हर्यश्व) हरणशील, अश्वरूप इन्द्रियों और मन से युक्त आत्मन् ! (यः) जो (ते) तेरा (युज्यः) योग्य समाधि से उत्पन्न होने वाला (मदः) आनन्द (चारुः) मनोहर, उपभोग करने योग्य (अस्ति) है और (येन) जिसके बल पर तू (वृत्राणि) आवरणकारी विघ्नों, काम, क्रोध आदि शत्रुओं और अज्ञानों, जगत् के प्रलोभनों को (हंसि) विनाश करता है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! हे (प्रभूवसो) समस्त प्राणियों में बसने हारे ! (सः) वह (त्वा) तुझको (ममत्तु) आनन्दित करे ।

(३) हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (वसिष्ठः) वसिष्ठस्वरूप, इन्द्रिय या मुख्य प्राण, या विद्वान् पुरुष (यां) जिस (प्रशस्तिं) उत्तम गुण वर्णन करने वाली (वाचं) वाणी को (अर्चति) प्रकट करता है (इमां) इस (मे) मेरी वाणी को (सु बोध) तू उत्तम रूप से ज्ञान कर । और (इमा) इन (ब्रह्म) वेदमन्त्रों को (सध-मादे) एकत्र हर्ष प्राप्त करने के स्थान, यज्ञ आदि, अथवा त्रिपुटी या हृदयदेश में (जुषस्व) सेवन कर, उनका मनन कर ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ १२३१२ ३ १ २ ३ २ ३१२
[९३०] विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च
३ १२ २३ १३ ३२ ३१२३१ २र ३१२
राजसे । क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं
३ १२
तरस्विनम् ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ ३ ३१ २र ३२
[९३१] नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
३ १ २ ३२उ ३ १२ ३ २३ १ २उ
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥२

१ २ ३ १ २ ३२३ १२ ३१२
[९३२] समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
२र ३१२ ३२ ३१२३ १२३ २३१२
स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः
॥ ३ ॥ १४ ॥ ऋ० ८ । ६७ । १०, १२, ११ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखिये अवि० सं० [३७०] पृ० १९२ ।

(२) (विप्राः) मेधावी, ज्ञानी लोग (चक्षसा) अपने दर्शन कराने हारे आलोक से साक्षात् करके (अभिस्वरे) गायन में (नेमिं) नमन करने हारे (मेषं) सूर्य या मेघ के समान सुखों के वर्षा ने वाले उस परमात्मा को ही (नमन्ति) नमस्कार करते हैं । (वः) आप लोग भी (सुदीतयः) उत्तम कान्तिसम्पन्न और (अद्रुहः) परस्पर द्रोह न करते हुए (अपि) और (तरस्विनः) शीघ्र कार्य सम्पादक होकर (ऋक्वभिः) वेदमन्त्रों से (कर्णे) प्रत्येक कार्य में अथवा कर्ण द्वारा उस प्रभु के यथार्थ रूप को गुरु उपदेश द्वारा श्रवण करके उसी को (सं नमन्ति) भली प्रकार नमस्कार करते हैं ।

(३) (रेभासः) स्तुति करने हारे, गायक, विद्वान् लोग (सोमस्य) आनन्दरूप सोमरस के (पीतये) पान करने के लिये (इन्द्रम् उ) इस आत्मा को लक्ष्य करके ही (सम् अस्वरन्) एकत्र होकर गान करते हैं । (यद् ई) और जब (धृतव्रतः) सब को धारण करने वाला आत्मा (वृधे) बढ़ता है, शक्तिशाली और उन्नत होता है तब ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह (ओजसा) अपने तेज से (ऊतिभिः) अपने बलशील, प्राणों सहित (सं) एक साथ वृद्धि को प्राप्त होता है।

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[९३३] यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
१ २ ३ १ २र ३र २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१॥
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[९३४] इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्त्तरि ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २र
हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो महां देवो न सूर्यः ॥२॥
॥१५॥ ऋ० ८ । ७० । १, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखिये अवि० सं० [२७२] पृ० १३९ ।

(२) हे (पुरुहन्मन्) इन्द्रियों को वश करने हारे आत्मन् ! (तं) उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यशील परमेश्वर को (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (शुम्भ) पुकार, स्मरण कर (यस्य) जिस तेरे अपने (वि-धर्त्तरि) विविध प्रकार से पालक पोषक परमेश्वर में (द्विता) स्वामी सेवक, भक्त भगवान् का सा भेद है और जिसने (हस्तेन) हाथ से खड्ग के समान अज्ञानान्धकार और दुःखों का नाशक (वज्रः) ज्ञानमय और कर्म फल अवस्था रूप वज्र (प्रति धायि) नित्य धारण किया है, वह (दर्शतः) दर्शनीय (महां) महान्, (देवः) सब सुखों, ज्ञानों, ऐश्वर्यों का दाता, (सूर्यं नः) सूर्य के समान सब ज्ञानों का प्रकाशक सब अनादि सम्पदाओं का उत्पादक और प्रेरक है।

इति पञ्चमः खण्डः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २
[९३५] परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।
३ १ २ ३ १ २
स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १ ॥

९३३—१. 'हस्तेन', 'महो दिवे न' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[९३६] स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
महान् मही ऋतावृधा ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[९३७] प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः ।
३क २र ३ १ २
वीत्यर्षं पनिष्टये ॥ ३ ॥ १६ ॥ ऋ० ६ । ६ । १, ३, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४७६] पृ० २४१ ।

(२) (सः) वह सर्वोत्पादक परमेश्वर (सूनुः) पुत्र के समान हर्ष का सञ्चारक, समस्त ऐश्वर्यों का देने वाला, सब लोकों का प्रेरक (जातः) होकर (शुचिः) स्वच्छ, कान्तिमान् (महान्) यशस्वी है । वह (जाते) प्रसिद्ध हुए (ऋतावृधा) सत्य ज्ञान और जीवन को बढ़ाने वाले (मातरा) मा बाप दोनों को पुत्र के समान, (मही) महान् विस्तृत, पूज्य सर्व सुखप्रद आकाश और पृथिवी को, गुरु-शिष्य और स्त्री पुरुष, राजा और प्रजा दोनों को राजा के तुल्य एवं माता पिता को पुत्र के समान (अरोचयत्) उज्ज्वल करता है ।

(३) (पन्यसे) व्यवहार या स्तुति करने हारे (जनाय) पुरुष के लिये (जुष्टः) प्रेम से सेवन करने योग्य (अद्रुहः) द्रोह से रहित, हे परमेश्वर ! आप (क्षयाय) निवास और ऐश्वर्य, (पनिष्टये) व्यवहारसिद्धि, स्तुति और (वीती) रक्षा और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए (प्र प्र) अच्छी २ प्रकार से बहुत उत्तम रीति से (अर्ष) हमें प्राप्त हो ।

२ ३क १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[९३८] त्वं ह्याङ्ग दैव्यः पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
३ १ २ ३ १ २
अमृतत्वाय घोषयन् ॥ १ ॥

९३७—३. 'अद्रुहं' 'चनिष्ठया' इति ऋ० ।
९३८—२. 'नवग्वो,' 'आनशुः' इति शत ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ ३ १ २ ३ २

[९३९] येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत

॥ २ ॥ १७ ॥ ऋ० ९ । १०८ । ३, ४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५८३] पृ० २९२ ।

(२) (नवग्वा) सदा अभिनव वेदवाणियों को प्राप्त करने वाला, नव शिक्षित (येन) जिस परमब्रह्म के द्वारा (दध्यङ्) विद्वान्, ध्यानवान् होकर (अप ऊर्णुते) ज्ञान प्रकट करता है। (येन) जिसके बल पर (विप्रासः) विद्वान् मेधावी जन वेदमन्त्रों के तत्त्व या परम पद को (आपिरे) पहुंचते हैं और (येन) जिसके बल पर (देवानां) विद्वान् दिव्यगुण सम्पन्न महात्माओं के (सुम्ने) सुखकारी यज्ञादि स्थानों में (चारुणः) उत्तम (अमृतस्य) आत्मा के (श्रवांसि) ज्ञान-रहस्यों को (आशत) अन्य विद्वान् लोग प्राप्त करते हैं हे परमेश्वर ! वही हमें आप अपनी कृपा प्राप्त कराओ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

[९४०] सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति।

१ २ ३ १ २र ३ १ २

अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

[९४१] धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम्।

३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २

अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

[९४२] असर्जि कलशां अभि मीढ्वान् त्सप्तिर्न वाजयुः।

३ १ २र ३ १ २

पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ ३ ॥ १८ ॥

ऋ० ९ । १०६ । १०-१२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५७२] पृ० २९४ ।

(२)(वने) शरीर में (क्रीडन्तं) नाना कर्म या क्रीड़ा, विनोद करते हुए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वाजिनं) अति बलवान्, ज्ञानी (अति अविम्) शरीरबन्धन को अतिक्रमण करके विराजमान, अतीन्द्रिय आत्मा को (धीभिः) धारणावाली बुद्धियों और उत्तम कर्मों द्वारा (मृजन्ति) परिशोधन करते, उसको स्वच्छ और समाहित करके और भी अधिक विवेक से सम्पन्न उसका साक्षात् दर्शन करते हैं। (मतयः) मननशील मुनि लोग (त्रिपृष्ठं) मन, वाक्, काय तीनों स्थानों पर विराजमान उस आत्मा को (अभि सम् अस्वरन्) साक्षात् गुण-स्तुति करते हैं।

(३) (मीढ्वान्) आनन्दघन, वह सोम (वाजयुः) संग्राम में जाने हारे (सप्तिः न) अश्व के समान (कलशान् अभि) सकल देहों में (असर्जि) प्रकट होता है। और (पुनानः) सब मलों को दूर करता हुआ (वाचम्) वाणी को (जनयन्) प्रकट करता हुआ (असिष्यदत्) द्रवित होता है।

[९४३] सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ १ ॥

[९४४] ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्। श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥२

[९४५] प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरस्तोमान्पवमानो मनीषाः। अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ३ ॥ १९ ॥ ऋ० ९ । ९६ । ५ । ६, ७ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५२०] पृ० २९५।
(२) (सोमः) सोम (देवानां) इन्द्रियों और विद्वानों के बीच में (ब्रह्मा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त विद्या के ज्ञाता के समान, (कवीनां) क्रान्तदर्शी तत्त्वज्ञानियों का (पदवीः) मार्गदर्शक, कवियों को पदार्थबोधक शक्ति युक्त ज्ञान प्रकाशक पदों का उपदेश करने वाला (विप्राणां) कर्मठ मेधावी पुरुषों में (ऋषिः) मन्त्रों के अर्थों का द्रष्टा, (मृगाणां) मृगों वा सिंहों के बीच में (महिषः) महिष के समान महान्, शक्तिशाली, बलवान्, (गृध्राणां) गृध्र आदि पक्षियों में (श्येनः) श्येन के समान, आकांक्षा शीलों में बलवान, प्रशंसनीय आचारणों वाला (वनानां) जंगल के वृक्षों के बीच (स्व-धितिः) कुठार के समान कर्मबन्धनों के नाश करने हारा, अथवा वन, अर्थात् सेवनीय विषयों में स्व, आत्मा भोक्ता की सत्ता को धारण करने वाला (सोमः) आत्मा (रेभॅन्) अनाहत नाद करता हुआ (अति एति) सब जालों को पार करके (पवित्रं) शुद्ध निर्मल ब्रह्म को प्राप्त होता है।

यास्काचार्य के मत से अध्यात्म पक्ष में—(ब्रह्मा देवानां) यह आत्मा देवनकर्मा, क्रीडाशील इन्द्रियों का ब्रह्मा अर्थात् साक्षी है (पदवीः कवीनां) चेतन के समान काम करने वाले पदार्थों का ज्ञान करने वाले इन्द्रियों के पद को जानने वाला है। (ऋषिः विप्राणां) व्यापनकर्मा इन्द्रियों को गति देने वाला है। (महिषः मृगाणाम्) विषयों को खोजने वाले इन्द्रियों में से सबसे बड़ा है। (श्येनः गृध्राणां) विषयाभिलाषी ज्ञानशील इन्द्रियों के बीच यह आत्मा स्वतः चेतन, ज्ञाता है। (स्वधितिः वनानां) विषयों के सेवने वाली इन्द्रियों के कर्मों को स्वयं अपने में धारण करता है। ऐसा सोम, आत्मा (पवित्रं) इन्द्रियों पर ही (रेभन्) स्वयं स्तुति किया जाकर (अति एति) उन द्वारा सब अनुभव करता, सबसे ऊपर विराजता है (निरु० प० अ० २ । १३)।

(३) (पवमानः) पवित्र, शुद्ध, ज्योतिर्मय आत्मा (मनीषाः) मन को प्रेरणाकरने वाली ज्ञान वृत्तियों को प्रेरणा करने वाला (सिन्धुः न) नदी के प्रवाह के समान (वाचः) वाणी के (ऊर्मिम्) तरंग को (प्रावीविपद्) प्रेरित करता है। और (गिरः) वाणियों या स्तुतियों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्तोमान्) समूहों को भी प्रकट करता है और स्वयं (अन्तः) भीतर की ओर (पश्यन्) देखता हुआ (गोषु) इन्द्रियरूप गौओं में (वृषभः इव) बैल के समान वीर्य या बल का सेचन करता हुआ, (अवराणि) न वरण करने योग्य, अर्थात् त्याग करने योग्य, अथवा अपने अधीन (इमा) इन (वृजना) वेगवती इन्द्रियों, वृत्तियों को (जानन्) ज्ञान वान् होकर अपने (आ तिष्ठति) वश करता है ।

इति षष्ठः खण्डः ।

---

[१४६] अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥

[१४७] अयं यथा न आभुवत् त्वष्टा रूपेव तक्ष्या ।
अस्य क्रत्वा यशस्वतः ।

[१४८] अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।
आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ३ ॥ २० ॥

ऋ० ८ । १०२ । ७—६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२१] पृ० १० ।

(२) (त्वष्टा इव) जिस प्रकार तरखान, शिल्पी (तक्ष्या) काट २ कर बनाने योग्य (रूपा) पदार्थों को बनाता है उसी प्रकार (यथा) यथावत् ठीक ठीक (अयं) यह (अग्निः) सबका अग्रणी, सबसे पूर्व विद्यमान ज्ञानवान् परमेश्वर भी (नः) हमारे लिये सब (रूपा) कान्तिमान् पदार्थों को (आभुवत्) बनाता है । हम लोग भी (यशस्वतः)

(३) (देवेषु) दिव्यगुणों से युक्त समस्त पदार्थों, लोकों और विद्वानों से (अयं) यह (अग्निः) ज्ञानवान् परमात्मा (विश्वाः) समस्त (श्रियः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मियों को (अभिपत्यते) प्राप्त है, वह उनसे सम्पन्न एवं उनका स्वामी है। वह (नः) हमारे पास (वाजैः) अन्नों, बलों, ज्ञानों और कर्मों और ऐश्वर्यों द्वारा (उप आगमत) हमें प्राप्त हो। उसके दिये अन्नादि भोग्य पदार्थ ज्ञान, कर्म सामर्थ्य, एवं महान् व्यापक ऐश्वर्य को देख कर ही उस परमेश्वर को हम हृदय में अनुभव कर सकते हैं।

[९४९] इमामिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥ १ ॥

[९५०] न किष्ट्वद् रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे।
नकिष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ॥ २ ॥

[९५१] इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ३ ॥ २१ ॥

ऋ० १। ८४। ४, ६, ५॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३४४] पृ० १७९।

(२) हे (इन्द्र) परमेश्वर! (यत्) क्योंकि तू संसार को चलाने हारे बलवान् अश्वों के समान (हरी) ज्ञान और शक्तिरूप बलों को (यच्छसे) नियम में रखता है अतः (त्वत्) तुझसे (रथीतरः) बड़ा रथका स्वामी या अधिक आनन्दरस और बलवाला (न किः) कोई दूसरा नहीं है। (मज्मना) बल के कारण भी (त्वा अनु) तेरे मुकाबले पर (न किः) कोई नहीं है और (सु-अश्वः) उत्तम व्यापन शक्ति से सम्पन्न या वेगवान् कोई पदार्थ भी (न किः आनशे) इस संसार में तुझसे बढ़कर और कोई व्यापक नहीं है।

(३) हे मनुष्यो! उस (इन्द्राय) ऐश्वर्यशील परमेश्वर की (नूनम् अर्चत) अवश्य ही उपासना करो और (उक्थानि च) सूक्तों, वेदमन्त्रों का भी (ब्रवीतन) उच्चारण किया करो। जिस के आश्रय में (सुताः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से समस्त संसार के उत्पन्न (इन्दवः) कान्तिमान्, दिव्यगुण सम्पन्न ऐश्वर्ययुक्त पदार्थ और उसके पुत्र तुल्य साधकगण (अमत्सुः) आनन्दलाभ करते व कर रहे हैं। उस (सहः) सर्व शक्तिमान् (ज्येष्ठं) सबसे बड़े और अधिक प्रशंसनीय परमात्मा को (नमस्यत) नमस्कार किया करो।

[९५२] इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह।
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥ १ ॥

[९५३] इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न।
अस्य सुतस्य स्वा३र्णोप त्वा मदाः सु वाचो अस्थुः२

[९५४] इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न।
बिभेद बलं भृगुर्न ससाहे शत्रून् मदे सोमस्य॥३॥२२॥

भा०—(१) हे (इन्द्र) आत्मन् ! तू (जुषस्व) इस आनन्दरस का सेवन कर। (आयाहि) आ, प्रकट होओ। हे (शूर) बलवान्, शक्ति शालिन् ! हे (हरिह) इन्द्रियरूप घोड़ो को ताड़न करने हारे ! तू (प्र वह) आगे अपने को ले जा और आगे बढ़ (सुतस्य) इस उत्पन्न आनन्दरस को (पिब) पान कर। (मतिः न) मनन करने हारे ज्ञानवान् के समान (चारुः) अत्यन्त मनोहर होकर (मदाय) हमें आनन्द प्राप्त करने के लिये (मधोः) मधुर ब्रह्मरस की (चकानः) कामना कर, सदा उसका अभिलाषी बना रह, उसी को सदा चाह।

९५२—'चतुस्त्रिंशदक्षराणि स्तुतौ भवन्ति इत्यतः 'प्रवह' 'हरिह' 'मतिर्न' इति नवोपसर्गाक्षराणि प्रथमस्यामृचि, द्वितीयस्यां 'नव्यं न' 'दिवो न' 'स्वर्ण' इति नवोपसर्गाक्षराणि, तृतीयस्यां 'मित्रो न' 'यतिर्न' 'भृगुर्न' इति नवोपसर्गाक्षराणि भवन्ति ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे आत्मन् ! जिस प्रकार (दिवः न) ज्योति से यह आकाश पूर्ण है उसी प्रकार (मधोः) ब्रह्म-आत्मरस से (जठरं) अपने मध्य भीतरी भाग को (नव्यम् न) सदा तरो ताज़ा के समान (पृणस्व) पूर्ण कर । (अस्य सुतस्य) इस सोमरस के (स्वः न) अत्यन्त सुख-कारक स्वरूपों के समान (मदाः) हर्षतरंग रूप (वाचः) सुन्दर वाणियां (त्वा) तुझको (सु उप अस्थुः) प्राप्त हों ।

(३) (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यशील आत्मा (मित्रः न) सूर्य के समान (तुराषाट्) हिंसकों का नाशक (यतिः न) यम नियम के साधक ज्ञानी के समान (वृत्रं) आत्मा पर अज्ञान का आवरण करनेवाले काम, क्रोधादि शत्रुओं को (जघान) नाश करता है । (भृगुः न) पापों को भून डालने वाले योगी या आचार्य या अग्नि के समान (वलं) चारों ओर से घेरनेवाले काम आदि के राजस तामस आवरण को (बिभेद) भेद डालता है । वह (सोमस्य) उसी सोम के (मदे) हर्ष में (शत्रून्) कामादि अन्तःशत्रुओं को (ससाहे) पराजित करता है ।

इति सप्तमः खण्डः ।

इति तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ।

इति पञ्चमोऽध्यायः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

(तृतीय प्रपाठके द्वितीयोऽर्धः)

ऋषिः—अकृष्टा माषादयः त्रयः ऋषिगणाः । २ काश्यपो मारीचः । ३, ४, १३ असितः काश्यपो देवलो वा । ५ अवत्सारः काश्यपः । ६, १६ जमदग्निर्भार्गवः । ७ अरुणो वैतहव्यः । ८ उरुचक्रिरात्रेयः ९ कुरुसुतिः काण्वः । १० भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ११ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा भार्गवः । १२ मनुराप्सवः सप्तर्षयो वा । १४, १५, २३ । गोतमो राहूगणः । १७ (१) ऊर्ध्वसद्मा आंगिरसः । (२) कृतयशाश्च । १८ त्रित आप्त्यः । १९ रेभसूनू काश्यपौ । २० मन्युर्वासिष्ठः । २१ वसुश्रुत आत्रेयः । २२ नृमेधः आंगिरसः । देवता—१—६, ११—१३, १६—२०, पवमानः सोमः । ७, २१ अग्निः । ८ मित्रावरुणौ । ९, १४, १५, २२, २३ इन्द्रः । १० इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१, ७ जगती । २—६ ८—११, १३, १६ गायत्री । १२ बृहती । १४ १५, २१ पङ्क्तिः । १७ प्रगाथः, ककुप् सतोबृहती च क्रमेण । १८, २२ उष्णिक् । १९, २३ अनुष्टुप् । २० त्रिष्टुप् ॥

[९५५] गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः । त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित् तं त्वा नर उप गिरेम आसते ॥ १ ॥

[९५६] त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि । स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद् वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ २ ॥

९५६—१, 'तं त्वा विप्रा', इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[६५७] ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः । तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतम्पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३॥१॥ ऋ० ९ । ८६ । ३६, ३८, ३७ ॥

भा०—(१) हे (सोम) सबके उत्पादक परमात्मन् ! आप (गोवित्) वेदवाणियों, ज्ञानरश्मियों और इन्द्रियों को प्राप्त कराने हारे, एवं समस्त गतिमान् पदार्थों में व्यापक हैं । आप (वसुवित्) सब धनों के प्रदाता, समस्त जीवों को प्राप्त और समस्त वास देने हारे लोकों में व्यापक हैं । आप (हिरण्यविद्) समस्त धनों को प्राप्त करने हारे और समस्त तेजोमय पिण्डों में भी व्यापक हैं । हे (इन्दो) इस समस्त संसार में व्यापक ! हे ऐश्वर्य के स्वामिन् ! आप (भुवनेषु) समस्त लोकों में (रेतोधाः) जीवों और नाना प्रकार के सर्गों को उत्पन्न करने के सामर्थ्य को स्वयं धारण करके (अर्पितः) सब में व्याप्त हो, (त्वं) आप (विश्ववित्) सर्वज्ञ और (सुवीरः) उत्तम शक्तिमान् (असि) हैं । (तं त्वा) उन आपको (इमे नरः) ये समस्त मनुष्य (गिरा) अपनी वाणी द्वारा (उप आसते) उपासना करते हैं । आप (पवस्व) हमारे हृदयों में प्रकट होइये ।

(२) हे (सोम) सबके प्रेरक ! आप (विश्वतः) सब प्रकार से और सर्वत्र (नृ चक्षाः) सब मनुष्यों को देखने हारे (असि) हैं । हे (पवमान) समस्त हृदयों में प्रकट होने हारे ! हे (वृषभ) समस्त सुखों के वर्षक ! आप ही (ताः) इन प्रजाओं में (वि धावसि) नाना प्रकार से व्यापक हो रहे हैं । (सः) वह आप (वसुमद्) वास योग्य प्राणों से युक्त (हिरण्यवत्) हिरण्य आदि सम्पत्तियों वाले, या आत्मा से युक्त ऐश्वर्य को

७५७—१. 'हिन्वानो' 'अक्रान्देवो' इति ऋ० ।
२. 'नीयसे' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः पवस्व) हमें प्रदान करें । (वयं) हम (भुवनेषु) लोकों में (जीवसे) दीर्घ जीवन प्राप्त करने के (स्याम) समर्थ हों ।

(३) हे (ईशान) समस्त संसार के स्वामिन् ! हे (इन्दो) ऐश्वर्य से सम्पन्न ! आ। (हरितः) हरण करने हारी वेगवान् (सुपर्ण्यः) और सुन्दर, शोभन, कल्याणकारी मार्ग में गमन करने हारी सात्त्विक, राजस, तामस, देव, मानव, तिर्यङ्, द्यौ, अन्तरिक्ष, और भूलोक इन सब में उत्पन्न होने हारी तीनों प्रकार की प्रजाओं को (युजानः) सन्मार्ग में नियुक्त करते हुए (इमाः) इन समस्त (भुवनानि) लोकों को (ईयसे) शासन करते हैं । (ताः) वे सब प्रजाएं (ते) आपके लिये (मधुमत्) ज्ञान से भरे, मधुर, भक्तिरसपूर्ण (घृतं) स्नेह और कान्ति से युक्त (पयः) आनन्दरस को (क्षरन्तु) प्रवाहित करें । (कृष्टयः) श्रमशील मनुष्य प्रजाएं हे (सोम) परमेश्वर ! (तव व्रते) आपकी आज्ञा में, व्यवस्था में (तिष्ठन्तु) रहें ।

१ २ ३ २ ३ १ २
[९५८] पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत ।
१ २ ३ २ ३ १ २
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[९५९] केतुं कृण्वन् दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि ।
३ १ २
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ २ ॥

३ २र २र ३ १ २ ३ १ २
[९६०] जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।
१ २ ३ १र २र
क्रन्दन् देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ २॥ ऋ० ९ । ६४ । ७-९ ॥

भा०—(१) हे (विश्ववित्) सर्वज्ञ (सूर्यस्य इव) सूर्य के समान (पवमानस्य) सर्वव्यापक, (ते) तेरे (सर्गाः) बनाये समस्त जगत, सूर्य

९५८—३. 'हिन्वानो' 'अक्रान्देवो' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उत्पन्न (रश्मयः न) किरणों के समान (असृक्षत) उत्पन्न होकर गति कर रहे हैं ।

(२) हे (सोम) सब जगत् के उत्पादक ! (समुद्रः) समस्त लोकों को अपने भीतर से धारण करने और प्रकट करने हारे आप समुद्र के समान हैं, अनन्त हैं (दिवः परि) आकाश में (केतुं) अपनी महिमा को बतलाने वाले, अथवा सब पदार्थों के ज्ञान कराने वाले सूर्य को (कृण्वन्) रचकर (विश्वा रूपा) समस्त कान्तिमान् और रूपवान् पदार्थों को (अभि अर्षसि) प्रकट करते, स्वयं व्यापते और (पिन्वसे) सब को पूर्ण कर रहे हो ।

(३) हे (पवमान) सब को पवित्र करने हारे सब से रसवत् प्रवाहित ! प्रभो ! आप (सूर्यः न) सूर्य के समान (देवः) सर्वत्र प्रकाशक, (जज्ञानः) आप स्वयं हृदयदेश में प्रकट होकर (विधर्मणि) विशुद्ध आत्मा में (क्रन्दन्) उपदेश करते हुए (वाचं) वेदवाणी को (इष्यसि) ऋषियों के हृदयों में प्रेरित करते हो ।

१र २र ३ १ २ ३ १ २
[९६१] प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः ।
३ २ ३ १ २
श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥ १ ॥

३ १र २र ३ १ ३ २ ३१ २ ३ २
[९६२] अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः ।
३ १र २र
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २
[९६३] प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः ।
१ २ ३ १र २र
नृभिर्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥

२ ३ १र २र ३ २ ३१ २ ३ १ २
[९६४] इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥

९६१—१. 'मृजन्,' ९६३ 'सोमेन्द्राय पातवे' । ९६४ 'पवित्रं परिधावसि' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[९६५] त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः

सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ५ ॥

[९६६] पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः।

शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥

[९६७] शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान्।

देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥ ३ ॥ ऋ० ९ । २४ । १-७ ॥

भा०—(१) (पवमानासः) भ्रमण करते हुए, परिव्राजकवत् (इन्दवः) ज्ञानसम्पन्न, (सोमासः) बहते जलों के समान सौम्य गुणों से युक्त, शमदमादि के साधक, शान्त स्वभाव विद्वान् आसक्ति से खूब मुक्तजन (प्र अधन्विषुः) उत्तम रीति से आगे बढ़े होते हैं। (श्रीणानाः) अपने अनुभव और ज्ञान में परिपक्व या तपस्वी होकर (अप्सु) प्रजाओं या लोकों में (प्र वृञ्जते) भ्रमण करते हैं। वे परिव्राजक होकर सर्वत्र ज्ञान प्रसार करते हैं।

(२) (गावः) गमनशील, ज्ञानी, विद्वान्जन, (प्रवता) प्रकृष्ट उत्तम मार्ग में (यतीः) गमन करते हुए (आपः न) जल-प्रवाहों के समान (अभि अधन्विषुः) बराबर आगे बढ़ते जाते हैं। और वे (पुनानाः) सब विघ्नों को पार करते हुए और अपने आत्मा को नित्य पवित्र करते हुए (इन्द्रम्) ऐश्वर्यशील उस सबके प्रभु को (आशत) प्राप्त होजाते और आत्मानन्द का लाभ करते हैं।

(३) हे (पवमान) गतिशील! हे (सोम) विद्वान्! शिष्य! तू (इन्द्राय) आचार्यरूप इन्द्र के लिये (मादनः) अति प्रसन्नता का कारण होता हुआ (प्र धन्वसि) उत्तम दशा को, उत्तम ज्ञान को प्राप्त

९६५. 'चर्षणीसह' ९६६. 'सुतस्य मध्वः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो और (नृभिः) सन्मार्ग के नेता गुरुओं द्वारा (यतः) नियमों में व्यवस्थित होकर (वि नीयसे) विनय पूर्वक शिक्षित किया जावे।

(४) हे (इन्दो) उपासक शिष्य व ब्रह्मचारिन् ! (यत्) जो (अद्रिभिः) पर्वत के समान स्थिर प्रज्ञा वाले विद्वानों से (सुतः) प्रेरित एवं शिक्षित होकर (पवित्रं) पावन करने वाले ज्ञानस्वरूप प्रभु के प्रति तू (परि-दीयसे) समर्पित किया जा रहा है अर्थात् ज्ञान और सदाचार के मार्ग में आगे बढ़ रहा है वह तू (इन्द्रस्य) ज्ञानवान् आचार्य के (धाम्ने) पद, स्थान के लिये (अरं) पर्याप्त रूप से योग्य होजा।

(५) हे (सोम) शिष्य ! ब्रह्मचारिन् (त्वं) तू सब नेता गुरुओं के हर्ष को उत्पन्न करने और (चर्षणी-धृतिः) निरीक्षक लोगों की दृष्टि में उत्तम आचार को धारण करने वाला होकर (सस्निः) स्नान करके, स्नातक होकर (यः) जो आप पुनः सब के हर्ष का कारण बनकर (पवस्व) ज्ञान का प्रदान कर।

(६) हे (वृत्र-हन्तम) विघ्नों और काम, क्रोध आदि आभ्यन्तर, तामस आवरणों को नाश करने में सबसे उत्तम ! तू (उक्थेभिः) उत्तम वचनों द्वारा (अनु-माद्यः) आदर करने योग्य (शुचिः) शुद्ध, कान्तिमान्, (अद्भुतः) आश्चर्यजनक, (पावकः) समस्त प्रजा को पवित्र, निष्पाप बनानेहारा होकर (पवस्व) भ्रमण कर और ज्ञान प्रदान कर।

(७) (सः) वह ब्रह्मचारी (मधुमान्) ज्ञानवान्, ब्रह्मवेत्ता, (शुचिः) मन, वाणी और कार्य में पवित्र, (पावकः) औरों को पवित्र करनेहारा, पंक्ति-पावन (सुतः) होकर ही (सोमः) 'सोम' (उच्यते) कहाता है वह (देवावीः) विद्वानों का और दिव्यगुणों का रक्षण करने हारा और (अघ-शंसहा) पाप की बात बतलाने वालों के पाखण्ड को नाश करने वाला होता है।

इति प्रथमः खण्डः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[९६८] प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत ।
३ १ २र ३ १र २र
साह्वान् विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥

१र २र ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[९६९] स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।
१ २ ३ १ २
पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[९७०] परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती ।
१ २ ३ १ २
स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥

३क २र ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २
[९७१] अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥

१ २र ३ १र २र २ २ २
[९७२] त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ ।
३ १ २
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥

१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[९७३] स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
१ २ ३ १ २
सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥

३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
[९७४] क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
१ २ ३ २ ३ १ २
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥ ४ ॥ ऋ० ९ । २० । १-७ ॥

भा०—(१) ब्रह्मचारी (कविः) क्रान्तदर्शी, विद्वान्, वाग्मी, मेधावी (देववीतये) ज्ञान से प्रकाशमान विद्वानों को प्राप्त होने के लिये (अव्याः वारेभिः) भेड़ के बालों से बने कम्बलों द्वारा (अव्यत) अपने को ढांपता है और (विश्वाः) समस्त (स्पृधः अभि) प्रतिस्पर्धी शत्रुओं के समान आगे आने वाली बाधाओं को (साह्वान्) पराजित

९६८—'देववीतये इव्या', 'वारेभिरर्षति' । ९७०—'मृशसे पवसे' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। अथवा (अव्याः) रक्षा करने हारी विद्या के (वारेभिः) आवरणों, व्रतों, साधनों से (अव्यत) अपने को युक्त करता है।

(२) (सः हि) और वही (पवमानः) सर्वत्र गमन करता हुआ (जरितृभ्यः) विद्या का उपदेश करने हारे आचार्यों के लिये (सहस्रिणं) सहस्रों सुखों के देनेहारे (गोमन्तं) गवादि पशु से सम्पन्न (वाजम्) ज्ञान ऐश्वर्य को, (इन्वति) स्वयं प्राप्त करता है और (वाजं इन्वति) धन-ऐश्वर्य गुरुदक्षिणा में लाकर देता है।

(३) हे (सोम) ब्रह्मचारिन् ! तू (चेतसा) अपने ज्ञान से (विश्वानि) सबको (परि-मृज्यसे) परिशोधित करता है, विवेक करता है। और (मती) मनन करने हारी शक्ति से (पवसे) तत्त्व तक पहुंचता है। (सः) वही तु (नः) हमें (श्रवः) वेदज्ञान को (विदः) प्राप्त करा।

(४) हे सोम ! ब्रह्मचारिन् स्नातक ! (बृहद्) बड़े (यशः) यश को तू (अभि-अर्ष) प्राप्त हो और (मघवद्भ्यः) बड़े धनाढ्य पुरुषों से तू (ध्रुवं) स्थिर (रयिं) धन को भी प्राप्त कर और (स्तोतृभ्यः) सत्य ज्ञान का उपदेश करने वाले गुरुओं के लिये (इषं) उनकी इच्छानुकूल अन्न, धन (आ भर) ले आ।

(५) हे (सोम) हे स्नातक ! हे (वह्ने) ज्ञान को धारण करने हारे ! हे (अद्भुत) हे अभूतपूर्व विद्वन् ! तू (सु-व्रतः) उत्तम व्रतनिष्ठ, सदाचारी, (पुनानः) सर्वत्र गमन या पवित्र करता हुआ (राजा इव) स्तुति के पात्र राजा के समान (गिरः) वेदवाणियों के (आ विवेशिथ) मर्म में प्रवेश कर।

(६) (सः) वही (वह्निः) ज्ञान का नेता (सोमः) ब्रह्मचारी, शान्त, तपस्वी, (अप्सु) प्रजाओं के भीतर (दुस्तरः) दुर्गम, अजेय (गभस्त्योः) ज्ञान और कर्म द्वारा (मृज्यमानः) शुद्ध पवित्र होकर (चमूषु) सत्पात्रों में, सेनाओं के ऊपर वीर सेनापति के समान प्रजा के हृदयों में (सीदति) स्थिति पाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! (क्रीडुः) क्रीड़ा करने वाला, किशोर-दशा में वर्त्तमान, सुप्रसन्न तू (मखः न) यज्ञ के समान (मंहयुः) पूजनीय (पवित्रं) पवित्र व्रत का (गच्छसि) आचरण करता है और (स्तोत्रे) सत्य गुण के प्रकाशक गुरु के अधीन (सुवीर्यं) उत्तम ज्ञान और बल को (दधत्) धारण करता है।

इस सूक्त का ईश्वर और आत्मा परक अर्थ भी लगता है।

[९७५] यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव।
विश्वा च सोम सौभगा ॥ १ ॥

[९७६] इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः।
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥

[९७७] उत नो गोविदश्वावित् पवस्व सोमान्धसा।
मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥

[९७८] यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य।
स पवस्व सहस्राजित् ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऋ० ९। ५५। १-४ ॥

भा०—(१) हे (सोम) सबको उत्पन्न करने हारे प्राणों के प्रेरक परमात्मन् ! अन्नपते ! (नः) हमें (अन्धसा) प्राण धारण कराने हारे सामर्थ्य से (पुष्टं-पुष्टं) खूब पुष्ट हुए (यवं-यवं) यव तथा यव के समान अन्य प्रत्येक धान्य भी (परि स्रव) प्रदान कर। और (विश्वा च) समस्त (सौभगा) सौभाग्य देनेहारे ऐश्वर्य पदार्थ भी हमें प्रदान कर।

(२) हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (अन्धसः) जीवन धारण कराने हारे, प्राणों के प्राण, अथवा अन्धकार के नाशक (तव) तेरी (यथा स्तवः) जिस प्रकार सत्यगुण प्रकाशक स्तुति वा यथार्थ उपदेश है और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यथा) जिस प्रकार तेरी (जातम्) प्रकट प्रसिद्धि है, ठीक उसी प्रकार सम्पन्न होकर (प्रिये) सबको प्रिय लगने वाले प्यारे, उत्तम (बर्हिषि) सूर्य में तेज के समान, देह में आत्मा के समान, विश्व में उत्तम आसन पर गुरुवत् हृदयाकाश में (नि सदः) विराजमान हो।

(३) हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! (उत) और (गोवित्) ज्ञानेन्द्रियों के वश करने हारे और (अश्ववित्) प्राणेन्द्रियों के वश करने हारे आप (अन्धसा) प्राण के धारक (मक्षूतमेभिः) शीघ्र ही गुज़र जाने वाले (अहभिः) इन थोड़े से दिनों में ही (नः) हमें (पवस्व) प्राप्त हो।

(४) (यः) जो (जिनाति) स्वयं जीत लेता है और (न जीयते) दूसरों से नहीं जीता जाता और (अभि-इत्य) सम्मुख आकर (शत्रुम्) शत्रु को (हन्ति) नाश करता है (सः) वह (सहस्र-जित्) हज़ारों को जीतने वाला, बलस्वरूप तू (पवस्व) हमारे प्रति आ, प्रकट हो, हमें प्राप्त हो।

[९७९] यास्ते धारा मधुश्च्युतोऽसृग्रमिन्द ऊतये।
ताभिः पवित्रमासदः ॥ १ ॥

[९८०] सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥

[९८१] त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः।
वरिवोविद् घृतं पयः ॥ ३ ॥ ६ ॥ ऋ० ९ । ६२ । ७-९ ॥

भा०—(१) हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरी (मधुश्च्युतः)

९८०—'तिरो रोमाण्यव्यया सीदन् योना वनेष्वा' इति ऋ०।
९८१—'त्वमिन्द्रो परि' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुर रस को बहाने वाली, ज्ञान देने हारी, आनन्दप्रद (धाराः) धारण करने वाली शक्तियां वा वाणियां (याः) जो (ऊतये) रक्षा करने के लिये (असृग्रम्) उत्पन्न, प्रकट हो रही हैं (ताभिः) उन से (पवित्रं) पवित्र करने हारे वायु या सूर्य, प्राण में सूक्ष्म रूप से (आसदः) विराजमान हो।

(२) (सः) वह तू (इन्द्राय) इस अन्तरात्मा के (पीतये) पान तृप्ति वा रक्षा के लिये, (अव्यया) अवि अर्थात् चित्-प्रकृति के (वारा) आवरण करनेहारे आवरणों को (तिरः) दूर (अर्ष) कर और (ऋतस्य) प्रकाशस्वरूप सत्य के (योनिम्) आश्रय स्थान ब्रह्म को (सीदन्) प्राप्त होकर (आ) प्रकट हो।

(३) हे (सोम) आत्मन् ! (त्वं) तू (अंगिरोभ्यः) ज्ञानी आत्माओं के लिये (वरिवोविद्) वरण करने योग्य सुखों, आत्मानन्दों को प्राप्त कराने हारा और (स्वादिष्ठः) अत्यन्त अधिक रस का देने वाला होकर (घृतम्) अति प्रकाशमय (पयः) अमृत रस को (परि स्रव) प्रदान कर।

इति द्वितीयः खण्डः।

---

२ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ १र २ ३ १ २ ३ १ २
[९८२] तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः
१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ॥१॥
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३
[९८३] वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वि-
१ २ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २
तिष्ठसे। आ ते यतन्ते रथ्योऽ३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने
३ १ २ ३ १ २
अजरस्य धक्षतः ॥ २ ॥

९८२—'चित्राश्चिकित्र', 'उषसां न केतव', 'अन्नमास्ये' इति ऋ०।

९८३—'वातोपधूत', 'अजराणि धक्षत,' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१८४] मधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतरं मतिम । त्वामर्भस्य हविषः समानमित् त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ॥ ३ ॥ ७ ॥ ऋ० १० । ९१ ५, ७, ८ ॥

भा०—(१) हे परमेश्वर ! (अग्ने) ज्ञान प्रकाशक ! (तव) तेरी (श्रियः) विभूतियां (वर्ष्यस्य) मेघ की (विद्युतः इव) विद्युतों के समान (च) और (उषसां) प्रभात कालों में निकलती हुई (ईतयः इव) किरणों के समान (चिकित्र) सर्वत्र जानी जाती हैं । (यत्) जब कि (ओषधीः) ओषधियों और (वनानि च) वृक्षादि वनस्पतियों में भी (अभिसृष्टः) लग कर उनमें भी व्याप्त होकर, (आसनि) मुख में (अन्नम्) अन्न के समान समस्त पदार्थों को (स्वयं) अपने (परिचिनुषे) भीतर लेलेता है

ओषधि अन्नादि और वनस्पतियों को जिस प्रकार अग्नि अपने भीतर जलाकर मानों ग्रास कर जाता है उसी प्रकार परमेश्वर सब पदार्थों को अपने भीतर लीन करता है। इसी प्रकार विद्वान् भी समस्त ओषधि वृक्षादि को अन्न के समान जानकर उनका खाद्यरूप से विवेक करे ।

(२) (वात-उपजूतः) गन्ध आदि गुणों के ज्ञान से सम्पन्न (इषितः) स्वयं इच्छा पूर्वक (तृपु) शीघ्र ही (वशां अनु) कमनीय उत्तम गुण से युक्त वनस्पतियों को (अन्ना) और अन्नों को (वेविषद्) प्राप्त कर के (वितिष्ठसे) नाना प्रकार से प्रकाशित करता है । हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! विद्वन् (अजरस्य) कभी वृद्ध न होने वाले, (धक्षतः) अग्नि के समान अज्ञान को भस्म करने हारे, (रथ्यः) रथपर चढ़े, महारथी शूरवीर के छोड़े शस्त्र जिस प्रकार (पृथक) पृथक् २ लक्ष्यों पर जाते हैं उसी प्रकार (ते) तेरे (शर्धांसि) बल प्रयोग और ज्ञान-

१८४—'परिभूतमं' तमिदर्भे हविष्यासमानमित्तमिन्महे' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप तेज भी (पृथक्) पृथक् २ नाना कार्यों में (आ यतन्ते) लग रहे हैं, सफल हो रहे हैं।

(३) हे अग्ने, ज्ञानवन् (मेधाकारं) ज्ञान और धारणावती बुद्धि के उत्पादक (विदथस्य प्रसाधनम्) ज्ञान की परम उत्कृष्ट साधना के करने वाले (अग्निं) सबके आगे होकर चलने वाले दीपक के समान सर्व प्रकाशक, (होतारं) सबको अपने शरण में लेने और सब सुखों के देने वाले, (परिभूतरम्) सब ओर अपने सामर्थ्य या सत्ता को प्रकट करने हारे, (मतिं) मननशील (त्वाम्) तुझको ही (अर्भस्य) छोटे और (महः) बड़े, थोड़े और बहुत (हविषः) ज्ञान के लिये भी (समानम् इव) समान रूप से ही (वृणते) सब वरण करते हैं, चुनते हैं (त्वत् अन्यं न) तुझ से दूसरे को नहीं।

३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
[९८५] पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण।
२ ३ १ २ ३ २
मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥
१ २ ३ १ ३ १ ३ १ २
[९८६] ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च।
३ १ २
वयं वां मित्रा स्याम ॥ २ ॥
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[९८७] पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
साह्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥८॥ ऋ० ५ । ७० । १-३ ॥

भा०—(१) हे (मित्र) सबके स्नेही ! हे (वरुण) सबसे श्रेष्ठ ! (वां) आप दोनों का (अवः) रक्षण सामर्थ्य और ज्ञान (पुरूरुणा) बहुत अधिक (चित् हि) ही (अस्ति) है। (नूनम्) निश्चय से (वां) आप दोनों ही अपने (सुमतिम्) उत्तम ज्ञान को (वंसि) देते हो।

(२) (ता) वे दोनों (वां) आप लोग (अद्रुह्वाणा) किसी

९८१—'वायसे इति ऋ० । ९८७—'पातं नो रुद्रा' 'तुर्याम दस्यून्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का द्रोह नहीं करते । हम आपके (इषम्) प्रेरणा बल, अन्न और संकल्प बल और (धाम) धारण सामर्थ्य, तेज को (अश्याम) उपभोग करें, प्राप्त करें और (वयं) हम (वां) आपके (मित्रा) मित्र (स्याम) होकर रहें।

(३) आप दोनों (मित्रा) हमारे स्नेह करने वाले होकर (पायुभिः) अपने रक्षकों या रक्षा साधनों से (उत) और (सु-त्रात्रा) उत्तम त्राणकर्त्ता पालकों द्वारा (नः) हमें (त्रायेथां) बचावें । हम (तनूभिः) अपने शरीरों द्वारा (दस्यून्) नाशकारी पदार्थों और पुरुषों को (साह्याम) बलपूर्वक पराजित करें ।

मित्र और वरुण से प्राण और अपान, सभापति और सेनापति, राजा और मन्त्री समझने चाहियें ।

[९८८] उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः ।
सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ १ ॥

[९८९] अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम् ।
इन्द्र यद् दस्युहाभवः ॥ २ ॥

[९९०] वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम् ।
इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥ ३ ॥ ६ ॥

ऋ० ८ । ७६ । १०-१२ ॥

भा०—(१) हे (इन्द्र) आत्मन् ! (चमूसुतम्) सेना दलों में अभिषेक को प्राप्त पदाधिकारी के राजा या सेनापति के समान इन्द्रियों, प्राण और अपान रूप चमसों में उत्पन्न हुए (सोमं) सबके प्रेरक आत्मा के बल वीर्य और प्राण को (पीत्वा) पान करके (ओजसा) बल

९८८—'१. 'पीत्वा', २. ऋचमायामक्रुपेताम्', ३. 'ऋतस्पृशम्' इति च ऋ०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कान्ति सहित (उत्तिष्ठन्) उठते हुए आप (शिप्रे) अपने हनुस्वरूप ज्ञान और कर्म की शक्तियों को (सह अवेपयः) एक साथ गति देते हो । परमात्म-पक्ष में = हनू द्यावापृथिवी ।

(२) (यद्) जब तू (दस्यु-हा) विनाशक पदार्थों और बाधक विघ्नों का शत्रुओं के समान नाश (अभवः) करता है । (स्पर्धमान) सबसे आगे बढ़ने हारे (इन्द्र) इन्द्रियों के स्वामिन् ! आत्मन् ! (त्वा अनु) तेरे पीछे २ तेरी शक्ति से (उभे रोदसी) दानों प्राण और अपान या शरीर के ऊपर और नीचे के दोनों भाग (अददेताम्) नित्य आनन्द अनुभव करते हैं ।

(३) (अहम्) मैं (अष्टापदीं) आठ चरण वाली(नवस्त्रक्तिं) नौ प्रकार की रचनावली (ऋतावृधम्) यज्ञ और सत्य की वृद्धि करने वाली (तन्वं) विस्तृत (वाचं) वाणी का (इन्द्रात्) इन्द्रस्वरूप अपने आचार्य या उस परमगुरु परमेश्वर से (परि ममे) ज्ञान प्राप्त करता हूं ।

अष्टापदी चार वेद और चार उपवेद ये वाणी के आठपद अर्थात् विद्या के आश्रम स्थान हैं । नवस्त्रक्तिः—नव स्त्रक्तयः रचना यस्याः । १ शिक्षा, २ कल्प, ३, व्याकरण, ४ निघण्टु, ५ निरुक्त, ६, छन्दः, ७ ज्योतिष, ८ धर्मशास्त्र, और ९ मीमांसा । ये नौ प्रकार की रचनाएं वेदों के आशय को स्पष्ट करने के लिये हैं ।

[९९१] इन्द्राग्नी युवामिमेऽ३भि स्तोमा अनूषत ।
पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥ १ ॥

[९९२] या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ २ ॥

[९९३] ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ३ ॥ १० ॥ ऋ० ६ । ६० ७–९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और सूर्य के समान सभापति और सेनापति ! (युवाम्) आप दोनों का (इमे) ये (स्तोमाः) प्रशंसा युक्त कार्य (अभि अनूषत) वर्णन करते हैं। आप (शंभुवा) सबके सुख और कल्याण का कार्य करने हारे (सुतम्) इस दुग्ध आदि रस एवं ओषधियों के रस और ज्ञान को (पिबतम्) पान करो। इन्द्राग्नी, से प्राण और अपान, गुरु शिष्य, सभापति और सेनापति सूर्य और विद्युत आदि का ग्रहण उचित है।

(२) हे (नरा) सबके नेताओ ! (दाशुषे) सबको शान्ति सुख देने हारे नरपति के निमित्त (वां) आपकी (या) जो (पुरुस्पृहः) सबको प्रिय लगने वाली (नियुतः) अनेक निश्चित मतियें (सन्ति) हैं, हे (इन्द्राग्नी) सूर्य विद्युत् के समान ज्ञानोपदेश करने हारे अध्यापक और उपदेशक महोदयो ! आप (ताभिः) उनके सहित (आगतम्) प्रजाओं में आओ।

(३) हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र अग्नि के तुल्य ज्ञानोपदेशक व अध्यापक ! (नरा) दोनों नेताओ ! (ताभिः) आप पूर्वोक्त विवेचक शक्तियों के साथ ही (इदं) इस (सुतं) उत्पादित (सवनं) यज्ञ में (सोमपीतये) उत्तम आनन्दप्रद, सोमरस, या धर्मपथ प्राप्त कराने के लिये (उप आ गच्छतं) आइये।

इति तृतीयः खण्डः।

---

[९९४] अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत्।
सीदन् योनौ वनेष्वा ॥ १ ॥

९९४—'सीदन् श्येनो न योनिमा, ९९५—'सोमा अर्षन्ति' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[९९५] अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ २ ॥

[९९६] इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥ ११ ॥

ऋ० ९ । ६५ । १९–२१ ॥

भा०—व्याख्या देखो अविकल सं० [५०३] पृ० २५२ ।

(१) (इन्द्राय) आत्मा के लिये, (वायवे) प्राण के निमित्त, (वरुणाय) अपान के लिये (मरुद्भ्यः) अन्य ज्ञानेन्द्रियों और प्राणेन्द्रियों के लिये और (विष्णवे) उस सर्वव्यापक प्रजापति परमात्मा के साक्षात् ज्ञान के लिये (अप्साः) नाना ज्ञानों और कर्मों को व्याप्त करने हारे (सोमाः) आनन्दरस और विद्वान् जन (अर्षन्तु) प्राप्त हों ।

(३) हे (सोम) परमात्मन् ! आप (नः) हमारे (तोकाय) सन्तति को और (अस्मभ्यं) हमें (विश्वतः) सब ओर से (इषं) अन्न (दधत्) प्रदान करो और (सहस्रिणम्) सहस्रों सुखों के देने वाले बलशाली प्राणात्मा को (आ पवस्व) प्रकाशित करो ।

[९९७] सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ १

[९९८] अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन् मन्दी मदाय तोशते ॥ २ ॥ १२ ॥

ऋ० ९ । १०७ । ८–९ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५१५] २५८ ।

(२) जिस प्रकार (गोमान्) गोपाल (गोभिः) गौओं के साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको चराने के लिये (अनूपे) निम्न देश में (अक्षाः) जाता है उसी प्रकार (सोमः) व्यापक आनन्दरस (दुग्धा) दुग्ध के समान ज्ञानपूर्ण आनन्दमय धाराओं के साथ निम्न, हृदयदेश में क्षरित होते हैं। (संवरणानि) जल जिस प्रकार (समुद्रं न) समुद्र की तरफ बहते हैं उसी प्रकार उत्तमरूप से वरण करने योग्य, सेवन करने योग्य आनन्दरस भी समुद्ररूप, विक्षोभ रहित आत्मा में प्रकट होते हैं और (मन्दी) आनन्द में मग्न आत्मा (मदाय) अति हर्ष प्राप्त करने के निमित्त (तोशते) आगे बढ़ता है।

[९९९] यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु ।
तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥

[१०००] वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि ।
हरिः सन् योनिमासदः ॥ २ ॥

[१००१] युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ ३ ॥ १३ ॥

ऋ० ६ । १६ । १, ३, २, ॥

भा०—(१) हे (सोम) सर्वोत्पादक ! (पुनानः) तू सर्वव्यापक परमेश्वर (नः) हमें (यत्) जो (चित्रं) संग्रह करने योग्य उत्तम अद्भुत (दिव्यं) दिव्यगुण सम्पन्न, (पार्थिवम्) इस पृथ्वी पर (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय, वेदोक्त, (वसु) धन है (तत्) वह (आ भर) प्राप्त करा।

(२) हे (सोम) परमेश्वर ! तू (वृषा) सब सुखों का वर्षक (अधि बर्हिषि) यज्ञ में, इस देह में, अन्तरिक्ष में, (स्तनयन्) गर्जते

९९९—'पुनान आयुषु', 'योनिमासदत्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघ के समान उपदेश करता हुआ (आयूंषि) समस्त प्राणियों की आयुओं को (पुनानः) पुनः नया, शुद्ध पवित्र हराभरा करता हुआ (हरिः सन्) दुःखहारी होकर (योनिम्) हृदयदेश में (आ सदः) आ विराजमान हो। ईश्वर, पर्जन्य, प्रजापति, सोमरस और योगज ब्रह्मानन्द रस और राजा का समान रूप से वर्णन है। राजा के योनि अर्थात् आश्रय प्रजाएं हैं।

(३) हे (सोम) सर्वोत्पादक तू और (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् दोनों (गोपती) इन्द्रियों, प्रजाओं और रश्मियों के स्वामी (युवं हि) आप दोनों (स्वःपति स्थः) सब सुख और ज्ञान, ज्योतिर्मय पिण्डों और द्यौलोक के स्वामी हो। आप (ईशाना) सबके ईश्वर हमारे (धियः) बुद्धियों को (पिप्यतं) बढ़ाइये।

सोम = परमात्मा इन्द्र = आत्मा अथवा इन्द्र = परमात्मा सोम आत्मा। आत्मा, और परमात्मा, जीव और मन, वायु और सूर्य, राजा और मन्त्री आदि का समान रूप से वर्णन है।

इति चतुर्थः खण्डः।

[१००२] इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत्॥१॥

[१००३] असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादिदिः। असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु॥२॥

[१००४] यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम्। युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्मां इन्द्र वसौ दधः॥ ३॥ १४॥ ऋ० १।८१।१–३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखिये अवि० [४११] पृ० २१० ।

(२) हे (वीर) विशेष उत्साह सम्पन्न ! वीर ! (सेन्यः असि) तू सेना का हितकर है । और (भूरि) बहुत (परादद्दिः) शत्रुओं को पराजय देने हारा है । और तू (दभ्रस्य) स्वल्प, थोड़े सामर्थ्य वाले निर्बल को (चित्) भी (वृधः) बढ़ाने हारा (असि) है । तू (सुन्वते) सुखों के उत्पन्न करने हारे (यजमानाय) यज्ञ के कर्त्ता, या करदाताओं को (ते भूरि वसु) अपना बहुत धन (शिक्षसि) देता है । जो 'इन' अर्थात् स्वामी या नेता के सहित होती है वह 'सेना' कहाती है । इन्द्रिय-गण आत्मा नेता के संग होने से 'सेना' कहाती हैं । उनका हितकर, उनमें उत्तम आत्मा 'सेन्य' है । वह काम, क्रोध आदि का पराभव करके स्वल्प 'दभ्र' दहराकाश को भी विशाल करता है और यजमान स्वरूप मुख्य प्राण को नाना प्रकार के ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय द्वारा प्राप्त भोग्य वस्तुएं देता है ।

(३) इसकी व्याख्या देखिये अवि० सं० [४१४] पृ० २११ ।

३ २ ३ १ २ ३१ २ १ २ ३क२र १ २र
[१००५] स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः । या इन्द्रेण
३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
[१००६] ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः प्रिया इन्द्रस्य
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥२॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १
[१००७] ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः । व्रतान्यस्य
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥३॥१५

ऋ० १ । ८४ । १०—१२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखिये अवि० सं० [४०९] पृ० २०९ ।

१००५—'मदन्ति शोभसे' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (ताः) वे (अस्य) इस आत्मा के (पृशनायुवः) स्पर्श, संग, या सन्निकर्ष चाहती हुई, या भोग्य पदार्थों तक पहुंचने की चेष्टा करने वाली (पृश्नयः) रस तक पहुंचने वाली, (इन्द्रस्य) इन्द्र आत्मा की (प्रियाः) प्रिय (धेनवः) गौओं के समान इन्द्रियां (सोमं) ज्ञान को (श्रीणन्ति) और भी परिपक्व करती हैं, बढ़ाती हैं । और वे (सायकं) नाश करने वाले, अन्त कर डालने वाले (वज्रं) वैराग्य को (हिन्वन्ति) उत्पन्न करती हैं और वे (वस्वीः) इस शरीर में वास करने हारे आत्मा की शक्तियां (स्वराज्यं) अपने निजी आत्मा के प्रकाशमय सत्ता के (अनु) अनुकूल, वश होकर उसमें ही विराजती हैं। साधक का अनुभव परिपक्व होने पर इन्द्रियां ही स्वयं भोग को त्याग कर देती हैं और वैराग्य होकर आत्मा में आभ्यन्तर ज्ञान-प्रकाश उत्पन्न होता है और उसके अनुकूल सब इन्द्रियां अन्तर्वृत्ति होकर रहती हैं ।

(३) (प्रचेतसः) उत्कृष्ट चेतनाशक्ति वा ज्ञान से युक्त होकर (ताः) वे इन्द्रियरूप गौएं (अस्य) इस आत्मा के (सहः) सहनशक्ति या काम, क्रोध आदि पराजित करने वाले बल को (नमसा) शरीर के बल को अन्न के समान अपने प्राप्त अनुभव से (सपर्यन्ति) और भी अधिक आदर और अनुकूलता से बढ़ाती हैं । और (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये (वस्वीः) देह में बसी इन्द्रिय-वृत्तियां (अस्य) इसके (पुरूणि) बहुत से (व्रतानि) कर्मों और गुणों को (स्वराज्यम् अनु) आत्मशक्ति के क्षेत्र की वृद्धि के लिये (सश्चिरे) सेवन करती हैं, पालन करती हैं, स्वीकार करती हैं ।

इति पञ्चमः खण्डः ।

[१००८] असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमासदत् ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
[१००९] शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ २ ॥
२ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
[१०१०] आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय ।
२ ३ १ २ ३ १ २
मधो रसं सधमादे ॥ ३ ॥ १६ ॥ ऋ० ९ । ६२ । ४-६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४७३] पृ० २४० ।

(२) (देव-वातम्) देव अर्थात् इन्द्रियों से प्राप्त (अप्सु धौतं) ध्यान वृत्तियों, या प्राणों द्वारा संस्कृत, (नृभिः सुतम्) साधक पुरुषों, या प्राणों द्वारा उत्पादित, (शुभ्रं) शुद्ध, कान्तिस्वरूप, (अन्धः) जीवन धारण कराने हारे आत्मानन्दरस का (गावः) सूक्ष्म इन्द्रियवृत्तियें अथवा ज्ञानी पुरुष (पयोभिः) अन्न-रसों के साथ २ (स्वदन्ति) आस्वाद लेते हैं ।

(३) (आत्) तदनन्तर (अश्वं न) जिस प्रकार राजा लोग युद्ध में अपने अश्व को अपनी रक्षा के लिये नाना प्रकार के अस्त्रों और कवचों से सुसज्जित करते हैं उसी प्रकार (हेतारं) सब के प्रेरक (ईम्) इस (मधोः रसं) मधुर आत्मसम्बन्धी आनन्दमय रस को (सध-मादे) शरीर रूप एकत्र आनन्द प्राप्त करने के स्थान में (अमृताय) मोक्ष या अमृतत्व प्राप्त करने के लिये (अशूशुभन्) नाना साधनाओं से सुशोभित करते हैं ।

३ २ ३ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१०११] अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् ।
१र २र ३ १ २
विकोशं मध्यमं युव ॥ १ ॥
१ २ ३ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
[१०१२] आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पति
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः
॥ २ ॥ १७ ॥ ऋ० ९ । १०८ । ९-१० ॥

१००९—'अप्सु धूतो नृभिः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखिये अवि० सं० [५७९] पृ० २९२ ।

(२, ३) हे (सुदक्ष) उत्तम बलसम्पन्न सोम ! (विशां) प्रजाओं की (वह्निः) सुव्यवस्था का भार वहन करने हारे ! आत्मन् ! (चम्वोः) दोनों सेनाओं के बीच (सुतः) विराजमान (विश्पतिः न) राजा के समान आप प्रजापति, परमात्मा (गविष्टये) गतिशील पशुओं, प्राणियों और पृथ्वी के समस्त जीवों के हित के लिये (अपः जिन्वन्) जलों को नीचे गिराते हुए (दिवः) अन्तरिक्ष से (रीतिं) अन्नों के देने हारी, विशाल (वृष्टिं) जलवृष्टि को (आ वच्यस्व) प्रेरित करो और (धियः) उत्तम बुद्धियों को (पवस्व) प्रेरित करो । मेघ रूप प्रजापति पक्ष में-द्यौ और पृथ्वी 'चमू' हैं । अध्यात्म पक्ष में-ज्ञानभूमि और कर्मभूमि, या ज्ञानेन्द्रिय और प्राणेन्द्रिय तदनुसार मस्तक के ऊपर के और नीचे के दोनों भाग चमू हैं । धर्ममेघ समाधि में प्रकट होने वाली ब्रह्मरस की वृष्टि और अपः = कर्म अथवा लिङ्ग शरीरमय प्राणों और धियः = ध्यानवृत्तियों को प्रेरित करता हुआ आत्मा, गौः = इन्द्रियों के हित के लिये या स्वयं वृषभ-रूप आत्मा के हित के लिये सोम = शुक्र कान्तिरूप में प्रकट होता है ।

३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१०१३] प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १र २र ३ २
[१०१४] उप त्रितस्य पाष्योऽ३ऽरभक्त यद् गुहा पदम् ।
३ १ २ ३१र २र ३ १ २ ३ २
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र ३ २
[१०१५] त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम् ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥ १८ ॥

ऋ० ९ । १०२ । १-३ ॥

१०१५—'पृष्ठेष्वैरया रयिम्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखिये अवि० सं० [५७०] पृ० ३०५।

(२) (यत्) जब (त्रितस्य) मन, वाक्, काय तीनों से साधना करने हारे योगी आत्मा के (पार्ष्योः) पाषाण के समान कुचल डालने वाले, प्राण और अपान दोनों के बीच में प्रकट होकर वह आनन्दरस (गुहा) भीतरी आकाशगुहा में (पदं) स्थिति को (उप अभक्त) प्राप्त होता है, (अध) तब (यज्ञस्य) यज्ञस्वरूप आत्मा के (सप्त धामभिः) सातों ऊपर के धारणशील प्राणों से (प्रियम्) आनन्दकारी, उस आत्मानन्दरस का आस्वादन किया जाता है।

(३) (त्रितस्य) साधक आत्मा की (धारया) धारणा से केवल (त्रीणि) तीन रसस्थान प्रकट होते हैं। और उन तीनों (पृष्ठेषु) रस के सेचक मुख्य केन्द्रों में आत्मा अपने (रयिम्) कान्तिमय ऐश्वर्य को (ऐरयत्) प्रकट करता है। (सु-क्रतुः) उत्तम योगी साधक (अस्य) इस आत्मा के (योजना) तीनों योग द्वारा–जागृत स्थानों को (वि मिमीते) विशेष रूप से जान लेता है और साध लेता है। तीन स्थान– ब्रह्मरन्ध्र, २ आज्ञाचक्र या सोमचक्र और ३ मणिपूर या स्वाधिष्ठान चक्र अथवा मूलाधार, हृदय और भ्रूमध्य।

[१०१६] पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः॥ १॥

[१०१७] त्वां रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः।
वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि॥ २॥

[१०१८] त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना॥ ३॥ १९॥

ऋ० ९। १००। ६, ७, ९॥

१०१६—'वाजसातमः', इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! (वाज-सातये) ज्ञान प्राप्ति के लिये (धारया) धारणावती बुद्धि द्वारा निरन्तर (सुतः) साक्षात् किया गया, प्रेरित या उत्पन्न किया गया, तू (मधुमत्-तरः) बराबर क्रम से अधिक २ आनन्द और सुख का देने हारा होकर (इन्द्राय) इन्द्रियों के स्वामी, आत्मा और (विष्णवे) सर्वव्यापक परमात्मा के प्रकाश के लिये और (देवेभ्यः) विद्वानों के हितार्थ या प्राणों के ज्ञान के लिये (धारया) धारणावती बुद्धि या वेदवाणी द्वारा (पवित्रे) पवित्र हृदय, अन्तःकरण में (पवस्व) प्रकट हो।

(२) हे (पवमान) व्यापक रसस्वरूप ! (मातरः) गौएं (जातं) उत्पन्न हुए (वत्सं न) बछड़े को जिस प्रकार (रिहन्ति) चाटती हैं। उसी प्रकार (धीतयः) ध्यानवृत्तियां (वि-धर्मणि) विशेष धारणा के स्थल, (पवित्रे) पवित्र शुद्ध, धारणास्थान, अन्तःकरण में (अद्रुहः) एक दूसरे का घात-प्रतिघात या विरोध न करती हुई (हरिं) सब दुःखों के हारक (त्वां) तुझको उत्सुकता से (रिहन्ति) आस्वाद लेती हैं, तेरा आनन्द अनुभव करती हैं।

(३) हे (महिव्रत) महान् कर्मों के करने वाले परमात्मन् ! (त्वं) आप (द्यां) आकाश या सूर्य, और (पृथिवीं च) पृथिवी दोनों लोकों को (अति जभ्रिषे) पार करके दोनों से अपरिमित है और तो भी दोनों को ग्रहण किये हुए हो। हे (पवमान) सर्वव्यापक ! (महित्वना) अपनी महिमा से आप (द्रापिं) रूपवान् जगत् को कवच को वीरपुरुष के समान (प्रति मुञ्चथाः) धारण कर रहे हैं।

[१०१९] इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१॥

[१०२०] अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०२१] अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन्
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये
॥ ३ ॥ २० ॥ ऋ० ६ । ६७ । १०–१२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५४०] पृ० २७३ ।

(२) (अध) और (अद्रि-दुग्धः) दृढ़ साधनों द्वारा या धर्ममेघ द्वारा उत्पन्न किया गया (इन्दुः) आनन्दरूप सोमरस (मध्वा) ज्ञान-सम्पन्न, मधुर, मनोहर (धारया) धारणा द्वारा (पृचानः) संयुक्त होकर (रोम) व्यवधायक पदार्थों को (तिरः) पार करके (पवते) बहता या प्रकट होता है । वह (इन्द्रस्य) आत्मा के (सख्यं) मित्रभाव, प्रेम या आनन्दरूपता को (जुषाणः) प्राप्त करता हुआ (देवः) प्रकाशमान, (मत्सरः) आनन्द हर्षस्वरूप होकर (देवस्य) द्रष्टा, आत्मा के (मदाय) हर्ष और आनन्द का कारण होता है ।

(३) (स्वेन रसेन) अपने आनन्द रस से (देवान्) विद्वानों या इन्द्रियों को (पृञ्चन्) तृप्त करता हुआ (देवः) सुख शान्तिप्रद, तेजोमय वीर्य, (पुनानः) स्वतः स्वच्छ और पवित्र एवं व्यापक होकर (व्रतानि) सब कर्मों को (अभि पवते) पवित्र कर सर्वत्र प्रकट होता है । (इन्दुः) आत्मा (ऋतुथा) प्रत्येक ऋतु के अनुकूल, या प्राणों के बल से (धर्माणि वसानः) धारण–सामर्थ्यों या नाना धर्मों अर्थात् गुणों को सम्पादन करता हुआ (अव्ये सानो) न गतिशील, प्राणमय, स्थिर सानु अर्थात् सुखग्राहक, स्थिर अन्तःकरण में (दश क्षिपः) दशों क्षिप्रगति करनेहारी इन्द्रियों को (अव्यत) प्राप्त होता है ।

ऊर्ध्वरेता योगियों की साधना से वीर्य ऊर्ध्वगामी होकर उन में सब ऋतुओं में सहनशीलता उत्पन्न करता और इन्द्रियों में बल पैदा करता है ।

इति १४: खण्ड: ॥

१ १०२१—'अभि प्रियाणि' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०२२] आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् । यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आभर ॥१॥

[१०२३] आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते । सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आभर॥२

[१०२४] ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि । उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आभर ॥ ३ ॥ २१ ॥ ऋ० ५ । ६ । ४, ५, ९ ॥

भा०—(१) हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप, प्रकाशस्वरूप, परमात्मन् ! हे (देव) सबके प्रकाशक ! (ते) तेरी प्राप्ति के निमित्त या तुझ से हम (द्युमन्तं) प्रकाशित, (अजरम्) न जीर्ण होने वाले, अमर, नित्य अपने आत्मा को (आ इधीमहि) सर्वत्र सब ओर प्रकाशित करते हैं । (यत्) और जो (द्यवि) मध्य आकाश में (पनीयसी) व्यवहार करने योग्य, अतिस्तुत्य (समिद्) समान रूप से प्रकाशित होने वाली सूर्य रूप ज्योति (दीदयति) चमकती है (स्या) वह भी (ते) तेरा ही प्रकाश है । इस कारण हे परमात्मन् ! (स्तोतृभ्यः) सत्य गुणों के प्रकाशक विद्वानों को आप ही (इषं) उत्तम ज्ञान और अन्न (आ भर) प्राप्त कराइये ।

(२) हे (ज्योतिषः पते) सूर्य आदि ज्योतियों के परिपालक परमात्मन् ! (शुक्रस्य) शुद्ध कान्तिस्वरूप (ते) आपको (ऋचा) ऋग्वेद के ज्ञान द्वारा (हविः) समर्पण करने योग्य इस आत्मा रूप हवि को (तुभ्यं) आपके लिये (आहूयते) सब प्रकार से अर्पित किया जाता है । हे (सु-चन्द्र) सबको उत्तम सुख, आह्लाद देने हारे ! हे (दस्म) सबके भीतर व्याप्त, वा विघ्नों के हर्त्ता ! हे (हव्य-वाट्) समस्त संसार

१०२३—'शोचिषस्पते' । १०२४—'उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को वहन करने हारे ! हे (विश्पते) समस्त प्रजाओं के स्वामी (स्तोतृभ्यः) सत्य गुणों के प्रकाशकों के निमित्त (इषम्) अन्न और उत्तम ज्ञान प्रेरणा को (आ भर) प्राप्त कराइये ।

(३) हे (सु-चन्द्र) सर्व उत्तम ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! सर्वसुखकारक, (विश्पते) प्रजेश्वर ! हे (शवसः पते) सर्वशक्तिमन् ! सब बलों के स्वामिन् ! आप (उभे) दोनों (दर्वी) अज्ञान का दलन करने हारे ज्ञान और कर्म या सूर्य और पृथिवी को (आसनि) अपने मुखस्थानीय तप में (आ श्रीणीषे) सर्वत्र परिपक्व करते हो और (उक्थेषु) प्रशंसा करने योग्य धर्मयुक्त कर्मों में, यज्ञों में (नः) हमें (उत्-पुपूर्याः) उत्तम फलों द्वारा पूर्ण करें । (इषं स्तोतृभ्यः, आ भर) आप विद्वान् सत्यज्ञानी पुरुषों को अन्न और ज्ञान प्राप्त कराइये ।

[१०२५] इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥
[१०२६] त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्य्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥
[१०२७] विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वाऽ३ऽरगच्छो रोचनं दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ३ ॥ २२ ॥

ऋ० ८ । ९८ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३८८] पृ० २०१ ।

(२) हे इन्द्र ! (त्वम्) आप (अभिभूः) सबसे अधिक सामर्थ्यवान् (असि) हो । (त्वं) आप ही (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयः) प्रकाशित करते हो । और आप ही (विश्व-कर्मा) समस्त संसार के बनाने हारे (विश्व-देवः) सबके प्रकाशक और उनके उपास्य देव, सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्यों के दाता, सब देवों के देव और (महान्) सबसे बड़े, पूजनीय (असि) हो।

(३) हे इन्द्र ! परमेश्वर ! आप (दिवः) सूर्य आदि समस्त द्यौलोक के (रोचनं) प्रकाशक, आनन्दमय, सात्विक (ज्योतिषा) ज्योति से (विभ्राजन्) विशेष रूप से देदीप्यमान होकर (स्वः) आनन्दमय मोक्ष में (अगच्छः) व्याप्त हो। (देवाः) सब विद्वान्गण और तेजस्वी पृथ्वी आदि लोक भी (ते) तेरी (सख्याय) मित्रता के लिये (येमिरे) यत्न करते हैं।

[१०२८] असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः॥ १॥

[१०२९] आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना॥ २॥

[१०३०] इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्।
ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्॥ ३॥ २३॥

ऋ० १।८४।१, ३, २॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३४७] पृ० १८१।

(२) हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक ! (रथम्) रमणीय, अत्यन्त प्रिय, रस रूप हृदय या आत्मा में, रथमें वीर पुरुष के समान (आ तिष्ठ) आ, विराज। (ते) तेरे (हरी) हरण करनेहारे, भजन करने वाले मन और वाणी दोनों (ब्रह्मणा) मन्त्र द्वारा (युक्ता) युक्त हों (ग्रावा) उत्तम वाणी का उच्चारण करने वा उपदेश करने हारा विद्वान् (वग्नुना) मनोहर वचन, स्तुति और ध्यान द्वारा अपने (मनः) मन को (ते)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरे (अर्वाचीन) अभिमुख (सुकृणोतु) उत्तम प्रकार से करे, जिससे तेरा साक्षात् करे ।

(३) (हरी) हरण करने हारे मन और वाणी, ज्ञान और कर्म वा विषयों से इन्द्रियों को हटा लेने वाले स्त्री पुरुष दोनों (अप्रतिधृष्ट-शवसं) अदम्य और असह्य, बलवान् (इन्द्रं) आत्मा को लक्ष्यकर (ऋषीणां) विद्वानों या इन्द्रियों की (सु-स्तुतीः) उत्तम स्तुतियों और अभिलाषाओं को और (मानुषाणां) मनुष्यों के (यज्ञम् च) यजन योग्य, उपास्य और संगति करने योग्य परमेश्वर को (उप वहतः) प्राप्त करते, धारण करते हैं ।

इति सप्तमः खण्डः ।

इति द्वितीयोऽर्धः ।

इति तृतीयः प्रपाठकः समाप्तः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थः प्रपाठकः (प्रथमोऽर्धः)

अथ सप्तमोऽध्यायः



ऋषिः—१ (१) आकृष्टा माषाः (२, ३) सिकतानिवावरी च । २, ११ कश्यपो मारीचः । ३ मेधातिथिः काण्वः । ४ हिरण्यस्तूपः आङ्गिरसः । ५ अवत्सारः काश्यपः । ६ जमदग्निर्भार्गवः । ७, २१ कुत्स आंगिरसः । ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । ९ त्रिशोकः काण्वः । १० श्यावाश्व आत्रेयः । १२ सप्तर्षयः । (क्रमेण भरद्वाज—कश्यप—गोतम—अत्रि—विश्वामित्र—जमदग्नि—वसिष्ठाः] १३ अमहीयुराङ्गिरसः । १४ शुनःशेप आजीगर्तिः । १५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । १६ मान्धाता यौवनाश्वः । (२) उत्तरार्धः, गोधा ऋषिका १७ असितः काश्यपो देवलो वा । १८ (१) ऋणंचयो राजर्षिः । २ शक्तिर्वासिष्ठः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९ पर्वतनारदौ । २० मनुः सांवरणः । २२ बन्धुः, सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा । २३ भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः । २४ ऋषिरज्ञातः, प्रतीकत्रयं वा ॥ देवता—१—६, ११—१३, १७—२१ पवमानः सोमः । ७, २२ अग्निः । ८ आदित्यः । ९, १४, १६, इन्द्रः । १० इन्द्राग्नी । १५ सोमः । २३ विश्वेदेवाः २४ इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ७ जगती । २—६, ८—११, १३, १४, १७ गायत्री । १२, । प्रगाथः बार्हतः १६ महापङ्क्तिः । १८ (१) गायत्री (२) १९ उष्णिक् । २० अनुष्टुप् २१, त्रिष्टुप् । २२ भुरिग्बृहती । २३ द्विपदा त्रिष्टुप् २४ देवा बृहती ।

[१०३१] ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः । दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १ ॥

[१०३२] अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः । हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ २ ॥

[१०३३] अग्ने सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्ने वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि । अग्ने वाजस्य भजसे महद् धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥ ३ ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ८६ । १०—१२ ॥

भा—(१) (यज्ञस्य) यज्ञ, जीवन और समस्त ब्रह्माण्ड का (ज्योतिः) प्रकाशक (प्रियम्) सबसे उत्कृष्ट (मधु) मनन करने योग्य, योग समाधि द्वारा साक्षात् करने योग्य, (पवते) व्याप रहा है । (देवानां-

१०३२—३. 'अर्षत्यग्ने', 'गच्छति' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिता) २४ देवों का पालक और (जनिता) उत्पादक, (विभूवसुः) सर्व-व्यापक होने से सब के भीतर वास करने और सबको वास कराने हारा, (स्वश्रयोः) अपनी सत्ता से देह और विद्या को धारण कराने वाले, जीवात्मा और प्रकृति इन दोनों के भीतर (अर्पाच्यम्) अति सूक्ष्म, सर्वत्र व्यापक (मदिन्तमः) सबसे अधिक आनन्दमय और (मत्सरः) सबके हृदयों में आनन्द को बहाने वाला (इन्द्रियः) ऐश्वर्यमय, अथवा इन्द्ररूप जीव आत्माओं का हितकारी, (रसः) सर्वव्यापक, रसस्वरूप परमात्मा (रत्नं) समस्त ज्योतिर्मय पिण्ड, हिरण्यगर्भ को या अति रमण योग्य सुखमय मोक्ष को (दधाति) धारण करता है।

(२) (वाजी) सर्वशक्तिमान्, ऐश्वर्यवान् (दिवः पतिः) द्यौलोक का या सूर्यादि व प्राण--इन्द्रिय आदि दिव्य पदार्थों का भी परिपालक, उनको नाश होने से बचाने वाला स्वामी, (शत-धारः) सैकड़ों धारण-शक्तियों से युक्त, (विचक्षणः) समस्त संसार को देखने वाला (अभिक्रन्दन्) नाद करता हुआ, गर्जता हुआ (कलशं) कलश जीवधारियों के देह में आत्मा के समान (अर्षति) व्याप्त रहता है। और वही (हरिः) सबके कष्टों और तापों को हरने वाला, सबको गति देने हारा (मित्रस्य) अपने स्नेहपात्र आत्मा के (सदनेषु) निवासगृह, देहों में भी (सीदति) व्यापक होकर विराजता है। वही (वृषा) सब सुखों का वर्षक (सिन्धुभिः) विषयों के प्रति द्रुत गति से जाने वाली (अविभिः) तन्मात्राओं या इन्द्रियों या प्राण शक्तियों द्वारा, धारणाओं द्वारा (मर्मृजानः) वार २ शोधा, या वार २ खोजा, या साक्षात् परिष्कृत किया जाता है।

(३) हे आत्मन्! तू (सिन्धूनां) उन सूक्ष्म इन्द्रिय शक्तियों, प्राणों के (अग्रे) आगे ही (पवमानः) ज्योतिःस्वरूप होकर प्रकट होने वाला (वाचः अग्रे) वाणी के भी आगे (अर्षसि) प्रकट होता है। और (गोषु) प्राणेन्द्रियों के भी (अग्रियः) नेता के समान (अग्रे) आगे होकर (गच्छसि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है अर्थात् वह उनसे पूर्व विद्यमान एवं उनसे भी परे रहकर उनका ग्राह्य विषय नहीं होता। (वाजस्य) ज्ञान और बल का स्वामी प्राण के भी (अग्रे) आगे (महद् धनं) बड़े भारी आनन्द कोष को (भजसे) धारण करता है और (सु-आयुधः) उत्तम सत्संग साधनों से युक्त या उत्तम शक्तियों से सम्पन्न होकर हे (सोम) सबके प्रेरक, आत्मन् ! (सोतृभिः) योगियों द्वारा तू (सूयसे) साक्षात् किया जाता है ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
[१०३४] असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
३ १ २ ३ १र २र
शुक्रासो वीरयाशवः ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१०३५] शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
पवन्ते वारे अव्यये ॥ २ ॥

१र २र ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१०३६] ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।
१ २ ३ १र २र
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ३ ॥ २ ॥ ऋ० ९ । ६४ । ४-६ ।

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४८२] पृ० २४४ ।

(२) (ऋतायुभिः) सत्य, यज्ञ और आत्मा की कामना करने वाले शिष्य साधकों द्वारा (शुम्भमानाः) स्तुति किये गये, प्रार्थना किये गये या उनसे शोभा प्राप्त करने वाले, (गभस्त्योः) अन्धकार को दूर करने हारे, ज्ञान और योगाभ्यास दोनों से (मृज्यमानाः) अपने को परिष्कृत शुद्ध, निष्पाप मलरहित, करते हुए (अव्यये) आत्मा से उत्पन्न, या अव्यय, अविनाशी (वारे) सब कष्टों के वारक, रक्षास्थान, अभय परमेश्वर में (पवन्ते) विचरते हैं।

(३) (ते) वे (सोमाः) सौम्यगुणसम्पन्न, विद्वान् योगीजन (दाशुषे) आत्मसमर्पण करने हारे शिष्य के लिये (दिव्यानि) दिव्य, परलौकिक और (पार्थिवा) इहलोक के और (आन्तरिक्ष्या) मध्यमलोक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के (वसु) वास योग्य ज्ञानरूप ऐश्वर्य को (पवन्ताम्) प्रदान करते और स्वयं प्राप्त करते हैं ।

१ २   ३ १र २र ३ १ २   ३ १ २
[१०३७] पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या ।
१ २ ३ १र २र
इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ १ ॥

१ २   ३ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २
[१०३८] आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः ।
१र २र ३ २
आ योनिं धर्णसिस्सदः ॥ २ ॥

१ २   ३ २उ १ १ २   ३ १ २   ३ १ २
[१०३९] अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
३ १ २   ३ १ २
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥

३ १ २   ३ १र   २र   ३ १ २
[१०४०] महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
१   २र   ३ १ २
यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥

३   २ ३ १ २   ३   २ ३ १ २   ३ २
[१०४१] समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
१ २ ३ १ २   ३ २
सोम पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥

१ २   ३   २ ३ १ २ ३ २   ३ १र   २र ३ २
[१०४२] अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान् मित्रो न दर्शतः ।
१र २र
सं सूर्येण दिद्युते ॥ ६ ॥

२   ३   १ २   ३ १ २   ३ १ २
[१०४३] गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
२ ३ १ २ ३   १ २
याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥

२   ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २
[१०४४] तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे ।
२ ३ १ २   ३ २
तव प्रशस्तये महे ॥ ८ ॥

१०४४—द. 'प्रशस्तयो महीः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
[१०४५] गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत।
३ २ ३ १ २ ३ २
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
[१०४६] अस्मभ्यमिन्दाविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया।
३ १ २ ३ १ २
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ १० ॥३॥ ऋ० ९। २। ~~१-१०~~ ॥ 1-8, 10.9

भा—(१) (देववीः) पृथिवी आदि तत्वों और प्राणों में भी व्यापक, उन को कान्ति देने हारा, उनको प्रेरित करने हारा, तू हे (सोम) आत्मन्! (रंह्या) वेग से (पवित्रे) हृदयदेश, मन को (अति) अतिक्रमण करके (पवस्व) प्रकाशित हो। हे (इन्दो) कान्ति और ऐश्वर्यगुक्त! (वृषा) सुखों का वर्षक! (इन्द्रं) आत्मा या परमात्मा के ऐश्वर्यमय स्वरूप में (विश) प्रवेश कर।

(२) हे (इन्दो) आत्मन्! (वृषा) सुखों को वर्षक (द्युम्नवत्-तमः) अति अधिक तेजः सम्पन्न, यशस्वी, होकर (महि) बड़े (प्सरः) ज्ञान को (आ वच्यस्व) प्रकट कर। और (धर्णसिः) धृतिशील, ध्रुव होकर (योनिम्) अपने आश्रय स्थान या स्वरूप में (आसदः) प्रतिष्ठित हो।

(३) (सुतस्य) योग साधनों से निष्पन्न (वेधसः) स्वयं कर्त्ता, विद्वान् योगी की (धारा) धारणा शक्ति (प्रियं मधु) अति आनन्द अमृत रस को (अधुक्षत) दोहती हैं, प्रकट करती हैं और (सुक्रतुः) उत्तम कर्मनिष्ठ योगी (अपः) समस्त अज्ञानों और कर्मों और लोकों पर (वसिष्ट) वश करता है और उनमें वास करता है।

मधु अमृतम् [सा०]।

(४) हे सोम! (यत्) जब (गोभिः) आदित्य की सी किरणों से तू (वासयिष्यसे) आच्छादित हो जाता है तब (त्वा) तुझ (महान्तं) महान् को (सिन्धवः) गतिशील, व्यापक (महीः) बड़ी भारी (आपः)

१०४५. अस्मभ्यमिन्द्रविन्द्रयुः इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होने योग्य लोक (अनु अर्षन्ति) पीछे २ गमन करते अर्थात् अनुसरण करते, तेरे वशवर्ती होते हैं।

(५) (पवित्रे) महान् आकाश में (सोमः) सूर्य (अस्मयुः) हमारा आश्रय, (दिवः धरुणः) द्यौलोक को धारण करने वाला, (विष्टम्भः) नाना प्रकार के पिण्डों का स्तम्भक, आश्रय, (समुद्रः) जलों को बहाने वाला होकर (अप्सु) अन्तरिक्ष में जैसे (मामृजे) विशुद्ध रूप में भासता है। उसी प्रकार योगी का आत्मा भी भीतर हृदयाकाश में आनन्दरसों का वर्षक मेघ सा होकर विराजमान होता है।

(६) व्याख्या देखो अविकल सं० [४६७] पृ० २५० ।

(७) हे (इन्दो) आत्मन् ! (ते) तेरे (ओजसा) बल से (अपस्युवः) कर्म और इच्छा को प्रकाश करने हारी (गिरः) वाणियां (मर्मृज्यन्ते) परिष्कृत, स्वच्छ शुद्ध हो जाती हैं (याभिः) जिनसे (मदाय) आनन्द की प्राप्ति के लिये तू (शुम्भसे) प्रकाशित होता है।

(८) हे सोम ! परमात्मन् ! (मदाय) हर्ष के लिये (घृष्वये) आत्मा के स्पर्श करने वाले (मदाय) आनन्द को प्राप्त करने के लिये (लोककृत्नुं) दर्शन करने हारे, सर्वद्रष्टा या ज्ञान के उत्पादक या समस्त संसार के रचयिता (तं) उस परमानन्द स्वरूप (त्वा उ) आपको ही (महे) बड़े भारी (तव) आपकी (प्रशस्तये) महिमा होने के कारण हम (ईमहे) प्राप्त होते हैं या प्रार्थना करते हैं ।

(९) हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! आप (गोपा) वाणियों, गौओं रश्मियों और ज्ञान-इन्द्रियों के दाता (नृषा) पुत्र भृत्यादि तथा नेता अग्रणी पुरुषों के देने हारे, (अश्वसा) देहों में आत्मा, ब्रह्माण्ड में सूर्य और प्राणेन्द्रियों और धन में अश्वों के देने हारे, (वाज-सा) ज्ञानबल और अन्न के देने वाले (उत) भी (असि) हो । आप ही (यज्ञस्य) आत्मा, ब्रह्माण्ड, जीवन और सब कर्मों के (पूर्व्यः) पूर्ण करनेहारे, सबसे आदिम (आत्मा) आत्मा, कर्त्ता, स्वामी हो ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०) हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! (मधोः) अमृत की (धारया) धारणा शक्ति से (इन्द्रियं) आत्मा के बल को बढ़ाने वाले या उसके स्वरूप के दर्शन रस को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये जिस प्रकार (वृष्टिमान्) वर्षाने वाला (पर्जन्यः) मेघ रस को वर्षाता है उसी प्रकार (पवस्व) बरसाओ।

इति प्रथमः खण्डः।

---

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१०४७] सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २
[१०४८] सना ज्योतिः सना स्वऽ३ऽर्विश्वा च सोम सौभगा।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २३ ३ १ २ ३ १ २
[१०४९] सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१०५०] पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१०५१] त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
[१०५२] तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम्।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०५३] अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
अथा नो वस्यस्कृधि ॥ ७ ॥

[१०५४] अभ्या३ऽ२ऽर्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥

[१०५५] त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ।

[१०५६] रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमाभर ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१०॥५॥ ऋ० ९ । ४ । १–१० ॥

भा०—(१) हे (पवमान) सर्वव्यापक ! हे (सोम) ऐश्वर्यवन् सबके प्रेरक संचालक । आप (श्रवः) यश और ज्ञान (सन) दान करो और (जेषि च) विघ्नों पर विजय करो । (अथ) और बाद में (नः) हमें (वस्यसः) ऐश्वर्यों से युक्त या ज्ञानियों में श्रेष्ठ (कृधि) करो ।

(२) हे (सोम) परमात्मन् ! हमें (ज्योतिः) प्रकाश, ज्ञान (सन) दो । (स्वः) सुख (सन) दो । और (विश्वा च सौभगा) समस्त सौभाग्ययुक्त पदार्थ दो । (अथ नः वस्यसः कृधि) और हमें उत्तम वसुमान् अर्थात ज्ञानी जनों में श्रेष्ठ करो ।

(३) हे प्रभो ! हमें (दक्षम् उत क्रतुं) बल और उत्तम कर्म करने का सामर्थ्य (सन) दो और (मृधः) प्रतिस्पर्धी, विघ्नकारी हिंसकों को (अप जहि) विनाश करो, (अथ नः वस्यसः कृधि) और हमें सब में श्रेष्ठ करो ।

(४) हे (पवितारः) प्रभु को साक्षात् करने हारे विद्वान् पुरुषो ! (इन्द्राय पातवे) आत्मा को पान कराने के लिये (सोमं) आनन्दरस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या ज्ञान को (पुर्नातन) उत्पादन करो, प्रकट करो (अथ नः वस्यसः कृधि) और हमें श्रेष्ठ करो ।

(५) हे परमात्मन् ! (तव) तेरे (क्रत्वा) ज्ञान सामर्थ्य या कर्म सामर्थ्य से और (तव ऊतिभिः) तेरी शक्तियों से (त्वं) तू (नः) हमें (सूर्ये) सबके प्रेरक आत्मा या परमात्मा में (आ भज) प्राप्त करा (अथ नः वस्यसः कृधि) और हमें सबसे उत्तम बना ।

(६) हे सर्वोत्पादक ! (तव क्रत्वा) तेरे ज्ञान से (तव ऊतिभिः) तेरी प्रेरणाओं से (सूर्यं) सूर्य के समान ज्ञान और प्रकाशस्वरूप तेरा (ज्योक्) चिरकाल तक (पश्येम) दर्शन करें । (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें सर्व श्रेष्ठ बना ।

(७) हे (सोम) सर्वप्रेरक ! हे (स्वायुध) उत्तम साधनों, बलों से युक्त ! तू (द्विबर्हसं) दोनों लोकों में बढ़ाने वाले (रयिं) प्राणरूप सामर्थ्य को (अभि अर्ष) दे । और (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें श्रेष्ठ बना ।

(८) हे (वाजिन्) बल और ज्ञान से सम्पन्न ! (समत्सु) समान भाव से आनन्द के प्राप्त करने के अवसरों में (अनपच्युतः) अविचल और (सासहिः) अभ्यन्तर शत्रुओं को दबाने हारा होकर तू (अभि अअर्ष) प्रकट हो (अथ नः वस्यसः कृधि) और हमें सबसे श्रेष्ठ बना ।

(९) हे (पवमान) सर्वव्यापक ! (विधर्मणि) अपने विशेषरूप से परिष्कृत और नाना शक्तियों के आश्रय स्थान आत्मा में (यज्ञैः) कर्म, ज्ञान, तप आदि यज्ञों द्वारा साधकजन (त्वां) तुझको ही (अवीवृधन्) बढ़ाते हैं और तू (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें सबसे उत्तम बना ।

(१०) हे (इन्दो) परमेश्वर ! तू (चित्रं) संग्रह करने योग्य नाना प्रकार के (अश्विनम्) इन्द्रियों को धारण करने हारे (विश्वायुं) समस्त आयु को देने वाले (रयिं) आत्मिक सामर्थ्य, वीर्य को (आ भर) दे । और (अथ नः वस्यसः कृधि) हमें श्रेष्ठ, उत्तम बना ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
[१०५७] तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
२ ३ २ ३ १ २
तरत् स मन्दी धावति ॥ १ ॥
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१०५८] उस्रा वेद वसूनां मर्त्तस्य देव्यवसः ।
२ ३ २ ३ १ २
तरत् स मन्दी धावति ॥ २ ॥
३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २
[१०५९] ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे ।
२ ३ २ ३ १ २
तरत् स मन्दी धावति ॥ ३ ॥
१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१०६०] आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे ।
२ ३ २ ३ १ २
तरत् स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ५ ॥

ऋ० ९ । ५८ । १–४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५००] पृ० २५१ ।

(२) (उस्रा) ऊपर की ओर स्रवण करने वाली (देवी) सुख और प्रकाश की देने वाली, प्रकाशस्वरूप, सोमरूप शुक्र की धारा (मर्त्तस्य) मरणधर्मा शरीर के भीतर (वसूनां) वास करने हारे प्राणों को (अवसः) रक्षा करने का सामर्थ्य (वेद) प्राप्त कराती है । तभी (तरत् स मन्दी धावती) वह योगी आत्मा आनन्दमय होकर, सब कष्टों को पार करता हुआ ब्रह्म की ओर चला जाता है ।

(३) हे परमेश्वर ! हम (ध्वस्रयोः) दुखों को ध्वंस करनेहारे, या स्वतः विनष्ट होने वाले (पुरुषन्त्योः) पुरुषरूप आत्मा के सदा समीप वर्तमान प्राण और अपान दोनों के (सहस्राणि) हज़ारों श्वास प्रश्वास तथा बल, कर्मों को हम (आ दद्महे) धारण करें, अपने वश करें । क्योंकि इन बलों से ही (तरत् स मन्दी धावति) वह आनन्दरूप आत्मा सैकड़ों कष्ट बाधाओं को पार करके ब्रह्म की ओर चला जाता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) हम (ययोः) जिन दो के बल पर (त्रिंशतं सहस्राणि) तीस हज़ार ३०,००० (तना) दिन, रात अर्थात् लगभग ४०० वर्ष पर्यन्त (आ दद्महे) जीवन धारण करते हैं, उनके बल पर ही (तरत्स मन्दी धावति) वह आनन्दमय जीव सब दुःख बाधाओं को पार करके ब्रह्म की ओर चलाजाता है।

[१०६१] एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे।
मदिन्तमस्य धारया ॥ १ ॥

[१०६२] अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि।
सनद्वाजः परि स्रव ॥ २ ॥

[१०६३] उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः।
गृणानो जमदग्निना ॥ ३।६॥ ऋ० ९। ६२। २२-२४।

भा०—(१) (मदिन्तमस्य) अति आनन्दकारक परमात्मा की (धारया) आनन्दरूप धारणा शक्ति से (महे) बड़े भारी (शवसे) ज्ञान प्राप्ति के लिये (गृणानाः) वेद का अध्ययन, प्रवचन करते हुए (एते सोमाः) ये विद्वान् गुरुजन (असृक्षत) उत्पन्न हों। 'श्रवसे' इति ऋ०।

(२) हे (सोम) परमात्मन् ! (वीतये) सर्वत्र कान्ति या प्रकाश करने के लिये (गव्यानि) ज्ञान-वाणियों के योग्य (नृम्णानि) मनुष्यों के चित्तों को (पुनानः) पवित्र करता हुआ तू (अभि अर्षसि) साक्षात् प्रकाशित होता है। हे (सनद्-वाजः) ज्ञान को देने हारे, बल के देने हारे ईश्वर ! आप हमें ज्ञान और बल (परि स्रव) प्राप्त करावें ।

(३) हे परमात्मन् ! (जमदग्निना) आत्मा को साक्षात् करने हारे योगी द्वारा (गृणानः) स्तुति किये हुए (नः) हमारे लिये (गोमतीः) वेदवाणियों से सम्पन्न (विश्वाः इषः) सब कामनाओं और ऐश्वर्यों को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (परि-स्तुभः) सब प्रार्थनाओं को (उत) भी (अर्प) पूर्ण स्वीकार कर प्रदान करो।

[१०६४] इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया। भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥

[१०६५] भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम्। जीवातवे प्रतरां साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥

[१०६६] शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्। त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्यु३श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥ ७ ॥

ऋ० १ । ९४ । १, ४, ३ ॥

भा०—(१) (अर्हते) पूजनीय (जातवेदसे) तत्व के ज्ञाता, इस विद्वान्, परमेश्वर और आचार्य के लिये (मनीषया) अपनी मति से (रथम् इव) उत्तम ज्ञानरस के समान सुखकारक (स्तोमं) गुण कीर्तन (सं-महेम) करें । (संसदि) सभा में (अस्य) इसकी (प्रमतिः) उत्तम मति और ज्ञान (नः) हमारे लिये (भद्रा) कल्याण और सुखकारिणी होती है । इसके (सख्ये) मित्रभाव में (मा रिषाम) हम कभी कष्ट न पावें । हे प्रभो ! और हे विद्वान् गुरो ! (वयं तव) हम तुम्हारे हैं । इन्द्रियों का आत्मा के प्रति, भक्तों का ईश्वर के प्रति और शिष्यों का गुरु के प्रति सामानरूप से वचन है ।

(२) हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप प्रकाशक ! (वयम्) हम (ते) तेरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये (इध्मं) प्रदीप्त, तेजस्वी होने के साधन को (भराम) हम प्रस्तुत करें। वा तेरे (इध्मं) तेज को हम धारण करें। (हवींषि) ग्रहण करने योग्य नाना ज्ञान आदि पदार्थों को (कृणवाम) सम्पादन करें। और (वयं) हम (ते) तेरा (पर्वणा-पर्वणा) पोरू २ पर, या पूर्ण साधन या प्रति पर्व, या अध्याय २ द्वारा (चितयन्तः) शक्ति और ज्ञान का लाभ करते हुए, (जीवातवे) अपने जीवन के निमित्त (तव सख्ये) तेरे सहयोग या मैत्री में (मा रिषाम) कभी पीड़ित न हों। और तू (प्रतरां) बहुत उत्तम प्रकार से (धियः) हमारी प्रज्ञाओं और कर्मों को (साधय) सिद्ध कर, सुदृढ़ बना।

(३) हे (अग्ने) ज्ञानवन्! प्रभो! गुरो! (धियः) हमारी बुद्धियों को (साधय) उत्तम बना। हम (समिधम्) उत्तमरूप से प्रकाशित होने हारे (त्वा) तेरी सेवा करने में (शकेम) समर्थ हों। (त्वे) तेरे आधार पर (देवाः) विद्वान् लोग (आहुतम्) श्रद्धापूर्वक दान किये हुए (हविः) अन्न आदि पदार्थ को अग्नि के तुल्य स्तुति वचनों को (अदन्ति) भोग करते हैं। (त्वम्) और तू सूर्य के समान (आदित्यान्) किरणों, बारहों मासों, अथवा आदित्य के समान तेजस्वी या संवत्सर के अधीन रहने वाले मासों के समान गुरु के अधीन रहने वाले शिष्यों को यथायोग्य (आ वह) प्राप्त कर, हम (तान्) उनको (उश्मसि) चाहते हैं। और हे (अग्ने) प्रकाशक! (वयम्) हम (तव सख्ये) तेरी मित्रता में (मा रिषाम) कभी दुःख, पीड़ा प्राप्त न करें।

इति द्वितीयः खण्डः।

[१०६७] प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्।
अर्यमणं रिशादसम्॥ १॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०६८] राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे।
इयं विप्रा मेधसातये ॥ २ ॥

[१०६९] ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह।
इषं स्वश्च धीमहि ॥ ३ ॥ ८ ॥ ऋ० ७ । ६६ । ७–९ ॥

भा०—(१) (सूरे) सूर्य के समान सबके प्रेरक, मुख्य आत्मा के (उदिते) उदय होने पर, जागृत होने पर (मित्रं) मित्र, (वरुणं) और वरुण, प्राण और अपान (वां) आप दोनों की और (रिषादसं) विघ्नों के नाशक(अर्यमणम्) न्यायकारी स्वामी के समान पालक की (प्रतिगृर्णीषे) प्रतिदिन स्तुति, करता हूं।

(२) (इयम्) यह हमारी (मतिः) मति, बुद्धि, मननशक्ति, (हिरण्यया) हितकारी, मनोहर (राया) सम्पत्ति द्वारा, या उसके निमित्त (अवृकाय) हिंसक, चोरों से अतिरिक्त साधु पुरुष के (शवसे) बल वृद्धि करने के लिये हो। हे (विप्राः) विद्वान् पुरुषो ! (इयम्) यह हमारा ज्ञान (मेध-सातये) अन्य पवित्र दीक्षित, शिष्यों को ज्ञान दान करने के लिये हो।

(३) हे (देव वरुण) सर्वप्रकाशक ! हे सर्व श्रेष्ठ ! हे (मित्र) मृत्यु को मेटने हारे ! सर्व स्नेही हम (ते) आपके (सूरिभिः) तत्व के ज्ञाता विद्वानों के साथ (स्याम) रहें। और (ते) तेरे (इषं) अन्न, ज्ञान और (स्वः च) सुख, आनन्द-स्वरूप को (धीमहि) ध्यान और धारणा करें।

[१०७०] भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०७१] यस्य ते विश्वमानुषग् भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥

[१०७२] यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदाभर ॥३। ६ ॥ ऋ० ८ ४५ ४०-४२ ॥

भा० —(१) व्याख्या देखिये अग्नि० सं० [१३४] पृ० ७२

(२) हे इन्द्र (ते) तेरे (भूरेः) बहुतसे (यस्य) जिस (दत्तस्य) दिये हुए दान के विषय में (विश्वम्) समस्त संसार (आनुषग्) बराबर सदा युक्त रह कर (वेदति) जानता या प्राप्त करता है (तत्) वह (स्पार्हं) अभिलाषा करने योग्य (वसु) वासयोग्य जीवनरूप उत्तम धन (आ हर) हमें प्राप्त करा ।

(३) व्याख्या देखो अविकल सं० [२०७] पृ० १०७ ।

[१०७३] यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजौ सस्नी वाजेषु कर्मसु ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥

[१०७४] तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥

[१०७५] इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥ १० ॥

ऋ० ८ । ३८ । १–३ ॥

भा०—(१) हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, गुरो ! और अग्ने ! विद्वन् ! आचार्य और अध्यापक आप दोनों (हि) क्योंकि (यज्ञस्य) इस महान् अध्ययन-अध्यापन, ज्ञान दानरूप यज्ञ और परमेश्वर के (ऋत्विजौ) यथाऋतु प्रवर्त्तक एवं प्राण साधना द्वारा उपासना करने हारे (स्थः) हो अतः (वाजेषु)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान यज्ञों में और (कर्मसु) सब कर्मों में (सस्नी) स्नातक, पारंगत हो। (तस्य) उस उक्त यज्ञ के विषय में आप (बोधतम्) हमें ज्ञान कराइये।

(२) आप दोनों (रथयावाना) रथरूप देह या रसस्वरूप प्रभु को प्राप्त होने हारे (वृत्रहणा) समस्त अज्ञान आवरण का नाश करने हारे, (अपराजिता) कभी पराजित न होने वाले, (तोशसा) विघ्नों के नाशक हैं, (इन्द्राग्नी) आप इन्द्र और अग्नि परमात्मा और आचार्यस्वरूप दोनों मुझको (तस्य बोधतम्) उस यज्ञ का ज्ञान कराइये।

(३) हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (नरः) विद्वान् मनुष्य (अद्रिभिः) अखण्ड व्रतों से (वां) आप दोनों के (इदं) इस दर्शनीय (मधु) अमृत, ज्ञान को (अधुक्षन्) प्राप्त करते हैं (तस्य यज्ञस्य) उस यज्ञ का (बोधतम्) हमें भी ज्ञान कराइये।

इति तृतीयः खण्डः।

---

१ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१०७६] इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१०७७] तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम्।
१ २ ३ १ २
सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
[१०७८] रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे।
१ २ ३ १ २
पवमानस्य मरुतः ॥३॥११॥ ऋ० ६ । ६४ । २२–२४॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४७२] पृ० २४०।

(२) हे प्रभो ! (वचोविदः) वेदवाणी का तत्त्व जानने हारे वे (विप्राः) मेधावी लोग (तं) उस स्मरणीय (धर्णसिं) समस्त संसार को आश्रयवत् धारण करने हारे (त्वा) तुझ परम आत्मा को (परिष्कृ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख्वन्ति) नाना प्रकार से बखानते हैं । (त्वां) तुझको ही (आयवः) मनुष्य लोग (सं मृजन्ति) योग साधनों से खोजते और आत्मा को पवित्र करते हैं ।

(३) हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! विद्वन् ! (मित्रः) मृत्यु से बचाने हारा प्राण और (वरुणः) वरुणरूप अपान और (अर्यमा) समान और (मरुतः) शेष प्राणगण भी (पवमानस्य ते) प्रवाहित होते हुए तेरे (रसं) आनन्दरस, ऐश्वर्यबल को (पिबन्तु) पान करें, प्राप्त करें ।

[१०७९] मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ १ ॥

[१०८०] पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि
॥ २ ॥ १२ ॥ ऋ० ६ । १०७ । २१–२२ ॥

भा—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५१६] पृ० २५९ ।

(२) (अव्यये वारे) प्राणमय या कर्ममय आवरण में से (पुनानः) पवित्र होता हुआ, (पवमानः) व्यापक आत्मा (वृषः) सुखों का वर्षक होकर (वने) इस ब्रह्माण्ड या अन्तरिक्ष में मेघ के समान (अचिक्रदत्) अनाहत रूप से नाद करता और सुखों की वर्षा करता है । हे (सोम) प्रेरक ! हे (पवमान) हे व्यापक ! आप (गोभिः) रश्मियों से (अञ्जानः) अभिव्यक्त होते हुए (देवानां) समस्त प्रकाशमान पदार्थों के (निष्कृतं) स्थान या मूलकारण को (अर्षसि) प्राप्त हो । आत्मपक्ष में-वह (गोभिः) प्राणों से (अंजानः) प्रकट होकर इन्द्रियों के आश्रय को प्राप्त है ।

[१०८१] एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।
समादित्येभिरख्यत ॥ १ ॥

१०८१—२. 'मृजानो वारे,' वृषावचक्रदो वने' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०८२] समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ।
सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥

[१०८३] स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्।
चारुर्मित्रे वरुणे च ॥३॥ १३ ॥ ऋ० ९। ६१। ७–९ ॥

भा—(१) (एतम्) इस (उ त्यं) ही उस (सिन्धुमातरं) द्रवण-शील प्राणों के माता अर्थात् उत्पादक या ज्ञाता आत्मा को (दश क्षिपः) बाहर फेंके गये दस गौण प्राण, इन्द्रियां (मृजन्ति) परिष्कृत, अलंकृत करती हैं उसीके अव्यक्त रूप को प्रकट करती हैं। वह (आदित्येभिः) किरणों के समान लगी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा (सम् अख्यत) भली प्रकार देखता है। परमेश्वर के पक्ष में—उस (सिन्धुमातरं) समस्त आकाश और सागर आदि के निर्माता प्रभु को दशों दिशाएं सुशोभित करती हैं। वह सूर्यों से सबको प्रकाशित करता है।

(२) (इन्द्रेण) आत्मा (उत वायुना) और प्राण से (सुतः) निष्पादित होकर वह आनन्दरस (सूर्यस्य) सबके प्रेरक मुख्य प्राण को (रश्मिभिः) किरणों से (पवित्रे) पवित्र करने हारे अन्तःकरण में (सम् आ एति) उत्तम रीति से विदित होता या प्राप्त है।

(३) (सः) वह (मधुमान्) अमृत स्वरूप (भगाय) ऐश्वर्यवान् (वायवे) प्राण स्वरूप (पूष्णे) पुष्टिकारक, आत्मा के निमित्त और (मित्रे) प्राण और (वरुणे च) अपान के लिये भी (चारुः) सर्वत्र गति शील होकर उत्तम रूप में (पवस्व) प्रकट हो। परमेश्वर पक्ष में—(मित्र वरुणे च) सर्व स्नेहवान् और सर्व दुःख वारक के रूप में प्रकट होता है।

इति चतुर्थः खण्डः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०८४] रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥

[१०८५] आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः ।
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ।

[१०८६] आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥ १४ ॥

ऋ० १ । ३० । १३–१५ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१५३] पृं० ८५ ।

(२) हे (धृष्णो) शत्रुओं के या काम क्रोधादि के धर्षण अर्थात् मान मर्दन करने हारे ! (चक्र्योः) रथ के चक्रों का (अक्षं न) धुरा जिस प्रकार स्वयं अपने आश्रय रहकर भी रथ को दूर देश में पहुंचाता और आप भी जाता है, उसी प्रकार हे आत्मन् ! (त्वावान्) आत्मवान् पुरुष (त्मना युक्तः) स्वयं अपने आत्मसामर्थ्यंसे होकर (इयानः) अभीष्ट तक पहुंचता हुआ (आ ऋणोः) मोक्ष तक पहुंचता और साथ ही स्वयं वहां प्राप्त होता है ।

(३) (अक्षं न) जिस प्रकार धुरा (शचीभिः) अपने में लगे अरों द्वारा रथ को दूर देश तक पहुंचा देता है । उसी प्रकार हे (शतक्रतो) सैंकड़ों प्रज्ञानों से युक्त आत्मन् ! (जरितॄणाम्) विद्वान् ज्ञानोपदेशकों को भी (कामं) उनकी कामनाओं के अनुसार (दुवः) उनके मनोरथ या प्रार्थित पदार्थ (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (आ ऋणोः) प्राप्त करा देते हो ।

१०८५—'त्मनाऽऽऽप्त' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वाप्तकाम ब्रह्मवेदी जीवन्मुक्त की दशा का वर्णन है। उसके साथ ही राजा और प्रभु का वर्णन भी स्पष्ट है।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१०८७] सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
२ ३ २ ३ १ २
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१०८८] उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब।
३ २उ ३ २ ३ १ २
गोदा इद् रेवतो मदः ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१०८९] अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्।
२ ३ १ २ ३ १ २
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥ १५ ॥

ऋ० १।४।१–३॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१६०] पृ० ८९।

(२) (सोमपाः) सोम अर्थात् आत्मानन्द के रस का पान करने हारा, समस्त आत्म पदार्थों और ज्ञानों का रक्षक, सोम्य गुणों को धारण करने हारे विद्वानों का पालक, सूर्य के समान विद्यार्थियों का प्रकाशक आचार्य और परमात्मा (सोमस्य) उत्पन्न कार्य जगत् के बीच में (सवना) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों और ज्ञानों को प्रकाशित करने के लिये (नः) हमारे (उप) समीप (आगहि) आवे और (पिब) स्वयं ज्ञान प्राप्त करके अन्यों को पान करावे। (गोदाः) ज्ञान की आंखों को देने वाला (इत्) ही (रेवतः) इष्ट पदार्थ को प्राप्त करने वाले जीव को (मदः) हर्षकारी होता है।

(३) हे परमेश्वर ! (अथ) अनन्तर, (ते) तेरे (अन्तमानां) समीप में प्राप्त (सुमतीनां) उत्तम मेधावी ज्ञानियों के पास से (विद्याम) हम तेरा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करें (नः आगहि) आप हमें प्राप्त होइये, (मा नो-अति ख्यः) हमें त्याग न कीजिये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०९०] उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१॥

[१०९१] दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।
पूर्वेण मघवन् पदा वयामजो यथा यमः ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥२॥

[१०९२] अव स्म दुर्हणायतो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति ॥
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥३॥१६॥

ऋ० १० । १३४ । १, ६, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३७९] पृ० १९६ ।

(२) हे (मन्तुमः) ज्ञानवान् ! सर्वज्ञ ! (यथा) जिस प्रकार आप (दीर्घं) दूर तक जाने वाले (अंकुशम्) ज्ञानांकुश को (बिभर्षि) धारण करते हो उसी प्रकार (शक्तिं) उसके प्रयोग के सामर्थ्य और उपाय को भी जानते हो । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (यथा) जिस प्रकार से (यमः) इन्द्रियों और उनके समान लोकों पर वश करने हारा (अजः) अजन्मा आत्मा, परम-आत्मा (पूर्वेण) पूर्व (पदा) ज्ञान और सामर्थ्य से (वयां) व्यापक प्रकृति को वश करता है और तभी (देवी) दिव्यगुण वाली यह प्रकृति (जनित्री) समस्त संसार को उत्पन्न करने हारी (अजीजनत्) इस

१०९१—२. 'मघवन् पदाऽजोवया यथा यमः' ।

१०९२—३. 'यो अस्माँ आदिदशति, इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार को उत्पन्न करती है। (भद्रा) कल्याण और सुख को देने हारी (जनित्री) प्रकृति (अजीजनत्) इस संसार को उत्पन्न करती है। और (भद्रा) वह सुखदात्री (जनित्री) माता के समान संसार की जननी होकर आपकी महिमा को प्रकट करती है।

(३) हे परमेश्वर (दुर्हणायतः) दुष्ट चोर (मर्त्तस्य) मनुष्य की (स्थिरं) स्थिति को (अवतनु हि स्म) नीचा कर। (यः) जो (अस्मान्) हमें (अभिदासति) गुलाम बनाना चाहता है (तम् ईम्) उसको ही (अधः पदं) नीचे के स्थान में (कृधि) करदे। (देवी जनित्री अजीजनत्) उस दिव्यगुण वाली सबकी माता प्रकृति संसार को प्रकट कर तेरी महिमा को प्रकट करती है। (भद्रा जनित्री अजीजनत्) वह कल्याण कारी सब की माता होकर भी संसार को प्रकट करके तेरी महिमा को प्रकट करती है।

इति पञ्चमः खण्डः।

[१०९३] परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत्।
मदेषु सर्वधा असि।

[१०९४] त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः।
मदेषु सर्वधा असि॥ २॥

[१०९५] त्वं विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत।
मदेषु सर्वधा असि॥ ३॥१७॥ ऋ० ६। १८। १-३॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४७५] पृ० २४१।

(२) हे (सोम) परमात्मन् (त्वं) तू (विप्रः) मेधावी है (त्वं) तू (कविः) क्रान्तदर्शी है। (अन्धसः) अन्न से (जातम्) उत्पन्न हुए जीवन शक्ति के रूप में प्रकट होने वाले (मधु) अमृतस्वरूप वीर्य और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द को (प्र) प्रदान कर । तू (मदेषु) सब आनन्दों में (सवंधाः) समस्त संसार को धारण करने हारा (असि) है ।

(४) (त्वं) तू (विश्वे) समस्त (स-जोषसः) समान रूप से आपको प्रेम करने हारे (देवासः) विद्वान् लोग (पीतिम्) आपके रसास्वादन का आनन्द (आशत) प्राप्त करते हैं और (मदेषु) सब आनन्दों में आप ही (सवंधाः असि) सबको धारण करने हारे हो ।

[१०९६] स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १ ॥

[१०९७] यस्य त इन्द्रः पिबाद् यस्य मरुतो यस्य वार्यम्णा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे । २॥१८॥
ऋ० ९ । १०८ । १३-१४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५८२] पृ० २९६ ।

(२) हे सोम, परमेश्वर (यस्य) जिस (ते) तेरे रस को (इन्द्रः) यह आत्मा (पिबात्) पान करता है (यस्य) जिस तेरे रस को (मरुतः) ये दश प्राण और समस्त विद्वान्गण और (यस्य वा) जिस तेरे रस या बल को (अर्यम्णा) अर्यमा अर्थात् समान वायु के साथ (भगः) उदान वायु और सूर्य पान करते हैं और (येन) जिसके बल पर (मित्रावरुणा) प्राण और अपान दोनों को (आ करामहे) परिचालित करते हैं और (इन्द्रम्) जिसके बल पर विद्वान्जन आत्माको (आ) साक्षात् करते हैं । वह तू (महे अवसे) बड़ी रक्षा प्राप्त करने के लिये है, तू ही शान्तिप्रद अभय स्वरूप है । हो

[१०९८] तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्त्तिभिः ॥ १ ॥

१०९८—२. 'मधुमत्तमः सुखः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१०९९] सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
३ १र २र ३ २ ३ १ २
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥
३ १र २र ३ १ ३ २ १र २र ३ १ २
[११००] अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥ ३ ॥ १६ ॥
ऋ० ६ । १०५ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५६९] पृ० २९० ।

(२) (मातृभिः) दूध पिलाने वाली माताओं द्वारा (वत्सः इव) जिस प्रकार बच्चा (हिन्वानः) प्रेरित और परिवर्धित और पालित पोषित होकर (अज्यते) प्रकट होता है । उसी प्रकार (इन्दुः) सोम, विद्वान् शिष्य भी (मातृभि) विद्वान् ज्ञानियों द्वारा बालक के समान (हिन्वानः) शिक्षित किया गया (अज्यते) विद्या आदि उत्तम गुणों से प्रकट होता है । वह (देवावीः) विद्वानों के पास जाने हारा (मदः) सबको हर्ष-कारक (मतिभिः) विशेष मननयोग्य प्रज्ञाओं या मननशील विद्वानों द्वारा (परिष्कृतः) परिष्कृत, अलंकृत होता है ।

(३) (अयं) यह (सुतः) उत्तम गुणों से युक्त ज्ञानवान् पुरुष (दक्षाय) बलशाली कार्य को (साधनः) सम्पादन करने वाला और (अयं) यह (शर्धाय) बल या ज्ञान के प्राप्त करने (वीतये) और कान्ति, दीप्ति या तेज प्राप्त करने के लिये यत्नवान् हो । (अयं) यह (देवेभ्यः) विद्वानों के हित के लिये (मधुमत-तरः) माधुर्य आदि गुणों से और अधिक युक्त होकर (सुतः) उत्पन्न या दीक्षित है ।

सोम के दृष्टान्त से स्नातक का वर्णन किया है ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[११०१] सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३र १र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ १ ॥

११०१—१. 'मित्रा सुवानाः' २. 'एते पूताः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[११०२] ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
[११०३] सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ॥ ३ ॥ २० ॥

ऋ० ९ । १०१ । १०, ११, १२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५४८] पृ० २७८ ।

(२) (ते) वे (पूतासः) पवित्र हृदय वाले (विपश्चितः) (दध्याशिरः) ध्यान धारणा में स्थिर चित्त होने वाले मेधावी (सोमासः) सौम्यगुण वाले विद्वान् (घृते) ज्ञानस्वरूप, प्रकाशस्वरूप ब्रह्म में (जिगत्नवः) उन्नति की तरफ़ जाने वाले (ध्रुवाः) स्थिर, अखण्डित, दृढ़ (सूरासः न) आदित्यों के समान तेजस्वी, विद्वान्, आदित्य ब्रह्मचारी होकर (दर्शतासः) दर्शनीय, भव्य हों ।

(३) (गोः) सूर्य के समान तेजस्वी गुरु के (अधि त्वचि) आश्रय या संरक्षकता में (सु-स्वानासः) ज्ञानवान् होते हुए (अद्रिभिः) विद्वानों द्वारा (वि चिताना:) नाना प्रकार का ज्ञान प्राप्त करते हुए (वसु-विदः) आत्मज्ञान के जानने हारे (अस्मभ्यम्) हमें (अभितः) सब ओर से (इषं) ज्ञान का (सम्-अस्वरन्) उपदेश करें ।

३ २ ३ १ २ ३र १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[११०४] अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्रधन्व
३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रध्नश्चिद् यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[११०५] उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद् रणाय ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
[११०६] महीमे अस्य वृष नाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अस्वापयन् निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः
॥ ३ ॥ २१ ॥ ऋ० ६ । ६७ । ५२–५४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५४१] पृ० २७४ ।

(२) हे सोम, परमेश्वर ! (श्रवाय्यस्य) श्रवण करने योग्य उपदेश के दाता तुझ प्रसिद्ध जगद्गुरु के (तीर्थे) ज्ञानसागर से तराने वाले स्थान, या आश्रमस्वरूप (श्रुते) वेद में (अधि) और भी अधिक (एना) इस प्रकार की (पवया) पवित्र करने हारी ज्ञान-धारा या धारणा से (नः) हमारे लिये (पवस्व) उपदेश करो । (वृक्षं न पक्कं) जिस प्रकार फल चाहने वाला पके फलों से लदे वृक्ष को बल से कंपाता है और सहस्रों फल नीचे आ टपकते हैं उसी प्रकार आप (नैगुतः) जो मुख से कभी न कहे जा सकते हों ऐसे अवर्णनीय अत्यन्त गुह्य, ज्ञानों के रक्षक हैं। आप (षष्टिं सहस्रा) ६० हज़ार, या १०६० (वसूनि) ज्ञान रत्नों को (रणाय) आत्मा के आनन्द प्राप्ति के लिये (धूनवत) हमें प्राप्त कराओ ।

(३) (अस्य) इस आत्मा के (इमे) ये (वृष नाम) सुखों का वर्षण और उद्धतों का नमन ये दोनों काम (मही) बड़े भारी (शूषे) सुखकारी, मन के एकमात्र गतिस्थान हृदय में होते हैं । हे साधक (वा) और (पृशने) स्पर्श करने वाले (वधत्रे) हिंसा या पीड़ा से बचाने वाले आश्रय त्वगिन्द्रिय में (निगुतः) छुपे हुए, निगूढ़, काम और क्रोध आदि शत्रुओं को (अस्वापयत्) सुलाता हुआ (स्नेहयत् च) और उन का नाश करता हुआ तू (अमित्रान्) उन शत्रुओं और (अचितः अप) ज्ञान रहितों को दूर कर और (अचेतः) चेतना रहित जड़ पदार्थों, मूर्खों, हृदयहीनों को भी (अप) दूर कर ।

इति षष्ठः खण्डः ।

CC-0.Panihi Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[११०७] अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥१॥

[११०८] वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥२॥

[११०९] तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥

॥ ३॥ २२ ॥ ऋ० ५ । २४ । १, २, ४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४४८] पृ० २२६ ।

(२) (वसुः) सबमें वास करने द्वारा (वसुश्रवाः) ज्ञान का श्रवण करने वाला, ज्ञानधन (अग्निः) ज्ञानवान् (द्युमत्-तमः) अति अधिक तेजस्वी, आत्मा (नक्षि) हृदय में व्यापक है । वह तू हमें (रयिं) समस्त जीवन रूप धन को (अच्छ) भली प्रकार से (दाः) दान करे ।

(३) हे (शोचिष्ठ) कान्ति और तेज से युक्त ! हे (दीदिवः) दीप्तिमान् अग्ने ! प्रभो ! हम (सुम्नाय) सुख के लिये और (सखिभ्यः) अपने समान ख्याति वाले अपने मित्रों और बन्धुओं के लिये (नूनं) अवश्य (तं त्वा) उस आप परम प्रभु से (ईमहे) याचना करते हैं ।

[१११०] इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥१॥

[११११] यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ॥२॥

[१११२] आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥

॥ ३ ॥ २३ ॥ ऋ० १० । १५७ । १, २, ३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४५२] पृ० २२७ ।

(२) (नः) हमारे (यज्ञम् च) आत्मा को (तन्वं चं) और शरीर को (प्रजां च) और प्रजा, सन्तति को (इन्द्रः) परमात्मा (आदित्यैः) द्वादश मासों, या आदित्य स्वरूप विद्वानों और प्राणों के (सह) साथ (सीषधातु) रक्षा करे ।

१११२—२. 'सहचीक्लृपाति' ३. 'अस्माकं भूत्वविता तनूनां' इति च ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (इन्द्रः) आत्मा (मरुद्भिः) प्राणों और (आदित्यैः) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा या वायुओं और ऋतुओं के द्वारा सूर्य के समान (सगणः) अपनी अन्य सहायक शक्तियों सहित (अस्मभ्यं) हमारे लिये (भेषजा) आरोग्यकारक उपाय (करत्) करे।

[१११३-१५] प्रवोऽर्चोप ॥ २४ ॥

भा०—(१) (वः) आप लोग (प्र) परमेश्वर की उत्तम रूप से,

(२) (अर्च) स्तुति करो,

(३) और (उप) उपासना करो।

[सायणाचार्य ने इस मन्त्र को एक ऋचा मान कर व्याख्या की है। माधव ने अपने विवरण में इस मन्त्र को तीन मन्त्रों की एक संक्षिप्त प्रतीक माना है जो क्रम से 'प्र व इन्द्राय०', 'अर्चन्त्यर्कं०', 'उप प्रक्षं मधुम०' इन मन्त्रों के आद्य अक्षरों से बना है। इन तीनों मन्त्रों की क्रम से व्याख्या देखिये अविकल सं० [४४६, ४४५, ४४४] पृ० २२५ तदनुसार इनको यहां संक्षेप से रख देने का प्रयोजन 'उद्वंशपुत्र' नामक ऊहगान को दर्शाना मात्र है।

इति सप्तमः खण्डः।

इति प्रथमोऽर्धः प्रपाठकः।

इति सप्तमोऽध्यायः समाप्तः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथाष्टमोऽध्यायः

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य (द्वितीयोर्धः)

ऋषिः—१ (१–३) वृषगणो वासिष्ठः। (४–१२) २ (१–६) असितः काश्यपो देवलो वा। २ (१०–१२) ११ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा। ३, ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। ४ यजत आत्रेयः। ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। ७ सिकता निवावरीः। ८ पुरुहन्मा आंगिरसः। ६ पर्वतनारदौ शिखण्डिन्यौ काश्यप्यावप्सरसौ वा। १० अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः। १२ वत्सः काण्वः। १३ नृमेध आंगिरसः। १४ अत्रिर्भौमः॥ देवता—१, २, ७, ६, ११ पवमानः सोमः। ४ मित्रावरुणौ। ५, ८, १३, १४ इन्द्रः। ३ इन्द्राग्नी। ३, १२ अग्निः॥ छन्दः—१ (१–३) ३ त्रिष्टुप्। १ (४) २, ४, ५, ६, ११, १२ गायत्री। ७ जगती। ८ प्रगाथः (=विषमा बृहती समा सतो बृहती)। ९ उष्णिक्। १० द्विपदा विराट्। १३ (१–२) ककुप्, (३) पुर उष्णिक्। १४ अनुष्टुप्॥

[१११६] प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति। महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्॥१

[१११७] प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः। अङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम्॥२

[१११८] स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः। परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः॥३

ऋ० ६। ६७। ७–९॥

१११७—'तृपलं मन्यु', 'आंगूष्यं पवमान', 'दुर्मर्षं साकं प्रवदन्ति वाणं'।
१११८—'सरंहत उरुगायस्य' इति ऋ०। ११२३—'जनन्त उषसो भगं'।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
[१११९] प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः ।
१ २ ३ १ २
सोमासो राये अक्रमुः ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १र २र
[११२०] हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः ।
१ २ ३ १ २
भरासः कारिणामिव ॥ ५ ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
[११२१] राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[११२२] परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
१ २ ३ १ २
मधो अर्षन्ति धारया ॥ ७ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[११२३] आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् ।
२ ३ २ ३ १ २
सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ८ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[११२४] अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
वृष्णो हरस आयवः ॥ ९ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[११२५] समीचीनास आशत होता नरः सप्तजानयः ।
३ १र २र ३ १ २
पदमकस्य पिप्रतः ॥ १० ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[११२६] नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे ।
३ १र २ ३ १ २
कवेरपत्यमा दुहे ॥ ११ ॥

११२५—'आसत होतारः', 'सप्त जामयः' ऋ० ।

११२६—'चक्षुश्चित्सूर्ये सचा' । ११२७—'अभिप्रिया दिवस्पदं' इति ऋ० ।

१. तूपलः क्षिप्रहारी, सम्प्रहारी सोमो वा इन्द्रो वा (निरु० ५।२।७)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[११२८] अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् ।
१ २ ३ १ २
सूरः पश्यति चक्षसा ॥ १२ ॥ १ ॥ ऋ० ६ । १० । १–६॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि कल सं० [५२४] पृ० २६३

(२) (हंसासः) नीर क्षीर का विवेक करने हारे हंसों के समान सत्यासत्य का विवेक करने हारे परमहंस योगी लोग (तृपलाः[1]) सत्व, रजस् और तमस् तीनों को पार करके जाने हारे, या काम क्रोधादि को प्रहार करने हारे, उन पर वशी, (वग्नुम्) रमणीय अनाहत नाद को (अच्छ) लक्ष्य करके (वृष गणाः) उत्तम, धर्ममेघ समाधि के साधक योगिजन (अमान्[2]) अव्यक्त बल या ज्ञान से (अस्तं) शरण-योग्य आत्मा को (प्र अयासुः) प्राप्त होते हैं । (सखायः) वे समान आत्मा नाम वाले, या परम प्रभु के प्यारे (साकं) एक साथ (पवमानं) व्यापक (दुर्मर्षं) न सहन करने योग्य, असह्य तेज से युक्त, (अंगोषिणं[3]) इस देह में बसने हारे, कान्तिस्वरूप या स्तुति करने योग्य (बाणं) भोक्ता आत्मा को (प्र वदन्ति) बतलाते हैं, उस का उपदेश करते हैं ।

(३) (सः) वह योगी (उरु-गायस्य) विशाल गुणों वाले, स्तुतियों से स्तुत्य परमात्मा की (जूर्तिं) ज्योति या प्रेरणा को (योजते) समाधि द्वारा साक्षात् करता है । (गावः) अन्य इन्द्रियगण या अन्य लोग (वृथा) अनायास (क्रीडन्तं) नाना प्रकार से जगत्, सर्जन, प्रलय आदि की लीला करते हुए उस परमात्मा को (न) नहीं (मिमते) ज्ञान करते । (सः हरिः) वह सब दुखों का हरण करने वाला, हरि (तिग्म-शृंगः) तीक्ष्ण तेज से युक्त होकर आदित्य के समान (परीणसं) नाना प्रकार का तेज (कृणुते) प्रकट करता है, और वह (ऋज्रः) विस्पष्ट प्रकाश से युक्त ऋजु

२ अमा पुनर्निर्मितं भवति (निरु० ५ । १ । ८)

३. उष दाहे दीप्तौ च । दीप्तं साम इति मा० वि० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग पर चलने हारा, धार्मिक, होकर (दिवा नक्तं) रात दिन (ददृशे) प्रकाशित होता है ।

इसमें सूर्य और स्वराट् योगी का वर्णन है । जिसके मुख पर दिन रात तेज का मण्डल दीखने लगता है ।

(४) (स्वनासः) विशुद्ध रूप में प्रकट होने वाले (सोमासः) ज्ञानी लोग (रथा-इव) वेगवान् रथों के समान और (अर्वन्तः न) अश्वों के समान (श्रवस्यवः) अन्न, ज्ञान और परम ऐश्वर्य की कामना करने हारे (राये) आत्म साक्षात्कार या परमानन्द प्राप्ति के लिये (प्र अक्रमुः) और आगे क़दम रखते हैं ।

(५) वे (रथाः इव) रथों के समान प्रबल वेगवान् होकर और (कारिणाम्) योद्धाओं के (भरासःइव) संग्राम या यज्ञ के कर्त्ताओं के समान (हिन्वानासः) आगे बढ़ते हुए (गभस्त्योः) प्राण और अपान दोनों की साधनाओं द्वारा (दधन्विरे) साधना करते हैं ।

(६) (प्र-शस्तिभिः) उत्तम कीर्त्तियों, स्तुतियों से (राजानः न) राजाओं के समान और (सप्त धातृभिः) सात ज्ञान धारण करनेहारे याज्ञिक ऋत्विजों द्वारा या सात मुख्य प्राणों द्वारा (यज्ञः न) यज्ञ आत्मा के समान (गोभिः) प्रकाश की किरणों द्वारा सूर्यवत् विद्वान् (गोभिः) वेद वाणियों द्वारा (अञ्जते) आत्मा के स्वरूप को प्रकाशित करते हैं । अर्थात् जिस प्रकार राजा अपने आत्मवैभव को स्तुत्य गुणों द्वारा प्रकट करते हैं और जैसे सात ऋत्विज यज्ञ को प्रकट करते हैं । और जैसे प्रमा के साधन इन्द्रिय छिद्र एक प्रमाता आत्मा की सत्ता बतलाते हैं उसी प्रकार विद्वान् सप्त छन्दोमयी वेदवाणियों से आत्माका निरूपण करते हैं ।

(७) (इन्दवः) ज्ञान सम्पन्न योगिजन (स्वानासः) ब्रह्मरस का सम्पादन करते हुए, (वर्हणा) बड़ी, ब्रह्मरूप ज्ञानमयी (गिरा) वेदवाणी द्वारा (मधोः) अमृत रस या आत्मानन्द की (धारया) धारक शक्ति से युक्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर (मदाय) ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिये (परि अर्षन्ति) और आगे बढ़ते हैं। [देखो अवि० सं० ४८५। पृ० २४५]

(८) (अपानासः) अपान को वश करने हारे देह वा धन से आत्मा को पृथक् मुक्त कर लेने में समर्थ योगिजन (विवस्वतः) विशेष रूप से देह में निवास करने हारे आत्मा के (उपसः) पापदाहक, तमोनाशक तेज के (भगम् ऐश्वर्य) को (जिन्वन्ति) प्राप्त करते हैं। वे (सूराः) सूर्य के समान आदित्य योगी उस (अण्वं) अति सूक्ष्म आत्म-तत्व को (वि तन्वते) विशेष रूप से साक्षात् करते उसकी सूक्ष्म शक्तियों को बढ़ा लेते हैं।

(९) (प्रत्नाः) पुरातन, उत्कृष्ट अभ्यासी, (कारवः) योगक्रिया के करने हारे (वृष्णः) वर्षणशील, सुखवर्षक आत्मा के (हरसः) स्वरूप को प्राप्त होने वाले (आयवः) उस तक पहुंचे हुए जन (मतीनां) मननशील शक्तियों के अज्ञान से आवृत (द्वारः) द्वारों को (अप ऋण्वन्ति) खोल डालते हैं।

(१०) जिस प्रकार यज्ञ में एक यजमान व्यक्ति का कार्य सम्पादन करने के लिये सात होता लोग बैठते हैं उसी प्रकार (समीचीनासः) उत्तमरूप से गति या ज्ञान सम्पादन करने हारे, शान्तस्वरूप, सोमस्वरूप (सप्त) सात, या प्रसर्पणशील, प्राण (होतारः) आत्मा का अनुसन्धान करनेहारे, (जामयः) ज्ञानोत्पादक इन्द्रियगण और विद्वान्जन (एकस्य) एक ही आत्मा के (पदं) स्थान, स्वरूप, ज्ञान या सामर्थ्य को (पिप्रतः) पूर्ण करते हुए (आशत) विराजते हैं, आनन्द का भोग करते हैं।

(११) (नाभिं) सबको केन्द्र रूप होकर बांधने हारे आत्मा को (नः) हम (नाभा) अपने शरीर के केन्द्र, या मुख्य बन्धनस्थान अपने मन में (आ ददे) धारण करें जिससे (चक्षुपा) ज्ञानचक्षु से हम (सूर्यं) सर्वप्रेरक, प्रकाशक, आदित्यरूप परमात्मा का (दृशे) दर्शन करें। (कवेः) क्रान्तदर्शी, मेधावी के (अपत्यं) अविनाशी अपने आश्रित को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे न गिरने देने वाले ध्रुव स्वरूप परमात्मा के (आ दुहे) आनन्द रस का ग्रहण करें ।

अपत्यं कस्मादपततं भवति, न अनेन पतति, निरु० ३ । १ । १ ॥

(१२) (सूरः) सूर्य के समान आदित्य योगी, उत्तम योगबल से सम्पन्न होकर (चक्षसा) दिव्य चक्षु द्वारा (अभि प्रियं) अत्यन्त मनोहर (अध्वर्युभिः) जीवन यज्ञ के सम्पादक, इन्द्रियों के सूक्ष्म सामर्थ्यों सहित (गुहा हितम्) हृदयाकाश रूप गुहा, या गुह्यरूप परमात्मा के भीतर (दिवः) दीप्त तेजःस्वरूप आत्मा के (पदं) स्वरूप को (पश्यति) देखता है ।

दिवस्पदं तस्यात्मनः पदम् (सा०) ।

इति प्रथमः खण्डः ।

[११२८] असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।
विदाना अस्य योजना ॥ १ ॥

[११२९] प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते ।
हविर्हविःषु वन्द्यः ॥ २ ॥

[११३०] प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद् वने ।
सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥

[११३१] परि यत् काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति ।
स्वर्वाजी सिषासति ॥ ४ ॥

११२९—'मध्वो अग्रियो' इति ऋ० ।

११३१—'नृम्णा वसानो' ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
[११३२] पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
[११३३] अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।
३ १ २ ३ २
रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १र २र
[११३४] स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।
२ ३ १ २ ३ १ २
रणा यो अस्य धर्मणा ॥ ७ ॥

२ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ ३
[११३५] आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः ।
३ १ २ ३ १ २
विदाना अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[११३६] अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।
२ ३ १ २ ३ १ २
श्रवो वसूनि सं जितम् ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[११३७] आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ १० ॥

२ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[११३८] आमन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ११ ॥

२ ३ १र २र ३ २ ३ १ ३ ३ २
[११३९] आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।
२ ३ १ २ ३ १ २
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥ २ ॥

आद्या नव ऋ० ९ । ७ । १–९ । शेषास्तिस्रः ऋ० ९ । ६५ । २८–३० ॥

११३३—'अव्यो वारे' ।
११३४—'अस्य धर्मभिः' । ११३५—'आ मित्रा वरुणा भगं' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) (इन्दवः) आत्मसम्पत्ति से सम्पन्न, शमादि गुणयुक्त योगीजन, (ऋतस्य) सत्यज्ञान के (धर्मन्) धारण करने हारे परमात्मा के स्वरूप में (सु-श्रियः) उत्तम रूप से आश्रय प्राप्त करने वाले (पथा) सत्य ज्ञान के मार्ग से (अस्य) इस आत्मा के (योजना) योग-समाधि द्वारा मिलापों के आनन्दों का (विदाना) लाभ करते हुए (असृग्रम्) कृतकृत्य होजाते हैं। अथवा—(सुश्रिय ऋतस्य धर्मन्) उत्तम ऐश्वर्य सम्पन्न सत्यस्वरूप परमेश्वर के जगत् धारक स्वरूप में योग समाधि द्वारा सन्मार्ग से उसका ज्ञान लाभ कर कृतकृत्य होजाते हैं।

(२) (हविःपु) समस्त अभिलाषा योग्य, या इष्टदेव को समर्पण करने योग्य पदार्थों में भी उत्तम (हविः) स्वीकार करने और वरने योग्य पदार्थ आत्मा ही (वन्द्यः) स्तुतियोग्य है। वह (महीः) बड़े (अपः) ध्यान, धारणाओं, और कर्मों और प्रज्ञाओं को समुद्रों के समान (वि गाहते) पार कर जाता है और (मधोः) अमृत की (अग्रियः) आगे प्रकट होने हारी, मुख्य, उत्तम (धाराः) शक्तियों की (प्र) प्राप्त करता है।

(३) (अग्रियः) मुख्य या प्रबल (वृषा उ.) सुखों का वर्षक आत्मा ही है (वाचः) वाणियों को (वने) भजन करने योग्य ब्रह्म में (अचिक्रदद्) उच्चारण करता है। वह योगी आत्मा (सत्यः) सत्याचरण करने हारा, सज्जनों में श्रेष्ठ, (अध्वरः) किसी की हिंसा न करने हारा, (सद्म) अपने आश्रयस्वरूप, परम शरण परमेश्वर को (अभि) प्राप्त होता और साक्षात् करता है उसी प्रकार आप लोग भी उसी प्रभु के प्रति (अग्रियः वाचः प्रयुज) उत्तम २ वेद वाणियों का प्रयोग करो। उनका एकाग्र चित्त से मनन करो।

(४) (यत्) जब (कविः) मेधावी, ज्ञानवान् (नृणा) मनुष्यों के मननशील साधन, चित्तों को (पुनानः) शुद्ध पवित्र करता हुआ (काव्या) उत्तम वेदवाणियों का (परि अर्षति) ज्ञान प्राप्त करता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब वह (वाजी) ज्ञानवान् होकर (स्वः) परमसुख, मोक्षरूप आनन्द को (सिपासति) सेवन करता है।

(५) (यद्) जब (ईम्) इस आत्मा को (वेधसः) योगसाधक ज्ञानी लोग (ऋण्वन्ति) प्राप्त करते हैं तब (पवमानः) देदीप्यमान, आत्मा (अभि-स्पृधः) स्पर्धा करने हारे, विघ्नकारी, बाधक कारणों या व्युत्थान लक्षणों को दूर करके (विशः राजा इव) प्रजाओं पर राजा के समान (सीदति) प्रबल होकर बैठता है।

(६) (हरिः) दुःखों के विनाशक आत्मा (प्रियः) अत्यन्त प्यारा होकर (वनेषु) देहों में (अव्याः वारे) चितिशक्तिरूप अवि के आवरणकारी, या वरण-योग्य त्रिपुटी आदि स्थान में (परि सीदति) विराजता है। और (रेभः) अप्रतिहत नाद करने हारा, या स्तुतिशील (मती) मननशक्ति द्वारा (वनुष्यते) प्राप्त किया जाता है।

वनुष्यतिर्हन्तिकर्माऽनवगतसंस्कारो भवति (निरु० ५ । १ । २)

(७) (यः) जो (अस्य) इस सोम के (धर्मणा) धारणयोग्य गुण या धारणा बल से (रणा) रमण करता है, (सः) वह आत्मज्ञानी (वायुम्) प्राणवायु, (इन्द्रम्) आत्मा और (अश्विनौ) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों को (मदेन साकं) आनन्द और हर्ष के साथ (गच्छति) वश कर लेता है।

(८) (मधोः) हर्षकारक आनन्दरूप सोमरस की (ऊर्मयः) ऊर्ध्वगतियां या तरंगें (मित्रे) प्राण और (वरुणे) अपान और (भगे) समान में (आ पवन्ते) सर्वत्र गति करती हैं। और साधकजन (अस्य) इस आत्मा की (शक्मभीः) शक्तियों द्वारा (विदानाः) उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

(९) हे (रोदसी) सूर्य और पृथिवी, प्राण और अपान तुम दोनों (अस्मभ्यं) हमें (वाजस्य) ज्ञान और (मध्वः) आनन्दस्वरूप अमृत की (सातये)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति के लिये (रयिं) प्राण सामर्थ्य, बल, (श्रवः) उपदेश, (वसूनि) जीवनोपयोगी पदार्थों पर (सं जितं) वश कराओ ।

(१०) हे सोम ! हम लोग (अद्य) आज (मयोभुवं) शान्ति को उत्पन्न करने हारे, (वह्निम्) शक्तियों के वहन करने हारे, (पान्तं) हमारे पालक, (पुरु स्पृहं) सब के कामना के योग्य, (न दक्षं) तेरे बल को (आ वृणीमहे) उत्तम समझ कर सर्वत्र प्राप्त करते हैं । अवि० [४९८]

(११) हे सर्वोत्पादक ! (मन्द्रम्) आनन्द के दाता (वरेण्यम्) वरण करने योग्य, सर्वोत्तम, (विप्रं) मेधावी और (मनीषिणं) सबके हृदयों को प्रेरणा करने हारे, (पान्तं) सब के पालक, (पुरुस्पृहम्) सब के प्रेमपात्र आपको हम (आ, आ, आ) साक्षात् करते हैं उसी को प्राप्त करें, उसी का लाभ करें ।

(१२) हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्म और ज्ञान से युक्त ! प्रज्ञा से सम्पन्न ! हे (सोम) सब के प्रेरक ! (रयिम्) रयिस्वरूप (सु-चेतुनम्) उत्तम ज्ञाता (तनूषु आ) हमारे देहों में भी व्याप्त (पान्तं) रक्षक (पुरु-स्पृहम्) प्रजा के प्रेमपात्र और सबके स्नेही आपको (आ आ) वरण करते, साक्षात् करते हैं ।

इति द्वितीयः खण्डः ।

---

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २
[११४०]मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निम्
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः॥१

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
[११४१]त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २ ३ २ ३ १र २र
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत् पित्रोरदीदेः ॥२॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
[११४२]नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३   २ ३क २र ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ २
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः॥३॥३॥

ऋ० ६ । ७ । १, ४, २ ॥

भा० —(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [६०] पृ० ३५।

(२) हे अमृत, मरणहित, अमृतस्वरूप ! हे अग्ने, ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आत्मन् ! (शिशु न) लोग बालक के प्रति जिस प्रकार प्रेम से आकृष्ट होकर उसको बार २ देखने की इच्छा से उस पर झुकते और प्रेम प्रकाश करते हैं (विश्वे देवाः) समस्त दिव्यगुणयुक्त सूर्य, चन्द्र, वायु आदि पदार्थ और विद्वान् गण उसी प्रकार (शिशुं) सर्वत्र गुप्त, सुप्त अव्यक्त रूप से व्यापक (जायमानं) अपने सामर्थ्य से सर्वत्र प्रकट होने हारे (त्वा) आपका (अभि सं नवन्त) साक्षात् कर स्तुति करते हैं। हे (वैश्वानर) समस्त मनुष्यों के हृदयों में व्यापक ! वे विद्वान् योगी लोग (तव) आपके हां (क्रतुभिः) उपदिष्ट कर्मों और ज्ञानों द्वारा (अमृतत्वम् आयन्) अमृतत्व या मोक्षपद को प्राप्त करते हैं। और (यत्) जो आपका रसरूप तेज (पित्रोः) माता पिता के बीच में पुत्र के समान ही देह के पालक प्राण और अपान के मध्य सुषुम्ना नाड़ी में है, वह (अदीदेः) प्रकाशित होता है।

(३) (यज्ञानां) देवपूजा, सत्संग, मैत्री और समस्त दान पुण्य आदि परोपकार के कार्यों के (नाभिं) एकमात्र आश्रय, केन्द्र (रयीणां सदनं) समस्त ऐश्वर्यों और वीर्य-सामर्थ्यों के भण्डार (महां) बड़े भारी (आहावं) तृष्णा को शान्त करने के निमित्त सब को अपने प्रति बुलाने वाले जलाशय के समान जीवनाधार रस के समुद्र, आपको (देवाः) विद्वान् लोग (अभि सं नवन्ते) साक्षात् स्तुति करते हैं। और उसको (अध्वराणां) समस्त हिंसा रहित पवित्र कार्यों के (रथ्यम्) महारथी के समान वहन करनेहारे (वैश्वानरं) समस्त हृदयों में व्यापक, सबके नेता और (यज्ञस्य) आत्मा का (केतुं) ज्ञापक (जनयन्त) बतलाते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
[११४३] प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।
१ २ ३ २ ३ २
महित्त्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
[११४४] सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
३ २ ३ १ २ ३ २
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[११४५] ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
१ २ ३ २ ३ १ २
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥ ४ ॥ ऋ० ५ । ६८ । १-३ ॥

भा०—(१) (वः) आप लोग (मित्राय) जीवन को स्नेह करने हारे प्राण और (वरुणाय) दोषों का वरण करने वाले अपान को या विद्वान् और उपदेशक को (विपा) ज्ञानयुक्त, मन से प्रेरित, सार्थक (गिरा) वाणी से (प्र गायत) स्तुति करो । हे मित्र और हे वरुण, (महिक्षत्रा) बड़े बलशाली आप दोनों (बृहत्) बड़े भारी (ऋतं) सत्य आत्मज्ञान को प्रकाश करते हो ।

(२) (या) जो (मित्रः च वरुणः च) मित्र और वरुण प्राण और अपान हैं वे (उभा) दोनों (घृत-योनी) कान्ति, प्रकाश और तेज के उत्पत्ति-स्थान और (सम् राजा) स्वयं उत्तम रीति से प्रकाश देनेहारे (देवेषु) दिव्य पदार्थों, विद्वानों और इन्द्रियगण में (प्र-शस्ता) प्रशंसा योग्य (देवा) सुख के दाता हैं ।

(३) (ता) वे दोनों (नः) हमारे लिये (पार्थिवस्य) पृथिवी और (दिव्यस्य) आकाश से होने वाले (महः) बड़े भारी (रायः) ऐश्वर्य, सामर्थ्य को (शक्तं) भोगने और धारण करने में समर्थ हैं । (देवेषु) समस्त दिव्य पदार्थों और विद्वानों में (वां) आप दोनों का भी (महि क्षत्रं) बड़ा भारी बल है ।

CC-0,Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[११४६] इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥

[११४७] इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥

[११४८] इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥ ४ ॥ ऋ० १ । ३ । ४–६ ।

भा०—हे (इन्द्र) परमात्मन् ! हे (चित्र-भानो) आश्चर्यकारक ज्ञानों और प्रकाशों से सम्पन्न ! (आ याहि) हमें तू प्राप्त हो । (इमे) ये समस्त (सुताः) संसार के पदार्थ (त्वायवः) तेरे आश्रय पर हैं और (अण्वीभिः) कारणस्वरूप, सूक्ष्म प्रकाशावयवों द्वारा (तना) विस्तृत विरचित और (पूतासः) पवित्र होने से ग्रहण करने योग्य हैं । अथवा (अण्वीभिः पूतासः) योग-साधनाओं से पवित्र (सुताः) ये ऐश्वर्यवान् योगीजन (त्वायवः) तेरी कामना करते हैं, तुझे चाहते हैं, तू इन्हें प्राप्त हो ।

(२) हे (इन्द्र) परमात्मन् ! (धिया) बुद्धि या उत्तम कर्म द्वारा (इषितः) प्राप्त करने योग्य (विप्र-जूतः) विद्वानों से जाना गया, (सुत-वतः) ज्ञान से सम्पन्न (वाघतः) वेदार्थ को जानने हारे विद्वान् ब्राह्मणों के (ब्रह्माणि) वेद मन्त्रों द्वारा की स्तुतियों को तू (उप याहि) प्राप्त हो ।

(३) हे (इन्द्र) विद्वन् या प्राणवायो ! (हरिवः) हरणशील अश्वरूप इन्द्रियों के स्वामिन् ! (तूतुजानः) वेगवान् आप (सुते) उत्पन्न जगत् में व्यापक (ब्रह्माणि) वेदमन्त्रों की स्तुतियों या उस के ज्ञाता विद्वानों को (आ याहि) प्राप्त कर और (नः) हमारे (चनः) स्तुतियों को (दधिष्व) स्वीकार करो ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[११४९] तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १ ॥

[११५०] य इन्द्र आ विवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः ।
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ २ ॥

[११५१] ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः ।
एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥ ३ ॥६॥ ऋ० ६ । ६० । १०–१२ ॥

भा०—(१) हे मनुष्य ! (तम् अग्निम्) सबके पापों के दहन करने हारे ज्ञानमय उस परमात्मा की (ईडिष्व) उपासना कर (यः) जो (अर्चिषा) अपने तेज से (विश्वा) समस्त (वना) भोगने योग्य कर्म बंधनों को वनों में अग्नि के समान (परिष्वजत्) जा लगता है और जैसे अग्नि वनों में लगकर उनको जलाकर काला कर देता है उसी प्रकार वह अपनी (जिह्वया) अग्नि की ज्वाला के समान भस्म करने वाली शक्ति या वेदवाणी से सबको (कृष्णा) छिन्न भिन्न, दग्ध, निष्पाप (कृणोति) कर डालता है । जंगलों को जला देने वाली अग्नि से कर्मदाहक ज्ञानाग्नि की तुलना है ।

(२) (यः मर्त्यः) जो मरणधर्मा मनुष्य (इन्द्रः) स्वयं प्रकाशित, ज्ञानवान् होकर (इन्द्रस्य) आत्मा के (सुम्नं) सुख करने वाले ज्ञान को (आ विवासति) उद्घाटन करता है उस (द्युम्नाय) प्रकाशस्वरूप ज्ञानी के लिये (अपः) कर्म-बन्धन (सुतराः) सुख से तरण योग्य हो जाते हैं ।

(३) हे प्राण और अपान ! (ताः) वे आप दोनों (वाजवतीः इषः) ज्ञानसम्पन्न कामनाओं और (आशून्) शीघ्रगामी वेगवान् (अर्वतः) ज्ञानेन्द्रियों को (पिपृत) तृप्त करो जिससे हम (इन्द्रम्

११४९—३. 'इन्द्रमग्निं च' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निम् च) इस आत्मा और उस ज्ञानस्वरूप ईश्वर को (वोढवे) अपने में सुख से धारण करने में (आ) समर्थ हों।

इति तृतीयः खण्डः ।

---

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १र
[११५२] प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र
२र ३ १ २ १२ ३ २ ३ १२ ३ १ २
मिनाति सङ्गिरम् । मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः
३ १ २ ३ १ २ ३ २
कलशे शतयाम्ना पथा ॥ १ ॥

१ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
[११५३] प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्व-
२ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १
क्रमुः। हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसे-
२
दशिश्रयुः ॥ २ ॥

१ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[११५४] आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान
३ १ २ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ ३ १र २र ३
ऊर्मिणा । या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद् वाजवन्
१ ३ १ २
मधुमत् सुवीर्यम ॥३॥७॥ ऋ० ९ । ८६ । १६-२८ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५५७] पृ० २८४ ।

(२) हे (सोमाः) विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों की (धियः) प्रज्ञाएं, बुद्धयां, वाणियां (मन्द्र-युवः) आनन्दस्वरूप परमात्मा की तरफ़ लगी हुई (पनस्युवः) स्तुति करने की इच्छा करती हुई, (वि-पन्युवः) और स्तुति करती हुई (सं-वरणेषु) हृदयों में विशेषरूप से या विविध यज्ञगृहों सभास्थानों, विद्वन्-मण्डलों में (अक्रमुः) फैलती हैं । (स्तुभः) विद्वान् लोग (क्रीडन्तं) जगत का सर्जन और (हरिं) प्रलय करने हारे

११५२—१. 'शतयाम्ना' २. 'संवसनेष्वक्रमुः' 'सोमं मनीषा अभ्यनूषत' 'पयसे माशिश्रयुः' 'पवमानो अस्रुधं' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा को (इत्) ही (अभिअनूषत) साक्षात् स्तुति करते हैं और (धेनवः) रसपान करने कराने हारे व्याख्याता लोग भी अपने (पयसा) वर्णनरस से, दुग्धरस से गौवों के समान उसको ही (अशिश्रयुः) अपना आधार बनाते हैं। अथवा (धेनवः) वेदवाणियां (पयसा) अपने ज्ञानरस से उसका ही अभिषेक करती हैं।

(३) हे (इन्दो) तेजस्विन् ! (सोम) हे सर्वप्रेरक ! सर्वोत्पादक ! (पवमान) सर्वत्र व्यापक ! (या) जो (नः) हमारे लिये (अहन्) दिन में (त्रिः) तीनवार (असश्चुषी) विना रोक टोक के (क्षुमत्) कीर्त्तियुक्त (वाजवत्) बलयुक्त, ज्ञानयुक्त (मधुमत्) आनन्दरस से पूर्ण (सु-वीर्यम्) उत्तम बल (दोहते) प्राप्त करावे ऐसी (संयतं) उत्तम रीति से सुप्रबन्ध युक्त (पिष्युषीम्) सदा वृद्धि करने हारी (इषं) समृद्धि को (ऊर्मिणा) अपनी अनन्त शक्ति से (पवस्व) प्राप्त कराओ।

२ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[११५५] नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम्।
२ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥ १ ॥
१ २ ३ १र २र ३ १र २२ ३ १ २ ३ १ २
[११५६] अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥२॥
॥८॥ ऋ० ८ । ७० । ३-४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२४३] पृ० १२४।

(२) (यस्मिन्) जिसके (जायमाने) प्रादुर्भाव होने पर (उरुज्रयः) अति वेगवान्, पराक्रमी (महीः) बड़ी २ (धेनवः) गौओं के समान अधिक सम्पत्ति देनेहारे प्रजागण या विद्वान्गण (अनोनवुः) झुकते और स्तुति करते हैं। उस (अषाढं) असह्य (उग्रं) तेजस्वी,

११५५—'धृष्णुमोजसा' २. 'अषाळ्हं' 'द्यावः क्षामो' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृतनासु सासहिं) सेनाओं में सबसे अधिक सामर्थ्य वाले शासक के प्रति (द्यावः) तेजस्वी, उत्तम श्रेणी के धनाढ्य और ज्ञानी पुरुषगण या साधारण प्रजाएं (क्षामीः) पृथिवी के निवासी जमींदार या भूपाल भी (अनोनुवः) विनयपूर्वक स्तुति करते हैं। आत्मपक्ष में—पृतना = इन्द्रियगण। धेनवः—वाणियां, वेद-ऋचाएं आधिदैविक पक्ष या ब्रह्मपक्ष में, धेनवः = वेदवाणियां, द्यावः, क्षामीः = तेजोमय लोक और पार्थिव लोक।

इति चतुर्थः खण्डः

---

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
[११५७] सखाय आ निषीदत पुनानाय प्रगायत।
२ ३ ३ १र २र ३ २
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[११५८] समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्।
३ २ १ २ ३ १र २र
देवाव्यां३मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[११५९] पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥ ३ ॥ ५ ॥

ऋ० ९। १०४। १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५६८] पृ० २९०।

(२) (मातृभिः) माताओं से जिस प्रकार (वत्सं न) बच्चे या बछड़े को उनका दूध प्राप्त करने के लिये मिलाया जाता है उसी प्रकार (ईं) इस सोम रूप शुक्र को (मातृभिः) ज्ञान के साधन इन्द्रियों और मनन-शक्तियों से और (सोमं मातृभिः) जिज्ञासु शिष्य को ज्ञान कराने वाले गुरुओं से (अभि सं सृजत) साक्षात् रूप से संयोजित करो। उस (गय-साधनम्) समस्त प्राणों को वश करने हारे, (देवाव्यं) दिव्य कान्ति, सामर्थ्य और बल के प्रेरक, प्रकाशक या रक्षक (मदम्) हर्षकारक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (द्वि-शवसं) ज्ञान और कर्म दोनों प्रकार के बल को धारण करनेहारे वीर्य तथा शिष्य को (अभि) उत्तम रूप से सम्पादन करो, शिक्षित करो।

(३) (दक्ष-साधनं) शरीर के बल को सम्पादन करने वाले इस सोम अर्थात शुक्र को इस प्रकार (पुनात) सम्पादन करो, प्राप्त करो कि (यथा) जिस प्रकार वह (शर्धाय) शरीर के बल की वृद्धि और (वीतये) कान्ति के निमित्त हो। और (यथा) जिस प्रकार (मित्राय) प्राण और (वरुणाय) अपान इन दोनों जीवनाधारों के लिये भी (शन्तमम्) अति अधिक सुख और कल्याणकारक हो।

[११६०] प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम्॥१

[११६१] स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः॥२

[११६२] प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥ ३ ॥ १० ॥ ऋ० ९ । १०९ । १६–१८ ॥

भा०—(१) (वाजी) शक्तिमान्, ज्ञानी या आनन्दरस (सहस्र-धारः) सहस्रों धारण करने वाली शक्तियों से युक्त होकर (अव्यं) ध्रुव, प्राणमय, (पवित्रं) पावन करने हारे (वारं) वरणीय, या दुःखों के वारक आत्मा को (तिरः वि प्र अक्षाः) साक्षात्, नाना प्रकार से उत्तम रीति से प्राप्त हो।

(२) (सः) वह सोम योगी का आत्मा या आनन्दरस (वाजी) ज्ञानवान्, बलवान्, (सहस्र-रेताः) सहस्रों पदार्थों का मूलकारण, सहस्रों शक्तियों से युक्त (अद्भिः) कर्मों और प्रज्ञाओं से (मृजानः) पवित्र होता हुआ, अधिक विस्पष्ट होता हुआ (गोभिः) वाणियों द्वारा (श्रीणानः) परिपक्व होकर (अक्षाः) हृदय में प्रकट हो।

(३) हे (सोम) आत्मन् ! (नृभिः) नेताओं द्वारा (येमानः) हृदय-देश में यम नियमों द्वारा या ईश्वर-प्रणिधान द्वारा विचार किया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाकर (अद्रिभिः) स्थायी अखंडित तपःकर्मों, या ज्ञानी पुरुषों से (सुतः) साधित होकर (कुक्षा) आत्माकाशरूप गुहा में (प्र याहि) आ, प्रकट हो।

[११६३] ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे।
ये वादः शर्यणावति ॥ १॥

[११६४] य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम्।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २ ॥

[११६५] ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम्।
स्वाना देवास इन्दवः ॥ ४ ॥ ११ ॥

ऋ० ९ । ६५ । २२–२४ ॥

भा०—(१, २, ३) (ये) जो (सोमासः) सोम, विद्वान् लोग (परावति) दूर देश में और (ये) जो (अर्वावति) समीप-देश में और (ये वा) जो (शर्यणावति) विषम अरण्यभूमि में और जो (आर्जीकेषु) ऋजु और सरल, सम देशों में और जो (पस्त्यानां) गृहमेधी, गृहस्थियों के (मध्ये) बीच में (कृत्वसु) बनाये हुए गृहों में, (ये वा) और जो (पञ्चसु जनेषु) पांचों प्रकार के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र और पांचवें निषाद जो चारों वर्णों के भी धर्म पालन न कर सकने के कारण देश या नगर की सीमा से बाहर बसा दिये जाते हैं उनमें भी (सोमासः) ज्ञानसम्पन्न विद्वान् लोग (सुन्विरे) ज्ञान और ऐश्वर्य का सम्पादन करते हैं (ते) वे (नः) हमें (दिवः) आकाश या प्रकाश और शुभ पदार्थों की ज्ञान प्रकाश से उत्तम हितोपदेशों की (वृष्टिं) वर्षा अर्थात् अति अधिक राशि को (परिपवन्तां) दें और (सुवीर्यम्) हमें उत्तम बल भी प्राप्त करावें । क्योंकि (देवासः) विद्या आदि शुभ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य गुणों से युक्त विद्वान् (स्वानाः) ज्ञानी पुरुष ही (इन्दवः) सोम या 'इन्दु' कहाते हैं ।

इति पञ्चमः खण्डः ।

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
[११६६] आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात् ।
२ ३ १ २ ३ २
अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ १ ॥

३ २उ ३२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[११६७] पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः ।
३ १ २
समत्सु त्वा हवामहे ॥ २ ॥

३ २ ३ १र २र ३ १ २
[११६८] समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे ।
१ २ ३ १ २
वाजेषु चित्रराधसम् ॥ ३ ॥ १२ ॥

ऋ० ८ । ११ । ७–९ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [८] पृ० ४ ।

(२) हे अग्ने, परमात्मन् ! (पुरुत्रा) समस्त प्रजाओं को आप (सदृङ्) समान दृष्टि से देखने वाले (असि) हो । (विश्वाः दिशः अनु) समस्त दिशाओं में (प्रभुः) आप ही ईश्वर, उत्तम सामर्थ्यवान् हो । (समत्सु) आनन्द, उत्सवों, यज्ञों और संग्रामों के अवसरों पर (त्वा) तेरी ही (हवामहे) याद करते हैं, तुझे पुकारते, तुझसे याचना करते हैं ।

(३) हम (समत्सु) एकत्र आनन्द उत्सवों, यज्ञों और संग्रामों के अवसरों में (वाजेषु) ज्ञान, बल और अन्नादि की प्राप्ति, उत्पत्ति और वृद्धि के कार्यों में (वाजयन्तः) ज्ञानों और ऐश्वर्यों की कामना करते हुए या बल प्राप्त करते हुए हम (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (चित्र-राधसम्) आश्चर्य जनक अद्भुत ऐश्वर्य के स्वामी (अग्निम्) आगे के नेता-स्वरूप, आचार्य, परमगुरु परमात्मा का ही (हवामहे) स्मरण करते हैं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[११६९] त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनासहम् ॥ १ ॥

[११७०] त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥

[११७१] त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ १३ ॥

ऋ० ८ । ९८ । १०–१२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखिये अवि० सं० [४०५] पृ० २०७ ।

(२) हे (वसो) सब में निवास करने हारे सर्वव्यापक ! (त्वं हि) आप ही (नः) हमारे (पिता) पालक हैं । (त्वं) आप (माता) माता के समान उत्पादक और ज्ञानदाता (बभूविथ) सदा से हैं । (अध) और हे (शतक्रतो) सैकड़ों ज्ञानों, कर्मों को अनायास सम्पादन करने वाले ! हम (ते) आपके (सुम्नं) आनन्द सुख की (ईमहे) प्रार्थना करते हैं ।

(३) हे (शुष्मिन्) सर्वशक्तिमन् ! हे (पुरु-हूत) बहुतों से स्तुति योग्य ! हे (सहस्कृत) सब बलों और बलशाली शक्तिमान् पदार्थों के उत्पादक ! (वाजयन्तम्) ज्ञान और बल को दान करने हारे आपसे मैं (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूँ कि (सः) वह आप (नः) हमें (सु-वीर्यम्) उत्तम बल, वीर्य और पुत्र, तेज और यश (रास्व) प्रदान करें ।

[११७२] यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभया हस्त्याभर ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[११७३] यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥ २ ॥

[११७४] यत् ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥ ३ ॥ १४ ॥

ऋ० ५ । ३९ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अधि० सं० [३४५] पृ० १८० ।

(२) हे इन्द्र ! परमात्मन् ! (यत्) जो (द्युक्षम्) अन्न, धन और यश आप (वरेण्यं) वरण करने योग्य श्रेष्ठ (मन्यसे) जानते हैं (तद्) वही (आ भर) हमें प्राप्त करावें । (तस्य) उस अचिन्त्य महिमा वाले (अकूपारस्य) अति सुन्दर, अनिन्दनीय, असीम परम आनन्द के सागरस्वरूप, सबको उत्तमरूप से पालन करने हारे (ते) तुझ (दावनः) दानशील के दान को (वयम्) हम (विद्याम) प्राप्त करें ।

(३) हे (अद्रिवः) ज्ञानस्वरूप वा प्रलय करने हारी शक्ति के मालिक ! (यत्) जो (ते) तेरा (दित्सु) समस्त दिशाओं में (प्रराध्यं) उत्तम रूप से आराधन करने योग्य, (बृहत्) बड़ा विशाल, (श्रुतं) श्रवण करने योग्य (मनः) मनन करने योग्य बल और ज्ञान है (तेन) उस से ही (दृढा चित्) अति अधिक पुष्ट, उत्तम (वाजं) ज्ञान और बल को (सातये) सबको समान रूप से दान करने के लिये (आ दर्षि) खण्ड २ करके, अनुभव और विचारक्रम से देते हो ।

इति षष्ठः खण्डः ।

इति द्वितीयोऽर्धः ।

इति चतुर्थः प्रपाठकः समाप्तः । इत्यष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥

११७२—'उपश्रुवे सहस्कृत' इति ऋ० ।

११७३—'दावने' । ११७४—'यत्ते दित्सु' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पञ्चमः प्रपाठकः (प्रथमोऽर्धः)

अथ नवमोऽध्यायः ।

ऋषिः—१ प्रतर्दनो दैवोदासिः । २–४ असितः काश्यपो देवलो वा । ५, ११ उचथ्य आङ्गिरसः । ६, ७ अमहीयुराङ्गिरसः । ८, १५ निध्रुविः कश्यपः । ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १० सुकक्ष आंगिरसः । १२ कविर्भार्गवः । १३ देवातिथिः काण्वः । १४ भर्गः प्रागाथः । १६ अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च । १७ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः १८ उशनाः काव्यः । १९ नृमेध आंगिरसः । २० जेता माधुच्छन्दसः ॥ देवता—१–८, ११, १२, १५–१७ पवमानः सोमः । ९, १८ अग्निः । १०, १३, १४, १९, २० इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ९ त्रिष्टुप् । २, ८, १०–११, १५, १८ गायत्री । १२ जगती । १३—१४ प्रगाथः (विषमा बृहती, समासतो बृहती) । १६, २० अनुष्टुप् । १७ द्विपदा विराट् । १९ उष्णिक् ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[११७५] शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।
३ २ ३ १र २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
कविर्गीर्भिष्काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१॥

१ २ १ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ २
[११७६] ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः
२ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
कवीनाम् । तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो
३ २ ३ १ २ ३ २
विराजमनु राजति ष्टुप् ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
[११७७] चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयु-
३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
धानि बिभ्रत् । अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम
३ १ २
महिषो विवक्ति ॥ ३ ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ९६ । १७–१९ ॥

११७५—'वाहि मरुतो' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) विद्वान् लोग (मरुतः गणेन) अपने प्राणों के गण प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, देवदत्त, कृकल, धनंजय, नाग, कूर्म आदि, अथवा मूर्धा स्थान के ७ प्राणों द्वारा (जज्ञानं) ज्ञान प्राप्त करने हारे (हर्यतं) कान्तिस्वरूप, सब के प्रकाशक (विप्रं) ज्ञान और कर्म से सम्पन्न, (शिशुं) शरीर में शयन करने हारे, आत्मा को (मृजन्ति) शुद्ध करते और (शुम्भन्ति) नाना गुणों से सुशोभित करते हैं। (कविः) क्रान्तदर्शी, तत्त्वज्ञानी मेधावी, पुरुष (काव्येन) क्रान्तदर्शी परम ज्ञानी परमेश्वर के ज्ञानमय वेदमय काव्य से (कविः) अन्यों को ज्ञान देने हारा (सन्[1]) परमगति को प्राप्त, मुक्त होकर (सोमः) सौम्यगुणवान्, आनन्द और शमादि से सम्पन्न आत्मा (पवित्रं) सब पतितों के पावन परमात्मा की (गीर्भिः रेभन्[2]) वेदवाणियों से अर्चना, ध्यान, गुणगान करता हुआ (अति एति) बन्धन को पार कर जाता है।

(२) (यः) जो (ऋषिमनाः) मन्त्रद्रष्टा के समान मनन शक्ति से युक्त, स्वयं (ऋषि-कृत्) अपने आपको ऋषि, तत्वदर्शी बनाने हारा, विवेकी, (स्वर्षाः) स्वयं उत्तम २ सब पदार्थों के मर्मों का द्रष्टा, (सहस्र-नीथः) सहस्रों प्रकार से ईश्वर को स्तुति करने हारा या सहस्रों सुख और ज्ञान औरों को प्राप्त कराने हारा, (कवीनां) बहुत मेधावी, प्रज्ञावान् पुरुषों को (पदवीः) ज्ञान प्राप्त कराने हारा, सन्मार्ग का दर्शक, स्वयं (महिषः) महान् है, वह (सोमः) मुमुक्षु जीव (तृतीयं) तीसरे (धाम) लोक को अथवा इस कर्मबन्धन को पार करके प्राप्त होने योग्य परम ज्योतिःस्वरूप मोक्ष को (सिषासन्) प्राप्त करता हुआ, (विराजम्) विराट् परमेश्वर की (स्तुप्) स्तुति करता हुआ (अनु राजति) उसके अनुग्रह से आनन्द प्राप्त करता है और सद्गति को प्राप्त होता है।

(३) (चमू-सत्) अपनी ग्राहक इन्द्रिय-शक्तियों में पूर्ण रूप से विराजमान (श्येनः) गतिशील आत्मा कर्मबन्धन को पार करके मोक्ष मार्ग से गमन करने हारा, (शकुनः) शक्तिसम्पन्न, (वि-भृत्वा) समस्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकों में विहार करने में स्वतन्त्र होकर (गो-विन्दुः) समस्त ज्ञान-रश्मियों और आदित्यमय लोक या परब्रह्म को प्राप्त करने हारा, जितेन्द्रिय या समस्त लोकों को प्राप्त करने हारा, (द्रप्सः) गतिमान्, शक्तिसम्पन्न, (आयुधानि) सकल सामर्थ्यों को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ, (महिषः) महिमा में सम्पन्न, महत्त्व को प्राप्त होकर (अपां) समस्त लोकों के (ऊर्मिम्) प्रेरक (समुद्रं) समुद्र के समान एकमात्र उत्कृष्ट सब के आश्रय परमेश्वर को (सचमानः) भजन करता हुआ (तुरीयं) मोक्षस्वरूप (धाम) आनन्द को (विवक्ति) प्राप्त करता है । इस सूक्त में परमहंस की परमगति का स्पष्ट वर्णन है, ऐसे परम मुक्ति लाभ करने हारे को वेद गोविन्दु, शकुन, श्येन आदि नामों से पुकारता है । पौराणिकों के गरुड़ ध्वज, गोविन्द, समुद्रशायी आदि की कल्पना इन्हीं शब्दों के आधार पर की प्रतीत होती है ।

३ १२ २२ ३ २ २ १२ २२ ३ १ २
[११७८] एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् ।
१ २ ३ ३क २२
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ १ २
[११७९] पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।
१ २ ३ १ २
ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
[११८०] इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवानां योनिमासदम् ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[११८१] मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।
२ ३ १ २
अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३क २र
[११८२] देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः ।
र २र
सं गोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥

११७८ २. 'धत्तसुवीर्यम्', 'ऋतस्य योनिं' इति नवम्याष्टम्यां क्वेत्ययः, ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र
[११८३] पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्या-रुषो हरिः ।
२ ३ १ २
परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
[११८४] मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो सखायमाविश ॥ ७ ॥

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[११८५] नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्र पीतं स्वर्विदम् ।
३ १ २ ३ १र २र
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ८ ॥

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
[११८६] वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
१ २ ३ १ २
सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ ९ ॥ २ ॥

ऋ० ९। ८। १—९ ॥

भा०—(१) (एते सोमाः) ये सोम्यगुणसम्पन्न विद्वान्गण (अस्य) इस इन्द्र के (वीर्यं) सामर्थ्य या यश को (वर्धन्तः) बढ़ाते हुए, फैलाते हुए (इन्द्रस्य) ईश्वर के (प्रियं) उत्तम (कामम्) अभिलषित धर्म, सृष्टि के उत्पादन, रक्षा और परोपकार आदि को (अभि अक्षरन्) साक्षात् प्रकाशित करते हैं ।

(२) (चमूसदः) अपने ज्ञान ग्रहण शक्तियों में जितेन्द्रिय होकर विराजमान(पुनानासः) पवित्र होते हुए (अश्विना) प्राण और अपान दोनों और (वायुम्) सबके प्रेरक आत्मा को (गच्छन्तः) उपलब्ध करते हुए विद्वान् जन (तेन) उस परमेश्वर या अपने भीतरी इन्द्र स्वरूप आत्मा के बल पर (उ) ही (सु-वीर्यम्) उत्तम यश, बल और सामर्थ्य को (धत्त) धारण करते हैं ।

(३) हे (सोम) साधक ! (इन्द्रस्य-राधसे) इन्द्रस्वरूप परमात्मा की आराधना के लिये (हार्दि) हृदय में विराजमान (देवानां) देवगण,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियों तथा पञ्चभूतों के (आसदं) प्रतिष्ठास्थान और (योनिं) मूल कारण चिति शक्ति को (चोदय) प्रेरित कर, उसका उपदेश कर ।

(४) हे सोम, योगिन् ! (त्वा) तुझको (दश) दश (क्षिपः) यम और नियम, या दश धर्मलक्षण, या दश प्राण (मृजन्ति) पवित्र, परिशोधन करते हैं और (सप्त) सात (धीतयः) ज्ञानेन्द्रिय या मूर्धा में स्थित सात छिद्रों में प्रवाहित प्राणशक्तियें, या सात स्थानों में लगाई गई ध्यानवृत्तियाँ (हिन्वन्ति) तुझको पूर्ण आनन्दित करती, बढ़ाती हैं । (विप्राः) ज्ञानी पुरुष तुझको लक्ष्य करके, (अनु अमादिषुः) तेरे अनुकूल होकर प्रसन्न होते हैं ।

(५) (देवेभ्यः) इन्द्रियगण या विद्वानों का (मदाय कं) आनन्दलाभ करने और आनन्दकारी, ज्ञान से तृप्त करने के लिये (मेष्यः) आत्मा में आनन्दरस वर्षण करने वाली प्राण शक्ति को (अति) पार करके (सृजानः) वर्तमान आत्मानन्दरस को (गोभिः) वेदवाणियों द्वारा (सं वासयामसि) आच्छादित करते हैं । उसका वेदवाणियों द्वारा वर्णन करते हैं ।

(६) (कलशेषु) हृदय प्रदेशों में (पुनानः) पवित्र होता हुआ (अरुषः) कान्तिमान् (हरिः) दुःखहारी, व्यापक आनन्दरस (गव्यानि) वेदवाणियों या प्राणों के बने (वस्त्राणि) आच्छादनों को (परि अव्यत) धारण करता है या उनसे परे चला जाता है ।

(७) हे (इन्द्र) आत्मन् ! (मघोनः) सम्पत्तियों से युक्त ज्ञानवान् (नः) हमारे प्रति तू (आपवस्व) प्रकट हो । और (विश्वाः) समस्त (द्विषः) दूसरे के प्रति अप्रेम या द्वेष के भावों को (अप) दूर कर । (सखायम्) परम सखा परमात्मा में (आ विश) प्रवेश कर, उसे प्राप्त कर ।

(८) हे सोम, साधक आत्मन् ! (स्वयम्) हम (स्वर्विदम्) मोक्ष सुख को प्राप्त करने और जानने हारे (इन्द्र-पीतं) ईश्वर के अनुग्रह से या आत्मा के अपने ही रस से तृप्त समस्त प्राणियों को समान दृष्टि से देखने हारे (त्वा) तुझको हम (भक्षीमहि) सेवन करें और (प्रजाम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम सन्तान और (इषम्) बल, अन्न और सत् ज्ञान को भी (भक्षीमहि) प्राप्त करें ।

(९) हे (सोम) परमात्मन् ! (दिवः) अपने तेजमय प्रकाश से आकाश से मेघ के समान (पृथिव्याः अधि) पृथिवी के ऊपर (वृष्टिं) सुखों की वर्षा (परि स्रव) बरसा । और (द्युम्ने) तेज, यश या धन और (सहः) सहन शक्ति, या बल को (नः) हमारी (पृत्सु) इन्द्रियों और प्रजाओं में (धाः) धारण करा ।

इति प्रथमः खण्डः ।

—:०:—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[११८७] सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।
३ १२ २र ३ २
वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
[११८८] पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत ।
३ २ ३ १ २
सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
[११८९] पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।
३ २ ३ १ २
गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
[११९०] उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः ।
३ १ २ ३ १ २
द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[११९१] अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये ।
२र ३ १ २ ३ १ २
विवारमव्यमाशवः ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
[११९२] ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
स्वाना देवास इन्दवः ॥ ६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[११९३] वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः ।
दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥

[११९४] जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥

[११९५] अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥ ३ ॥ ऋ० ६ । १३ । १–९ ॥

भा०—(१) (सोमः) आत्मा, (पुनानः) पवित्र करने हारा (सहस्र-धारः) हज़ारों, अनेक अगणित शक्तियों से सम्पन्न होकर (वार्योः) सर्वव्यापक (इन्द्रस्य) परमात्मा के (निष्कृतं) कर्म-बन्धनों से परे परम पद को (अत्यविः) प्राण के आवरण को पार करके (अर्षति) प्राप्त होता है ।

(२) हे (अवस्यवः) रक्षा चाहने वाले विद्वान् लोगो ! (पवमानं) सब को पवित्र करने हारे (विप्रम्) विशेष ज्ञान से और आनन्द से सबको पूर्ण करने हारे, (देव-वीतये) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (सुष्वाणं) उत्तम रूप से प्रकट होने हारे, उत्तम ज्ञान को या प्रसव या उत्तम प्रेरणा करने हारे उस आत्मा को (अभि प्र गायत) लक्ष्य कर स्तुति करो ।

(३) (सहस्र-पाजसः) सहस्रों ज्ञानों से युक्त, सहस्रों आत्मिक बलों से युक्त (सोमाः) शम दम आदि गुण से सम्पन्न विद्वान् गण (देव-वीतये) परमात्मा को प्राप्त करने और (वाज-सातये) ज्ञान, बल, ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (गृणानाः) उसकी स्तुति करते हुए (पवन्ते) अपने आत्मा को पवित्र करते हैं ।

(४) हे सोम सबके उत्पादक ! (नः) हमें (वाज-सातये) ज्ञान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करने के लिये (बृहतीः इषः) बड़ी २ प्रेरणायें, दीप्तियें, शक्तियें (पवस्व) प्रकाशित कर । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! हमें (द्युमत्) दिव्य गुणों से युक्त (सु-वीर्यम्) उत्तम सामर्थ्य भी दो ।

(५) (वाज-सातये) ज्ञान और सुख के लाभ के लिये (हियानाः) प्रयत्न करते हुए (आशवः) मोक्ष या ज्ञान मार्ग में भी शीघ्र गति करते हुए विद्वान् लोग (हेतृभिः) साधनों से (अव्यं वारं) तामस या प्राकृतिक या प्राणमय आवरण को (वि-अति आ-असृग्रन्) पार कर जाते हैं ।

(६) (ते) वे (इन्दवः) योगिजन (देवासः) विद्वान् पुरुष (स्वानाः) साधना करते हुए (नः) हमारे लिये भी (सु-वीर्यम्) उत्तम बलयुक्त, यश उत्पादक (सहस्रिणं) हज़ारों तत्त्वों के प्रदर्शक (रयिम्) ज्ञान और ऐश्वर्य को (आ पवन्ताम्) सब प्रकार से, प्राप्त करें और प्रकट करें ।

(७) (वाश्राः) उत्तम उपदेश करनेहारे (मातरः) ज्ञान सम्पादन करने हारे, (इन्दवः) विद्वान्‌गण परमात्मा के प्रति इसी प्रकार (अभि-अर्षन्ति) जाते हैं जैसे (मातरः वत्सं न) गौवें अपने बच्चे के प्रति जाती हैं । और वे (गभस्त्योः) उसी प्रकार प्राण अपान दोनों के बल से अपने को (दधन्विरे) धारण करते हैं, स्थिर, दृढ़ बनाये रहते हैं ।

(८) हे (पवमान) परमपावनकारी ! तू (इन्द्राय) परमात्मा के लिये (जुष्टः) प्रेम करने हारा साधक (मत्सरः) अपने ही में सदा सुप्रसन्न, आत्मानन्द, स्वतः तृप्त (कनिक्रदत्) सबको समान भाव से उपदेश करके (विश्वाः) समस्त (द्विषः) द्वेष करने हारे प्राणियों को और द्वेष बुद्धियों को (अप जहि) नाश कर अर्थात् अजात शत्रु हो जा ।

(९) हे (पवमानाः) समस्त संसार को अपने धर्माचरणों से पवित्र करते हुए, पंक्तिपावन (स्वर्दृशः) मोक्ष सुख का दर्शन करने वाले आप लोग (अराव्णः) दान रहित, कदर्य वृत्तियों को (अप घ्नन्तः) दूर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए (ऋतस्य) सत्यंज्ञान के (योनौ) परम आश्रय, ब्रह्म में (सीदत) प्राप्त होवो ।

इति द्वितीयः खण्डः ।

---

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[११९६] सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥

३ १र २र ३ १ २ ३उ२र ३ १ २
[११९७] अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[११९८] मदच्युत् क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।
१ २ ३ १र २र ३ २
सोमो गौरी अधिश्रितः ॥ ३ ॥

३ १र २र ३ २ ३ १ ३
[११९९] दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥

१र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१२००] यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः ।
२उ ३ १ २
तमिन्दुः परि षस्वजे ॥ ५ ॥

२उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[१२०१] प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
२ ३ १ २ ३ १ १
जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २उ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१२०२] नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम् ।
३ २र २र ३ २
हिन्वानो मानुषा युजा ॥ ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१२०३] आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम् ।
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ८ ॥

[१२०४] अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः ।
सोमो हिन्वे परावति ॥ ९ ॥ ४ ॥ ऋ० ६ । १२ । १-६॥

भा०—(१) (इन्द्राय) परमेश्वर के निमित्त (मधुमत्-तमाः) अमृतमय ज्ञानों से सम्पन्न (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (धारया) धारा, व्यवस्था या वाणी से (सुताः) प्रेरित हुए (इन्दवः) ज्ञान-ऐश्वर्यादि से सम्पन्न सब के आल्हादक (सोमाः) शुभ गुणों से युक्त विद्वान् लोग (असृग्रम्) उत्पन्न होते हैं ।

(२) (वत्सं न) जिस प्रकार बछड़े के प्रति (धेनवः) दुधार (गावः) गौएं हंभारती हैं, प्रेम से उसको अपने प्रति बुलाती हैं उसी प्रकार (सोमस्य पीतये) ज्ञानरस का पान करने के लिये (इन्द्रं) अपने आत्मा और ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (विप्राः) मेधावी लोग प्रेम से (अभि अनूषत) साक्षात् स्तुति करते हैं, उसके सत्यगुणों का साक्षात् कर व स्मरण करके उस को पुकारते हैं ।

(३) (विपश्चित्) ज्ञान और कर्म फल का सञ्चय करने वाला, (मद-च्युत्) हर्ष और आनन्द का जनक, (सोमः) शमादि सम्पन्न, विद्वान् पुरुष, (गौरी) वेदमयी वाणी में (अधि-श्रितः) आश्रय पाकर (मदच्युत्) ज्ञानी होकर (सादने) अपने आश्रय देने वाले (सिन्धोः) सिन्धु के समान सब को गति देने, सबको बांधने और अपने में आश्रय देने हारे, प्राणों के प्राण और ज्ञान के समुद्र परमात्मा के (ऊर्मौ) ऊर्ध्वगति की ओर लेजाने वाले बल में (क्षेति) निवास करता है ।

(४) (यः) जो (विचक्षणः) विशेष तत्त्व का द्रष्टा, (कविः) क्रान्तदर्शी, मेधावी, (सु-क्रतुः) उत्तम प्रज्ञावान्, (सोमः) ऐश्वर्यवान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्व प्रेरक है वह (दिवः) समस्त द्यौलोक को (नाभा) अपनी शक्ति में बांधने वाले (अव्याः वारे) महान् प्रकृति को भी आवरण करने हारे परमात्मा या प्राण के बने अन्तःकरण में (महीयते) महत्त्व को प्राप्त करता, बड़ी शक्ति प्राप्त करता है ।

(५) (यः) जो (सोमः) आनन्दमय परमात्मा (कलशेषु) अन्तःप्राप्त देहों में अन्तर्यामी होकर विराजता और (पवित्रे) पवित्र हुए आत्मा के बीच (आहितः) विशेष रूप से प्रकट होता है (तम्) उसको (इन्दुः) ज्ञानी पुरुष, जीव (परि सस्वजे) जा चिपटता है, आश्रय कर लेता है, उसमें प्रविष्ट होता है ।

(६) (इन्दुः) ज्ञानी पुरुष (समुद्रस्य) समस्त आनन्द–रसों के सागर परमेश्वर के (अधि विष्टपि) परम तेज या ज्ञानरूप परम पद में विराजमान होकर (मधुश्चुतम्) परम आनन्दरस को देने हारे, आनन्द-मय (कोशं) कोश को (जिन्वन्) प्राप्त करता हुआ, मधुमय पुष्प कोश को प्राप्त भौंरे के समान (वाचं) स्तुतिमय वेदवाणी के उत्तम ज्ञान को (प्र इष्यति) प्राप्त करता है ।

(७) (वनस्पतिः) समस्त लोकों का स्वामी (नित्य-स्तोत्रः) नित्य स्तुतिकर्त्ता, ज्ञानी, (युजा) योग सम्पादन करने हारे (मानुषा) मनुष्यों के (अन्तः) भीतर (सबर्दुघाम्) सुख, परमानन्द रस का दोहन करने वाली (धेना) सरस्वती या आनन्द पान कराने वाली ज्ञानमयी चिति शक्ति को (हिन्वानः) प्रेरणा करने और उसके बल को बढ़ाने हारा है ।

(८) हे (पवमान) सर्वव्यापक ! हे (इन्दो) तेजःस्वरूप ! (सहस्र-वर्चसम्) सहस्रों दीप्तियों से युक्त (स्वाभुवम्) उत्तम सामर्थ्य से सम्पन्न, (रयिं) ऐश्वर्य और बल को (अस्मे) हमें (आ धारय) धारण करा ।

(९) (कविः) क्रान्तदर्शी, (सुतः) ज्ञानसम्पन्न (सोमः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् (परावति) परम रक्षास्थान, परमात्मा में स्थित होकर (विप्रः) मेधावी (धारया) परमात्मा से प्राप्त अपनी धारणा शक्ति या रसधारा से (सः) वह (दिवः) सूर्य के समान ज्ञान के प्रकाश से उज्ज्वल (प्रिया) अति उत्तम कान्तियुक्त सुखमय लोकों में (अभि हिन्वे) विहार करता है।

इति तृतीयः खण्डः।

---

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१२०५] उत् ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः।
३ १ २ ३ २
वाणस्य चोदया पविम् ॥ १॥
३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ १
[१२०६] प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः।
२उ ३ २ ३ १ २
यदव्य एषि सानवि ॥ २॥
२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[१२०७] अव्या वारैः परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
१ २ ३ १ २
पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३॥
१ २ ३ ३ २ १ २
[१२०८] आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४॥
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१२०९] स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः।
१ २ ३ १ २
एन्द्रस्य जठरं विश ॥ ५॥ ५॥ ऋ० ९। ५०। १-४॥

भा०—(१) हे सोम! (सिन्धोः) नदी या समुद्र के (ऊर्मेः) उमड़ने वाले तरङ्ग का (इव) जिस प्रकार (स्वनः) ध्वनि (उत् ईरते) उठती है उसी प्रकार (ते) तेरे (शुष्मासः) बल और शक्तियों के तरङ्ग

१२०५—[३] 'अव्यो वारे' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी सर्वत्र उठते हैं, प्रकट होते हैं । तू (वाणस्य) इस संसार या इस शरीर के (पविं) वाणी या प्रवर्त्तक शक्ति को (चोदय) प्रेरित कर ।

(२) (ते) तेरे (प्रसवे) प्रकट होने पर (मखस्युवः) तेरी अर्चना के इच्छुक भक्तजन की (तिस्रः वाचः) तीनों प्रकार की वेदवाणियां ज्ञानमय, गानमय और कर्ममय, ऋक्, साम, यजुः स्वरूप उस समय (उत् ईरते) उठती हैं, प्रकट होती हैं (यत्) जब तू (अव्ये) चितिशक्ति या प्राण के बने (सानवि) उन्नत मस्तक देश या आनन्द प्रकट करने वाले अन्तःकरण में (एषि) धारणा द्वारा प्रकट होता है ।

(३) विद्वान् लोग (प्रियं) तृप्तिकर, उत्कृष्ट (हरिं) दुःखों को दूर करने हारे, (पवमानं) हृदय को पवित्र करने वाले, (मधुश्चुतम्) अमृतरस को चुआने वाले उस प्रभु को (अद्रिभिः) योगसाधनों या गुरुओं, ज्ञानियों द्वारा उपदिष्ट साधनों से (अव्याः वारैः) चितिशक्ति की वृत्तियों, धारणा और निदिध्यासनादि व्यापारों द्वारा (परि हिन्वन्ति) साक्षात् करते हैं, उत्पादन करते हैं ।

(४) हे (मदिन्तम) सबसे अधिक आनन्द प्राप्त करनेहारे आत्मन् ! हे (कवे) मेधाविन् ! विद्वन् ! (अर्कस्य) प्रकाशमान परमात्मा के (योनिं) परम स्थान को (आसदं) प्राप्त होने के लिये (धारया) अपनी धारणा शक्ति या वाणी से (पवित्रं) स्वच्छ, शुद्ध, उस पतितपावन के प्रति (आपवस्व) गति कर, उसकी तरफ़ लौट जा, उसकी स्तुति कर ।

(५) हे (मदिन्तम) आनन्द प्रदान करने हारे आत्मन् ! (अक्तुभिः) ज्ञान-साधनों और (गोभिः) आदित्यरश्मियों, वेदवाणियों द्वारा (अञ्जानः) अभिव्यक्त, और भी प्रकाशमान होकर (सः) वह परम रूप होकर (पवस्व) क्षरित हो, गति कर, उद्योग कर और (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यशील परमात्मा के (जठरे) भीतर गर्भ में (आ-विश) प्रवेश कर, उसी में रम ।

इति चतुर्थः खण्डः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१२१०] अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥

[१२११] पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् ।
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥

[१२१२] परि नो अश्वमश्वविद् गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥ ६ ॥ ऋ० ६ । ६१ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४९५] पृ० २४९ ।

(२) हे सोम ! तू (सद्यः) शीघ्र ही, (इत्था धिये) सत्य प्रज्ञानों से युक्त और सत्यकर्मा (दिवो दासाय) सूर्य के समान ज्ञानमय प्रकाश में निवास करनेहारे, जीवन्मुक्त पुरुष के लिये (शंबरं) सुख, कल्याण के विनाशक उस (तुर्वशं) हिंसक स्वभाव, क्रोध और (यदुं) नियमन करने योग्य, काम को (अध) भी (अव अहन्) नाश करता है।

(३) हे (इन्दो) रसरूप आत्मन् ! (अश्वविद्) इन्द्रिय और मन को उत्तम रूप से लाभ करने हारा, (गोमत्) ज्ञानेन्द्रियों और (हिरण्यवत्) हरणशील प्राणेन्द्रियों से युक्त (अश्वं) मन को वश करके (नः) हमें (सहस्रिणीः) सहस्रों प्रकार से वर्त्तने वाली या बलवती (इषः) कामनाओं को (क्षर) पूर्ण कर ।

[१२१३] अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

[१२१४] महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः ।
रास्वेन्दो वीरवद् यशः ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३२ ३२उ ३ २३ १ २ ३ १ २
[१२१५] न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् ।
१२ ३ १ २ ३ १ २
यत् पुनानो मखस्यसे ॥ ३ ॥ ७ ॥

ऋ० ९ । ६१ । २५–२७ ॥

भा०—(१) (सोमः) परमात्मा (इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन्) जीव आत्मा के पवित्र अन्तःकरण में प्रकट होता हुआ (अराव्णः स्रधः) सुख न देने हारे, दुःखदायी कारणों को (अपघ्नन्) विनाश करता हुआ (पवते) प्रकट होता है ।

(२) हे (पवमान) हे सबको पवित्र करने हारे परमात्मन् ! (नः) हमें (महः रायः) नाना प्रकार की बड़ी २ धन धान्य सम्पदाएं (आ भर) प्राप्त करा । (स्रधः) हिंसक शत्रुओं को (जहि) नाश कर । हे (इन्दो) ऐश्वर्यशील ! हमें (वीरवत्) पुत्र पौत्रों से युक्त (यशः) यश और सम्पत्ति का (रास्व) दान कर ।

(३) हे सोम परमात्मन् ! या आचार्य ! उपदेशक ! विद्वन् ! (राधः) ज्ञानरूप साधनों का उपदेश (दित्सन्तम्) करने की इच्छा वाले (त्वा) आपको (शतं चन) सैकड़ों भी (ह्रुतः) कुटिलाचारी हिंसक पुरुष (न आ मिनन्) नहीं मार सकते । (यत्) क्योंकि (पुनानः) सबको पवित्र करते हुए आप (मखस्यसे) सबको ज्ञान का प्रदान करना चाहते हो ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१२१६] अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।
३ १र २र ३ २
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
[१२१७] अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि ।
३ १ २ ३ १ २
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ २ ॥

१२१६—'हरितो दश' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१२१८] उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ३ ॥ ८ ॥ ऋ० ९। ६३। ७-९ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४९३] पृ० २४९।

(२) (पवमानः) आत्मा को पवित्र करने हारा (सूरः) सूर्य के समान ज्ञानी (मनौ अधि) मननशील चित्त में (अन्तरिक्षेण) भीतर के हृदयाकाश में या परमसुख या मोक्ष मार्ग में (यातवे) जाने के लिये (एतशं) अश्व के समान गमन साधन मन को (अयुक्त) योग-समाधि द्वारा ईश्वर से मिला, उसके प्रति जोड़।

(३) (इन्दुः) ईश्वर के प्रति द्रुतगति से जाने हारा (सूरः) ज्ञानी, योगी (उत) भी (यातवे) आगे बढ़ने के लिये (त्याः हरितः) उन हरणशील प्राणों को, (इन्दुः) परमेश्वर ही (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् हैं, (इति) इस प्रकार (ब्रुवन्) कहता हुआ (रथे) अपने रमण करने योग्य परब्रह्म में ही आपको (अयुक्त) योगसमाधि से जोड़ दे।

इति पञ्चमः खण्डः।

---

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
[१२१९] अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे
२ १र २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
कृणुध्वम्। यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः
३ २
पावकः ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
[१२२०] प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद्
१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र १ २र
व्यस्थात्। आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध स्म
३ १ २ ३ १ २
ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१२२१] उदु यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः
अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान्
॥ ३ ॥ ९ ॥ ऋ० ७। ३। १–३ ॥

भा०—(१) हे विद्वान् गण ! (वः) आप लोग (अग्निभिः) सूर्यादि अग्नियों के समान प्रकाश करने हारे विद्वानों के साथ (स-जोषाः) समान रूप से प्रेम करने हारे, निष्पक्षपात, (यजिष्ठं) दानशील पुण्यकर्मा (अग्निम्) तेजस्वी, अग्नि के समान विद्वान् को (अध्वरे) हिंसारहित धर्म कार्यों और व्यवहारों में (दूतं) दूत के समान अपना संदेशहर अग्रगामी, पथगामी, ज्ञानदाता (कृणुध्वम्) बनाओ । (यः) जो (मर्त्येषु) मनुष्यों में (निध्रुविः) खूब स्थिर निश्चय वाला, धैर्यवान् (ऋतावा) सत्याचारी, सत्यकर्मा, (तपुः) तपस्यायुक्त, सहनशील और राजाओं को तापकारी, (मूर्धा) सब में शिर के समान मुख्य और (घृतअन्नः) तेजस्वी, सात्विक भोजन करने द्वारा (पावकः) पवित्रकारी है । अध्यात्मपक्ष में–शेष अग्नियों, इन्द्रियादि सात ज्वालार्चियों से युक्त उस अग्नि, ज्ञानवान् आत्मा को अपने जीवन रूप अध्वर = यज्ञ में दूत, उपदेशक या मार्गदर्शी, प्रेरक बनाओ जो मरणधर्मा पुरुषों में भी आत्मा रूप से अचल, सत्यज्ञानी, तपस्वी, मूर्धन्य, तेजस्वी और हृदय को पवित्र करने हारा है । परमात्म पक्ष में–(अग्निभिः स-जोषाः) सूर्यादि समस्त तेजों में भी व्यापक (घृतान्नः) तेजोयुक्त समस्त हिरण्यगर्भादि लोकों को प्रलय काल में अपने में लीन करने हारा, (तपुः) सब का तापक, (पावकः) सब का शोधक, (निध्रुविः) नित्य ध्रुव (ऋतावा) सत्य स्वरूप, सत्य उपदेष्टा है उसको अपने समस्त कार्यों में ज्ञानदाता गुरु समझो ।

(२) (प्रोथत्) शब्द करता हुआ (अश्वः न) अश्व जिस प्रकार (अविष्यन्) भोजन करने की कामना से (यवसे) घास पर जाता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार (यदा) जब (महः) महान् श्रेष्ठ (संवरणात्) संवरण निरोधस्थान या वरण योग्य उत्तम ब्रह्मचर्याश्रम या गुरुगृह से अपने यश और धनादि प्राप्ति और गृहस्थादि भोग्य आश्रमों के लिये (वि अस्थात्) बाहर आता है और (आत्) अनन्तर (अस्य) इसके (शोचिः) तेज के (अनु) अनुकूल (वातः) प्राण भी (वाति) गति करता है (अध) तब ही हे विद्वान् ! (ते) तेरा (व्रजनं) मार्ग या गमन करना (कृष्णम्) समस्त लोकों को अपनी ओर आकर्षण करने वाला (अस्ति) होता है । ब्रह्मचर्य करने के बाद गृहस्थ में भी उत्तम सदाचार और स्वस्थता से व्यवहार और जीवन यापन करने वाले विद्वानों के जीवनपथ पर दुनियां भी खिंची चली आती है । मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः । गीता ।

(३) हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाश स्वरूप ! (नव-जातस्य) सावित्री के गर्भ से अभी नये ही बाहर आये, नवस्नातक, (वृष्णः) ज्ञानों के वर्षण करने हारे (यस्य ते) जिस तेरे (अजराः) जरारहित होकर बलवान्, प्रखर, (इधानाः) तेज (उच्चरन्ति) प्रकट होते हैं । और (अरुषः) कान्तिमान् (धूमः) प्रतिपक्षियों में कम्प उत्पन्न करने हारा होकर (द्याम्) सूर्य या तेज, प्रकाश और ज्ञान को (एषि) प्राप्त करता है वह तू हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (देवान्) विद्वानों के प्रति (दूतः) ज्ञान संदेश ले जाने के लिये दूत या ज्ञानप्रद गुरु के समान उन तक (अच्छ सम् ईयसे) साक्षात् उनसे मिलता, उनको प्राप्त होता है । साधक की आत्मा के भीतर जब ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है उस समय विशोका चितिशक्ति या प्रदीप्त आत्मा की जो दशा होती है उसका भी वर्णन इन तीनों मन्त्रों में साथ ही किया है । तीसरे में—अजरा = प्राणगण । धूम = प्राणों को गति देने हारा आत्मा । दूत = गतिशील, प्रेरक आत्मा । देवान् = इन्द्रियों को । ईयसे = प्राप्त होता है, वश करता है । शेष स्पष्ट है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
[१२२२] तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
१ २१ ३ १ २
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥
१ ३ १र २र ३ १र २र ३ १र २र ३ २
[१२२३] इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः ।
३ २ ३ २क ३ २
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥
३ २उ २ १र २र ३ १ २ ३ १ २
[१२२४] गिरा वज्रो न संभृतः स बलो अनपच्युतः ।
३ २ ३ १र २र
ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥ ३ ॥ १०॥ ऋ० ८ । ९३ । ७–९ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [११९] पृ० ६४

(२) (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र परमेश्वर (दामने) समस्त सुख देने में (कृतः) समर्थ, (ओजिष्ठः) सबसे अधिक बलशाली होने के कारण (सः) वह (बले) बल योग्य, संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि विशाल कार्य में (हितः) लगा हुआ है । (सः) वही (द्युम्नी) यशस्वी, (श्लोकी) वेदमय स्तुतियों से युक्त और (सोम्यः) उत्तम गुणों से सम्पन्न है ।

(३) (सः) वह (बलः) बलवान् (अनपच्युतः) कभी अपने कर्त्तव्य, जगत् रचना आदि कार्यों से न डिगने वाला (उग्रः) दुर्जनों के प्रति अति उग्रस्वभाव (अस्तृतः) कभी न हिंसित, (वज्रः न) विघ्ननाशक आयुध के समान (गिरा) वेदवाणी द्वारा (सम्भृतः) उत्तम रीति से धारणा किया गया (ववक्षे) संसार को धारण करता है ।

इति षष्ठः खण्डः ।

---

१ २ ३ २ १ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
[१२२५] अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय ।
३ १ २ ३ १ २
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥

१२२२—'ववक्ष ऋष्व' इति ऋ० । १२२५—१. 'पुनाहीन्द्राय' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१२२६] तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत ।
पवमानस्य मरुतः ॥ २ ॥

[१२२७] दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
सुनोता मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥ ११ ॥

ऋ० ९ । ५१ । १, ३, २ ॥

भा०—व्याख्या देखो अविकल सं० [४९९] पृ० २५१ ।

(२) हे (इन्दो) सोम ! आत्मन् ! परमात्मन् ! (पवमानस्य) पवित्र करने हारे या स्वयं पवित्र, (मधोः) अमृतरसस्वरूप (ते) तेरे (अन्धसः) जीवन धारण करने की शक्ति या उपभोग्य आनन्दरस का (त्ये) वे (मरुतः) प्राणस्वरूप (देवाः) देव अर्थात् तेजस्वी सूर्य आदि और विद्वान्जन (वि आशत) विविध प्रकार से उपभोग करते हैं ।

(३) हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (दिवः पीयूषम्) आकाश को आनन्द से भर देने वाले, चन्द्रालोक के समान अति आल्हादजनक, ज्ञानस्वरूप प्रकाश के (पीयूषम्) अमृतरसस्वरूप, (मधुमत्तमम्) अति मधुर, आनन्दकारी, (सोमम्) ब्रह्मानन्दरस को (वज्रिणे) ज्ञान और वैराग्य रूप वज्र के धारण करने हारे (इन्द्राय) आत्मा के लिये (सुनोत) उत्पन्न करो ।

[१२२८] धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः । हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥ १ ॥

[१२२९] शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्

१२२८—कृणुत, १२३०—'प्र या पिन्व' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १र १र १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३१ २
रथिरो गविष्टिषु । इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दु-
३ १ २ ३ १ २
र्हिन्वानो अज्यते मनीषीभिः ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
[१२३०] इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरे
१ २ १ २ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
ष्वा विश । प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो
२ ३ १ २ ३ १ २
वाजाँ उप माहि शश्वतः ॥ २ ॥ १२ ॥

ऋ० ९ । ७६ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५५८] पृ० २८४ ।

(२) (शूरः न) जिस प्रकार शूरवीर योद्धा अपने (गभस्त्योः) दोनों हाथों में (आयुधा) नाना प्रकार के हथियार (धत्ते) धारण करता है उसी प्रकार सोमस्वरूप साधक अपने प्राण और अपान नामक ग्रहण साधनों से नाना ज्ञानसाधनों को, या ईश्वर को प्राप्त करने के साधनों को धारण करे और (रथिरः) रथी, वीर के समान (गविष्टिषु) गौ= इन्द्रियों या वेद मन्त्रों के इष्ट मार्गों में (स्वः) सुख को (सिषासन्) यथावत् प्राप्त करता हुआ (इन्द्रस्य) अपने आत्मा के (शुष्मम्) बल या प्राण को (ईरयन्) प्रेरित करता हुआ (अपस्युभिः) सिद्ध, कर्मयोगी (मनीषिभिः) विद्वानों द्वारा (हिन्वानः) अपने योगमार्ग में ज्ञानोपदेश द्वारा प्रेरित होता हुआ (इन्दुः) परमैश्वर्य सम्पन्न होकर (अज्यते) ज्ञान, प्रकाशों द्वारा देदीप्त हो ।

(३) हे (सोम) ब्रह्मानन्द के साधक ! मुमुक्षो ! हे (पवमान) हृदय को पवित्र करने हारे ! तू (तविष्यमाणः) महान् सामर्थ्यवान् होकर (इन्द्रस्य) परमात्मा के (जठरेषु) बनाये हुए या प्राणियों को उत्पन्न करने हारे लोकों में (ऊर्मिणा) ऊर्ध्वगति द्वारा (आ विश) प्रविष्ट हो ! (विद्युत् अभ्रा इव) जिस प्रकार विद्युत् उत्पन्न होकर मेघों को जल बरसाने के लिये पूर्ण करती है उसी प्रकार तू (रोदसी) प्राण और अपान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों को (प्र पिन्व) पूर्ण कर और (नः) हमारे लिये (शश्वतः) बहुत से (वाजान्) बलों और ज्ञानों को (उप माहि) उत्पन्न कर ।

[१२३१] यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग् वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरु नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

[१२३२] यद् वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि
॥ २ ॥ १३ ॥ ऋ० ८ । ४ । १-२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२७९] पृ० १४३ ।

(२) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आप (रुमे) रमणीय, (रुशमे) हिंसक, (श्यावके) गतिमान्, (यद्वा) और (कृपे) सामर्थ्यवान् पुरुष में (सचा) समान भाव से (मादयसे) आनन्द और हर्ष को प्राप्त कराते हो । (ब्रह्म-वाहसः) ज्ञान धारण करने हारे (कण्वासः) मेधावी पुरुष (त्वा) तुझको (स्तोमेभिः) अपनी स्तुतियों द्वारा (यच्छन्ति) बांधते हैं, बश करते या प्राप्त होते हैं । तू (आगहि) आ, दर्शन दे । यहां आत्मा के प्रति सम्बोधन करके कहा गया है । 'रुम,' 'रुशम,' 'श्यावक,' और 'कृप' ये चार शब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों प्रकार के स्वभावों को दर्शाते हैं । "जात पांत पूछे नहीं कोई हरिको भजे सो हरिको होई ।"

[१२३३] उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥

[१२३४] तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।

१२३३—२. 'तमोजसे' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १२
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः
॥ २ ॥ १४ ॥ ऋ० ८ । ६१ । १, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२९०] पृ० १४९ ।

(२) (हि) क्योंकि (तं) उस (स्वराजं) स्वयं प्रकाशस्वरूप, स्वतः सबके प्रकाशक, (वृषभम्) समस्त सुखों के वर्षक, परमेश्वर को (धिषणे) आकाश और पृथिवी (ओजसा) अपने बल से (निः ततक्षतुः) धारण करती हैं उसकी सत्ता को बतलाती हैं । (उत) और हे प्रभो ! तू (उपमानां) ज्ञानयोग्य अथवा अपने बनाये समस्त पदार्थों का भी (प्रथमः) प्रथम ज्ञानोपदेश करने हारा या रचने हारा होकर उनमें (नी षीदसि) गुप्तरूप से व्यापक है । (ते) तेरी (मनः) मन, संकल्प या ज्ञान सामर्थ्य सदा (सोमकामं हि) सबको प्रेरणा करने वाला, सबका उत्पादक इच्छामय, कारणरूप संकल्पमात्र है ।

'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इत्यादि प्रकार का सृष्टि रचने का परमेश्वर का संकल्प समस्त पदार्थों में व्यापक है, जो सर्वत्र अद्भुतरूप से स्थावर, जंगम एवं दिव्य सृष्टियों को निरन्तर बनाता है और उन सबमें ईश्वर स्वतः व्यापक भी है । तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् निरुक्तं चानिरुक्तं च । इत्यादि (तैत्तिरीय उप० ब्रह्मानन्द वल्ली २ । अनु० ६) आकाश और पृथिवी परमात्मा को अपने भीतर धारण करती है । जैसे (मुण्डकोपनि० २ मु० व० १, क० ४) अग्निर्मूर्धा, चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ, दिशः श्रोत्रे, वाग्विवृताश्च वेदाः, वायुः प्राणो, हृदयं विश्वमस्य, पद्भ्यां पृथिवी, ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा" । अथवा छान्दोग्य में, वैश्वानर प्रकरण में "तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्माऽऽत्मा संदेहो बहुलो, बस्तिरेव रयिः, पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वहार्यपचनः आस्यमाहवनीयः ।" (छा० उप० अ० ५ । ख० १७) अथवा स्वयं वेदश्रुति—"यस्य भूमिः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमाऽन्तरिक्षमुतोदरम् । दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥"
(अथर्व०का० १०। सू० ८ । मं० १)

इति सप्तमः खण्डः ।

१ २   ३ १   २ ३ १र   २र   ३ १ २
[१२३५] पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
३ १र   २र ३   १ २
वायुमा रोह धर्मणा ॥ १ ॥

१ २   ३ १   २   ३ १   २   ३ १ २
[१२३६] पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् ।
१ २   ३ १र   २र
इन्दो समुद्रमा विश ॥ २ ॥

३   १   २   ३ १ २   ३ १   २   ३ २
[१२३७] अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः ।
३ १र   २र ३   १ २
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ३ ॥१५॥ ऋ० ९ । ६३ । २२-२४॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२८३] पृ० २४४ ।

(२) हे (पवमान) उत्तम ज्ञानार्जन करने हारे ! सोम ! सर्वप्रेरक ! विद्वान् ! आप (श्रवाय्यं) यश और कीर्ति के जनक अथवा वेद द्वारा श्रवण करने योग्य (रयिं नि तोशसे) आत्मज्ञान रूप ऐश्वर्य को प्रदान करते हो एवं अभ्यास करते हो । अतः हे (इन्दो) ज्ञानप्रकाशक ! आप (समुद्रम्) समुद्र के समान गम्भीर, अगाध, ज्ञानमय परब्रह्म ज्ञान में (आ विश) प्रवेश करें ।

(३) व्याख्या देखो अविकल सं० [४९२] पृ० २४८ ।

१२३५—'प्रियः समुद्रं' इति ऋ० ।

(१) अन्यासु संहितासु 'अपघ्नन् पवसे मृधः०' एतावदेव ऋक्प्रतीकमुपलभ्यते ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
[१२३८] अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥ १ ॥
३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
[१२३९] वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
१ २२ ३ १२ २२ ३ १ २
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥ २ ॥
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २
[१२४०] परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
२ ३ २ १ २ ३ १ ३ १२ २२ ३ २
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ॥३॥१६॥

ऋ० ९ । ९८ । १, ५, ३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५४९] पृ० २७८ ।

(२) हे (अध्रिगो) प्रभु ! सबसे अधिक शक्तिशालिन् ! हे (वसो) सबके अन्तर्यामिन् ! (वयं) हम लोग (ते वसोः) सब को बास देने हारे और सब में बसने हारे तेरे (पुरु-स्पृहः) सब को प्रेम करने हारे और सब के प्रेमपात्र (अस्य राधसः) इस आराधनीय (इषः) सब के प्रेरक, सब के इच्छा के विषय, जीवन और अन्नादिक शक्तिस्वरूप के (नेदिष्ठतमः) अति निकटवर्त्ती होकर हम (ते सुम्ने) तेरे सुखमय स्वरूप में (नि स्याम) नित्य रहें ।

(३) (यः) जो (इन्दुः) सोम अर्थात् वीर्य, (गव्ययुः) गौ = इन्द्रियों में व्याप्त होने वाला या इन्द्रियों की शक्ति से युक्त (न) जिस प्रकार (भ्राजा) अपनी दीप्ति से, (अध्वरे) हिंसारहित जीवन या प्राणायाम और योगसमाधि रूप यज्ञ में (धारा) धारण सामर्थ्य वा निष्ठा या वाणीरूप से (ऊर्ध्वः) ऊर्ध्व प्रदेशों में (याति) गमन करता है (स्यः) वही

१२३८—अन्यासु संहितासु प्रतीकमात्रम् 'अभी नो वाजसातमं०' । ऋ० ।
१२३९—'वयं ते अस्य वृत्रहन् वसो वस्वः पुरुस्पृहः''''स्याम सुम्नस्याध्रिगो',
१२४०—'परिसुवानो अक्षरद्', 'भ्राजानेति' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्वानः) पुनः सूक्ष्म नाडीजालों में क्षरित होकर (मद-च्युतः) आनन्द-रूप अमृत का स्रवण करता हुआ (इन्दुः) कान्तिमान् होकर (अव्ये) प्राणमय कोश में बल से (अक्षरद्) क्षरित होता या प्रकट होता है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
[१२४१] पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम॥१
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[१२४२] शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः॥२
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[१२४३] दिवो धर्त्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् वाजी पवस्व ॥ ३ ॥ १७ ॥ ऋ० ६ । १०६ । ४–६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखिये अविकल सं० [५२९] पृ० २१९ ॥

(२) हे (सोम) सर्वोत्पादक ! तू (शुक्रः) शुद्धस्वरूप, कान्तिमान् (दिवे) आकाश और दिव्य, जाज्वल्यमान सूर्य में तेजःस्वरूप होकर (पृथिव्यै) पृथिवी में जलस्वरूप और अन्नस्वरूप होकर (प्रजाभ्यः च) समस्त प्रजाओं के लिये अन्न, ओषधि और वीर्यरूप होकर (शं) कल्याणकारक, शान्तिदायक और आनन्ददायक होकर (पवस्व) प्राप्त हो।

(३) हे सर्वोत्पादक ! तू (शुक्रः) तेजःस्वरूप, शुक्ल, कान्तिमान् (दिवः) सूर्य को भी (धर्त्ता) धारण करने हारा, (सत्ये) सत्यस्वरूप (विधर्मन्) विश्व को नाना रूप से धारण करने हारे परमेश्वर में (पीयूषः) समस्त जीवों द्वारा पान करने, उनको तृप्त कर अनुकूल संवेदन करने योग्य, अनन्त आनन्दस्वरूप, (वाजी) बलवान्, ऐश्वर्यवान् होकर (पवस्व) प्रकाशित हो।

इति अष्टमः खण्डः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१२४४] प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् ।
२ ३ २ ३ १र २र
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ १ ॥

१२४२—२. 'प्रजायै' इति ऋ० ।

१२४४—१. 'कविमिव प्रचेतसं', २. 'अध द्विता', ३. 'शृणुधी गिरः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

[१२४५] कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता ।

१ २२ ३ २

नि मर्त्येष्वादधुः ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२

[१२४६] त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुही गिरः ।

१ २ ३ २ ३ १२ २२

रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ३ ॥ १८ ॥

ऋ० ८ । ८४ । १–३ ॥

(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५] पृ० ३ ।

(२) (देवासः) विद्वान् लोग (प्रशंस्यं) उत्तम रीति से स्तुति करने योग्य, (कविम् इव) क्रान्तदर्शी, मेधावी के समान (इति) इस प्रकार प्रत्यक्षरूप से (यं) जिसको जानकर (द्विता) दो रूपों में (मर्त्येषु) मनुष्यों में (नि आदधुः) धारण करते हैं ।

विद्वानों की दृष्टि में आत्मा के दो रूप हैं—एक समस्त संसार में व्यापक सर्वसाक्षी परमेश्वर और दूसरा कर्मकर्त्ता और फल भोक्ता जीव दोनों का सामान्य नाम 'आत्मा' है ।

(३) हे (यविष्ठ) सब में व्यापक ! सबसे अधिक शक्ति वाले ! (त्वं) तू (दाशुषः) दानशील, उदार होकर (नॄन्) मनुष्यों को (पाहि) पालन कर । (गिरः) स्तुति वाणियों को (शृणुहि) श्रवण कर । (उत) और (त्मना) स्वयं अपने सामर्थ्य से (तोकं) बालक या उसके समान कार्य जगत् की (रक्ष) रक्षा कर ।

१ २ ३ १ २

[१२४७] एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।

३ २उ ३ ३ २ ३ १२ २२ ३ २

गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥

१२४७—३. धर्त्ता पुराम् इति पाठः सायणसम्मतः । परमार्थतस्तु सायणोऽपि दारयिता इत्येव पर्यायमुल्लिखति । मुम्बई, अजमेरादिमुद्रितो 'धर्त्ता' इति पाठस्तु भाष्यकृद्भिरनादृतः । 'पुराम्भिन्दुरित्या'दिश्रुत्यन्तराविरोधाच्च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १र   २र   ३ २ ३ २ ३ १ २
[१२४८] अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
२र   ३ २   ३ १र   २र ३ २
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥

१र   २र   ३ १   २ ३ २   ३ १र   २र
[१२४९] त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र धर्त्ता पुरामसि ।
३ २उ   ३ १ २ ३ १र   २र ३ २
हन्ता दस्योर्मनो वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥ १९ ॥

ऋ० ८ । ९८ । ४–६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३९३] पृ० २०३ ।

(२) हे (सत्य) सत्यस्वरूप परमात्मन् ! (इन्द्र) हे ऐश्वर्यवान् ! आप (सोमपाः) समस्त संसार के पालन करने वाले, प्रलय-काल में सब संसार को स्वयं सूक्ष्म कारण रूप में अपने भीतर पान अर्थात् लीन करने हारे हो । आप (उभे) दोनों (रोदसी) लोकों को या उत्पत्ति और विनाशरूप दोनों मर्यादाओं को (अभि बभूथ हि) वश करने में समर्थ हो । आप (सुन्वतः) उत्पन्न होते या अपनी शक्ति से प्रेरणा करते हुए (दिवः) सूर्य या प्रकाश को भी (वृधः) बड़े भारी बढ़ानेहारे (पतिः असि) मालिक हो ।

(३) हे (इन्द्र) परमात्मन् ! आप (शश्वतीनां) अनादिकाल से चले आये (पुराम्) देहरूप पुरों के (धर्त्ता) धारण करने हारे मुक्तिदायक (असि) हो । (दस्योः) नाशकारी अज्ञान के (हन्ता) नाश करने वाले और (मनोः) मननशील ज्ञानी आत्मा के (वृधः) बढ़ाने वाले और (दिवः) सूर्य तथा उसके समान देदीप्यमान आदित्य योगी पुरुषों और ज्ञानी और ज्ञान-प्रकाश के भी (पतिः) स्वामी हो ।

३ २   ३ १र २र   ३ १र २र
[१२५०] पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
२ ३ १ २ ३ १ २   ३ २   ३ १ २   ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ १ ॥

१२५०—२. 'गोमतोऽपाव', ३. 'अभिस्तोमा' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१२५१] त्वं बलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ २ ॥

[१२५२] इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ३ ॥२०॥

ऋ० १ । ११ । ४, ५, ८ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [३५९] पृ० १८७ ।

(२) हे (अद्रिवः) विदीर्ण या विनाश न होने वाले, अविनाशी स्वरूप वाले आत्मन् ! (त्वं) तू (गो-मतः) इन्द्रियों से युक्त (बलस्य) प्राण के (बिलम्) प्रवेशस्थान शरीर बन्धन को (अप अवः) खोल देता है, (देवाः) समस्त अग्नि आदि देव (अबिभ्युषः) तेरी रक्षा में भय न करते हुए (तुज्यमानासः) पीड़ित होकर अथवा तुझ से ही शक्ति प्राप्त करते हुए । (त्वां) तेरे पास (आ अविषुः) शरण में प्राप्त होते हैं ।

जैसे ऐतरेयोपनिषद् में—"ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवे प्रापतन्"......"ता एनमब्रुवन् आयतनं नः प्रजानीहि "......"ताभ्यः पुरुषमानयत् । ता अब्रुवन् सुकृत बतेति पुरुषो वाव सुकृतम् । ताः अब्रवीद् यथायतनं प्रविशतेति ।। ३ ।। अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशद्, वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशद्, आदित्यश्चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशद् ।" इत्यादि समस्त देवताओं को पुरुष शरीर में प्रविष्ट कराकर आत्मा इन्द्रस्वरूप स्वयं नान्दन द्वार से प्रविष्ट होगया । "स एतमेव सीमानं विदार्य एतया द्वारा प्रापद्यत । सैषा विदृतिर्नामद्वास्तदेतन्नान्दनम् ।" इत्यादि प्रकरण में इस मन्त्र का रहस्य खोला गया है । ऐतरेय उप० अ० १ । ख० २ । ३)

(३) हे विद्वानो ! (ओजसा) अपने ओज बल और वीर्य से (ईशानं) समस्त संसार को वश करने हारे मालिक (इन्द्रं) परम आत्मा की (स्तोमैः) वेदमन्त्रों द्वारा (अभि अनूषत) स्तुति करो । (यस्य) जिसके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रातयः) दिये हुए दान हज़ारों (उत वा) और और भी (भूयसीः) बहुत अधिक (सन्ति) हैं ।

इति नवमः खण्डः ।

इति प्रथमोऽर्धः प्रपाठकः ।

इति नवमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ दशमोऽध्यायः

अथ पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ।

ऋषिः—१ पराशरः शाक्त्यः । २ शुनःशेप आजीगर्तिः । ३ असितः काश्यपो देवलो वा । ४, ७ रहूगण आंगिरसः । ५ (५–४) ५ (प्र०) प्रियमेध आंगिरसः । ५, ६ (प्र), १४ नृमेध आंगिरसः । ६ इध्मवाहोदार्ढच्युतः । ८ पवित्र आंगिरसः वसिष्ठो वोभौ वा । ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणः । १० वत्सः काण्वः । ११ शतं वैखानसाः । १२ सप्तर्षयः । १३ वसुर्भारद्वाजः । १४ नृमेधः । १५ भर्गः प्रागाथः । १६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । १७ मनुराप्सवः । १८ अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा च भारद्वाजः । १९ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः । २० अमहीयुरांगिरसः । २१ त्रिशोकः काण्वः । २२ गोतमो राहूगणः । २३ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः ॥ देवता—१—७, ११—१३, १६—२० पवमानः सोमः । ८ पावमान्यध्येतृस्तुतिः । ९ अग्निः । १०, १४, १५, २१—२३ इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ९ त्रिष्टुप् । २—७, १०, ११, १६, २०, २१ गायत्री । ८, १८, २३ अनुष्टुप् । १२ (१–२) १४, १५ प्रगाथः । १३ (३), १९ द्विपदा विराट् । १३ जगती । १४ निचृद्बृहती । १७, २२ उष्णिक् । १२, १९ द्विपदा पंक्तिः ॥

[१२५३] अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः । वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत् सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१२५४] मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः । मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥ २ ॥

[१२५५] मह्त्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् । अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ३ ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ९७ । ४०—४२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [५२९] पृ० २६६ ।

(२) हे आत्मन् ! तू (वायुम्) वायु और प्राण को (मत्सि) प्रसन्न और चेतन करता है, (इष्टये) अभीष्ट-प्राप्ति और (राधसे) आराधना के कारण (नः) हमको (मत्सि) आनन्दित करता है । (पूयमानः) सर्वत्र प्रकाशित होकर (मित्र-वरुणौ) मित्र और वरुण, सूर्य और मेघ और प्राण और अपान दोनों को (मत्सि) हर्षित करता है, गति देता है । (शर्धः) बलस्वरूप होकर (मारुतं) प्राण और प्रबल वायु को भी (मत्सि) हर्षित करता, मानो आनन्द में नचाता है । (मत्सि देवान्) समस्त सूर्य चन्द्र आदि देवों एवं इन्द्रियों को (मत्सि) आनन्दित करता, उनको नियम से गति देता है, और हे (देव, सोम) सबके प्रकाशक और उत्पादक प्रेरक आत्मन् ! (द्यावापृथिवी) द्यौ और पृथिवी, ज्ञानी और अज्ञानी नर और नारी दोनों को (मत्सि) हर्षित करता, एवं तृप्त करता है ।

(३) व्याख्या देखो अवि० सं० [५४२] पृ० २७५ ।

[१२५६] एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ १ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २
[१२५७] एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते ।
२ ३ १ २ ३ १ २
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २ ॥

३ १२ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१२५८] एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः ।
१ २
पवमानः सिषासति ॥ ३ ॥

३ २ ३ २ २ ३ १ २
[१२५९] एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति ।
३ १ २ ३ २
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१२६०] एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
२ ३ १ २
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ५ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१२६१] एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति ।
१ २ ३ १ २
पवमानो अदाभ्यः ॥ ६ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
[१२६२] एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया ।
१ २ ३ १ २
पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
[१२६३] एष दिवं व्यासरत् तिरो रजांस्यस्तृतः ।
१ २ ३ ३ २
पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥

३२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१२६४] एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
३ २ ३ १ २
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१२६५] एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः ।
१ २ ३ २
धारया पवते सुतः ॥ १० ॥ २ ॥

ऋ० ९ । ३ । १, ६४, ५, ३, २, ७–१० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) (देवः) प्रकाशमान, (अमर्त्यः) मरणरहित, अमृत-स्वरूप जीव (द्रोण-कलशानि) द्रोण-कलशों अर्थात् देहों के (अभि) प्रति (आसदम्) प्रवृत्त होकर उनमें विराजने के लिये (पर्ण-वीः इव) पक्षी या किरणों से युक्त सूर्य के समान या पत्तों से युक्त वृक्ष के समान (दीयते) प्राप्त होता या उनमें विराजता है ।

द्रोण अर्थात् गति करने का स्थान और कलश अर्थात् कला या खण्ड २ संचय करके बना हुआ । फलतः यह शरीर द्रोणकलश है । इनमें शुक्रस्वरूप दीप्तिमय चेतनावान् आत्मा 'सोम' है । वह इन शरीरों में निवास करने के लिये पिन्जरे में पक्षी के समान आता है । इस आत्मा के सोम और इन्द्र विषयक अलंकार का स्पष्टीकरण देखो (यजुर्वेद अ० २० । मं० ८६–९५) यथा—"आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः । श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥ ८६ ॥ इत्यादि ।

(२) (एषः) वह आत्मा (विप्रैः) मेधावी, ज्ञानी पुरुषों द्वारा (अभि-स्तुतः) ठीक २ प्रकार से साक्षात् करके वर्णित किया हुआ (देवः) प्रकाशस्वरूप (अपः) समस्त प्रज्ञानों, कर्मों और लोकों को (वि गाहते) भ्रमण करता है । और (दाशुषे) आत्म-समर्पण करने हारे साधक के (रत्नानि) नाना रमण योग्य सुखों, पदार्थों या देहों को (दधत्) पुष्ट करता या धारण करता या देता है ।

(३) (एषः) वह (पवमानः) समस्त शरीर में व्यापक और गतिमान् या उसको पवित्र करता हुआ, या उसमें स्वतः पवित्र होता हुआ, (सत्वभिः) अपने सात्विक बलों से (शूर इव यन्) वीर योद्धा के समान गति करता हुआ (विश्वानि) समस्त (वार्याणि) वरण करने योग्य आनन्दों, सुखों का (सिषासति) सेवन करता है ।

(४) (एषः) वह (देवः) प्रकाशमान, (पवमानः) समस्त शरीर और हृदय को पवित्र करता हुआ (रथर्यति) रथ के समान शरीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रहता है और (दिशस्यति) उपदेश प्रदान करता और (वग्वनुम्) ज्ञानवाणी या स्तुति को (आविः कृणोति) प्रकट करता है ।

(५) (एषः) वह (हरिः) दुःख हरण करने हारा (देवः) देव (पवमानः) व्यापक आत्मा (विपन्युभिः) विद्वान्, सत्य अर्थों के प्रकाशक (ऋतायुभिः) सत्य कामना वाले विद्वानों द्वारा (वाजाय) ज्ञान, बल की प्राप्ति के लिये (मृज्यते) और भी पवित्र किया जाता है ।

(६) (एषः देवः) वह सुखों का दाता, सर्वप्रकाशक आत्मा (पवमानः) पवित्र किया हुआ (विपा) विशेष पालन करने हारी शक्ति से (कृतः) सम्पन्न होकर (अदाभ्यः) विना किसी रुकावट के, अदम्य या अविनाशी, अमृत होकर (ह्वरांसि) समस्त कुटिल विचारों, या पापसंकल्पों, या बंधनों को (अति धावति) पार कर जाता है ।

(७) (एषः) वह (पवमानः) शुद्ध, पवित्र होकर (रजांसि) समस्त रजोगुण के कर्मों और लोकों को (धारया) अपनी धारणा शक्ति द्वारा (अति) अतिक्रमण करके (कनिक्रदत्) अनाहत नाद या परमेश्वर की स्तुति करता हुआ (दिवं) ज्ञानमय, प्रकाशमय मोक्ष को (वि धावति) प्राप्त कर, विचरण करता है ।

(८) (एषः पवमानः) वह मुक्तात्मा सोम (अस्तृतः) वासनाओं से बाधित न होकर (सु-अध्वरः) सुकृत कर्म करके कभी नाश को न प्राप्त होने वाला, होकर (रजांसि) रजोमय विघ्नों को (तिरः) एक तरफ़ हटाकर (दिवं) प्रकाशमान मोक्षलोक को (वि आ असरत्) विशेष रूप से प्राप्त होजाता है ।

(९) (एषः) वह (देवः) प्रकाशमान (सुतः) सम्यक् मार्ग में निष्ठ होकर (हरिः) सब दुःखों, या बन्धनों का काटने वाला, आत्मा (देवेभ्यः) विद्वान् पुरुषों के हितार्थ (प्रत्नेन) पुराने परिपक्व (जन्मना) उपार्जित उत्तम जन्म द्वारा (पवित्रे) परम पावन, परमात्मा में (अर्षति) जा लगता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०) (एषः उ स्यः) और वही यह (पुरु-व्रतः) नाना सत्कर्म अनुष्ठान करने द्वारा (जज्ञानः) शरीर में उत्पन्न होकर (इषः) नाना कर्मों, कर्मफलों को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (सुतः) गुरुओं से उपदेशों द्वारा उत्तम मार्गों में प्रेरित और ज्ञानसम्पन्न होकर (धारया) अपनी धारणा शक्ति या वाणी, स्तुति द्वारा (पवते) उत्तम मार्ग में गति करता है।

इति प्रथमः खण्डः ।

—:०:—

३२ ३ २ ३२ ३ २ ३१ २ ३१२
[१२६६] एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः ।
२ ३ १ २ ३ २
यच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

३ २ ३२ २ ३२३१२
[१२६७] एष पुरू धियायते बृहते देवतातये ।
२ ३ १ २ ३ १२
यत्रामृतास आशत ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३२३ १ २ ३१२
[१२६८] एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः ।
३ २ ३१२ २२
प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ३ ॥

३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३२
[१२६९] एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा ।
१ २ ३ २ ३ १ २
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१२७०] एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २क १ २
[१२७१] एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा ।
३ १२ २२ ३ १ २
नृम्णा दधान ओजसा ॥ ६ ॥

१२६६—२. 'आसते' ४. 'शुभ्रावता' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१२७२] एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति ।
अव शादेषु गच्छति ॥ ७ ॥

[१२७३] एतमु त्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे ।
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ ३ ॥

ऋ० ६ । १५ । १, २, ७, ३, ५, ४, ६, ८ ॥

भा०—(१) (रथेभिः) रथों द्वारा जिस प्रकार (शूरः) शूरवीर योद्धा सेनापति के पद पर अभिषिक्त होकर जाता है उसी प्रकार दूर तक व्यापन करने हारे सात्त्विक साधनों से युक्त होकर (एषः) यह शमादि गुणसम्पन्न योगी (आशुभिः) शीघ्रगामी, दूरतक शीघ्र फैलने वाले (अण्व्या) सूक्ष्म (धिया) प्रज्ञा, निदिध्यासन, उपासना कर्म या साधना द्वारा (इन्द्रस्य) आत्मा और प्रभु परमात्मा के (निष्कृतम्) परम दिव्य धाम को (गच्छन्) जाता हुआ (याति) परम सुख को प्राप्त करता है ।

(२) (एषः) वह आत्मा योगी उस (बृहते) बड़े भारी (देवतातये) दिव्यगुण सम्पन्न प्रभु को साक्षात् करने के लिये (पुरु) नाना प्रकार के सत्कर्मों द्वारा (धियायते) ध्यान करता और योग-समाधि का अनुष्ठान करता है । अथवा (धिया अयते) ध्यान, ज्ञान और कर्म द्वारा मनसा, वाचा, कर्मणा प्राप्त होता है । (यत्र) जहां जिसमें वे (अमृतासः) अन्य मुक्तात्मागण अमृत स्वरूप होकर (आशत) मोक्ष-सुख का भोग करते हैं ।

(३) (आयवः) दीर्घ आयु की कामना करने हारे, या ज्ञानी मनुष्य (एतं) इस (सोमम्) शम दम आदि-सौम्यगुणों से सम्पन्न, (मर्ज्यं) प्रयत्न से शोधने योग्य, या खोजने योग्य (महीः) बड़ी (इषः) इच्छाओं को या बल साधनाओं को (प्र चक्राणम्) उत्तमरूप से करते हुए आत्मा को (द्रोणेषु) द्रुतगति वाले अति वेगयुक्त मानसव्यापारों या कोशों में (उप सृजन्ति) अत्यन्त परिष्कृत करते हैं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) (यद् ईं) जब (भूर्णयः) भरणशील प्राण और अपान को यथास्थान, यथामार्ग में प्राणायाम द्वारा लेजाने वाले ज्ञानी पुरुष (तुञ्जन्ति) प्राण और अपान की आहुतियां प्रदान करते हैं तब (एषः) यह सोम (अन्तः) भीतर (हितः) गुप्तरूप से विद्यमान (शुन्ध्यावता) शुद्धियुक्त (पथा) मार्ग से (विनीयते) प्राप्त कराया जाता, ले जाया जाता है ।

(५) (एषः) यह सोम (रुक्मिभिः) उत्तम क्रान्ति से सम्पन्न, देदीप्यमान तेज वाले, (शुभ्रेभिः) श्वेत, शुद्ध (अंशुभिः) किरणों से युक्त (वाजी) बलवान् और ज्ञानवान्, (सिन्धूनां) गतिशील प्रवृत्तियों, प्राणों और प्रनाडियों का (पतिः) पालक (भवन्) होता हुआ (ईयते) जाना जाता है ।

(६) जिस प्रकार (यूथ्यः वृषा) गोयूथ में विचरण करने हारा महावृषभ (शृङ्गाणि दोधुवत्) अपने सींग हिलाता हुआ (शिशीते) समीप के पदार्थों को भी कंपाता है उसी प्रकार (एषः) यह विद्वान् अपने (शृङ्गाणि) किरणों को या प्रेरक बलों को (दोधुवत्) प्रेरित करता हुआ (ओजसा) अपने बल से (नृम्णा) आत्मा के साथ बद्ध ज्ञान साधनों, प्राणों को (दधानः) धारण करता हुआ (शिशीते) सब प्राणों को भी कम्पित करता, उनको संचालित करता है ।

(७) (एषः) यह ज्ञानी (वसूनि) वास करने हारे प्राणों को (पिब्दनः) पीड़ित या प्रेरित करता हुआ (परुषा) प्रत्येक पर्व या मंजिल को (अति ययिवान्) पार करता हुआ (शादेषु) कठिन तपस्याओं या भूमियों में (अव गच्छति) प्रवेश करता है ।

(८) (हरिः) दुःखों के हरने वाले मनोहर, सबके प्रेरक, सबके धारक, (त्यं एतं) उस इस (सु-आयुधम्) उत्तम साधनाओं से सम्पन्न, (मदिन्तमं) अति आनन्द और हर्षयुक्त सोमरूप साधक आत्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (दश क्षिपः) दशों प्राणगण (पातवे) प्राप्त करने या आनन्दरस पान कराने के लिये (हिन्वन्ति) प्रेरित करते हैं ।

इति द्वितीयः खण्डः ।

---

३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
[१२७४] एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत ।
२ ३र १ २ ३ १ २
गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१२७५] एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

३ २ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २
[१२७६] एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
गच्छञ्जारो न योषितम् ॥ ३ ॥

३२उ २ १ २र ३ १र २र
[१२७७] एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः ।
२उ ३ २ ३ १ २
य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ४ ॥

३२उ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
[१२७८] एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २
क्रन्दन् योनिमभि प्रियम् ॥ ५ ॥

३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१२७९] एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ६ ॥ ४ ॥

ऋ० ९ । ३८ । १, २, ४, ५, ६, ३ ॥

भा०—(१) (स्यः एषः उ) वह यह सोम अर्थात् शम आदि षट्कसम्पत्ति से युक्त मुमुक्षु जन (वृषा) सुखों का हृदयभूमि में वर्षण करने हारा, (रथः) गतिशील, रमणस्वभाव, सर्वत्र प्रसन्न होकर विचरने हारा, (सहस्रिणम्) बल से युक्त या नाना प्रकार के सुखों के देने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वाजं) ज्ञान–ऐश्वर्य को (गच्छन्) प्राप्त होता है और वह (अव्याः) चितिशक्ति या मुख्य प्राण के (वारेभिः) वरण योग्य उत्तम २ साधनों से (अव्यत) मुक्तिमार्ग पर गमन करता है।

(२) (एतं) इस (हरिम्) दुःखों के हरने वाले, सबके नेता, (इन्द्रम्) मुमुक्षु आत्मा को (त्रितस्य) तीनों प्रकार के दुःखों से परे, और मानस, वाचिक, कायिक तीनों बलों से युक्त मुख्य प्राण के साथ (अद्रिभिः) दृढ़ साधनों से (योषणः) प्रेम करने हारी, उसका सेवन करने हारी, इन्द्रिय-वृत्तियां (इन्द्राय) परम आत्मा के (पीतये) आनन्दरस प्राप्त करने के लिये (हिन्वन्ति) प्रेरित करतीं या उस के बल की वृद्धि करती हैं।

(३) (एषः स्यः) यह वह योगी (मानुषीषु) मनुष्य (विक्षु) प्रजाओं में (श्येनः न) पक्षियों में वेगवान् गरुड़ के समान अधिक बल, सामर्थ्य और ज्ञान से सम्पन्न प्रशस्त श्रेष्ठ आचार चरित्रवान् होकर और (योषितम्) स्त्री के प्रति (गच्छन्) गमन करते हुए (जारः न) उसके प्रिय पुरुष के समान गुप्तरूप से परमसुख का अभिलाषी होकर (आ सीदति) तन्मय भाव से विराजता है।

(४) (यः) जो (इन्दुः) परम ऐश्वर्यसम्पन्न आत्मा (वारम्) वरण करने योग्य उत्तम मोक्षमार्ग में (आ विशत) प्रवेश करता है (एषः स्यः) वह यह (मद्यः) अतिहर्षयुक्त (रसः) आनन्दमय, रसमय होकर (दिवः) प्रकाशमान उस परम आत्मा की गोद में माता की गोद में (शिशुः) बालक के समान, या मध्य आकाश में सूर्य के समान रहकर (अव चष्टे) समस्त भुवनों को देखता है।

(५) (एषः स्यः) यह वह सोम मुमुक्षु आत्मा (पीतये) आनन्दरस पान करने के लिये (सुतः) तैयार, निष्पन्न होकर (क्रन्दन्) शब्द करता हुआ, स्तुति करता हुआ, (हरिः) सब इन्द्रियों का नेता, (धर्णसिः) सब प्राणों व देह को धारण करने हारा होकर (प्रियं)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने प्रिय, उत्तम (योनिम्) आश्रयरूप शरण परमेश्वर के (अभि अर्षति) प्रति गमन करता है ।

(६) (त्यं एतं) उस इसको (अपस्युवः) कर्म करने की इच्छा करने हारी चेष्टावान् (दश) दस (हरितः) हरणशील इन्द्रियां, या प्राणवृत्तियां निरुद्ध होकर (मर्मृज्यन्ते) और अधिक उज्ज्वल होती हैं (याभिः) जिनसे वह मुमुक्षु भीतर विराजमान ऐश्वर्यशील आत्मा के (मदाय) परम आनन्द प्राप्त करने के लिये (शुम्भते) स्वयं प्रकाशित या सुशोभित या तैयार होता है ।

इति तृतीय: खण्डः ।

३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
[१२८०] एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।
२ ३ २ ३ १ २
अव्यं वारं वि धावति ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
[१२८१] एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः ।
२ ३ १ २ ३ २
विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१२८२] एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २
वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१२८३] एष वृषा कनिक्रदद् दशभिर्जामिभिर्यतः ।
३ १ २र
अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१२८४] एष सूर्यमरोचयत् पवमानो अधि द्यवि ।
३ १ २ ३ १र २र
पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥

१२८०—८५ १. 'अव्यो वार', ६. "संवसानं विवस्वतः पतिंवाचो अदाभ्यम्" इति च ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१२८५] एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता ।
पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥ ६ ॥ ५ ॥

"एष वाजी" इत्यारभ्य "एष सूर्यमरोचय" इति ऋ० ९ । २८ । १–५ ॥ पञ्चस्याश्चर्चः प्रथमः पादः पर्यन्ततः पवमाने" इत्यारभ्य "हासते" इत्यन्तं पादद्वयं च, ऋ० ९ । २७ । २५ ॥ "संवसानो" इत्यारभ्य "अदाभ्य" इत्यन्तं ऋ० ९ । २६ । ४ ॥

भा०—(१) (एषः) यह सोम. आत्मा (वाजी) ज्ञानवान्, बलवान्, सबको कंपाने हारा (विश्ववित्) समस्त संसार के सब पदार्थों की व्यवस्था को जानने हारा, सर्वज्ञ, (मनसस्पतिः) सबके मनों और समस्त ज्ञानों का स्वामी, परमात्मा और देह में आत्मा (नृभिः) सब मनुष्यों और देह में प्राणों द्वारा (हितः) धारण किया हुआ है । वही (अव्यं) आत्मा या प्राण के (वारं) वरण करने योग्य सीमा को भी (वि धावति) पार कर जाता है, उनसे परे है ।

(२) (एषः) यह (सोमः) सौम्यगुणों से युक्त, सब का प्रेरक, परमात्मा (देवेभ्यः) विद्वान्, ज्ञानी पुरुषों और समस्त दिव्यगुणयुक्त पदार्थों के निमित्त (सुतः) सूक्ष्मरूप से सब में प्रकट हुआ (पवित्रे) शुद्ध, कान्तिमय रूपों में (अक्षरत्) प्रकट होता है और (विश्वा) समस्त (धामानि) लोकों या तेजों में (आविशन्) व्यापक है ।

(३) (एषः देवः) वही प्रकाशमान देव (अमर्त्यः) अमरणधर्मा, अविनाशी, (वृत्रहा) सब आवरणकारी अन्धकारों का नाशक, (देववी-तमः) सब दिव्य पदार्थों को अपने भीतर रख लेने में सबसे अधिक सामर्थ्यवान्, सब में व्यापक, सबका प्रकाशक (योनौ अधि) मूलकारण रूप प्रकृति में (शुभायते) भासमान है ।

(४) (वृषा) समस्त काम्य सुखों का वर्षण करने हारा (एषः) यह आत्मा (कनिक्रदत्) व्यापक होकर (दशभिः) दश (जामिभिः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगिनीस्वरूप दश दिशाओं से (यतः) धारण किया गया (द्रोणानि) समस्त लोकों में (अभि धावति) व्यापक हो रहा है । आत्मपक्ष में—(दश जामिभिः) वह आत्मा ज्ञान उत्पन्न करने हारी दश इन्द्रियों सहित (द्रोणानि धावति) देहरूप कलशों में व्यापक है ।

(५) (एषः) वह परमात्मा (पवमानः) सर्वत्र व्यापक (अधि-द्यवि) आकाश में सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश में स्वयं (मदः) आनन्द स्वरूप (पवित्रे) पवित्र करने हारे आत्मा में (मत्सरः) आनन्दरस का स्रवण करने हारा होकर (सूर्यं) सूर्य के समान प्राण को भी (अरोचयत्) प्रकाशित करता है ।

(६) (एषः) यह सोम सर्वव्यापक, शक्तिमान्, परमात्मा (विवस्वता) दीप्तिमान् (सूर्येण) सबके प्रेरक सूर्य के साथ (संवसानः) समस्त संसार को आवृत करता हुआ (वाचः) समस्त वेदवाणी का (अदाभ्यः) अद्वितीय (पतिः) स्वामी, पालक होकर (आसते ह) निश्चय से विराजमान है ।

इति चतुर्थः खण्डः ।



[१२८६] एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
पुनानो घ्नन्नप द्विषः ॥ १ ॥

[१२८७] एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते ।
पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥

[१२८८] एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥

१२८६—१, 'घ्नन्नपस्निधः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१२८९] एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः ।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥

[१२९०] एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः ।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ५ ॥

[१२९१] एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥ ६ ॥

ऋ० ६ । २७ । १–४, ६ ॥ ऋ० ९ । २८ । ६ ॥

भा०—(१) (एषः) यह (कविः) क्रान्तदर्शी, ज्ञानी, सर्वज्ञ परमात्मा, (द्विषः) द्वेष करने हारे दुष्ट पुरुषों को (अपघ्नन्) दूर ही विनाश करता हुआ (पुनानः) सबको पवित्र करने हारा, पतितपावन (अभि-स्तुतः) उत्तम रीति से प्रार्थना और स्तुति किया गया (पवित्रे) शुद्ध, पवित्र हृदय-देश में (अधि तोशते) विराजता है ।

(२) (एषः) यह सोम, सब का प्रेरक ((दक्ष-साधनः) समस्त बलों का साधक, उत्पादक, (स्वर्जित्) समस्त उत्तम लोक और आनन्द, मोक्षसुखों का विजय करने हारा, (वायवे) प्राणस्वरूप (इन्द्राय) आत्मा के लिये (पवित्रे) पवित्र हृदयदेश में (परि-सिच्यते) सब प्रकार से ध्यानवृत्तियों द्वारा प्रवाहित, आप्लावित अर्थात् मनन किया जाता है ।

(३) (एषः) यह (दिवः मूर्धा) महान् आकाश या प्रकाश का मूर्धास्वरूप, मुख्य केन्द्र, सब का प्रेरक, (वृषा) सब सुखों का वर्षक, (सोमः) सोम (विश्ववित्) सर्वज्ञ, (नृभिः) विद्वान् नेता लोगों द्वारा (वनेषु) सेवन करने योग्य कार्यों, देहों और लोकों में (वि नीयते) नाना प्रकार से प्राप्त किया जाता, एवं स्मरण किया जाता है ।

(४) (एषः) यह (पवमानः) सर्वव्यापक, सब को पवित्र करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हारा, (हिरण्ययुः) समस्त प्रकाशमान लोकों में व्यापक, (इन्दुः) ऐश्वर्यशील, (सत्राजित्) समस्त संसार पर विजय करने हारा, (अस्तृतः) किसी से भी स्वयं हिंसित या विनाश न होने हारा, अद्वितीय, (गव्युः) समस्त गतिमान् पिण्डों में भी व्यापक, सबका हितकारी, (अचिक्रदत्) वेद द्वारा उपदेश करता है ।

(५) (एषः) यह सोम (हरिः) सबका नेता, सब दुःखों का हर्त्ता (वृषा) सब सुखों का वर्षक, (शुष्मी) सर्वशक्तिमान्, (इन्दुः) सर्वैश्वर्यवान्, (इन्द्रं) भीतरी अन्तर आत्मा को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अन्तरिक्षे) हृदयदेश में (आ असिष्यदत्) प्रवाहित होता है ।

(६) (एषः) यह (अदाभ्यः) अमर, हिंसित न होने वाला, स्वतः पीड़ारहित (देव-वीः) सब इन्द्रियों, देवों, पञ्चभूतों और दिव्य लोकों में भी व्यापक और उनका रक्षक (अघ-शंसहा) पापवार्ता कहने हारे का विनाशक, (सोमः) सोम, परमेश्वर (पुनानः) सब को पवित्र और प्रकाशित करता हुआ (अर्षति) सर्वत्र व्यापक है ।

इति पञ्चमः खण्डः ।

---

२ ३२ ३ २ ३ २ ३ १२ २ ३ १ २
[१२९२] स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।
३ १२ २२ ३ २
विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १२ २२ २ ३
[१२९३] स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।
३ २उ ३ १ २
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३२ ३ १२ १ २
[१२९४] स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति ।
३ १२ २२३ १ २
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
[१२९५] स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
जामिभिः सूर्यं सह ॥ ४ ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २र
[१२९६] स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविदादाभ्यः ।
२ ३ १ २
सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ १र २र
[१२९७] स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥ ६ ॥ ७ ॥ ऋ० ९ । ३७ । १–६ ॥

भा०—(१) (सः) वह (वृषा) मेघ के समान आनन्द-रसों और सुखों का वर्षक (सोमः) रसस्वरूप, सब का उत्पादक (देवयुः) विद्वानों और प्राणों की अभिलाषा पूर्ण करने हारा, प्रभु (पीतये) आनन्द पान कराने के निमित्त (सुतः) निष्पन्न होकर (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण, और अन्तरिक्ष में (रक्षांसि) अनेक बाधाओं को (विघ्नन्) नाश करता हुआ (अर्षति) व्याप्त होता है ।

(२) (सः) वह (हरिः) शक्तिमान्, सर्व दुःखों का हर्त्ता, (वि-चक्षणः) सब का द्रष्टा, (धर्णसिः) समस्त जगत् का धर्त्ता, (कनिक्रदत्) ज्ञानोपदेष्टा आत्मा (पवित्रे) पवित्र, अन्तःकरण में (योनिम् अभि) अपने आश्रय हृदय देश में (अर्षति) प्रकट होता है ।

(३) (सः) वह आत्मा (वाजी) बलवान्, ज्ञानवान् (दिवः) सूर्य और प्राण का भी (रोचनम्) प्रकाशक (पवमानः) सब को पवित्र करने हारा, (रक्षोहा) दुष्टों, दुष्ट भावों और विघ्नों का विनाशक, (अव्ययम्) अवि अर्थात् प्राणों के बने (वारं) स्थूल आवरण को (वि धावति) विशेष रूप से पारकर, रसरूप से प्रकट होता है ।

(४) (सः) वह (त्रितस्य) प्राण के (अधि सानवि) विशेषस्थान, त्रिपुटी में (पवमानः) परिशुद्ध होकर (जामिभिः) अन्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोत्पादक इन्द्रिय वृत्तियों के (सह) साथ मिलकर (सूर्यं) सूर्य के समान सब के प्रेरक, मुख्य प्राण को (अरोचयत्) और अधिक दीप्त, प्रकाशित करता है।

(५) (सः) वह (वृत्रहा) सब विघ्नों का विनाशक (सुतः) निष्पन्न (सोमः) सब इन्द्रियों और प्रजाओं का प्रेरक (वृषा) आनन्द-वर्षक सब का आश्रय केन्द्र आत्मा (अदाभ्यः) किसी से हिंसित या पराजित न होकर (वरिवोविद्) सबसे उत्तम आत्मरूप या आत्मानन्द कोश = खजाने को लाभ कराने हारा (वाजम् इव) युद्ध में शूरवीर के समान परम ज्ञानमय ब्रह्म की ओर (असरत्) गति करता है।

(६) (सः) वह (देवः) देदीप्यमान प्रकाशस्वरूप (कविना) क्रान्तदर्शी मेधावी, सबके गुरु आत्मा या परमात्मा द्वारा (ईषितः) प्रेरित होकर उसका प्रेमपात्र होकर (इन्दुः) भीतर ही द्रवित होता हुआ (इन्द्राय) इन्द्रियों के स्वामी आत्मा को (मंहयन्) आनन्द प्रदान करता हुआ (द्रोणानि) समस्त ज्ञान कलशों, कोष्ठों, देहों और लोकों में (अभि धावति) विचरण करता है।

इति षष्ठः खण्डः ।

---

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
[१२९८] यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥ १ ॥
३ २उ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
[१२९९] पावमानी यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ २ ॥
३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३००] पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऋषिभिः सम्भृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥ ३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१३०१] पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥ ४ ॥

[१३०२] येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥

[१३०३] पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥ ६ ॥ ८ ॥

आद्ये द्वे ऋ० ६ । ६७ । ३१, ३२॥ शेषा ऋग्वेदे नोपलभ्यन्ते ।

भा०—(१) (यः) जो (ऋषिभिः) मन्त्र का साक्षात् दर्शन करने वाले ऋषियों द्वारा (सम् भृतम्) अच्छी प्रकार धारित और प्राप्त एवं साक्षात् किये और अन्यों को उपदेश किये हुए (रसं) आत्म-ज्ञानस्वरूप मधुविद्यामय, रसरूप (पावमानीः) सोम, पवमान सम्बन्धी ऋचाओं को (अध्येति) अध्ययन करता है, उनके तत्त्वार्थ ज्ञान का लाभ करता है (सः) वह (सर्वं) सब (मातरिश्वना) अन्तरिक्ष में व्यापक परब्रह्म या प्राणस्वरूप जीवनशक्ति द्वारा या (मातरि ज्ञानसाधने इन्द्रिये आत्मनि वा श्वयति गच्छति इति मातरिश्वा मनः तेन) ज्ञानसाधन इन्द्रियगणों वा आत्मा में निरन्तर गति करने हारे मन द्वारा (स्वदितं) आस्वादन करने योग्य (पूतं) पवित्र ज्ञान का (अश्नाति) लाभ करता है और उपयोग करता है । 'मनः पूतं समाचरेत्' इति मनुः ।

(२) (यः) जो (ऋषिभिः सं-भृतं रसं) मन्त्रद्रष्टा, विद्वान् ऋषियों द्वारा प्राप्त अर्थात् साक्षात् किये गये ज्ञान रसस्वरूप (पावमानीः) पवमान, सोम, आत्मा सम्बन्धी वेद की ऋचाओं का (अध्येति) अध्ययन करता है (तस्मै) उसके लिये (सरस्वती) वेदवाणी (क्षीरं) शुद्ध दुग्ध के समान आत्मज्ञान, (सर्पिः) घृत के समान स्नेहपूर्ण, उज्ज्वल, ज्योतिः-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप आत्मदर्शन और (मधु) मधु के समान आनन्ददायक मधुर ब्रह्म बन्दे-आस्वाद और (उदकं) जल के समान शीतल, शान्तिरस को (दुहे) दोहन करती है।

(३) (याः पावमानीः ऋचः) जो पवमान सोमसम्बन्धी ऋचाएं हैं वे (स्वस्त्ययनीः) कल्याण और योगक्षेम को प्राप्त कराने हारी, (सुदुघाः) सुखसे ही परमानन्द रस को देने वाली, (घृत-श्चुतः) ज्ञान और सात्विक प्रकाश के उत्पन्न करने वाली हैं । वे तो साक्षात् (ऋषिभिः) ऋषियों द्वारा (संभृतः) प्राप्त (रसः) परम रसस्वरूप (ब्राह्मणेषु[1]) वेद के विद्वानों के भीतर (हितम्) स्थापित (अमृतं) कभी न नाश होने वाली अमृत, अध्यात्म ब्रह्मज्ञान के समान हैं।

(४) (पावमानीः) पवमान सोम-सम्बन्धी ऋचाएं ही (नः) हमें (इमं) इस (लोकं) लोक (अथो) और (अमुं लोकं) परलोक को (दधन्तु) धारण करावें । और वे (देवीः) दिव्यगुणप्रकाशक होकर (देवैः) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों द्वारा (समाहृताः) उपदेशों और व्याख्यानों द्वारा सर्वत्र प्रकाशित होकर (नः) हमारे (कामान्) शुभसंकल्पों को (समर्धयन्तु) पूर्ण करें ।

(५) (देवाः) विद्वान् योगीजन (येन) जिस (पवित्रेण) समस्त संसार को पवित्र करने हारे उपाय से (सदा) नित्य अपने (आत्मानं) आत्मा को (पुनते) पवित्र करते हैं (तेन) उस (सहस्र-धारेण) सहस्रों धारणा शक्तियों से सम्पन्न, योगसाधन या पतितपावन ईश्वर प्रणिधान से ही यह (पावमानीः) पवमान सोम-सम्बन्धी ऋचाएं भी (नः) हमें (पुनन्तु) पवित्र करें ।

(६) (स्वस्त्ययनीः) कल्याण और योगक्षेम को प्राप्त कराने हारी,

[1] विपापो विरजोऽविचिकित्सो ब्राह्मणो भवति । [बृहदारण्यक उप० अ० ४ । ४ । २३]

पापे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पावमानीः) पावमान सम्बन्धी ऋचाएं ही हैं । (ताभिः) उनसे आत्मा की साक्षात् (नान्दनं) परमानन्द अवस्था, मोक्ष को (गच्छति) प्राप्त होता है और (पुण्यान् च) पुण्य, (भक्षान्) सेवन करने योग्य सुख भोगों को (भक्षयति) उपभोग करता है और (अमृतत्वं च) अमृतत्व-रूप परम पद को भी (गच्छति) प्राप्त करता है ।

'स एतमेव सीमानं विदार्य एतया द्वारा प्रापद्यत, सैषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनं तस्य त्रय आवसथाः । त्रयः स्वप्नाः । अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति । स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यं वावदिषद् इति । स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यत् इदमदर्शमिति तस्मादिदन्द्रो नाम इन्द्र इत्याचक्षते परोक्षम् । इत्यादि । एतरेय० उप० ४ । ४ ।

इति सप्तमः खण्डः ।

[१३०४] अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे । चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥

[१३०५] स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निष्टवे दम आ जातवेदाः । स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान् गृणत उत नो मघोनः ॥ २ ॥

[१३०६] त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः । त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ९ ॥ ऋ० ७ । १२ । १–३ ॥

भा०—(१) (यः) जो (स्वे) अपने (दुरोणे) इस ब्रह्माण्ड रूप अनन्त संसार में (समिद्धः) प्रकाशमान होकर (दीदाय) चमकता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उस (विश्वतः) सर्वत्र (प्रत्यञ्चं) व्यापक, (उर्वी) महान् (रोदसी) द्यौ और पृथिवी लोकों के (अन्तः) बीच (स्वाहुतं) स्वयं सब को वश करने हारे, सबके आश्रयरूप (यविष्ठं) सबसे अधिक बलवान्, सब में व्यापक, (चित्र-भानुं) पूजनीय, कांतिमय ज्ञानदाता, परमेश्वर को (मह्नानमसा) बड़े विनय से (अगन्म) हम प्राप्त हों।

यदर्चिमद् यदणुभ्योऽणु यस्मिंल्लोका निहिता लोकिनश्च। (मुण्डक० २।२।२)

(२) (सः) वह (मह्ना) अपनी महिमा से (विश्वा दुरितानि) समस्त पापों को (साह्वान्) दूर करने हारा, (अग्निः) अग्निस्वरूप परमात्मा (जातवेदाः) समस्त पदार्थों का जानने हारा (दमे) हमारे हृदयरूप या ब्रह्माण्डरूप गृह में या यज्ञस्थल में (आ स्तवे) सर्व प्रकार से स्तुति किया जाता है। (सः) वह (नः) हमें (अवद्यात्) निन्दनीय (दुरितात्) पापाचरण से (रक्षिषत्) रक्षा करे और (गृणतः) स्तुति करने हारे (अस्मान्) हम लोगों को बचावे । (उत) और (मघोनः) ज्ञान-धन सम्पन्न (नः) हमें पापाचरण से बचावे।

(३) हे अग्ने ! ज्ञानस्वरूप (त्वं) तू (वरुणः, उत मित्रः) सब पापों से निवारण करने और सर्वश्रेष्ठ होने से 'वरुण' और सबको स्नेह करने हारा और मृत्यु से बचाने वाला होने से 'मित्र' है । (वसिष्ठाः) अपने वश में स्थित अथवा परमपद में वास करने हारे, ज्ञानी अथवा अपने स्वरूप में स्थित मुमुक्षु लोग या प्राणगण (मतिभिः) मननशक्तियों द्वारा (त्वा) तुझे या तेरी महिमा को ही (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं। (त्वे) तुझ में, तेरी साक्षिता में (वसूनि) समस्त ज्ञान, धन, (सुषणनानि) उत्तम २ सुख प्रदान करने वाले, अथवा सुख से दान करने योग्य (सन्तु) हों। हे विद्वान् लोगो ! (यूयं) आप लोग भी (नः) हमें (सदा) नित्य (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी कार्यों, उत्तम उपायों और आशीर्वादों से (पात) रक्षा करो।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१३०७] महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥

[१३०८] कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्।
जामि ब्रुवत आयुधा ॥ २ ॥

[१३०९] प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः।
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ ३ ॥ १० ॥

ऋ० ८। ६। १, ३, २ ॥

भा० – (१) (वृष्टिमान्) वृष्टि करने वाला (पर्जन्यः इव) मेघ जिस प्रकार अपने सामर्थ्य से सर्वत्र फैल कर स्वयं वृष्टि करता है उसी प्रकार (यः) जो (इन्द्रः) इन्द्र (ओजसा) अपने बल से (महान्) बड़ा होकर (वत्सस्य) वत्स के समान अपने आश्रय पर रहने वाले, स्तुतिशील, वन्दना करने वाले समस्त भक्त संसार की (स्तोमैः) स्तुतियों द्वारा (वावृधे) बड़ा कीर्त्तिमान्, प्रसिद्ध होता है।

(२) (कण्वाः) ज्ञानी स्तोतागण (स्तोमैः) अपने स्तोत्रों द्वारा (यद्) जब (इन्द्रं) इन्द्र अर्थात् आत्मा ही को (यज्ञस्य) जीवनरूप यज्ञ का (साधनं) साधन (अक्रत) बना लेते हैं तब विद्वान् लोग (आयुधा) अन्य प्राण आदि इन्द्रिय–साधनों को, या यज्ञ के पात्रादि को (जामि) प्रयोजनरहित ही (ब्रुवते) कहते हैं। साधक लोग जब अध्यात्म यज्ञ करते हैं तब द्रव्ययज्ञ व्यर्थ जान पड़ता है।

(३) (यद्) जब (पिप्रतः) पूर्ण करने हारे (वह्नयः) अग्नि के समान दीप्तिमान् ज्ञान को धारण करने हारे (विप्राः) मेधावी, ज्ञानी लोग (ऋतस्य) सत्यज्ञान रूप आत्मा की (प्रजां) उत्तम रीति से प्रादुर्भाव होने हारी आत्मशक्ति और सत्यज्ञान या प्रजा शिष्य आदि को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्र भरन्त) उत्तम रीति से धारण करते हैं तभी वे (ऋतस्य) ज्ञान और सत्य के (वाहसा) प्रापक बल से ही उसे धारण करते हैं।

इति: अष्टमः खण्डः ।

[१३१०] पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत ।
जीरा अजिरशोचिषः ॥ १ ॥

[१३११] पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २ ॥

[१३१२] पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ११ ॥

ऋ० ९ । ६६ । २५—२७ ॥

भा०—(१) (पवमानस्य) पवित्र शुद्ध रूप में प्रकट होते हुए, (हरेः) समस्त दुःखों का हरण करने हारे और (जिघ्नतः) समस्त अज्ञान-पटलों का बार २ नाश करते हुए सोम, अर्थात् आत्मा की (चन्द्राः) आह्लादकारिणी (जीराः) और दुःखनाशिनी (अजिर-शोचिषः) अविनाशशील कान्तियां (असृक्षत) उत्पन्न होती हैं।

(२) वह (पवमानः) परम पावन आत्मा (रथीतमः) इस देहरूप रथ पर गति करने हारा, सब से उत्तम रथी, (चन्द्रः) आह्लादक, (हरिः) दुःखनाशक (मरुद्गणः) प्राणगण के साथ वर्त्तमान (शुभ्रेभिः) शुभ्र तेजों से (शुभ्र-शस्तमः) अति शुभ्रस्वरूप, कान्तिमान्, निर्मल है।

(३) हे (पवमान) सब को पवित्र करने हारे! स्वयं पवित्ररूप में प्रकट होता हुआ तू (स्तोत्रे) विद्वान् पुरुष में (सुवीर्यं) यश, बल और

१३१०—१, 'जघ्नतो' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्रादि धन को (दधत्) धारण पोषण करता हुआ (रश्मिभिः) अपने किरणों से (वाज-सातमः) ज्ञान और बल का सर्वोत्तम प्रदान करने हारा होकर (व्यश्नुहि) विविध ऐश्वर्यों को प्राप्त कर ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
[१३१३] परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
३ १२ २र ३ २ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वा३ऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः १

३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २
[१३१४] नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सुत चित् त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् २

१ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २
[१३१५] परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः
॥ ३ ॥ १२ ॥ ऋ० ९ । १०७ । १-३ ॥

भा०—(१) (यः सोमः) जो साम, शरीर में वीर्य, ब्रह्माण्ड में धारक तेज या सूर्यबल, देवों अर्थात् इन्द्रियों में आत्मा और पृथिवी आदि पिण्डों में आकाश रूप (उत्तमं) उत्तम, श्रेष्ठ (हविः) उपादान करने योग्य अन्न और खाद्य और जीवनप्रद आश्रय होता है और (यः) जो (नर्यः) नेता, इन्द्रियगण और सूर्यादि लोकों के लिये हितकारी और (अप्सु) समस्त कर्मों, प्रज्ञानों और देह के जलीय रुधिरादि अंशों और लोकों के भीतर विद्यमान रहता हुआ उनको (दधन्वान्) स्वतः धारण कर रहा है, उस (सोमं) सोम अर्थात् वीर्य को (अद्रिभिः) न क्षीण होने हारे अखण्ड, ब्रह्मचर्यादि साधनों, विद्वानों और सूर्यादि लोकों से (आ सुषाव) उत्पन्न किया जाता है । अतः उस (सुतं) उत्पन्न वीर्य और तेज को हे विद्वान् लोगो ! (इतः) इस मूलस्थान से ऊपर (परि षिञ्चत) शिर आदि प्रदेशों की ओर द्रवित करो अर्थात् ऊर्ध्वरेता बनो । व्याख्या देखो [५१२] पृ० २५२ ।

१३१३—१. 'अस्वान्तरा' । २. 'परिस्वानः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे सोम ! तू (अस्तृधः) किसी से हिंसित न होने वाला, सब से अधिक बलशाली, (सुरभिंतरः) सब प्राणों से अधिक उत्तम गंध और बल वाला, (नूनं) निश्चय से (अविभिः) प्राणों द्वारा (पुनानः) अति पवित्र होता हुआ (परि स्रव) समस्त शरीर में गति कर । और (सुते चित्) शरीर में उत्पन्न होने पर (अन्धसा) प्राण जीवन देने वाले अन्न और (गोभिः) इन्द्रियों के पुष्टिकारक दुग्धादि रसों द्वारा (त्वा) तुझे (उत्तरं) और भी उत्कृष्ट रूप में (श्रीणन्तः) परिपक्व करते हुए (अप्सु) शारीरिक कर्मों और मानसिक विचार क्रियाओं में हम (मदामः) आनन्द-लाभ करते हैं ।

(३) (इन्दुः) परमैश्वर्यवान् उक्त सोम रूप शुक्र का पालन करने हारा ब्रह्मचारी, (वि-चक्षणः) नाना प्रकार के विज्ञानों का द्रष्टा, (क्रतुः) कर्म करने हारा, (देव-मादनः) अपनी इन्द्रियों और दिव्यगुण युक्त विद्वान् पुरुषों को हृष्ट पुष्ट करने और आनन्द देने हारा, (स्वानः) स्वयं निष्पन्न होता हुआ (परि चक्षसे) सब के देखने योग्य होजाता है ।

१ २ ३ १ २ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र
[१३१६] असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा
२र २ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
अचिक्रदत् । पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं
३ १ २ ३ १
घृतवन्तमासदत् ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
[१३१७] पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु
१ २ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ २ ३ २र २र
क्षयं दधे । स्वसार आपो अभि गा उदासरन् त्सं ग्रावभि-
३ १ २ ३ २
र्वसते वीते अध्वरे ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २र
[१३१८] कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजम-

१३१६—'वारं पर्येत्यव्ययं', 'घृतवन्तमासदम्' । ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३
र्षसि । अपसेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः
१ २ ३ १ २
परि यासे निर्णिजम् ।। ३ ।। १३ ।।

ऋ० ९ । ८२ । ~~३~~ ।।

भा०—(१) (अरुषः) दीप्तिमान्, (वृषा) सुखों का वर्षक, श्रेष्ठ, (हरी) सब दुःखों का हर्त्ता, सबका नेता (सोमः) सोम, तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (असावि) उत्पन्न होता है । वह (राजा इव) राजा के समान (दस्मः) दुष्टभावों का नाशक एवं दर्शनीय होकर (गाः) जैसे प्रजाओं के प्रति राजा अपनी घोषणाएं करता है उसी प्रकार आत्म-रूप सोम इन्द्रियों के प्रति और आचार्य विद्वान्, प्रजारूप शिष्यों के प्रति (अभि अचिक्रदत्) वेद का उपदेश करता है । (पुनानः) स्वयं पवित्र और देदीप्यमान होता हुआ, (अव्ययं) प्राणमय (वारं) आवरण को (अत्येषि) पार करके (श्येनः न) जिस प्रकार बाज़ पक्षी उड़कर अपने निवास, घोंसले की तरफ़ चला जाता है उसी प्रकार वेगवान् होकर वह भी (घृतवन्तं) प्रकाशस्वरूप (योनिं) मूलस्वरूप आश्रय को (आसदत्) प्राप्त होता है । यहां प्राणमय कोश से विज्ञानमय कोश पर वश करने हारे योगाभ्यासी का वर्णन है । व्याख्या देखो अविकल संख्या [५६२] पृ० २८६ ।

(२) (पर्णिनः) ज्ञानसम्पन्न, (महिपस्य) महान्, बलवान् सोमरूप आत्मा का (पिता) पालक (पर्जन्यः) मेघ के समान आन-न्दरसों का दाता, प्रजापति परमात्मा ही है । वह (पृथिव्याः) भूलोक के (नाभा) नाना प्रकार के सम्बन्धों में (गिरिषु) विद्वानों में (क्षयं) निवास को (दधे) धारण करता है । (आपः) ज्ञान-वृत्तियां (स्वसारः) अपने ही स्वरूप से प्रकट होकर निकलने हारी, (गाः अभि) इन्द्रियों के प्रति (उद् आसरन्) ऊर्ध्वगति करती हैं और वह आत्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वीते) कान्तिमान् (अध्वरे) ज्ञानयज्ञ में ((ग्रावभिः) विद्वानों के संग (सं वसते) निवास करता है ।

(३) हे (सोम) आत्मन् ! तू (कविः) क्रान्तदर्शी, मेधावी होकर (वेधस्या) विशेष विधान करने हारी मति द्वारा (माहिनम्) पूजनीय परमात्मा के प्रति (परि एषि) गति करता है । (मृष्टः) अति शुद्धस्वरूप होकर (अत्यः न) वेगवान् घोड़ा जिस प्रकार संग्राम में जाता है उसी प्रकार (वाजम्) ज्ञान को लक्ष्य कर, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (अभि अर्षसि) मोक्षपथ में गति करता है । हे (सोम) विद्वन् ! (दुरिता) दुष्ट चेष्टाओं को (अप सेधन्) दूर करता हुआ (नः) हमें (मृड) सुखी कर । और तू (घृता) कान्ति या. तेजों के भीतर (वसानः) आच्छादित होकर ही (निर्निजम्) शुद्ध संकल्प को (परि यासि) प्राप्त कर ।

१ २ ३ २३ १र २र
[१३१९] आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः॥ १॥
१ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
[१३२०] अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन्
॥ २ ॥ १४ ॥ ऋ० ८ । ९९ । ३, ४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२९७] पृ० १३६ ।

(२) हे मनुष्य ! तू (अलर्षि-रातिं) निष्पाप सात्विक, दानशील, (वसु-दाम्) वास योग्य पदार्थ प्राण आदि का दान करने हारे परमेश्वर की (उप स्तुहि) स्तुति कर । क्योंकि (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यशील परमात्मा के (रातयः) सब दान (भद्राः) कल्याणकारी हैं । (यः) जो स्वामी के समान (मनः) अपने मन अर्थात् ज्ञान को (दानाय)

१३२०—'अनर्शरातिं,' सो अस्य कामे इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान करने के लिये (चोदयन्) प्रेरित करता हुआ (अस्य विधतः) इस अपने भक्त, सेवा करने हारे स्तोता की (कामं) इच्छा को (न) नहीं (रोषति) नाश करता ।

१ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २
[१३२१] यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
१ २ ३ २र ३ १ २ ३ २ ३ २र ३ १र २र
मघवं छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ।१।।

२र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१३२२] त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्त्ता ।
१ २ ३१ २ ३ १ २
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे
॥ २ ॥ १५ ॥ ऋ० ८ । ६१ । १३, १४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२७४] पृ० १४० ।

(२) हे (राधसः पते) सकल धनों और ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (त्वं) तू (हि) निश्चय से (महः) बड़े भारी (क्षयस्य) निवास-स्थान, ऐश्वर्य और (राधसः) बड़े भारी धन वा शक्ति, साधन। सामर्थ्य का (विधर्त्ता) विशेष रूप से धारण करने हारा स्वामी (असि) है । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् ! हे (इन्द्र) विघ्नों के नाशक ! हे (गिर्वणः) वाणियों के एकमात्र विषय ! (सुतावन्तः) उत्पन्न समस्त पदार्थों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों के स्वामी होकर हम ज्ञानी पुरुष (त्वां) तुझ को ही (हवामहे) आह्वान करते हैं, तेरा स्मरण करते हैं ।

इति दशमः खण्डः ।

---

१ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
[१३२३] त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे ।
१ २ ३ १ २
पवस्व मंहयद् रयिः ॥ १ ॥

१३२२—'त्वं हि राधसस्पते,' 'विधतः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३२४] त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान् मत्सरिन्तमः ।
१ २ ३ १र २र
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ २ ॥

१ २ ३ १र २र ३क २र ३ १ २
[१३२५] त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
द्युमन्तं शुष्ममाभर ॥ ३ ॥ १६ ॥ ऋ० ९ । ६७ । १–३ ॥

भा०—(१) हे (सोम) परमेश्वर ! (त्वं) तू (धारयुः) धारणायुक्त अथवा धारा या वेदवाणी का स्वामी, (मन्द्रः) अति आनन्दपूर्ण और (अध्वरे) यज्ञ, हिंसारहित, जगत् पोषण के कार्य में (ओजिष्ठः) अति बलवान्, ओजस्वी, तेजस्वी, (असि) है और (मंहयद् रयिः) ऐश्वर्य का प्रापक होकर (अध्वरे) ज्ञानमय, सर्वपालक, कल्याणकारी उपासनामय यज्ञ में (पवस्व) प्रकाशित हो ।

(२) (त्वं) तू (सुतः) निष्पन्न होकर (मदिन्तमः) अति हर्षजनक, (मत्सरिन्तमः) अन्य समस्त इन्द्रियों एवं प्रजाजनों और देहों में हर्ष का प्रसारक (इन्दुः) कान्तिसम्पन्न (अस्तृतः) किसी से भी पराजित न होकर (सत्राजित्) सब से अधिक उत्कृष्ट, सब पर विजयशील होकर सबको (दधन्वान्) धारण करता है ।

(३) (त्वं) तू (अद्रिभिः) विदीर्ण न होने वाले, अभेद्य, दृढ तपों या अखण्ड तपस्वियों द्वारा (सुष्वाणः) निष्पादित किया हुआ परिपक्व या अभ्यास किया हुआ (कनिक्रदत्) उत्तम ज्ञान का उपदेश देने हारा होकर (अभि अर्ष) प्रकट हो, हमें प्राप्त हो । और (द्युमन्तं) यशोजनक (शुष्मं) बल को (आ भर) प्राप्त करा ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३२६] पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
२ ३ २ १ २
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ १ ॥

१३२४–'त्वं सुतो नृमादनः' 'इन्द्राय सूरिरन्धसा'। १३२५–'शुष्ममुक्थ्यमु' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१३२७] तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ २ ॥

[१३२८] आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ३ ॥ १७ ॥

ऋ० ९ । १०६ । ७–९ ।

[१३२९] परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ३ ॥ १७ ॥

ऋ० ९ । १०६ । ७–९ ।

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५७१] पृ० २९१ ।

(२) हे सोम सबके उत्पादक ! आनन्दरसस्वरूप ! (तव) तेरे (उद-प्रुतः) रस को प्रवाहित करने हारे (द्रप्साः) द्रुतगति से बहने वाले आनन्दरस (इन्द्रं) आत्मा को (मदाय) अति आनन्द प्राप्त करने के निमित्त (वावृधुः) बढ़ाते हैं, उसे और अधिक शक्तिशाली बनाते हैं । (देवासः) विद्वान् योगीजन (कं) आनन्दस्वरूप (त्वां) तुझको (अमृताय) अमृतस्वरूप परम आनन्द-प्राप्ति के लिये (पपुः) पान करते हैं ।

(३) हे (इन्दवः) आत्मा के भीतर प्रवाहित होने हारे, (इन्दवः) कान्तियुक्त ! (सुतासः) ज्ञानानन्द रसो ! या ज्ञानी पुरुषो ! तुम निष्पन्न होकर (पुनानाः) स्वतः पवित्र (रीत्यापः) सब रसों के प्रापक (वृष्टिद्यावः) ज्ञान कान्ति के वर्षक, (स्वर्विदः) सुखों के प्राप्त कराने हारे, आप (रयिम्) अति रमणीयरूप आत्मा के प्रति (आ धावत) गति करो और आत्मा को सुख शान्ति प्राप्त कराओ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१३३०] परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान् विश्वा इत् परि मदेन सह गच्छति ॥ १ ॥

[१३३१] द्विर्यं पंच स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥

[१३३२] इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ ३ ॥ १८ ॥

ऋ० ९ । ९८ । ७, ६, १० ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [५५२] पृ० २८० ।

(२) (यं) जिस मुख्य प्राणरूप, सबके प्रेरक, सोम को (द्विः पंच च) दोगुना पांच अर्थात् दश (सखायः) समान नाम वाले, इन्द्रिय नामक प्राण (ऊर्मयः) ऊर्ध्वगति होकर (स्व-यशसं) अपने कीर्त्तिस्वरूप (अद्रि-संहतम्) पर्वत के समान अभेद्य बल से युक्त (इन्द्रस्य) अन्तरात्मा के (काम्यम्) अति कामना योग्य, (प्रियम्) अपने प्यारे को (प्रस्नापयन्तः) उत्तम रीति से स्नान कराते हैं, सुखरूप जलों से मानो उसका अभिषेक करते हैं, उसका साक्षात् ज्ञान करो ।

(३) हे (सोम) सबके प्रेरक बल ! आनन्दमय ! (पातवे) तेरे पान या पालन करने हारे, (वृत्रघ्ने) अज्ञान रूप विघ्न के विनाशक (दक्षिणावते) क्रिया शक्ति से सम्पन्न (सदनासदे) प्रत्येक आश्रयस्थान जीवनरूप यज्ञ के गृह अर्थात् शरीर में स्थिर रूप से वर्त्तमान (वीराय) शक्तिशाली (नरे) सबके नेता, प्रवर्त्तक, (इन्द्राय) आत्मा के निमित्त तू (परि सिच्यसे) प्रवाहित किया जाता है ।

१३३०—'स्वयशसं स्वसारः' 'प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम्' । ऋ० ।
१३३१—'देवाय सदनासदे' इति च ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१३३२] पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१॥

[१३३३] प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥२॥

[१३३४] शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥ ३ ॥ १९ ॥ ऋ० ९ । १०९ । १०–१२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४३०] पृ० २२० ।

(२) (ते) वे (सोतारः) निष्पादक, साधक योगीजन (रसं) रसस्वरूप उस (सोमं) सबके प्रेरक, आनन्दरस सोम को (महे) बड़े भारी (द्युम्नाय) यश और ज्ञान ऐश्वर्य, तेज और (मदाय) आनन्द प्राप्ति के लिये (प्र पुनन्ति) उत्तम रीति से परिशोधित करते हैं ।

(३) (शिशुं) इस शरीर में शयन करने हारे (हरिं) दुःखों के हर्त्ता और इन्द्रियों के नेता रूप में (जज्ञानं) प्रादुर्भाव होने हारे मुख्य प्राणरूप (इन्दुम्) देदीप्यमान (सोमं) सोमरूप आनन्दरस को (देवेभ्यः) देवों, इन्द्रियों और विद्वानों के लिये (पवित्रे) पवित्र हृदय या परमपावन ईश्वर के ध्यान में (मृजन्ति) परिशुद्ध करते हैं उसका साक्षात् करते हैं ।

[१३३५] उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥

[१३३६] तमिद् वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव ।
य इन्द्रस्य हृदं सनिः ॥ २ ॥

[१३३७] अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥ २० ॥ ऋ० ९ । ६१ । १३–१५ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [३८७] पृ० १४६ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (सं शिश्वरीः) माताएं जिस प्रकार (वत्सं इव) बालक को अपने दुग्धरसों से बढ़ाती हैं उसी प्रकार (नः) हमारी (गिरः) ज्ञानकथाएं (तम् इद्) उस आत्मा के आनन्द को ही (वर्धन्तु) वृद्धि करें, उसके बल को बढ़ावें (यः) जो (इन्द्रस्य) अन्तरात्मा रूप इन्द्र के (हृदं सनिः) हृदय में व्यापक रहता है ।

(३) हे सोम ! तू (नः) हमारे (गवे) गोरूप वाणी के लिये (शं) शान्तिदायक कल्याणकारी सुख को (अर्षं) प्रेरित कर और (पिप्युषीम्) निरन्तर सामर्थ्य बढ़ाने वाली (इषं) इच्छा शक्ति और अन्न के समान पोषक बल को (धुक्षस्व) प्राप्त करा और हे (उक्थ्य) प्रशंसनीय ! (समुद्रं) रसों के सागर रूप आत्मा को (वर्धं) बढ़ा ।

इति एकादशः खण्डः ।

[१३३८] आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

[१३३९] बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥

[१३४०] अयुद्ध इद् युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥ २१ ॥

ऋ० ८ । ४५ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१३३] पृ० ७२ ।

(२) (युवा) बलवान् (इन्द्रः) परमेश्वर या आत्मा (येषां) जिनका (सखा) मित्र है (एषां) इनका (इध्मः) तेज (बृहत् इत्)

१३३८—२. 'भूरिशस्त' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत ही बड़ा है और (शस्त्रं) उनकी स्तुति, महिमा गान करने वाली वाणी भी (भूरि) बहुत है और (स्वरुः) उनका स्वर या प्राण, बल या तेज भी (पृथुः) बड़ा है ।

(३) (येषाम् इन्द्रः युवा सखा) बलवान् परमात्मा जिनका मित्र है उनमें से (अयुद्धः इव) युद्ध न करने वाला भी अकेला (शूरः) शूरवीर के समान (युधा वृतः) योधागण से घिरे प्रतिपक्षी शत्रु पर (सत्त्वभिः) अपने बलों द्वारा (आजति) चढ़ाई करता है और उसे उखाड़ फेंकता है ।

[१३४१] य एक इद् विदयते वसु मर्त्ताय दाशुषे ।
इशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ १ ॥

[१३४२] यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आ विवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ २ ॥

[१३४३] कदा मर्त्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा न शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ३ ॥ २२ ॥

ऋ० १ । ८४ । ७, ९, ८ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३८९] पृ० २०१ ।

(२) (बहुभ्यः) बहुत से पुरुषों में से (यः चित् हि) जो कोई भी (सुतावान्) ज्ञान योग से प्राप्त ब्रह्मानन्द रस के निष्पादक (त्वा) उस परमात्मा स्वरूप (त्वा) आपको (आ विवासति) साक्षात् देख लेता है (अङ्ग) हे नर ! (इन्द्रः) आप परमेश्वर उसको शीघ्र ही (तत्) वह (उग्रं शवः) उग्र, वीर्य सम्पन्न बल (पत्यते) प्रदान करते हैं ।

(३) (अङ्ग) हे पुरुषो ! (इन्द्रः) वह परमेश्वर तो (नः गिरः) हमारी वाणियों को (कदा) जब कभी भी (शुश्रवद्) सुन लेता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (अराधसं) आराधना न करने हारे, तुच्छ नास्तिक को (पदा) चरणस्पर्श मात्र से नष्ट होजाने वाले (क्षुम्पम् इव) सांप की छतरी, खुम्ब या पदबहेरे के नन्हे अंगुर पौदे के समान (पदा) अपने सामर्थ्य से (कदा) कभी भी (स्फुरत्) विनाश कर देता है।

[१३४४] गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

[१३४५] यत् सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ।

[१३४६] युङ्क्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ॥ २ ॥
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥ २३ ॥
ऋ० १ । १० । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३४२] पृ० १७९ ।

(२) (यत्) जब (सानोः सानु) ऊंची से ऊंची चित्तभूमि में साधक (आरुहः) चढ़ जाता है और (भूरि) बहुत कुछ मनः-संकल्प (कर्त्वं) पूर्ण करने के लिये (अस्पष्ट) साधन करता है। (तद्) तब (इन्द्रः) परमेश्वर (अर्थं) उसके इष्ट प्रयोजन को (चेतति) जान लेता है और तब (वृष्णिः) सुखों की वर्षा करने हारा वह आत्मा (यूथेन) अपने इन्द्रिय गण में प्रकट होने वाली शक्तियों सहित (एजति) सेनापति के समान आगे बढ़ता है।

(३) हे (सोम-पाः) सोमरूप आनन्दरस का पान करने हारे (इन्द्र) आत्मन् ! (अथा) अब (नः) हमारे (गिराम्) वाणियों की (उप-श्रुतिम्) ध्वनि को (चर) श्रवण कर। और (केशिना) ज्ञान, साधना से सम्पन्न (वृषणा) सुखों के वर्षक (कक्ष्य-प्रा) कक्षा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वालों को पूर्ण करने हारे प्राण और अपान दोनों को (युक्ष्व हि) साधना में नियुक्त कर ।

इति द्वादशः खण्डः ।

इति-द्वितीयोऽर्धः प्रपाठकः पञ्चमश्च प्रपाठकः समाप्तः ॥

इति दशमोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ एकादशोऽध्यायः

अथ षष्ठः प्रपाठकः (प्रथमोऽर्धः)

ऋषिः—१, ३ मेधातिथिः काण्वः । १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । २ प्रगाथः काण्वः । ४ पराशरः शाक्त्यः । ५ प्रगाथो घौरः काण्वो वा । ७ त्र्यरुणस्त्रैवृष्ण त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः । ८ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः । ६ हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । ११ सार्पराज्ञी ॥ देवता—आप्रीसूक्तम् । १ इध्मः समिद्धो वाग्निः, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः । २ आदित्याः । ३, ५, ६ इन्द्रः । ४, ७—६ पवमानः सोमः । १० अग्निः । ११ आत्मा सूर्यो वा ॥ छन्दः—१—३, ११ गायत्री । ४ त्रिष्टुप् । ५, ६ प्रगाथो बार्हतः । ७ अनुष्टुप् । ८ द्विपदा पंक्तिः । ६ जगती । १० विराड् जगती ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३४७] सुषमिद्धो न आवह देवाँ अग्ने हविष्मते ।
१ २ ३ १ २
होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २
[१३४८] मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे ।
३ १ २ ३ १ २
अद्या कृणुह्यूतये ॥ २ ॥

१३४८—'कृणुहि वीतये' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
[१३४९] नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये ।
१ २ ३ १ २
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
[१३५०] अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आवह ।
२ ३ २ ३ १ २
असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥ १ ॥ ऋ० १ । १३ । १–४ ॥

भा०—(१) हे (अग्ने !) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (सु-समिद्धः) उत्तम रूप से हमारे हृदय में प्रकाशित होकर आप (नः) हमें (देवान्) दिव्यगुणयुक्त, ज्ञानवान् पुरुषों और दिव्य उत्तम पदार्थों को (आ वह) प्राप्त कराइये । हे (होतः) सब पदार्थों के दाता ! हे (पावक) सब के अन्तःकरणों को पवित्र करने हारे ! आप (हविष्मते) अन्तरात्मा में ज्ञान-रूप हवि को धारण करने हारे ज्ञानी पुरुष को (च) भी (यक्षि) आप प्रेम करते और उसको प्राप्त होते और अभिलषित पदार्थों को देते हैं ।

(२) (कवे) मेधाविन् ! हे (तनूनपात्) शरीर के छोटे से छोटे भागों की रक्षा करने हारे ! या देह को न गिरने देने वाले प्राणस्वरूप ! (नः) हमारे (यज्ञं) जीवनमय, राष्ट्रमय और दान आदि सत्कर्मरूप यज्ञ को (मधुमन्तम्) मधुर आनन्द व ज्ञानमय मधु से युक्त सुखमय कर । (अद्य) आज के समान सदा (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के निमित्त (देवेषु) विद्वान् पुरुषों, इन्द्रियगण और दश प्राणों में (कृणुहि) सम्पादित करें ।

(३) (नराशंसं) समस्त विद्वान् नेता पुरुषों द्वारा स्तुति किये गये (प्रियम्) उत्कृष्ट, अत्यधिक प्रिय (मधु-जिह्वं) मधुरूप ब्रह्मविज्ञान को अपने भीतर आदान करने और वेदवाणी द्वारा उपदेश करने हारे (हविष्कृतं) ब्रह्मज्ञान रूप हवि को सम्पादन करने हारे अन्तरात्मा और उस प्रभु को भी (इह अस्मिन् यज्ञे) यहां इस उपासना कार्य में या संसार में (उप ह्वये) ध्यान करूं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) हे (अग्ने!) प्रकाशस्वरूप! (सुखतमे) अति अधिक सुख-कारक (रथे) रमण करने के साधन इस देह में (ईडितः) समाधि द्वारा अर्चित और परिशोधित होकर (देवान्) इन इन्द्रियों और दिव्यगुणों को (आ वह) प्राप्त करा। तू ही (मनुः हितः) इस हृदयगुहा में मनन-शील होकर समाधि द्वारा धारण किया गया है। तू ही (होता) इन प्राणों को अपने भीतर आदान करने और सुखों का देने हारा (असि) है।

२ ३ २उ ३ ३ ३ १ २ ३ २ २ ३ २
[१३५१] यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा।
३ १ २ ३ १र २र
सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥

३२ १ २ ३ २उ ३ १ १र २र
[१३५२] सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः।
२ ३ १ २ ३ १ २
ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ २ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
[१३५३] उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये।
३ १र २र
महो राजान ईशते ॥ ३ ॥ २ ॥ ऋ० १। ६६। ४-६।

भा०—(१) (यद्) जो (अद्य) इस समय आज या इस कल्प में (भगः) सेवन करने योग्य है, (सूरे) सूर्य, प्राणात्मा के (उदिते) उदित हो जाने पर (अनागाः) सब अपराधों और दोषों से वियुक्त, पाप-रहित, (मित्रः) सब का स्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी, सब को समान रूप से स्वामी या शत्रुओं का नियन्ता, (सविता) सब संसार का उत्पा-दक परमात्मा (सुवाति) हमें सुख प्रदान करे।

(२) (ये) जो (अंहः) पाप को (अति पिप्रति) पार कर लेते हैं वे (यामनि) प्रति दिन (सुदानवः प्र) उत्तम कल्याणकारी उपदेश और उत्तम ऐश्वर्य दान करने हारे हों। और (सः क्षयः) निवास सहित हमारा (सु-प्रावीः) उत्तम रक्षा का प्रबन्धक भी (अस्तु) हो।

(३) (उत्) और (यः) जो (अदितिः) अखण्डित चरित्र वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अदब्धस्य) अविनाशी, सुसम्पादित (व्रतस्य) व्रत, कर्त्तव्य कर्म के कारण (स्व-राजः) स्वतः अपने अन्तरात्मा के बल से प्रकाशित होने वाले हैं वे ही (महः राजानः) बड़े ऐश्वर्यशील होकर (ईशते) सब पर शासन करते हैं।

व्रत का पालक, सदाचारी, दृढ़ पुरुष ही महान् वशी हो जाता है।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र
[१३५४] उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः।
१ २ ३ १ २
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

३ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३५५] पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि।
३उ ३ २ ३ १ २
न हि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
[१३५६] त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्।
२उ ३ १ २
त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥ ३ ॥ ऋ० ८ । ६४ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [१९४] पृ० १०२ ।

(२) हे (इन्द्र) ज्ञानवन् ! (पणीन्) केवल अदले-बदले के व्यवहार को करने हारे, धन लोभी (अराधसः) यज्ञादि द्वारा आराधना न करने हारे मूर्ख पुरुषों को अपने (पदा) ज्ञान से (नि बाधस्व) पूर्ण रूप से पीड़ित कर अर्थात् उनकी लोभवृत्ति को नाश करदे। तू (महान्) सबसे बड़ा (असि) है। (त्वा प्रति) तेरे मुकाबले में (कः चन) कोई भी (नहि) नहीं है।

(३) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) आप (सुतानां) उत्पन्न, शिक्षित और (असुतानां) अनुत्पन्न और अशिक्षित, जो कालान्तर में उत्पन्न या शिक्षित होंगे उन सब पर (ईशिषे) सामर्थ्यवान् है क्योंकि (त्वं) तू (जनानां) सब मनुष्यों और उत्पन्न होने हारे प्राणियों का (राजा) अधिपति, राजा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र = परमात्मा, आचार्य और राजा हैं। वे क्रम से योगी और शिष्यों को और प्रजाओं को निरन्तर शिक्षा दें और उनकी व्यवस्था करें।

इति प्रथमः खण्डः ।

—:०:—

[१३५७] आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु । सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ १ ॥

[१३५८] स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः । प्रिया चिद् यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥ २ ॥

[१३५९] स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वां अभि नो ज्योतिषावित् । यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥ ३ ॥ ४ ॥

ऋ० ९ । ९७ । ३७–३९ ॥

भा०—(१) (जागृविः) जागरणशील, कभी आलस्य न करने हारा, सर्वदा सचेत, (मतीनां) मनन करनेहारी बुद्धियों या मनन करने योग्य वेदवाणियों के (ऋतं) सारभूत सत्यज्ञान को (पुनानः) प्रकाशित करता हुआ (विप्रः) मेधाबुद्धि से सम्पन्न विद्वान् (सोमः) शम, दम आदि साधनों से सम्पन्न होकर (चमूषु) प्रजाओं में (असदत्) विराजता है । (यं) जिसके पास (नि-कामाः) नाना प्रकार की काम-

---

१३५७—१. 'ऋता मतीनां' । २. 'सूरे नधातोभे', 'विष आवः,' 'सतूधनं' ३. 'अद्रिमुष्णन्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाओं से युक्त (मिथुनासः) गृहस्थ नर नारी (अध्वर्यवः) अपने यज्ञादि कर्मकाण्ड में लगे हुए विद्वान्, (रथिरासः) देहधारी, (सुहस्ताः) उत्तम कर्म करने में कुशल पुरुष भी (सपन्ति) ज्ञान और सत्संग प्राप्त करने के लिये आते हैं।

(२) (सः) वह विद्वान् (पुनानः) अपने स्वरूप में स्वतः और अधिक शुद्ध पवित्र होता हुआ अपने को (सूरे) सबके उत्पादक और प्रेरक परमेश्वर में (उप दधानः) ईश्वर-प्रणिधान द्वारा लगाता हुआ (उभे) दोनों (रोदसी) प्राण और अपान या इहलोक और परलोक, सूर्य और पृथिवी के समान ज्ञानी और अज्ञानी, दोनों को ज्ञान रूप तेज से (आ अप्राः) पूर्ण करता है, (सः) और वह (वि आवः) विविध प्रकार का ज्ञान प्रकट करता है और (सतः) अपने उद्देश्य तक पहुंचे हुए (यस्य) जिसकी (प्रिया) श्रेष्ठ, और (प्रियसासः) कल्याण-दायिनी कामनायें (ऊती) रक्षण करने, भयों और विघ्नों से बचाने के लिये होती हैं। वह (नः) हमें (धनं) आत्मज्ञान रूप उत्तम धन को (कारिणे न) अपने चाकर के समान समझ कर (प्र यंसत्) प्रदान करे।

(३) (सः) वह (वर्धिता) सब की वृद्धि करने हारा और (वर्धनः) स्वयं भी आगे बढ़ाने हारा, या सबके संशयों को काटने हारा और बन्धनों का भी मूलोच्छेद करने हारा (पूयमानः) शुद्ध पवित्र ज्ञानवान् होकर (सोमः) शमदमादि षट्क सम्पत्ति से युक्त विद्वान् (मीढ्वान्) आनन्द और सुखों का वर्षक, धर्ममेघ समाधि से सिद्ध, (ज्योतिषा) आत्मज्ञानमय ज्योति से (नः) हमें (अभि आवीत्) उस स्थान पर ले जावे (यत्र) जहां (नः) हमारे (पद-ज्ञाः) परम पद, प्राप्त ब्रह्म के ज्ञाता (स्वर्विदः) मुक्ति सुख का लाभ करने हारे (गाः) वेदवाणियों को (अभि) साक्षात करके (पूर्वे पितरः) पूर्व पितामह गुरु आदि पुरुषों एवं आचार्य लोग (अद्रिम्) उस अखण्ड ब्रह्म को (इष्णन्) प्राप्त होते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
[१३६०] मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
[१३६१] अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
विद्वेषणं संवननमुभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥५॥
ऋ० ८ । १ । १–२ ॥

भा०—(१) हे (सखायः) मित्रो ! समान रूप से प्रवचन करने हारे विद्वान् लोगो ! (अन्यद्) ईश्वर की स्तुति से अतिरिक्त व्यर्थवाद (मा चित्) कभी मत (वि शंसत) उच्चारण किया करो । आप कभी (मा रिषण्यत) क्लेश को प्राप्त न होओ । (च) और (सुते) ज्ञान उत्पन्न होजाने पर (सचा) एकत्र होकर एक साथ (वृषणं) आनन्द-सुखों की वर्षा करनेहारे (इन्द्रम्, इत्) परमेश्वर को ही लक्ष्य करके उसकी (स्तोत) स्तुति किया करो । (उक्था) वेदमन्त्रों को (मुहुः) वार २ (शंसत) उच्चारण और उनका उपदेश किया करो ।

(२) और हे विद्वानो ! आप लोग (जुवं) वेगवान्, शक्तिशाली, (अव-क्रक्षिणं) सबको अपनी ओर खींचने हारे (वृषभं) बलवान्, श्रेष्ठ (गां न) बैल के समान बलवान्, (यथा) जैसे (वृषभं) समस्त सुखों के वर्षक (चर्षणी-सहम्) समस्त संसार के मानवों के अपराधों को सहन करने हारे, उन पर क्षमाशील, उनके व्यवस्थापक, (विद्वेषणं) दुष्टों को दण्ड देने के कारण उनकी अप्रीति का पात्र और (संवननं) श्रेष्ठ पुरुषों के शरण करने योग्य (उभयंकरं) अनुग्रह और दण्ड, पालन और संहार दोनों के करने हारे अतएव (मंहिष्ठं) सबसे बड़े दाता, (उभयाविनं) सज्जन और दुर्जन, ज्ञानी और अज्ञानी, दोनों के जीवनों

१३६०—२. 'वृषभं यथा जुरं', 'संवननोभयङ्कर' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की समान भाव से रक्षा करने हारे (इन्द्रम् इत् स्तोत) उस परमेश्वर की ही स्तुति करो।

इन्द्रियों को आत्मा और विद्वानों को परमात्मा के प्रति इस भाव से रहना चाहिये। इन्द्रियों के पक्षमें—आत्मा (विद्वेषणं संवननं) द्वेष और राग से युक्त, ईप्सा और जिहासा या पाने और त्यागने की इच्छा द्वारा दोनों कार्यों को करनेहारा और सुखकर और दुःखकर दोनों प्रकारों के मार्गों पर जानेहारा है।

२ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
[१३६२] उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते।
३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१॥
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१३६३] कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥ ६ ॥ ऋ० ८। ३। १५-१६॥

भा०—(१) (रथाः इव) रमणसाधन रथ जिस प्रकार (वाजयन्तः) संग्राम में गमन करते हुए (अक्षित-ऊतयः) अपने रक्षा के साधनों को निरन्तर स्थिर रखने हारे (सत्र-जितः) समस्त शत्रुओं का विजय करके (धनसा) धन, लक्ष्मी की प्राप्ति कराते हैं और राजा के प्रति ही आते, उसे प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (त्ये) वे (मधुमत्-तमाः) अति ज्ञान, और आनन्दरूप मधु से पूर्ण (गिरः) वेदवाणीस्वरूप (स्तोमासः) वेद के स्तुति सूक्त, हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (उत् ईरते उ) भक्तजनों और विद्वानों के हृदयों और कण्ठों से तुझ परमेश्वर के प्रति उठते हैं।

(२) (भृगवः) पाप को भून डालने हारे, तपस्वी, (कण्वाः इव) विद्वान् पुरुष (सूर्या इव) सूर्य की किरणों के समान (विश्वम् इत्) इस समस्त संसार को (धीतम्) ज्ञान योग और ध्यान योग से प्राप्त

१३६३—'विश्वमिद्धातमानशुः' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर के (आशत) भोग करते हैं। और वे (प्रिय-मेधासः) सूक्ष्म तत्त्व-दर्शिनी, धारणावती बुद्धियों और ज्ञानधाराओं यज्ञों व पवित्र अन्नादि पदार्थों के प्रेमी (आयवः) मनुष्य (स्तोमेभिः) नाना प्रकार के स्तुति-वचनों से (इन्द्रं) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर की (महयन्तः) अर्चना करते हुए (अस्वरन्) वेद की स्तुतियों का गान करते हैं।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३६४] पर्यूषु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३६५] अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१३६६] अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ३ ॥ ७ ॥

ऋ० ९ । ११० । १, ३, २ ।

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४२८] पृ० २१९ ।

(२) हे (पवमान) सब के प्रकाशक प्रेरक और उत्पादक ! (हि) जिस कारण आप (गो-जीरया) गति के वेग से युक्त (पुरन्ध्या) ब्रह्माण्ड को धारण करने हारी शक्ति से (रंहमाणः) सबको गति देनेहारे होकर अपने ही (शक्मना) शक्ति से (पयः) सबके पुष्टिकारक जल को (वि-धारे) विशेष रूप से ऊपर किरणों द्वारा धारण कर लेने के लिये (सूर्यं) सूर्य को (अजीजनः) उत्पन्न करते हो । अथवा—(पयः सूर्यं विधारे अजीजनः) सबके पोषक सूर्य को भी निरालम्ब आकाश में उत्पन्न करते हो इसी से आप स्तुत्य हैं।

(३) व्याख्या देखो अविकल सं० [४३२] पृ० २२० ।

१३६६—तृतीयस्या ऋचः सामसंहितासु 'मदामसीत्यन्तं' प्रतीकमुपलभ्यते ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१३६७] परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ।१।

[१३६८] एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः२॥

[१३६९] इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥ ३ ॥ ८ ॥ ऋ० ६ । १०९ । १, ३, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४२०] पृ० २१९ ।

(२) हे प्रभो ! तू (दिव्यः) दिव्य (पीयूषः) सबको पुष्ट करने वाला, पान करने योग्य आनन्दरसरूप, (अमृताय) अमृत, परम ब्रह्मसुख या मुक्ति प्रदान करने के लिये और (महे) बड़े भारी (क्षयाय) शरण प्राप्त कराने के लिये (एव) ही है । हे सबके उत्पादक (सः) वह आप (शुक्रः) शुद्ध, कान्तिस्वरूप होकर हम पर (अर्ष) अपनी ज्ञान और आनन्द धारा को प्रेरित करो और हमारे हृदय में प्रकाशित होओ । तं विद्यात् शुक्रममृतम् । कठ० उप० ।

(३) हे (सोम) सबके उत्पादक परमात्मन् ! (सुतस्य) हृदय में प्रकट हुए (ते) आनन्दस्वरूप आपके रस का (इन्द्रः) यह आत्मा (च) और (विश्वे देवाः) समस्त दिव्यगुणवान् यह इन्द्रियगण, अथवा विद्वान् गण भी (क्रत्वे) ज्ञानप्राप्ति और (दक्षाय) बल प्राप्ति के लिये (पेयात्) पान करें ।

इति द्वितीयः खण्डः ।

—:o:—

[१३७०] सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः

१३६७—३. 'पेयाः' इति ऋ० । एच. एच. 'स्टीवन्सनसम्पादिते' लन्दनमुद्रिते ग्रन्थे आद्ये द्वे ऋचावेकीकृत्य मुद्रिते परिप्रधन्वा एवामृतायेत्यादि, तत् प्रामादिकम् । अजमेरमुद्रिते तु पूर्णो मन्त्रपाठः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
साकमीरते । तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृ ऋते
२ ३ २ ३ १ ३ २
पवते धाम किञ्चन ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३७१] उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते
३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अन्तरासनि । पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान्
३ २उ ३ १ २
द्रप्सः परि वारमर्षति ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १२ २२
[१३७२] उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप
३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
यन्ति निष्कृतम् । अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न
३ २उ ३ १ २
निक्तं परि सोमो अव्यत ॥ ३ ॥ ९ ॥

ऋ० ९ । ६९ । ६, २, ४ ॥

भा०—(१) (सूर्यस्य) सबके प्रेरक प्रकाशस्वरूप सूर्य की (रश्मयः इव) किरणों के समान (द्रावयित्नवः) द्रुतगति से जाने हारे (प्रसुतः) उत्तम रीति से उत्पन्न, प्रकट या प्रेरित होकर (मत्सरासः) निरपेक्ष गति करते हुए स्वयं प्रेरित, (आशवः) शीघ्रगामी (सर्गासः) समस्त लोक (ततं) विस्तृत विशाल (तन्तुं) सर्ग, स्थिति, प्रलय के अनादि तन्तु ब्रह्म को आश्रयण करके (साकं) एक ही काल में (परि ईरते) अपनी २ कक्षा में परिक्रमा करते हैं, वास्तव में (किं चन) कुछ भी (धाम) शक्ति और तेज (इन्द्राद् ऋते) विना उस परमेश्वर के कहीं से भी (न) नहीं (पवते) प्रकट होता। यहां तेजस्वी लोकों को 'सोम' 'मत्सर' शब्दों से कहा गया है। अध्यात्मपक्ष में ये प्राण हैं और इन्द्र = आत्मा।

(२) (मतिः) मननशक्ति, बुद्धि, उस इन्द्र परमेश्वर में समाधि

१३७०—१. 'प्रसुवः' २. 'सन्तति' ३. 'उक्षा मिमाति' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा (उप पृच्यते) लग जाती है तब (मधु) आनन्द-रस (सिच्यते) अन्तःकरण में प्रवाहित होने लगता है । (मन्द्राजनी) अति आनन्ददायक रसधारा (आसनि) मुख के भीतर या मुख्यस्थान शिरोभाग में (अन्तः) भीतर (चोदते) प्रेरित होती है । (सर्त्तानिः) सर्वत्र समान भाव से विस्तृत होने हारा (पवमानः) प्रकट होता हुआ, कान्तिस्वरूप (द्रप्सः) वीर्य और रसस्वरूप आनन्दरस (मधुमान्) ज्ञान और आनन्ददायक होकर (सुन्वताम् इव) सवन करने वालों का सोमरस जिस प्रकार कम्बल के बालों पर आता है, उसी प्रकार (वारम्) भ्रुकुटियों के मध्यभाग त्रिपुटीस्थल में या वरणीय प्रदेश में (परि अर्षति) प्रकट होता है ।

इसमें ब्रह्माण्डगत सोम के अतिरिक्त शरीरगत सोम का स्वरूप भी दर्शाया गया है ।

(३) जैसे (उक्षा) वीर्य सेचन में समर्थ सांड (मिमेति) शब्द करता है और (धेनवः) गौएं उसकी तरफ (प्रति यन्ति) चलती हैं । इसी प्रकार (देवीः) दिव्यगुण वाली शक्तियां या बुद्धियां (देवस्य) दिव्यगुण युक्त अन्तरात्मा के (निष्कृतं) गुप्त स्थान या विशुद्ध स्वरूप को भी (उपयन्ति) पहुंचती हैं । (सोमः) शुक्रस्वरूप सर्वप्रेरक शक्ति (अर्जुनम्[1]) शुभ्र या देह के उपचय करने में समर्थ (अव्ययम्) प्राणमय (वारम्) आवरणकारी कोष को (अति अक्रमीत्) अतिक्रमण करता है और (निक्तम्) शुद्ध (अत्कं) कवच के समान रक्षण करने हारे शरण योग्य पद को (परि अव्यत) प्राप्त होता है ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
[१३७३] अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १ ॥
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

१. ऋज गतिस्थानोपार्जनेषु । ऋजा भृजी भर्जने । अर्ज वर्ज अर्जने, इति भ्वादयः । अर्ज प्रतियत्ने इति चुरादिः । एभ्यो बहुलगुणः । अर्जुनः = गतिमान्, स्थिरः, उपार्जनशीलः, भर्जनशीलः, प्रतियत्नवान् इत्यर्थः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ २उ ३ १ २ ३उ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३७४] तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुत-
३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
श्चित् । दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ २ ॥

१ २ ३ १र २र ३ २र
[१३७५] प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
१ २र ३ १ २ ३ ३ १ २
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥ १० ॥

ऋ० ७ । १ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [७२] पृ० ३८ ।

(२) (सु-प्रति-चक्षसं) उत्तम रूप से दर्शन करने योग्य, (तम्) उस वरण करने योग्य (अग्निम्) अग्निरूप ज्ञानवान् तेजस्वी आत्मा को (वसवः) आवास के साधन या देह में वास करने हारे देव, इन्द्रियगण या विद्वान् लोग (कुतश्चित्) सब ओर से, किसी भी प्रकार से (अवसे) रक्षा प्राप्त करने के लिये (अस्ते) अपने गृह, देह, या हृदयगुहा में (नि ऋण्वन्) योग समाधि द्वारा खोजते हैं (यः) जो (दक्षाय्यः) बल को प्राप्त कराने में चतुर (नित्यः) अव्यय, अविनाशी, (दमे) दमन करने योग्य शरीररूप गृह में (आस) विद्यमान रहता है ।

(३) हे (अग्ने) प्रकाशक आत्मन् ! (यविष्ठ) हे बलशालिन् ! अति युवतम ! अजर, अमर ! (प्रेद्धः) योग–साधनों से प्रदीप्त, प्रज्वलित होकर (अजस्रया) निरन्तर प्रकाशमान (सूर्म्या) ज्वाला, ज्ञानमय ज्योति से (दीदिहि) प्रकाशित हो । (शश्वन्तः) अनादिकाल से बड़े तपस्वी (वाजाः) बलवान् ज्ञानी पुरुष वा अनादि बल-ऐश्वर्य रूप (त्वां) तुझको (उप यन्ति) प्राप्त होते हैं ।

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१३७६] आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः ।
३ १ २ ३ १ २
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
[१३७७] अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
१र २र ३ १र २र
व्यख्यन् महिषो दिवम् ॥
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३७८] त्रिंशद् धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ३ ॥ ११ ॥

ऋ० १० । १८९ । १–३ ॥

भा०—(१) (२) (३) व्याख्या देखो अविकल सं० क्रम से [६३०, ६३१ और ६३२] पृ० ३२२ । ३२३ ।

इति तृतीयः खण्डः ।

इति षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

इत्येकादशोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

अथ षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ।

ऋषिः—१ (१–२) गोतमो राहूगणः । (३) वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । २, ७ वीतहव्यो भरद्वाजो वा बार्हस्पत्यः । ३ प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा । ४, १३ सोभरिः काण्वः । ५ मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ । ६ (१) ऋजिश्वा भारद्वाजः (२) ऊर्ध्वसद्मा आंगिरसः । ८ तिरश्चीराङ्गिरसः । १० सुतंभर आत्रेयः । ११, १८ नृमेधपुरुमेधावाङ्गिरसौ । १४ शुनःशेप आजीगर्तिः । १५ नोधा गौतमः । १६ मेध्यातिथिर्मेधातिथिर्वा काण्वः । १७ रेणुर्वैश्वामित्रः । १८ कुत्स आंगिरसः । २० आगस्त्यो मैत्रावरुणः ॥ देवता—१, २, ७, १०, १३, १४ अग्निः । ३, ६, ८, ११, १५, १७, १८ पवमानः सोमः । ४, ५, ६, १२, १६, १६, २० इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २, ७, १०, १४ गायत्री ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४, ९ १० (१-२) २० (२, ३) अनुष्टुप् । ४, ६, १३ काकुभः प्रागाथ: (विषमा ककुप् समा सतो बृहती) ५, १६, (३) बृहती । ८, ११, १५, १८ त्रिष्टुप् । १२, १६ प्रगाथो बार्हतः १७ जगती । ९ २० (१) स्कन्धोग्रीवो बृहती ॥

[१३७९] उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्र वोचेमाग्नये ।
आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥

[१३८०] यः स्नीहितीषु पूर्व्यः सञ्जग्मानासु कृष्टिषु ।
अरक्षद् दाशुषे गयम् ॥ २ ॥

[१३८१] स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः ।
उतास्मान् पात्वंहसः ॥ ३ ॥

[१३८२] उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि ।
धनञ्जयो रणेरणे ॥ ४ ॥ १ ॥

[१, २, ४] ऋ० १ । ७४ । १-३ ॥ [३] ऋ० ७ । १५ । ३ ॥

भा०—(१) (अध्वरं) हिंसा आदि रहित पर-उपकार आदि पवित्र कर्मों को (उप-प्र-यन्तः) अनुष्ठान करते हुए हम लोग (आरे) दूर देश में (च) भी (अस्मे) हमारी स्तुति को (शृण्वते) सुनने वाले (अग्नये) प्रकाशस्वरूप, ज्ञान के दाता परमात्मा की स्तुति के लिये (मन्त्रं) मनन करने योग्य वेदमन्त्र का (वोचेम) उच्चारण करें ।

(२) (यः) जो (सं-जग्मानासु) समान भाव से संग करने हारी और (स्नीहितीषु) परस्पर स्नेह करने हारी या परस्पर लड़ने हारी

१३८१—'अग्नी रक्षतु विश्वतः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कृष्टिषु) प्रजाओं में (पूर्व्यः) सब से प्रथम विद्यमान या मुख्य पद पर विराजमान, आदरणीय, पूर्ण स्वभाव, निरपेक्ष, निष्पक्ष, न्यायशील ज्ञानी पुरुष है वही (दाशुषे) दान करने हारे त्यागी पुरुषों के (गयं) प्राण और धन की (अरक्षत्) रक्षा करे ।

(३) (सः) वह (अग्निः) प्रकाशस्वरूप, तेजस्वी अग्रणी (शंतमः) अत्यन्त शान्तिदायक, शम आदि युक्त, निष्ठ, निष्पक्षपात, ज्ञानी पुरुष, (नः) हमारे (अमात्यं) सहायकपुत्र आदि और (वेदः) ज्ञान और धन की (रक्षतु) रक्षा करे । (उत) और (अस्मान्) हमको (अंहसः) पापों से (पातु) बचावे ।

(४) और इसी प्रकार (जन्तवः) सब लोग (ब्रुवन्तु) उसका वर्णन करें और जानें कि (वृत्रहा) आवरणकारी अज्ञान और अंधकार का नाश करने हारा (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान्, पथदर्शक और प्रकाशस्वरूप आचार्य और राजा (रणे रणे) रमणीय २ प्रदेशों और संग्रामों में (धनं-जयः) ज्ञान और धन का विजय करने हारा (उद् अजनि) सब से उत्कृष्ट हो कर रहता है ।

[१३८३] अग्ने युंक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
अरं वहन्त्याशवः ॥ १ ॥

[१३८४] अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये ।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ २ ॥

[१३८५] उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् ।
शोचा वि भाह्यजर ॥ ३ ॥ २ ॥ ऋ० ६ । १६ । ४३-४५ ॥

१३८३—१. 'अरं वहन्ति मन्यवे' । ऋ० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) हे (देव) प्रकाशमान आत्मन् ! (ये) जो (साधवः) ज्ञानसाधन और कर्मसाधन में कुशल (तव) तेरे (आशवः) शीघ्रगामी (अश्वासः) विषय ग्रहण करने हारे, (अरं) पर्याप्त ज्ञान और फलराशि को (वहन्ति) प्राप्त करते हैं उन इन्द्रिय आदि साधनों और विद्वानों को (युंक्ष्व हि) निश्चय पूर्वक कार्य में नियुक्त कर। व्याख्या देखिये अविकल सं० [२५] पृ० ११ ।

(२) हे (अग्ने) परमपुरुष परमेश्वर ! (नः) हमारे (अच्छ) सम्मुख (याहि) प्राप्त हो, हमें दर्शन दो और (वीतये) तत्त्व साक्षात्कार करने और (सोम-पीतये) ऐश्वर्य, आनन्दरस को पान करने के लिये (देवान्) इन्द्रियगणों या विद्वान् जनों को नित्य (प्रयांसि) ज्ञान (अभि आ वह) प्राप्त कराओ।

(३) हे (भारत) समस्त संसार के भरण पोषण करने हारे ! हे (अजर) जरामरणरहित ! (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परम आत्मन् ! (दविद्युतत्) निरन्तर प्रकाशमान होता हुआ तू (अजस्रेण) निरन्तर वर्त्तमान, (द्युमत्) प्रकाशमान तेज से (शोच) स्वयं प्रकाशित हो और (उ उद्-वि-भाहि) उत्तम रीति से समस्त जगत् को भी प्रकाशित कर।

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
[१३८६] प्र सुन्वानानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ १ ॥

२ ३ १र २र ३ २उ १ २ ३ ३ २र
[१३८७] आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः।
१ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥ २ ॥

१३८६—१. 'प्रसुन्वानस्यान्धसो', 'मर्त्तो न वष्ट' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
[१३८८] स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
१ २ ३ १ २ ३ १र २उ ३ १ २
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥ ३ ॥ ३ ॥
ऋ० ९ । १०१ । १३-१५ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [५५३] पृ० २८१ तथा [७७४] पृ० ३७१ ।

(२) (जामिः) आनन्द को उत्पन्न करने हारा, निर्दोष, शुद्ध अन्तःकरण वाला साधक सोम (अत्के) अपने आच्छादक, आनन्दमय कोष में (ओण्योः) मां बाप के (भुजे) गोद में (पुत्रः न) पुत्र के समान (अव्यत) जाता है, और (योषणां) कामिनी स्त्री के प्रति (जारः न) उस में आसक्त पुरुष के समान और (योनिं) कन्यागृह के प्रति (वरः न) वरण करने योग्य पुरुष के समान (सरन्) गमन करता है, (योनिं) अपने आश्रय आत्मा में (आसदं) स्थिर, आनन्दरूप स्थिति प्राप्त करने के लिये (अव्यत) पहुंच जाता है ।

(३) (दक्ष-साधनः) अपने बलोपार्जन का साधक (यः) जो (रोदसी) प्राण और अपान के वेगों को (तस्तम्भ) रोक लेता या वश कर लेता है (सः) वह (हरिः) इन्द्रियों का विजय करने हारा (वेधाः) ज्ञानी गृहस्थ (योनिं न) जैसे अपने घर में आता है उसी प्रकार वह भी (वेधाः) मेधावी, ज्ञानवान् साधक (योनिम्) आश्रयस्थान, परम शरणरूप मोक्ष को (आसदम्) प्राप्त करने के लिये (पवित्रे) परम पावन परमात्मा में (अव्यत) विचरता है ।

इति प्रथमः खण्डः ।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
[१३८९] अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
३ १ २ ३ १ २
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

१३८९—१. 'टुओश्वि गतिवृद्ध्योः [भ्वादिः] ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २र
[१३९०] न की रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥२॥४॥

ऋ० ८ । २१ । १३, १४ ।

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३९९] पृ० २०५ ।

(२) हे प्रभो ! आप (रेवन्तं) केवल धनसम्पन्न, धनाभिमानी पुरुष को (सख्याय) अपनी मित्रता के लिये (न किः) कभी नहीं (विन्दसे) प्राप्त करते । क्योंकि (सुराश्वः[1]) शराब पीकर या राज्य-लक्ष्मी के मद से फूले हुए (ते) वे लोग हितैषियों तक को (पीयन्ति) मारते हैं । और (यदा) जब (नदनुं) सत्य गुणों का उपदेश करने हारे पुरुष को आप अपना मित्र (कृणोषि) बना लेते हो और (सम् ऊहसि) उसको उत्तम रीति से उन्नति के मार्ग पर लेजाते हो । (आत् इत्) तब ही हे परमेश्वर ! आप (पिता इव) पिता के समान (हूयसे) याद किये जाते हो ।

१ २ ३२ ३ २ ३२ ३१ २र ३ १२
[१३९१] आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
३ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३९२] आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥२

२ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३९३] पिबा त्वाऽऽस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥३॥५॥

ऋ० ८ । १ । २४-२६ ॥

---

१. सुरया शूनाः इति सुराश्वः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [२४५] पृ० १२५ ।

(२) हे इन्द्र ! (हिरण्यये) हरणशील (रथे) रमण-साधन, भोगायतन इस देह में (मयूर-शेप्या) मयूर के पंखों के समान वर्ण वाले, (शिति-पृष्ठा) श्वेत या नील कान्ति को स्पर्श करने हारे, (हरी) दुःख-हारी या हरणशील, अश्वरूप प्राण और अपान (त्वा) तुझ आत्मा के (विचक्षणस्य) अत्यन्त प्रशंसनीय या प्राप्त करने योग्य, महान्, (मध्वः) मधुर अमृतरस रूप (अन्धसः) जीवनशक्तिमय सोमरस के (पीतये) पान करने के लिये (आ वहतां) प्राप्त करावें । विशुद्ध चितिशक्ति के योगसिद्ध अनुभवों को लक्ष्य करके प्राण अपान के साधकों के निमित्त प्राण और अपान दोनों का वर्णन भी इसी प्रकार कहा गया है । जैसे—

"काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।

स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥मुण्डक॥

जो इन मन्त्रों को सूर्यपरक लगाया जाता है वह आदित्य भी साधक द्वारा अन्तर्दृष्ट आदित्य प्रभु का एक दृष्टान्तमात्र है ।

(३) हे (गिर्वणः) वाणियों के एकमात्र पात्र ! (अस्य) इस (सुतस्य) समाधि द्वारा निष्पादित सोम को (नु) शीघ्र ही (पूर्वपाः इव) प्राण वायु के समान (पिब तु) पान कर । क्योंकि (परिष्कृतस्य) योग साधन एवं प्राणायाम आदि अंगों द्वारा परिशोधित (रसिनः) ब्रह्मास्वाद रस की (इयम्) यह (आसुतिः) निष्कर्ष या प्राप्ति (मदाय) परम हर्ष के प्राप्त करने के लिये (चारुः) सर्वोत्तम (पस्यते) जानी और प्राप्त की जाती है ।

[१३९४] आसोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ १ ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१३९५] सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो वि वावृधे राजा देव ऋतं बृहत्
॥ २ ॥ ६ ॥ ऋ० ९ । १०८ । ७, ८ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [५८०] पृ० २९५ ।

(२) (सहस्र-धारं) सहस्रों धारणकारिणी शक्तियों या आनन्द-धाराओं या नाना स्तुतिवाणियों से युक्त, (वृषभं) सुखों के वर्षक, (पयः-दुहं) पुष्टिकारक आनन्द का दोहन करने हारे, (प्रियं) आत्मा के समान सब से अधिक प्रीति के विषय, (देवाय) परम इष्टदेव के (जन्मने) अन्तरात्मा में प्रादुर्भाव करने के निमित्त साक्षात्कार करो। जो आत्मारूप सोम (राजा) ज्ञान से प्रकाशित, इस देहेन्द्रिय संघात का प्रकाशक, राजा (ऋत-जातः) तप से परिष्कृत होकर (ऋतेन) सत्य ज्ञान से (वि ववृधे) अधिक शक्तिशाली होता है और जो स्वयं (देवः) दिव्यगुण होकर (ऋतं) सत्य स्वरूप और (बृहत्) सबसे बड़ा या सबका वर्धक है। अथवा (ऋतं बृहत् ऋतेन वि ववृधे) महान् ऋत, सत्य को सत्य के बल से बढ़ाता है ।

इति द्वितीयः खण्डः ।

[१३९६] अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १ ॥

[१३९७] गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥

१३९५—२. 'वृषभं पयोवृधं' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३९८] ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २
अग्ने यद् दीदयद् दिवि ॥ ३ ॥ ७ ॥

ऋ० ६ । १६ । ३४,—३६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४] पृ० ३ ।

(२) (पितुः पिता) सब पालकों का पालक, पिता का भी पिता, (अग्निः) ज्ञानवान् परमात्मा (अक्षरे) अविच्युत, स्थिर (मातुः) प्रमाता, आत्मा के (गर्भे) अन्तःकरण में (विदिद्युतानः) प्रकाश करता हुआ (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (योनिं) मूल आश्रय, ईश्वरीय ज्ञान, वेद को (आ सीदन्) स्थापना करता हुआ समस्त आवरणरूप अज्ञान अन्धकारों का नाश करता है। अथवा—सूर्य आदि पालकों का उत्पादक ज्ञानी एवं सबका अग्रणी, अनादि सिद्ध परमेश्वर (मातुः गर्भे) जगत् को रचाने वाली प्रकृति के गर्भ में, उसके बीच (विदिद्युतानः) अपने प्रकाश को स्थापित करता हुआ (ऋतस्य योनिम्) अव्यक्त जगत् के मूल कारण रूप तत्त्व को (आ सीदन्) अपने वश करता है ।

(३) हे (जातवेदः) समस्त संसार के उत्पन्न पदार्थों को जानने हारे ! (विचर्षणे) सबके द्रष्टः ! हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! आप हमें (प्रजावद्) पुत्र आदि सहित (ब्रह्म) ऐसे अन्न और ज्ञान को (आ भर) प्राप्त कराइये (यत्) जो (दिवि) दिव्यगुण से युक्त ज्ञानमय उत्कृष्ट लोक में भी (दीदयत्) प्रकाशित रहे । अर्थात् ऐसा अन्न और ज्ञान प्राप्त कराओ जिसका परलोक और विद्वानों में भी आदर हो ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
[१३९९] अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमान्ति होता ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१४००] भद्रा वस्त्रा समन्याऽ३ ऽवसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन्। आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २ ॥

[१४०१] समु प्रियो मृज्यते सानौ अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे। अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ८ ॥ ऋ० ९ । ९७ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [५२६] पृ० २६४ ।
(२) हे सोम ! महायोगिन् विद्वन् ! (भद्रा) कल्याणकारी (समन्या) परस्पर प्रेमपूर्वक सम्मिलन करने योग्य या संग्राम योग्य, केसरिया, तेजस्वी या काषाय (वस्त्रा) वस्त्र (वसानः) धारण करता हुआ (महान्) बड़ा (कविः) मेधावी पुरुष होकर (नि-वचनानि) निरन्तर उपदेश करने योग्य वचनों को (शंसन्) उपदेश करता हुआ (विचक्षणः) भले बुरे, सत् असत् का विवेक करता हुआ (देव-वीतौ) परमेश्वर के प्राप्ति के मार्ग में (पूयमानः) अपने अन्तःकरण से पवित्र होकर (चम्वोः) द्यौलोक और पृथिवी, ज्ञानवान् और अज्ञानी दोनों प्रकार के जनों में (आ वच्यस्व) विचरण कर।

(३) (यशसां) यशस्वियों के बीच, (यशस्तरः) अति अधिक यशस्वी, (क्षैतः) इस पृथिवी में उत्पन्न होकर (उ) भी (अव्ये) प्राणायाम और (सानौ) उच्चतम तपः-कोटि में स्थित एवं (प्रियः) अतिप्रिय होकर (अस्मे) हमारे लिये विद्या आदि सद्गुणों से (सम् मृज्यते) उत्तम रीति से परिष्कार को प्राप्त होता, या भूषित होता है। अतः (पूयमानः) पवित्र होकर (धन्वा) गमनशील, परिव्राट् होकर (अभि स्वर) उत्तम २ उपदेश कर । अध्यात्म पक्ष में—आनन्द भूमि को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त साधक अपने आत्मा से कह रहा है। इसी प्रकार के हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग भी (नः) हमारी (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी उपदेशों और उपायों से (पात) रक्षा करो।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१४०२] एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ ३ १ २
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धराशीर्वान्ममत्तु ॥ १ ॥
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
[१४०३] इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
३ २ ३ १र २र ३ १ २
शुद्धो रयिं नि धारया शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥ २ ॥
१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
[१४०४] इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
३ २ ३ १ २ ३ १र २र
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥ ३॥९॥

ऋ० ८ । ९५ । ७–९ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखिये अविकल सं० [३५०] पृ० १८२।

(२) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (शुद्धः) शुद्धस्वरूप आप (नः) हमें (आ गहि) सन्मुख साक्षात् दर्शन दें। और (शुद्धाभिः) शुद्ध, पवित्र (ऊतिभिः) मरुत् रूप या प्राणात्मक शक्तियों सहित आप (शुद्धः) शुद्धस्वरूप ही हैं। अतः (शुद्धः) शुद्धरूप ही आप (रयिं) धारण करने योग्य ऐश्वर्य वा प्रकृति तत्त्व को (नि धारय) पूर्णरूप से धारण करें और हे (सोम्य) परमानन्द के पात्र शक्तिमय ! आप (शुद्धः) शुद्ध रूप ही (ममद्धि) नित्य आनन्द प्राप्त करावें।

(३) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (शुद्धः) शुद्धस्वरूप आप (नः) हमें (रयिं) समस्त ऐश्वर्य, जीवन, प्राण और जगत् के समस्त पदार्थ (सिषाससि) प्रदान करते हैं। क्योंकि (दाशुषे) दाता, आत्मसमर्पक को आप (शुद्धः) निरपेक्ष शुद्धभाव से ही (रत्नानि) समस्त सुखकारी पदार्थ देते हो। (शुद्धः) स्वयं शुद्ध होकर ही (वृत्राणि) आवरक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्धकारों और विघ्नों एवं दुष्ट पुरुषों का (जिघ्नसे) विनाश करते हो। और (शुद्धः) शुद्धस्वरूप होकर ही आप समस्त संसार को (वाजं) ज्ञान, धन और बल (सिषाससि) प्रदान करते हो।

इति तृतीयः खण्डः।

---

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१४०५] अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः।
३ १ २ ३ १ २
देवस्य द्रविणस्यवः ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
[१४०६] अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा।
१ २ ३ २ ३ १ २
स यक्षद् दैव्यं जनम् ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१४०७] त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः।
१ २ ३ १र २र
त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ३ ॥ १० ॥

ऋ० ५ । १३ । ४-४ ॥

भा०—(१) (द्रविणस्यवः) धन और द्रुत गति से प्राप्त करने योग्य इष्टदेव को प्राप्त करने की कामना वाले, या ऐश्वर्य की कामना वाले होकर हम (अद्य) आज, अब (देवस्य) प्रकाशस्वरूप (अग्नेः) सबके अग्रणी, ज्ञानदाता, नायक परमेश्वर के (सिध्रम्) नित्य (स्तोमं) स्तुति, सत्यगुण वर्णन रूप वेद का (मनामहे) मनन करते हैं।

(२) (यः) जो (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर (होता) समस्त संसार का आदान और विसर्ग, प्रलय और सर्ग करने हारा (मानुषेषु) समस्त मननशील पुरुषों के हृदयों में (आ) साक्षात् रूप से विद्यमान होकर (नः) हमारी (गिरः) समस्त वाणियों को (जुषत) श्रवण

१४०५—१. 'अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य' इति ऋ०। सिद्धमिति सायणसम्मतः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है (सः) वही (दैव्यम्) दिव्यगुणयुक्त, ज्ञानप्रकाश वाले (जनं) दिव्य पदार्थ और मोक्षस्थ आत्मा को (यक्षत्) आनन्द सुख प्रदान करता है ।

(३) हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! आप ही (वरेण्यः) सबके वरण करने योग्य, (होता) सब संसार के दाता, प्रतिगृहीता, समस्त यज्ञों के कर्त्ता, (जुष्टः) सबके प्रेमपात्र सबके सेवन योग्य और (स प्रथाः) सब से महान् (असि) हो । (त्वया) आप ही के निमित्त से सब लोग अपने (यज्ञं) इष्ट साधन रूप धर्म-कार्यों और पूजा आदि का (वि तन्वते) सम्पादन करते हैं ।

३ १ २ ३१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१४०८] अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वनावसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि१

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
[१४०९] शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १र
धनानि । तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान्
२र ३ १ २
पृतनासु शत्रून् ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३
[१४१०] उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन् त्समीचीने आ पवस्वा
१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र २र
पुरन्धी । अपः सिषासन्नुषसः स्वाऽ३ऽर्गाः सं चिक्रदो
३ २ ३ २ ३ १ २
महो अस्मभ्यं वाजान् ॥ ३ ॥ ११ ॥

ऋ० ९ । ९० । २-४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५२८] पृ० २६५ ।

१४०८—१. 'अङ्गूषाणामवावशन्त' 'वरुणो न सिन्धून्' इति ऋ० । 'वार्याणि' इति पाठस्तु अजमेरमुद्रितः प्रामादिकः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे (सोम) प्राणरूप आत्मन् ! तू (शूर-ग्रामः) गति में वेगवान् इन्द्रियसंघ का स्वामी, (सर्व-वीरः) सबसे अधिक सामर्थ्यवान्, (सहावान्) सहनशील, गर्मी सर्दी और सुख दुःख आदि द्वन्द्वों का सहन करने हारा, (जेता) सबको पराजय करने हारा या (जेता) काम क्रोध आदि और इन्द्रिय के वेगों पर विजयशील (धनानि) समस्त रमणीय विषय भोगों को (सनिता) प्रति इन्द्रिय विभाग करने हारा (तिग्म-आयुधः) तीक्ष्ण साधना रूप आयुधों से सम्पन्न, (क्षिप्र-धन्वा) अतिशीघ्र गति देने हारा या स्वयं सबसे अधिक वेगवान् (समत्सु) परस्पर स्पर्द्धा के स्थलों में (अषाढः) किसी से न दबने हारा, अपराजित (पृतनासु) प्रजारूप इन्द्रिय वृत्तियों में (शत्रून्) शत्रुरूप काम, क्रोध आदि अन्तः शत्रुओं को (साह्वान्) अपने वश करने हारा होकर (आ पवस्व) प्रकट हो । और हमारे शरीर और अन्तःकरण को भी पवित्र कर ।

(३) (सोम) हे आत्मन् ! हे विद्वन् ! (उरु-गव्यूतिः) स्वयं समस्त गौ अर्थात् वाणियों और इन्द्रियों के लिये रक्षा या शरण होकर सर्वत्र (अभयानि) अभय (कृण्वन्) करते हुए (पुरन्धी) इस देह-रूप पुर को धारण करने हारे प्राण और अपान दोनों को (समीचीने) समुचित प्रकार से (आ पवस्व) गति दो और पवित्र करो । और (अपः) समस्त कर्मों और प्रज्ञाओं को (सिषासन्) यथाकाल और यथास्थान विभाग करते हुए (स्वः) सुख आनन्ददायक (गाः) वेदवाणियों को और (उषसः) कान्तियुक्त पापदाहक वृत्तियों को (अस्मभ्यम्) हम लोगों को (महः) श्रेष्ठ २ (वाजान्) ज्ञानतत्व और अनेक ऐश्वर्य व ज्ञान (संचिक्रदः) प्रदान करो, उच्चारण करो, उपदेश करो ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१४११] त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत् पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥१॥

[१४१२] तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नुवन्
॥ २ ॥ १२ ॥ ऋ० ८ । ९० । ५, ६ ॥

भा०—(१) हे इन्द्र ! (त्वं) तू (यशाः) यशस्वी (शवसस्पतिः) शक्ति और बल का मालिक, (ऋजीषी) सब को ऋजु, सरल, उत्तम धर्ममार्ग में प्रेरणा करने हारा (पुरु-अनुत्तः) बहुतों से भी प्रेरित वा संचालित न होकर, स्वतन्त्र ही (चर्षणी-धृतिः) साक्षिरूप से द्रष्टा होकर सबको धारण करने हारा (असि) है । (त्वं) तू (अप्रतीनि) जिनका मुकाबला न किया जा सके ऐसे दुर्घट (वृत्राणि) विघ्नों और दुःसाध्य असुर, अधर्मी पुरुषों को (एक इत्) अकेला ही (हंसि) विनाश करता है । [अवि० सं० [२४८] पृ० १२६]

(२) हे (असुर) प्राणों में रमण करने हारे आत्मन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (तं) पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त पूर्वप्रसिद्ध (प्र-चेतसं) प्रकृष्ट, उत्तम ज्ञानवान् (त्वा उ) तुझ से ही हम (राधः) आराधना करने योग्य ज्ञान को (भागम् इव) अन्न के समान (ईमहे) याचना करते हैं । हे (इन्द्र) आत्मन् ! (ते) तेरी (कृत्तिः) कीर्ति ही (मही) बड़ी भारी (शरणा इव) शरण, रक्षा के समान है (ते) तेरे से (सुम्नानि) प्राप्त होने योग्य समस्त सुखसाधन (नः) हमें (अश्नुवन्) प्राप्त हों ।

१४११—'शवसस्पते' 'हंसस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृते' ।

१४१२—'सुम्नानो अश्नवन्' इति च ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१४१३] यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

[१४१४] अपां नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम्।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि
॥ २ ॥ १३ ॥ ऋ० ८ । १९ । ३, ४ ॥

भा०—(१) (देवत्रा) विद्वान् पुरुषों के भी (देवं) उपासनीय देव, (होतारं) सब यज्ञों के सम्पादक (अमर्त्यम्) मरणरहित, अमृत-स्वरूप (अस्य) इस (यज्ञस्य) समस्त विश्व के संचालन, उत्पादन और प्रलय रूप यज्ञ के (सु-क्रतुम्) उत्तम रूप से रचने हारे, अतएव (यजिष्ठं) सब यज्ञकर्त्ताओं में श्रेष्ठ (त्वा) आपको (ववृमहे) वरण करते हैं। व्याख्या देखो अवि० सं० [११२] पृ० ६० ॥

(२) (अपां नपातं) लोकों, कर्मों और प्रजाओं का पतन, विनाश या लोप न होने देने हारे, (सु-भगं) ऐश्वर्यसंपन्न, (सुदीदितिं) उत्तम कान्ति से युक्त (श्रेष्ठ-शोचिषम्) सबसे श्रेष्ठ, प्रशंसनीय तेज से सम्पन्न (अग्निम् उ) अग्निस्वरूप, सर्वप्रकाशक आत्मा को अवश्य वरण करो क्योंकि (सः) वह जीवरूप अग्नि (मित्रस्य) समस्त जीव को स्नेह से देखने हारे और (वरुणस्य) सब दुःखों का निवारण करने हारे परमेश्वर के (अपां) समस्त प्रज्ञाओं, कर्मों और समस्त लोकों के (सुम्नं) सुख को (दिवि) ज्ञान से प्रकाशमान मुक्तदशा में भी (नः) हमें (यक्षते) प्राप्त कराता है।

अग्नि का आत्मस्वरूप देखो नासिकेतोपाख्यान, काठक उपनिषद् और मुण्डक उपनिषद् में।

इति चतुर्थः खण्डः ।

१४१३—२. 'ऊर्जोनपातं' इति ऋ०। 'ऊर्जो नपात' इत्येव सायणसमन्तश्च पाठः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
[१४१५] यमग्न पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ १ ॥

१ २ ३ १२ २२
[१४१६] न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् ।
१ २ ३ १ २
वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ २ ॥

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१४१७] स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता ।
१ २ ३ १ २
विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ३ ॥ १४ ॥

ऋ० १ । २७ । ७–९ ॥

भा०—(१) हे (अग्ने) परमेश्वर ! (यं) जिस (मर्त्यं) मरणधर्मा पुरुष को आप (पृत्सु) अनेक विकट संग्रामों में भी (अवाः) मृत्युसे बचा लेते हैं और (यं) जिसको (वाजेषु) ज्ञान और श्रेष्ठ कर्मों से (जुनाः) प्रेरित करते, चला देते हो (सः) वह आपकी (शश्वतीः) नित्य, अनादि काल से चली आई (इषः) प्रेरणाओं और अनादि शक्तियों को (यन्ता) वश कर लेता है ।

(२) हे (सहन्त्य) सब विघ्नों के विनाशक ! (अस्य) इस आपके (कयस्य चित्) किसी भी उपासक, साधक को (पर्येता) कष्ट देने हारा, उस पर आक्रमण करने हारा (न किः) कोई भी नहीं, प्रत्युत उसको (श्रवाय्यः) श्रवण करने योग्य उत्तम (वाजः) ज्ञान या बल (अस्ति) प्राप्त है ।

(३) (सः) वह (विश्व-चर्षणिः) समस्त मनुष्यों का स्वामी (अर्वद्भिः) ज्ञानी पुरुषों या इन्द्रियगणों से ही (वाजं) ज्ञान को, बल को या जीवन संग्राम को (तरुता) पार करने हारा (अस्तु) हो और वही अग्नि (विप्रेभिः) विद्वान्, मेधावी पुरुषों द्वारा (सनिता) इष्टफल दाता (अस्तु) हो ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१४१८] साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः । हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥

[१४१९] स मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः । मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥ २ ॥

[१४२०] उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः । मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥ १५ ॥ ऋ० ९ । ९३ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५३८] पृ० २७२ ।

(२) जिस प्रकार (मातृभिः न) माताओं द्वारा (शिशुः) उनकी गोद में सोने हारा बालक शिशु (दधन्वे) पालित पोषित होता है उसी प्रकार (अद्भिः) विषयों तक प्राप्त होने हारी (मातृभिः) ज्ञान कराने हारी इन्द्रियों द्वारा बालक के समान उनकी गोद में या भीतर प्रसुप्त रूप से शिशु के समान सोने हारा और उनको (वावशानः) निरन्तर चाहने हारा (वृषा) आनन्द वर्षी सोम शुक्रस्वरूप या आनन्दमय ब्रह्मरस (दधन्वे) पालित पोषित होता या धारण किया जाता है । और जिस प्रकार (मर्यः) पुरुष (योषां न) स्त्री के पास अपने गृह में जाता और उससे आनन्द लाभ करता है उसी प्रकार वह सोम, आत्मा (निष्कृतम् अभि) अपने मूल आश्रय मस्तक, या देह में (यन्) जाता हुआ (कलशे) नाना कलारूप चिति शक्ति की नाना वृत्तियों से युक्त,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्रदल कमल, मूर्धा भाग या देह में (उस्त्रियाभिः) ऊर्ध्वसर्पण करने हारी इन्द्रिय शक्तियों से (सं गच्छते) मिलकर एक हो जाता है।

(३) (उत) और जब वह सोम, शुक्रस्वरूप योगी के तालुभाग में लगी इन्द्रयोनि से टपकने हारा रस (अघ्न्यायाः) कभी न विलुप्त होने हारे, सदा चेतन चितिशक्तिरूप गौ के (ऊधः) रस के भण्डार रूप ऊर्ध्वस्थान मस्तक भाग को (प्र पिप्ये) भर देता है, पूर्ण कर देता है, तब (सु-मेधाः) उत्तम ज्ञानधारण में समर्थ धारणावती मेधा बुद्धि से युक्त, (इन्दुः) ज्ञान और तप से प्रकाशमान योगी (धाराभिः) अपने धारणा के अभ्यासों या स्तुति वाणियों से (सचते) सोम का रस प्राप्त करने एवं आत्मा के स्वरूप तक पहुंचने में समर्थ होता है तब ही ((गावः) गमनशील सूक्ष्म इन्द्रियों की संचित् शक्तियां या वाणियां (चमूषु) अपने २ स्थानों में स्थित होकर (पयसा) अपने २ विषयग्रहण के रस से (मूर्धानं) मूर्धास्थल अर्थात् शिरोदेश के सहस्रदल कमल में स्थित सोम आत्मानन्द को (अभि श्रीणन्ति) ऐसे घेर लेती है, आच्छादित कर लेती है जैसे (निक्तैः) स्वच्छ सुन्दर (वसुभिः) वस्त्रों से मातायें अपने बालकों को, या शुद्ध २ (वसुभिः) ज्ञानरूप उपहार धनों से प्रजाएं अपने राजा को आच्छादित कर देती और भर देती हैं।

यहां सम्प्रज्ञात समाधि का वर्णन किया है, ऊर्ध्वरेता योगी के ध्यान करने ओर ब्रह्मरसास्वादन करने के रहस्य को खोला गया है।

१ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१४२१] पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
आपिर्नो बोधि सधमाद्य वृधेऽ३ऽस्मां अवन्तु ते धियः॥१॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[१४२२] भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नस्तरभिमातये।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्मां चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय॥२॥१६

ऋ० ८।३।१—२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [२३९] पृ० १२२ ।

(२) (वयं) हम (ते) तेरी (सुमतौ) उत्तम मति, प्रज्ञा वेद-रूप ज्ञान के अधीन रहकर (वाजिनः) ज्ञानवान् पुरुष (स्याम) होवें । (अभि-मातये[1]) चारों ओर से नाना प्रकार के माति अर्थात् हिंसाकारी विषयभोग रूप शत्रु की बढ़ती के लिये (नः) हमें (मा स्तः[2]) मत ढक, अर्थात् उसमें मत फंसा । (चित्राभिः) ज्ञानमय, नाना प्रकार की संग्रह करने योग्य (अभिष्टिभिः) अपनी प्रेरणाओं से (अस्मान्) हमें (अवतात्) रक्षा कर । और (नः) हमें (सुम्नेषु) सुखमार्गों में (आ यामय) व्यवस्थित रख, चला ।

[१४२३] त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि । चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यद् ऋतैरवर्धत ॥ १ ॥

[१४२४] स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे । तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥ २ ॥

---

१. स्तृञ् आच्छादने क्र्यादिः । हिंसार्थस्य स्तृणातेरिति सायणः ।

२. अभिमन्यते इति अभिमातिः शत्रुरिति सायणः । रोग इति माधवः ।

१४२४—१. 'दुदुहे' 'पूर्व्ये व्योमनि', 'स भिक्षमाणो' इति ऋ० ।

'भिक्षमाण', भक्षमाण' इति पाठौ सायणसम्मतौ, जीवानन्दीये 'भक्ष-माण' इति च सर्वे प्रामादिकाः पाठः, निर्णयसागरीये ऋक्सायणभाष्ये, अन्यासु सामसंहितासु लन्दन-कालिकातामुद्रितासु च तथाऽनुपलम्भात् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१४२५] ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु । येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद् राजानं मननाः अगृभ्णत ॥ ३ ॥ १७ ॥ ऋ० ९ । ७० । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [५६०] पृ० २८५ ।

(२) (यदि) जिस दशा में विद्वान् लोग (देवस्य) उस उपास्य-देव के (सदः) आश्रयस्थान हृदय देश को (श्रवसा) गुरु-उपदेश द्वारा (विदुः) ज्ञान कर लेते हैं तब (सः) वह पवमान, सोम साधक (चारुणः) अति उत्तमरूप, उपभोग करने योग्य (अमृतस्य) अमृत या अमरत्व का (भक्षमाणः) सेवन करता हुआ (काव्येन) अपने ज्ञान-सामर्थ्य से (उभे द्यावा[1]) दिव्यगुणयुक्त आत्मा और परमात्मा दोनों को (विशश्रथे[2]) प्राप्त करता है और (मंहना) अपने तपोमहत्व से (तेजिष्ठाः) अति तेज से सम्पन्न (अपः) लोकों या प्राणों में (परि व्यत) विचरता है । ऋग्वेद में 'भिक्षमाणः' पाठ है । इसलिये उस पक्ष में (सः) वह साधक (चारुणः, अमृतस्य) उत्तम अमरत्व की (भिक्षमाणः) याचना करता हुआ (उभे द्यावा विशश्रथे) दोनों तेजोमय आत्माओं को प्राप्त करता है, इत्यादि पूर्ववत् । अथवा (उभे द्यावा) दिव्यगुणयुक्त प्राण और अपान दोनों को (विशश्रथे) शिथिल या वश कर लेता है । दोनों के बन्धनों को ढीला कर देता है । दोनों को वश करके विदेह-मुक्त होजाता है ।

---

१. द्यावापृथिव्या प्राणापानौ, (श०)

२. 'श्रथ हिंसार्थः' क्र्यादि श्रथ प्रयत्ने प्रस्थाने च, चुरादिः, श्रथ मोक्षणे, चुरादिः, श्रथि दौर्बल्ये, चुरादिः, श्रथि शैथिल्ये, भ्वादिः, श्रन्थ विमोचनप्रतिहर्षयोः, क्र्यादिः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) (अस्य) इस सोमरूप योगी आत्मा के (उभे जनुषी अनु) दोनों जन्म अर्थात् इह और पर दोनों लोकों में (अमृत्यवः) अमर, अविनाशी, (अदाभ्यासः) अखण्डित, अमिट (ते) वह २ (केतवः) ज्ञान और रश्मियां, विभूतियां (सन्तु) उत्पन्न हो जाती हैं (याभिः) जिन के बल से वह (नृमणा) मनुष्यों के अभिलाषा योग्य और (देव्या) देवों, विद्वानों के प्राप्त करने योग्य लोक लोकान्तरों को भी (पुनते) प्राप्त करता है । (आत् इत्) और उस विभूति के प्राप्त कर लेने के अनन्तर (राजानम्) सर्वतः प्रकाशमान, सर्वतो वशी राजास्वरूप उस आत्मा को (मननाः) मनन करने से प्राप्त मानसिक संकल्प ही (अगृभ्णत) धारण किये रहते हैं, अर्थात् उस दशा में उसके समस्त संकल्प ही उस आत्मा को लोक लोकान्तरों तक पहुंचाते हैं ।

इति पञ्चमः खण्डः ।

—:०:—

[१४२६] अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽ३भि मित्रावरुणा पूयमानः
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥१॥

[१४२७] अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान् रथिनो देवसोम ॥२॥

[१४२८] अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥३॥ १८॥

ऋ० ९ । ९७ । ४९–५१ ॥

१४२७—'अभिनरं' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) हे विद्वन् ! (वायुं) कोष्ठगत वायुरूप प्राण को (वीति) सर्व शरीर में व्याप्त होने के लिये (अभि-अर्ष) प्रेरित कर। और (मित्रावरुणा) प्राण और अपान दोनों को (पूयमानः) पवित्र करता हुआ, उत्तम रूप से गति देता हुआ (अभि) उनको भी प्रेरित्त कर। (रथेष्ठाम्) इस देहरूप रथ पर सारथि बनकर स्थित (धी-जवनं) ध्यान, संकल्पमात्र के वेग से जाने वाले, (नरं) इन्द्रियगणों के नेता मन को (अभि) उत्तम रीति से प्रेरित कर, और इस प्रकार प्राणायाम द्वारा जितेन्द्रिय और जितचित होकर हे सोम ! विद्वन् ! तव (वज्र-बाहुम्) अज्ञान का नाश करने हारे ज्ञानरूप वज्र को हाथ में लिये ऋतम्भरावस्था में प्रज्ञाऽऽलोक के खुल जाने पर (वृषणं) सब सुखों के वर्षक (इन्द्रं) उस आत्मा को (अभि-अर्ष) साक्षात् कर।

(२) हे (सोम) विद्वन् ! (पूयमानः) पवित्र होकर या निरन्तर उन्नति की साधना करता हुआ तू (सु-वसनानि) उत्तम रूप से आच्छादन करने हारे (वस्त्रा) चमचमाते विभूति, सिद्धियों अर्थात् सात्विक आवरणों या पंचकोषों को (अभि-अर्ष) वश कर। और (सु-दुघाः) उत्तम रूप से ज्ञानरस या आनन्दरस का दोहन करने हारी (धेनूः) भीतरी व आनन्दवाहिनी सुषुम्णा आदि नाड़ियों पर, या इन्द्रिय-शक्तियों पर (अभि) वश कर और (नः) हमें (चन्द्रा) आह्लादकारी (हिरण्या) ज्ञानरूप ऐश्वर्य (भर्तवे) भरण, पोषण करने या आत्मतृप्ति करने के लिये (अभि अर्ष) प्रदान कर। हे (देव) ज्ञानद्रष्टः ! शमादिसाधनों से युक्त योगिन् ! (रथिनः) देहरूप रथों के स्वामी, जितेन्द्रिय (अश्वान्) ज्ञानी पुरुषों को (अभि-अर्ष) हमें प्राप्त करा।

(३) हे सोम, विद्वन् ! आप हमें (दिव्या वसूनि) दिव्यगुणयुक्त जीवन के वास-हेतु पदार्थों को (अभि अर्ष) प्रदान करें और (पूयमानः) सर्वत्र प्रकाशमान, शुद्ध पवित्र चित्त होकर (विश्वा पार्थिवा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त पृथिवी पर होने वाले ऐहिक पदार्थों का (अभि) उपदेश करें। और आप हमें ऐसे (अभि) सामर्थ्य दें कि (येन) जिससे हम (द्रविणम्) ज्ञान, धन और अन्नादि पदार्थों को (अश्नवाम) प्राप्त करें और उपभोग भी करें। और हे सोम ! आप (नः) हमें (जमदग्निवत्) समस्त अग्निरूप सूर्यादि पदार्थों को दमन करने हारे परमात्मा के समान (आर्षेयं) ऋषियों द्वारा प्राप्त करने योग्य वेदज्ञान का (अभि) उपदेश करें।

[१४२९] यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।
तत् पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ १ ॥

[१४३०] तत् ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ २ ॥

[१४३१] आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत्
॥ ३ ॥ १९ ॥ ऋ० ८ । ८९ । ५—७ ॥

भा०—(१) हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! समस्त संसार को यज्ञरूप में सम्पादन करने हारे, समस्त विभूतियों के स्वामिन् ! हे (अपूर्व्य) सबसे पूर्व होने हारे ! अद्वितीय मूलकारण परमेश्वर ! (यत्) जब (वृत्रहत्याय) आवरणकारी 'तुच्छत्व' रूप प्रकृति के रजःपटल को गति देने और उस में विक्षोभ उत्पन्न करने के लिये (जायथाः) उस में शक्तिरूप से प्रकट होता है (तत्) तब (पृथिवी) अति विस्तृत व्यापक पृथिवी, मूलकारण प्रकृति को या जीवों के निवास के लिये इस पृथिवी को (अप्रथयः) तू ही विस्तृत करता है और (दिवं) इस समस्त आकाश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थित लोकसमूह को भी (अस्तम्नाः) अपने २ स्थान पर स्तम्भित, स्थापित, करता है।

(२) (तत्) और तब ही (ते) तेरी शक्ति से सम्पादित (यज्ञः) समस्त वायु, तेज, पृथिवी, आकाश, काल, दिग्, आत्मा, मन इत्यादि देवगणों का उचित रूप से संघटित यज्ञ भी (अजायत) सुसम्पन्न होता है (तद्) और तब ही (अर्कः) यह प्रकाशमान तेजस्वी सूर्य भी प्रकट होता है (उत) और साथ ही (हस्कृतिः) दिन की रचना होती है। (तत्) उस समय ही तू हे परमात्मन् ! (विश्वम्) यह समस्त जगत (यत् जातं) जो कुछ उत्पन्न हुआ (यत च) और जो (जन्त्वम्) आगे उत्पन्न होता है उस सब में (अभि-भूः) सब ओर और सब प्रकारों से व्याप्त होकर सबका मूल उत्पत्ति कारण तू ही (असि) है।

(३) हे परमेश्वर ! तू ही (आमासु) न पके, अपक्व, कच्चे, स्थावर और जंगम पदार्थों में (पक्वं) परिपक्व भाव को (ऐरय) प्राप्त करता है। और इस निमित्त तू ही (सूर्यं) सबके प्रेरक सूर्य को (दिवि) इस महान् आकाश में (आरोहयः) इतनी उच्चता पर स्थापित करता है। हे विद्वान् लोगो ! (सामन्) सामवेद द्वारा (घर्मं न) जिस प्रकार आप घर्मयोग या प्रवर्ग्य इष्टि को (तपत) प्रतप्त करते हो उसी प्रकार आप लोग (सु-वृक्तिभिः) उत्तम ज्ञानस्तुतियों या ज्ञान-चर्चाओं द्वारा (गिर्वणसे) समस्त वेदवाणियों के एकमात्र वर्णनीय उस इन्द्र के विषय में (जुष्टं) अतिप्रिय, रुचिकर (बृहत) महान् या बृहत् साम द्वारा ज्ञान प्राप्त करो।

सत्यमिति सत्यवचा रथीतरः। तप इति तपो नित्यः पौरुशिष्टिः। स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः। तद्धि स्तपस्तद्धि तपः। (तैत्ति० उप० शिक्षावल्ली अनु० ९) अर्थात् ज्ञानप्राप्ति ही तप है। प्रवर्ग्येष्टि में संसार की रचना का ज्ञान दर्शाया जाता है। (देखो शतपथ में प्रवर्ग्येष्टि प्रकरण)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१४३२] मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥

[१४३३] आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥ २ ॥

[१४३४] त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥ २० ॥

ऋ० १ । १७५ । १–३ ॥

भा०—(१) (पात्रस्य इव मदः) जिस प्रकार पात्र में रक्खा तृप्तिकारी हर्षजनक जल और दुग्धादिरस (अपायि) पान कर लिया जाता है उसी प्रकार हे (हरिवः) हरणशील शक्तियों, अन्धकार और अज्ञान के हरने वाले किरणों से युक्त परमेश्वर ! (मत्सरः) आनन्दरूप में सर्वत्र प्रसरणशील (महः) आनन्दप्रद तेजोरूप, सर्वप्रेरक उत्पादक-शक्ति रूप से (ते) संसार में व्यापक तेरा महान् सामर्थ्य (अपायि) पान किया जाता है अर्थात् विद्वान् जन उसको अपने भीतर धारण करते हैं अथवा आप ही उस महान् शक्ति के धारण करने हारे हो । (वृष्णः) समस्त सुखों और शक्तियों के वर्षक (ते) तेरा (इन्दुः) ऐश्वर्य, विभूति और सामर्थ्य (वाजी) बलवान् (सहस्र-सातमः) सहस्रों पदार्थों को देने हारा, (वृषा) सब सुखों का वर्षक है ।

अध्यात्म पक्ष में —इन्द्र = आत्मा, मत्सरः = आनन्दरस, इन्दुः = विभूति-सिद्धयोगी, वाजी = ज्ञानवान् । वृषा = ज्ञानवर्षक, सहस्र-सातमः = सहस्रों उपदेशों का दाता, अथवा सहस्रों को सन्तोष, आशीर्वाद, एवं सुखसाधनों का प्रदाता, इत्यादि ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (ते) तेरा (मत्सरः) हर्षप्रद ज्ञान और आनन्दरस (नः) हमें (आगन्तु) प्राप्त हो । तू ही (वृषा) सुखों का वर्षक, (मदः) आनन्द और तृप्तिकारक (वरेण्यः) एकमात्र वरण करने योग्य, प्रिय, (सहावान्) सब कष्टों का सहन करने हारा, बलवान् या सहायसम्पन्न, (सानसिः) सेवन करने योग्य, (पृतनाषाट्) समस्त प्रजाओं का शासक और (अमर्त्यः) अविनाशी है ।

यहां योगी का साधक आत्मा के प्रति, भक्त का ईश्वर के प्रति, प्रजा-गण का राजा के प्रति समानरूप से वचन है ।

(३) हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वं) आप ही (शूरः) सबमें गति देने हारे, (सनिता) समस्त पदार्थों के दाता होकर (मनुषः) मनन-शील जीव के (रथं) इस रमण स्थान देह या समस्त विश्व को (चोदयः) प्रेरित कर रहे हो । आप (दस्युम्) नाश करने हारे, दुष्ट (अव्रतम्) नियम रहित, निकम्मे, नियम को न पालने हारे, दुष्ट पुरुष को (सहावान्) शक्तिशाली या सहायसम्पन्न होकर (शोचिषा) अपने तेज से (शोचिषा) अग्नि के ताप से (पात्रं न) हंडिया के समान (ओषः) तपाया करते हैं ।

इति षष्ठः खण्डः ।

इति षष्ठस्य द्वितीयोऽर्धः प्रपाठकः । इति द्वादशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अथ षष्ठप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः ।

ऋषिः—१ कविर्भार्गवः । २, ६, १६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । ३ असितः काश्यपो देवलो वा । ४ सुकक्ष आंगिरसः । ५ विभ्राट् सौर्यः । ६, ८ वसिष्ठो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैत्रावरुणिः । ७ भर्गः प्रागाथः १०, १७ विश्वामित्रो गाथिनः । ११ मेधातिथिः काण्वः । १२ शतं वैखानसाः । १३ यजत आत्रेयः ॥ १४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । १५ उशनाः काव्यः । १८ हर्यतः प्रागाथः । १० बृहद्दिव आथर्वणः । २० गृत्समदः शौनकः ॥ देवता—१, ३, १५ पवमानः सोमः । २, ४, ६, ७, १४, १६, २० इन्द्रः । ५ सूर्यः । ८ सरस्वान् सरस्वती च । १० सविता । ११ ब्रह्मणस्पतिः । १२, १६–१७ अग्निः । १३ मित्रावरुणौ । १८ अग्निर्हवींषि वा ॥ छन्दः—१, ३, ४, ८, १४, १६ (२, ३) १८ गायत्री । २ (१–३) अनुष्टुप् (४) बृहती । ५ जगती । ६, ७ प्रागाथं बार्हतम् । १४, १६ त्रिष्टुप् । १६ (१) वर्धमाना गायत्री । २० (१) अष्टिः (२, ३) अतिशक्वरी ॥

१ २ ३ २ उ ३ २ ३ २ ३ १र २र
[१४३५] पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
३ १ २ ३ १र २र
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
[१४३६] तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।
१ २ ३ १ २ ३ २
जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१४३७] घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।
३ १ २ ३ १र २र
अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १
[१४३८] स न ऊर्जे व्याऽ३व्ययं पवित्रं धाव धारया ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
देवासः शृणवन् हि कम् ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २
[१४३९] पवमानो असिष्यदद् रक्षांस्यपजङ्घनत् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
प्रत्नवद् रोचयन् रुचः ॥ ५ ॥ १ ॥ ऋ० ९ । ४९ । १–५ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) हे पवमान सोम, सर्वप्रेरक, सूर्य ! (नः) हमारे प्रति (सु) सुष्ठु, उत्तम रीति से (वृष्टिं) सुखों और जलों की वृष्टि की (आप वस्व) सब ओर से वर्षा करो। और (दिवः) द्यौलोक और मूर्धादेश से (अपां) बलों, प्रज्ञानों और कर्मों की (ऊर्मिम्) तरङ्ग या ऊपर उठने वाली परम्परा को (परि-पवस्व) सब ओर से प्रेरित कर। और (बृहतीः) पुष्टिकारक, अति अधिक, (अयक्ष्माः) यक्ष्म अर्थात् चिपट जानेहारे सूक्ष्म रोग कीटों से रहित (इषः) अन्नों और इष्टदेव और विद्वानों की, उत्तम संगति के नाशक दुर्विचारों से रहित मन की सत्कामनाओं को प्रेरित करो।

(२) हे (सोम) परमेश्वर वा योगिन् ! (तया) उस (धारया) धारा से या धारणा शक्ति से (पवस्व) प्रेरित कर (यया) जिससे (गावः) दीप्त-रश्मियां, कान्तियां एवं ज्ञानवाणियां (इह) इस हमारे अन्तःकरण एवं गृह में (आगमन्) प्राप्त हों। और (जन्यासः) जन, मनुष्य एवं प्राणियों के हितकारक पदार्थ भी (नः) हमारे (गृहम्) देह और गेह को (उप आगमन्) प्राप्त हों।

(३) अपनी (धारया) धारणा, पालन पोषण करने हारी शक्ति से (यज्ञेषु) नाना प्रकार के यज्ञों में (देव-वीतमः) दिव्य गुणयुक्त पदार्थों को प्राप्त होकर (अस्मभ्यं) हमको (घृतं) कान्तिस्वरूप, प्रदीप्त, प्रकाशयुक्त, ज्ञान, कर्मोपदेश को (पवस्व) प्राप्त करा। और (अस्मभ्यं) हमें (वृष्टिं) अन्तः आनन्द-सुखों की वृष्टि को भी (आ पव) प्रदान कर।

(४) हे सोम ! (सः) वह तू (नः) हमारे (ऊर्जे) बल सम्पादन के निमित्त (धारया) अपनी धारण-पोषण करने हारी शक्ति से (अव्ययं) सूर्य, प्राण, आत्मारूप (पवित्रं) पवन करने हारे वायु, अन्तःकरण या धारणा देश के प्रति (वि धाव) विशेष रूप से गति कर। (देवासः हि) समस्त विद्वान् और दिव्य जल, अग्नि आदि तत्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ और इन्द्रियां (कम्) आनन्दकारी तेरी ध्वनि को (शृणवन्) श्रवण करते हैं।

(५) (पवमानः) अति शुद्धकान्ति से देदीप्यमान सोमरूप अन्तरात्मा का ब्रह्मानन्द रस (असिष्यदद्) जब द्रवित होता है तब (प्रत्नवत्) पूर्व के अपने पुरातन (रुचः) कान्तियों को (रोचयन्) चमकाता हुआ (रक्षांसि) समस्त पाप, कुवासना, दुःसंकल्पों को अनायास (अप जंघनत्) दूर मार भगाता है।

इस सूक्त में सूर्य, आत्मा, राजा, प्राण, शुक्र आदि समस्त प्रेरक शक्तियों को सोमधारा के दृष्टान्त से वर्णित किया गया है। मधु, घृत आदि शब्द वेद में ज्ञान के वाचक भी हैं। जैसे शतपथ में पञ्चमहायज्ञ प्रकरण में—पयः-आहुति = ऋग्वेद की ऋचाओं का स्वाध्याय, अन्याहुति = यजुर्वेद का स्वाध्याय, सोमाहुति = सामवेद का स्वाध्याय, मेदाहुति = अथर्ववेद के मन्त्रों का स्वाध्याय और मधु-आहुति = अन्य शेष विद्या जैसे वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण, गाथा, नाराशंसी इत्यादि का स्वाध्याय कहा जाता है। (शत० का० १२। ५। ६। ३। ८)

इत्यादि रूप से यह सोम का सवन ज्ञानपरक समझना चाहिये। इसी प्रकार अन्यत्र भी स्वाध्याय-प्रशंसा प्रकरण में—'मधु ह वा ऋचः।' घृतं ह सामानि', 'अमृतं यजूंषि' यद् हवा अयं वाकोवाक्यमधीतो क्षीरोदनमांसोदनौ भवतः। (शत० का० ११। ५। ७। ५)

[१४४०] प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः॥ १॥

[१४४१] एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम्।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः॥ २॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१४४२] यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३२उ ३ १र २र
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत् तं तमिदेषते ॥ ३ ॥
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१४४३] अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कुवित् समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत्
॥ ४ ॥ २ ॥ ऋ० ६ । ४२ । १-४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [३५२] पृ० १=३ ।

(२) हे विद्वान् पुरुषो ! (एनं) इस (सोम-पातमं) सोमरस का पान करने हारों में से सबसे श्रेष्ठ, ज्ञान के परम आगार, परमेश्वर को (सोमेभिः) ज्ञानों और ज्ञानियों द्वारा (आ प्रति एतन) प्राप्त या साक्षात् करने का प्रयत्न करो ! (अमत्रेभिः) धारण करने वाले धारणा, बुद्धि के संकल्पों द्वारा (ऋजीषिणं) ऋजु मार्गों पर प्रेरणा करने हारे, सन्मार्गदर्शी, सत्संगतिकारी परमेश्वर को (सुतेभिः) सुप्रसिद्ध, सम्यक् रूप से प्रेरित (इन्दुभिः) आह्लादकारी विद्वानों द्वारा उनके उपदेश पाकर (आ प्रति एतन) उसका सत्यज्ञान प्राप्त करो, उसको पहिचानो ।

(३) हे विद्वान् पुरुषो ! (यदि) जब (सुतेभिः) सिद्ध, निष्पन्न (इन्दुभिः) प्रकाशमान, ज्ञानज्योतियों से युक्त (सोमेभिः) पूर्वोक्त सोमों द्वारा (इन्द्रं) अपने आत्मा या अपने उपास्य इष्टदेव को (प्रति भूषथ) अलंकृत करो, तो वह (मेधिरः) मेधाबुद्धि से युक्त (धृषत्) सब पर वश करने हारा ईश्वर (विश्वस्य) सब कुछ (वेद) जानता है और (तं तं) उस २ संकल्प को भी (एषते इत्) अवश्य पूर्ण करता है ।

(४) हे (अध्वर्यो) यज्ञ करनेहारे विद्वन् ! (अस्मै अस्मै इत्) इस २ ही इन्द्र के लिये (अन्धसः) जीवन धारण करने हारे मूलतत्व के (सुतम्) निष्पादित आनन्द-रस को (प्र भर) समर्पित कर । क्योंकि

१४४३—'सुभिशन्तेरवस्मरत्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(समस्य) समस्त (जेन्यस्य) वश करने योग्य (शर्धतः) ऊपर उठते हुए (अभिशस्तेः) अभिमानी, घातक काम क्रोधादि शत्रुरूप से (कुवित्) बहुत बार (अव स्वरत्[२]) बचा लेता है ।

इति प्रथमः खण्डः ।

—:०:—

[१४४४] बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे ।
सोमाय गाथमर्चत ॥ १ ॥

[१४४५] हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन ।
मधावा धावता मधु ॥ २ ॥

[१४४६] नमसेदुपसीदत दध्नेदभि श्रीणीतन ।
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ३ ॥

[१४४७] अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे ।
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ४ ॥

[१४४८] इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे ।
मनश्चिन् मनसस्पतिः ॥ ५ ॥

[१४४९] पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः ।
इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥ ६ ॥ ३ ॥ ऋ० ६ । ११ । ४-६ ॥

भा०—(१) हे विद्वान् पुरुषो ! (बभ्रवे) सब का भरण पोषण करने हारे (स्व-तवसे) दूसरे की बिना अपेक्षा किये, स्वयं बलशाली,

१४४५—१. स्वरतिर्गत्यर्थो, निघण्टौ । उपसर्गेण बलादर्थपर्ययः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अरुणाय) तेजस्वी, अप्रतिहत सामर्थ्य वाले, (दिवि-स्पृशे) इस देह में मूर्धास्थान और ब्रह्माण्ड में, महान् आकाश में भी व्याप्त) एवं समस्त कान्तिमान्, सात्विक, दिव्यगुण वाले लोकों और पदार्थों के भीतर विद्यमान, (सोमाय) प्रेरकस्वरूप, शक्ति, प्राणात्मा, परमात्मा एवं राजा आदि की (गाथम्) वास्तविक सत्य गुणकथा का (अर्चत) वर्णन करो।

(२) हे विद्वान् पुरुषो ! (हस्त-च्युतेभिः) हाथों के समान प्रेरक साधनों से प्रेरित, (अद्रिभिः) पर्वत एवं शिलाओं के समान स्थिर, सदाचारी, विद्वानों द्वारा (सुतः) निष्पादित, तैयार किये गये (सोमं) ज्ञानराशि को (पुनीतन) बराबर उन्नत करो, उसका सम्पादन करो और बढ़ाओ और उसको निःसंशय करके पवित्र बनाओ। और (मधौ) अत्यन्त आनन्द देने हारे, अमृतस्वरूप अपने आत्मा में उस (मधु) परम-आत्मज्ञानरूप अमृत को (आ धावत) शीघ्र प्राप्त करो।

(३) हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उस सोम, सबके प्रेरक अन्तर्यामी, शक्तिमान् परमेश्वर एवं इस शरीर के स्वामी प्राणात्मा के (नमसा इत्) नमस्कार, श्रद्धा, भक्ति द्वारा ही (उप सीदत) समीप पहुंचो, उसकी उपासना करो। (दध्ना) ध्यान और धारणा बल से (अभि श्रीणीतन) साक्षात् उसको अपने भीतर परिपक्व करो। और उस (इन्दुम्) ऐश्वर्यसम्पन्न सोमरूप जीव को (इन्द्रे) परमेश्वर में (दधातन) स्थापित करो। अथवा ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को अपने आत्मा में धारण करो।

(४) हे (सोम) सर्वोत्पादक परमेश्वर ! (अमित्र-हा) द्वेष करने तथा स्नेह न करने हारे दुर्वासनायुक्त पुरुषों का नाश करने हारा, (विचर्षणिः) विविध पदार्थों का विशेष रूप से द्रष्टा होकर, (देवेभ्यः) दिव्य-गुण-युक्त पदार्थों, विद्वानों एवं इन्द्रिय शक्तियों के (अनु-काम-कृत्) कामनानुकूल कार्य करने हारा होकर (गवे) ज्ञानशील आत्मा के लिये (शं) कल्याण-सुख को (पवस्व) प्रवाहित कर, प्रदान कर।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) हे (सोम) सबके प्रेरक ! ज्ञान-आनन्द रस स्वरूप ! (इन्द्राय) अन्तरात्मा के (पातवे) पान करने और (मदाय) हर्षोत्पादन के लिये (परि सिच्यसे) तू ही सब प्रकार से हृदय में और सर्वत्र आनन्दग्राहक स्थलों में विचारधारा से प्रवाहित किया जाता है, क्योंकि तू ही (मनः चित्) मननशील मन को भी जानने हारा एवं (मनसः पतिः) मनःस्वरूप आत्मा का परिपालक है ।

(६) हे (पवमान) सर्वत्र प्रकाशमान, सर्वव्यापक, सबके प्रेरक सबके प्रकाशक ! हे (सोम) सर्व उत्पादक तू (नः) हमें (सु-वीर्यम्) उत्तम सामर्थ्ययुक्त (रयिं) प्राणबल (रिरीहि) प्रदान कर और हे (इन्दो) योगिन् ! गुरो ! (इन्द्रेण) परमात्मा या आत्मारूप (युजा) सहायक से (नः रिरीहि) हमें वह बल प्राप्त करा ।

[१४५०] उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

[१४५१] नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।
अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥

[१४५२] स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् ।
उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥ ४ ॥ ऋ० । ८३ । १-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१२५] पृ० ६७ ।

(२-३) (यः) जो इन्द्र (बाह्वोजसा) बाहुओं, विघ्नकारी बाधाओं को दूर करने हारे साधनों के सामर्थ्य या बल से (नव नवतिं) ९९ निन्यानवें (पुरः) पुरों, देहों या देह पर गुजरने हारे उसके परिपोषक एवं तर्पक वर्षों को (बिभेद) तोड़ डालता है, विनाश करता है और (वृत्र-हा) आवरणकारी अज्ञान—अन्धकार को नाश करने हारा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह आत्मा (अहिं) सर्प के समान हृदय–मन्दिर में आ घुसने वाले अज्ञान और उससे पैदा होने वाले काम आदि विकार आत्मा के प्रकाश के ऊपर आजाने वाले अज्ञान-आवरण को (अवर्धात्) विनाश करता है (सः) वह (इन्द्रः) वशी आत्मा या ऐश्वर्यवान् परमात्मा (शिवः) कल्याण-मय, (सखा) सब का मित्ररूप हमारे लिये (उरु-धारा इव) दूध की बड़ी धार बहाने वाली कामधेनु के समान, (अश्ववत्) इन्द्रियों की शक्ति से सम्पन्न बल और (गोमत्) वेदवाणियों से युक्त ज्ञान और (यवमत्) यव, जौं आदि धान्यों से युक्त उत्तम पुष्टिकारक अन्न को एवं समष्टि रूप से अश्वों, गौओं और सस्यादियुक्त ऐश्वर्यों को (दोहते) प्रदान करता है ।

इति द्वितीयः खण्डः ।

---

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१४५३] विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद् यज्ञपताव-
२ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
विह्रुतम् । वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्त्ति
३ १र २र
बहुधा वि राजति ॥ १ ॥

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१४५४] विभ्राड् बृहत् सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्यमर्पितम् । अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे
३ १ २ ३ २
असुरहा सपत्नहा ॥ २ ॥

३ २उ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
[१४५५] इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद् धनजिदुच्यते
३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
बृहत् । विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे
२ ३ २ ३ १ २
सह ओजो अच्युतम् ॥३॥५॥ ऋ० १० । १७० । १–३ ॥

१४५४—१. 'प्रजाः पुपोष पुरुधा विराजति' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) सूर्य के दृष्टान्त से ईश्वर, आदित्य ब्रह्मचारी, योगी और उत्तम राजा का वर्णन किया है। (विभ्राट्) विशेष रूप से चमकने हारा, आदित्य ब्रह्मचारी, योगी (यज्ञ-पतौ) समस्त ब्रह्माण्ड के उत्पन्न और प्रलयरूप दान-आदानमय यज्ञ के स्वामी, परमात्मा और प्राणापान-आहुतिमय यज्ञ के स्वामी आत्मा में (अवि-ह्रुतम्) सरल, शुद्ध एवं नित्य जागृत, नित्य चेतन, अमर (आयुः) जीवन को (दधत्) धारण करता हुआ (बृहत्) बड़े भारी (सोम्यं) सोम स्वरूप, प्रेरक व शासन शक्ति के साक्षात् करण से प्राप्त (मधु) अमृत ब्रह्मानन्द रस का (पिबतु) पान करे। (यः) जो (वात-जूतः) प्राणवायु द्वारा प्रेरित प्रथम (त्मना) स्वयं अपने आप को (अभि रक्षति) रक्षा करता और निरपेक्ष होकर (प्रजाः) अपनी इन्द्रियों और प्रजाओं को भी (पिपर्त्ति) पालन पोषण करता है और (बहुधा) अनेक प्रकारों से (वि राजति) विशेष रूप से प्रकाशित होता है।

(२) (विभ्राड्) विशेष रूप से तेज से प्रकाशमान (बृहत्) विशाल, बड़ा भारी (सु-भृतं) उत्तम रूप से पालित पोषित एवं धारित, (वाज-सातमं) ज्ञान और बल प्रदान करने हारों में उत्तम है, (धर्मं) धारण करने हारा, साक्षात् आनन्द का प्रवर्षक आत्मरूप (दिवः) समस्त सूर्य एवं द्यौलोक और विद्वानों के (धरुणे) आश्रय-स्वरूप धारण करने हारे परम आश्रय परब्रह्म में (अर्पितम्) प्रतिष्ठापित, (सत्यं) सत्यस्वरूप, (अमित्र-हा) विपरीत जाने हारे शत्रुरूप काम क्रोधादि अन्तःशत्रु और बहिःशत्रुओं का भी नाश करने हारा, (वृत्र-हा) आत्मा के आवरक अज्ञान और योगसमाधि के विघातक आभ्यन्तर और बाह्य विघातक व्युत्थान वृत्तियों का नाशक, (दस्यु-हन्तमं) शरीर, आत्मा के उत्तम सम्पदाओं के विनाशक कारणों का सबसे अधिक नाश करने हारा, (असुर-हा) प्राणों में रमण करने वाले आसुरी स्वभाव के व्यक्तियों को वश करने हारा, (सपत्न-हा) प्रतिस्पर्द्धियों का विनाशक,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ज्योतिः) तेजःस्वरूप अर्थात् तेज को धारण करने हारा आदित्य के समान सूर्यव्रतचारी आदित्य योगी (जज्ञे) उत्पन्न होता है ।

(३) वह आदित्ययोगी (इदं) यह (श्रेष्ठं) सर्वोत्कृष्ट (ज्योतिः) तेज (ज्योतिषां) समस्त प्रकाशमान पदार्थों में (उत्तमं) उत्कृष्ट कोटि का, (विश्वजित्) सब के विजेता और (धनजित्) सब विभूतियों से भी उत्तम (बृहत्) विशाल (उच्यते) कहा जाता है । वह (विश्वभ्राट्) समस्त संसार का प्रकाशक (भ्राजः) सब पापों और पापी पुरुषों का संताप देने हारा, स्वयंप्रकाश, (महि) बड़ा भारी (सूर्यः) सूर्य के समान सब का प्रेरक, सब को प्रकाश देने हारा होकर (अच्युतं) अविनाशी (सहः) सहनशील, सब के अभिभावक तेज, (ओजः) और बल को (उरु) बहुत अधिक (पप्रथे) विस्तीर्ण करता है, फैलाता है ।

[१४५६] इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१॥

[१४५७] मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माऽशिवासोऽवक्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि । २॥६॥

ऋ० ७ । ३२ । २६-२७ ॥

भा०—(१) हे (इन्द्र) आत्मरूप योगिन्, आदित्य ! अथवा परमेश्वर ! (यथा) जिस प्रकार (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये (पिता) उनका पालक, पिता समस्त आवश्यक भोजन,वस्त्र आदि पदार्थ लाता और उनको शिक्षा देता है उसी प्रकार आप भी (नः) हमें (क्रतुं) ज्ञान, बल और कर्म को (आ भर) उपदेश करके प्राप्त कराइये और (अस्मिन्) इस जीवनमय क्रतुरूप कर्ममय यज्ञ में हे (पुरुहूत) बहुतसी प्रजाओं से याद किये गये, सर्वस्मरणीय, परमात्मन् ! (नः शिक्ष) हमें शिक्षा दो । हम (जीवाः) जीवगण (यामनि) तेरी सिखाई ज्ञान-प्रकाशमय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था में रह कर (ज्योतिः) जीवन प्राण और ज्ञानमय ज्योति का (अशीमहि) भोग करें । देखो अविकल सं० [२५९] पृ० १३२ ॥

(२) हे इन्द्र परमेश्वर ! हे गुरो ! (अज्ञाताः) विना जाने पहिचाने, लुके छिपे चोर (वृजनाः) पापी, (दुराध्यः) दुष्ट, कूट, षड्-यन्त्र करने हारे, कुटिलाचारी (नः मा अवक्रमुः) हमें कभी न पावें और (अशिवासः) अमङ्गलकारक, नीच पुरुष और दुष्ट भाव (नः) हमें (मा अवक्रमुः) कभी न दबा सकें । हे (शूर) शूरवीर ! शत्रुओं को दमन करने में बड़े बलवन् ! प्रभो ! (त्वया) तुझ सहायक को पाकर (वयं) हम (प्रवतः) अति विनयशील होकर भी (शश्वतीः) बहुत से (अपः) कार्यों को (अतितरामसि) निर्विघ्न समाप्त करें ।

[१४५८] अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पत अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥ १ ॥

[१४५९] प्र भङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः
॥ २ ॥ ७ ॥ ऋ० ८ । ६१ । १७, १८ ॥

भा०—(१) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! परमात्मन् ! (नः) हमें (अद्य-अद्य) सब आज, अर्थात् वर्त्तमान में और (श्वः-श्वः) सब कल अर्थात् आगामी दिनों में (परे च) सब परसों के दिनों में (त्रास्व) रक्षा कर । हे (सत्पते) सज्जन प्रतिपालक प्रभो ! आप ही (विश्वा च अहा) सभी दिनों और (दिवा नक्तं च) दिन और रात भी (नः जरितॄन्) हम स्तुतिशील, प्रार्थी जनों की (रक्षिषः) रक्षा किया करते हो, सो करें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (मघवा) समस्त यज्ञों का मालिक (तुवी-मघः) ऐश्वर्यवान् (सं-मिश्लः) सब को मिला देने हारा, सबमें समान भाव से व्यापक, (प्र-भङ्गी) बड़े वेग से शत्रुओं और दुष्ट विचारों को तोड़ फोड़ देने हारा, (शूरः) शूर, परमेश्वर विक्रमशील होने से ही (वीर्याय कम्) बल वर्धन करने के लिये समर्थ होता है। हे (शत-क्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं से युक्त (ते) तेरी (उभा बाहू) वीर पुरुषों की दोनों बाहुओं के समान विघ्नों को बाँधने वाली ज्ञान और कर्म दोनों शक्तियां (वृषणा) नाना सुखों को वर्षाने हारी हैं (या) जो (वज्रं) वज्र को (मिमिक्षतुः) धारण करती हैं।

परमात्मा के पक्ष में बाहू = ज्ञान और कर्म वज्र = कर्म, बंधन को काटने हारी विद्यारूप असि। जीव के पक्ष में—बाहू = प्राण और अपान। वज्र = ज्ञान-असि या चितिशक्ति पा वैराग्य। राजा के पक्ष में वज्र = तलवार, शस्त्रास्त्र।

इति तृतीयः खण्डः।

—:०:—

[१४६०] जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः।
सरस्वन्तं हवामहे ॥ १ ॥ ८ ॥ ऋ० ७ । ९६ । ४ ॥

भा०—(१) (जनीयन्तः) पुत्रोत्पादन के निमित्त भार्याओं की कामना करते हुए और (पुत्रीयन्तः) उनमें पुत्रों की कामना करने हारे होकर भी (अग्रवः नु) उन्नतिशील और (सु-दानवः) उत्तम दानशील, धर्मात्मा होकर हम लोग (सरस्वन्तं) समस्त आनन्दरस के सागररूप तुझ परमात्मा को (हवामहे) नित्य स्मरण करते हैं।

[१४६१] उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१॥ ६ ॥ ऋ० ६ । ६१ । १० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) (उत) और (नः प्रियासु) हमारी प्रेमपात्री, प्यारियों के बीच में (प्रिया) सबसे अधिक प्रिय (सरस्वती) स्वतः सरण करने हारी, अथवा ब्रह्मानन्द रस से भरी पूरी (सप्त-स्वसा) २ आंख, २ नाक, २ कान, १ रसना, इन सात ऋषियों ज्ञानद्रष्टृ साधन रूप, स्वतः सरण करने हारे सात ज्ञानधारक के बीच एकमात्र आठवीं भगिनी के समान बहने वाली वाणीरूप सरस्वती (नः) हमारी (स्तोम्या) स्तुति करने योग्य (अभूत्) है । अथवा (सप्त-स्वसा = सप्त छन्दांसि) सात छन्दों वाली वेदवाणी स्तुति करने हारी है ।

अर्वाग्-बिलश्चमसः ऊर्ध्वबुध्नः तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।

तस्यासत ऋषयः सप्ततीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदाना ॥ बृहदारण्यके ॥

१ २ ३१र २र३ १ २ ३ १ २
[१४६२] तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
२ ३ १ २ २ १ ३
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ऋ० ३ । ६२ । १० ॥

३ २ ३ १ २ ३ १
[१४६३] सोमानां स्वरणं कृणुहि० ॥ २ ॥ ऋ० १ । १८ । १ ॥

२ ३ १ २ ३
[१४६४] अग्न आयूंषि पवसे० ॥ ३ ॥१०॥ ऋ० ९ । ६६ । १९ ॥

भा०—(१) ब्रह्मगायत्री, गुरुमन्त्र, वेदमाता, सावित्री आदि । (तत्) उस (सवितुः) सर्व जगत् के प्रेरक, उत्पादक (देवस्य) स्वतः प्रकाशमान, सब के प्रकाशक, सब सुखों के दाता परमेश्वर के (वरेण्यं) सर्वोत्कृष्ट, वरण करने योग्य अनुपम, (भर्गः) अविद्या, अज्ञान, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अज्ञान से पैदा होने हारे तामस अंकुरों को अग्नि और सूर्य के प्रखर तेज के समान भस्म कर डालने हारे तेज का हम

१४६३—क्वचित् पुस्तकेषु द्वितीयतृतीययोर्ऋचोः पूर्णः पाठो दृश्यते । बह्वीषु संहितासु प्रतीकमात्रमुपलभ्यते इति तदेवात्राप्युद्ध्रियते शिष्टाचारात् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(धीमहि[1]) ध्यान करें, धारण करें (यः) जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों और कर्मवृत्तियों को (प्रचोदयात्) उत्तम सन्मार्ग में प्रेरित करता है।

गोपथ ब्राह्मण में गायत्री मन्त्र की मनन करने योग्य व्याख्या इस प्रकार की है।

"वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः।
कर्माणि धियस्तदु ते ब्रवीमि प्रचोदयात् सविता याभिरेति॥"

उस उत्पादक परमात्म देव का परम वरणीय भर्गरूप तेज 'वेद' 'छन्द' है जिसको कवि विद्वान् लोग 'अन्न' कहते हैं। और 'धियः' का तात्पर्य 'कर्म' है, हे शिष्य ! यही मैं तुझको उपदेश करता हूँ कि उन कर्मों द्वारा ही परमात्मा सबको प्रेरित करता है।*

(२) व्याख्या देखो अविकल सं० [१३९] पृ० ७६ ।
(३) व्याख्या देखो अविकल सं० [६२०] पृ० ३२१ ।

१ २ ३ १ २
[१४६५] ता नः शक्रं पार्थिवस्य० ॥ १ ॥

---

१. धीमहि ध्यायामः धारयेम इति सायणः। आद्यं रूपं ध्यायतेः परं च दिवादेर्धीङ् आधार इत्यस्य ज्ञेयम्।

* इस गायत्री मन्त्र का पं० डब्ल्यू० जोन्स का किया निम्नलिखित अनुवाद बड़े महत्व का है—

"हम (तत्) उस (देवस्य सवितुः) देव सविता परमात्मा के (भर्गः) उत्तम तेज की (धीमहि) उपासना करते हैं जो (देवः) सब को प्रकाशित करता है, जो (सविता) सब को उत्पन्न करता है और जिससे सब उत्पन्न होते हैं, और जिसमें (भर्गः) सब लीन होजाते हैं, उसी को हम (नः धियः) अपनी बुद्धियों को (वरेण्यं) परमपद के प्राप्त करने के लिये (प्रचोदयात्) प्रेरणा करने की प्रार्थना करते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१४६६] ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते ।
अद्रुहा देवौ वर्द्धेते ॥ २ ॥

[१४६७] वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।
बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ३ ॥ ११ ॥ ऋ० ५ । ६८ । ३-५ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [११४५] पृ० ५०६ ।

(२) राजा मन्त्री, जीवात्मा मन, परमात्मा जीवात्मा, प्राणापान, सूर्यवायु, यजमान, अध्वर्यु, सूर्य पृथिवी, गुरु शिष्य आदि का वर्णन है। वे दोनों मित्र और वरुण (अद्रुहौ) परस्पर द्रोह न करते हुए (देवौ) प्रकाशमान ज्ञान से स्वयं प्रकाशित होने, एवं दूसरे को भी प्रकाशित करने हारे या परस्पर एक दूसरे के आकांक्षी (ऋतं) सत्यज्ञान को (ऋतेन) वेद ज्ञान से (सपन्ता) प्राप्त करते हुए (इषिरं) सबके प्रेरक (दक्षं) बल को (आशाते)) प्राप्त कर लेते हैं। अध्यात्म पक्ष में—"(ऋतं) सत्य ज्ञान को (ऋतेन) ब्रह्म से.... " प्राणापान पक्ष में—(ऋतं) आत्मा को (ऋतेन) तप से इत्यादि पूर्ववत्।

(३) वे मित्र और वरुण (वृष्टिद्यावा) वर्षण और प्रकाश से युक्त (रीत्यापा) गति या ज्ञान द्वारा ही इष्ट को प्राप्त करने हारे अथवा जलों के समान कर्म और ज्ञानों को बहाने हारे (दानुमत्याः) दान देने योग्य (इषः) चेतनादायक अन्न के (पती) स्वामी होकर (बृहन्तं) विशाल (गर्त्तम्[१]) उत्तम देहरूप या ब्रह्माण्ड रथ में (आशाते) व्याप्त रहते हैं। राजा, मन्त्री पक्ष में (गर्त्ते) उत्तम राष्ट्र या विजयरथ ।

[१४६८] युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

१४६६—रथोऽपि गर्त्त उच्यते गृणातेः स्तुतिकर्मणः स्तुततमं यानम् (नि० ३।५)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१४६९] युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

[१४७०] केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥ १२ ॥ ऋ० १ । ६ । १-३ ॥

भा०—(१) जो विद्वान् साधक योगी लोग (तस्थुषः) स्थिर आसन होकर (परि चरन्तं) समस्त देह में गति करने हारे, (अरुषः) सब मर्मस्थानों में विराजमान, उनका नाश न करने हारे (ब्रध्नं) विशाल, सब इन्द्रियगण को अपने बल से बांधने और उनको चलाने हारे मुख्य प्राण को (युञ्जन्ति) योगाभ्यास द्वारा प्राप्त करते हैं वे (रोचनाः) कान्तिसम्पन्न होकर (दिवि) सात्विक ऊर्ध्व स्थान, ज्ञान-प्रकाशमय मोक्ष में (रोचन्ते) विराजते और शोभा पाते हैं या (दिवि) मूर्धास्थान में विशेष तेज से प्रकाशमान होते हैं। अथवा—जो विद्वान् योगी (तस्थुषः परिचरन्तं) समस्त स्थावर और जंगम पदार्थों में व्यापक (अरुषं) सब के प्रति स्नेहवान् (ब्रध्नं) सर्वाश्रय, सबसे महान्, ब्रह्मस्वरूप परमेश्वर को (युञ्जन्ति) योग समाधि द्वारा प्राप्त करते हैं वे (दिवि) प्रकाशमान मोक्षस्थान में (रोचनाः) तेजोमय होकर (रोचन्ते) विराजमान होते हैं।

अथवा जो शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये (ब्रध्नं) सूर्य को, (अरुषं) अग्नि को, (चरन्तं) वायु को सम्यक् रीति से कार्य में नियुक्त करते हैं वे प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं और आनन्द लाभ करते हैं।

महर्षि दयानन्द प्रदर्शित दिशा से ये तीनों अर्थ स्पष्ट हैं।

(२) (अस्य) जिसको पूर्व मन्त्र में 'ब्रध्न' कहा है जो सूर्य आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों से भी सम्बोधित होता है उस मुख्य प्राणात्मा रूप इन्द्र के (रथे[1]) रमण करने के साधक इस देह रूप रथ में (काम्या) कान्तिसम्पादक व कमनीय, रुचिकर, प्रिय (हरी) हरणशील (वि-पक्षसा[2]) नाना प्रकार से शरीर को धारण करने हारे अथवा विविध पार्श्वों में गति करने हारे (शोणा) स्वतः गतिशील, (धृष्णू) शरीर को धारण करने हारे, दृढ़, (नृ-वाहसा) नेतास्वरूप आत्मा के वाहनरूप प्राण और अपान दोनों को जो योगाभ्यास द्वारा (युञ्जन्ति) लगाते हैं, वश कर लेते हैं वे प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं । सूर्यपक्ष में—(हरी) हरणशील आकर्षण और वेगगुण । राजा के पक्ष में—(रथे) युद्धोपकरण रथ । परमात्मा के पक्ष में—(हरी) सूर्य और वायु । सभी सम्प्रदायवादियों ने अपने सर्वव्यापक इष्टदेव के ब्रह्माण्डमय विशाल रथ की कल्पना की है । जिसमें जगन्नाथ का रथ और विष्णु का रथ दर्शनीय हैं ।

(३) हे (मर्याः) मनुष्य लोगो ! मरणशील मनुष्यो ! या जन्तु-गण ! जिस प्रकार (उषद्भिः) अपनी दाहक रश्मियों से (अकेतवे) निद्रा में अचेत प्राणी के लिये (केतुं) प्रातः चेतना करता हुआ और (अपेशसे) अरूप अर्थात् प्रकाश के अभाव में अदृश्य पदार्थों को (पेशः) रूपवान् अर्थात् दृश्यमान करता हुआ उदित होता है उसी प्रकार यह आत्मा भी (अकेतवे) ज्ञान रहित इस देहादि संघात के निमित्त (केतुं) ज्ञान, चेतना प्रकट करता हुआ (अपेशसे) रूप रहित अपने लिये (पेशः) इस देह को रूपवान् (कृण्वन्) करता हुआ (उषद्भिः) संताप देने हारे कर्म विपाकों द्वारा पुनः (तम् अजायथाः) उत्पन्न होता है ।

---

१. रथो रंहतेर्वा गतिकर्मणः, स्थिरतेर्वा स्याद्विपरीतस्य, रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठति इति, रयतेर्वा, रसतेर्वा । (निघं० ९ । ११)

२. विपक्षसा—पक्ष परिग्रहे (भ्वादिः) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा -हे जीवो ! आत्मा अचेतन देह को चेतन और अरूप अपने आपको सरूप करता हुआ कर्मफलों से पुनः उत्पन्न होता है ।

इति चतुर्थः खण्डः ।

[१४७१] अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि। त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥१॥

[१४७२] स ईं रथो न भूरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त॥२॥

[१४७३] शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट्। आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥ ३ ॥ १३ ॥

ऋ० ९ । ८८ । १, २, ७ ॥

भा०—(१) हे इन्द्र ! आत्मन् ! परमात्मन् ! (अयं सोमः) यह सोम, शम दम आदि सम्पन्न योगी (तुभ्यं पवते) तेरी प्राप्ति के लिये यत्न करता है। (यं) जिसको (त्वं) तू (चकृषे) बनाता है और (त्वं ववृषे) तू ही सामर्थ्य देता है या वरण करता है उस (इन्दुम्) ऐश्वर्य और तप से युक्त (सोमम्) शम दम आदि साधन सम्पत्ति से युक्त पुरुष को (मदाय) आनन्दप्राप्ति, मोक्षलाभ और (युज्याय) अपने संग रखने अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार के लिये (त्वं) तू (अस्य पाहि) उसको विघ्नों से बचाता है ।

१४७२—'पृतनाषाळ्न यज्ञः' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

(कठोपनि० १। १२। २२)

(२) (सः इम्) वह सोमरूप योगी (वसूनि) इस में वास करने हारे (पुरूणि) इन्द्रियों को (रथः न) स्थिर, महारथी के समान (भूरि-षाट्) अति अधिक सहनशील विजेता होकर (महः सातये) तेज को प्राप्त करने के लिये (अयोजि) योग साधन में लग जाता है। (आत् ईम्) और अनन्तर (वने) अभिलाषा के योग्य (स्वः-सातौ) इस परम सुख की प्राप्ति के कार्य में (नहुष्याणि) मनुष्यों को प्राप्त होने योग्य (विश्वा) समस्त (ऊर्ध्वा) उत्कृष्ट (जाता) पदार्थ आपसे आप उसको (नवन्त) प्राप्त हो जाते हैं। यद्वा—(स भूरि-षाड् महः पुरूणि वसूनि सातये रथ इव अयोजि) जब वह अति सहनशील विशाल आत्मा वाला योगी बहुत विभूति, ऋद्धि, सिद्धि की प्राप्ति के लिये महारथी के समान योगसमाधि में लग जाता है। (आत् ईं विश्वा नहुष्याणि ऊर्ध्वा जाता नवन्त) तब ही समस्त मानुष उत्कृष्ट भोग्य ऐश्वर्य स्वतः उसके आगे आ झुकते हैं। इसका स्पष्टीकरण देखो। (छान्दोग्य उप० अ० ८। ख० १२)

(३) हे सोम! आत्मन्! आत्मयोगिन्! आप (शुष्मी) बलवान्, (मारुतं) प्राणों के (शर्धः न) प्राणबल के समान (पवस्व) इस देह को गति देते और (यथा) जिस प्रकार (दिव्या) दिव्यगुण युक्त (विड्) प्रजारूप प्राणेन्द्रिय गण (अनभिशस्ता) अनिन्दित और अखण्डित है उसी प्रकार आप भी अखण्डित और अनिन्दित हैं। आप (आपः न) जलों के समान (मक्षु) शीघ्रगामी, मनोवेग से इन्द्रिय प्रणालिकाओं में बहते हो, अतः आप (सहस्र आप्साः[1]) अनेकों रूप

१. अप्स इति रूपनाम (निघ० ३। ७। ६)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर (पृतनाषाड् न) युद्ध विजयी सेनापति के समान इस देहरूप वेदि में होने वाले यज्ञ में यजमानस्वरूप (यज्ञः[2]) आत्मा होकर आप (नः) हमारे लिये (सुमतिः) शुभ संकल्प युक्त (भव) रहो ।

[१४७४] त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥

[१४७५] स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः ।
आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ २ ॥

[१४७६] वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा ।
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ ३ ॥ १४ ॥ ऋ० ६ । १६ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२] पृ० २

(२) हे परमेश्वर ! आत्मन् ! (सः) वह आप (मन्द्राभिः) स्तुति के योग्य, हर्षजनक, उपादेय, प्रशंसनीय (जिह्वाभिः) जिह्वाओं, वाणियों से या आदान-प्रतिदान करनेहारी इन्द्रियों एवं पञ्चभूतमय शक्तियों से (महः) महान् होकर (अध्वरे) हिंसारहित व्यवहार एवं एक दूसरे की सत्ता नाश न करनेहारी व्यवस्था में (यज) इस ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थों को संगत करते और परस्पर मिलाते हो । और (देवान्)

---

२. यज्ञ इति आत्मनो महतो भूतनामधेयेषु परिपठितः "यज्ञ आत्मा भवति यदेनं तन्वते" (नि० परि० अ० २ । ११)

१४७६—१. जिह्वाभिर्ज्वालाभिरिति सायणः । काल्यादिभिरित्यपि क्वचित् क्वचित् । काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा । स्फुलिङ्गिनी विश्वरुचीति सप्त जिह्वाः अग्नेरुपनिषत्सु प्रसिद्धाः । लीलेत्यष्टमी क्वचित्पठ्यते । ताश्चाध्यात्मं चित्तरेव इन्द्रियवर्त्तिन्यो वृत्तयो भवन्ति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चभूतों, विद्वानों और इन्द्रियगण को (आवक्षि) आप अपनी शरण में लेकर उन्नति के मार्ग में लेजाते और (यक्षि च) संगत करते तथा उनको उनकी अभीष्ट वस्तु प्रदान करते हो।

(३) हे (अग्ने) विद्वन् ! और परमात्मन् ! हे (सुक्रतो) शुभ-ज्ञान और जगत्-रचन आदि नाना कर्मों से सम्पन्न ! हे (देव) प्रकाशक ! हे (वेधः) समस्त संसार के विधातः ! आप (यज्ञेषु) समस्त प्रकार के यज्ञों और आत्माओं में (अध्वनः) समस्त बड़े मार्गों (पथः च) और लघु मार्गों को भी (अञ्जसा) उत्तम रीति से (वेत्थ) जानने हारे हो, हमें भी उनका ज्ञान कराओ।

[१४७७] होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया। इगुर॰ ऋषिः
विदथानि प्रचोदयन् ॥ १ ॥

[१४७८] वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते। विप्रः
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ २ ॥

[१४७९] धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे। विप्रः
दक्षस्य पितरं तना ॥ ३ ॥ १५ ॥ ऋ० ३ । २७ । ७-९ ॥

भा०—(१) (अमर्त्यः) मरणरहित, अमर (देवः) सबका प्रकाशक परमात्मा (होता) सबको शक्ति देने हारा (विदथानि[1]) ज्ञान करने योग्य उत्तम कर्मों और आत्मतत्त्वों को (प्रचोदयन्) हृदय में प्रेरित करता हुआ (मायया[2]) विशेष ज्ञानशक्ति या बुद्धि से (पुरस्तात्) साक्षात् (एति) प्रत्यक्ष होता है।

१. विदथानि वेदितव्यानि इति सायणः ।

२. मायया, कर्मविषयाभिज्ञानेन इति सायणः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (वाजी) बलवान् और ज्ञानवान् पुरुष (वाजेषु) बल के कार्यों में (धीयते) नियुक्त किया जाता है और उसी प्रकार का ज्ञानवान् बलशाली पुरुष (अध्वरेषु) परस्पर की हिंसादि से रहित, व्यवस्थापन आदि कार्यों में (प्रणीयते) विशेष रूप से नियुक्त किया जाता है, क्योंकि (यज्ञस्य) दान, यज्ञ, तप, स्वाध्याय एवं संगतिकरण आदि सत्कार्यों को (साधनः) साधन करने हारा (विप्रः) ज्ञानवान्, विपश्चित् पुरुष होता है ।

(३) पूर्व मन्त्र में विप्र, वाजी आदि शब्द से कहा गया विद्वान् ही (धिया) अपनी धारणा, ज्ञानशक्ति और कर्म सामर्थ्य के कारण (वरेण्यः) सबसे वरण करने योग्य, सबसे श्रेष्ठ होकर (चक्रे) काम करे । वही (भूतानां) सब पदार्थों और प्राणियों को (गर्भं) अपने वश में (आ दधे) धारण करता है । और उसको (दक्षस्य) सर्वशक्तिमान् परमात्मा की (तना) उत्पादित प्रजा, उस (पितरं) अपने पालक को पिता के समान (आ दधे) धारण करती, जानती और मानती है ।

इति पञ्चमः खण्डः ।

---

२ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१४८०] आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् ।
३ १ २ ३ २
रसा दधीत वृषभम् ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१४८१] ते जानत स्वमोक्यांऽ३ सं वत्सासो न मातृभिः ।
३ १ २ ३ १ २
मिथो नसन्त जामिभिः ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१४८२] उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वत धरुणं दिवि ।
१ २ ३ २उ ३क २र
इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ ३ ॥ १८ ॥

ऋ० ८ । ७२ । १३-१५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) (सुते) उत्पन्न या उत्पादित अर्थात् माता पिता और आचार्य से शिक्षित पुत्र में अभिषेक योग्य राजा के समान (रोदस्योः) मा बाप के (अभि) आश्रित (श्रियं) सम्पत्-साधनों को (आ सिञ्चत) प्राप्त कराओ और (रसा) रसमय सारिष्ट पदार्थों में जिस प्रकार अग्नि को नीचे रखकर उनको परिपक्व किया जाता है उसी प्रकार सारयुक्त स्थलों में उस (वृषभं) सुखों के, वर्षक बलवान् पुरुष को आश्रयरूप से ही (आ दधीत) नियुक्त करो। अध्यात्म पक्ष में—(रोदस्योः अभिश्रियं सुने आ सिञ्चत) प्राण और अपान में आश्रित बल को साधित चित्त में धारण करो और (वृषभं रसा आ दधीत) अग्निस्वरूप आत्मा को आनन्द रस में प्राप्त कराओ।

सायण ने इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया है (सुतं श्रियं आसिञ्चत) गौ के दुग्ध में वह बकरी का गरम दूध डालो, जो (रोदस्योः अभिश्रियम्) खूब उफान खारहा हो और फिर मिले दूध में आंच दो। आश्चर्य !

(२) (वत्सासः) जिस प्रकार बछड़े (जामिभिः) अपनी २ पैदा करने हारी (मातृभिः) माताओं से (मिथः) परस्पर (नसन्त) मिल जाते हैं, उसी प्रकार वे पुत्रादि भी अपने बन्धुओं से स्नेहवश मिले रहते हैं और (स्वं) अपने (ओक्यं) एक ही प्रदेश में रहने वाले बन्धुवर्ग को (सं जानते) भली प्रकार जान लेते हैं और उनके साथ ही मिल जाते हैं। अध्यात्म में—(ते) वे प्राण प्रमातृरूप इन्द्रियों से इसी प्रकार मिल कर रहते हैं जैसे बछड़े अपनी उत्पादक माताओं से। और उन इन्द्रियों को वे दशों प्राण अपने स्थान के नित्यवासी जान कर उनसे एक हो रहते हैं।

(३) (स्रक्वेषु) सर्जन स्थानों में या इन्द्रिय प्रदेशों में या काली आदि ज्वालाओं में (बप्सतः) भक्षण करते हुए, ग्रहण या प्रलय करते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए उस अग्निरूप महान् आत्मा को विद्वान् पुरुष (दिवि) ज्ञान-प्रकाश में सूर्य के समान (धरुणं) उसको धारक बल या आश्रय रूप से (उप कृण्वते) स्वीकार करते हैं । उस (अग्निं) अग्निस्वरूप, पाप दहन करने हारे, ज्ञानवान् परमेश्वर को (इन्द्रे) इन्द्ररूप आत्मा में भी (नमः) बल और (स्वः) सुख और आनन्दरूप से (उप कृण्वते) उपासना करते हैं ।

सामाजिक पक्ष में—(स्रक्वेषु) आमोद प्रमोद स्थलों में विहार करते हुए उस नवयुवक 'रूप' अग्नि को विद्वान् उच्च प्रतिष्ठा देते हैं और तभी वह पालन पोषण के भार को अपने में धारण करके बल और पारिवारिक सुख को प्राप्त करता है ।

इस प्रकार इन मन्त्रों में सामाजिक एवं आध्यात्मिक परिवार का उत्तम वर्णन किया गया है ।

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१४८३] तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
३ १ २ ३ १र २र ३ ३ २ ३ २र ३ २ ३ १ २
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ १ ॥
३ १र २र ३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१४८४] वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२॥
२उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
[१४८५] त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सुमधु मधुना-
१ २
भि योधीः ॥ ३ ॥ १९ ॥ ऋ० १० । १२० । १-३ ॥

भा०—(१) (तत्) वह परम आत्मा (इत्) ही (भुवनेषु) इन समस्त लोकों में (ज्येष्ठं) सब से अधिक प्रशस्त, उत्कृष्ट, वर्णनीय (आस) है, (यतः) जिससे (त्वेष-नृम्णः) कान्ति, दीप्ति से युक्त बल-शाली (उग्रः) तेजस्वी, विशाल शक्तिशाली सूर्य और उसके समान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेजस्वी पुरुष (जज्ञे) उत्पन्न होता है । (सद्यः जज्ञानः) उत्पन्न होकर ही वह (शत्रून्) शत्रुओं और पापों को (नि रिणाति) दूर करता है (यं अनु) जिसको देखकर (विश्वे) समस्त (ऊमाः) जीव प्रजागण (मदन्ति) हर्षित होते हैं ।

(२) वह परमात्मा (शवसा) अपने महान् सामर्थ्य, बल से (वव्रृधानः) महान्, विक्रमशील, प्रतापी (भूरि-ओजाः) बड़ा ओजस्वी होकर (शत्रुः) विघ्नों का शातन करनेहारा (दासाय) विनाश करनेहारे पापी जन के लिये (भियसं) भीति, डर (दधाति) उत्पन्न करता है और (अव्यनत् च) स्थावर पदार्थ जो विशेष रूप से प्राण नहीं लेते और (व्यनत् च) चेतन प्राणी जो नाना प्रकार से या विशेष रूप से, विशेष साधनों से प्राण लेते हैं उन को (सस्नि) पवित्र करता है, निहलाता है अर्थात् उनमें भी स्वतः नाना गुणों द्वारा व्यापक होता और उनको शुद्ध पवित्र करता है। हे इन्द्र ! वे सब (प्र-भृताः) उत्तम रूप से तेरे द्वारा धारण, पालन पोषण किये गये स्थावर और जंगम सब पदार्थ (मदेषु) हर्ष में मग्न होकर (ते) तेरे आगे (नवन्त) झुकते और तेरी महिमा गाते हैं ।

(३) (त्वे) तुझमें (अपि) ही (विश्वे एते ऊमाः) समस्त ये भूत, प्राणीगण (यद्) जब (द्विः) दुगने और (त्रिः) तिगुने से (भवन्ति) होजाते हैं तब भी वे (क्रतुं) अपने उत्तम प्रज्ञान को (वृञ्जन्ति) तुझ पर ही व्यय कर देते हैं अर्थात् समस्त पृथिव्यादि भूत और सब प्राणियों के चित्त और सब यज्ञ क्रतु तुझ पर ही समाप्त होजाते हैं । हे इन्द्र ! (स्वादोः) आनन्द देने वाले प्रिय धनादि से भी (स्वादीयः) बहुत अधिक आनन्ददायक, प्रिय पदार्थ, पुत्र आदि को (स्वादुना) आनन्ददायी पति के प्रति पत्नी और पत्नी के प्रति पति के द्वारा (सृज) उत्पन्न कर । और (अदः) उस (सु मधु) अति आनन्ददायी सन्तान को भी (मधुना) उत्तम प्रिय पदार्थ पुत्रवधू एवं पौत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि से (अभि-योधीः) आनन्द प्रसन्न कर । जैसा ब्राह्मण ग्रन्थों में आया है "त्वयि इमानि सर्वाणि भूतानि मनांसि क्रतवोऽपि वृंजन्ति।" तुझ में ही समस्त भूत, सब मन और सब यज्ञ आदि समाप्त होजाते हैं। पुरुष ही स्त्रीरूप से भी रहता है क्योंकि विवाह के पश्चात् स्त्री भी उसका आधा अङ्ग होजाती है। श्रुति भी है "अर्धो वा एष यत् पत्नीति" (शत०) और पुत्र भी उस पुरुष का ही तीसरा रूप है जैसे वेद में—"आत्मा वै पुत्रनामासि" (शत०)। दो से तीन होजाते है जैसे— 'द्वौ द्वौ सन्तौ मिथुनौ प्रजायेते प्रजापत्या"। "पुत्रो ह स्वादु" पत्नी के प्रति पति और पति के प्रति पत्नी ही स्वादु है, जैसे—"मिथुनं वै स्वादु, प्रजाः स्वादु" इत्यादि (शत०)। अध्यात्म पक्ष में—स्वादु = देहादि संघात से प्राह्य सुखोपभोग। उससे भी अति आनन्ददायक स्वादीयः = ब्रह्मानन्दरस को स्वादुना = प्रिय रूप आत्मा से (सं सृज) संगत कर। (अदः सुमधु) अति मधुर इस अमृत आत्मा को (मधुना) उस परम अमृत, आत्मा या परमेश्वरदर्शन या मोक्ष से मिला, आनन्दित कर।

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ २र ३
[१४८६] त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत् सोममपिब-
१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
द् विष्णुना सुतं यथावशम्। स ईं ममाद महि कर्म कर्त्तवे
३ २ ३ १र २र २ २ ३ २ ३ १ २र ३ १र २र
महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥१॥

३ २ • ३ १र २र ३ १र २र ३ २ ३ २
[१४८७] साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो
२क २र ३ २उ१ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ उ ३
वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः। दाता राधः स्तुवते काम्यं
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र
वसु प्रचेतन सैनं सश्चद् देवो देवं सत्य इन्दुः सत्य-
२र
मिन्द्रम् ॥ २ ॥

१४८७—'यथावशत्' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१४८८] अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे । अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय सैनं सश्चद् देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ ३ ॥ २० ॥ ऋ० २ । २२ । १, ३, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [४५७] पृ० २२९ ।

(२) हे इन्द्र ! हे (प्रचेतन) प्रकृष्ट ज्ञानवन् ! (क्रतुना) वेदमय ज्ञान के (साकं) साथ (जातः) वर्त्तमान रह कर आप (ओजसा) अपने (साकम्) बल के साथ से (ववक्षिथ) इस ब्रह्माण्डमय जगत् का वहन करते हो, इसको धारण करते हो । अतएव (वार्यैः) नाना प्रकार की शक्तियों के (साकं) साथ (वृद्धः) समस्त संसार में व्यापक महान् (मृधः) सब शत्रुओं को (सासहिः) वश करने हारे, (विचर्षणिः) सब संसार के द्रष्टा, (स्तुवते) स्तुति करने हारे भक्तजन के कामना करने योग्य (राधः) सर्व कार्य साधक (वसु) धन के (दाता) देने हारे हैं । (सः) वह (देवः) प्रकाशरूप (सत्यः) सत्यस्वरूप (इन्दुः) जीवात्मा, योगी (सत्यं) सत्यस्वरूप (देवं) सर्वप्रकाशक (एनं) इस (इन्द्रं) ऐश्वर्यशील परमात्मा को (सश्चत्) प्राप्त करे ।

(३) (अध) इस प्रकार के ब्रह्मदर्शन के अन्तर (त्विषीमान्) कान्तिमान्, इन्द्र (ओजसा) बल से, (क्रिविम्) जीव के बन्धनरूप पांचों अन्नमय आदि कोशों को (युधा) विघ्ननाशक प्रयत्न से (अभि अभवत्) तोड़ देता है । (रोदसी) द्यौ और पृथिवी और प्राण और अपान दोनों को (अपृणद्) व्याप्त करता है । तब (अस्य मज्मना) इसके ही बल से (प्र वावृधे) वह जीव भी शक्तिशाली और महान् हो जाता है । वह प्रभु (अन्यं) जीव को अपने (जठरे) गर्भ में, शरण

१४८८—क्रिवि इति । तिसृषु ऋक्षु "सत्यामिन्द्रं सत्यामिन्दुः" इति विपर्यस्तः, ऋ०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में (अधत्त) धर लेता है (ईम्) और इसको (प्र अरिच्यत) विशेष रूप से शक्तिशाली बनाता है और (प्रचेतय) प्रकृष्ट रूप से ज्ञानवान् कर देता है। (सः) वह (देवः) दिव्य ज्ञानवान् (इन्दुः) योगी जीव (सत्यः) सत्य संकल्प, सत्यरूप होकर (एनं) उस (देवं) देव (सत्यं) सत्यस्वरूप (इन्द्रं) परमेश्वर को (सश्चत) प्राप्त होता है।

इति षष्ठः खण्डः ।

इति षष्ठस्य तृतीयोऽर्धः । षष्ठश्च प्रपाठकः समाप्तः ॥

इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ सप्तमः प्रपाठकः (प्रथमोऽर्धः)

ऋषिः—१, ६, ६ प्रियमेध आङ्गिरसः । २ नृमेधपुरुमेधावाङ्गिरसौ । ३, ७ त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः पौरुकुत्स्यस्त्रसदस्युः । ४ शुनःशेप आजीगर्तिः । ५ वत्सः काण्वः । ६ अग्निस्तापसः । ८ विश्वमना वैयश्वः । १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । सोभरिः काण्वः । १२ शंयुर्बार्हस्पत्यः । १२ शतं वैखानसाः । १३ वसूयव आत्रेयाः । १४ गोतमो राहूगणः । १५ केतुराग्नेयः । १६ विरूप आंगिरसः ॥ देवता—१, २, ५, ८, ९ इन्द्रः । ३, ७ पवमानः सोमः । ४, १०—११, १३—१६ अग्निः । ६ विश्वेदेवाः । छन्दः—१, ४, ५, १२—१६ गायत्री । २, १० प्रागाथं बार्हतम् । ३, ७, ११ बृहती । ६ अनुष्टुप् । ८ उष्णिक् । ९ निचृदुष्णिक् ॥

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१४८९] अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
३ २ ३ २ ३ १ २
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २
[१४९०] आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
२ ३ २ ३ १ २
यत्राभि सं नवामहे ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१४९१] इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥ १ ॥

ऋ० ८ । ६९ । ४, ५, ६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [१६८] पृ० ९२ ॥

(२) (बर्हिषि) धान्य या कुश घास या दर्भ के समान उत्पन्न होकर पुनः ज्ञानाग्नि या योग समाधि द्वारा काटने योग्य निरन्तर वृद्धिशील इस देहबन्धन में (हरयः) गतिशील (अरुषीः) रक्त वर्ण की धारायें इस भूलोक में जल धाराओं के समान (ससृग्निरे) नदियों के समान गति कर रही हैं, और उस पर (अधि) अधिकार कर रही हैं (यत्र) जिस देह में रह कर हम इन्द्रियगण तथा विद्वान्जन (अभि संनवामहे) उस आत्मरूप इन्द्र की साक्षात् महिमा का अनुभव करते और गान करते हैं अर्थात् जिस देह में हम उस 'इन्द्र' के साक्षात् अधीन रहते हैं ।

ईश्वर पक्ष में–बर्हिः = यह संसार, अरुषा = कान्तिमान्, हरयः = सूर्यसदृश गतिमान् पिण्ड ।

(३) (गावः) ये सब गतिमान् रक्तधारायें तथा इन्द्रियगण (वज्रिणे) शक्तिशाली, (इन्द्राय) इस इन्द्ररूप आत्मा के लिये (आशिरम्) उसके जीवन के आश्रयरूप (मधु) हर्ष कर उस शुक्र या ज्ञान को (दुदुह्रे) उत्पन्न करती हैं, (यत्) जिसको वह इन्द्र (उप-ह्वरे) भीतरी हृदय कोश में (सीम्) सब ओर से (विदत्) प्राप्त करता है ।

ईश्वर पक्ष में—ये गतिमान् तेजस्वी पिण्ड (आशिरं) समस्त ब्रह्माण्ड के आश्रयरूप (मधु) शक्ति को उत्पन्न करते हैं जिसको वह इस ब्रह्माण्ड में धारण किये हैं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१४६२] आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥१॥

[१४६३] त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥२॥२

ऋ० ८ । ९० । १–२ ॥

भा०—(१) हे विद्वान् पुरुषो ! (नः) हमारे (हव्यं) स्मरण करने, स्तुति करने और पुकारने, आश्रय करने योग्य (इन्द्रम्) उस परमेश्वर को (विश्वासु समत्सु) समस्त आनन्द और उत्सवों में तथा परस्पर मेल मिलाप करने के अवसरों पर (आ भूषत) नाना वचनालंकारों से सुभूषित करो । हे (वृत्रहन्) विघ्नों के निवारक ! हे (परमज्या) सबसे उत्कृष्ट विजयशील, हे (ऋचीषम) ऋचाओं, स्तुतियों द्वारा मनन करने योग्य परमात्मन् ! आप (नः) हमारे (सवनानि) यज्ञों और (ब्रह्माणि) वेद-स्वाध्यायों एवं व्रतादि के अवसरों पर (उप) सदा समीप हृदय देश में विराजें । देखो अथि० सं० [२६९] पृ० १३७ ।

(२) हे परमेश्वर ! (त्वं) आप (राधसां) समस्त पदार्थों और ज्ञानों के (प्रथमः) सबसे पहले (दाता) देने हारे (असि) हो और (सत्यः) सत्यस्वरूप सच्चे, (ईशानकृत्) सामर्थ्य और प्रभुत्व के देने हारे (असि) हो । (शवसः) बलस्वरूप (पुत्रस्य) पुरुषों की विघ्नों से रक्षा करने हारे, (महः) महान् (तुविद्युम्नस्य) बहुत धनैश्वर्य सम्पन्न आपके (युज्या) सत्संगति को समाधि द्वारा हम (आ वृणीमहे) प्राप्त करें ।

[१४६४] प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद् दिव आ निरधुक्षत । इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २
[१४९५] आदीं के चित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या
३ १र २र ३ १ २
अभ्यनूषत् । दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते ॥ २ ॥

२ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१४९६] अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि-
३ १ २ २ २उ २ १ २ ३ १र २र
मज्मना । यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि ॥ ३ ॥ ३ ॥

ऋ० ९ । ११० । ८, ६, ९ ।

भा०—(१) विद्वान् लोग (यत्) जब (प्रत्नं) सनातन अति उत्तम (पूर्व्यं) पूर्व पुरुषों से सेवित, अति पुरातन, (उक्थ्यं) अति प्रशंसनीय, (पीयूषं) अमृतस्वरूप ब्रह्मानन्द रस को (महः) बड़े (गाहात्) अति गम्भीर (दिवः) द्यौलोक, मूर्धा स्थल या सहस्रदल-कमल से (आ निरधुक्षत) साक्षात्कार द्वारा प्राप्त करते हैं तब वे (जायमानं) प्रकट होते हुए, साक्षात् ज्ञान का विषय होते हुए (इन्द्रं अभि) आत्मा और परमात्मा की साक्षात् (सम् अस्वरन्) उत्तम रीति से स्तुति करते हैं ।

(२) जब (दिवः) प्रकाशस्वरूप आत्मा (वारं) आवरण को, घेरने वाले अन्धकार को (सविता न) सूर्य के समान समस्त जगत् का प्रेरक परमात्मा (वि ऊर्णुते) खोलता या हटा देता है (आत्) तब ही (केचित् दिव्या) प्रकाश में वर्त्तमान होकर भी कुछ एक (वसु-रुचः) आत्मा के साधक या इन्द्रियादि उपकरणों के चमत्कारों को प्रेम करने हारे साधक (आप्यं) अपने प्राप्त करने योग्य बन्धुरूप (ईम्) इस प्रभु को या समाधि से उत्पन्न अपने को ही (पश्यमानासः) देखते हुए उसकी (अभि अनूषत) स्तुति किया करते हैं ।

१४९५—'दिवः पीयूषं', १४९६—'वारं न देवः', १४९७—'विश्वा भुवनेषु वितिष्ठसे' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) (यूथे न) जिस प्रकार गौओं के गोल में (वृषभः) सांड खड़ा रहता और शोभा देता है उसी प्रकार (यद्) जब आप हे (पवमान) सबके प्रेरक ! प्रभो ! (इमे) इन (रोदसी) द्यौ और पृथिवी, प्राण और अपान दोनों को और (इमा) इन (विश्वा) समस्त (भुवना अभि) लोकों या इन्द्रियमय शेष प्राणों के (मज्मना) बलपूर्वक (नि स्थ) भीतर व्याप्त होते हो तब (विराजसि) आप विशेष रूप से शोभा को प्राप्त होते हो ।

[१४९७] इममू षुत्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ १ ॥

[१४९८] विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ २ ॥

[१४९९] आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ३ ॥ ४ ॥

ऋ० १ । २७ । ४, ६, ५ ।

भा०—(१) व्याख्या देखो अधि० सं० [२८] पृ० १२ ।

(२) हे (चित्र-भानो) उपास्य ! कान्तिसम्पन्न ! विचित्र रश्मियों से युक्त ! नाना प्रकार के सूर्यों के स्वामिन् ! प्रभो ! जिस प्रकार (सिन्धोः) विशाल नदी के (उपाके) समीप से (ऊर्मा) छोटी २ नहरें काट ली जाती हैं, उसी प्रकार आप अपने विशाल विभूतिप्रवाह में से (दाशुषे) अपने आत्मसमर्पण करने हारे भक्त के प्रति (आ विभक्तासि) विविध प्रकार से नाना विभूतियां बांट देते हैं और (सद्यः) शीघ्र ही (क्षरसि) अभिमत आनन्दरस बहा देते हैं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) हे अग्ने! (परमेषु) उत्कृष्ट (वाजेषु) ज्ञान और बलयुक्त पदार्थों में से (नः आ भज) हमें प्राप्त करा और (मध्यमेषु) मध्य कोटि के पदार्थों में से भी हमें प्राप्त करा और (अन्तमस्य) समीपतम (वस्वः) वास योग्य पदार्थों को भी (शिक्ष) प्रदान कर।

३ २उ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१५००] अहमिद्धि पितुः परि मेधामृतस्य जग्रह।
३ १र २र
अहं सूर्य इवाजनि ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१५०१] अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत्।
२उ ३ २ ३२ ३२
येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥ २ ॥

१र २र ३ २ ३ १र २र २ १ ३ २
[१५०२] ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुरृषयो ये च तुष्टुवुः।
१र २र ३ १ २
ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥ ५ ॥ ऋ० ८ । ६ । १०-१२।

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल संख्या [१५२] पृ० ८५।

(२) ऋषि का आत्मरूप से दर्शन है। (अहम्) मैं जीव (कण्ववत्) मेधावी विद्वान् पुरुष के समान (प्रत्नेन) अपने पूर्व के, सनातन (जन्मना) जन्म अर्थात् अपने स्वाभाविक रूप से ही (गिरः) नाना वेदस्तुति वाणियों को (शुम्भामि) प्रकट करता हूँ। (येन) जिससे (इन्द्रः) मेरा आत्मा (शुष्मं) आत्मिक बल को (इत्) ही (दधे) धारण करता है।

(३) हे आत्मन्! (ये) जो अज्ञानी लोग (त्वां) तुझको (न) नहीं (तुष्टुवुः) स्तुति करते (ये च) और जो (ऋषयः) आत्मसाक्षात्कार करने वाले मन्त्रद्रष्टा ऋषिगण तथा गुरु शिष्य तथा ज्ञानी, जिज्ञासु जन (त्वां तुष्टुवुः) तेरा यथार्थ वर्णन करते हैं उनसे (सु-स्तुतः)

१५०१—'जग्रभ'। १५०२—प्रत्नेन मन्मना इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम रूप से स्तुतियों द्वारा अलंकृत होकर (मम इद्) मेरी ही स्तुतियों द्वारा मुझे (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त करा ।

अर्थात् प्रत्येक जीव अपनी ही की हुई उपासना और प्रार्थना से बलवान् होता है । दूसरे की प्रार्थनोपासना उसके लिये निष्फल है ।

इति प्रथमः खण्डः ।

—:०:—

[१५०३] अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।
ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥ १ ॥

ऋग्वेदे नास्ति ।

[१५०४] प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।
तनये तोके अस्मदा सम्यङ् वाजैः परीवृतः ॥ २ ॥

ऋग्वेदे नास्ति ।

[१५०५] त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥ ३ ॥ ६ ॥

ऋ० १० । १४१ । ६ ॥

भा०—(१) हे (सहस्कृत) बलपूर्वक, बड़ी तपस्या, ब्रह्मचर्य और समाधि बल से साक्षात्कृत (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! परमात्मन् ! तू (विश्वेभिः) अन्य समस्त (अग्निभिः) अग्निरूप सूर्यादि पदार्थों और ज्ञानी योगियों द्वारा (ब्रह्म) वेद ज्ञान का (जोषि) सब को सेवन कराता है । इसलिये हे देव ! (ये) जो विद्वान् ज्ञानी पुरुष (देवत्रा)

१५०३—ऋग्वेद (३ । २४ । ४) समानाचरसान्निवेशवतीयमृग् उपलभ्यते ।
"अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ॥"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंद्रिय गुणयुक्त, विद्वानों और जीवनयुक्त प्राणों के भीतर और (ये आयुषु) जो कर्मपरायण ज्ञानवान् मनुष्यों के भीतर हैं (तेभिः) उन द्वारा (नः) हमें (गिरः) वेदवाणियों का (महय) उपदेश प्रदान कर ।

(२) (यस्य) जिस (वाजिनः) ज्ञान और बल से सम्पन्न परमेश्वर की (विश्वेभिः) समस्त (अग्निभिः) अग्नि के समान तेजस्वी सूर्य आदि लोकों तथा विद्वानों से (प्र) प्रतिष्ठा है (सः अग्निः) वह ही ज्ञानवान्, सर्व प्रकाशक होने से परम अग्नि है । और वही (सम्यङ्) उत्तम रीति से सर्वत्र पूजनीय होकर (वाजैः) ज्ञान और कर्म सामर्थ्यों और ऐश्वर्यों से (परिवृतः) घिरा, युक्त हुआ (अस्मत्) हमारे (तनये) पुत्र और (तोके) पौत्रों में भी (आ) पूजा को प्राप्त हो ।

(३) हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! तु अन्य (अग्निभिः) विद्वान्, तेजस्वी सूर्यादि लोकों और पुरुषों द्वारा (नः) हमारे (ब्रह्म) वेदज्ञान और (यज्ञं च) यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों और जीवन की (वर्धय) वृद्धि कर और (नः) हमें (देव-तातये) विद्वानों के प्रति दान, मान, सत्कार आदि पुण्य कार्य करने और (रायः दानाय) धन, ऐश्वर्य आदि पदार्थ दान करने के लिये (चोदय) प्रेरणा कर ।

[१५०६] त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः । स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ १ ॥

[१५०७] अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कञ्चिज्जनपानमक्षितम् । शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ २ ॥

१५०६—१. “ अमृत मर्त्येभ्यो ऋतस्य ” इति पाठभेदः ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१५०८] अजीजनो अमृतं मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः । सदा सरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ३ ॥ ७ ॥
ऋ० ९ । ११० । ७, ५, ४ ॥

भा०—(१) हे (सोम) सब के प्रेरक परमात्मन् ! (प्रथमाः) उत्कृष्ट, प्रथम श्रेणी के (वृक्त-बर्हिषः) देहबन्धन को काटने हारे, मुक्त पुरुष वे हैं जो (महे) बड़े (वाजाय) ज्ञानस्वरूप (श्रवसे) यशस्व-रूप महामहिम तुझे प्राप्त करने के लिये (धियं) अपनी धारणावती बुद्धि, चित्तवृत्ति को (दधुः) स्थापित या स्थिर करते हैं । हे (वीर) सर्वशक्तिमन् ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें भी (वीर्याय) बल, सामर्थ्य, शक्ति प्राप्त करने के लिये (चोदय) प्रेरित कर, मार्ग दर्शा ।

(२) जिस प्रकार कोई बुद्धिमान् पुरुष (कश्चित्) किसी (अक्षितम्) अक्षय (जनपानम्) मनुष्यों के जलपान-गृह को (भरमाणः न) पूर्ण करने की चेष्टा करता हुआ (गभस्त्योः) बाहुओं की (शर्याभिः) अंगुलियों से (उत्सं न) जल के निरन्तर निकलते स्रोत को काट लेता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! आप अपने (श्रवसा) ज्ञान-बल से अक्षय (जन-पानं) समस्त जनों को जलभण्डार के समान आनन्द-रस-सागर को (भरमाणः) पूर्ण करते हुए, मेघ को वायु के समान (उत्सं) मूल निकास रूप ब्रह्म तत्व को (श्रवसा) गुरूपदेश, ज्ञान, योगाभ्यास से (ततर्दिथ) उद्भेद कर देते हो, तब उसे अध्यात्म-रस प्राप्त होने लगता है ।

(३) हे (सोम) विद्वन् ! (मर्त्याय) मरणधर्मा इस जीव के लिये आप (अमृतं) मोक्षस्वरूप, अविनाशी (कम्) सुख को (अजीजनः) उत्पन्न करते हो और (अमृतस्य) अविनाशी (चारुणः) प्राप्त करने योग्य, उत्तम (ऋतस्य) सत्यज्ञानरूप वेद के उपदेश किये हुए (धर्मन्) धर्ममार्ग में (वाजं) ज्ञान और बल को (सनिष्यदत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदान करते हुए (सदा) नित्य (अच्छ) भली प्रकार (सरः) प्रकट होते हो ।

२ ३ १ २ ३ १ २ २ १र २र
[१५०९] एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
१र २र ३ २
प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥ १ ॥
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१५१०] उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥ २ ॥
२ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१५११] न ह्यांऽ३ऽग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
न की राया नैवथा न भन्दना ॥ ३ ॥ ८ ॥

ऋ० ८ । २४ । १३—१५ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० [३८६] पृ० २०० ।

(२) (राधः) आराधना योग्य ज्ञान या अभिलषित ऐश्वर्य को (पृञ्चन्तं) प्रदान करते हुए, उद्देश्य तक प्राप्त कराते हुए (हरीणां पतिम्) हरणशील इन्द्रियं आदि सूर्यों और विद्वानों के पालक परम आत्मा के प्रति (उप अब्रवम् उ) अति समीप होकर मैं यह कह रहा हूँ कि (स्तुवतः) तेरा यथार्थस्वरूप वर्णन करने हारे (अश्व्यस्य) गतिशील, कर्मफल के भोक्ता, जीव आत्मा की प्रार्थना को तू (नूनं) निश्चय से (श्रुधि) श्रवण करता है ।

(३) (अङ्ग) हे परमेश्वर ! (त्वत्) तुझ से अधिक (वीरतरः) सामर्थ्यवान् शक्तिमान् कोई (न हि) नहीं है । (न च) और न (पुरा) पूर्व कल्पों में भी (जज्ञे) उत्पन्न हुआ । और (नकिः) न कोई (राया) ऐश्वर्य विभूति में तुझ से अधिक है और न हुआ, न होगा और (न

१५१०—२. 'उपो हरीणां पतिं दक्षं' स्तुवतो अश्व्यस्य' ३. 'नह्यंग इति ऋ०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवथा) न तुझ से अधिक तेरे जैसा सर्वव्यापक सर्वरक्षक दूसरा है, न हुआ और न होगा, (न मन्दना) न तुझ से अधिक कोई कल्याणकारी प्रशंसा और स्तुति का पात्र ही है, और न हुआ है, न होगा ।

[१५१२] नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥ १ ॥ ९ ॥

ऋ० ८ । ६९ । २ ॥

भा०—(१) (वः) आप लोग (योयुवतीनां) कर्म का आदेश करने हारी ऋचाओं के (नदं) उपदेश करने हारे और (ओदतीनां) अध्यात्म ज्ञान का उपदेश करने हारी वेदवाणियों के (नदं) उपदेष्टा और (अघ्न्यानां) कभी घात न होने हारी, अविनाशी, नित्य (धेनूनां) ज्ञानरस के पिलाने हारी शक्तियों और वेदवाणियों के (पतिं) पालक प्रभु को (इषुध्यसि [१]) आश्रय करो और उसी से इष्ट फल प्राप्त कराने की याचना करो ।

इति द्वितीयः खण्डः ।

—:o:—

[१५१३] देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१॥

[१५१४] तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥२॥१०॥

ऋ० ७ । १६ । ११-१२ ॥

१, इषुध्यतिर्याञ्चाकर्मा । (निघ० ३ । १९ ।)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५५] पृ० २७ ।

(२) जो (अग्निः) ज्ञानवान् आचार्य, परमेश्वर (दाशुषे) दानशील, आत्मसमर्पक (विधते) परिचर्या करते हुए, शिष्य के समान उपासक (जन) को (सुवीर्यम्) उत्तम सामर्थ्ययुक्त (रत्नं) रमणयोग्य, ज्ञान और ऐश्वर्य को (दधाति) धारण कराता है (तं) उस (प्रचेतसे) उत्तम ज्ञानवान् परम पुरुष को (देवाः) विद्वान् पुरुष (अध्वरस्य) हिंसारहित ज्ञानयज्ञ का (होतारं) सम्पादक और (वह्निम्) कार्यनिर्वाहक (अकृण्वन) नियत करते, जानते और मानते हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१५१५] अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।
२ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ १ २
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥१॥

२ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २
[१५१६] यस्माद् रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत ॥ २॥

१र २र ३ २
[१५१७] प्र दैवोदासो अग्नि० ॥ ३ ॥ ११ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखिये अविकल सं० [४७] पृ० २१ ।

(२) (चर्कृत्यानि) समस्त जगत् के अनेकानेक कर्तव्य कर्म (कृण्वतः) करने हारे (यस्मात्) जिससे (कृष्टयः) मनुष्य (रेजन्त) कांपते हैं, भय अनुभव करते हैं, (मेध-सातौ) ज्ञानबल और मेधा को प्राप्त करने के लिये (सहस्र-सां इव) सहस्रों का दान देने हारे के तुल्य उस (अग्निम् धीभिः) तेजस्वी परमेश्वर को अपनी ध्यान-धारणा वाली बुद्धियों और कर्मों स्तुतियों, व वाणियों से (त्मना) अपने आत्मा द्वारा (नमस्यत) उपासना करो ।

१५१५—३, प्रतीकमात्रमिदम् । क्वचित्पूर्णाऽपि ऋक् पठ्यते ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) व्याख्या देखो अविकल सं० [५१] पृ० २३ ।

[१५१८] अग्न आयूँषि पवसे० ॥ १ ॥

[१५१९] अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।

तमीमहे महागयम् ॥ २ ॥

[१५२०] अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।

दधद् रयिं मयि पोषम् ॥ ३ ॥ १२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [६८७] पृ० ३२१ ।

(२) (अग्निः) ज्ञानवान्, प्रकाशस्वरूप परमात्मा (ऋषिः) स्वतः सब मन्त्रों का द्रष्टा, प्रकाशक, सर्वव्यापक और समस्त संसार का द्रष्टा है, वही (पवमानः) सबका पवित्रकारक ज्योतिष्मान् और सबका प्रेरक होने से (पाञ्चजन्यः) पांचों जन—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद, या देव, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प और पितर या ५ इन्द्रियों को समानरूप से हितकारी (पुरोहितः) समस्त कार्यों के पूर्व, हृदय में और समस्त विश्व सृष्टि के पूर्व जगत् में साक्षी रूप से स्थित है, (तं) उस (महागयं) महान् प्राणों के प्राण, अथवा बड़े २ देवादि से भी स्तुति किये गये, महान्, ज्ञानवान्, परम उपदेष्टा, विशाल कीर्ति वाले परमात्मा से हम (ईमहे) याचना करें ।

(३) हे (अग्ने) ज्ञान प्रकाशस्वरूप ! (स्वपाः) शोभन प्रज्ञा और कर्म से सम्पन्न परमात्मन् ! आप (अस्मे) हमें (सु-वीर्यम्) उत्तम बल और ज्ञान (वर्चः) ज्ञानमय तेज (पवस्व) प्राप्त कराओ और (मयि) मुझ में (रयिम्) प्राण, बल और (पोषं) पुष्टि (दधद्) धारण कराओ ।

१५१८—प्रतीकमात्रम् । क्वचित् पूर्णापि ऋक् पठ्यते ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१५२१] अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥

[१५२२] तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥

[१५२३] वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि ।
अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥ १२ ॥ ऋ० ५ । २६ । १-३ ॥

भा०—(१) हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (पावक) सबको पवित्र करने हारे ! हे (देव) सब के प्रकाशक ! और स्वयंप्रकाश, सर्वसुख-दाता परमेश्वर ! (रोचिषा) अपनी दीप्तिस्वरूप (मन्द्रया) आनन्द-दायक (जिह्वया) दान प्रतिदान करने की शक्ति से (देवान्) दिव्य पदार्थ, जल आदि पंचभूतों को और ज्ञानमय दीप्ति से विद्वानों को और आकर्षण से समस्त ब्रह्माण्ड के सूर्यादि लोकों को (आ वक्षि) आवहन करते, उनको धारण करते और (यक्षि च) संगत करते और व्यवस्थित रखते हो।

(२) हे (चित्र-भानो) नाना विध कान्तियुक्त परमात्मन् ! हे (घृतस्नो) समस्त प्रकाशमान पदार्थों के प्रेरक ! (तं) उस महान् आत्मा (स्वर्दृशं) सबके द्रष्टा, या स्वः अर्थात् प्रकाशमय और सुखकारक चक्षु से सम्पन्न या मोक्षमार्ग को दर्शाने हारे (त्वा) आपसे (ईमहे) प्रार्थना करते हैं कि (देवान्) हमारे दिव्य गुणयुक्त इन्द्रियों को और उस प्रकार ज्ञान कराने हारे विद्वान् पुरुषों और उपकारक दिव्य पदार्थों को (वीतये) उत्तम ज्ञान, तेज, और सुख प्राप्ति के लिये (आ वह) प्राप्त करोओ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) हे (कवे) समस्त संसार के पदार्थों के मर्म तक को देखने हारे अन्तर्यामिन्! (अग्ने) प्रकाशस्वरूप! (वीति-होत्रं) यज्ञों में व्यापक (द्युमन्तं) प्रकाशमान (बृहन्तं त्वा) सब से महान् आपको ही हम (अध्वरे) हिंसा रहित ज्ञान और कर्ममय यज्ञ में (समिधीमहि) प्रदीप्त करते हैं।

इति तृतीयः खण्डः।

---

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१५२४] अवा नो अग्ने ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि।
१ २ ३ १ २
विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१५२५] आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्।
१ २ ३ २ ३ १ २
विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१५२६] आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम्।
३ १ २ ३ १ २
मार्डीकं धेहि जीवसे ॥३॥ १४ ॥ ऋ० १ । ७९ । ७–९ ॥

भा०—(१) हे (अग्ने) परमात्मन्! हे (वन्द्य) वन्दना करने योग्य परमात्मन्! आप (गायत्रस्य) प्राणों के प्राण, रक्षण, पालन करने के साधन शरीर में, (प्र-भर्मणि) उत्तम रीति से भरण-पोषण करने के कार्य में (ऊतिभिः) अनेक रक्षा साधनों से (नः) हमारी (विश्वासु) समस्त (धीषु) कार्यों से (अव) रक्षा करें।

१५२५—पृतनाशब्दस्य पृदादेशः। पद्दन्नो० इति [पा० ६।१।६३] सूत्रे मांसपृत्स्नूनामुपसंख्यानमिति वार्तिकम्। पृतनेति मनुष्यनाम [नि० २।३] संग्रामनाम च [नि० २।१७]

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! आप (नः) हमारे लिये (वरेण्यं) सब से श्रेष्ठ (सत्रासहं) सब विपत्तियों को दूर करने हारे (रयिं) बल और अन्न (आ भर) प्राप्त करावें जो (विश्वासु) सब (पृत्सु) मनुष्यों में या संग्रामों में (दुस्तरं) दुस्तर अर्थात् जिसका कोई मुकाबला या विजय न कर सके और धन ऐसा हो जिसे कोई समाप्त न कर सके।

(३) हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! आप (नः) हमें (जीवसे) जीवन के निमित्त (विश्व-आयु-पोषसं) समस्त मनुष्यों के पालन पोषण में समर्थ (मार्डीकं) सुख, आरोग्य करने हारे (सु-चेतुना) उत्तम ज्ञान सहित (रयिं) अन्न और प्राणबल (धेहि) दें।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१५२७] अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु ।
१ २ ३ १ २
तेन जेष्म धनंधनम् ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
[१५२८] यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या ।
१ २ ३ १ २
तां नो हिन्व मघत्तये ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[१५२९] आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ २
अङ्धि खं वर्त्तया पविम् ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
[१५३०] अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि ।
२ ३ २ ३ १ २
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥ ४ ॥

१५२९—खं वर्त्तया पविम् इति ऋ० । 'संवर्त्तया' इति अजमेरमुद्रितः प्रामादिकः पाठः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१५३१] अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् ।
बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥ ५ ॥ १५ ॥

ऋ० १० । १५६ । १–५ ॥

भा०—(१) (नः) हमारी (धियः) बुद्धियां, कर्म और स्तुतियां (अग्निं) ज्ञानवान् पुरुष, या आत्मा या परमात्मा को (वाजिषु) संग्रामों में (आशुं ससिम् इव) शीघ्रगामी अश्व के समान (हिन्वन्तु) प्रेरणा करें (तेन) उससे हम (धनं-धनं) बहुत बहुत धन (जेष्म) विजय करें, प्राप्त करें ।

(२) हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप, प्रभो ! तेजस्विन् ! (यया) जिस (तव) तेरी (ऊत्या) रक्षा ज्ञान और (सेनया) सेना से (गाः) वाणियों, रश्मियों और गौओं, भूमियों को (आकरामहे) साक्षात् प्राप्त करें, विजय करें (तां) उस अपनी शक्ति को (नः) हमें (मघत्तये) धन ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (हिन्व) प्रेरित कर ।

(३) हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू हमारे पास (पृथु) खूब विस्तृत (गोमन्तं) गौओं और (अश्विनं) अश्वों से युक्त तथा ज्ञान-इन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से सम्पन्न (स्थूरं) स्थिर (रयिं) प्राण और प्राणयुक्त देह सम्पन्न और धन को (आ भर) प्राप्त करा । (खं[3]) सुख को (अंविध) हमारे लिये प्रकाशित कर और (पविम्[2]) पापनाशक पावकरूप यज्ञ, ज्ञानवज्र या ज्ञानप्रवर्त्तक वाणी को (वर्त्तय) उपदेश कर, उसका प्रयोग कर ।

'खं'–यदेव खं तदेव कं यदेव कं तदेव खम् । छान्दोग्य उप० पविरिति वाग्वज्रयज्ञादिनामसु पठितः ।

(४) हे (अग्ने) परमात्मन् ! आप (नक्षत्रम्) सदा गतिशील, या कभी अपने मार्ग से च्युत न होने वाले, नक्षत्रस्वरूप (अजरम्) कभी क्षीण न होने वाले शक्ति के अमित भण्डार (सूर्यं) सूर्य को (दिवि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्यौलोक में (आ रोहयः) स्थापित करते हैं कि वह (जनेभ्यः) सब उत्पन्न होने हारे लोकों और प्राणियों को (ज्योतिः) प्रकाश (दधत्) प्रदान करे ।

(५) अग्ने परमात्मन् (विशां) समस्त प्राणियों को आप (केतुः) ज्ञान देने हारे, (प्रेष्ठः) सब से अधिक प्रिय, और सब से (श्रेष्ठः) उत्तम होकर (उपस्थसत्) सब के समीपतम हृदयदेश में विराजमान (असि) हो । आप ही (स्तोत्रे) स्तुति करने हारे विद्वान् पुरुष को (योध) ज्ञान देते हैं और आप ही (वयः) अन्न और जीवन दोनों को (दधत्) धारण कराते हैं ।

[१५३२] अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥ १ ॥

[१५३३] ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वःपतिः ।
स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ २ ॥

[१५३४] उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
तव ज्योतींष्यर्चयः ॥ ३ ॥ १६ ॥

ऋ० ८ । ४४ । १६, १८, १७ ॥

भा०—(१) (अयम्) यह साक्षात् (अग्निः) सब को आगे ले जाने वाला, सब का ज्ञानदाता ज्ञानस्वरूप, प्रकाशस्वरूप, परमात्मा (मूर्धा) सब का मूर्धस्थान, सब देवों में शिरोमणि, (दिवः) द्यौलोक या सूर्य आदि दिव्य पदार्थों से भी (ककुत्) श्रेष्ठ, उनसे भी ऊंचा, (पृथिव्याः) पृथिवी का भी (पतिः) पालक है । वही (अपां) सब लोकों के (रेतांसि) बीज रूप कारण सत्ताओं को (जिन्वति) शरीर आदि में प्रेरित कर उनको यथासमय जीवन प्रदान करता है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे (अग्नि) परमात्मन्! (हि) क्योंकि आप (स्वः-पतिः) समस्त सुखमय मोक्ष लोक के पालक हैं। आप ही (दात्रस्य) दान देने योग्य और (वार्यस्य) वरण करने योग्य आत्मसम्पत् वा विभूति के भी (ईशिषे) प्रभु हैं, अतः (तव) आपकी (शर्मणि) शरण में रहकर मैं (तव) आपके (स्तोता) सत्य गुणों का वर्णन करने हारा (स्याम) रहूँ।

(३) हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप! सूर्यवत् तेजस्विन्! (तव) तेरी (शुक्राः) कान्तिमान् (शुचयः) दीप्तियें (भ्राजन्तः) सब को प्रकाशित करती हुई स्वयं (उत्-ईरते) उठ रही हैं और (अर्चयः) ये सब कान्तियां भी (तव) तेरी ही (ज्योतींषि) जगाई ज्योतियां हैं। उन सब पर तेरा ही स्वामित्व है और तुझ से ही उत्पन्न हैं।

इति चतुर्थः खण्डः।

इति सप्तमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः समाप्तः ॥

इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥

अथ पंचदशोऽध्यायः।

अथ सप्तम प्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः।

ऋषिः—१, ११ गोतमो राहूगणः। २, ६ विश्वामित्रो गाथिनः। ३ विरूप आंगिरसः। ५, ६ भर्गः प्रागाथः। ४ त्रित आप्त्यः। ३ उशनाः काव्यः। ८ सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतरः। १० सोभरिः काण्वः। १२ गोपवन आत्रेयः। १३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा। १४ प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः, अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ ससुतौ तयोर्वान्यतरः॥ अग्निर्देवता। छन्दः—१—काकुभम्प्रागाथम्। ११ उष्णिक्। १२ (१) अनुष्टुप् (२–३) गायत्री। १३ जगती॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१५३५] कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः ।
को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ १ ॥

[१५३६] त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः ।
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ २ ॥

[१५३७] यजा नो मित्रावरुणौ यजा देवां ऋतं बृहत् ।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ३ ॥ १ ॥

ऋ० १ । ७५ । ३-५ ॥

भा०—(१) हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! सर्वप्रथम विद्यमान ! (जनानां) मनुष्यों में से (ते) तेरा (कः) कौन (जामिः) बन्धु है ? अर्थात् कोई नहीं । तेरे लिये (कः) कौन (दाश्वध्वरः) दानशील, अहिंसा रहित यज्ञ करता है ? (कः ह) हे अग्ने ! आप कौन हो, (कस्मिन्) और आप किस में (श्रितः) आश्रय किये (असि) हो ? अर्थात् आपका सब कुछ अज्ञेय आपही सबके बन्धु हैं, आप ही सब यज्ञमय हैं । आप ही सर्वाश्रय हैं । उत्तर अगले मन्त्र में देखें ।

(२) हे (अग्ने) सर्व पूज्य, प्रकाशस्वरूप ! (त्वं) आप (जनानां) सब उत्पन्न होने हारे प्राणियों के (जामिः) उत्पादक और बन्धु हो और (प्रियः) प्रिय (मित्र) स्नेही सुहृद् (असि) हो । (सखिभ्यः) समान आख्यान अर्थात् नाम वाले भक्त प्रेमी, जीवगण के लिये (सखा) उनके सुहृद् होकर भी उनके लिये (ईड्यः) उपासना और स्तुति करने योग्य हो ।

(३) हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! तेजस्विन् ! प्रभो ! (नः) हमारे (मित्रावरुणौ) जैसे मित्र जन और पापनिवारक गुरु उपदेष्टा तथा प्राण और अपान दोनों को (यज) बल और ज्ञान प्रदान करें । और हमारे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(देवान्) इन्द्रियों और विद्वानों को (बृहत्) बड़ा भारी (ऋतं) सत्य ज्ञान (यज) प्रदान करें। और हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप आपही (त्वं) अपने (दमं) दमन करने योग्य समस्त संसाररूप गृह अथवा (दमं = मदं) अपना परम आनन्द (यक्षि) देते हैं।

[१५३८] ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः।
समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥

[१५३९] वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः।
तं हविष्मन्त ईडते ॥ २ ॥

[१५४०] वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥ २ ॥ऋ० ३ । २७ । १३–१५॥

भा०—(१) जिस प्रकार लौकिक अग्नि अन्धकारों को दूर हटा कर स्वयं दिखलाई देता है और अन्धकार में राहगीर उसी की ओर झुके चले आते हैं एवं अन्धेरे में भटकते लोग उसी का सराहते हैं उसी प्रकार (अग्निः) प्रकाश और ज्ञान से युक्त (तमांसि) समस्त अज्ञानरूप अन्धकारों को (तिरः) दूर करने हारा परमात्मा और आचार्य (दर्शतः) अवश्य नित्य दर्शन करने योग्य, और सब मार्गों का दर्शाने वाला (ईडेन्यः) स्तुति उपासना करने योग्य और (नमस्यः) नमस्कार करने योग्य है। (अग्निः) वही ज्ञानस्वरूप (वृषा) सब सुखों का वर्षक, परमात्मा तथा आचार्य श्रेष्ठ होने के कारण (इध्यते) हृदय में ज्ञानरूप से प्रकाशित होता है।

(२) (वृषः) सब सुखों के देने वाला, आत्मरूप, सब को वश करने हारा (अग्निः) अग्नि, (देव-वाहनः) इन्द्रियों को वहन करने हारा (अश्वः न) अश्व अर्थात् भोक्ता स्वामी के समान जाना जाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सम् इध्यते) युद्ध में विजिगीषु के अश्व के समान योगाङ्गों द्वारा और भी तेजस्वी, तथा प्रज्वलित किया जाता है। (हविष्मन्तः) स्तुति उपासना करने हारे अथवा चरु आदि से युक्त याज्ञिक लोग भी (तं) उसकी ही (ईडते) स्तुति करते हैं।

(३) हे (वृषन्) सब सुखों और ज्ञानों के वर्षक (त्वा) तुझ (वृषणं) सबसे बलवान् (दीद्यते) चेतनारूप से और तेजः स्वरूप सकल ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने हारे (बृहत्) महान् आत्मा परमेश्वर को (वयं) हम (समिधीमहि) अपने हृदय में उत्तम रीति से प्रज्वलित करें।

[१५४१] उत् ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः।
अग्ने शुक्रास ईरते ॥ १ ॥

[१५४२] उप त्वा जुह्वो ऽ३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत।
अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ २ ॥

[१५४३] मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।
अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥ ३ ॥ ३ ॥

ऋ० ७ । ४४ । ४–६ ॥

भा०—हे (अग्ने)! सबके अग्रणी! हे (दीदिवः) निरन्तर प्रकाश स्वरूप! (समिधानस्य) उत्तम रीति से प्रज्वलित, प्रदीप्त (ते) तेरी (शुक्रासः) कान्तिमान् तेजोमय, (बृहन्तः) बड़ी बड़ी (अर्चयः) सूर्य आदि ज्वालाएं (उद् ईरते) उठ रही हैं, ऊर्ध्व प्रकाश में गति कर रही हैं।

(२) हे (हर्यत) सब को अपने में ही आहरण कर लेने हारे सबके प्रलयकारक परमेश्वर! (मम) मेरी (घृताचीः) घृत, अर्थात्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान्ति या तेज को धारण करने हारी (जुह्वः) आदान-प्रतिदान करने वाली चमसरूप इन्द्रियां (त्वा) तेरे प्रति ही (उप यन्तु) गति करें हे (अग्ने) प्रकाशक (नः) हमारे (हव्या) स्तुतियों और प्रदान करने योग्य समस्त पदार्थों को आप ही (जुषस्व) स्वीकार करो ।

(३) मैं (मन्द्रं) आनन्दस्वरूप (होतारं) समस्त ब्रह्माण्ड यज्ञ के होता, सम्पादक (ऋत्विजम्) ऋतुओं, प्राणों तथा सत्य ज्ञानियों द्वारा उपासना करने योग्य, (चित्र-भानुम्) नाना प्रकार के चित्र विचित्र कान्तिमान् सूर्य्यों से अलंकृत, चित्-चेतना शक्ति को देने वाले प्रकाश से युक्त, (विभा-वसुम्) विविध कान्तिरूप धन से सम्पन्न, विशेष दीप्ति से समस्त जीवों और लोकों को वास देने हारे उस परमेश्वर रूप (अग्निम्) ज्ञान प्रकाशक की (ईडे) स्तुति करता हूँ (स उ) वही सब स्तुतियों को (श्रवत्) श्रवण करता है ।

[१५४४] पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥१॥

[१५४५] पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥२॥४॥

ऋ० ८ । ६० । ९—१० ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३६) पृ० १५ ।

(२) हे (अग्ने) तेजस्विन् ! आप (विश्वस्मात्) सब प्रकार के (अराव्णः) जीवन, धन, स्वत्व, अधिकार और सुख आदि न देने हारे कंजूस, परस्वत्वापहारी (रक्षसः) दुष्ट स्वभाव के राक्षस पुरुष से (पाहि) रक्षा कर । और (नः) हमारी (वाजेषु) संग्रामों में भी (प्र अव स्म) उत्तम रीति से रक्षा करो (हि) क्योंकि (त्वाम् इत्) आपको ही (देव-तातये) विद्वानों की और अपनी (वृधे) वृद्धि के लिये (नेदिष्ठं)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे समीपतम (आपिम्) अपना बन्धु जानकर (नक्षामहे) शरण आते हैं, प्राप्त होते हैं ।

इति प्रथमः खण्डः ।

—:०:—

[१५४६] इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि। चिकिद्विभाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१॥

[१५४७] कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन् योषां बृहतः पितुर्जाम् । ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥२॥

[१५४८] भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् । सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥ ३ ॥ ५ ॥ ऋ० १० । ३ । १–३ ॥

भा०—(१) हे (राजन्) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (इनः) सब के स्वामी (अरतिः) सब के भीतर व्यापक हैं । आप ही (समिद्धः) खूब प्रकाशमान होकर (रौद्रः) दुष्टों को रुलाने हारे, पापों के भयंकर दण्डविधाता होकर भी (दक्षाय) जीव के लिये (सुषुमान्[1]) उत्तम आनन्द रस के उत्पादक और उत्तम जन्म देने हारे, सौम्य (अदर्शि) दिखाई देते हैं । वह आप परमेश्वर (चिकिद्) सर्वज्ञ होकर (बृहता) बड़े भारी (भासा) ज्ञानमय प्रकाश और भौतिक तेजसे सर्वत्र (विभासि) प्रकाशमान हो रहे हैं ! वही आप (रुशतीम्) रुचिर कान्तिवाली उषारूप कान्ति को (अप अजन्) दूर कर पुनः (असिक्नीम्[2]) कृष्णवर्णा रात्रि

१५४६—१. सुष्ठु सूयते इति सुषुपुः सोमस्तद्वान् । ओषध्यात्मना स्थितोऽग्नि-रिति सायणः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (एति) प्राप्त कराते हैं । अर्थात् जिस प्रकार अग्नि की शिखा दिन को छोड़ कर रात्रि में प्रकाश करती है उसी प्रकार आप भी ज्ञानमय स्थानों के अतिरिक्त अज्ञानमय दशा में भी प्रकाश करते हैं और या (रुशतीं) कान्तिमय संसार की जाग्रत् अवस्था को दूर कर (असिक्नीम्) रात्रिरूप प्रलय दशा में बदल देते हैं। और इसी प्रकार रात्रि या प्रलय दशा को आप ही पुनः उषा अर्थात् सर्गदशा में बदलते हैं ।

(२) पूर्वोक्त मन्त्र में कहा वह अग्निस्वरूप परमेश्वर (अरतिः) सर्वथा एक, अद्वितीय (यद्) जब (कृष्णां) कृष्णवर्ण या सब को कर्षण करने हारी, प्रलय करने हारी (एनीं[3]) गमनशीला कालगति को (वर्पसा) अपने रूप से (अभि भूत्) वश कर लेता है, व्याप लेता है और (बृहतः) बड़े भारी (पितुः) पालन करने हारे, पिता परमात्मा की (जां) प्रजननशील (योषां) कुटुम्ब बसानेहारी स्त्री के समान समस्त पञ्चभूतों का परिपाक करके नाना प्रकार से उनको मिलाने हारी, सर्गकारिणी प्रकृति शक्ति को (जनयन्) उत्पन्न व्यक्तरूप में प्रकट करता हुआ, अथवा (योषां[4]) हिंसाकारक प्रलयकारिणी शक्ति को भी (पितुः जां जनयन्) पालक की उत्पादिका शक्ति में बदलता हुआ, (दिवः) इस द्यौलोक ब्रह्माण्ड के (वसुभिः) बास देने हारे लोकों के सहित (सूर्यस्य) सब के प्रेरक सूर्य के (भानुं) दीप्तिमय पिंड को (ऊर्ध्वम्)

२. असिक्नी अशुक्ला असिता (नि० ९ । २६) । रात्रिनाम च (निघं०)

३. एनी इति नदीनाम । इण् गतौ (अदादिः) इत्यत औणादिको निः (उ० ४ ४८) । नदीवचनोऽन्तोदात्तोऽन्यत्राद्युदात्त इति माधवः । अत्र आद्युदात्त एवेति नात्र नदीग्रहणम् ।

४. योषा—यूष हिंसायाम् (भ्वादिः) । यौतेर्वा मिश्रणामिश्रणार्थस्य । अपि वा सामान्या योषा स्त्री, जुगुप्सार्थस्य यावयतेः (चुरा०) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर आकाश में (स्तभायन्) स्थापित करता हुआ (वि भाति) आप सब से अधिक प्रकाशमान होता है ।

(३) जिस प्रकार रात्रि और उषा के दृष्टान्त से प्रलय और सर्ग का वर्णन किया है उसी प्रकार इस मन्त्र में सूर्य और उषा के दृष्टान्त से पुनः सर्गशक्ति और परमात्मा के सम्बन्ध को दर्शाते हैं । (भद्रः) कल्याण और सुख का देनेहारा, सब के भजन करने योग्य परमात्मा (भद्रया) समस्त संसार को मोक्ष और भोग द्वारा सुख सम्पादन करनेहारी प्रकृति से (सचमानः) युक्त होकर (आगात्) प्रकट हुआ । जिस प्रकार (जारः) समस्त संसार को जरण करने हारा, ब्रह्म या ब्रह्माण्ड की समस्त आयु को नाश करने हारा, रुद्ररूप वही परमात्मा (पश्चात्) पुनः (स्वसारं) स्वयं सरण करने हारी, स्वतः सृष्टिरूप में विकार को प्राप्त होने हारी प्रकृति को (अभि एति) पूर्णरूप से व्याप लेता है, वह (अग्निः) प्रकाशमान, देदीप्यमान परमात्मा (सु-प्र-केतैः) उत्तम विज्ञानमय (द्युभिः) नियमों से (वि-तिष्ठन्) नाना रूप से व्याप्त होकर (उशद्भिः) मनोहर (वर्णैः) रूपों से (रामं) रमण करने योग्य इस जगत् को (अभि अस्थात्) प्रकट करता है, चलाता है, व्यवस्थित करता है ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
[१५४९] कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् ।
१ २ ३ १ २
वराय देव मन्यवे ॥ १ ॥

१५४८ १. अंगिराः—अंगारेष्वंगिराः (अंगारा अंकना अञ्चनाः) । (नि० ३ । ३ । ५) अंगानां ह्येष रसः, इति ब्राह्मणम् ।

२. यह्वुरित्यपत्यनामसु पठितः । यह्वुर्यातेर्ह्वयतेश्चौरादिकात्कुप्रत्यये मृगय्वादित्वान्निपातनम् । यातश्चाहूतश्चेति माधवः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१५५०] दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो ।
३ २ ३ १ २
कदु वोच इदं नमः ॥ २ ॥

२ ३ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१५५१] अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः ।
१ २ ३ १ २
वाजद्रविणसो गिरः ॥ ३ ॥ ६ ॥ ऋ० ८ । ८४ । ४–६ ॥

भा०—(१) हे (अंगिरः[1]) सर्वव्यापक ! सर्वप्रकाशक, तेजस्विन् सब में बल, प्राण और रसरूप में विद्यमान (अग्ने) ज्ञानवान् और प्रकाशमान ! हे (ऊर्जो नपात्) बल के भण्डार ! हे (देव) सबको ज्ञान, प्रकाश देने हारे (वराय) सबसे श्रेष्ठ एवं वरण करने योग्य (मन्यवे) ज्ञानस्वरूप एवं मन्युस्वरूप, सब के मनन करने योग्य (तं) तेरी (कया) किस वाणी से हम (उपस्तुतिं दाशेम) स्तुति करें ।

(२) हे (सहसः यहो[2]) बल और सहनशीलता से प्राप्त करने और स्मरण करने योग्य परमात्मन् ! (कस्य) किस (यज्ञस्य) आत्मा को (मनसा) मन या अन्तःकरण से (दाशेम) आपके समर्पण करें । (इदं) यह (नमः) नमस्कार (कत् उ) किस विध या किस २ समय (वोचे) उच्चारण करें, अर्थात् मन से इस आत्मा को तो दे ही रक्खा है और क्या क्या दें । और सदा ही तो आपका स्मरण करते हैं, और हम कब कब करें ।

(३) (अध) और हे परमात्मन् ! (हि) निश्चय से (नः) हमारे लिये (त्वं) आप (सु-क्षितीः) उत्तम २ निवासभूमियों और (वाज-द्रविणसः) ज्ञान को बढ़ाने हारी, ज्ञानसम्पन्न (गिरः) इन वेदमयी वाणियों को (अस्मभ्यं हि) हमारे ही लिये (नः) हमें (करः) उपदेश करते, बनाते, प्रकट करते, प्रदान करते हो ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१५५२] अग्न आयाह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
१२ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ १॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१५५३] अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
३ १२ २२ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥२॥७॥

ऋ० ८ । ६० । १, २ ॥

भा०—(१) हे अग्ने ! परमात्मन् ! और हे आत्मन् ! तू (अग्निभिः) प्रकाशक विद्वानों और प्राणों के साथ (आ याहि) प्राप्त हो । इस ब्रह्माण्ड और पिण्ड में अपनी शक्ति का दान-आदान करने हारे (त्वा) तुझ को हम (होतारं) अपना होतृस्वरूप शक्ति और सुखों का दाता (वृणीमहे) वरण करते हैं (यजिष्ठं) सबसे श्रेष्ठ यज्ञ और दान करने हारे (त्वां) तुझ को ज्योतिष्मती प्रज्ञा से (बर्हिः) इस हृदयाकाश में (आसदे) प्राप्त करके (प्रयता) अत्यन्त संयत, दमनशील (हविष्मती) उत्तम साधनों वा ज्ञान भक्ति से युक्त चित्त से (अनक्तु[1]) ज्ञान करें, तुझे पहिचानें और अधिक प्रदीप्त हों या तुझ में व्याप्त हो जायँ ।

(२) हे (सहसः सूनो) बल, तपस्या द्वारा अभिसवन, निष्पादन अर्थात् उपासना और ज्ञान करने योग्य ! हे (अंगिरः) सबके प्रकाशक और स्वयंप्रकाश परमात्मन् ! अथवा अंगों २ में रसस्वरूप होकर विराजमान आत्मन् ! (त्वां) तुझको (अच्छ) प्राप्त करने के लिये (हि) ही (अध्वरे) यज्ञ में जिस प्रकार (स्रुचः) यज्ञ के चमसाकार पात्र अग्नि के प्रति जाते हैं उसी प्रकार (अध्वरे) हिंसा रहित जीवनयज्ञ सर्ग-प्रतिसर्ग स्वरूप ब्रह्माण्ड में (स्रुचः[2]) स्रवण अर्थात् गति करने हारे

१५५२—१. अनक्तु, अञ्जूव्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु [रुधादिः]
२. स्रुचः वः, चिक् च । स्रवः स्रुक् इत्येव. लुधा... । स्रुगो रुचादिः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चभूत और देह में प्राण और इन्द्रियगण (चरन्ति) विचरण करते हैं (यज्ञेषु) सब दान परोपकार और यज्ञ आदि श्रेष्ठ कार्यों में या सब आत्माओं में (पूर्व्यम्) सबसे श्रेष्ठ, सबसे पूर्व विद्यमान एवं पूर्णस्वरूप (ऊर्जः नपातं) रस या बल से आत्मा को पालन करने हारे (घृत-केशं) दीप्तिरूप किरणों से युक्त आप (अग्निम्) ज्ञानरूप परमेश्वर को (ईमहे) हम याचना करते और आपकी शरण आते हैं ।

[१५५४] अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥१॥

[१५५५] अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि
॥ २ ॥ ८ ॥ ऋ० ८ । ७१ । १०, ११ ॥

भा०—(१) (नः) हमारी (गिरः) उच्चारण की हुई वेद-वाणियां, स्तुतियां (दर्शतम्) ज्ञानदृष्टि से दर्शनीय (शीर-शोचिषं) अग्नि के समान देदीप्यमान, कान्तियुक्त (पुरु-वसुं) समस्त प्रजाओं और इन्द्रियों को वास देने हारे, उनमें बसे या बहुत ऐश्वर्यों के स्वामी, (पुरु-प्र-शस्तं) सबसे श्रेष्ठ या प्रजाओं द्वारा कीर्तित, उस उत्तमश्लोक, परमात्मास्वरूप अग्नि को (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (यन्तु) प्राप्त हों । (यज्ञासः) हमारे आत्मा भी (नमसा) आदर और श्रद्धा सहित उसको ही (अच्छ) भली प्रकार साक्षात् प्राप्त हों ।

(२) (सहसः सूनुं) बल द्वारा ज्ञान करने और प्राप्त करने योग्य और समस्त बलों के प्रेरक (जात-वेदसम्) व्यापक, सर्वज्ञ सर्वैश्वर्यवान् उस (अग्निं) तेजोमय आत्मा को (वार्याणाम्) वरण करने योग्य पदार्थों के (दानाय) प्राप्त करने के लिये (अच्छ) प्राप्त होओ । (यः) जो (अमृतः) अमृतस्वरूप होकर भी (द्विता) दो स्वरूपों में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आ भूद्) विद्यमान है । एक तो (मर्त्येषु) समस्त मरणधर्मा प्राणियों में (आ होता) भोक्तारूप जीव अथवा सब प्राणियों को सुखों और जीवनों का दाता और (विशि) समस्त प्रजाओं में (मन्द्र-तमः) परम आनन्ददाता ईश्वर है ।

इति द्वितीयः खण्डः ।

[१५५६] अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् ।
तूर्णी रथः सदा नवः ॥ १ ॥

[१५५७] अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः ।
क्षयं पावकशोचिषः ॥ २ ॥

[१५५८] साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः ।
अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ३ ॥ ९ ॥

ऋ० ३ । ११ । ५, ७, ६ ॥

भा०—(१) (मानुषीणां) मननशील (विशां) प्रजाओं का (तूर्णी) अति शीघ्रगामी (रथः) रथ के समान देहेन्द्रियसंघात या कर्मवासनाओं को साथ ही लेकर चलने हारा या रमणशील (सदा) निरन्तर (नवः) नूतन, अजर (अग्निः) आत्मरूप यह अग्नि (अदाभ्यः) देह के नाश हो जाने पर भी न मरने हारा, (पुरः-एता) प्रार्थ्य या पालन करने योग्य देहों में प्राप्त हो जाता है ।

(२) (दाश्वान्) दानशील अपने को उस आत्मा के प्रति समर्पित करने हारा साधक (मर्त्यः) मरणधर्मा पुरुष (वाहसा) शरीर को रथ के समान धारण करने हारे उस आत्मरूप अग्नि से ही (प्रयांसि) अन्नतुल्य समस्त सुख और भोग्य पदार्थ का (अभि अश्नोति) भोग करता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपने आप को (पावक-शोचिषः) पावन करने हारे तेज के (क्षयं) निवासस्थान परमेश्वर को भी प्राप्त करता है । अर्थात् आत्मा से ही आत्मज्ञान और मोक्ष का भी लाभ करता है ।

(३) वह अग्नि (तुवि-श्रवस्तमः) बहुत अन्नादि भोग्य साधनों से सम्पन्न, (विश्वाः) समस्त (अभि-भुजः) आक्रमण करने हारों को (साह्वान्) वश करने हारा, (देवानां) विद्वानों का एकमात्र (क्रतुः) कार्यसम्पादक, साक्षात् कर्त्ता, अथवा (देवानां) इन्द्रियों के ज्ञान और कर्म का (क्रतुः) कर्त्ता (अमृक्तः) अविनाशी और अजन्मा है ।

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३२
[१५५९] भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
२ ३ १र २र
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १ ॥

३ १र २र ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३२
[१५६०] भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।
१ २ ३ १ २ १ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये
॥ २ ॥ १० ॥ ऋ० ८ । १९ । १९, २० ॥

भा०—(१) व्याख्या देखिये अवि० सं० [११] पृ० ६० ।

(२) हे अग्ने परमात्मन् ! (वृत्र-तूर्ये) विघ्नकारी अज्ञानों और शत्रुओं को नाश करने के कार्य में (येन) जिस संकल्पशक्ति से आप (समत्सु) संग्रामों में (सासहिः) विघ्नों का नाश करते हैं उस (मनः) हमारे मन को भी (भद्रं) कल्याणकारी (कृणुष्व) करें । (शर्धतां) प्रबल होने हारे शत्रुओं के (स्थिरा) बलों को (अव तनुहि) नीचे दबा दें । हम (अभिष्टये) अभीष्ट प्राप्ति के लिये (ते) तेरी शरण को (वनेम) प्राप्त हों ।

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१५६१] अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३ २ १ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१५६२] स इधानो वसु ष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ २ ॥

[१५६३] क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३ ॥ ११ ॥

ऋ० १ । ७९ । ४—६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [६६] पृ० ५४ ।

(२) (सः) वह (अग्निः) प्रकाशस्वरूप, ज्ञानवान् (इधानः) ज्ञानदीप्ति से अग्नि के तुल्य भासमान (वसुः) सबको वास देने और सबमें बसने हारा (कविः) क्रान्तदर्शी, मेधावी (गिरा) वाणी द्वारा (ईडेन्यः) सबके स्तुति करने योग्य है । हे (पुरु-अनीक) पुरु = बहुत भारी, अनीक अर्थात् शक्ति से सम्पन्न या अनन्त सुख, आनन्द से परिपूर्ण परमात्मन् ! तू (अस्मभ्यं) हमारे (रेवत्) प्राणवान् आत्मा के भीतर (दीदिहि) प्रकाशमान हो ।

(३) (उत) और हे (राजन्) समस्त प्रजा का अनुरंजन करने हारे प्रकाशमान परमात्मन् ! (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप ! आप (त्मना) स्वयं आत्मा के बल से वीर, तेजस्वी राजा के समान (रक्षसः) राक्षसों, दुष्टभावों और पुरुषों को (वस्तोः) दिन (उत) और (उषसः) रात्रि के समाप्तिकाल तक, उषाओं अर्थात् नित्य, ज्ञानोदय कालों में (क्षपः) दूर भगा दो । हे (तिग्म-जम्भ) तीक्ष्णमुख ! अग्नि के समान तेज से अन्धकारों को नाश करने हारे ! आप राक्षसी भावों या राक्षसों को (प्रति दह) भस्म करो, निर्मूल करो । जिससे वे निर्बीज होकर पुनः जन्म मरण के बंधन का कारण न हों ।

इति तृतीयः खण्डः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१५६४] विशो विशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥

१र २र ३ २ ३ १र ३ १ २
[१५६५] यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।
२ ३ २ ३ १ २
प्र शंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१५६६] पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता ।
३ १र १र ३ २
हव्यान्यैरयद्दिवि ॥ ३ ॥ १२ ॥ ऋ० ८ । ७४ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल स० [८७] पृ० ४७ ।

(२) (हविष्मन्तः) ज्ञानवान् (जनासः) पुरुष (यं) जिस (सर्पिः-आसुतिं) सर्पणशील इन्द्रिय और मन को प्रेरणा करने हारे, अथवा तेज को देने हारे, अथवा घृत की आहुति के समान सर्पणशील प्राणरूप इन्द्रिय और मन को अपने भीतर आहुत अर्थात् लीन करने हारे अग्नि के तुल्य तेजोमय आत्मा को (मित्रं न) मित्र के समान (प्र-शस्तिभिः) उत्तम स्तुतियों द्वारा (प्र शंसन्ति) वर्णन करते हैं ।

(३) (पन्यांसं) अति स्तुति करने योग्य या व्यवहार में अति कुशल, समस्त जगत्–व्यवहार को चलाने हारे (जात-वेदसं) सर्वज्ञ, सर्वैश्वर्यवान्, सब पदार्थों के ज्ञाता उस प्रभु की स्तुति करो (यः) जो (देवतातिः) देवों के हितकारी यज्ञस्थान में (उद्यता) उद्यत, प्रस्तुत (हव्यानि) हव्य आदि उत्तम अन्नमय पदार्थों को जिस प्रकार अग्नि अपने तेज से आकाश में फैला देता है उसी प्रकार जो प्रभु समस्त पदार्थों को (दिवि) सूर्य के प्रकाश और ज्ञान के आश्रय पर (ऐरयद्) प्रेरित करता है । अथवा (यः) जो (देवताति) इस महान् देवगण पृथिवी, जल आदि के हितकर (दिवि) आकाश में (उद्यता हव्यानि)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्ध्वं दिशा में नियम से बद्ध सूर्यादि लोकों को (ऐरयत) प्रेरित करता है।

[१५६७] समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम्। विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ १ ॥

[१५६८] त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे॥२

[१५६९] विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे। यत् ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥ ३ ॥ १३ ॥ ऋ० ६ । १५ । ७-९ ॥

भा०—(१) (समिद्धं) उत्तम रीति से सर्वत्र प्रकाशमय, (शुचिं) शुद्ध, कान्तिमय, (पावकं) सब को पवित्र करने हारे, (अध्वरे) हिंसा-रहित, अविनाशी, जीवनप्रद, संसार रूप यज्ञ में (पुरः) सब से पूर्व (ध्रुवम्) नित्य, अविनाशी उस (अग्निं) तेजःस्वरूप परमेश्वर को (समिधा) ज्ञानमयी (गिरा) वाणी से (गृणे) वर्णन करता हूँ। उसी (विप्रं) ज्ञानवान्, मेधावी (होतारं) सर्वप्रद, (पुरु-वारं) प्रजाओं के रक्षक, (अद्रुहं) सब से प्रेम करने हारे एवं द्वेषरहित, सब के प्रिय (कविं) अन्तर्यामी, क्रान्तदर्शी (जात-वेदसं) सर्वज्ञ उस परमात्मा की (सुम्नैः) उत्तम मनन निदिध्यासनों द्वारा या सुखकारी स्तोत्रों द्वारा (ईमहे) प्रार्थना उपासना करें।

(२) हे (अग्ने) परमेश्वर ! (अमृतं) अमृतस्वरूप, (हव्य-वाहं) सब स्तुतियों को स्वीकार करने हारे, (पायुं) जगत के पालक,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईड्यम्) सब के वन्दनीय, (त्वां) तुझको (युगे-युगे) प्रत्येक युग में विद्वान् लोगों ने अपना (दूतं[1]) सदा उपास्य, भजन-सेवन करने योग्य एवं ज्ञानों का प्रकाशक (दधिरे) स्वीकार किया, धारण किया। और (देवासः) दिव्य ज्ञानवान् (च) और (मर्त्यासः च) मरणधर्मा कर्मबद्ध सामान्य जीव दोनों तुझको ही (जागृविं) सदा जागरणशील (विभुं) सर्वव्यापक और विशेष रूप से सब का उत्पादक (विश्पतिं) समस्त प्रजाओं का पालन करने हारा जानकर (नमसा) भक्ति योग से विनय पूर्वक (नि षेदिरे) तेरे ही चरणों में आ बैठते हैं और तेरे गुरु-चरणों में बैठकर उपनिषदों द्वारा ज्ञान लाभ करते और उपासना करते हैं।

(२) हे (अग्ने) प्रभो ! (उभयान्) बद्ध और मुक्त दोनों प्रकार के जीवों को (वि भूषन्) अपनी विभूतियों से सुशोभित करता हुआ तू (अनु-व्रता) समस्त यज्ञों से (देवानां) देव, दिव्य पदार्थों, एवं मुक्त जीवों को (दूतः) साक्षात् प्राप्त और उन के प्रति नाना ज्ञानप्रकाशक होकर (रजसी) समस्त द्यौ और पृथिवी लोकों में (सम्-ईयसे) व्यापक रहता है। (यत्) क्योंकि हम (ते) तेरी ही (सु-मतिं) उत्तम स्तुति और (धीतिं) ध्यान (आवृणीमहे) करते हैं (अध) और तू (त्रि-वरूथः) उत्पादक, पालक और संहारक तीन रूप का होकर (शिवः) हमारा कल्याणकारी (भव स्म) हो।

[१५७०] उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १ ॥

[१५७१] यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम्।
आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ २ ॥

१. दु द्रु गतौ (स्वादिः)।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१५५२] पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः ।
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ ३ ॥ १४ ॥
ऋ० ६।८१।२२।२५ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१३] पृ० ६ ।

(२) (यस्य) जिस आत्मा का (त्रि-धातु) देह को धारण करने में समर्थ वात, पित्त, कफ़ इन तीन धातुओं का बना (अवृतं) अनावृत, नाशयुक्त अथवा मांसादि घृणाजनक पदार्थों का बना होने से न वरण करने योग्य (असन्दिनम्) अबद्ध अर्थात् आत्मा से सर्वथा पृथक् और कभी स्थिर स्थिति न प्राप्त करने हारा, (बर्हिः) वृद्धिशील और बन्धन होने से ज्ञानरूप शस्त्र से काटने योग्य देहबन्धन (तस्थौ) स्थिर है उस अग्निरूप आत्मा में (आपः-चित्) समस्त कर्म और प्राणगण ही (पदं) स्थान (निदधा) प्राप्त करते हैं अथवा सब (आपः) प्राण और ज्ञानवृत्तियां (पदं) अपना आश्रय (नि दधा) धारण कराती हैं ।

परमात्मा पक्ष में-(त्रि-धातु) सत्व, रजस्, तमस् से बना (अवृतं) प्रत्यक्ष रूप (बर्हिः) महान् ब्रह्माण्ड रूप देह (असन्दिनं) गतिमान् (तस्थौ) स्थिर है । जिसमें (आपः) समस्त लोक (पदं निदधा) स्थान पाते हैं ।

(३) (मीढुषः) समस्त कामनाओं को पूर्ण करने हारे (देवस्य) प्रकाशमान देव का (पदं) परम पद, परमरूप (अनाधृष्टाभिः) अद्वितीय, अबाधित, (ऊतिभिः) सुखों से युक्त है । और उसका (उपदृक्) साक्षात् दर्शन (सूर्यः इव) सूर्य के समान सदा (भद्रा) कल्याणकारी है ।

इति चतुर्थः खण्डः ।

—:०:—

इति सप्तमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥
इति पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ षोडशोऽध्यायः ।

अथ सप्तम प्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः ।

ऋषिः—१, ८, १८ मेध्यातिथिः काण्वः । २ विश्वामित्रो गाथिनः । ३, ४ भर्गः प्रागाथः । ५ सोभरिः काण्वः । ६, १५ शुनःशेप आजीगर्तिः । ७ सुकक्ष आङ्गिरसः । ८ विश्वकर्मा भौवनः । १० अनानतः पारुच्छेपिः । ११ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः १२ गोतमो राहूगणः । १३ ऋजिश्वा भारद्वाजः । १४ वामदेव गौतमः । १६ हर्यतः प्रागाथः । १७ देवातिथिः काण्वः । १९ श्रुष्टिगुः काण्वः । २० पर्वतनारदौ काण्वौ । २१ अत्रिर्भौमः ॥ देवता—१, ३, ४, ७, ८, १५ १७—१९ इन्द्रः । २ इन्द्राग्नी । ५ अग्निः । ६ वरुणः । ९ विश्वकर्मा । १०, २०, २१ पवमानः सोमः । ११ पूषा । १२ मरुतः । १३ विश्वेदेवाः । १४ द्यावापृथिव्यौ ॥ छन्दः—१, ३, ५, ८, १७—१९ बार्हतं प्रागाथम् । २, ६, ७, ११,–१६ गायत्री । ९ त्रिष्टुप् । १० अत्यष्टिः । २० उष्णिक् । २१ जगती ॥

[१५७३] अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१॥

[१५७४] अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अधा तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥२॥१॥

ऋ० ८ । ३ । ७, ८ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं [२५६] पृ० १३० ।

(२) (इन्द्रः) (अस्य इत्) इस ही (सुतस्य) उत्पादित सोमरूप आत्मानन्द के (विष्णवि) व्यापक (मदे) आनन्द, हर्ष में (वृष्ण्यं) सुखों के वर्षक (शवः) बल को (वावृधे) बढ़ा देता है । (आयवः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य, आयु में वृद्ध जीवगण और ज्ञानवान् पुरुष (पूर्वथा) पूर्व के ~~समान (अद्य) आज भी (अस्य) इस आत्मा के (तं) उस (महि-~~ समान (अद्य) आज भी (अस्य) इस आत्मा के (तं) उस (महि- मानं) महान् सामर्थ्य को (अनु स्तुवन्ति) वर्णन करते हैं ।

[१५७५] प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ १ ॥

[१५७६] इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
साकमेकेन कर्मणा ॥ २ ॥

[१५७७] इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः ।
ऋतस्य पथ्या३ऽ अनु ॥ ३ ॥

[१५७८] इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
युवोरप्तूर्यं हितम् ॥ ४ ॥ २ ॥

ऋ० ३ । १२ । ५—८ ॥

भा०—(१) हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र ! परमेश्वर और अग्निरूप जीव ! (वाम्) आप दोनों को (नीथाविदः) सामगान या ब्रह्ममार्ग के जानने हारे (जरितारः) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् पुरुष और (उक्थिनः) वेदज्ञानी विद्वान् (प्र अर्चन्ति) उत्तम रूप से उपासना करते हैं । मैं भी (इषे) बल प्राप्त करने के लिये उन दोनों (इन्द्राग्नी) आत्मा और परमात्मा को (आ वृणे) वरण करता हूँ ।

(२) हे (इन्द्राग्नी) ब्रह्म और जीव ! जो दोनों आप (दास-पत्नीः) विनाशक भावों से परिपालित (नवतिं) नव्वे (पुरः) कामनाओं को (एकेन कर्मणा) एक कर्म अर्थात् योग से ही (साकं) एक साथ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अनूनुतम्) करा देते हो, उन आप दोनों को हम स्मरण करते हैं। इन्द्रिय भेद से १०, सत्व, रजस्, तमस् भेद से ३० प्रकार हुए, अन्नमय, प्राणमय और मनोमय भेद से तीनों कोशों में ९० पुर होते हैं। एकादश इन्द्रियां और मानकर ९९ पुर भी कहे जाते हैं।

(२) हे (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्त इन्द्र और अग्ने ! (धीतयः) ध्यान करने हारे विद्वान् जन (ऋतस्य) ब्रह्मज्ञान के (पथ्या) मार्गों को (अनु) अनुगमन करते हुए (अपसः) कर्मों को (परि उप प्र यन्ति) पार कर के आपके समीप तक पहुंच जाते हैं।

(३) हे (इन्द्राग्नी) जीव और ब्रह्म (वां) आपके (तविषाणि) बल और (प्रयांसि) ज्ञान (सधस्थानि) साथ ही रहते हैं और (युवोः) आप दोनों में (अप्तूर्यं) कर्मों और लोकों, प्राणों तथा प्राणमय सूक्ष्म और स्थूल शरीरों को प्रेरित करने वाला बल भी समानभाव से (हितम्) स्थापित है।

[१५७९] शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १॥

[१५८०] पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
न किर्हि दानं परि मर्धिषत् त्वे यद्य द्यामि तदाभर
॥ २ ॥ ३ ॥ ऋ० ८ । ६१ । ५, ६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [२५३] पृ० १२९।

(२) हे (देव) सब सुखों के दाता ! प्रकाशस्वरूप ! प्रभो ! परमात्मन् ! आप (अश्वस्य पौरः) भोक्ता जीव के समस्त कामनाओं को पूर्ण एवं इनका पालन करने हारे और (गवां) इन्द्रियों के भी (पुरुकृत्) पूर्ण करने हारे हैं। अर्थात् आपने भोक्ता जीव को समस्त भोग साधन देकर पूर्ण किया है और इन्द्रियों को रूप आदि भोग्य विषय देकर पूर्ण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है और (हिरण्ययः) मन हरण करने हारे सुवर्ण के समान तेजों से बने हितकारी और रमणीक (उत्सः) कूप के समान सब आनन्दरसों के आश्रय, तेजोमय पदार्थों का उत्पादन करने हारे, उनके कारणरूप हैं। आपके लिये आत्मा और इन्द्रियों के भोग्य सुखजनक पदार्थ उत्पन्न करना क्या बड़ी बात है ? हे परमात्मन् ! (ते) आपके लिये (दानं) दान को (नकिः परिमर्धिषत्) कोई भी नाश नहीं कर सकता ; आपसे मैं (यद् यद्) जो २ (यामि) याचना करता हूँ (तद्) वह २ (आभर) प्राप्त कराइये ।

[१५८१] त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद् वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ १ ॥
[१५८२] त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे
॥ २ ॥ ४ ॥ ऋ० ८ । ६१ । ७ । ८ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अर्चिकल सं० [२४०] पृ० १२२ ।

(२) हे इन्द्र (त्वं) आप (पुरू) बहुतसे (सहस्राणि) हजारों और (शतानि च) सैकड़ों (यूथा) यूथ (दानाय) दानशील पुरुष को (मंहसे) देते हैं। हम (विप्र-वचसः) मेधावी ज्ञानी, पुरुषों के समान वचन बोलने हारे और विविध विद्याओं का प्रवचन करने हारे विद्वान् होकर (अवसे) ज्ञान और रक्षा की प्राप्ति के लिये (गायन्तः) स्तुति करते हुए (इन्द्रं) आत्मा और परमात्मा को ही (पुरं-दरं) इस देहरूप पुर को तोड़ने हारा (आ चकृम) स्वीकार करते हैं। अथवा—हे आत्मन् ! तू सैकड़ों हज़ारों (पुरू) पालन एवं तृप्त करने हारे पदार्थ केवल (दानाय) दान या त्याग करने के लिये ही हमें प्रदान करता है अतः उनको वैराग्य द्वारा त्याग कर विद्वान् ज्ञानी होकर इस देह का अन्त कर,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्ति देने हारे इन्द्र, ईश्वर की स्तुति करते हुए, हम (अचले) अपनी रक्षा और ज्ञान के लिये (चक्रम) साधना करें ।

२उ ३ १२ ३ २ ३ ३ २ ३ १र २र
[१५८३] यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
मधोर्न पात्रा प्रथमा न्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥ १॥

२ ३ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१५८४] अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम्
॥ २ ॥ ५ ॥ ऋ० ८ । १०३ । ६, ७ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४४] पृ० २० ।

(२) हे (दस्म) दर्शनीय कमनीयरूप ! हे (विश्पते) समस्त प्रजा के पालक परमात्मन् ! (देवयवः) देव परमात्मा की चाह करने वाले (सु-दानवः) अपने को उत्तम रूप से समर्पण करने हारे, भक्त (गीर्भिः) अपनी वाणियों और आपकी स्तुतियों से भी (रथ्यं) इस देहरूप रथ के योग्य (अश्वं न) अश्व के समान भोक्ता आत्मा को ही (मर्मृज्यन्ते) शोधन किया करते हैं, उसको बराबर तपस्याओं से शुद्ध पवित्र किया करते हैं आप ही (मघोनाम्) मघ = मख = ज्ञान के धनी पुरुषों के (तोके) पुत्र और (तनये) पौत्र (उभे) दोनों में (राधः) आराधनीय विवेक का (पर्षि) दान करते हैं ।

नास्य अब्रह्मवित् कुले भवति (बृहदारण्यकोपनिषद्)

इति प्रथमः खण्डः ॥

---

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१५८५] इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।
१ २ १र २र
त्वामवस्युरा चके ॥ १ ॥ ६ ॥ ऋ० १ । २५ । १९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) हे (वरुण) सबसे श्रेष्ठ, वरण करने योग्य एवं सब पापों के निवारक परमेश्वर! (मे) मेरे (इमं) इस (हवम्) पुकार को (श्रुधि) श्रवण कर। (अद्य च) और वर्तमान में हमें (मृडय) सुखी कर। मैं (अवस्युः) अपनी रक्षा तथा आपकी शरण और ज्ञान चाहता हुआ (त्वां) आपसे (आचके) प्रार्थना करता हूँ।

[१५८६] कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥ ७ ॥
ऋ० ८। ९३। १९ ॥

भा०—(१) हे इन्द्र! हे (वृषन्) सुखों के वर्षाने हारे श्रेष्ठ परमात्मन्! (कया ऊत्या) किस अद्भुत रक्षा और ज्ञान से (त्वं) आप (नः) हमें (अभि) साक्षात् (प्र मन्दसे) खूब आनन्दित, सुखी, प्रसन्न करते हैं और (कया) किस उत्तमता से (स्तोतृभ्यः) विद्वान् पुरुषों को (आ भर) सब पदार्थ प्राप्त कराते हैं?

[१५८७] इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ १ ॥

[१५८८] इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः
॥ २ ॥ ८ ॥ ऋ० ८। ३। ५, ६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [२४९] पृ० १२७।

(२) (इन्द्रः) परमेश्वर (शवः) अपने बलके (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों लोकों को (पप्रथत्) विस्तृत करता है, बनाता है। (इन्द्रः) ऐश्वर्यशील परमात्मा (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयत्) प्रकाशित करता है। (इन्द्रे इह) परमेश्वर में ही निश्चय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (विश्वा) समस्त (भुवनानि) भुवन (येमिरे) व्यवस्थित हैं। (इन्द्रे) परमेश्वर में ही (इन्दवः) योगी लोग मुक्त पुरुष (स्वनासः) आनन्द रस का लाभ करते हैं, और उसी में निमग्न होजाते हैं।

[१५८१] विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वांऽ स्वा हि ते। मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनासि इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ १ ॥ ९ ॥ ऋ० १० । ८१ । ६ ॥

भा०—(१) हे (विश्वकर्मन्) समस्त संसार के स्रष्टा परमेश्वर! (हविषा) ज्ञान से और सामर्थ्य से (वावृधानः) सबसे सदा महान्, (तन्वं) विस्तारशील, द्यौ और पृथिवीरूप शरीर को (स्वयं) अपने आप तू (यजस्व) प्रदान करता है, अर्थात् एक को दूसरे का उपकारक बनाता है, क्योंकि (स्वा हिते) वह भी तेरा अपना ही स्वरूप है (अन्ये) और तेरें से भिन्न अल्पज्ञ (जनासः) जन, जीवगण (अभितः) इसको साक्षात् देखकर भी (मुह्यन्तु) मोह को प्राप्त होते हैं। (इह) इस विशाल ब्रह्माण्डयज्ञ के विवरण करने हारे में (मघवा) ज्ञानसम्पादक परम ज्ञानी परमेश्वर ही (अस्माकं) हमारा (सूरिः) ज्ञानोपदेष्टा (अस्तु) हो।

"तत्रेतिहासमाचक्षते-विश्वकर्मा भौवनः सर्वमेधे सर्वाणि भूतानि जुहवाञ्चकार स आत्मानमप्यन्ततो जुहवाञ्चकार। तदभिवादिनी एषा ऋग् भवति।" (निरु० २) विश्वकर्मा भौवन ने सर्वमेध यज्ञ में समस्त भूतों को हवन कर दिया और अन्त में अपने आपको भी स्वाहा कर दिया। यह आत्मिक यज्ञ का भी वर्णन है! और विशालरूप में यही यज्ञ ब्रह्माण्डमय विराट् शरीर में भी हो रहा है। परमात्मा समस्त पृथिवी आदि पांचों भूतों को मिश्रण करके संसार रचता है। और आप भी उसका

१५८१—"यजस्व पृथिवीमुत द्याम्" इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापक व्यवस्थापक होकर उसी में लीन रहता है। तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। (छान्दोग्य उप०) इसी प्रकार आत्मा देह में पंचभूतों के पांचों शब्दादि विषयों को ग्रहण करता और उनसे ज्ञान सम्पादन करता, पुनः स्वप्न और समाधि दशा में अपने में भी मग्न रहता है।

अध्यात्मपक्ष में—हे विश्वकर्मन्! सर्व कर्मों के कर्त्ता जीवात्मन्! (हविषा) ज्ञान से (वावृधानः) बढ़ता हुआ (तन्वं) अपने स्वरूप को तू (स्वयं यजस्व) अपने आप प्राणों द्वारा यज्ञ कर रहा है। और (अन्ये जना मुह्यन्तु) दूसरे मूर्ख, अनात्मज्ञ लोग मोह को प्राप्त हो जाते हैं और (मघवा) परमात्मा या आत्मज्ञानी आचार्य ही इस आभ्यन्तर योगयज्ञ के सम्पादन में (अस्माकं सूरिः अस्तु) हमारा ज्ञानोपदेष्टा हो।

१—तनू = अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा॥

परमात्मा का स्वयं यज्ञ का रूप—तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः। सोमात् पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्। पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः॥ मुण्डक २। १। ५॥

गीता के यज्ञचक्र और छान्दोग्य उप० में पञ्चाहुति-प्रकरण भी देखने योग्य हैं।

पवमानः सोमः

[१२२०] अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः। धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः। विश्वा यद् रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः॥ १॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१५९१] प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत् स रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः । अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् वज्रश्च यद् भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ २ ॥

[१५९२] त्वं ह त्यत् पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयासि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे । परावतो न साम तद् यत्रा रणन्ति धीतयः त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ ३ ॥ १० ॥ ऋ० ९ । १११ । १, ३, २॥

भा०— (१) (पृष्ठस्य) सबके साथ स्पर्श करने हारे, सबके पोषक प्राण की (धारा) धारण शक्ति, या वाणी द्वारा वह सोमस्वरूप, आनन्दस्वरूप योगी आत्मा (पुनानः) और भी पवित्र शुद्धरूप होकर (यत्) जब (विश्वा) समस्त (रूपा) पदार्थों को (सप्त-आस्येभिः) सर्पणशील आस्य अर्थात् इन्द्रियों में विराजमान (ऋक्वभिः) गतिशील, प्राप्यग्राही, (ऋक्वभिः) उत्तम, प्राणरूप इन्द्रियों से (परि यासि) प्राप्त करता है तब (स-युग्वभिः) अपने सहयोगी किरणों द्वारा (सूरः न) जिस प्रकार प्रेरक सूर्य या राजा (विश्वा द्वेषांसि तरति) अपने समस्त शत्रुओं को पार कर लेता या पराजित कर देता है उसी प्रकार (अरुषः) कान्तिमान् तेजस्वी (हरिः) हरणशील, या ईश्वर के प्रति गमन करने हारा योगी (अया) इस तरह (हरिण्या) दुःखों को मिटाने और ज्ञान को प्राप्त करने वाली (रुचा) विशेष दीप्ति से (पुनानः) प्रकाशमान होकर (स-युग्वभिः) अपने योगबल द्वारा वशीकृत अष्टांगों या इन्द्रियों और मन के द्वारा (विश्वा) समस्त (द्वेषांसि) द्वेष करने हारे प्राणियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और योग के शत्रुरूप अन्तर्विघ्न काम, क्रोध आदि रिपुओं को (तरति) पार कर जाता है, उन पर वश कर लेता है।

(९) (यद्) जब जीव और परमात्मा (समत्सु) एकत्र आनन्द प्राप्त करके समाधि के अवसरों पर (अनपच्युता) अविचलित राजा और मन्त्री के समान (अनपच्युता) काम, क्रोधादि शत्रुओं से कभी विचलित नहीं होते हैं तब (चेकितत्) ज्ञानवान् योगी (प्राचीं) प्रकृष्ट, उत्तमरूप से उपासना करने योग्य, सुप्राप्य, (प्रदिशं) उत्तमरूप से जानने योग्य दिशा, मार्ग के प्रकाश को (याति) प्राप्त कर लेता है और (दर्शतः) दर्शनीय (रथः) सूर्य के समान योगी का (सः) वह (दर्शतः) दर्शनीय (रथः) रमण करने हारा आत्मा (रश्मिभिः) ईश्वरप्रदत्त ज्ञानरश्मियों से और भी (यतते) आगे की ओर, मुक्तिमार्ग पर बढ़ता है। तब ही (जैत्राय) अपनी इस मुक्ति मार्ग की विजय के लिये (इन्द्रं) आत्मा को (हर्षयन्) धन्यवाद और साधुवाद देता हुआ, उसे और अधिक हर्षित और प्रबल करता हुआ (पौंस्या) बलशाली या बलप्रद (उक्थानि) स्तुतियों का (अग्मन्) उच्चारण करता है और सब विघ्नों के नाशक (वज्रं च) अपवर्ग रूप वज्र को भी प्राप्त करता है।

(२) हे सोम ! योगिन् ! (त्वं ह) तू ही निश्चयसे (पणीनां) व्यवहार में गति करने हारे या स्तुति करने हारे विद्वानों के (त्यत्) उस (वसु) जीवन या वास कराने हारे आत्मधन को (विदः) जानता है और उसको (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (धीतिभिः) धारण करने हारी (मातृभिः) प्रमा अर्थात् यथार्थ अनुभव के साधक ऋतंभरा प्रज्ञा द्वारा (दमे) इन्द्रियों और मन को दमन करने वाले (स्वे) अपने (दमे) आश्रयरूप आत्मा में (संमर्जयसि) खोजता या परिशोध लगाता है, और भी परिष्कृत करता है। (तत्) वह परम आश्रय रूप आत्मा (परावतः) दूर देश से सुनाई देने हारे (साम न) गान के समान मनोहर है। (यत्र) जिसमें (धीतयः) ध्यान करने हारे योगी आश्रय लेकर (रणन्ति) रमण करते हैं। वह आत्मज्ञानी योगी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्रि-धातुभिः) तीन प्रकार की धारणा करने वाली इन्द्रियों से सम्पन्न (अरुषीभिः) कान्तियों या दीप्तियों या किरणों से ही (वयः) जीवन और प्राण को (दधे) धारण करता है और फिर (रोचमानः) सूर्य के समान प्रकाशमान होकर (वयः दधे) चिरस्थायी जीवन और बल को धारण कर लेता है।

त्रिधातु मन, वाक्, काय। अथवा शरीर के धारक धातु, वायु, अग्नि और बल के सारभूत, वात, पित्त और कफ।

इति द्वितीय खण्डः।

[१५९३] उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।
नृवत् कृणुह्यूतये ॥ ११ ॥ ऋ० ६ । ५३ । १० ॥

भा०—(१) हे परमात्मन् ! आप (नः) हमें (गोषणिं) ज्ञानेन्द्रियों के प्रेरक, (उत) और (अश्व-सा) प्राणेन्द्रियों के प्रेरक (वाज सा) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने हारी (उत) और (नृवत्) नेतास्वरूप आत्मा को अपनाने हारे (धियम्) धारणावती बुद्धि और क्रिया शक्ति को (ऊतये) रक्षा के लिये (कृणुहि) प्रदान करो।

[१५९४] शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः।
विदा कामस्य वेनतः ॥ १२ ॥ ऋ० १ । ८६ । ८ ॥

भा०—(१) हे (सत्य-शवसः) विद्यमान रह कर सबके प्रेरक सत्य-बल से सम्पन्न (नरः) शरीर और इन्द्रियों को वहन करने हारे नेता-स्वरूप विद्वानो ! और प्राणो ! (शशमानस्य) शमादि गुणों का अभ्यास करने वाले (स्वेदस्य) प्राणायाम के अवसर पर समस्त गात्र में स्वेद धारण

१५९३—'कृणुहि वीतये' इति, ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले, उद्योगी वा (वेनतः) विद्वान् योगी के (कामस्य) मनः-संकल्प को (विद) प्राप्त कराओ ।

[१५९५] उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
सुमृडीका भवन्तु नः ॥ १३ ॥ ऋ० ६ । ५२ । ९ ॥

भा० — (१) ये जो (नः) हमारे (सूनवः) ज्ञान के उपदेश करने हारे विद्वान् या पुत्र हैं वे (अमृतस्य) मरणरहित, अजन्मा परमेश्वर के विषय में (गिरः) वाणियों को (उप शृण्वन्तु) प्रेम से श्रवण करें, करावें और (नः) हमारे लिये (सु-मृडीकाः) उत्तमरूप से सुखकारी आनन्दप्रद हों । अथवा — वे विद्वान् गण (नः गिरः उपशृण्वन्तु) हमें अपनी शुभ वेदोपदेशमय वाणियाँ श्रवण करावें ।

[१५९६] प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।
शुची उप प्रशस्तये ॥ १ ॥

[१५९७] पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
ऊह्याथे सनादृतम् ॥ २ ॥

[१५९८] मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥ ३ ॥ १४ ॥
ऋ० ४ । ५६ । ५-७ ॥

भा० — (१) हे (द्यवी) प्रकाशमान् सूर्य और पृथिवी के समान प्राण और अपान (वां) आप दोनों को (अभि) साक्षात करके आपके (महि) बड़ी (उप स्तुतिं) गुणवर्णन (प्र भरामहे) करते हैं । आप दोनों (प्रशस्तये) उत्तम कीर्त्ति के कारण (शुची-उप) शुद्धस्वरूप हैं । अथवा द्यौ और पृथिवी के समान हे गुरु और शिष्य या परमात्मन् और मुक्त जीव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप दोनों (महि द्यवी प्रशस्तये शुची उप) स्तुति करने के लिये आप प्रकाशमान् और शुद्धरूप हो, आपको (अभि) साक्षात् कर हम (स्तुतिं उप प्र भरामहे) आपके गुणों का सर्वत्र वर्णन करते हैं।

(२) हे जीव और परमात्मन् ! या शिष्य और गुरो ! (स्वेन) अपने (तन्वा) शरीर अर्थात् स्वरूप और (दक्षेण) ज्ञान, बल और कर्म सामर्थ्य से (मिथः) परस्पर (पुनाने) एक दूसरे को पवित्र हुए (राजथः) प्रकाशित होते हो और (सनाद्) सदा काल से (ऋतं) सत्य ज्ञान को (ऊह्याथे) धारण करते हो।

(३) सूर्य और पृथिवी जिस प्रकार परस्पर एक दूसरे को जल और प्रकाश का वितरण करते हैं और परस्पर पूर्ण करते हैं उसी प्रकार हे गुरु और शिष्य ! आप दोनों (मही) बड़ी महिमा वाले (ऋतं) सत्यज्ञान को (तरन्ती) वितरण करते हुए और सत्य धर्म को (पिप्रती) पूर्णरूप से पालन करते हुए (मित्रस्य) मित्रस्वरूप परमात्मा की (साधथः) साधना करते हो और (यज्ञं) यज्ञ, परस्पर विद्या-स्वाध्यायरूप यज्ञ के लिये (परि नि षेदथुः) यज्ञ कार्यों से निवृत्त होकर एकान्त में बैठते हो।

[१५९९] अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

[१६००] स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥

[१६०१] ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो ।
समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥ १५ ॥ ऋ० १ । ३० । ४-६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१८३] पृ० ९८ ।

(२) हे (राधानां पते) समस्त आराधनाओं और ज्ञानों के एकमात्र स्वामिन् ! और समस्त विभूतियों के स्वामिन् ! हे (वीर) सर्वशक्तिमन् !

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे (गिर्वाहः) वाणियों द्वारा उपदेश करने हारे प्रभो ! गुरो ! (यस्य) जिसके (स्तोत्रं) समस्त सत्य उपदेश हैं उस (ते) तेरी ही (सूनृता) वेदवाणी (विभूतिः) विशेष सत्ता का प्रमाण या सम्पत्ति (अस्तु) हो ।

(३) हे (शत-क्रतो) शत प्रज्ञानों से युक्त या सैकड़ों कर्म करने हारे (इन्द्र) आचार्य ! (अस्मिन्) इस (वाजे) यज्ञ में (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये आप (ऊर्ध्वः) हमारे ऊपर सदा (तिष्ठ) विराजमान रहें (अन्येषु) हम अन्य अवसरों पर भी (सं श्रवावहै) परस्पर सत्संग कर ज्ञान लिया और दिया करें ।

यहां इन्द्र अर्थात् आत्मा का गुरु परमात्मा है । "कस्य ब्रह्मचार्यसि; भवतः". "इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यसि" इत्यादि विधानों से इन्द्र ही गुरुस्थानीय है ।

[१६०२] ग्राव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १ ॥

[१६०३] अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु ।
अवटस्य विसर्जने ॥ २ ॥

[१६०४] सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् ।
नीचीनबारमक्षितम् ॥ ३ ॥ १६ ॥

ऋ० ८ । ७२ । १२, ११, १० ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [११७] पृ० ६२ ।

(२) (अद्रयः[1]) आदर करने योग्य विद्वान् पुरुष (अवटस्य) रक्षण करने हारे देहबंधन के (विसर्जने) परित्याग के अवसर पर (पुष्करे[2]) उस को पुष्ट करने हारे, उसमें बल के प्रदाता स्वतः आत्मा में

१६०३—(२) "अवतस्य विसर्जने", (३) "अव्रतमुच्चा चक्र" इति, ऋ० ।

१. अद्रय आद्रियमाणाः इति सायणः । २. पुष्करे प्रवृद्ध इति सायणः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(निक्तिं) पूर्ण रूप से विद्यमान या बरसते हुए (मधु) ज्ञानानन्द अमृत को (अभि आरभृ इत्) साक्षात् किया करते हैं।

(२) हे विद्वान् आत्मज्ञानी गण ! (नीचीन-बारं) निर्बल इन्द्रिय आदि नव द्वारों वाले, (उच्चा-चक्रं) उच्च प्राणचक्र वाले (अवटं) इस देह को (नमसा) अन्न द्वारा (सिंचन्ति) सबल बनाये रहते हैं अर्थात् जब तक देह बना रहता है तब तक उसकी अन्न से रक्षा करते हैं।

इति तृतीय: खण्ड: ।

[१६०५] मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥१॥

[१६०६] सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥ २ ॥ १७ ॥ ऋ० ८ । ४ । ७, ८ ।

भा०—(१) हे परमात्मन् ! (तव सख्ये) आपके मित्र भाव में रहते हुए हम (मा भेम) कभी भय न करें । (मा श्रमिष्म) कभी श्रम से पीड़ित न हों, कभी न थकें । (उग्रस्य) बड़े बलवान्, (वृष्णः) सब सुखों की वर्षा करने हारे (ते) तेरा (कृतं) बनाया हुआ यह संसार (अभि-चक्ष्यं) साक्षात् स्तुति योग्य, दर्शनीय एवं (महत्) बहुत बड़ा है । हम इसमें (तुर्वशं[1]) हिंसाशील, जन्म, जरा, मरण और रोगों से परिपीड़ित या बेसबरा होकर भोग करने हारे या काम से पीड़ित, धर्म, अर्थ, काम मोक्ष आदि परवश करने हारे इस जीव को (यदुं) परमेश्वर

१६०६—१. तुर्वशं—तुर्वी हिंसायाम् (भ्वादिः) इत्यतो बाहुलकाद् 'अशच्' औणादिकः । हिंसति । हिंस्यते वा व्याध्यादिभिरिति तुर्वशः । तूर्व-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नियम में स्थित या यम नियमादि का अभ्यासी होकर विषयों से उपरत हुआ (पश्येम) देख लें ।

(२) (वृषा) वर्षण करने हारा, वीर्य का सेचक पुरुष (दानः) समस्त प्राणियों को जीवन दान करते हुए मेघ के समान वीर्य दान करता हुआ (सध्र्यां) उत्पादनशील भूमि के समान (स्फिग्यां) कटिप्रदेश में स्थित गर्भधानी में (अनुवावसे) जीव के रूप में स्वयं वास करता है । आत्मा वै जायते पुत्रः । वह (अस्य) इस गर्भगत जीव के प्रति (न रोषति) कभी कोप नहीं करता, वहां (सारघेण) प्रसरणशील, सारवान् (मध्वा) अमृत जीव (Sperm) से (सम्पृक्ताः) संसक्त हुई (धेनवः) शुक्रधाराएं (protoplasm) हैं । हे जीव ! तू (तूयम्) शीघ्र ही (एहि) आ और (द्रव) शीघ्र आ और (पिब) उस पोषक रस का पान कर ।

(वृषा सध्र्यांवावसे) जलों का वर्षक इन्द्र वीर्य कटिभाग में सब प्राणियों को ढक लेता है (दानो न अस्य रोषति) वह दानशील यजमान इन्द्र पर रोष नहीं करता (सारघेण मध्वा सम्पृक्ताः) मधुमक्खी के शहद के समान रसीले दूध आदि से मिश्रित (धेनवः) धेनु = हमारे पान करने योग्य सोम है । (तूयम् एहि द्रव पिब) हे इन्द्र तुम शीघ्र २ आओ पान करो । यह अर्थ सायणकृत है ।

यहां वस्तुतः गर्भ में बीज के आने, जमने, जीव के प्रवेश और पालन का वर्णन है । यज्ञकाण्ड के अनुसार इन्द्र को उत्तरवेदि स्थान

स्वरत्युद्धिंसनयोः (दिवादिः) श्यत्वतः तूर्णमश्नुते इति पृषोदरादित्वा- त्पूर्वपदह्रस्वः वकारश्चोपजनः तुर्वशः, असन्तुष्टः । यद्वा तुर्वशः कामो यस्य सः । यद्वा, वश कान्तौ (दिवादिः) श्यतः अप् । त्वरितुं धर्मादिषु वशोऽस्येति, चकारलोपेन तुर्वशः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बुलाया जाता है वहां ही सोम तय्यार करके रक्खे जाते हैं। और उत्तर वेदि योषा और योनि का प्रतिनिधि है। योषा वै उत्तरवेदिः (शत०)। इस यज्ञार्थ पर विचार करने से वे सब रहस्य स्पष्ट होते हैं। पुरुष का वीर्य प्रोटोप्लाज़म और स्पर्म अर्थात् जीव का भोज्य पदार्थ और बीज कीट से बना होता है। गर्भ में रहित होकर वह वहां उसी के आधार पर जाकर गर्भधानी या छत्रक या कमल (प्लेसेन्टा) नामक स्थान जिसको वास्तविक योनि कहना चाहिये, उस पर जमता है और वहां ही पुष्टि को प्राप्त होकर १०वें मास में बाहर आता है, यह जीवन-उत्पत्ति का रहस्य है।

[१६०७] इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो वर्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥

[१६०८] अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये
॥ २ ॥ १८ ॥ ऋ० ८ । ३ । ३, ४ ॥

भा० (१) हे (पुरु-वसो) समस्त प्रजाओं में वास करने और और प्रचुर धन के स्वामी ! इन्द्रियों में वास करने और नाना जीवों को बसाने हारे (इन्द्र) आत्मन् ! परमात्मन् ! (मम) मेरी (इमाः) ये (गिरः) वेदवाणियां (त्वा उ) तुझको (वर्धन्तु) बढ़ावें, तेरी बलवृद्धि करें। तुझको ही (पावक-वर्णाः) अग्नि के समान कान्ति वाले, तेजस्वी, अथवा पालन करने हारे स्वरूप वाले शुद्ध, उदार, धर्मात्मा (शुचयः) स्वयं तेजस्वी, शुद्धहृदय, (विपश्चितः) तपस्वी, ज्ञानवान् विद्वान् गण (स्तोमैः) उत्तम वेदमन्त्रों द्वारा (अभि अनूषत) साक्षात् ज्ञान करके तेरा गुणगान करते हैं। (अवि० सं० २५०) पृ० १२८।

(२) (अयं) वह आत्मा और परमात्मा (सहस्रं) हज़ारों (ऋषिभिः) मन्त्रार्थ-द्रष्टा, तत्वज्ञानियों और अतीन्द्रिय अर्थ के दर्शन करने हारे परम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगियों द्वारा (सहस्कृतः) बल से युक्त, बलवान्, तीव्र, सब दुःखों पर विजयी किया जाकर (समुद्रः इव) रसधाराओं, आनन्दतरंगों को ऊपर उमड़ाने वाले समुद्र के समान (पप्रथे) विस्तार को प्राप्त हो जाता है अर्थात् आनन्द सागर के समान उमड़ पड़ता है । (अस्य) इस आत्मा की (सः) वह (महिमा) महिमा (सत्यः) सत्य है और (विप्र-राज्ये) मेधावी विद्वानों के राज्य, अधिकार, शासन, शिक्षण में और (यज्ञेषु) धर्म कर्मों में (अस्य) इस आत्मा के ही (शवः) बलकी (गृणे) महिमा का वर्णन करूं ।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
[१६०९] यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ १ २
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ॥१॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१६१०] तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः
॥ २ ॥ १६ ॥ ऋ० ८ । ५१ । ९, १० ॥

भा०—(१) (यस्य) जिस परमात्मा का (अयं) यह (विश्वः) समस्त (आर्यः) श्रेष्ठ (अरिः) मनुष्य (शेवधि-पाः) उसके दिव्य धन, ज्ञान की रक्षा करने हारा (दासः) भृत्य के समान है और उस यज्ञरूप (अर्ये) स्वामी, (रुशमे) सबके नियन्ता, (पवीरवि[1]) पाप-निवारक राजदण्ड के समान परम तपः-स्वरूप वज्र को धारण करने हारे परमात्मा में (तिरश्चित्) यह सब विद्यमान है । हे प्रभो ! (तुभ्य इत्) स्थूल सृष्टि में तेरे गुणों के दर्शन के लिये ही (सः) वह (रयिः) प्राण

१६११—१. पविः शल्यो भवति । यद् विपुनाति कार्यं । तद्वत् पवीरमायुधं तद्वान् पवीरवान् (नि० । दै० अ० २१ । ख० ३०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और देह, पृथिवी आदि सब मूर्त पदार्थ (अज्यते) प्रकट होते हैं। तू ही इन का स्वामी सञ्चालक, कर्त्ता धर्त्ता है।

(२) (तुरण्यवः) क्षिप्रकारी, अभ्यासी, कार्यकुशल, (विप्रासः) विद्वान् लोग (घृतश्चुतम्) तेज के देने हारे (मधुमन्तम्) आनन्दप्रद, ज्ञानमय (अर्कं) पूजनीय इन्द्र, आत्मा को (आनृचुः) उपासना करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि (अस्मे) हम में (रयिः) प्राणबल और ज्ञान का प्रकाश (पप्रथे) बढ़े और (अस्मे) हम में (वृष्ण्यं) वीर्यवान् (शवः) बल बढ़े और (स्वानासः) प्रेरणा करने हारे (इन्दवः) शुक्रों की वृद्धि हो। बल, वीर्य और शुक्र प्राप्ति की कामना से विद्वान् लोग आत्मज्ञान करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करें।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
[१६११] गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धनिव।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
[१६१२] स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १र २र३ १ २ ३ १ २
[१६१३] सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कंचिदत्रिणम्।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
साह्वां इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ३ ॥ २० ॥

ऋ० ९ । १०५ । ४-६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५७४] पृ० २९३।

(२) हे (इन्दो) योगिन् ! हे (हरीणां पते) इन्द्रियों के पालक जितेन्द्रिय ! (देव-प्सरस्तमः) दिव्य-पदार्थों के बीच सबसे अधिक तेज या दीप्ति से युक्त होकर (सः) वह आप (नर्यः) सब मनुष्यों के हितकारक (सख्ये) मित्र के लिये (सखा इव) मित्र के समान (नः) हमारे (रुचे) यश, तेज को बढ़ाने के लिये (भव) हो। (२) परमा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्मा के पक्ष में—हे परमात्मन् ! समस्त लोकों के स्वामिन् ! (इन्दो) ऐश्वर्यशील ! आप (प्सरस्तमः) सबसे बड़े शोभिमान् हो, आप हमें मित्र के समान होकर तेज प्रदान करें।

(३) हे (इन्दो) ऐश्वर्यशील राजन्, विद्वन्, परमात्मन् ! (त्वं) आप (अस्मत्) हमारे प्रति (सनेमि) अनादिकाल से चले आये मित्रभाव कृपाभाव को (आ) प्रकट करो। आप (साह्वान्) सब विघ्नों को पराजय करने हारे (अदेवम्) देव, परमेश्वर से रहित (अत्रिणं) केवल भोग करने हारे विषयलोलुप, (कं चित्) किसी भी भोगमय देह-बन्धन को (परि बाधः) विनाश करो और (द्वयुं) दो दो, द्वन्द्व, सुख दुःख, शीत उष्ण, जन्म मरण, इहलोक परलोक आदि के चाहने हारे इस अन्तःकरण को भी (अप) दूर करो।

[१६१४] अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते। सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥ १ ॥

[१६१५] विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति। अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद् वृषा हरिः ॥ २ ॥

[१६१६] अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः। हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ३ ॥ २१ ॥ ऋ० ९ । ८६ । ४३-४५ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५६४] पृ० २८८।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे विद्वान् पुरुषो ! (विपश्चिते) ज्ञानशील ब्रह्मज्ञानी, (पवमानाय) मुक्ति के मार्ग में गति करने हारे आत्मा के (गायत) गुण वर्णन करो । वह (अन्धः) देह को प्राण–धारण कराने हारा सोम आत्मा (मही) बड़ी (धारा न) जलधारा के समान (अति अर्षति) अपने तट रूप देहबंधनों को भी तोड़कर पार चला जाता है । (जूर्णाम्) जीर्ण हुई (त्वचम्) त्वचा को (अहिः न) जिस प्रकार सांप छोड़कर चला जाता है उसी प्रकार जो अपने जीर्ण कलेवर को छोड़कर (अति सर्पति) निकल भागता है और जो (हरिः) हरणशील, गतिशील, (वृषा) बलवान् आत्मा स्वयं (क्रीडन्) देहों में रमण करता हुआ भी (अत्यः न) अश्व के समान (असरद्) एक लोक से दूसरे लोक या दशा में भाग जाता है ।

(३) यह सोमरूप योगी, आत्मा, चन्द्र के समान भी वर्णन किया जाता है । वह (अग्रेगोः) इन्द्रियों का नेता और संसार-बन्धनों को काटकर सब भोगों को त्याग कर, आगे श्रेष्ठ पद की ओर जाने हारा, (राजा) प्रकाशमान्, तेजस्वी (आप्यः) कर्म और प्रज्ञानों या प्राणों में श्रेष्ठ (अह्नां) अपनी घटती और बढ़ती कलाओं द्वारा दिनों के (विमानः) रचने हारे चन्द्र के समान अपनी षोडश कलाओं से अपनी ज्योतियों को बनाने हारा (भुवनेषु) लोकों के समान प्राणों में (अर्पितः) स्थापित है । जो (हरिः) गतिशील आत्मा (घृतस्नुः) कान्ति और तेज से देदीप्यमान होकर या ज्ञान से स्नान करके (सुदृशीकः) सम्यक् तत्त्व, परमपद का दर्शन करने हारा, (अर्णवः) ज्ञानवान्, (ज्योतिः–रथः) ज्योतिष्मान् स्वरूप होकर (रायः) परम धन का अधिकारी (ओक्यः) परमपद के योग्य होकर (पवते) विचरण करता है ।

इति चतुर्थः खण्डः ।

इति सप्तमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः । सप्तमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥

इति षोडशोऽध्यायः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

अथाष्टमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥



॥ १ ॥ ऋषिः—१, ७ शुनःशेप आजीगर्तिः । २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । ३ शंयुर्बार्हस्पत्यः । ४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । ५ वामदेवो गौतमः । ६ रेभसूनू काश्यपौ । ८ नृमेध आंगिरसः । ९, ११ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । १० सुवकक्ष: सुकक्षो वाङ्गिरसः । १२ विरूप आंगिरसः । १३ वत्सः काण्वः । १४ एतत्साम ॥ देवता—१, ३, ७, १२ अग्निः । २, ८—११, १३ इन्द्रः । ४ विष्णुः । ५ इन्द्रवायू । ६ पवमानः सोमः । १४ एतत्साम ॥ छन्दः—१, २, ७, ९, १०, १२, १३ गायत्री । ३, ८ बार्हतः प्रगाथः । ४ त्रिष्टुप् । ५, ६ अनुष्टुप् । ११ उष्णिक् । १४ एतत्साम ॥

[१६१७] विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।
ऊर्जो धाः सहसो यहो ॥ १ ॥

[१६१८] यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे ।
त्वे इद्धूयते हविः ॥ २ ॥

[१६१९] प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।
प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ३ ॥ १ ॥

ऋ० १ । २६ । १०, ६, ७ ॥

भा०—(१) हे (सहसः यहो) बल से प्राप्त करने योग्य अग्ने ! प्रभो ! (विश्वेभिः) समस्त (अग्निभिः) ज्ञानवान् नेताओं और विद्वानों सहित (इदं) इस (वचः) वाणी, हमारी प्रार्थना को और (इमं) इस (यज्ञं) स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ को प्राप्त होकर हमें (ऊर्जः) परिपक्व या उपदेश योग्य ज्ञान (धाः) धारण कराओ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (यत् चित् हि) यद्यपि (शश्वता) नित्य (तना) आत्म-रूप यज्ञ द्वारा (देवं-देवं) वरुण, इन्द्र आदि नानारूप से उपास्यदेव की (यजामहे) हम उपासना करते हैं तो भी वह सब (हविः) प्रस्तुत करने योग्य उपासनामय स्तुति वचन और चरु आदि होम (त्वे इत्) तुझको ही लक्ष्य करके (हूयते) दिया जाता है ।

(३) (विश्पतिः) समस्त प्रजाओं का पालक (मन्द्रः) हर्षकारी, आनन्ददायक (वरेण्यः) वरण करने योग्य परमात्मा (नः) हमारा (प्रियः) प्रिय (अस्तु) हो । (स्वग्नयः) उत्तम आत्मज्ञानाग्नि से युक्त हो कर उसके भी (वयम्) हम (प्रियाः) प्रिय हों ।

[१६२०] इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥

[१६२१] स नो वृषन्नमुं चरुं सत्राादावन्नपा वृधि ।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ २ ॥

[१६२२] वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा ।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ३ ॥ २ ॥

ऋ० १ । ७ । १०, ६, ८ ॥

भा०—(१) हे विद्वान् पुरुषो ! (वः जनेभ्यः) आप लोगों के हित के लिये (विश्वतः) सबसे (परि) ऊपर विराजमान (इन्द्रम्) परमेश्वर इन्द्र की (हवामहे) उपासना करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वह (केवलः) अद्वितीय परमेश्वर (अस्माकं) हमारा सहायक (अस्तु) हो।

(२) हे (सत्रादावन्) समस्त पदार्थों के एक साथ देने हारे (वृषन्) सबसे श्रेष्ठ, सुखों के वर्षक परमात्मन् ! (सः) वह आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (अप्रतिष्कुतः) अद्वितीय, अपराजित, शक्ति-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान्, कभी सन्तुलित न होने वाले, कभी भूल चूक न करने हारे होकर (अमुं चरुं) अन्नादि पदार्थों के भोगने हारे अविनाशी इस देह-बन्धन को (अप वृधि) दूर करो।

(३) (वृषा) सब कामनाओं को पूर्ण करने हारा (वंसगः) सुन्दर गति वाला बैल (यूथा इव) जिस प्रकार गौओं के गोलों में चला जाता है उसी प्रकार (ओजसा) अपने बल से (ईशानः) सर्व शक्तिमान्, ऐश्वर्यवान् (अप्रतिष्कुतः) अद्वितीय परमेश्वर (कृष्टीः) मनुष्यों को (इयर्ति) प्राप्त होता है।

[१६२३] त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तुनः ॥१॥

[१६२४] पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः।
अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नो देवानि ह्वरांसि च
॥ २ ॥ ३ ॥ ऋ० ४।४९।९, १० ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल संख्या [४१] पृ० १२।

(२) हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप, पापों को भस्म करने हारे! परमेश्वर (त्वं) तू (अप्रयुत्वभिः) सदा साथ रहने वाले (अदब्धैः) अहिंसक, एवं अहिंसित, सुरक्षित (पर्तृभिः) पालकों द्वारा (तोकं) पुत्र, बालक और (तनयं) पौत्र को (पर्षि) पालन करता है। तू (नः) हमारे (दैव्या) आधिदैविक (हेडांसि) विपत्तियों और ज्ञान और सुखों के देने वाले गुरुजनों के प्रति तिरस्कार आदि के भावों को (अदेवानि च) आधिभौतिक और आध्यात्मिक, मानुष, असात्विक, तामस (ह्वरांसि) कुटिल संकटों और कुटिल आचरणों को (युयोधि) दूर कर।

[१६२५] किमित् ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद् ववक्षे शिपिविष्टो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्मि। मा वर्पो अस्मदपगूह एतद् यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ १ ॥

[१६२६] प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्। तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ २ ॥

[१६२७] वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्। वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ ४ ॥

ऋ० ७ । १०० । ६, ५, ७ ॥

भा०—(१) हे (विष्णो) सर्वव्यापक ! परमात्मन् ! (यद्) जब आप स्वयं अपने को (शिपिविष्टः) रश्मियों से आवृत तेजोमय पिण्डों में प्रविष्ट (अस्मि) हूँ इस प्रकार अपनी शक्ति को (ववक्षे) बतला रहे हैं, तब (ते) आपका (किं इत् नाम) क्या नाम या स्वरूप (परि चक्षि) कहा जाय । हे भगवन् ! (यत्) क्योंकि (समिथे) समाधि के अवसर पर आप (अन्यरूपः) दूसरे ही रूप में (बभूथ) प्रकट होते हैं । आप (एतत्) वह (वर्पः) तेजोमय रूप (अस्मद्) हम से (मा अप गूह) मत छिपाइये ।

(२) हे (शिपिविष्ट) रश्मियों से आविष्ट, अथवा तेजोमय लोकों में व्यापक परमात्मन् ! मैं (अर्यः) अपनी इन्द्रियों का स्वामी, जितेन्द्रिय होकर (वयुनानि) तेरे समस्त सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदि महान् कार्यों

१६२५—१. 'किमित्ते अद्य परिचक्ष्य भूत्प्र यद्ववक्षे', २, प्र तत्ते अद्य शिपिविष्टनाम्

मार्यः, इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (विद्वान्) जानता हुआ (तत्) वह अति प्राचीन (हव्यं) पुकारने, नित्य ग्रहण और शरण करने योग्य नाम (प्र शंसामि) कहता हूँ और (अस्य) इस (रजसः) प्राकृत लोकों के भी (पराके) दूर, परे मोक्ष में भी (क्षयन्तं) निवास करने हारे (तवसं) महान् (तं त्वा) उस सनातन तेरी मैं (अतव्यान्) तुच्छ व्यक्ति (गृणामि) स्तुति करता हूँ ।

(३) हे (विष्णो) सर्वव्यापक ! प्रभो ! विष्णो ! (ते) आपको मैं (आसः) अपने मुख से (वषट्) सर्व कामनाओं का पूरक (आकृणोमि) साक्षात् स्वीकार करता हूँ । हे (शिपिविष्ट) तेजोमय ! (मे) मेरा (तत्) वह (हव्यम्) ग्रहण योग्य हुआ स्तुति वचन (जुषस्व) स्वीकार करो (मे) मेरी (सुस्तुतयः) उत्तम स्तुतिरूप (गिरः) वेदवाणियां (त्वा) तुझको (वर्धन्तु) बढ़ावें, अर्थात् तेरी महिमा को बढ़ावें । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः) हम लोगों की (सदा) नित्य (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी साधनों से (पात) रक्षा करो ।

इति प्रथमः खण्डः ।

—:०:—

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१६२८] वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ १ ॥
१ २ ३ १ २ ३ १ २
[१६२९] इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
३ १२ २र ३ २उ ३ २ ३ २
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २ ॥
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१६३०] वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥ ५ ॥

ऋ० ४ । ४७ । १–३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) हे (वायो) प्राणात्मन् (दिविष्टिषु) दिव्य तेज की साधना के अवसरों में मैं (शुक्रः) वीर्यवान् तेजस्वी होकर (ते) तेरे लिये (अग्रम्) सबसे पूर्व (मध्वः) अमृत, ब्रह्मानन्दरस को (अयामि) प्राप्त करता हूँ। हे आत्मन् ! (हे देव) प्रकाशस्वरूप ! (स्पार्हः) अति स्पृहा का पात्र तू (नियुत्वता) नियुत् = प्राण और मनस्वरूप अश्व अर्थात् बलवान् साधन से (सोम-पीतये) सोमरस पान करने के लिये (आ याहि) प्राप्त हो ।।

(२) हे (वायो) प्राण और (इन्द्रः च) इन्द्र ! आत्मन् ! आप दोनों ही (सोमानां) ज्ञानों या ब्रह्मानन्द रसों का (पीतिं) पान करने के (अर्हथः) योग्य हैं। (इन्दवः) समस्त सोम और ब्रह्मरस का आनन्द लेने हारे योगी लोग भी (युवां) आप दोनों के प्रति (सध्र्यक्) एक साथ (निम्नं) नीचे, ढालू स्थान पर (आपः न) जलों के समान (यन्ति) चले जाते हैं।

(३) हे (वायो) ज्ञानवन् ! (इन्द्रः च) और ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! जीव ! (शवसः-पती) आप दोनों बल के परिपालक हैं, आप (नियुत्वन्ता) मनरूप अश्व से युक्त (शुष्मिणा) बलशाली होकर (सोम-पीतये) आत्मज्ञान रूप सोम के पान करने और (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा करने के लिये (आ यातम्) आइये, हमें प्राप्त हों।

इन्द्रियों का आत्मा और प्राण के प्रति, प्रजाओं का राजा या नरपति के प्रति और योगियों का आत्मा और प्राण के प्रति समानरूप से वचन है।

१ २ ३१२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२
[१६३१] अध त्वा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहसे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥ १ ॥

१६३१—१. 'वाजी अभिप्रगाहते' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१६३२] तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ।

[१६३३] तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥ ३ ॥ ६ ॥

ऋ० ६ । ६६ । २–४ ॥

भा०—(१) (यदि) जब (विवस्वतः) सूर्य के समान प्रेरक आदित्ययोगी की (धियः) अपनी चित्तवृत्तियां अपनी ध्यान और धारणा शक्तियों को (हरिं) प्राण या मन, या दुःखहारी प्रभु को (यातवे) आत्मा के समीप प्राप्त होने के लिये (हिन्वन्ति) प्रेरित करते हैं (अध) तब हे सोमरूप आत्मन् ! (क्षपा[1]) अन्धकार अज्ञानों का नाश करने हारी चित् शक्ति से (परिष्कृतः) सुभूषित होकर (वाजान्) नाना बलों और बल से साध्य कार्यों या ज्ञानों को (अभि) साक्षात् स्वयं तू (प्र गाहसे) पार कर जाता है ।

(२) (अस्य) इस सोमरूप प्राण या आत्मा के (तं) उस रसरूप को ओषधिरस के समान (मर्जयामसि) परिष्कृत करते हैं (यः) जो (मदः) आनन्दस्वरूप होकर (इन्द्र-पातमः) आत्मा द्वारा उत्तम रीति से आस्वादन किया जाता है । (यं) जिसको (गावः) ज्ञान-इन्द्रियगण और (सूरयः) प्राणेन्द्रिय (पुरा) पूर्वकाल में और (नूनं च) अब भी (आसभिः) देह में अपने नियत स्थानों या मुख-द्वारों से (दधुः) धारण करते हैं । अथवा जिसको (गावः सूरयः) वेदज्ञ विद्वान् पूर्वकालों में और अब भी, अपने (आसभिः) मुखों द्वारा वाणियों और स्तुतियों द्वारा (दधुः) धारण करते हैं ।

(३) (तं) उस (पुनानं) पवित्र करने हारे और स्वतः पवित्र सोम को (पुराण्या) पुरातन (गाथया) गानरूप छन्दोमय वेदवाणी

१. क्षपा क्षपयित्री सेना, इति सायणः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं (उत उ) और (देवानां) देवों, सूर्य, वायु, अग्नि आदि दिव्य पदार्थों का (नाम) नाम या स्वरूप (बिभ्रतीः) धारण करती हुई (धीतयः) वेदवाणियां भी उसको ही (कृपन्त) समर्थन करती हैं, उसका ही गुणगान करती हैं।

[१६३४] अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥

[१६३५] स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वां अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

[१६३६] स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
पाहि सदमिद् विश्वायुः ॥ ३ ॥ ७ ॥ ऋ० १।२७।१-३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१७] पृ० ६ ।

(२) (स घ) वह ही परमेश्वर (पृथुप्रगामा) विशाल ब्रह्माण्ड में व्यापक (शवसा सूनुः) समस्त संसार को अपने बलसे प्रेरण करने हारा (नः) हमें (सु-शेवः) उत्तम रूप से भजन करने योग्य है, वही (अस्माकं) हमारे (मीढ्वान्) सब सुखों को वर्षण करने वाला, मेघ के समान आनन्दकारी (बभूयात्) होवे ।

(३) (सः) वह आप जगदीश्वर (विश्वायुः) समस्त प्राणियों को पूर्ण आयु देने हारा (दूरात् च) दूर, वर्त्तमान और (आसात् च) समीप में वर्त्तमान (अघायोः) पापी (मर्त्यात्) मनुष्य से (नः) हमारे (सदम्) देह और गृह को और प्रतिष्ठा को (इत्) भी (नि पाहि) नित्य रक्षा करे ।

[१६३७] त्वामिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३१ २
[१६३८] अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १ २
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि
॥ २ ॥ ८ ॥ ऋ० । ८ । ६६ । ५, ६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [११९]

(२) (तुरयन्तं शिशुम्) गमन करते हुए बालक के प्रति (मातरा न) जिस प्रकार मा बाप जाते हैं उसी प्रकार (तुरयन्तं) गति प्रदान करते हुए तेरे या स्वतः देह से देहान्तर में गति करते हुए (ते) तेरे (शुष्मं) बल के साथ (क्षोणी) द्यौ और पृथिवी, प्राण और अपान (ईयतुः) गमन करते हैं । हे इन्द्र ! आत्मन् ! (यत्) जब (वृत्रं) विघ्नकारी अज्ञान तम का तू (तूर्वसि) नाश करता है तब (मन्यवे) मन्युस्वरूप या ज्ञानस्वरूप, मननशील (ते) तेरे आगे (विश्वाः) समस्त (स्पृधः) स्पर्धा करने वाले काम और क्रोध आदि अन्तःशत्रुओं की सब चेष्टायें (श्नथयन्त) शिथिल हो जाती हैं ।

इति द्वितीयः खण्डः ।

---

३ १र २र ३ ३ २उ ३ १ २
[१६३९] यज्ञ इन्द्रमवर्द्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् ।
३ १ २ ३ ३ २
चक्राण ओपशं दिवि ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१६४०] व्या३न्तरिक्षमातिरन् मदे सोमस्य रोचना ।
२ ३ १ २र ३ २
इन्द्रो यदभिनद् बलम् ॥ २ ॥

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
[१६४१] उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।
३ १ २ ३ २
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥ ९ ॥
ऋ० ८ । १४ । ५, ७, ८ ॥

१६४०—२. व्यपतिरद् व्यवर्धयदिति सायणः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ०—(१) व्याख्या देखो अवि० [१२१] पृ० ६५ ।

(२) (यद्) जब (इन्द्रः) आत्मा (वलम्) घेर लेने वाले काम, क्रोधादि तामस आवरण को (अभिनत्) तोड़ डालता है तब (सोमस्य) ज्ञान और शुक्र के (मदे) आनन्द हर्ष में (रोचना) प्रकाशमान (अन्तरिक्षम्) भीतर विराजमान चित्त को भी (व्यतिरत्[१]) अधिक शक्तिशाली बनाता है ।

भौतिक पक्ष में इन्द्र सूर्य है । बल मेघ है अन्तरिक्ष द्यौ, और पृथिवी के मध्य का वह भाग जहां मेघ विचरता है । सोम वायु का वेग है । जिस प्रकार वायु के बल से सूर्य मेघ को छिन्नभिन्न करता और अन्तरिक्ष को स्वच्छ कर देता है उसी प्रकार योगी का आत्मा प्राण के बल से अज्ञान आवरण को हटाकर अन्तःकरण को स्वच्छ कर देता है । इस प्रकार की उपमा का आधार लेकर श्लिष्टवचन द्वारा दोनों तत्व दर्शाये हैं ।

(३) इन्द्र, आत्मा (अंगिरोभ्यः) अंग अर्थात् देह में रस अर्थात् सार, प्राणरूप से वर्त्तमान इन्द्रियों के लिये (गुहा) अन्तःकरण रूप गुहा में (सतीः) वर्त्तमान (गाः) गमनशील, ज्ञानग्राहक शक्तियों को (आविष्कृण्वन्) प्रकाशित करता हुआ (उद् आजत्) ऊपर को प्रेरित करता है और (वलम्) बलवान् तामस आवरण को (अर्वाञ्चं) नीचे (नुनुदे) पटक देता है, अर्थात् विनाश करता है ।

अथवा—(इन्द्रः) परमेश्वर (गुहा सतीः गा आविष्कृण्वन्) निगूढ़ स्थान, अव्यक्तरूप में वर्त्तमान वेदवाणियों को प्रकट करता हुआ (अंगिरोभ्यः उदाजत्) विद्वानों, ज्ञानी ऋषियों को प्राप्त कराता है और (वलम् अर्वाचं नुनुदे) पाशविक तामस स्वभाव को उस ज्ञान के नीचे कर देता है ।

[१६४२] त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
आ च्यावयस्यूतये ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
[१६४३] युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् ।
१ २ ३ १ २
नरमवार्यक्रतुम् ॥ २ ॥

१ २ ३ २उ ३२ ३ १ २
[१६४४] शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वां ऋचीषम ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अवा नः पार्ये धने ॥ ३ ॥ १० ॥

ऋ० ८ । ६२ । ७, ६ ॥

भा०—(२) हे विद्वन् (युध्मं) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि भीतरी शत्रुओं को मार भगाने हारे (सन्तं) सत्यस्वरूप, सदा विद्यमान (अनर्वाणं) कूटस्थ, अन्य की अपेक्षा करके न चलने हारे, ध्रुवस्वरूप (सोमपाम्) ज्ञान, आनन्दरस का पान करने हारे (अनपच्युतम्) अपने शुद्ध पद से न गिरने हारे, (नरं) नेतारूप, (अवार्यक्रतुम्) अनिवार्य, नित्य, अविनाशी कर्म = उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के करने हारे, अथवा अविनाशी ज्ञानवाले इस इन्द्ररूप परमेश्वर को अपनी रक्षा के निमित्त स्मरण कर ।

(३) हे (ऋचीषम) स्तुतियों द्वारा प्राप्त करने योग्य इन्द्र ! परमेश्वर ! आप (विद्वान्) सर्वज्ञ हैं । आप (नः) हमें (रायः) धन, नाना प्रकार के दान (पुरु) बहुत वार, एवं बहुत से प्रकारों से (आ शिक्ष) दान दो । और (पार्ये) परम उत्कृष्ट (धने) धन, मोक्ष के प्राप्त करने में (नः) हमारी (अव) रक्षा कर ।

सायण ने 'पार्ये धने' इसका अर्थ किया है—"पाराः शत्रवः तत्र भवे धने" अर्थात् शत्रुओं का धन लूटने के अवसर पर ईश्वर हमारी रक्षा करे । इन्द्र अर्थात् = राजा के पक्ष में यह अर्थ संगत है । ईश्वर पक्ष में मोक्ष को 'पर पार' कहा जाता है । उसमें प्राप्त करने योग्य धन मोक्षानन्द है । इस को प्राप्त करने में आने वाले विघ्नों के बीच रक्षा करने की ईश्वर से प्रार्थना है । यही अर्थ आचार्य और गुरु के पक्ष में भी संगत है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १र २र
[१६४५] तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव दक्षमुत क्रतुम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
[१६४६] तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
२उ ३ १ २
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥
१र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
[१६४७] त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
१र २र ३ २ ३ १ २
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥ ११ ॥

ऋ० ८ । १५ । ७, ८, ९ ॥

भा०—(१) हे इन्द्र ! (तव) तेरे (त्यत्) उस (वरेण्यं) वरण करने योग्य (इन्द्रियं) ऐश्वर्यमय स्वरूप को, (बृहत्) बड़े भारी (तव दक्षम्) तेरे बल सामर्थ्य, अनन्त शक्ति को (उत) और (क्रतुम्) उस महान् कर्म = ब्रह्माण्ड संचालन को और वरण करने योग्य ज्ञानरूप (वज्रं) देहबन्धन काटने हारे मोक्षसाधन को हमारी (धिषणा) बुद्धि और वाणी (शिशाति) साक्षात् करती हैं, उसकी महिमा को दिखलाती है।

(२) हे (इन्द्र) इस संसार, जगत् को संचालन करने हारे ! (तव) तेरे (पौंस्यं) बल, पौरुष को (द्यौः) वह द्यौलोक जिसमें समस्त सूर्य, नक्षत्र आदि तैजस पिण्ड भ्रमण करते हैं (बर्धति) विशाल रूप में प्रकट करता है। और (तव श्रवः) तेरी कीर्त्ति को (पृथिवी) यह पृथिवी (वर्धति) बढ़ा रही है। (आपः) ये जल, नदियें और (पर्वताश्च) पहाड़ (त्वा) तेरी ही (हिन्वरे) स्तुति गान कर रहे हैं।

(३) हे परमेश्वर ! (बृहन्) बड़ा भारी (क्षयः) निवासस्थान (विष्णुः) सर्वव्यापक आकाश या पृथिवी (मित्रः) स्नेहवान् जल (वरुणः) वरण करने योग्य अग्नि आदि ये सब दिव्य पदार्थ (त्वां गृणाति) तेरी स्तुति करते हैं। (मारुतं) वायु का (शर्धः) बल, वेग (त्वां) तेरे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही (अनु मदति) अनुकूल रहकर हर्ष को प्राप्त होता है, नाना प्रकार से नृत्य करता है ।

इति तृतीयः खण्डः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१६४८] नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।
१ २ ३ १
अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१६४९] कुवित् सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् ।
१ २ ३ १ २
उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ २ ॥

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३
[१६५०] मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद् यथा ।
३ २ ३ २ ३ १ २
संवर्गं सं रयिं जय ॥ ३ ॥ १२ ॥

ऋ० ८ । ७५ । १०-१२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [११] पृ० ...

(२) हे (अग्ने) परमेश्वर ! आप (नः) हमारे (गविष्टये) आत्मा और इन्द्रियों के इष्ट साधन के लिये (रयिम्) उपयुक्त विषयरूप धन और प्राणरूप सामर्थ्य को (कुवित) बहुत (सु संवेषिषः) अच्छे प्रकार प्राप्त करता है । हे (उरु-कृत्) महान् कार्यसम्पादक आप (नः) हमें भी (उरु कृधि) महान कीजिये ।

(३) हे अग्ने ! (यथा भारभृत्) जिस प्रकार बोझ उठाने वाला अपना बोझ परे फैंक दिया करता है उसी प्रकार (महाधने) मोक्षरूप धन की प्राप्ति के अवसर में (नः) हमें बोझासा जानकर (मा परा वर्ग्) परे न हटा, बल्कि हमें (संवर्गं) उत्तम मोक्षरूप (रयिं) धन को (सं जय) प्राप्त करा दे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१६५१] समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥

[१६५२] वि चिद् वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना ।
वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

[१६५३] ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ३ ॥ १३ ॥

ऋ० ८ । ६ । ४, ६, ५ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१३७] पृ० ७५ ।

(२) (दोधतः) समस्त जगत् को कंपाने हारे (वृत्रस्य) आवरक अज्ञान या विघ्न के (शिरः चित्) शिरोभाग, मूल, जड़ को भी परमेश्वर अपने (शत-पर्वणा) सैकड़ों पोरुओं = पालक शक्तियों के बने (वृष्णिना) सुखों के वर्षक (वज्रेण) वज्ररूप ज्ञान से (बिभेद) तोड़ डालता है ।

(३) (तत्) उस समय (अस्य) इस परम आत्मा का (ओजः) सामर्थ्य और तेज (तित्विषे) प्रकाशित होता है (यत्) जब (इन्द्रः) परमेश्वर (उभे रोदसी) द्यौ और पृथिवी दोनों को (चर्म इव) मानों चमड़े से ढोल के समान (समवर्त्तयत्) मढ़कर तैयार कर देता है । अर्थात् सृष्टि के प्रकट होने पर ही ईश्वर की विभूति का पता चलता है । अथवा (अस्य तत् ओजः तित्विषे) ईश्वर का वह तेज ही चमकता है । (यत् इन्द्रः चर्म इव उभे रोदसी समवर्तयत्) जिसको वह दोनों आकाश और पृथिवी पर चाम के समान मढ़े हुए हैं । अर्थात् उसी का सर्वत्र तेज है ।

[१६५४] सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥ १ ॥ (यजु०)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
[१६५५] सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि।
२ ३ १र २र
ताविमा उप सर्पतः॥ २॥
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१६५६] नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति।
१ २ ३ १ २ ३ १
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन्॥ ३॥ १४॥

तिस्रोऽपि ऋग्वेदे न सन्ति।

भा०—(१) (सूनरी) उत्तम शरीर–रथ की नेत्री, चितिशक्ति स्वयं ही (रन्ती) समस्त क्रीड़ा, चेष्टा, व्यापार करने हारी (वस्वी) प्राणरूप वसुओं की स्वामिनी (सुमन्मा) उत्तम रूप से मनन करने हारी है।

(२) हे (सरूप) चितिशक्ति के समान रूपवाले इन्द्र, आत्मन्! (वृषन्) सर्वश्रेष्ठ! (आ गहि) आ, प्रकट हो। (इमौ) ये दोनों (भद्रौ) कल्याण और सुखकारी (धुर्यौ) शरीर के धारक प्राण और अपान (अभि) प्रत्यक्षरूप में दिखाई देते हैं। (तौ इमौ) वे दोनों शरीर या नासिका में (उप सर्पतः) गति करते हैं।

(३) हे विद्वान् पुरुषो! आत्मा (आपस्य) इस प्राप्त देह के (मध्ये) भीतर (दशभिः) दश (शृङ्गेभिः) प्राणों द्वारा (दिशन्) ज्ञान और कर्म करता हुआ (तिष्ठति) विराजमान रहता है। आप लोग उन (शीर्षाणि इव) शिरोभाग में रहने वाले दशों ही मुख्य प्राणों को (निर्मृढ्वम्) स्वच्छ या वश करो।

इति चतुर्थः खण्डः।

इति सप्तदशोऽध्यायः।

इति अष्टमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः।



१६५४—१. अग्निर्देवता जीवानन्दीये।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ अष्टादशोऽध्यायः ॥

अथाष्टमप्रपाठकस्य द्वितीयोर्द्धः ।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चांगिरसः । २ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा० ङ्गिरसः । ३ शुनःशेप आजीगर्तिः । ४ शंयुर्बार्हस्पत्यः । ५ मेधातिथिः काण्वः । ६, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । ७ वालखिल्यम् । आयुः काण्वः । ८ अम्बरीष वार्षागिः । ऋजिश्वा च भारद्वाजः । १० विश्वमना वैयश्वः । ११ सोभरिः काण्वः । १२ सप्तर्षयो भारद्वाजः—कश्यप—गोतम—अत्रि—विश्वामित्र-जमदग्नि वसिष्ठाः । १३ कलिः प्रागाथः । १४, १७ विश्वामित्रो गाथिनः । मेध्यातिथिः काण्वः । १६ निध्रुविः काश्यपः । १८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । १६ पतत्साम वामदेवः । देवता—१, २, ४, ६, ७, ६, १०, १३, १५ इन्द्रः । ३, ११, १८, १९ अग्निः । ५ विष्णुः । ८, १२, १६ पवमानः सोमः । १४, १७ इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१—५ १४, १६—१८, १६ गायत्री । ६, ७, ९, १२, १३ प्रागाथम वार्हतम् । ८ अनुष्टुप् । १० उष्णिक् । ११ प्रागाथं काकुभम् । १५ बृहती । १६ इति साम ॥

[१६५७] पन्यंपन्यमित् स्तोतार आ धावत मद्याय ।
सोमं वीराय शूराय ॥ १ ॥

[१६५८] एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥ २ ॥

१६५७—२. "गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम्" इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २ ३ १ र २ र ३ २ र ३ २
[१६५९] पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् ।
१ २ ३ १
नि यमते शतमूतिः ॥ ३ ॥ १ ॥

ऋ० ८ । २ । २५, २७, २६ ।

भा०— (१) व्याख्या देखिये अवि० सं० [१२३] पृ० ६८

(२) (इह) इस पिण्ड में (ब्रह्म-युजा) ब्रह्म के साथ समाधि द्वारा युक्त होने वाले, (शग्मा) शक्तियुक्त (हरी) दोनों प्राण और अपान (सखायं) परमेश्वर के मित्रभूत (गिर्वणसम्) गिराओं, वेदवाणियों का सेवन करने हारे (इन्द्रम्) इस जीव को (गीर्भिः) स्तुतियों, प्रार्थना और उपासनाओं के साथ २ (आ वक्षतः) ब्रह्म तक प्राप्त कराते हैं ।

(३) (सुतं) आनन्दरस को या प्रेरक बल को (पाता) पान करने या धारण करने और (वृत्रहा) विघ्नों का नाश करने वाला वह आत्मा (अस्मत्) हमारे (आरे) समीप (घ) ही (आ गमत्) प्राप्त है । यह (शत-मूतिः) सैकड़ों प्रकार से शक्तिशाली होकर (नि यमते) संयम साधना करता है ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१६६०] आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
२उ ३ १ २
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १ ॥
३ १ २ ३ १ २ ३ १ र २ र
[१६६१] विव्यक्थ महिना वृषन् भक्षं सोमस्य जागृवे ।
१ २ ३ १ २
य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २ ॥
१ २ ३ २ ३ १ २
[१६६२] अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अरं धामभ्य इन्दवः ॥ ३ ॥ २ ॥ ऋ० ८।१२।२२–२४ ॥

१६६२—१. सूयत इति सोमः ।

२. वृत्रहन् पापस्य वा हन्तः, इति सायणः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [१९७] पृ० १०४ ।

(२) हे (इन्द्र) प्रभो ! परमेश्वर ! (यः) जो सोमरूप[1] जीव स्थावर, जंगम, संसार (ते जठरेषु) तेरे भीतर, तेरे उदर या मध्यभाग में तेरे आश्रय में है, हे (वृषन्) सब सुखों के वर्षक ! उस (सोमस्य) समस्त संसार के (भक्षं) स्वल्प से ग्रास को भी हे (जागृवे) जागरणशील तू ही (महिना) अपनी महिमा से (विव्यक्थ) व्याप्त कर रहा है ।

आत्मपक्ष में—हे इन्द्र ! तेरे (अन्तः) हृदयाकाश में, अन्तःकरण और इन्द्रियों में जो सोम, ब्रह्मज्ञान का आस्वाद है उस सोम के आस्वाद को भी तू अपने (महिना) बड़े सामर्थ्य से प्राप्त करता है।

सोमरस और राजा के प्रकरण में स्पष्ट है । भौतिक पक्ष में—सूर्य इन्द्र अपने जठर = रश्मियों से जल को उठा लेता है और सदा देदीप्यमान रहकर अपनी विशाल शक्ति से जल के उस सूक्ष्म अंश को धारण किये रहता है ।

(३) सूर्य जिस प्रकार प्रकाश के आवरण को दूर हटाता है उसी प्रकार पाप का नाश करने हारे हे (वृत्रहन्[2]) विघ्नकारी तामस आवरण के नाशक ! (सोमः) यह समस्त सोमरूप उत्पन्न हुआ स्थावर, जंगम संसार (ते) तेरी (कुक्षये) कोख में या गर्भ में रहकर तेरी महती शक्ति को दर्शाने के लिये (अरं भवतु) पर्याप्त है, वह बहुत बड़ा और महान् है (इन्दवः) बहुत से इसी प्रकार के ब्रह्माण्ड या देदीप्यमान लोक (धामभ्यः) तेरी बड़ी २ धारणा शक्तियों का साक्षात्कार कराने के लिये भी (अरं) पर्याप्त हैं अर्थात् यही तेरी शक्ति की महत्ता के भारी दृष्टान्त हैं ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ ३ १ २
[१६६३] जराबोध तद् विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।

१ २ ३ १ २ ३ २
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१६६४] स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः।
धिये वाजाय हिन्वतु ॥ २ ॥

[१६६५] स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः।
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥ ३ ॥ ३ ॥

ऋ० १। २७। १०-१२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१५] पृ० ७।

(२) (सः) वह अग्निरूप सब का मार्गदर्शक, सर्वज्ञ, परमेश्वर (महान्) महान् (अनिमानः) अनन्त, अपरिमेय, (धूम-केतुः) समस्त संसार को स्पन्दन या गति देने हारे सामर्थ्य से जानने योग्य (पुरुश्चन्द्रः) सबसे अधिक प्रकाशमान, सब प्रकाशमान पदार्थों का प्रकाशक परमात्मा (नः) हमें (धिये) विचार शक्ति, बुद्धि और (वाजाय) बल और सामर्थ्य प्राप्त करने के लिये प्रेरित करे।

(३) (सः) वह (अग्निः) सबका नेता, ज्ञानवान् (उक्थैः) वेद की ज्ञानराशियों से (बृहद्-भानुः) विशाल तेजःसम्पन्न (दैव्यः) सर्व दिव्यगुणों से युक्त (केतुः) समस्त संसार का ज्ञापक, (विश्पतिः) प्रजा का पालक, प्रजापति, परमात्मा (रेवान् इव) बड़े भारी धनी सेठ पुरुष के समान (नः) हम उपासकों की (शृणोतु) प्रार्थना श्रवण करे।

[१६६६] तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने।
शं यद् गवे न शाकिने ॥ १ ॥

[१६६७] न घा वसुर्नियमते दानं वाजस्य गोमतः।
यत् सीमुपश्रवद् गिरः ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१६६८] कुवित् सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥ ४ ॥

ऋ० ६ । ४५ । २२-२४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [११५] पृ० ६२ ।

(२) (यत्) जब (सीम्) वह (गिरः) हमारी स्तुतिमय वाणियों को (उप-श्रवत्) सुन लेता है तब वह (वसुः) सब संसार को बसाने हारा और सर्वव्यापक (गोमतः) रश्मियों और प्राणों या वेदवाणियों से युक्त (वाजस्य) ज्ञान और बल के (दानं) ब्रह्मदान, अन्नदान और जीवन-दान को देने से (न घ) कभी नहीं (नि यमते) रुकता है ।

(३) (सः) वह (दस्युहा) उपक्षय करने हारे या क्षयशाली विनाशी देह या अज्ञान का विनाश करने हारा आत्मा (गोमन्तं) ज्ञानेन्द्रिय और प्राणेन्द्रिय रूप गौओं के निवासस्थान (व्रजं) बाड़ा रूप देह को (हि) निश्चय से (कुवित्) बहुतबार (प्र अगमत्) प्राप्त कर लेता है । परन्तु (स्यः) वह ही उसको (शचीभिः) ज्ञान और कर्म-साधनाओं से (नः) हमारे उस देहबन्धन को (अप वरत्) परे हटा देता है और मुक्त हो जाता है । अथवा—(कुवित्सस्य[1]) कुत्सित ज्ञान वाले अल्पज्ञानी जीव के या अपना बहुत सा नाश करने हारे मूढ़ अज्ञानी के (गोमन्तं व्रजं दस्युहा अगमत्) अज्ञान दस्यु का विनाशक, गुरु या परमदेव परमात्मा उसके गोमान् व्रज अर्थात् अन्तःकरण में प्राप्त होकर (शचीभिः) अपनी ज्ञान प्रेरणाओं से उस बन्धन को (नः) हमारे कल्याण के लिये (अप वरत्) दूर कर देता है । अथवा—'कुवित्स'

१६६८—१. कुत्सितं विन्दते वेत्ति सनोति च तस्य, अथवा कुवित् बहुशः स्यति-छिनत्ति इति कूवित्सः स्य इति सायणः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत से देहों का नाश करने हारे अर्थात् जो बहुत से जन्म लेकर बहुतसे देहों को त्याग चुकता है उस जीव को ईश्वर पुनः देहबन्धन से मुक्त कर देता है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ॥ गीता ॥

इति प्रथमः खण्डः।

—:०:—

३ २उ ३ १ २ ३ १२ २२ ३२
[१६६९] इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
१ २ ३ २
समूढमस्य पांसुले ॥ १ ॥

१ २ ३१२ २२ ३ १ २ ३ १२ २
[१६७०] त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
२ ३ १ २ ३ १ २
अतो धर्माणि धारयन् ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१६७१] विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

१२ २२ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
[१६७२] तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
३ २ ३ २ ३ १ २
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ४ ॥

१२ २२ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २
[१६७३] तद विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
२ ३ १ २ १ २ ३ १
विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ २
[१६७४] अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
३ २उ ३ १
पृथिव्या अधि सानवि ॥ ६ ॥ ५ ॥

ऋ० १। २२। १६–२१, ।९।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) (विष्णुः) सर्व व्यापक परमात्मा ने (इदं) यह समस्त विश्व (विचक्रमे) बनाया और उस को व्याप लिया। (त्रेधा) तीन प्रकार से (पदं) व्यापकशक्ति को (निदधे) स्थापन किया। (अस्य) इसके (पांसुले) लोकों को धारण करने हारे बल में यह समस्त विश्व (समूढम्) उत्तम रीति से स्थित है। व्याख्या अवि० सं० [२२२]

(२) (गोपाः) समस्त गतिशील लोकों का पालक (अदाभ्यः) नित्य अविनाशी (विष्णुः) वह व्यापक परमात्मा (अतः) निरन्तर गति द्वारा ही (धर्माणि) समस्त लोकों का (धारयन्) धारण करने हारा होकर (त्रीणि) तीन (पदा) शक्तियों से (वि चक्रमे) समस्त विश्व को बना और चला रहा है।

(३) (विष्णोः) उस सर्वव्यापक परमात्मा के (कर्माणि) आश्चर्यजनक कार्यों को (पश्यत) देखो (यतः) जिन कर्मों को देखकर (व्रतानि) जीव समस्त ज्ञानों को (पस्पशे) प्राप्त करता है। वह ही परमात्मा (इन्द्रस्य) इस जीवात्मा का (युज्यः) सदा साथ रहने हारा (सखा) समान ख्याति अर्थात् = नाम से युक्त आत्मा, उसका मित्र है।

(४) (विष्णोः) सर्वव्यापक परमेश्वर के (तत्) उस सर्वोत्तम (परमं) परम उत्कृष्ट (पदं) धाम, परमबल, मोक्षज्ञान को शास्त्रदृष्टि से (सूरयः) विद्वान्, आदित्य के समान ज्ञानी पुरुष (सदा) निरन्तर (पश्यन्ति) देखते हैं। वह परम ज्ञान (दिवि) आकाश और पृथिवी में (चक्षुः इव) सर्व पदार्थों के दर्शक सूर्य के समान (आततम्) सर्वत्र व्यापक है।

(५) (विष्णोः) सर्वव्यापक ईश्वर का जो (परमं) उत्कृष्ट (पदं) ज्ञानमय स्वरूप है। (तत्) उसको (वि-पन्यवः) विशेष रूप से सत्य का यथार्थ वर्णन करने हारे (विप्रासः) मेधावी विद्वान् (जागृवांसः) निरन्तर ज्ञानदृष्टि से जागरण करने हारे, प्रमादरहित होकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(समू इन्धते) प्रदीप्त करते हैं, उसको प्रकाशित करते हैं, उसको अपने हृदय-मंदिर में प्रज्वलित करते हैं, उसकी ज्योति जगाते हैं।

(६) (यतः) जिस कारण से (विष्णुः) सर्वव्यापक परमेश्वर (वि चक्रमे) सब संसार को रचता है और चलाता है (अतः) उसी बल से (देवाः) समस्त दिव्य पदार्थ अग्नि, वायु, जल, पृथिवी, आकाश आदि भूत और सूर्य, चन्द्र आदि सब लोक, या विद्वान्गण (पृथिव्याः) इस लोक के (अधि सानवि) उच्च से उच्च भाग पर या उत्कृष्ट पद मोक्ष प्राप्ति के निमित्त भी (नः) हमें (अवन्तु) प्राप्त करावें।

इन मन्त्रों पर भाष्यकारों का अद्भुत मतभेद है और वह सभी विचार योग्य है। हम संक्षेप से उल्लेख करते हैं—

(१) सायण—(विष्णुः) त्रिविक्रमावतारधारी ने इस जगत् को उद्देश करके (विचक्रमे) विशेष रूप से क्रमण किया और तब (त्रेधा पदं निदधे = त्रिभिः प्रकारैः स्वकीयं पदं निक्षिप्तवान्) तीन प्रकारों से अपना पद रक्खा। (अस्य पांसुले समूढं = विष्णोः धूलियुक्ते पादस्थाने इदं सर्वं जगत् सम्यगन्तर्भूतम्) इस विष्णु के धूली वाले पैर में यह सब जगत् भली प्रकार छिपा है।

(२) उव्वट—यज्ञ में दक्षिण शकट के बायें चक्र के समीप सुवर्ण रख कर इस मन्त्र से होम करता है। ('इदं' 'जगत्' 'विष्णुर्विचक्रमे' विक्रान्तवान्, सर्वप्राणिनो हि भूतेन्द्रियमनोजीवकायेनाविशति इति विष्णुः किंच "त्रेधा निदधे पदं" पद्यते ज्ञायते अनेनेति पदं भूम्यन्तरिक्षद्युलोकेषु अग्निवायुसूर्यरूपेण त्रिधा निहितवान् पदं। किंच "समूढमस्य पांसुरे" अस्य विष्णोरन्यत् पदान्तरं विज्ञानघनानन्दमजमद्वैतमक्षरमित्येवं लक्षणम् समूढमन्तर्हितविज्ञातकृतात्मभिः। पांसुरे लुप्तोपममेतत्। पांसुल इव प्रदेशे निहितं न दृश्यते तत्समूढमिति, अर्थात्—सब प्राणियों में पंचभूत इन्द्रिय

१६७०—६. 'पृथिव्या सप्तधामभिः' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन और जीव इन सब में प्रवेश करने से वह विष्णु है। उसने इस जगत् का क्रमण किया, जिससे ज्ञान किया जाय वह 'पद' है। भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक में अग्नि, वायु, सूर्य रूप से तीन रूपों में वह 'पद' (ज्ञानसाधन) या ज्ञापक लिंग रक्खा। इस ही विष्णु का अन्य एक 'पद' है विज्ञानघन, आनन्दस्वरूप, अज, अद्वितीय, अक्षरस्वरूप जिसको अकृतात्मा, असाधक, अविद्वान् पुरुष नहीं जानते। यह लुप्तोपमा, है। जिस प्रकार धूल भरे स्थान में पड़ी वस्तु नहीं दीखती उस प्रकार इत्यादि।

(३) महीधर—इस भाष्यकार ने सायण और उव्वट दोनों का अंश लिया है। इतना विशेष लिखा है कि ("समूढमस्य पांसुरे" पांसवो भूम्यादिलोकरूपाः विद्यन्ते यस्य तत्पांसुरं तस्मिन् पांसुरे अस्य विष्णोः पदं समूढं सम्यग् अन्तर्भूतं विश्वमिति शेषः यद्वेति उव्वटवत्) अर्थात् पांसुरे-भूमि आदि लोक जिसमें स्थित हैं उस पांसुर पद में सब विश्व छिरा है। 'यद्वा' से आगे दूसरा अर्थ उव्वट के समान ही है।

ग्रीफ़िथ—इस संसार में विष्णु ने पैर रक्खे, तीन बार उसने पैर जमाये और सब उसके पैर की धूल में जमा हो गया।

सायण और महीधर ने यह मन्त्र पौराणिक आशय को लेकर लगाया है। उव्वट को वह अर्थ सम्मत नहीं। उसने पद का अर्थ ज्ञापक लिङ्ग किया है और संसार में ईश्वर के तीन ज्ञापक अग्नि, वायु और सूर्य बतलाये हैं और चतुर्थ ज्ञापक वह परम अक्षर बतलाया है जिसका ज्ञान योगी मुमुक्षु लोग करते हैं।

सायण के आशय से विष्णु ने तीन चरण रक्खे और धूलियुक्त चरण में समस्त लोक छिपे हैं। उसके मत में 'पद' क्या वस्तु है यह प्रतीत नहीं होता। महीधर ने 'पद' शब्द की उव्वट कृत व्याख्या को माना है। और भूम्यादिलोकमय पांसु से युक्त समस्त ब्रह्माण्ड को एक पद माना है। और अग्नि, वायु, सूर्य रूप से तीनों लोकों में विष्णु का एक २

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञापक भी स्वीकार किया है। इसमें महीधर के मत में त्रिविक्रम का निरूपण आलंकारिक है। महर्षि दयानन्द—(इदं) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष जगत् को व्यापक ईश्वर ने (वि चक्रमे) यथायोग्य प्रकृति परमाण्वादि पादों को अर्थात् अंशों को निक्षेप करके सावयव किया। इस जगत् के (पांसुरे) प्रशान्त रेणुओं वाले अन्तरिक्ष में (त्रेधा निदधे पदं) और तीन प्रकार से प्राप्त करने योग्य 'पद' धरा। वह उत्तम रीति से जानने योग्य पदार्थ 'पद' कहाता है। भावार्थ यह है कि यह तीन प्रकार का संसार बनाया (१) प्रत्यक्ष पृथिवीमय जो प्रकाश से रहित है, (२) कारणरूप अदृश्य, (३) प्रकाशमय सूर्यादिक।

(२) धर्माणि = अग्निहोत्र आदि, (सा०) कर्माणि = कर्म, (उव्वटो महीधरश्च), स्वस्वभावजन्य धर्म, (दया०), अतः इन तीन लोकों में, (सा०) तीनों पदों से (उ०, म०)

(३) विष्णोः कर्माणि = वीर्याणि (उ०), सृष्टिसंहारादि (म०), जगद्रचनपालनन्यायकरणप्रलय आदि (द०), व्रतानि = अग्निहोत्रादि (सा०), लौकिकवैदिकं कर्म (म०), कर्म = आधान, पशु सोम याग आदि, अथवा अग्नि वायु और सूर्य का अपना २ कार्य।

(४) विष्णोः परमं पदं = उत्कृष्ट स्थान (सा०), विज्ञानघनबहुल आनन्दस्वरूप विष्णु का परमपद आदित्य (उ०), मोक्षाख्य (द०)।

(५) समिन्धते—दीपयन्ति (सा०, उ०, म०) प्रकाशयन्ते प्राप्नुवन्ति (द०)।

(६) देवा = विष्णु आदि (सा०) विद्वान् लोग और अग्नि आदि पदार्थ (द०)।

[१६७५] मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन् नि रीरमन्।
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१६७६] इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥२॥६॥
ऋ० ७ । ३२ । १, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [२८४]

(२) हे इन्द्र ! (मधौ) मधु = शहद पर (मक्षः न) जिस प्रकार मक्खी आ बैठती है उसी प्रकार (इमे) ये (ब्रह्मकृतः हि) ब्रह्मयज्ञ करने हारे वेद के विद्वान् गण (ते सचा) तेरे साथ मोक्षानन्द प्राप्त करने के लिये (सु आसते) आ बैठते हैं और ब्रह्म का रस प्राप्त करते हैं। और (इन्द्रे) उस इन्द्र परमात्मा में ही (वसूयवः) वसु = आत्मा को प्राप्त करने की इच्छा वाले (जरितारः) स्तुतिशील विद्वान्गण (कामम्) अपनी अभिलाषा को इस प्रकार (आदधुः) रख देते हैं जिस प्रकार (वसूयवः रथे न पादम्) धनाभिलाषी क्षत्रिय लोग अपना चरण रथ पर रखते हैं और फिर देशों को विजय करते हैं।

[१६७७] अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥

[१६७८] समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥ २ ॥ ७ ॥ ऋ० ८ । ५२ । ९, १० ॥

भा०—(१) (अस्तावि) परमेश्वर की ही स्तुति की जाती है। इसलिये (पूर्व्यं) पूर्ण, तृप्तिकारक, अति प्राचीन (मन्म) मनन करने योग्य (ब्रह्म) वेदमन्त्र का (इन्द्राय) उस परमेश्वर की स्तुति के लिये (वोचत) पाठ करो। (ऋतस्य) वेद की या यज्ञविषयक या आत्म, और ब्रह्मविषयक सत्यज्ञानसम्बन्धी (पूर्वीः) प्राचीन या पूर्ण (बृहतीः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहती छन्द के वेद मन्त्रों से (अनूषत) स्तुति करते हुए (स्तोतुः) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् के (मेधाः) नाना प्रकार के ज्ञान (असृक्षत) उत्पन्न होते हैं ।

(२) (इन्द्रः) परमेश्वर ने (बृहतीः) बड़ी २ (रायः) सम्पत्तियां और शक्तियां (सम् अधूनुत) प्रेरित की हैं और (क्षोणीः सं) बहुतसी पृथिवियों अर्थात् बहुत से लोकों को आकाशमण्डल में चला रक्खा है । और (सूर्यम् उ सम्) सूर्य को भी चला रक्खा है । (शुचयः) कान्तिमान् (शुक्रासः) शुद्ध कर्म करने हारे निष्पाप पुण्यात्मा उसकी स्तुति करते और (गवाशिरः) ज्ञान का आश्रय करने हारे या गो = इन्द्रियों का दमन करने हारे जितेन्द्रिय (सोमाः) योगी मुमुक्षु आत्माएं उस (इन्द्रम्) इन्द्र परमेश्वर को (सम् अमन्दिषुः) प्रसन्न करते हैं ।

[१६७९] इन्द्राय सोमपातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ १ ॥

[१६८०] तं सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥ २ ॥

[१६८१] परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान् विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ॥ ३ ॥ ८ ॥
ऋ० ६ । ९८ । १०, १२, ७ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१३२१]

(२) हे (सखायः) मित्रगण ! (सूरयः) विद्वान् (यूयं) आप लोग और (वयं च) हम लोग सब (वाज-गन्ध्यं) ज्ञान की सुगंध से

१६७९—१. 'दक्षाय सदनासद' २. 'पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः' ३. 'हरि त्व हयर्तंहरिं' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्त (वाज-पस्त्यम्) और बल के एकमात्र आश्रय, सर्वशक्तिमान् (पुरुरुचं) अपने प्रकाश से सबके प्रकाशक (तं) उस सोम परमात्मा को (अश्याम) प्राप्त हों। सोम ओषधि पक्ष में—(वाज-गन्ध्यं) अन्नगन्धी और (वाज-पस्त्यं) बलकारी सोम का भोग करें।

(३) "परि त्यं हर्यतं हरिम्" यह प्रतीकमात्र उद्धृत है। व्याख्या देखो अविकल सं० [५५२]

[१६८२] कस्तमिन्द्र त्वा वसो० ॥ १ ॥

[१६८३] मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥२॥९॥
ऋ० ७ । ३२ । १४, १५ ॥

भा०—(१) 'कस्तमिन्द्र त्वावसो०' यह प्रतीकमात्र है। व्याख्या देखो अविकल सं० [२८०]।

(२) हे (हर्यश्व) सर्व दुःखहारी आत्माओं के स्वामिन्! इन्द्र! परमात्मन्! (मघोनः) ज्ञानी पुरुषों को (वृत्रहत्येषु) आवरणकारी अज्ञान अन्धकार और विघ्नकारी, दुष्ट पुरुषों के विनाश के कार्यों में (चोदय स्म) प्रेरित कर। (ये) जो (प्रियाः) प्रिय (वसु) वास योग्य उपकरण गृह आदि अथवा अपने धनों को (तव प्रणीती) तेरे, प्रणय = प्रेम के कार्य में या तेरे बनाये हुए वेदानुकूल मार्ग में (ददति) दान करते हैं उन (सूरिभिः) विद्वानों, त्यागियों की सहायता से (विश्वा) समस्त (दुरिता) पापों को (तरेम) हम पार करें।

इति द्वितीयः खण्डः।

—:०:—

१६८२—१. कस्तमिन्द्र त्वा वसुमा, इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

[१६८४] एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः।

१ २क ३ १र २र ३ १ २

एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २

[१६८५] इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम्।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उदानंश शवसा न भन्दना ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

[१६८६] तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ३ ॥ १० ॥

ऋ० ८। २४। १६–१८ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [२८५]

(२) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (हरीणां) समस्त गतिमान् सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदिकों के (स्थातः) प्रतिष्ठापक ! परमेश्वर ! (ते) तेरी (पूर्व्य-स्तुतिम्) पूर्व के ऋषि महर्षियों द्वारा गाई गई, सत्य, यथार्थ गुणवर्णना को (शवसा) अपने बल से (नकिः) कोई भी नहीं (उद्-आनश) पा सकता। और (न भन्दना) न कोई संसार के प्रति सुख कल्याण के कार्य करके भी तेरी महती स्तुति को पा सकता है। अर्थात् तू सबसे अधिक शक्तिमान् और सब का कल्याणकारी है तेरे तुल्य दूसरा 'न भूतो न भविष्यति' न हुआ, न होगा।

(३) हम लोग (वः) आप लोगों के (वाजानां) ज्ञान, धन, बल और अन्नों के (पतिं) परिपालक, (अप्रायुभिः) प्रमादों से रहित, विनाशरहित, (यज्ञेभिः) बड़े सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदि विशाल कर्मों तथा प्रजापालनादि सत्कर्मों से (वावृधेन्यम्) अपने यश और महिमा में सब से बड़े (तं) उस परमेश्वर को (श्रवस्यवः) धन, अन्न और ज्ञान, वेद की कामना करने हारे हम लोग (अहूमहि) नित्य स्मरण करते हैं।

१६८४—१. "एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्चावध्वर्यो"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां 'वः' इस युष्मत् के प्रयोग से समस्त संसार के प्राणी अभिप्रेत हैं क्योंकि स्तुतिकर्त्ता की दृष्टि में अपने से अतिरिक्त सब युष्मत् पदवाच्य हैं। परमात्मा केवल 'तत्' पदवाच्य है।

[१६८७] तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे।
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ १ ॥

[१६८८] विभूतरातिं विप्रचित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम्।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥२॥११

ऋ० ८। १९। १, २॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [१०९]

(२) हे (सोभरे) उत्तम रीति से ज्ञान को धारण करने हारे ! हे (विप्र) मेधाविन् ! ब्राह्मण ! ज्ञानोपासक ! शिष्य ! तू (अध्वराय) अविनश्वर या हिंसादि दोषों से सर्वथा रहित, स्वाध्याय यज्ञ या गुरु परम्परा से कभी विनाश को प्राप्त न होने हारे, अविच्छिन्न ज्ञानयज्ञ के निमित्त (विभूत-रातिम्) बहुत अधिक ज्ञानराशि के दान करने हारे, (चित्र-शोचिषं) संग्रह करने योग्य ज्ञान और तप आदि तेजस्कर गुणों से युक्त, (अस्य) इस (सोम्यस्य) ज्ञानयुक्त या ज्ञान के आनन्द प्राप्त कराने हारे (मेधस्य) पवित्र यज्ञ के (यन्तुरं) नियामक, व्यवस्थापक, (पूर्व्यम्) सबसे पूर्व विद्यमान, सबसे श्रेष्ठ (अग्निम्) सबसे पूर्व विद्यमान आचार्य रूप परमेश्वर की (ईडिष्व) उपासना कर।

[१६८९] आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १र २र ३क २र ३ २उ ३ १ २ ३ ३
[१६९०] स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वांत्सप्तिर्न वाजयुः।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः
॥ २ ॥ १२ ॥ ऋ० ९। १०७। १०, ११ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [५१३]

(२) जिस प्रकार सोमरस को दृढ़ प्रस्तरों से कूटकर, भेड़ी के लोम से बने दशापवित्र नामक कम्बल के टुकड़े से स्वच्छ कर लिया जाता है, उसी प्रकार उस आत्मस्वरूप ज्ञान के रस को भी स्वच्छ कर लिया जाता है, उसी का वर्णन करते हैं। योगी का आत्मा (सप्तिः न) अति वेगवान् अश्व के समान (वाजयुः) बल और ज्ञान को प्राप्त करने हारा (सः) वह (मेष्यः) चितिशक्ति के (अण्वानि) सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों को (तिरः) प्राप्त करके (मीढ्वान्) सब सुखों का स्वयं वर्षण करने हारा धर्ममेघ होकर (मामृजे) शुद्ध पवित्र हो जाता है। वही (सोमः) शमदमादि गुणों से युक्त सोमस्वरूप आत्मा (पवमानः) पवित्र होता हुआ और अन्य इन्द्रियवृत्तियों, ज्ञानवृत्तियों को पवित्र करता हुआ (मनीषिभिः) मनन करने में गतिशील, (विप्रेभिः) मेधावी (ऋक्वभिः) वेदज्ञों द्वारा (अनुमाद्यः) आनन्द लाभ करने योग्य, प्रशंसनीय होता है।

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
[१६९१] वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्।
१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१६९२] वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति।
२उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया
॥ २ ॥ १३ ॥ ऋ० ८। ६६। ७, ८ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२७१]

१६९१—२. 'मांळ्हे सप्तिर्न' इति ऋ०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (अस्य) इस आत्मा का (वारणः) पापों से निवारण करने हारा साधन (वृकः चित्[1]) कुत्ते या भेड़ये के समान (उरामथिः) भेड़ के समान बालों से छिपे चोरों के तुल्य बड़े २ संकटों को भी मथन करने हारा होकर (वयुनेषु) प्रज्ञा या महान् कार्यों में (आ भूषति) शोभा देता है । हे आत्मन् ! (सः) वह आप (नः) हमारे (इमं) इस (स्तोमं) स्तुतिमय वचन को (जुजुषाणः) स्वीकार करते हुए (चित्रया) ज्ञानयुक्त (धिया) प्रज्ञाबुद्धि से (आ गहि) हमें साक्षात् दर्शन दो ।

अथवा—(अस्य) इस इन्द्र का (वृकःचित्) आदित्य ही (वारणः) अन्धकार दूर करने का साधन (उरामथिः) महान् अन्धकार को मथन कर देने हारा होकर (वयुनेषु) समस्त लोकों में (आभूषति) शोभा देता है । अथवा—(वृकश्चित्) आदित्य के समान इसका (वारणः) वरणीयस्वरूप (उरामथिः) अज्ञानों का नाश करने हारा (वयुनेषु) समस्त प्रज्ञावान् पुरुषों के आत्माओं में (आभूषति) शोभा देता है ।

अथवा—(वृकश्चिद् अस्य वारणः उरामथिः) भूमि को काटने हारा हल ही इसका वरण करने योग्य पदार्थ है जो उरामथिः = पृथिवी की ऊन के समान जमी घास को मथन करता है और वही (वयुनेषु) नाना ज्ञानयुक्त कार्यों में (आभूषति) प्रयोग किया जाता है । शोभा देता है । अथवा—(वृकश्चिद् अस्य वारणः उरामथिः) सब पापों का निवारक ज्ञानरूप वज्र ही इस आत्मा के शत्रुओं का नाशक वारण = आयुध है जो (वयुनेषु) सब मार्गों में और प्रज्ञानों में (आभूषति) शोभा देता है ।

अथवा—राजाके पक्षमें (अस्य) इस इन्द्र राजा का (वृकः) वज्र अर्थात् खड्ग और (उरामथिः) शत्रुओं का मथन करने हारा (वारणः) गज बल दोनों (वयुनेषु) संग्राम के मैदानों में या राजकार्यों में (आभूषति) शोभा देते हैं । वह राजा (इमं) इस (नः) हमारे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्तोमं) ज्ञानसमूह और देश के विद्वान् संघ को (जुजुषाणः) प्रेम से अपनाता हुआ (चित्रया) विचित्र या ज्ञानयुक्त (धिया) बुद्धि, राजनीति या देश को धारण करने वाली दण्डनीति द्वारा (आ गहि) उत्तम रूप से शासन करे। अन्य भाष्यकारों ने 'वृक' शब्द से स्तेन, चोर आदि का ग्रहण किया है सो असंगत प्रतीत होता है। ४. वृको लाङ्गलं विकर्त्तनात् (नि० ६ । ख० २६) । ५ ॥ वृक इति वज्रनाम विकर्त्तनादेव । (निघं० २ । २०) । वृक आदान (भ्वादिः) इति इगुपधलक्षणः कः । वृणक्तेर्वा पृषोदरादित्वाद् । वृणोतेर्वौणादिकः कः । यद्वा वृजी वर्जन (अदादिः) इत्यतः औणादिकः कः नकारजकारलोपश्च । यद्वा वृणक्तेर्वधकर्मणः । विपूर्वकस्य कृन्ततेर्वा पृषोदरादित्वान्निपातनम् । ६. 'दाना मृगो न वारण' (९८८) अत्रापि वारणो गजपर्यायः सायणसम्मत उपलभ्यते ।

अथवा—(वृकश्चिद् अस्य वारण उरामथिरावयुनेषु भूषति) जंगली भेड़िया भी जो भेड़ों को मारता है इन्द्र की आज्ञा में रहता है। वारणः—जंगली। श्वा अपि वृक उच्यते। विकर्त्तनात्। वृकश्चिदस्य वारण उरामथिः। उरणमथिः। उरण ऊर्णावान् भवति। (निरु० ५ । ४ । २) आदित्योपि वृक उच्यते यदावृङ्क्ते (निरु० ५ । ५ । १)

[१६९३] इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः ।
तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ १ ॥

[१६९४] इन्द्राग्नी अपसस्परि० ॥ २ ॥

[१६९५] इन्द्राग्नी तविषाणि वां० ॥ ३ ॥ १४ ॥

ऋ० ३ । १२ । ९, ७, ८ ॥

भा०—(१) हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! हे अग्नि ! ज्ञानस्वरूप ! आप (दिवः रोचना) द्यौलोक को प्रकाशित करने हारे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र अर्थात् सूर्य या विद्युत् के समान प्राण और अपान होकर इस मूर्धास्थल को प्रकाशित करते हो और (वाजेषु परि भूषथः) सब कार्यों में या ज्ञानयज्ञों में शोभा देते, कार्य सम्पादन करते हो। (तत् वीर्यं) यह सब सामर्थ्य (वां) आप दोनों ही का (चेति) जाना जाता है। राजपक्ष में इन्द्राग्नी सेना सेनाध्यक्ष। और (वाजेषु) संग्रामों में।

(२) 'इन्द्राग्नी अपसस्परि०' प्रतीकमात्र है। व्याख्या देखो अवि० सं० [१५७७]

(३) 'इन्द्राग्नी तविषाणि वां०' यह भी प्रतीकमात्र है। व्याख्या देखो अविकल सं० [१५७८] पृ० ६७१।

[१६९६] क ईं वेद सुते सचा० ॥ १ ॥

[१६९७] दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ॥२॥

[१६९८] य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवंनेन्द्रो योषत्या गतम्
॥ ३ ॥ १५ ॥ ऋ० ८ । ३३ । ७—९ ॥

भा०—(१) 'क ईं' वेद सुते सचा० प्रतीकमात्र है। व्याख्या देखो अवि० सं० [२९७]

(२) (मृगः) बनैला (वारणः) हाथी (न) जिस प्रकार (दाना) अपने मदजलों के कारण (पुरुत्रा) बहुत से स्थलों पर (चरथं) विचरण (दधे) करता है और उसको कोई (न किः नि यमत्) नहीं रोकता उसी प्रकार हे इन्द्र आप भी मत्त हाथी के समान (दाना) अपने नाना प्रकार के दानों, रक्षण सामर्थ्यों सहित (पुरुत्रा) सर्वत्र (चरथं दधे) विचरण करते हो, (सुते) इस उत्पन्न विश्व में (त्वा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको (नकिः नि यमत्) कोई भी रोकने वाला नहीं है । आप (महान्) सबसे बड़े होकर (ओजसा) अपने पराक्रम सामर्थ्य से (चरसि) सर्वत्र विचरण करते हो । आप (सुते) इस विश्व में और हमारे हृदय और यज्ञ में (आगमः) व्याप्त हों ।

(३) (यः) जो आत्मा (उग्रः) वीर्यवान्, शक्तिमान् (अनिस्तृतः) अविनाशी, किसी से न मारा गया, (स्थिरः) कूटस्थ, नित्य (रणाय) सर्वत्र विश्व में और इस देह में रमण करने के लिये (संस्कृतः) संस्कार किया गया, नाना कर्म फलों से, या तपः साधनों से शुद्ध किया गया है । (यदि) जब (मघवा) ज्ञानवान् आत्मा (स्तोतुः) स्तुति करने हारे विद्वान् की (हवं) पुकार को (शृणवत्) सुन लेता है तो (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् आत्मा (न योषति) पृथग् नहीं रहता, प्रत्युत (आ गमत्) उसे प्राप्त हो जाता है ।

परमात्मा के पक्ष में—(संस्कृतः) नाना गुणों से उपासित होकर जब वह अपने भक्त की पुकार सुनता है तो उसके हृदय में प्रकट होता है ।

इति तृतीयः खण्डः ।

——:०:——

[१६९९] पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः ।
अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥

[१७००] पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत ।
पृथिव्या अधि सानवि ॥ २ ॥

[१७०१] पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥ १६ ॥

ऋ० ९ । ६३ । २५, २७, २६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(पवमानाः) शुद्ध पवित्र (शुक्रासः) शुद्ध शुक्ल कर्मों के करने हारे, (सोमाः) शमादिगुणसम्पन्न, (इन्दवः) योगी, विदेहमुक्त जन (विश्वानि) समस्त (काव्या) वेदवाणियों को (अभि) साक्षात् (असृक्षत) प्रकट करते हैं।

(२) (पवमानाः) शुद्ध पवित्र, या गति करने हारे, या ज्ञानवान् पुरुष (दिवः परि) द्यौ अर्थात् प्रकाशमान लोकों में (अन्तरिक्षात्) और अन्तरिक्ष में और (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि सानवि) उच्च पर्वत भागों में (असृक्षत) तप और विद्या का सम्पादन करते हैं।

(३) (शुभ्राः) शुभ्रगुणयुक्त, (आशवः) शीघ्र गति करने हारे, अप्रमादी, (पवमानासः) सब को पवित्र करने हारे, (इन्दवः) ज्ञानी पुरुष (विश्वाः) सब (द्विषः) द्वेष करने हारे पुरुषों को, या द्वेषभावों को (अप घ्नन्तः) दूर मार भगाते हुए (असृग्रम्) कार्य सम्पादन करते हैं।

यज्ञपक्ष में पवमानाः शुक्रा, आशवः, शुभ्राः, इन्दवः आदि सब विशेषण गौणवृत्ति से सोमरसों में लगते हैं।

[१७०२] तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता ।
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥

[१७०३] प्र वामर्चन्त्युक्थिनः० ॥ २ ॥

[१७०४] इन्द्राग्नी नवतिं पुरः० ॥ ३ ॥ १७ ॥

ऋ० ३ । १२ । ४, ५, ६

भा०—(१) (तोशा) भीतरी रोगादि शत्रुओं के नाशक, (वृत्रहणा) अज्ञान के हनन करने वाले, (स-जित्वाना) समान रूप से विजय करने हारे, प्रबल, (अपराजिता) कभी न हारने वाले, अनथक, (वाजसातमा) बल के देने वाले (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि प्राण और अपान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा और अन्तःकरण, परमात्मा और जीवात्मा, राजा सेनापति, गुरु शिष्य होते हैं ।

(२, ३) " प्रवामचंन्त्युक्थिनः० " और "इन्द्राग्नी नवतिं पुरः" यह दोनों प्रतीकमात्र हैं । व्याख्या देखो अवि० सं० [१५७५, १५७६] ।

[१७०५] उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १ ॥

[१७०६] उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
अग्ने हिरण्यसन्दृशः ॥ २ ॥

[१७०७] य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः ।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३ ॥ १८ ॥

ऋ० ६ । १६ । ३७—३९ ॥

भा०—(१) हे (सहस्कृत) बल और साधना से साक्षात् करने योग्य अग्ने ! (प्रयस्वन्तः) ज्ञानी मुमुक्षु हम लोग (रण्व-सन्दृशं) रमण करने हारे या रमणीय और दर्शन करने योग्य या सबके द्रष्टा (त्वा) आप परमेश्वर के (उप) समीप प्राप्त होने के लिये (गिरः) स्तुतियों या वेदवाणियों का (ससृज्महे) उच्चारण करें ।

(२) जिस प्रकार (घृणेः) देदीप्यमान सूर्य के तेज से सन्तप्त होकर लोग (छायाम् इव) छाया का आश्रय लेते हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन् प्रभो ! (हिरण्य-सन्दृशः) सूर्य समान स्वरूप वाले (ते) आपके (शर्म) शरण सुख को (वयं) हम (उप अगन्म) प्राप्त हों ।

(३) (यः) जो (शर्यहा इव) वाणों से मारने हारे योद्धा के समान (उग्रः) अति भयंकर शक्तिशाली (वंसगः न) वैल के समान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तिग्मशृंगः) तीक्ष्ण शृंग अर्थात् प्रखर तेज वाले हैं वही आप हे (अग्ने) प्रभो ! (पुरः) सब देहों को (रुरोजिथ) ज्ञान वज्र से तोड़ डालते हो और मुमुक्षुओं को मुक्त कर देते हो।

सायण ने अग्नि को रुद्ररूप मानकर त्रिपुर–दहन की कथा को लगाया है। लिखा है–"रुद्रो वा एष यदग्निः" इति श्रुतेः। रुद्रकृतमपि त्रिपुर-दहनम् अग्निकृतमेवेति श्रूयते। यद्वा त्रिपुरदहनसाधनभूतं वाणे अग्निर-नीकत्वेनावस्थानादग्निः पुराणि भग्नवान् इत्युच्यते।" अर्थात् रुद्र अग्नि का नाम है, ऐसी ब्राह्मण श्रुति है। अतः रुद्र का किया त्रिपुरदहन अग्नि ही का किया कहा जाता है। अथवा त्रिपुर के दहन करने में साधन बने बाण में अग्नि सहायक था, इससे अग्नि ने पुरों को तोड़ा, ऐसा कहा जाता है। परन्तु इस का रहस्य सायण ने स्पष्ट नहीं किया, यह आलं-कारिक है। वस्तुतः—

वेदत्रयी त्रिनेत्राणि त्रिपुरं त्रिगुणं वपुः। (स्क० पु०)

भस्मीकरोति तद्देवस्त्रिपुरघ्नस्ततः स्मृतः॥ (स्कन्द० महि० कौ० ख० २। अ० २५)

अर्थात्—रुद्र के तीन वेद तीन नेत्र हैं, त्रिगुण देह त्रिपुर है, उसको वह ज्ञानरूप से प्रकट होकर भस्म कर देने से 'त्रिपुरघ्न' कहा जाता है।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१७०८] ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्।
१ २ ३ १ २
अजस्रं घर्ममीमहे॥ २॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २
[१७०९] य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन्।
३ २ १ २र ३ २
ऋतूनुत्सृजते वशी॥ २॥

१७०८—२. "स विश्वा प्रतिचाक्लृप ऋतूँरुत्सृजते वशी यस्य वय उत्तिरन्" इति पाठभेदोऽथर्वाणि। ३. 'अग्नेः परेषु धामसु' इति अथर्व०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३२ ३ १ २३ १ २ ३२ ३ १ २
[१७१०] अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य

३२उ ३ १ २
सम्राडेको विराजति ॥ ३ ॥ १६ ॥

ऋग्वेदे नास्ति ॥ आद्या यजुः० २६ । ६ ॥ अथर्व० ६ । ३६ । १ ॥ द्वितीया अथ० ६ । ३६ । २ ॥ तृतीया यजु० १२ । ११७ ॥

भा०—(१) हे अग्ने ! (ऋतावानं) सत्यज्ञान से युक्त, या इस ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले (वैश्वानरम्) समस्त नर अर्थात् आत्माओं में भी व्यापक, सबके हितकारक, (ऋतस्य) सत्यस्वरूप, (ज्योतिषः पतिं) सब ज्योतिष्मान् सूर्य आदि विशाल लोकों के प्रतिपालक (अजस्रं) अनादि, नित्य, (घर्मं) शुद्ध दीप्तिमान् आपकी (ईमहे) उपासना करते हैं।

(२) (यः) जो अग्नि[1] परमात्मा (यज्ञस्य) आत्मा को (स्वः) आनन्दमय मोक्ष सुख (उत् तिरन्) प्रदान करता है और (इदं) समस्त ब्रह्माण्ड को (प्रति-पप्रथे) रचता है और सब का वशकर्त्ता, अधिष्ठाता होकर (ऋतून्) प्राणों को और गतिशील पिण्डों और छहों कालरूप वसन्त आदि ऋतुओं को सूर्य के समान (उत् सृजते) उत्कृष्ट रूप में बनाता और प्रकट करता है।

(३) वह (अग्निः) सब का पूजनीय प्रकाशस्वरूप परमात्मा (भूतस्य) समस्त भूतकाल और उसमें उत्पन्न हुए समस्त पदार्थों और (भव्यस्य) भविष्यत् काल और उसमें उत्पन्न होने वाले समस्त जगत् का (कामः) मूल उत्पादक संकल्प का कर्त्ता, आदिकारण (प्रियेषु) अति श्रेष्ठ और विभूतियुक्त, प्रेष्ठ (धामसु) लोकों में (एकः) एकमात्र,

१. वशी परमात्मतया जगद्वशीकर्त्ता सोऽग्निः । इति सायणः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्वितीय, (सम्राट्) सार्वभौम, सम्राट् परमेश्वर, स्वामी होकर (विराजति) विशेष रूप से विराजमान है ।

इति चतुर्थः खण्डः ।

इत्यष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ।

इत्यष्टमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ।

अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

अथाष्टमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः ।

ऋषिः—१ विरूप आङ्गिरसः । २. १८ अवत्सारः काश्यपः । ३ विश्वामित्रो गाथिनः । ४ देवातिथिः काण्वः । ५, ८, ६, १६ गोतमो राहूगणः । ६ वामदेवो गौतमः । ७ प्रस्कण्वः काण्वः । १० वसुश्रुत आत्रेयः । ११ सत्यश्रवा आत्रेयः । १२ अवस्युरात्रेयः । १३ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । १४ कुत्स आङ्गिरसः । १५ अत्रि भौमः । १७ दीर्घतमा औचथ्यः ॥ देवता—१, १०, १६ अग्निः । २, १८ पवमानः सोमः । ३—५ इन्द्रः । ६, ८, ११, १४, (१) उषाः । ७, ९, १२, १५, १७ अश्विनौ ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, १८ गायत्री । ३, ४, ५ बार्हत प्रागथः । ८, ९ उष्णिक् । १०—१२ पङ्क्तिः । १३—१५ त्रिष्टुप् । १६, १७ जगती ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २
[१७११] अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वाँ३ स्वाम् ।
३ १२ २२
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ १ ॥

३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१७१२] ऊर्जो नपातमाहुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे ॥ २ ॥

१७११—१. "प्रत्नेन मन्मना" इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१७१३] स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा ।
देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ३ ॥ १ ॥

ऋ० ८ । ४४ । १२-१४ ॥

भा०—(१) (अग्निः) ज्ञानस्वरूप प्रकाशमय आत्मा (प्रत्नेन) अपने पुराने अर्थात् पूर्व के किये (जन्मना) जन्म अर्थात् स्वरूप से या जन्म में किये कर्मों द्वारा (स्वां) अपने (तन्वं) शरीर को (शुम्भानः) उत्तम रूप से सुशोभित करता हुआ (कविः) क्रान्तदर्शी, मेधावी, ज्ञानी होकर (विप्रेण) मेधावी ज्ञानमय परमेश्वर के संग (वावृधे) अपनी वृद्धि और अभ्युदय प्राप्त करता है ।

सायण ने 'जन्मना' और 'विप्रेण' का अर्थ स्तोत्र किया है । तुलसीरामजी—'प्रत्नेन जन्मना'—पुराने जन्म से—सनातनस्वरूप से । ग्रीफिथ पुराने तरीके से ।

(२) (ऊर्जः नपातम्) बल वीर्य का विनाश न होने देने हारे (पावक-शोचिषम्) लोकों को साध कर पवित्र करने हारे तेज से युक्त (अग्निम्) अग्निस्वरूप आत्मा को (अस्मिन्) इस (सु-अध्वरे) उत्तम-रूप, अविनाशी (यज्ञे) दान-प्रतिदान स्वरूप यज्ञ या इष्टदेवपूजा या समाधि दशा में या सर्व पूज्य परम आत्मा में (आ हुवे) समर्पित करता हूँ ।

(३) हे (अग्ने) आत्मन् ! हे (मित्र-महः) अपने मित्र परम-स्नेही परमेश्वर के संग से स्वतः तेजस्विन् ! (त्वम्) तू (शुक्रेण) शुद्ध (शोचिषा) तेज से (देवैः) अपनी इन्द्रियों के साथ (बर्हिषि) इस देह में (आ सत्सि) विराजमान है ।

परमात्म पक्ष में—हे मित्र ! या सूर्य के समान कान्ति वाले या सब के मित्र एवं पूजनीय परम प्रभो ! (त्वं) आप शुद्ध कान्ति से दिव्य गुण-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्त विद्वानों और सूर्यादि 'देव' लोकों के संग इस (बर्हिषि) ब्रह्माण्ड में (आ सत्सि) विराजमान हो ।

२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
[१७१४] उत् ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।
३२ ३ १ २ ३ १ २
नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १२ २२ ३ १२ २२ ३ २
[१७१५] अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते ।
२ ३ १ २ ३ २
स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३क २२
[१७१६] अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।
३ १२ २२ ३ १ २
रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१७१७] तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् ।
२ ३ १ २ ३२
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥ २ ॥

ऋ० ६ । ५३ । १—४ ॥

भा०—(१) हे सोम, सर्वोत्पादक ! हे (अद्रिवः) आदरणीय ! अक्षयबलवन् ! परमात्मन् ! आदर करने वाले भक्तों के स्वामिन् ! (ते) तेरे (शुष्मासः) बलप्रयोग (रक्षः) दुष्ट पुरुषों को या विघ्नों को (भिन्दन्तः) विनाश करते हुए (उत् अस्थुः) सबसे ऊपर विराजमान हैं, (याः) जो (स्पृधः) तुझ से स्पर्द्धा करते हैं उन नास्तिकों को तू (परि नुदस्व) नीचे गिरा देता है ।

(२) हे सोम ! ऐश्वर्यवन् ! परमात्मन् ! आप (अया) इस प्रकार के (ओजसा) तेज और बल से विघ्नों और विघ्नकारियों को (निजघ्निः) विनाश करने हारे हो । (रथ-संगे) इस रमण करने योग्य देह या रसस्वरूप तेरा संग लाभ हो जाने पर और (धने[1]) तृप्ति योग्य

१७१४—१. धनं, धिनोतीति सतः (निरु०अ० ३ । ख० ६) धिनोतिस्तर्पणार्थः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोग्य पदार्थ के (हिते) प्राप्त हो जाने पर मैं (अबिभ्युषा) निर्भय (हृदा) चित्त से (स्तवै) आपकी स्तुति करता हूँ।

(३) (अस्य) इस (पवमानस्य) पवमान, सर्वप्रेरक, व्यापक और सब को पवित्र करने हारे एवं स्वयं पवित्र परमेश्वर की (व्रतानि) व्यवस्थाएं (दूढ्या) दुष्ट बुद्धि वाले, मूर्ख, अभिमानी पुरुष से (न आधृषे) अपमान या विनाश नहीं हो सकतीं। हे परमात्मन्! (यः) जो (त्वा) आपका (पृतन्यति) विरोध करता है, आपके नियमों और आज्ञाओं का उल्लंघन करता है आप उसको (रुज[2]) पीड़ा उत्पन्न करते हैं या उसका विनाश कर देते हैं।

(४) (तं) उस (मद-च्युतं) आनन्द रस के बहाने वाले, (वाजिनम्) ज्ञानमय, (हरिं) दुःखों के हरण करने हारे, सर्वव्यापक (मत्सरम्) स्वयं परमसुखजनक, आनन्दस्वरूप (इन्दुम्) परमेश्वर को (इन्द्राय) अपने आत्मा के हित के लिये (हिन्वन्ति) उपासना करते हैं।

२ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३१२
[१७१८] आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि॥१॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
[१७१९] वृत्रखादो वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र. २र ३ १ २ ३ २
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः॥२॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१७२०] गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव।
१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत
॥ ३ ॥ ३ ॥ ऋ० ३। ४५। १—३॥

२. रुजो भङ्गे (तुदादिः), रुज हिंसायाम् (चुरादिः)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२४६]

(२) (वृत्र-खादः) आवरणकारी अज्ञान का नाशक (बलं रुजः) बलन करने वाले, प्राण धारण करने वाले, देह या मोक्ष का उपरोध करने वाले, तामस आवरण को तोड़ डालने हारे, (पुरां दर्मः) पंचकोश रूप पुरियों के विदारक, (रथस्य स्थाता) इस रथ या देह या विशाल ब्रह्माण्ड रूप रथ के अधिष्ठाता (अपाम् अजः) कर्मों और मनः संकल्पों को प्रेरणा करने वाले, (हर्योः अभिस्वरः) प्राणेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय अथवा प्राण और अपान इनका साक्षात् रूप से प्रेरक (इन्द्रः) आत्मा और परमात्मा (दृढाचित्) दृढ़ से दृढ़, कठोर से कठोर बन्धनों या विघ्नों को भी (आ रुजः) विनाश कर देता है ।

(३) हे इन्द्र ! (त्वं) आप (गंभीरान्) गंभीर (उदधीन् इव) समुद्रों को जिस प्रकार निरन्तर सहस्रों जलधारा पुष्ट करती हैं और वह सूखते नहीं, उसी प्रकार आप इस (क्रतुं)कर्म करने हारे जीवात्मा को नाना जीवन धाराओं से (पुष्यसि) पुष्ट करते हो, कभी विनाश नहीं होने देते । और (सु-गोपाः) उत्तम गोपालक (गाः इव) जिस प्रकार अपनी गौओं को (प्र पुष्यति) खूब खिलाकर पुष्ट करता है उसी प्रकार आप जीवों को भी खूब अन्नादि देकर पुष्ट करते हैं। और (यथा) जिस प्रकार (धेनवः) गौएं (यवसं) अपने चारे पर आती हैं उसी प्रकार ये जीवगण आपके पास पहुंच जाते हैं और (कुल्याः इव) जिस प्रकार सब नहरें या नदियां (ह्रदं) विशाल ताल या समुद्र में आ गिरती हैं उसी प्रकार ये जीव आप में ही सब भेदभाव त्याग कर आ मिलते हैं।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १र २र
[१७२१] यथा गौरो अपाकृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१७२२] मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्द्वो राधोदेयाय सुन्वते।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद् दधिषे सहः
॥ २ ॥ ४ ॥ ऋ० ८। ४। ३, ४ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [२५२]

(२) हे (मघवन्) ज्ञानवान् आत्मन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इन्दवः) ये सोमरस ज्ञान और आनन्ददायक समाधि के विशेष अनुभव (त्वा) तुझको (मन्दन्तु) हर्षित करें। (सुन्वते) ज्ञानरस को उत्पन्न करने हारे साधक विद्वान् योगी के (राध-ःदेयाय) सिद्धि प्राप्त कराने के लिये (चमू-सुतं) प्राण और अपान रूप चमू दोनों से उत्पन्न किये गये (सोमम्) सोम अर्थात् आनन्दरस को (अमुष्य) गुप्तरूप से प्राप्त करके स्वयं (सोमम्) ब्रह्मानन्द को (आ अपिबः) पान करता, प्राप्त करता है और तू (तत्) उस अलौकिक (ज्येष्ठं) सबसे महान् (सहः) सहः-स्वरूप, सर्वशक्तिमान् ईश्वर को अपने भीतर (दधिषे) धारण करता है।

[१७२३] त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥१॥

[१७२४] मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन्। विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २ ॥ ५ ॥ ऋ० १। ८४। १९, २० ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [२४७]

(२) हे (वसो !) सर्व संसार को बसाने हारे परमात्मन्! (ते) तेरे (राधांसि) बलस्वरूप पञ्चभूत (कदा चन) कभी (मा दभन्) विनाशकारी न हों। और (ते ऊतयः) तेरी समस्त पालक शक्तियां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अस्मान्) हमें कभी (मा दभन्) विनाश न करें । और हे (मानुष) मनुष्य ! तू (विश्वा च) समस्त (वसूनि) आवास-साधनों को (उपमिमीहि) स्वयं उत्पन्न कर और उनको ज्ञान कर । और (नः चर्षणिभ्यः) हम विद्वान् पुरुषों को वे नाना पदार्थ जो तू जानता और तैयार करता है (आ) प्रदान कर ।

इति प्रथमः खण्डः ।

—:०:—

२ ३ २ ३२३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१७२५] प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः ।
३ १ २ ३ २
दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[१७२६] अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी ।
१ २ ३ १ २ ३ २
सखा भूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
[१७२७] उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि ।
३ २ ३ १ २
उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥ ६ ॥ ऋ० ४ । ५२ । १-३ ।

भा०—(१) (स्या) वह (दिवः) सूर्य की (दुहिता) पुत्री उषा (परि स्वसुः) रात्रि के उपरान्त (वि उच्छन्ती) तम को दूर करती हुई, (सूनरी) उत्तम नेत्री रूप (जनी) स्त्री के समान (प्रति अदर्शि) प्रकट होती है ।

अथवा—(स्या सूनरी जनी) वह उषा उत्तम पुत्र उत्पन्न करने हारी, शुभ लक्षणों से युक्त स्त्री के समान (स्वसुः परि) अपनी भगनी के पीछे २ (व्युच्छन्ती) अपना रूप प्रकट करती हुई लोक में प्रकट होती है, उसी प्रकार यह (दिवः) आदित्य के समान प्रकाशमान योगी की (दुहिता) आनन्द रस का दोहन करने वाली ज्योतिष्मती प्रज्ञा (स्वसुः) स्वयं सरण करने वाली, आप से आप प्रकट होने वाली

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिभा के (परि) साथ २ (जनी) उत्पन्न होती हुई ज्ञान उत्पन्न करने हारी (सूनरी) उत्तम मोक्ष मार्ग की नेत्री होकर (प्रति अदर्शि) दिखाई देती है ।

(२) (उषाः) अज्ञानाङ्कुरों का दहन करने हारी उषा, साधक की विशोका प्रज्ञा (अश्वा इव) व्यापनशील विद्युत् के समान (चित्रा) विचित्र संज्ञानवती, (अरुषी) सब प्रकार से कान्तिमती, तेजस्विनी, (गवां) इन्द्रियरूप गौओं की (माता) उत्पादन करने वाली (ऋतावरी) सत्य ज्ञान को वरण करने हारी या प्राप्त करने हारी, ऋतम्भरा स्वरूप (अश्विनोः) शरीर भर में व्यापक प्राण और अपान इन दोनों की (सखा) साथ रहने वाली, उनके साथ ही वर्णन की जाने योग्य, अथवा समान रूप से इन्द्रिय देशों में व्याप्त (भूत्) है ।

(३) पूर्व ऋचा के समान ही हे (उषः) ज्योतिष्मति ! विशोका नामक प्रज्ञे ! (उत) यद्यपि (अश्विनोः) अश्वि अर्थात् प्राण और अपान दोनों की तू (सखा असि) सखा है, (उत गवां माता असि) और गो अर्थात् इन्द्रियों की तू उत्पादक माता के समान है । अथवा उनके गृहीत ज्ञान को भी ग्रहण करने हारी, प्रमात्री है (उत) तथापि हे उषः ! प्रकाशस्वरूप प्रज्ञे ! तू (वस्वः) आत्मा या प्राण की (ईशिषे) शक्ति को धारण करती है ।

३ २ ३ १३ २२ २३ २२ ३ २ ३२ १
[१७२८] एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
३ १ २ ३ २
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

२ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ २
[१७२९] या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
धिया देवा वसु विदा ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१७३०] वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥ ७ ॥

ऋ० १ । ४६ । १—३ ॥

भा०—(१) (एषा उ) यह (उषा) उषा, सकल पापदाहिका विशोका प्रज्ञा (अपूर्व्या) योगी के अनुभव में पूर्व कभी न आई हुई (दिवः) प्रकाशमान आत्मा की (प्रिया) अत्यन्त प्रेमपात्र रूप से (वि उच्छति) प्रकाशित होरही है । हे (अश्विना) देह में निरन्तर गति करने हारे प्राण और अपान इस विशोका की प्राप्ति के लिये (वां) आप दोनों के (बृहत्) बहुत अधिक (स्तुषे) गुणकारी होने का यथार्थ वर्णन करता हूँ ।

(२) (या) जो दोनों (देवा) देव, प्राण और अपान (दस्रा[1]) अत्यन्त दर्शनीय, अथवा काम क्रोधादि मलों के नाशक, अथवा सब कर्म कराने हारे, या रोग विनाशक, शरीर के भीतर सब के कर्म के करने कराने हारे (सिन्धु-मातरौ) देह की सब रक्तप्रवाहिनी नाडियों या प्राणों को प्रवाहित करने हारे, उनको ठीक रीति से संचालक, (रयीणां) सब ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के ज्ञान और कर्मों को (मनोतरा) मनोबल द्वारा प्रेरणा करने और मनोबल से ही उनके ज्ञान और क्रिया को स्वयं प्राप्त करने कराने हारे, (धिया) ध्यान वृत्ति से (वसुविदा) वसु, आत्मा को ज्ञान कराने वाले वा उस तक स्वयं पहुंचने वाले हैं ।

१७२८—१. दशि दंशदर्शनयोः । दसि दस इत्येके (चुरादिः), दसि भावार्थः (चुरादिः), तसु उपक्षये दसु च (दिवादिः) इत्येतेभ्यो 'स्फायितञ्चि॰ ति॰' औणादिको रक् (उणा॰ २ । १३) । दस्यति रोगान् उपक्षपयति इति दस्रः (दया॰ उणा॰) । दस्रा शत्रूणां दासयितारौ, दसयितारौ, कर्मणा कृष्यादीनां कारयितारौ । एतावेवंविधौ कर्म कारयन्तौ कुर्यातौ वा इति दुर्गाचार्यः (निरु॰ अ० ६ ख० २६) निरुक्तटीकायाम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) पूर्वोक्त रूप से वर्णित किये गये हे अश्वियो ! (वां) आप दोनों का (रथः) जिस प्रकार वेगवान् विमान पक्षों से आकाश में गमन करता है उसी प्रकार रमणस्थान यह आत्मा (यत्) जब (विभिः) पदार्थों तक पहुंचने वाले प्राणगणों सहित (जूर्णायां) अतिप्रशंसा योग्य या सनातन (अधि विष्टपि) मोक्षस्थान पर (पतात्) गमन करता है तब (वां) आप दोनों के (ककुहासः) उत्तम गुण (वच्यन्ते) वर्णन किये जाते हैं । उन दोनों का (रथः) रमणस्थान यह देह (जूर्णायाम् अधि विष्टपि) जीर्णदशा, वृद्धावस्था तक पहुंच जाता है । पूर्णायु भोग लेता है तब इन दोनों के गुण वर्णन किये जाते हैं ।

२ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
[१७३१] उषस्तच्चित्रमाभरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
१ २ ३ २ ३ १ २ १ १ २
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १ ॥

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २
[१७३२] उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरी ।
१ २ ३ १ २
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ २ ॥

३ १२ २२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१७३३] युंक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ ३ ॥ ८ ॥

ऋ० १ । ९२ । १३–१५ ॥

भा०—(१) हे (उषः[1]) कमनीय कन्या के समान विशोकप्रज्ञे ! ज्योतिष्मति ! हे (वाजिनी-वति) ज्ञानमय वाणी से युक्त (अस्मभ्यं) हमें (तत्) वह (चित्रं) संग्रह योग्य प्राशस्त्य ज्ञान (आ भर) प्राप्त करा । (येन) जिससे (तोकं च) पुत्र के समान प्रिय एवं क्रीड़ाशील चित्त और (तनयं च) समान लालन पालन योग्य इस देह को (धामहे) धारण करें, चिरकाल तक जितेन्द्रिय, चिरायु होकर रहें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) हे (विभा-वरि !) ज्योति से सम्पन्न या विशेष कान्ति से वरण करने योग्य, या कान्ति से सम्पन्न ज्योतिष्मति ! हे (उषः) अभ्यन्तर मलों को दाह करने हारी चितिशक्ति ! हे (गो-मति) वाणी या ज्ञानेन्द्रियों या रश्मियों से युक्त ! हे (अश्वावति) अश्व अर्थात् कर्मेन्द्रिय या मनरूप अश्व वाली ! हे (सूनृता-वति) उत्तम ऋत अर्थात् त्रिकालबाधित ज्ञान से सम्पन्न अथवा सूनृता वेदवाणी का दर्शन, मनन और निदिध्यासन करने हारी तू (अस्मे) हमारे लिये (रेवत्) रयि अर्थात् ज्ञान प्राण और ऐश्वर्य से युक्त आत्मस्वरूप को (वि उच्छ) हमारे सामने खोल दे।

(३) हे उषः ! हे वाजिनीवति ! (अद्य) आज (अरुणान्) चेतनांश से युक्त दीप्तिमान् अथवा रोगरहित (अश्वान्) प्राणों को (युंक्ष्व हि) इस देहरूप रथ में प्रेरित कर। (अथ) और (नः) हमें (विश्वा) समस्त (सौभगानि) उत्तम सुखदायी पदार्थों को (आ वह) प्राप्त करा।

१ २ ३ २ ३ १२ २र ३ १ २
[१७३४] अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्रा हिरण्यवत्।
३ २उ ३ १ २ ८ १ २
अर्वाग् रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १ ॥
२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
[१७३५] एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्त्तनी।
३ १ २ ३ १ २
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ २ ॥
२ ३ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
[१७३६] यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः।
२ ३ १ २ ३ २
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ ३ ॥ ९ ॥

ऋ० १ । ९२ । १६, १८, १७ ॥

१७३३—१. उष दाहे, (भ्वादिः), उषस् प्रभातभावे (कण्ड्वादिः) तयो रुषः किच्चेति असिरौणादिः (उणादि० ४ । २३४) ओषति दहतीति उषः, कर्णच्छिद्रं. पर्वतभेदो वा, (स्त्रियां) प्रभातप्रकाशः (दया०) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) हे (अश्विनौ) देह में व्यापनशील ! प्राण और अपान ! आप दोनों (दस्रा) रोगों के विनाशक हो । अतः आप दोनों स- मनसा) हमारे मन के मानस बल के साथ होकर (हिरण्यवत्) आत्मा से युक्त और (गोमत्) इन्द्रियों से युक्त (स-मनसा) मन, अन्तःकरण से युक्त, इन्द्रियों से युक्त (रथम्) इस रमण-योग्य उत्तम रथ रूप देह को (अर्वाग्) अपने अधीन करके साक्षात् रूप से (नि यच्छतम्) नियम में रक्खो ।

(२) (इह) इस देह में (उपः बुधः) ज्योतिष्मती प्रज्ञा को ज्ञान-जागृति से चेतन कर लेने वाले अथवा प्रबुद्ध योगी जन (हिरण्य-वर्तनी) आत्मा के बल पर अपनी चेष्टा करने वाले अथवा आत्मारूप रथ पर चढ़े हुए, अथवा हिरण्य = आत्मा को, वर्त्तनि अर्थात् अपना प्रेरक और आश्रय बनाने हारे, (दस्रा) मलादिशोधक, अतएव (मयोभुवा) सुख और आरोग्य के उत्पादक, (देवा) दिव्यगुणयुक्त प्राण और अपान दोनों को (सोम-पीतये) ब्रह्मानन्दरस को पान करने के लिये (आ-वहन्तु) अपने वश करें ।

(३) हे (अश्विना) पूर्वोक्त प्राण और अपान ! (यौ) जो आप दोनों (इत्था) इस प्रकार से (दिवः) द्यौलोक या मूर्धाभाग से (श्लोकं) प्रशंसनीय या अतिघनीभूत (ज्योतिः) विशोका, विवेक ख्याति को (जनाय) साधक पुरुष के लिये (चक्रथुः) उत्पन्न करते हो वे ही (युवं) आप दोनों (नः) हम लोगों के लिये (ऊर्जं) परम पोषक रसरूप बल को (आ वहतम्) प्राप्त कराओ ।

इति द्वितीय खण्डः ।

[१७३७] अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्त-मर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१७३८] अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः । अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

[१७३९] सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः । समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

॥ १० ॥ ऋ० ५ । ६ । १, ३, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४२५] पृ० २१७ ।

(२) (हि) निश्चय से (विशे) प्रजाओं के हित के लिये (अग्निः) ज्ञानस्वरूप परमात्मा हमें (वाजिनं) बलवान् पुरुष, ज्ञानी पुरुष और अन्नादि पदार्थ (ददाति) देता है । यह (विश्व-चर्षणिः) समस्त संसार को देखने वाला सर्वसाक्षी, (अग्निः) प्रत्येक अंग २ में व्यापक सबका प्रकाशक है । (सः) वह (प्रीतः) उत्तम प्रेम से परिपूर्ण एवं प्रसन्न होकर प्रभु (सु-आभुवम्) अपने आश्रय पर प्राण धारण करने वाले जगत् को (राये) उत्तम कल्याण के लिये (याति) प्राप्त होता है और वही (स्तोतृभ्यः) विद्वान् वेदज्ञों को (वार्यम्) वरण करने योग्य (इषं) उत्तम ज्ञान और अन्न का (आ भर) प्रदान कर ।

(३) (सः) वह (अग्निः) 'अग्नि' (गृणे) कहा जाता है, (यः) जो (वसुः) समस्त संसार को बसाने हारा और स्वयं सब में बसने हारा, सब का आच्छादक, शरण्य है । और (यं) जिसके धारण में (धेनवः) गौएं, वाणियां एवं ज्ञानरस का पान करने और कराने हारे विद्वान्‌जन (सम् आयन्ति) पहुंचते हैं । और जिसके शरण (रघुद्रुवः) ज्ञानमार्ग में गमन करने वाले विद्वान् (सम्) प्राप्त होते हैं, उपासना करते हैं, और (सु-जातासः) संसार में उत्तम स्थिति को प्राप्त कृतकृत्य, यशस्वी (सूरयः) सूर्य के समान प्रजाओं को धर्ममार्ग में चलाने हारे

२. 'समृगो याति' इति पाठः सायणादिसम्मतः । ऋग्वेदीयः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महापुरुष जिसके शरण में (सन्) आजाते हैं वह तू परमेश्वर ज्ञानस्वरूप (स्तोतृभ्यः) विद्वान् उपासकों को (इषं) उत्तम ज्ञान और अन्न को (आ भर) प्रदान कर ।

[१७४०] महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती । यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ १॥

[१७४१] या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः । सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ २॥

[१७४२] सा नो अद्या भरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः । यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥

॥ ११ ॥ ऋ० ५ । ७९ । १—३ ॥

भा०—(१) हे (उषः) उषा के समान ज्योतिष्मति विशोका प्रज्ञे ! तू (दिवित्मती) ज्योतिष्मती होकर (अद्य) आज, अब (महे) बड़े भारी (राये) आत्मज्ञानरूप धन को प्राप्त करने के लिये (नः) हमें (बोधय) जगा, ज्ञानवान् कर, प्रबुद्ध कर । हे (अश्व-सूनृते) व्यापक आत्मा में शुभ, ऋत अर्थात् उत्तम ज्ञान को पूर्ण करने और वाणी को धारण करने वाली प्रज्ञे ! (वाय्ये) बुने जाने योग्य सूत्र के समान अविच्छिन्न, निरन्तर विद्यमान, सब इन्द्रियों को उस सूत्र में पिरोने हारे (सुजाते) उत्तम रूप से प्रादुर्भाव होने वाले (नः) हमारे (सत्यश्रवसि) सत्य संकल्पकारी आत्मा में (यथा चित्) जिस प्रकार से उत्तम रीति से हो सके उस प्रकार (अबोधयः) तू ज्ञान का प्रकाश कर । देखो व्याख्या अविकल संख्या [४२१] पृ० २१५ ।

(२) (दिवः) हे सूर्य के समान प्रेरक आत्मा के (दुहितः) आनन्दरस का दोहन करने हारी उषः, ऋतम्भरे ! (या) जो तू

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सुनीथे) उत्तम पद पर प्राप्त, मुक्त (शोचद्-रथे) अति पवित्र, शुद्ध, चित्स्वरूप आत्मा में, (वि औच्छः) अज्ञान आवरण को हटाती रही है वैसे ही अब, हे (अश्व-सूनृते) आत्मा में सत्य आत्मज्ञान ब्रह्मज्ञान की सत्यवाणी और धारण करने हारी ऋतम्भरे ! (सा) वह तू (वाय्ये) तन्तु या पट के समान निरन्तर अविच्छिन्न क्रिया साधन करने हारे (सत्य-श्रवसि) सत्यज्ञानमय (सु-जाते) उत्तम रूप से प्रादुर्भूत (सहीयसि) सहनशील, बलवान् आत्मा में भी (वि उच्छ) अज्ञान के आवरण को दूर कर ।

(३) हे (दिवः दुहितः) आत्मा के रस दोहन करने हारी विशोके ! (भरद्-वसुः) वसुरूप प्राणों और मुख्य आत्मा को ज्ञान से भरपूर करने वाली पूर्वोक्त ! तु (या उ) जो (सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते) सहनशील तपस्वी, सत्यज्ञानी, अविच्छिन्न, उत्तम, शुभ-रूप से प्रकाशमान आत्मा से (वि औच्छः) आवरण को दूर करती है (सा) वह तू हे (अश्व-सूनृते) आत्मा को सत्यज्ञान से पूर्ण करने हारी (नः) हमारे अज्ञान को भी (अद्य) आज (व्युच्छः) दूर कर ।

उषा के दृष्टान्त से गृहपत्नी के कर्त्तव्य भी इस सूक्त में बतलाये हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१७४३] प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति ।
२ ३ १ २ ३ १ ३
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २र २र ३ १र २र
[१७४४] अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
दस्रा हिरण्यवर्त्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा ।
२ ३ १ २ ३ १ २
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २ ॥

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३,१ २ ३ १ २ ३१२ ३१ २ ३२
[१७४५] आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
२ ३ १२ ३ १ २
रुद्रा हिरण्यवर्त्तनी जुषाणा वाजिनीवसू ।
२ ३ १ २ ३ १ २
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥ १२ ॥ ऋ० ५।७५।१-३॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४१८] पृ० २१३ ।

(२) हे (अश्विना) पूर्वोक्त प्राण अपानरूप अश्विदेवो ! आप (दस्रा) दोषों के परिशोधक, (हिरण्य-वर्त्तनी) आत्मा के आश्रय पर विराजमान, (सुषुम्णा) उत्तम सुख के देने हारे, अथवा 'सुषुम्ना' उत्तम रूपसे शरीर में व्यापक, सुषुम्ना रूप से विद्यमान, (सिन्धु-वाहसा) गतिशील नाड़ियों में रुधिर को प्रेरित करने हारे, (माध्वी) मधुर, अमृतमय मधुविद्या से युक्त (सना) सनातन से वर्त्तमान, आप दोनों (अति आ यातम्) सब बाधाओं को पार करके प्राप्त होओ (अहं) और मैं आत्मा (विश्वाः) सब को (तिरः) पार करूं । अतः आप (मम) मेरी (हवम्) उपासना या आज्ञा या बचन को (श्रुतं) श्रवण करो ।

(३) हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (युवं) आप दोनों (रत्नानि) रमण साधन इन्द्रियों को धारण करते हुए (नः) हमारे पास (आ गच्छतं) आओ । आप दोनों (रुद्रा) देह को छोड़ते समय कष्ट देने हारे, रुलाने हारे, (हिरण्य-वर्त्तनी) आत्मरूप रथ पर गति करने वाले (वाजिनी-वसू) ज्ञानमयी और बलमयी चिति शक्ति में बसने हारे (माध्वी) मधुविद्या, आत्मविद्या जानने हारे, (जुषाणा) नित्य इस जीवन यज्ञ को सेवन करने वाले (मम हवं श्रुतं) मेरे वचन को श्रवण करो, मेरे वशवर्ती रहो ।

इति तृतीयः खण्डः ।

———०———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१७४६] अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् । यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥

[१७४७] अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् । समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥ २ ॥

[१७४८] यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः । आद् दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥ ३ ॥ १३ ॥ ऋ० ५ । १ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [७३] पृ० ३९ ।

(२) (देवान्) विद्वानों और ३३ देवों को (यजथाय) एकत्र संगति करने के लिये, (होता) समस्त जगत् का दान अर्थात् उत्पत्ति और आदान अर्थात् प्रलय का कर्त्ता (अग्निः) सूर्य के समान स्वयं प्रकाशक परमात्मा, (सु-मनाः) उत्तम ज्ञान से युक्त (अबोधि) सदा उदित होता है । वही सबसे (ऊर्ध्वः) ऊपर विराजमान होकर भी (प्रातः) प्रकृष्ट रूप से व्यापक होकर प्रातः उदित सूर्य के समान सर्वत्र (अस्थात्) विद्यमान रहता है । (समिद्धस्य) देदीप्यमान उस महान् प्रभु का (रुशत्) तेजस्वी (पाजः) बल (अदर्शि) साक्षात् दीखता है । वही (महान् देवः) महान् देव, सूर्य के समान महादेव समस्त चर अचर संसार को (तमसः) मृत्युरूप तम से (निर् अमोचि) सर्वथा मुक्त कर निश्रेयस प्राप्त कराता है । प्रातः—प्राद् अतेररुन् (उणादि० ५।५९) प्रकृष्टमतति गच्छति इति प्रातः (दया० उ०) ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) (यद्) जब (ईं अग्निः) यह अग्नि, स्वयंप्रकाश, समस्त जगत् का प्रकाशक, सब का प्रबोधक परमात्मा (जगस्य) सब प्राणियों और स्थावर पदार्थों की (रशनां) भोग सामग्री और उसमें व्यापक चेतना शक्ति और नियामक शक्ति को स्वयं (अजीगः) अपने वश में किये हैं, अपने आप समेटे हुए हैं और वही (अग्निः) सूर्य के समान प्रकाशक (शुचिभिः) शुद्ध (गोभिः) रश्मियों और वेदवाणियों द्वारा और तेजस्वी पिण्डों द्वारा (अङ्क्ते) समस्त विश्व के ज्ञानों और पदार्थों को प्रकाशित कर रहा है तब (वाजयन्ती) ज्ञान और कर्म का सम्पादन और बल का प्रकाश करने वाला (दक्षिणा) विश्वदमनकारिणी शक्ति को (युज्यते) संसार को महान् कार्यों में लगाता है। (आत्) और (उत्तानां) उत्कृष्ट रूप से सर्वत्र विस्तृत उस शक्ति को (ऊर्ध्वः) वह सबसे उच्च पद पर विराजमान परमात्मा (जुहुभिः) अपनी दान, आदान क्रियाओं द्वारा (अधयत्) अपने वश करता और अपना बल प्रदान करता है उसको अपने भीतर ही लीन करता या धारण करता है।

अशेरशच् (उणादि० २ । ७५) अश्नुते व्याप्नोति इति रशना (दया० उ०)।

[१७४९] इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा। यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥

[१७५०] रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः। समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमि-
माने ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१७५१] समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे। न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥ १४ ॥ ऋ० १ । ११३ । १-३ ॥

भा०—(१) (इदं) यह साक्षात् (श्रेष्ठं) सबसे उत्कृष्ट (ज्योतिषां ज्योतिः) सब ज्योतिष्मान् दिव्य पिण्डों को भी प्रकाशित करने हारा सर्वोत्तम ज्योति (आगात्) प्राप्त होता है। और इसी ज्योति से यह (चित्रः) अद्भुत आश्चर्यजनक, परमपूजनीय, ग्रहण करने योग्य (विभ्वा) महान् (प्रकेतः) उत्तम प्रज्ञान (अजनिष्ट) उत्पन्न होता है। (यथा) जिस प्रकार [उत्पन्न हुई उषा (सवितुः) सूर्य के (सवाय) उत्पन्न होने के लिये पूर्वरूप है और (रात्री) रात्रि (उषसे) उषा के लिये (योनिम्) पूर्वरूप को (आरैक्) छोड़ती है (एव) उसी प्रकार ऋतम्भरारूप उषा (सवितुः) सर्वप्रेरक ब्रह्म के (सवाय) ज्ञान-प्रादुर्भाव के लिये पूर्वरूप है और (रात्री) सब को सुख प्रदान करने वाली सुषुम्ना (उषसे) ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय के लिये (योनिं) आश्रय स्वरूप आत्मा को (आरैक्) सम्पर्क करा देती है।

राशदिभ्यां त्रिप् (उणादि० ४ । ६७) रातिं सुखं ददाति इति रात्रिः (दया० उ०)

(२) (श्वेत्या) जिस प्रकार शुक्लवर्णा गौ या महिला के समान उषा (रुशती) दीप्तियुक्त होकर (रुशद्-वत्सा) देदीप्यमान सूर्य को अपने श्वेत बच्चे के समान साथ लिये (आगाद्) आती है (उ) और मानो (कृष्णा) श्याम गौ या महिला के समान रात्रि (अस्याः) उस श्वेत गौर-उषा के लिये (सदनानि) विराजने के निमित्त स्थान (आरैक्) खाली कर देती है, आदर से छोड़ देती है ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों (समानबन्धू) समान रूप से प्रिय बन्धु हों। और दोनों ही (अमृते) कभी न मरने हारी (अनूची) अनिर्वचनीय होकर (वर्णं) समस्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत् के वर्णनीय रूप को साक्षात् करने योग्य (आमिनाने) बनाती हुई (द्यावा) तेजोरूप होकर (चरतः) विचरण करती हैं । उसी प्रकार यह उषा रूप विशोका प्रज्ञा स्वयं अध्यात्म कान्तियों से सम्पन्न होकर अपने रोचमान बालक प्राण को या हंसरूप आत्मा को साथ लिये प्रकट होती है और कृष्णा = आकर्षण करने वाली या दुःखों को काटने वाली सुषुम्ना वृत्ति (अस्याः सदनानि आरैक्) इस विशोका ज्योतिष्मती प्रज्ञा के लिये उचित भूमि या आधार तैयार कर देती है । ये दोनों ही (अमृते अनूची समानबन्धू) अमृतरस आत्मानन्द से पूर्ण, अवर्णनीय और समान नामक सर्वगत प्राण द्वारा बद्ध होती है, या परस्पर समान रूप से सम्बद्ध होती है । ये दोनों (वर्णं आमिनाने) वरण करने योग्य आनन्द या आत्मज्ञान को उत्पन्न करती हुईं (द्यावा चरतः) प्रकाशस्वरूप आत्मा के साथ वर्त्तमान रहती है ।

(३) (स्वस्रोः) रात्रि और उषा इन दोनों भगिनियों या भाई बहनों का (समानः) समान रूप से (अनन्तः) अनन्त (अध्वा) मार्ग है । (तं) उस मार्ग पर (देव-शिष्टे) देवरूप सूर्य से अनुशिक्षित होकर ये दोनों (अन्या-अन्या) एक २ करके (चरतः) चलती हैं । (सुमेके) शुभ लक्षण वाली (नक्त-उषासा) रात्रि और उषा दोनों (वि-रूपे) विरुद्ध रूप काली और श्वेत, तम और प्रकाश रूप होकर भी (स-मनसा) एकचित्त होकर परस्पर (न मेथेते) नहीं लड़ती भिड़ती हैं और (न तस्थतुः) न कभी कहीं रुकते हैं । इसी प्रकार इन रात्रि और उषा के समान इस देह में विशोका और सुषुम्ना वृत्ति इन दोनों (स्वस्रोः, अध्वा समानः) बहनों का या स्वयं सरण करने वाली, स्वयं प्रकट होने वाली दोनों वृत्तियों का (अध्वा) मार्ग या आश्रय समान है, या वह सर्वत्र देह में समभाव से वर्त्तमान आत्मा ही है । (देव-शिष्टे) प्रकाशमान ज्ञानी आत्मा से अनुशासित होकर दोनों (अन्या-अन्या) जुदी जुदी (तं चरतः) उसी को प्राप्त होती है । अर्थात् ये दोनों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्थाएं उसी आत्मा की हैं। ये दोनों (सुमेके) उत्तम रूप से आनन्द के उत्पन्न करने हारी धर्ममेघ समाधि के धारण करने वाली (विरूपे) सुख और ज्ञान दो प्रकार के भिन्न २ अनुभव कराने से विभिन्न २ रूप वाली होकर (स-मनसा) समान रूप से एक ही मन का आश्रय लेने वाली (न मेथेते) एक दूसरे का बाधक नहीं होतीं और (न तस्थतुः) निरन्तर स्थिर भी नहीं रहतीं, प्रत्युत क्रम २ से प्रकट होती हैं।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
[१७५२] आभात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्म-
२र
मच्छ ॥ १ ॥

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १
[१७५३] न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
दिवाभिपित्वेऽवसा गमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा
॥ २ ॥

३ १ २ २ ३ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१७५४] उता यातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २र
दिवानक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान॥
३ ॥ १५ ॥ ऋ० ५ । ७६ । १–३ ॥

भा०—(१) (अग्निः) सूर्य (उषसाम् अनीकम्) मानो उषाओं का मुख हो ऐसे (आभाति) प्रकाशित होता है। (विप्राणां) मेधावी विद्वान् भक्त पुरुषों की (देवया) इष्टदेव परमात्मा तक पहुंचने वाली (वाचः) वेदमन्त्र-ध्वनियां (उद्-अस्थुः) उठने लगती हैं। हे (अश्विना) अश्विदेवो ! प्राण और अपान एवं स्त्री पुरुषो ! हे (रथ्या) देहरूप रथपर आरूढ प्राण और अपान आप दोनों ! (इह) इस देह में (अर्वाञ्चा) निम्न देश में गति करने वाले होकर भी (यातम्) अब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर आओ और ((पीपिवांसं) बराबर बढ़ते हुए (घर्मं) ज्योतिस्वरूप रस को (अच्छ) साक्षात् करो। अथवा (अग्निः, उषसां अनीकं) अग्निहोत्र की अग्नि उषाओं का मुखरूप होकर (आभाति) प्रकाशित होता है।

अथवा—अध्यात्मपक्ष में विशोका प्रज्ञाओं का (अनीकं) पुरस्सर मुखरूप (अग्निः) विशेष तेज (आभाति) धारण प्रदेशों में प्रकाशित होता है। उसी समय विद्वान् पुरुषों की इष्टदेव आत्मविषयक वेदवाणियां प्रकट होती हैं। शेष पूर्ववत्। हे (अश्विनौ) प्राण और अपान! तुम दोनों रथपर देह के हितकारी होकर (अर्वाञ्चा) साक्षात् रूप से प्रकट होकर (पीपिवांसं घर्मम्) बराबर बढ़ते हुए तेज को (अच्छ यातं) उत्तम रीति से प्राप्त कराओ। जैसा कि श्वेताश्वतर उपनिषद् (अ० २। ११। १२) में लिखा है—

नीहारधूमार्कानलानिलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशिनाम्।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे॥
पृथिव्यप्तेजोनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

योग समाधि के अभ्यास के अवसर में ब्रह्मसाक्षात् के पूर्व नीहार धूम, सूर्य, अग्नि, विद्युत्, स्फटिक आदि के रूप प्रकट होते हैं। उस समय पांचों भूतों पर वश हो जाता है। जरा और मृत्यु हट जाती है शरीर योगाग्निमय हो जाता है।

(२) हे (उप-स्तुता) प्रशंसनीय! आदर योग्य! हे (अश्विना) अश्विगण प्राण और अपान! या स्त्री पुरुषो! आप दोनों (अन्ति) अत्यन्त समीप (गमिष्ठा) प्राप्त होने हारे (संस्कृतं) उत्तम रूप से तैयार किये इस ब्रह्मरस को (न प्र मिमीतः) विनाश नहीं करते। प्रत्युत (दिवा अभिपित्वे) प्रकाश या दीप्ति के प्राप्तिकाल में आप दोनों (अवसा) अपने पालक बल सहित (आगमिष्ठा) अवश्य प्राप्त होते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही और (दाशुषे) अपने को समर्पण करने हारे आत्मा के (अवर्त्ति प्रति) पुनः जीवन में लौट कर न आने अर्थात् मुक्त हो जाने के निमित्त (नूनं) अवश्य हो (शम्भविष्ठा) शान्तिदायक, कल्याणकारी होते हो ।

(३) हे (अश्विना) अश्विगण ! प्राण और अपान आप दोनों (अह्नः) दिन के (प्रातः) प्राप्त होने पर प्रातःकाल में (उत) भी (आयातम्) आइये । और (सूर्यस्य) सूर्य के (उदिता) ऊर्ध्वस्थान पर प्राप्त होने के (मध्यन्दिने) मध्याह्न काल में भी आइये । और (शन्तमेन) अति कल्याणकारी सुख शान्तिदायक (अवसा) अपने पालक बल द्वारा प्राप्त होइये । (इदानीं) इस समय अन्य इन्द्रियों को (पीतिः) रसास्वादन की क्रिया (न आततान) नहीं की जाती बल्कि यह केवल ब्रह्मरस के आस्वादन का भाग आपके ही करने का है । प्रातः मध्याह्न और सायं इन तीनों कालों में प्राणायाम करने से योगियों को विशेष सुख की प्राप्ति होती है । अथवा तेजः-पुञ्जों के प्रकट होने के प्रारम्भ, मध्य और नैरन्तर्य काल में अर्थात् जब दिवानक्त अर्थात् रात दिन समान रूप से हों तब भी प्राण और अपान ही ब्रह्मरसास्वादन में भारी सहायक है ।

इति चतुर्थः खण्डः ।

---

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ १
[१७५५] एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानु-
३ ३ १२ २र ३ २ ३ २ ३ १र
मञ्जते । निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽ-
३ १ २
रुषीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१७५६] उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा,स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥
॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
[१७५७] अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना
२ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
परावतः । इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यज-
३ २
मानाय सुन्वते ॥ ३ ॥ १६ ॥ ऋ० १ । ९२ । १—३ ॥

भा०—(१) उषापक्ष में—(एताः उ त्याः) ये वे, (उषसः) उषाएं अन्तरिक्ष लोक में (पूर्वे अर्धे) पूर्व के आधे भाग में (रजसः) सूर्य के (भानुम्) प्रकाश को (अञ्जते) प्रकट करती हैं। मानो (केतुम्) सब को अपना आगमन दर्शाने के लिये ज्ञापक चिह्न, ध्वजा = झन्डे के समान (अक्रत) बना लेती हैं। (अरुषीः) प्रकाश-मान (मातरः) मातास्वरूप उषाएं (अरुषीः) दीप्तिमान् (गावः) किरणों को (आयुधानि इव) अपने हथियारों के समान (निष्कृण्वानाः) सजाती हुई (धृष्णवः) शत्रुओं का मान दलन करने वाले सुभटों के समान (प्रति यन्ति) अन्धकार को दूर करने के लिये युद्धयात्रा सी करती हैं।

अध्यात्म पक्ष में—(एताः उ त्याः) ये वे, जिनका वर्णन पूर्व किया और जो योगाभ्यासी के लिये अपूर्व हैं वे (उषसः) नई नई विशोका ज्योतिष्मती प्रज्ञाएं (केतुम्) अपने ज्ञापक (भानुम्) आदित्य के समान स्वयं प्रकाश और विशोका के प्रकाशक प्राणात्मा का (रजसः[1]) नीहार या धूम के एकटीभाव होने के (पूर्वे) पूर्ण रूप से (अर्द्धे[2]) ऋद्धतम या उत्तम रूप से सम्पन्न होजाने पर (अञ्जते) प्रकाशित

१७५५—१. 'रजसः'—रजति रज्यति वा तद् रजः । भूरञ्जिभ्यां किंत् । (उणा० ४ । २१७) लोकः सूक्ष्मधूलिः, स्त्रीपुरुषगुणो वा इति दयानन्द उणादिव्याख्यायाम्, रंज रागे [भ्वादि दिवादिश्च]

२. अर्धो हरतेर्विपरीताद् धारयतेर्वा स्याद् उद्धृतं भवत्यृध्नोतेर्वा स्यादृद्धतमो विभागः (निरु०)। ऋधु वृधौ (दिवादिः)। ऋधु वृद्धौ छन्दसि (स्वादिः)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती हैं। वे (अरुषीः) सर्वतः प्रकाशमान (मातरः) प्रमा अर्थात् यथार्थ ज्ञान कराने वाली ऋतम्भराएं (धृष्णवः) शत्रु पर चढ़ाई करने हारे सुभट जिस प्रकार (आयुधानि इव) अपने भाले आदि शस्त्रों को ऊपर उठाते और चलाते जाते हैं उसी प्रकार (गावः) इन्द्रियवृत्तियों को या प्राणों को (विष्कृण्वानाः) स्वच्छकर आगे प्रेरित करती हैं।

योगाभ्यास की यह दशा विशेष विचारयोग्य है। अश्विद्वय और उषा का उदय ये दो घटनाएं योगाभ्यास में प्राणायाम की साधना के अनन्तर उत्पन्न होने वाली विशोका ज्योतिष्मती के उदय को दर्शाती हैं। यहां स्पष्ट करने के लिये योगशास्त्र के सूत्र एवं भाष्य का उद्धरण देते हैं।

मन को स्थिर करने के लिये "प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।" (योग० १। ३४) प्राण के प्रच्छर्दन और विधारण का जो अभ्यास किया जाता है वही प्राणायाम कहाता है। इसी प्रच्छर्दन और विधारण को प्राण और अपान के नाम से पुकारा जाता है। अथवा धारणा द्वारा—"विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी।" (यो० १। ३५) विषयवाली जब कोई संवित् प्रवृत्ति उत्पन्न होजाती है तब भी मन उसमें स्थिर हो जाता है। और वे संचित ज्ञान भी समाधि-प्रज्ञा अर्थात् विशोका के उत्पन्न होने में कारण हो जाता है। उसके बाद "विशोका वा ज्योतिष्मती।" (यो० सू० १। ३६) हृदयदेश में धारण करने पर बुद्धि सत्त्व सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप साक्षात् होता है। उसके बाद आत्मज्ञान होता है। जैसा इसी सूत्र पर महर्षि व्यासजी ने अपने भाष्य में लिखा है।

"हृदयपुण्डरीके धारयतो वा बुद्धिसंवित्। बुद्धिसत्त्वं हि भास्वर-माकाशकल्पं। तत्र स्थितिवैशारद्यात् प्रवृत्तिः। सूर्य—इन्दु—ग्रह—मणि-प्रभारूपाकारेण विकल्पते। तथाऽस्मितायां समापन्नं चित्तं निस्तरङ्गमहो-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विकल्पं शान्तमनन्तमस्मितामात्रं भवति । यत्रेदमुक्तं—'तमणुमात्रमात्मा नमनुविद्यास्मीत्येवं तावत्स प्रजानीते इति । एषा द्वयी विशोका विषयवती अस्मितामात्रा च प्रवृत्तिर्ज्योतिष्मतीत्युच्यते । यया योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभते ।'

अर्थात्—हृदय पुण्डरीक में धारणा करते हुए योगी को बुद्धिसंवित् अर्थात् मानस दिव्य प्रज्ञा की सिद्धि होती है । वह बुद्धिसत्व मानस भास्वर = सूर्य के समान प्रकाशवान् विशाल आकाश के समान व्यापक प्रभापटल साक्षात् होता है, उस दशा में योगी का चित्त अति आनन्द-जनक, स्थिर स्थिति को प्राप्त करता है । वहां वह बुद्धिसंवित् या चिति-शक्ति सूर्य, चन्द्र, शुक्रादि ग्रह, दिव्य मणियों की विशेष प्रभा का स्वरूप होकर स्वयं प्रकाशित होता है, उस समय वह बुद्धितत्व सुषुम्ना में रहता है । उसकी उत्पत्ति वैकारिक अंहतत्व से ही होने के कारण अतिसात्विक होने से अस्मितामात्र 'अहं' ऐसा ही भान होता है । उस समय वह चित्त तरङ्गरहित, विशाल समुद्र के समान शान्त और अनन्त प्रतीत होता है । इसी दशा को उपनिषत्कार महर्षियों ने उपनिषदों में लिखा है—"तमणु-मात्रमात्मानमनुविद्याऽस्मीत्येवं स प्रजानीते" इति । अर्थात् उस अणुपरिमाण आत्मा को प्राप्त करके 'अस्मि' मैं हूँ इस प्रकार ज्ञान कर लेता है । विशोका दो प्रकार की होती है एक 'विषयवती' जिसमें गन्धादि पांचों ग्राह्य विषयों की तीव्र संवित् की जागृति होती है और दूसरी 'अस्मिता-मात्र' इसमें 'अहं' तत्त्व या मनस्तत्व का साक्षात् अनुभव होता है । दोनों प्रकार की विशोका 'ज्योतिष्मती' नाम से ही कही जाती है । इसके साक्षात् होने से योगी आनन्द में मग्न हो जाता है और फिर उसका चित्त इसी के द्वारा स्थिति पद को प्राप्त हो जाता है । इस ज्यो-तिष्मती के संग एक चित्तवृत्ति का दूसरा रूप भी होता है उस को योग-शास्त्र में 'स्वप्नज्ञान' या 'निद्राज्ञान' दो नामों से पुकारा जाता है उसका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलम्बन करके भी योगी का चित्त मग्न होजाता है । यह सात्विकी निद्रावृत्ति है । उपासनारूप में साधक लोग इसका स्वरूप ऐसा निर्धारण करते हैं जैसे चन्द्रमण्डल से निकलने वाली, कोमल मृणालखण्ड के समान शुभ्रवर्णा, मानो चन्द्रकान्त मणि की बनी हो । बहुत से उसी को इष्टदेव की मूर्ति जानकर उसकी उपासना करते हैं । उसी निद्रा या सुप्तावस्था को भी ब्रह्म का स्वरूप कहा करते हैं । वेद में उसको उषा के साथ 'नक्त' या 'रात्रि' नाम से पुकारा है । योगी का इस प्रकार धारणा या प्राणायाम द्वारा स्थिर चित्त जिस विषय पर बैठ जाय वहां ही उसी की 'तत्स्थ—तदञ्जनता' हो जाती है । अर्थात् वह उसी में तन्मय तदाकार हो जाता है । यह 'समापत्ति' कहाती है । यह 'सवितर्का' और 'निर्वितर्का' 'सविचारा' और 'निर्विचारा' भेद से चार प्रकार की होती है । ये चारों ही 'समाधि' दशा कहाती हैं । इनमें निर्विचार दशा में चित्त पर कोई अशुद्धि या मल का आवरण नहीं रहता उस समय बुद्धिसत्व का प्रवाह स्वच्छ सिन्धु के समान रहता है । उसी दशा में योगी का 'अध्यात्मप्रसाद' और 'प्रज्ञालोक' उत्पन्न होता है । "निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः" (१ । ४७) । और उसी समय "ऋतंभरा यत्र प्रज्ञा" (१ । ४८) 'ऋतम्भरा' नामक सत्यदर्शिनी बुद्धि का उदय होता है । प्रायः उषा देवता के मन्त्रों में इसी 'विशोका प्रज्ञा' और 'स्वप्न ज्ञान' और चारों समाधियों और ऋतम्भरा का वर्णन है । संक्षेप से यहां विषय दर्शाया है । इसका विशेष ज्ञान, योगदर्शन पर व्यासमुनिकृत भाष्य देखने से प्राप्त होता है ।

(२) उषा पक्ष में—(अरुणाः) दीप्तिमान् (भानवः) उषाकाल की किरणें (वृथा) सर्वव्यापन करती हुई अथवा अनायास, आप से आप (उदपप्तन्) ऊपर उठती हैं, मानो उषा के रथ में (स्वायुजः) आपसे आप जुड़ने वाली, सुशील (अरुषीः) दीप्तिवाली (गाः) गौओं या बैलों के समान रश्मियों को (अयुक्षत) लगाया हो । इस प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उषाएं (पूर्वथा) सोने के पूर्व वर्तमान गत दिवस के (वयुनानि) ज्ञानों और व्यवहारों को (अक्रन्) पुनः उत्पन्न करती हैं । तब (अरुषीः) देदीप्यमान उषाएं (रुशन्तं भानुम्) देदीप्यमान सूर्य का (अशिश्रयुः) आश्रय लेती हैं ।

अध्यात्मपक्ष में—(आरुणाः भानवः वृथा उदपप्तन्) कान्तिमान् रश्मियां या आलोक सहज ही मूर्धाभाग को आवरण करने हारे नाना धारणा प्रदेशों में प्रकट होते हैं अर्थात् बहुत से संवित् उत्पन्न होते हैं । वे (स्वायुजः) स्व = अपने २ विषयों से या आत्मा से, जुड़ने हारी (गाः) इन्द्रिय-वृत्तियां (अरुषीः) विशेष आलोक से आलोकित होकर (अयुक्षत) समाधि द्वारा प्रकट होती हैं अर्थात् ये विषयवती विशोकाएं हैं । ये सब उषाएं या ज्ञानालोक (पूर्वथा) पूर्वकाल से वर्त्तमान (वयुनानि) चित्त के सब संस्कारों, स्मृतिज्ञानों को (अक्रन्) जागृत कर देते हैं । और ये सब प्रज्ञाएं (अरुषीः) देदीप्यमान होकर (रुशन्तं भानुं) देदीप्यमान आत्मा को (अशिश्रयुः) आश्रय किये रहती हैं ।

(३) जिस प्रकार (विष्टिभिः) अपने वेतनों के कारण (आ परावतः) दूर देश से भी आई (समानेन योजनेन) समान उद्योग में लगी हुई (अपसः) काम करने वाली (नारीः) स्त्रियां (सु-दानवे) उत्तम दानशील, (सुकृते) उत्तम कर्मशील (सुन्वते) सोम सवन करते हुए (यजमानाय) यजमान, वेतनदाता स्वामी पुरुष के लिये (इषं) उत्पादित अन्न उस के अभिलषित कार्य को झार-पछोर कर तैयार करती हुई (अर्चन्ति) उसका यश गान करती हैं (न) उसी प्रकार यह उषाएं = ज्योतिष्मती विशोका प्रज्ञाएं (विष्टिभिः) तत्त्व में प्रवेश करनेवाली रश्मियों से (समानेन योजनेन) समान रूप समाधि योग से (सुन्वते) आनन्द-रस के उत्पादक (सुदानवे) आत्मसमर्पक (सुकृते) निष्ठ, कुशल (यजमानाय) आत्मा के लिये (विश्वा इद् अह) समस्त (इषः) ज्ञान और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल (वहन्तीः) प्राप्त करती हुई (परावतः) दूर देशों तक विद्यमान पदार्थों का (अर्चन्ति) ज्ञान करा देती हैं और उसी की महिमा का प्रकाश करती हैं।

[१७५८] अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युऽषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा। आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद् देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

[१७५९] यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्। अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥

[१७६०] अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः। त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आवक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥ १७ ॥

ऋ० १ । १५७ । १-३ ॥

भा०— (१) (ज्मे) पृथिवी में (अग्निः) अग्नि जिस प्रकार अग्निहोत्र के समय (अबोधि) जगाया जाता है और (सूर्यः) सूर्य (उदेति) उदय होता है। और (चन्द्रा) आह्लादकारिणी (उषाः) उषाएं भी (मही) विशाल रूप में (वि आवः) विविध तेजों सहित प्रकट होती और अन्धकारों को हटाती हैं उसी प्रकार इस आत्मरूप वेदि में ज्ञानरूप अग्नि प्रदीप्त हो जाता है और ब्रह्मरूप सूर्य उदित होता या आनन्दरस को उत्पन्न करने हारी विशोका ज्योतिष्मती उषा के समान (अर्चिषा) अपने तेज से (वि आवः) मलावरणों को दूर कर देती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कारण हे (अश्विना) प्राण और अपान ! तुम दोनों (यातवे) आत्मा तक पहुंचने के लिये (रथम्) इस देह या मनरूप रथ को (आ-अयुञ्जाथम्) योगाभ्यास द्वारा युक्त करो । जिससे (सविता) सबका प्रेरक (देवः) प्रकाशमान आत्मा (जगत्) समस्त जगत् के पदार्थों को (प्र-असावीत्) उत्तम रूप से ज्ञान करे ।

(२) हे (अश्विना) प्राण और अपान आप दोनों (यत्) जब (वृषणं) सुखों के वर्धक (रथं) रमणसाधन, चित्त या आत्मरूप रथ को (युञ्जाथे) योगाभ्यास द्वारा समाहित करते हो तब आप (नः) हमारे (क्षत्रम्) प्रेरक आत्मा को (घृतेन) देदीप्यमान तेज से (उक्षतम्) सेचन करते हो और (अस्माकं) हमारे (पृतनासु) विषयों को ग्रहण करने हारी इन्द्रियवृत्तियों में (ब्रह्म) विशेष सत्य संविद् ज्ञान को (जिन्वतं) उत्पन्न करते हो और (वयं) हम (शूर-साती) आत्मज्ञान की प्राप्ति में (धना) नाना दिव्य ज्ञानों को (भजेमहि) प्राप्त करते हैं ।

(३) (अश्विनोः) उन प्राण और अपान का (त्रिचक्रः) तीन चक्रों से युक्त (मधु-वाहनः) अमृत = 'ओरम्' अथवा एकमात्र वहन करने हारे आत्मरूप अश्व से युक्त (जीर-अश्वः) बहुत प्राचीन, सनातन, अमर, अविनाशी अश्व अर्थात् आत्मा से युक्त (सु-स्तुतः) उत्तमरूप से वर्णित किया गया रथ (अर्वाङ्) साक्षात्‌रूप से (यातु) गति करता है । (मघवा) वह ज्ञानवान् योगी आत्मा रथरूप, (त्रि-बन्धुरः) तीन प्रकार के सारथिपीठों या बन्धनों से युक्त है और उनमें आत्मा, मन और इन्द्रिय या तीन गुण वात, पित्त, कफ आदि तीन धातु ये तीन ही प्रकार के सारथि या बन्धन के हेतु हैं । और वह (विश्व-सौभगः) समस्त संसार को सौभाग्य या सुखैश्वर्य का देने हारा अथवा समस्त संसार के सब उत्तम ऐश्वर्यों को सिद्ध करने हारा होकर (नः) हमारे (द्विपदे) समस्त मनुष्य संसार और (चतुष्पदे) पशु संसार को (शं) कल्याण (आवक्षत्) प्राप्त करावे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी सनातन अश्व के पीछे लगे रथ की कल्पना को प्रकारान्तर से श्वेताश्वतर उपनिषद् में इस प्रकार बतलाया है:—

सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद् उ अनड्वान् ।
एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः ॥
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः ।
अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितो यः ॥

इसी प्रकार मुण्डक में—

'दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ।
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं संनिधाय ।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद् विभाति । इत्यादि ॥'

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[१७६१] प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
[१७६२] अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
१ २ ३ १र २र
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१७६३] स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।
३ १र २र
श्येनो न वंसु षीदति ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १र २र
[१७६४] स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।
३ १ २ ३ १ २
पुनान इन्दवाभर ॥ ४ ॥ १८ ॥ ऋ० ९ । ६२ । १-४ ॥

भा०—(१) हे सोम ! आत्मन् ! (असश्चतः) संगरहित (दिवः) प्रकाशस्वरूप (ते) तेरी (धाराः) धारणा शक्तियां (दिवः) द्यौलोक से (वृष्टयः न) वर्षाओं के समान (सहस्रिणं) अतिबलवान् या सहस्रों ज्ञानों से युक्त (वाजं) ज्ञानस्वरूप परमात्मा को (अच्छ) प्राप्त होती हैं अथवा ब्रह्मानन्द की धाराएं आत्मा को (यन्ति) प्राप्त होती हैं ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) वह आत्मा (विश्वा) समस्त (प्रियाणि) मनोहर (काव्या) जगत् के सूक्ष्म ज्ञानों को (अभि) साक्षात् रूप में (चक्षाणः) दर्शन करता हुआ (आयुधा) अपने प्रहार करने हारे ज्ञान से (तुंजानः) कर्म बन्धनों को काटता हुआ (हरिः) मोक्षपद में गमन करने वाला मुक्तात्मा होकर (अभि अर्षति) सर्वत्र विचरता है ।

(३) (सः) वह आत्मा (आयुभिः) दीर्घायु, ज्ञानवान् तपस्वियों द्वारा (मर्मृंजानः) योग साधनों से परिमार्जित किया गया (इभः) निर्भय (राजा इव) राजा के समान और (श्येनः न) पक्षि संसार में निर्भय बाज या गरुड़ के समान (सु-व्रतः) उत्तम कर्मों से युक्त (वंसु) अपने इच्छानुकूल समस्त लोकों में (सीदति) विचरता है ।

(४) हे इन्दो ! सोम ! ऐश्वर्यवन् ! परमात्मन् ! (सः) वह तू (नः) हमें (दिवः) द्यौलोक के (उत उ) और (पृथिव्याः अधि) पृथिवी पर के (विश्वा वसू) समस्त पदार्थों को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (नः) हमारे लिये (आ भर) प्राप्त करा ।

उक्त चारों मन्त्र परमात्मा पक्ष में भी स्पष्ट हैं ।

(१) (असश्चतः ते धारा दिवो वृष्ट्यो न सहस्रिणं वाजं अच्छयन्ति) हे ईश्वर तुझ असङ्ग परम पुरुष की धारणपोषणकारी शक्तियां सहस्रों धनों से युक्त अन्न को दान करती हैं ।

(२) (प्रियाणि विश्वा काव्यानि चक्षाणः आयुधा तुंजानः हरि अभि अर्षति) मनोहर समस्त लोकों को देखता हुआ अपने बल से विघ्नों का नाश करता हुआ परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है ।

(३) (स आयुभिर्मर्मृंजानः इभो राजा इव सुव्रतः श्येनो न वंसु सीदति) पुरुषों द्वारा हृदय में स्वच्छरूप में साक्षात् करने योग्य वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभयरूप उत्तम कर्मों का सम्पादक परमेश्वर राजा के समान और आत्मा के समान सब लोकों में विराजमान है।

(४) चतुर्थ स्पष्ट है।

इति पञ्चमः खण्डः।

इति तृतीयोऽर्धप्रपाठकः। इति अष्टमः प्रपाठकः समाप्तः।

इत्येकोनविंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ विंशोऽध्यायः ॥

अथ नवमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥

ऋषिः—१ नृमेध आंगिरसः। २ प्रियमेध आङ्गिरसः। ४ दीर्घतमा औचथ्यः। ५ वामदेवो गौतमः। ६ प्रस्कण्वः काण्वः। ७ बृहदुक्थो वामदेव्यः। ८ बिन्दुः पूतदक्षो वांगिरसः। ९ १७ जमदग्निर्भार्गवः। १० सुकक्ष आंगिरसः। ११—१३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। १४ सुदाः पैजवनः। १५ मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः। १६ नीपातिथिः काण्वः। १८ परुच्छेपो दैवोदासिः। २ एतत्साम वामदेवः॥ देवताः—१, १७ पवमानः सोमः। २, ३, ७, १०, १६ इन्द्रः। ४–६, १८ अग्निः। ६ अग्निरश्विनावुषाः। ८ मरुतः। ९ सूर्यः। २ एतत्साम ॥ छन्दः—१, ८, १०, १५—१७ गायत्री। १७ बृहती। २ अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः। (१) अनुष्टुप् (२, ३) गायत्री। ४ उष्णिक्। ११ भुरिगनुष्टुप्। १३ विराडनुष्टुप्। ५ पदपङ्क्तिः। ६, ७, १२ प्रगाथो बार्हतः। ७ त्रिष्टुप्। १४ शक्वरी। १६ अनुष्टुप। १७ द्विपदा गायत्री। १८ अत्यष्टिः। २ द्विपदा ककुप्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१७६५] प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसः।
देवाँ अनु प्र भूषतः ॥ १ ॥

[१७६६] सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा।
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥

[१७६७] सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो।
वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥ १ ॥ ऋ० ९। २९। १–३ ॥

भा०—(१) (सुतस्य) सबके प्रेरक, (वृष्णः) सुखों के वर्षक (देवान्) देवों के (अनु प्र भूषतः) इन्द्रिय वृत्तियों को अपने अनुकूल रखकर उन पर वश करने वाले, (अस्य) इस आत्मा के (ओजसः) शक्ति और तेज की धाराएं (प्र अक्षरन्) चारों ओर प्रवाहित होती हैं।

परमात्मापक्ष में देव, पञ्चभूत आदि दिव्य पदार्थ और विद्वान् गण।

(२) (कारवः) कर्मण्य, कर्त्ता, कर्मयोगी (वेधसः) मेधावी, विद्वान् पुरुष (उक्थ्यम्) 'ओ३म्' इस प्रकार के उक्थ नाम से कहाने योग्य स्तुत्य, वेदसूक्तों के प्रतिपाद्य, श्रेष्ठ (जज्ञानम्) प्रादुर्भाव होती हुई (ज्योतिः) ज्योति को (गिरा) अपनी वाणी द्वारा (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (सप्तिम्) सर्पणशील, सात इन्द्रियों से युक्त आत्मा को ही (मृजन्ति) मांजते, शुद्ध, पवित्र, परिष्कृत किया करते हैं। सप्ति = सात मूर्धागत प्राण, जैसे–दो नाक, दो आंख, दो कान, एक मुख और आठवीं वाणी।

(३) हे (सोम) हे ऐश्वर्यवान्! हे (उक्थ्य) वेदप्रतिपाद्य परमात्मन् या आत्मन्! हे (प्रभूवसो) प्रभूत ऐश्वर्यसम्पन्न परमेश्वर! अथवा सामर्थ्यवान् होकर सब विश्व में बसने हारे अन्तर्यामिन्!

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभो ! (ते) तेरे (तानि) वे समाधि दशा में प्रकट होने हारे तेज (सु-सहा) अन्य सब चित्तवृत्तियों और व्युत्थान संस्कारों को उत्तम रीति से विनाश करने हारे होते हैं । अतः उनसे ही तू (समुद्रम्) उस रसों के आनन्ददायक स्रोत को (वर्ध) और बढ़ा ।

ज्योतिष्मती विशोका के विवरण में व्यासदेव ने लिखा है—

"हृदयपुण्डरीके धारयतो या बुद्धिसंवित् बुद्धिसत्वं हि भास्वरमाकाशकल्पं तत्र स्थितिवैशारद्यात् प्रवृत्तिः सूर्येन्दुग्रहमणिप्रभारूपाकारेण विकल्पते तथा अस्मितायां समापन्नं चित्तं निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं शान्तमनन्तमस्मितामात्रं भवति । " इसका विवरण देखो अवि० सं० [१७५६] पृ० ७७१–७७२ पर उद्धरण टिप्पण । इस मन्त्र में समुद्र शब्द से 'निस्तरंगमहोदधिकल्प' चित्तदशा का ही ग्रहण होता है ।

[१७६८] एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ १ ॥

[१७६९] त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥ २ ॥

[१७७०] वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद् यन्तु रातयः ।

॥ ३ ॥ २ ॥ सूक्तम् ऋग्वेदे नास्ति ।

भा०—(१), (३) व्याख्या देखो अविकल सं० [४३८] और [४५३]

(२) हे (शवसस्पते) बलों के स्वामिन् ! सर्वशक्तिमन् ! (संयतः) प्राणों का संयम करने हारे साधक, ईश्वर-प्रणिधान के अभ्यासी पुरुष की (गिरः न) वाणियों के समान समस्त (गिरः) वेदवाणियां (त्वाम् इत्) तुझको ही (यन्ति) प्राप्त होती हैं ।

[१७७१] आ त्वा रथं यथोतये० ॥ १ ॥

१७६८,७१—३. अनेक स्थानों पर प्रतीकमात्र दीगई है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१७७२] तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते ।
१ २ ३ २
आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २
[१७७३] यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥ ३ ॥

ऋ० ८ । ३८ । ०-२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३५४] । यह प्रतीक मात्र है ।

(२) हे (तुवि-शुष्म) प्रभूत अनन्त शक्तिशालिन् ! हे (तुवि-क्रतो) विशाल प्रभूत कर्म करने वाले ! अथवा बहुप्रज्ञ ! अनन्तज्ञान ! हे (शचीवः) शक्ति के स्वामिन् ! हे (मते) ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! आप (विश्वया) समस्त विश्व में व्यापक (महित्वना) महिमा या महान् सामर्थ्य से (आ पप्राथ) सर्वत्र व्यापक हैं ।

(३) (यस्य महः) जिस महान् तेरी (महिना) बड़ीभारी शक्ति से (हस्ता) तेरे हनन साधन दो विशाल शक्तियां (परि) सर्वत्र (ज्मायन्तं) व्यापक (हिरण्ययम्) गतिशील (वज्रं) वज्र को (ईयतुः) ग्रहण करती हैं, वह तू इन्द्र है ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २
[१७७४] आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
[१७७५] अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो
२ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्थात् । होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१७७६] अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या । मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ३ ॥ ४ ॥

ऋ० १ । १४९ । ३-५ ॥

भा०—(१) (यः) जो (नार्मिणीं) नर = आत्मा और मन के निवास योग्य (पुरं) इस देहरूप पुरी को (आ अदीदेत्) सब प्रकार से प्रकाशित करता है, चेतन बनाये रखता है वह (कविः) क्रान्तदर्शी इन्द्रियों द्वारा क्रमण करके देखने हारा (नभन्यः) अन्तरिक्ष आकाश अर्थात् विचरण करने वाले व्यापक वायु के समान प्राणरूप हृदयाकाश में व्यापक (अर्वा न) अश्व के समान वेगवान् और (सूरः न) सूर्य के समान (रुरुक्वान्) कान्तिमान् (शतात्मा) सैकड़ों प्राणियों में आत्मारूप से (अदीदेत्) विराजमान है।

(२) यह अग्नि (द्विजन्मा) ज्ञान और कर्म इन दोनों से अपना प्रादुर्भाव करने हारा अथवा कर्त्ता भोक्ता रूप से, अथवा साधारण अग्नि जिस प्रकार दो अरणियों के रगड़ने से उत्पन्न होता है उसी प्रकार देह और प्रणव इन दो अरणियों से प्रकाशमान अन्तरात्मा (त्री) तीन (रोचनानि) भू, अन्तरिक्ष और द्यौः लोकों को (शुशुचानः) प्रकाशित करता हुआ, अथवा तीनों प्रकृति के सत्व, रजस, तमस, इनको परिशोधित, परिष्कृत करता हुआ (विश्वा) समस्त (रजांसि) लोकों में या देहों में (अस्थात्) विराजमान है। और वही (होता) सबका ग्रहण करने हारा (यजिष्ठः) सबसे बड़ा यज्ञकर्त्ता होकर (अपां) लोकों के या कर्म और ज्ञानों के (सधस्थे) एक साथ रहने के स्थान ब्रह्माण्ड में (अस्थात्) विराजमान है।

(३) (यः) जो अग्नि (द्वि-जन्मा) कर्त्ता और भोक्ता इन दो रूपों में प्रकट होने हारा अथवा पूर्वोक्त रूप से देह और 'ओश्म्' इन दो अरणियों से निष्पादित होने वाला (होता) सब का दाता और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदानकर्त्ता है (सः) वह (विश्वा) समस्त (वार्याणि) वरण करने योग्य; उत्तम, (श्रवस्या) कीर्ति के योग्य कार्यों को (दधे) धारण करता है । (यः) जो (मर्त्यः) मरणधर्मा पुरुष (अस्मै) इसके निमित्त अपने को (ददाश) समर्पण करता है, वह (सु-तुकः) उत्तम सन्तति वाला होजाता है ।

२ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१७७७] अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
३ १ २ ३ १ २
ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥
२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१७७८] अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥
३ १ २ ३ १र २र ३ २ १र २र
[१७७९] एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वाऽर्ण ज्योतिः ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥ ५ ॥

ऋ० ४ । १० । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४३४]

(२) (अध हि) और क्योंकि हे अग्ने ! परमेश्वर ! आप (बृहतः) बड़े भारी (ऋतस्य) सत्य ज्ञान और इस महान् ब्रह्माण्ड के (रथीः) धारण करने हारे (बभूथ) हो और (क्रतोः) प्रज्ञानस्वरूप (भद्रस्य) भजन या सेवन करने योग्य कल्याणकारी (दक्षस्य) बल उत्साह सम्पन्न (साधोः) अभीष्ट फलों के साधक यज्ञ के भी (रथीः) प्रवर्तक हो ।

(३) हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप आप (स्वः न) सूर्य के समान (विश्वेभिः) समस्त (अनीकैः) सुखस्वरूप दिव्यगुण पदार्थों के सहित (सु-मनाः) उत्तम चित्त होकर (नः) हमारे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अर्वाक्) समक्ष (एभिः) इन (अर्कैः) अर्चनायोग्य तेजों से (अध) प्रकट होवो ।

इति प्रथमः खण्डः ।

—:०:—

[१७८०] अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य । आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवां उषर्बुधः ॥ १॥

[१७८१] जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् । सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २॥ ॥ ६ ॥ ऋ० १ । ४४ । १, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [४०

(२) हे (अग्ने) परमात्मन् ! आप (अध्वराणां) सब यज्ञों के (रथीः) नेता और (जुष्टः) सब विद्वानों से सेवित (हव्यवाहनः) समस्त स्तुतियों के धारण करने हारे एवं समस्त जगत् के धारण करने हारे (दूतः हि) सर्वव्यापक या उपासित (असि) है । आप (अश्विभ्यां) प्राण और अपान के द्वारा (उषसा) ज्योतिष्मती विशोका प्रज्ञा द्वारा (अस्मे) हमें (सुवीर्यं) उत्तम बल और (बृहत्) विशाल (श्रवः) ज्ञान (धेहि) धारण करावें ।

[१७८२] विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ।१।

[१७८३] शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः । यश्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१७८४] एभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋते कर्ममुदजायन्त देवाः
॥ ३ ॥ ७ ॥ ऋ० १० । ५५ । ५-७ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [३२५]

(२) (यः) जो (शूरः) सर्वप्रेरक (सनाद्) सनातन, नित्य, (अनीडः) स्वतः सबका आश्रय होने से किसी अन्य पदार्थ का आश्रय न लेने द्वारा, सब का स्वयं मूलकारण, (अरुणः) दीप्तिमान् सब का प्रेरक, (सु-पर्णः) उत्तम ज्ञानवान् सबका उत्तम पालक, (शाक्मना) अपनी ही शक्ति से (शाकः) सर्वशक्तिमान्, परमात्मा (यत्) जो कुछ भी (चिकेत) स्वयं जानता और ऋषियों के हृदय में ज्ञान उत्पन्न करता है (तत्) वह सब (सत्यम् इत्) सत्य ही होता है, (तत् न मोघं) वह कभी व्यर्थ, निष्प्रयोजन नहीं होता। वही उस (स्पार्हं) सब के अभिलाषा योग्य, (वसु) आवास योग्य सब भूमियों का (जेता) विजेता (उत) और (दाता) जीवों को सब ऐश्वर्यों का दान करने हारा है।

(३) परमात्मा (एभिः) इन मरुद्गण रूप शक्तियों से (वृष्ण्या) सुखों के वर्षाने वाले (पौंस्यानि) नाना पौरुषयुक्त बलों को (ददे) अपने वश में कर रहा है (येभिः) जिन वेगवती शक्तियों से (वृत्र-हत्याय) प्राणियों के उपद्रव शान्त करने के लिये, अथवा अज्ञान, विघ्नों का विनाश करने के लिये, (वज्री) ज्ञान वज्र का धारक विद्वान् (औक्षद्) सुखों, जलों और ज्ञानों की वर्षा करता है। और (ये देवाः) जो देव, विद्वान्‌गण और दिव्य शक्तियां (मह्नः) बड़े भारी (क्रियमाणस्य) किये जाने योग्य (कर्मणः) जगत् प्रचालनरूप कर्म के (कर्मम्) तथ्य ज्ञान में निहित कर्मबन्धन को (उद् अजायन्त) पार करके मुक्त हो जाते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ ३
[१७८५] अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः।
३२ ३ १ २ ३ १ ३
उत स्वराजो अश्विना ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
[१७८६] पिबान्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः।
३ २ ३ १ २
त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
[१७८७] उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः।
३ १र २र
प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ३ ॥ ८ ॥

ऋ० ८ । ९४ । ४—६ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [१७४]

(२) (मित्रः) सूर्य के समान स्नेह करने हारा, सबको अपने २ कर्म में प्रवृत्त कराने हारा, (अर्यमा) सबका स्वामी, न्यायकारी (वरुणः) सब दुःखों का निवारक, ये तीनों देव (जावतः) ज्ञान के उत्पादक, आनन्दजनक (त्रि-षधस्थस्य) प्राण, अपान और समान, या इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना तीनों में विराजमान (तना) सोमरूप ब्रह्मानन्द का (पिबन्ति) पान करते हैं। मित्र, अर्यमा और वरुण ये तीनों योगियों के तीन भेद हैं। १ सूर्य के समान प्रज्ञालोकवान् मित्र, भूतजय करने हारा इन्द्रियसंविद् द्वारा स्थितप्रज्ञ, अर्यमा और विशाल आकाशकल्प समुद्र के समान शान्त, शुद्धचित्त सत्त्व का अनुभवी योगी 'वरुण' कहाता है।

(३) (प्रातः) प्रातःकाल के अवसर में (होता इव) जिस प्रकार सोमयाग करने वाला होता प्रसन्न हो जाता है उसी प्रकार (इन्द्रः) अध्यात्मयोगी का आत्मा (उतो) भी (नु) निश्चय से (अस्य) इस (गोमतः) इन्द्रियों के संवित् ज्ञानों से युक्त (सुतस्य) उत्पादित ब्रह्मरस को (जोषम्) सेवन कर लिये (आ मत्सति) खूब मग्न हो जाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
[१७८८] बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम महा देव महाँ असि ॥१॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१७८९] बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
३ २ ३ १ २ ३क २र १ २ ३ ३ २उ ३ १ २
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्
॥ २ ॥ ९ ॥ ऋ० ७ । २१ । १७, १२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [२७६] पृ० १४१ ।

(२) हे (सूर्य) सबके प्रेरक परमात्मन् ! आप (श्रवसा) ज्ञान और यश के द्वारा (बट्) सचमुच (महान्) सबसे बड़े (असि) हो । हे (देव) प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (सत्रा) सचमुच निश्चय से (महान् असि) सबसे बड़े हो । आप ही (मह्ना) अपने महत्त्व या महती शक्ति से (देवानां) सब विद्वानों और जीवों के (असुर्यः) प्राणों को चलाने हारे, (पुरः-हितः) साक्षात् पुरोहित के समान प्रवर्त्तक, उनको साक्षात् धारण करने हारे और साक्षीरूप द्रष्टा हो, आप ही वास्तव में (विभु) सर्वत्र विशेष रूप से व्यापक, (अदाभ्यम्) अविनाशी, नित्य (ज्योतिः) ज्योतिस्वरूप, प्रकाशस्वरूप हैं ।

इति द्वितीयः खण्डः ।

——❀——

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
[१७९०] उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ १ ॥

३ १र २र३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[१७९१] द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१७९२] त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥३॥१०॥ ऋ० ८।९३।३१-३३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१५०] पृ० ८४ ।

(२) (यः) जो (वृत्र-हन्तमः) समस्त विघ्नों का विनाशक और (शत-क्रतुः) सैकड़ों कर्मों का करने हारा है उसको (द्विता) दो रूपों में (विदे) मैं जानता हूँ । एक परमात्मा रूप से और दूसरा जीवात्मा रूप से । वह (नः सुतम्) हमारे उत्पन्न किये पदार्थों को (हरिभिः) अपने हरणकारी वायु आदि साधनों और आत्मपक्ष में इन्द्रियों द्वारा (उप) प्राप्त करें ।

(३) हे (वृत्रहन्) अज्ञान के विनाशक ! (एषां) इन (सोमानां) सोमों, समस्त जगत् के जीवों का (पाता) पालनकर्त्ता (त्वं हि) तू ही (असि) है । (नः) हमारे (सुतम्) योग साधनों से परिष्कृत आत्मा को (हरिभिः) ज्ञान साधनों द्वारा (उप) प्राप्त होइये ।

[१७९३] प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ १ ॥

[१७९४] उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ २ ॥

[१७९५] इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥ ३ ॥ ११ ॥

ऋ० ७ । ३१ । १०—१२ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३२८] पृ० १७० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) (विप्राः) विद्वान् ब्राह्मण लोग (उरु-व्यचसे) महान् ब्रह्माण्ड में व्यापक (महिने) बड़े भारी (इन्द्राय) परमात्मा की (सुवृक्तिम्) उत्तम स्तुतिरूप (ब्रह्म) वेद का (जनयन्त) ज्ञान प्रकट करते हैं । (धीराः) वे विद्यावान्, ध्यानवान् पुरुष (तस्य) उसके (व्रतानि) उपदेश किये नियमों को (न मिनन्ति) विनाश नहीं करते, उल्लंघन नहीं करते ।

(३) (वाणीः) वेदवाणियां और (सत्रा) समस्त विश्व के (राजानं) प्रकाशक, स्वामी, (अनुत्तमन्युं) अद्वितीय नित्य ज्ञानी, नित्य सामर्थ्यवान (इन्द्रं एव) इन्द्र को ही (सहध्यै) सब पर दमन करने के लिये सर्वोपरि (दधिरे) स्थिर करती हैं । अतः हे नर ! (हर्यश्वाय) समस्त लोकों और जीवों में व्यापक ईश्वर के किये (आपीन्) अपने समीप आप सब बन्धुओं को (सम् बर्हय) उत्तम रीति से बढ़ा, उन्नत कर ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
[१७९६] यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
स्तोतारमिद् दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥१॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
[१७९७] शिक्षेयमिन् महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
न हि त्वदन्यन् मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता
३ २
च न ॥ २ ॥ १२ ॥ ऋ० ७ । ३२ । १८, १९ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [३१०] पृ० १५९ ।

(२) परमेश्वर का संकल्प है कि (महयते) दानशील या मेरी स्तुति करने हारे (कुहचिद् विदे) कहीं भी हों वहां ही उसे जानने व पाने के लिये (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (रायः) धनों को (आ शिक्षेयम्) दान दिया करता हूँ । इस प्रकार की ईश्वर की दयादृष्टि होने से भक्त का भी संकल्प होता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (त्वद् अन्यत्) तेरे से दूसरा कोई और व्यक्ति (नः) हमारे लिये (वस्यः) आवास देने द्वारा, सर्वश्रेष्ठ (आप्यं) प्राप्त करने योग्य, इष्टदेव, उत्तम वस्तु वा बन्धु बनने योग्य, बन्धुजनों का हितकारी (नहि) नहीं है और तुझ से उत्तम दूसरा (पिता च) पिता पालक भी (न) नहीं है।

३ १२ २र ३ २उ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
[१७९८] श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ ३
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
[१७९९] न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
१ २ ३ १ २
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१८००] भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
मारे अस्मन् मघवं ज्योक्कः ॥ ३ ॥ १३ ॥ ऋ० ७।२२।४—६ ॥

भा०—(१) हे इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! (वि-पिपानस्य) आनन्दरस का पान करने हारे (अद्रेः) आदरणीय और ज्ञानी, एवं पर्वत के समान दृढ़, काम क्रोध आदि से दीर्ण न होने वाले योगाभ्यासी के (हवं) पुकार को (श्रुधि) श्रवण कर (अर्चतः) स्तुति करते हुए (विप्रस्य) मेधावी विद्वान् पुरुष की (मनीषाम्) मन की गति, उत्तम २ यशो-कामना या स्तुति को (बोध) आप जानते हो। और (सचा) आप सहायक रूप से (इमा) इन (दुवांसि) शुभ कामनाओं को (अन्तमा) हृदयंगम (कृष्व) कीजिये।

(२) हे इन्द्र ऐश्वर्यवन् ! (असुर्यस्य) जीवों प्राणों के हितकारी, (तुरस्य) शत्रुओं के नाशक, अथवा सबके प्रेरक (ते) तेरा वर्णन करने हारी (गिरः) वाणियों की भी (न मृष्ये) कभी परित्याग नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता । और (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर मैं (ते सु-स्तुतिम्) तेरी उत्तम स्तुति को भी कभी (न) नहीं (मृष्ये) त्यागता । (ते) तेरे (स्वयशः) अपने यशस्वरूप उज्ज्वल ((नाम) नाम, स्वरूप को (सदा) नित्य (विवक्मि) विविध प्रकार से बखाना करता हूँ ।

(३) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे लिये (मानुषेषु) मनुष्यों में (भूरि) बहुत से (सवना) उपासना प्रकार या ऐश्वर्य हैं । (मनीषी) मननशील विद्वान् भी (त्वाम् इत्) तेरी ही (भूरि) बहुत (हवते) स्तुति करता है । हे (मघवन्) ज्ञानाश्रय ! हे सर्व-शक्तिमन् ! आप (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (ज्योक्) कभी भी अपने को (मा कः) मत करें ।

इति तृतीयः खण्डः ।

———:o:———

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
[१८०१] प्रोष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत । अभीके चिदु
३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ ३ १ २ ३ १र
लोककृत् सङ्गे समत्सु वृत्रहा । अस्माकं बोधि चोदिता
२र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ १ ॥

२उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
[१८०२] त्वं सिंधूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् । अशत्रुरिन्द्र
३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३
जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् । तं त्वा परिष्वजामहे
१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
नभन्ता मन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३
[१८०३] वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः । अस्तासि
१ २ ३ १र २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३उ ३
शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति । या ते रातिर्ददिर्वसु
१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥ १४ ॥

ऋ० ८० । १३३ । १-३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) (अस्मै इन्द्राय) इस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (पुरोरथम्) विश्व, ब्रह्माण्ड रूप रथ को पूर्ण करने हारे या पालन करने वाले, या गति देने वाले (शूषम्) बल को (प्र सु अर्चत उ) यथार्थरूप से वर्णन करो। देखो, वह ईश्वर (अभीके) अत्यन्त समीप, चित्त में साक्षात् (चित् उ) ही (लोककृत्) सब का दर्शन करता है, सबको देखता है, या चित्त में सब के प्रकाश करता है। और (सङ्गे) संग हो जाने पर आत्मा को प्राप्त कर (समत्सु) इन्द्रियवृत्तियों में (वृत्रहा) तामस आवरण का नाश कर देता है और हमारे भावों को जान जाता है (अस्माकं) हमारे हित के लिये (चोदिता) वेदोक्त प्रेरणा (बोधि) ज्ञानरूप से देता है और हमारे भावों को जान जाता है (अन्यकेषां) हमारे आभ्यन्तर तुच्छवृत्ति शत्रु, काम आदि के (धन्वसु) कमानों पर (अधि) चढ़े हुए (ज्याका) निर्बल चिल्ले भी (नभन्तां) टूट फूट जाते हैं।

(२) हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वं) तूने (सिन्धूः) सब नदियों को और शरीर की नाड़ियों को (अधराचः) नीचे जाने हारो (अवासृजः) रचा है। और तू (अहिम्) न हटने वाले या आघात या पीड़ाकारी तामस आवरण या मेघ को (अहन्) विनाश करता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अशत्रुः) शत्रुरहित सब का मित्र (जज्ञिषे) जाना जाता है। ऐसे ही (तं) उस सब के मित्र, परमस्नेही (त्वा) आपको (परि स्वजामहे) हम आलिंगन करते हैं, अपना निरन्तर का सङ्गी बनाते हैं, अपनाते हैं, हृदय में धारण करते हैं। (अन्यकेषां ज्याकाः धन्वसु अधि नभन्ताम्) शत्रुओं के धनुषों पर चढ़ी डोरियां टूट जावें।

(३) हे इन्द्र ! (नः) हमारे (विश्वाः) समस्त (अर्यः) शत्रुरूप, हम पर चढ़ाई करने वाले (अरातयः) अदानशील, उचित कर न देने हारे, (विश्वा) सब शत्रुगण (वि सु नशन्त) नाना प्रकार से खूब नाश को प्राप्त हों। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (नः) हमें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जिघांसति) विनाश करना चाहता है उस (शत्रवे) शत्रु के नाश के लिये (वधं) अपने हननकारी बल को (अस्तासि) प्रयोग कर। और (या) जो (ते) तेरी (रातिः) दान और कृपा है वह हमें (वसु) धन आदि पदार्थों का (ददिः) दान करे। (अन्यकेषां ज्याका धन्वसु अधि नभन्ताम्) और अन्य तुच्छ शत्रुओं के धनुषों पर की निर्बल डोरियाँ नष्ट हो जावें।

[१८०४] रेवाँ इद् रेवतस्स्तोता स्यात् त्वावतो मघोनः।
प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥ १ ॥

[१८०५] उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत।
न गायत्रं गीयमानम् ॥ २ ॥

[१८०६] मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः।
शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥ ३ ॥ १५ ॥

ऋ० ८ । २ । १३—१५ ॥

भा०—(१) हे (हरिवः) गतिमान् समस्त लोकों के स्वामिन्! अथवा किरणों और प्राणों के प्राण! हे प्रभो! लोक में (रेवतः) धनाढ्य पुरुष का (स्तोता इत्) स्तुति करने हारा ही (रेवान्) धनवान् हो जाता है और ज्ञानी पुरुष का उपासक ज्ञानवान् (स्यात्) हो जाता है। फिर (त्वावतः) तुझ जैसे अनुपम (मघोनः) ज्ञानी और धनसम्पन्न (सु-तस्य) ऐश्वर्यवान्, अथवा ब्रह्मानन्दरस के उत्पादक प्रभु का तो (प्र इत् उ) फिर क्या कहना! तेरा उपासक तो भारी धनी और ज्ञानी अवश्य हो ही जायगा।

(२) व्याख्या देखो अथि० सं० [२२५] पृ० ११५।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (नः) हमें (पीयत्नवे) हिंसक, दुष्ट पुरुष के हाथों में (मा परा दाः) मत डाल। और हमें (शर्धते) हमारा मान भंग करने हारे हिंसक पुरुष के हाथों में (मा परा दाः) मत डाल। तू (शचीभिः) अपने ज्ञानों और शक्तियों से ही हे (सचीवः) शक्तिमान् ! हमें (शिक्ष) शिक्षित कर, दण्डित कर, अथवा ज्ञान प्रदान कर।

[१८०७] एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥

[१८०८] अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥

[१८०९] आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥ १६ ॥

ऋ० ८ । ३४ । १, ३, २ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखिये अवि० सं० [३४८] पृ० १७६ ।

(२) (वृकः) भेड़िया (उरां न) जिस प्रकार भेड़ को (धुनुते) धुन देता है, भय से कंपित करता है उसी प्रकार (एषां) इन प्राणों का (नेमिः) नमन करने हारा, वश करने हारा आत्मा भी उस (उरां) देह में व्यापक चिति शक्ति को (वि धूनुते) अपने वश में प्रचलित करता है। (दिवः) प्रकाशमान, प्रकाशस्वरूप, विश्व में रमण या क्रीड़ा करने हारे (शासतः) शासकरूप (अमुष्य) इस परमात्मा के (दिवम्) ज्योतिर्मय ज्ञान को हे (दिवावसो) ज्योतिरूप प्रकाश में वास करने हारे जीवात्मन् ! तू (यय) प्राप्त हो।

(३) हे प्रभो ! (इह) इस संसार में, इस जन्म में (सोमः) सोमरस का आस्वादन करने हारा आत्मज्ञानी (ग्रावा) विद्वान्, ज्ञानोप-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशक (त्वा) तेरी (वदन्) स्तुति करता हुआ (घोषेण) वेद ज्ञान के साथ ही (त्वा वक्षतु) तुझे प्राप्त हो । हे (दिवावसो) आत्मन् ! (अमुष्य शासतः दिवः दिवं यय) आत्मक्रीड, आत्मरति होकर उस शासन करने हारे परमात्मा के प्रकाशस्वरूप मोक्ष लोक को तू प्राप्त हो।

[१८१०] पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १ ॥

[१८११] ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥ २ ॥

[१८१२] असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥ ३ ॥ १७ ॥

ऋ० ६ । ६७ । १६, १८, १७ ॥

भा०—(१) हे (सोम) ज्ञानैश्वर्य से युक्त (मधुमत्-तमः) अतिशय ज्ञान सम्पन्न होकर (मन्दयन्) आनन्दमय होता हुआ प्रभु की स्तुति करता हुआ योगिन्! तू (इन्द्राय) परमेश्वर को प्राप्त होने के लिये (पवस्व) गति कर, यत्न कर ।

(२) (ते) वे (विपश्चितः) ज्ञानसम्पन्न, ज्ञानों का संग्रह करने हारे या ज्ञानरूप अग्नि का चयन करने हारे परमात्मदर्शी (शुक्राः) तेजस्वी, या शुक्ल कर्म करने हारे, (सुतासः) सिद्ध योगी (वायुम्) सर्व प्रेरक प्रभु परमात्मा को (असृक्षत) प्राप्त होते हैं ।

(३) सोमस्वरूप योगी गण (वाजयन्तः) संग्राम करने हारे विजयी (रथा इव) रथों के समान स्वयं (वाजयन्तः) ज्ञानस्वरूप होकर (रथाः) केवल आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होकर (देव-वीतये) ईश्वर को प्राप्त होने के लिये (असृग्रम्) जा रहे हैं ।

इति चतुर्थः खण्डः ।

———:o:———

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३१र
[१८१३] अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं ।
२र ३१२ ३ २ ३ २३१ २
सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ॥
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३२
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
३२ ३ १ २ ३१२३१ २ ३ १२ ३१२
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१॥

१ २ ३ १२ ३ २ ३१२ ३
[१८१४] यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र
१ २३१२ ३ १
मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ॥
१२ ३ १र २र ३ २
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
३ १ २ ३ १२३२ ३२उ ३ १ २ ३२३ १२
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२॥

२उ ३२३ १ २ ३१ २३ १२३
[१८१५] स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो ।
१२ ३१२३१र २र ३२
भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ॥
३२ ३ २ ३ १ २३ २३ १२३ २ ३२
वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥१८१५

ऋ० १ । १२७ । १–३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [४६५] पृ० २३५ ।

(२) हे (विप्र) ज्ञानवन् ! अग्ने ! परमेश्वर ! हम (यजमानाः) देवोपासना करने हारे लोग (यजिष्ठं) सब उपासकों में से सबसे अधिक श्रेष्ठ, (अंगिरसां) समस्त ज्ञानवान् आत्माओं से भी (ज्येष्ठं) श्रेष्ठ परमात्मरूप (त्वा) आपको (विप्रेभिः) विशेष रूप से आपके महत्व को दर्शाने हारे, ज्ञानमय, (मन्मभिः) मनन करने योग्य, गंभीर (मन्मभिः) विचारों, मन्त्रों से (त्वा) आपको (हुवेम) स्मरण करते हैं । हे (शुक्र)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेजःस्वरूप ! सबके प्रकाशक ! (परिज्मानं इव) सर्वव्यापक के तुल्य (द्यां) तेजस्वरूप, (चर्षणीनां) समस्त मनुष्यों को (होतारं) कृपा का दान करने हारे (शोचिष्केशं) कान्तिमान् सूर्यादि पिण्डों को वश करने हारे (वृषणं) सब सुखों के वर्षक (यं) जिस आपको (इमाः) ये समस्त (विशः) आप में आश्रय पाने हारे जीवगण (प्रावन्तु) प्राप्त होते हैं (विशः) वे प्रजाएं आपको (जूतये) कल्याण के लिये प्राप्त करें ।

(३) (सः हि) निश्चय से वह अग्नि (वि-रुक्मता) विशेष कान्ति से युक्त (ओजसा) तेज से (पुरुचित्) अति अधिक (दीद्यानः) प्रकाशित होता हुआ (द्रु-हन्तरः) वृक्षों को विनाश करने हारे (परशुः न) फरसे के समान (द्रु-हन्तरः) द्रवणशील, विनाशी इस देह बन्धन को काटने हारा (भवति) होता है, (यस्य) जिसको (समृ ऋतौ) सत्सङ्ग साक्षात् प्राप्त कर लेने पर (वीडु) दृढ़ और (यत्) जो (स्थिरं) स्थिर,स्थायी यह संसार या देहबन्धन (चित्) भी (वना इव) जंगल या जलों के समान (श्रुवत् = स्रुवत्) छितरा जाता है। अग्नि के संयोग से जिस प्रकार जंगल जल जाता या जल भाप होकर विलीन होता है। उसी प्रकार यह समस्त संसार भी जिस में प्रलय काल में विलीन होजाता है वह (निः सहमानः) समस्त संसार की सब विरोधिनी शक्तियों को अपने वश करता हुआ (यमते) समस्त संसार की व्यवस्था करता है और उसी में क्रीड़ा करता है एवं (धन्वा-सहा न) धनुर्धर विजयी के समान (अयते) संसार के रणक्षेत्र में भी आता है और (न अयते) इसके भीतर पाश में भी नहीं आता ।

इति नवमस्य प्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धप्रपाठकः* ॥

* केषां चिन्मतेनात्र विंशाध्यायस्य, पञ्चमखण्डस्य च विरामः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ नवमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥

ऋषिः—१ अग्निः पावकः। २ सोभरिः काण्वः। ३ अरुणो वैतहव्यः। ५, ६ अवत्सारः काश्यप अन्ये च ऋषयो दृष्टलिंगाः*। ८ वत्सप्रीर्भालन्दनः। ९ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। १० त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः। ११ उलो वातायनः। १३ वेनो भार्गवः ३, ४, ७, १२० इति सामानि ॥
देवता—१,-४, ७, ८, १२ अग्निः। ५, ६ विश्वे देवाः। ९ इन्द्रः। १० आपः ११ वायुः। १३ वेनः। ३, ४, अग्निः। ७, वाक्। १२ सुपर्णः।
छन्दः—१ (११२) विष्टारपङ्क्तिः, (३ ५) सतोबृहती (६) उपरिष्टा-ज्ज्योतिः आत। २ प्रागाथम् काकुभम्। ३ जगती। ५, ६, १३ त्रिष्टुप्।
४, ७ ८—११ गायत्री। १२ त्रिष्टुप् ॥

२ ३२३ २ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २
[१८१६] अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यां३ दधासि दाशुषे कवे ॥१॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
[१८१७] पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना।
३ २ २ १ ३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
[१८१८] ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः।
२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वे इषः सन्दधुर्भूरिवर्पसः श्चित्रोतयो वामजाताः ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २
[१८१९] इरज्यन्नग्ने प्रथमस्य जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २र
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥४॥

* दृष्टिलिंगा दया० भाष्ये पाठः, १८१६—३. 'मन्दस्वधीतिभिः', ४. पृणक्षिसान-सिं' इति ऋ० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१८२०] इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः। रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥ ५ ॥

[१८२१] ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः। श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ ६ ॥ १ ॥

ऋ० १० । १४० । १–६ ॥

भा०—(१) हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप ! प्रकाशक ! (विभावसो) अपने विशेष प्रकाश से सब को बसाने और सर्वत्र स्वयं बसनेहारे व्यापक परमात्मन् ! (तव) तेरा (श्रवः) कीर्ति और (वयः) ज्ञान, बल (महि) महान् है और तेरी (अर्चयः) ज्वालायें सूर्य आदि रूपों में (भ्राजन्ते) प्रकाशित हो रही हैं। हे (बृहद्भानो) सब प्रकाशों से महान् ! आप (उक्थ्यं) वेद द्वारा प्रतिपादनीय (वाजं) ज्ञान को देने के लिये हे (कवे) मेधाविन् ! तू (दाशुषे) आत्मसमर्पण करने हारे शिष्य को आचार्य के समान (दधासि) धारण करता है।

(२) हे अग्ने ! तू (पावक-वर्चाः) पवित्र करने हारे तेज से युक्त (शुक्र-वर्चाः) शुक्ल, निर्मल कान्ति से सम्पन्न, (अनून-वर्चाः) सब से अधिक तेजस्वी होकर (भानुना) प्रकाशक तेज के सहित (उद्-इयर्षि) उदय होता है, हृदय में प्रकट होता है। जिस प्रकार (पुत्रः) पुत्र (मातरा) मातृस्वरूप या मां बाप दोनों के समीप (विचरन्) विचरता हुआ उनको पुनः पालता है और पोषता है और जिस प्रकार यह सूर्य आकाश और पृथिवी दोनों के बीच विचरता हुआ (उभे) दोनों (रोदसी) लोकों को साक्षात् करता है और पालन पोषण करता है उसी प्रकार तू भी समस्त लोकों को (उपावसि) स्वयं उनमें व्यापक होकर रक्षा करता और (पृणक्षि) पालन करता है। इसी प्रकार देहगत जीवात्मा पर भी यह मन्त्र स्पष्ट है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) हे (ऊर्जो नपात्) बल को, सामर्थ्य को एवं ब्रह्मानन्दरस को कभी न परित्याग करने हारे ! हे (जातवेदः) सर्वज्ञ ! तू (सु-शस्तिभिः) उत्तम स्तुतियों से और (धीतिभिः) वेदाध्ययन और अग्निहोत्रादि यज्ञा-धानों से (मन्दस्व) प्रसन्न हो, अपना आनन्दमय स्वरूप प्रकट कर। (भूरि-वर्पसः) नानारूप (चित्र-ऊतयः) विचित्र या मनोहर बुद्धि वाले (वाम-जाताः) उत्तम प्रकृति के कुलीन, विद्वान् लोग भी (त्वे) तेरे निमित्त ही (इषः) नाना अन्न आदि हवियों को (सं दधुः) अग्नि में डालते हैं या तेरे आश्रय नाना कामनाएं करते हैं।

(४) हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! हे (अमर्त्य) अविनाशी परमा-त्मन् ! आप (जन्तुभिः) उत्पन्न होने हारे जन्तुओं द्वारा (राज्यम्) ऐश्वर्य को (इरज्यन्) बढ़ाते हुए (अस्मे) हमारे (रायः) धनों को (प्रथयस्व) बढ़ाओ। (सः) वह आप (दर्शतस्य) दर्शनीय (वपुषः) अपने बीज वपन करने हारे, उत्पादक सामर्थ्य से (वि-राजसि) सब पर ईश्वर होकर विराजमान हैं। और आप (दर्शतं) दर्शनीय (क्रतुं) अपने बनाए हुए इस संसार को (पृणक्षि) पालन पोषण करते हो।

(५) (अध्वरस्य) इस महान् जगत्-मय यज्ञ के (इष्कर्त्तारम्) प्रेरणा करने हारे, या पूर्णरूप से संचालन करने हारे (प्र-चेतसः) उत्तम, ज्ञानवान् (महः) बड़े श्रेष्ठ, (राधसः) अराधनीय या साधनयोग्य धन या ज्ञान को (क्षयन्तं) अपने वश करने हारे, उसके स्वामी और (वामस्य) प्राप्त करने योग्य उत्तम श्रेष्ठ पदार्थों के (रातिं) दाता की हम स्तुति करते हैं। हे परमात्मन् ! आप (मही) बहुत बड़ी (सु-भगां) उत्तम सौभाग्ययुक्त, शुभ (इषं) अन्न आदि सम्पदा को और (सानसिं) परस्पर विभाग करके भोगने योग्य अथवा प्रत्येक को पृथक् २ प्राप्त (रयिम्) प्राण, देह आदि अध्यात्म-सम्पत्ति को (दधासि) धारते और प्रदान करते हो।

(६) (जनाः) मनुष्य लोग (ऋतावानं) सत्यज्ञान से युक्त,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(महिषं) बड़े सामर्थ्यवान्, (विश्व-दर्शतम्) सबसे अधिक दर्शनीय, विश्व के द्रष्टा एवं सब पदार्थों के प्रदर्शक विद्वान् (अग्निम्) अग्नि अर्थात् आचार्य के समान, अग्रणी, ज्ञानप्रकाशक परमेश्वर को अपने (पुरः) समक्ष साक्षिरूप से और मार्गदर्शक रूप से (सुम्नाय) सुख को प्राप्त करने एवं प्रत्येक कार्य पर उत्तम रूप से मनन करने और स्वयं उसका उत्तम ज्ञान प्राप्त करने के लिये (दधिरे) पुरोहित, आचार्य और गुरुरूप में रखते हैं। उसी प्रकार हे परमात्मन् ! (मानुषा) मननशील (युगा) नर-नारियों के जोड़े (सप्रथस्तमं) सर्वत्र अति प्रसिद्ध, विख्यात (श्रुत्कर्णम्) श्रुतिरूप कर्णों से युक्त अथवा वेद के अनुसार समस्त जगत् के रचने हारे (गिरा) उस वेदवाणी के अनुसार (दैव्यं) दिव्यगुणों से युक्त (त्वां) तुझको अपने सुख सम्पादन के लिये (पुरः दधिरे) सब कार्यों में साक्षी या आचार्य पुरोहित के समान स्थापन करते हैं।

इति पञ्चमः खण्डः ।

—:o:—

[१८२२] प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः। यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥ १ ॥

[१८२३] तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे। त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥ २ ॥ २ ॥ ऋ० ८ । १९ । ३०, ३१ ॥

भा०—व्याख्या देखो अविकल सं० [१०८] पृ० ५८ ।

(२) हे (सिष्णो) आनन्दरस से हृदय के सेचन में समर्थ ! धर्म-मेघरूप आत्मन् ! (तव) तेरा (द्रप्सः) द्रवणशील व्यापक रस (नील-वान्) आश्रयदाता, (वाशः) कमनीयरूप, (ऋत्वियः) प्राणों में रहने वाला (इन्धानः) प्रदीप्त होकर (आ ददे) मन से ग्रहण किया जाता एवं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबको अपने वश करता है, जाना जाता है। (त्वं) तू (महीनां) विशाल या पूजनीय (उषसां) ज्ञानोदय से युक्त विशोका ज्योतिष्मती प्रज्ञाओं का (प्रियः) प्रिय (असि) है और (क्षपः) सर्व दुःखों के नाश करने वाली, रात्रि के समान अन्तः सात्विक निद्रा से सम्बद्ध (वस्तुषु) तत्वों में (राजसि) प्रकाशमान, जागृत रहता है।

[१८२४] तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः। तमित् समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥ ३ ॥ ३ ॥ ऋ० १० । ९१ । ६ ॥

भा०—(१) (तं) उस (ऋत्वियं) ऋतुओं में सूर्य के तेजो रूप से प्रकट होने हारे अग्नि को (ओषधीः) ओषधिगण (गर्भम्) अपने भीतर रस रूप से (दधिरे) धारण करती हैं (तं) उसी (अग्नि) अग्नि को (मातरः) सबके मूलकारण (आपः) आपः = जल भी (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं और (तम् इत्) उसको ही (समानं) समान रूप से (वनिनः) वन के बड़े २ वृक्ष भी धारण करते और उत्पन्न करते हैं और उसी अग्नि को (अन्तर्वतीः) गर्भ धारण करने हारी पुष्पिणी (च) और (वीरुधः) विशेष रूप से रोहण करने हारी लताएं (विश्वहा) सर्वदा उत्पन्न करती हैं। उसी प्रकार वनस्पति और लताओं के दृष्टान्त से आत्मा की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं—(मातरः) माताएं, (आपः) प्राप्त होने योग्य पतियों से संगत (ओषधीः) तेज = वीर्य को धारण करने वाली (तं) उस आत्मरूप अग्नि को (ऋत्वियं) ऋतुकाल में होने वाले (गर्भं दधिरे) गर्भरूप से धारण करती हैं (तं) उसी को (जनयन्त) बालक रूप से उत्पन्न करती हैं। (च) और (वनिनः) नर वृक्षों के समान पुरुष और (वीरुधः) लताओं के समान (अन्तर्वतीः च) गर्भिणी स्त्रियां (विश्व-हा) सदा (समानं) समान भाव से (सुवते) उसको प्रसव करती हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलतः वृक्ष वनस्पतियों में भी वही जीव है। एवं जो जल वृष्टिरूप से पृथिवी पर आकर वनस्पति रूप से उत्पन्न होता है और खाये जाकर वही वीर्य बनकर पुनः पुरुषों द्वारा वही गर्भों में निषिक्त होता है और वही गर्भ में जमकर पुनः पुत्ररूप से उत्पन्न होता है, यह सूक्ष्म रहस्य उपनिषदों में पञ्चाहुति प्रकरणों में दर्शाया गया है।

[१८२५] अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति।
महिषीव वि जायते ॥ २ ॥ ४ ॥ (ऋग्वेदे नास्ति)

भा०—(१) (अग्निः) वह आत्मा (इन्द्राय) परमेश्वर की प्राप्ति के लिये (पवते) विवेक से निर्मल होकर उसकी ओर गति करता है। (शुक्रः) शुक्लकर्मा, निर्मल कान्तिमान् होकर (दिवि) मोक्ष में (वि-राजति) प्रकाशित होता है। (महिषी इव) जिस प्रकार (महिषी) राजमहिषी, महारानी नाना प्रकार के रूप धारण करके प्रजा के सम्मुख उपस्थित होती है उसी प्रकार वही आत्मा (वि जायते) नाना रूपों में प्रकट होता अथवा (महिषी इव) दुग्धरस देने हारी भैंस के समान वही आत्मा आनन्दरस की धार वर्षण करने हारी, महती कामधेनु बनकर चितिशक्ति के रूप में ऋतम्भरा रूप से प्रकट होती है।

अथवा अग्नि = परमात्मा इस इन्द्र = आत्मा के लिये प्रकट होता है वही मोक्ष में शुद्ध रूप से विराजमान है। वही उसको रस देने हारी कामधेनु के समान नाना पदार्थ प्रदान करता है।

[१८२६] यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति। यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥ ५ ॥ ऋ० ५ । ४४ । १४ ॥

भा०—(१) (यः) जो विद्वान् ब्रह्मवेत्ता (जागार) अविद्या की नींद

 CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से जाग जाता है (तं) उसको (ऋचः) ऋग्वेद की ऋचाएं और उन के समान ज्ञानप्रद जन भी (कामयन्ते) चाहते हैं। और (यः) जो (जागार) अविद्या निद्रा से जग जाता है (तमु उ) उसको ही (सामानि) साम के उपासनापरक मन्त्र और उपासना करने वाले भक्त लोग भी (यन्ति) प्राप्त होते हैं (यः) जो (जागार) ज्ञानमार्ग में जागृत, सावधान रहता है (तम्) उसको ही (अयं) यह (सोमः) सोमरूप, सब का प्रेरक जगदीश्वर, या संसार का ऐश्वर्य भी (आह) कहता है कि (तव सख्ये) तेरी मित्रता में ही (अहम्) मैं भी (न्योकाः) निवास करता हूँ। इसी ऋचा से अगली ऋचा में इस जागरणशील निरालस तपस्वी को 'अग्नि' नाम से बतलाया है।

[१८२७] अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति। अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥ ६ ॥ ऋ० ५ । ४४ । १५ ॥

भा०—(१) पूर्व ऋचा के (यः) 'जो' की जिज्ञासा में ही यह उत्तर ऋचा कही जाती है। इससे विद्वान् निरालस आत्मा के साथ २ परमात्मा का भी वर्णन इस रूप से होता है। अर्थात् (अग्नि) परमात्मा ही सदा (जागार) जागता है, (ऋचः) ऋग्वेद की ऋचाएं (तं) उसको (कामयन्ते) चाहती हैं, (तमु उ सामानि यन्ति) उसी का सामगण गान करते हैं और (अग्निः जागार) जो ज्ञानस्वरूप, सर्व प्रकाशक सदा जागृत रहता है (तम्) उस परमेश्वर का ही और (सोमः) यजुः स्थानीय सोम अथवा कर्मप्रधान यह जीव भी कहता है कि (तव सख्ये अहम् नि-ओकाः अस्मि) हे भगवान् ! मैं आपके मित्रभाव में सदा आश्रय प्राप्त करूं।

[१८२८] नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः। युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१८२९] युजे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि ।
गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥ २ ॥

[१८३०] गायत्रं त्रैष्टुभं जगद् विश्वा रूपाणि सम्भृता ।
देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ३ ॥ ७ ॥ ऋग्वेदे नास्ति ॥

भा०—(१) (पूर्वसद्भ्यः) पूर्व विद्यमान, पूर्णब्रह्म, मोक्षधाम में विराजमान (सखिभ्यः) मेरे आत्मा के समान आखयाव वाले मुक्तात्माओं को (नमः) मैं नमस्कार करता हूँ । और (साकंनिषेभ्यः) साथ ही विराजमान विद्वान् मित्रों के लिये भी (नमः) आदरपूर्वक नमस्कार है । मैं आप लोगों के समान ही (शत-पदीं) सैकड़ों ज्ञानों से पूर्ण (वाचं) देववाणी का (युञ्जे) समाहित चित्त से विचार करता हूँ ।

(२) (शत-पदीं) सैकड़ों ज्ञानों से युक्त (वाचं) वाणी का (युञ्जे) योगसमाधि द्वारा मनन करता हूँ और (सहस्र-वर्त्तनि) सहस्रों मार्ग से युक्त, सहस्रवर्त्मा सामवेद जिसमें (गायत्रं) गायत्र (त्रैष्टुभं) त्रैष्टुभ और (जगत्) जगत् साम विशेष हैं उसका (गाये) गान करता हूँ ।

(३) (गायत्रं, त्रैष्टुभं, जगत्) गायत्र, त्रैष्टुभ और जगत् इन तीन मुख्य सामों के ही (विश्वा रूपाणि) नाना प्रकार के रूप (संभृता) बनाये गये हैं । और उनमें ही (देवाः) विद्वान् लोग (ओकांसि[1]) संहिताओं का या ज्ञानवानों का (चक्रिरे) साक्षात् कर प्रकाश करते हैं ।

[१८३१] अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ।
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥

१८३०—१. ओकांसि—बाहुलकाद्वचतेरौणादिकः कक् (उणा० ३ । ४१) ओकः—राशिः स्थानं वा । अथवा वचेः सार्वधातुभ्योऽसुन् (उणा० ४ । २१३) उच्यते इत्योकः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१८३२] पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा ।
पुनर्नः पाह्यंहसः ॥ २ ॥

[१८३३] सह रय्या नि वर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ३ ॥ ८ ॥

ऋग्वेदे नास्ति । आद्या यजु० ३ । ६ ॥ द्वितीया यजुः० १२ । ४० ॥ तृतीया यजुः० १२ । ४१ ॥

भा०—(१) (अग्निः) अग्नि (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप है और (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप ही (अग्निः) अग्नि है । (इन्द्रः) इन्द्र आत्मा भी (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूप है और (ज्योतिः) ज्योतिर्मय पदार्थ ही (इन्द्रः) इन्द्र, आत्मा है । (सूर्यः) सबका प्रेरक सूर्य प्रभु (ज्योतिः) ज्योतिर्मय है । (ज्योतिः) ज्योतिर्मय पदार्थ ही (सूर्यः) सूर्य है । फलतः ज्योतिर्मय होने से ही अग्नि, इन्द्र और सूर्य तीनों नाम एक पदार्थ के हैं । वह समानरूप से तीन नाम एक पदार्थ के और इनका चौथा पर्याय ज्योति है । ये चारों नाम मुख्यता से ईश्वर के और गौण दृष्टि से अन्यों के भी हैं ।

(२) हे अग्ने परमात्मन् ! आप (ऊर्जा) रसस्वरूप आनन्दघन रूप में और (इषा) ज्ञानरूप में और (आयुषा) जीवनरूप से (पुनः पुनः) बार बार हमें (नि वर्त्तस्व) प्रकट हों । अर्थात् प्रत्येक समाहित दशा में एवं प्रतिजन्म में आपके सत्, चित् और आनन्द तीनों रूपों के हमें दर्शन हों । और आप (नः) हमें (पुनः) फिर भी (अंहसः परि) पाप से बचावें ।

(३) हे (अग्ने) परमात्मन् ! (रय्या) अपने रमणीय, मनोहर

१८३१—१. "अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा" इति याजुषः पाठः । मध्यमः पाठो यजुर्मन्त्रे नास्ति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहनीय ऐश्वर्यमय रूप से हमें (नि वर्त्तस्व) पुनः प्राप्त हो। हे अग्ने! आप हमें (विश्वतः परि) सबसे अधिक, एवं सब पर शासन करने हारे (विश्वप्स्न्या) समस्त संसार को अपने भीतर ले लेने हारी सर्वव्यापिनी (धारया) अपनी रसधारा से (पिन्वस्व) तृप्त करें।

इति षष्ठः खण्डः।

[१८३४] यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ १ ॥

[१८३५] शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

[१८३६] धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥ ९ ॥

ऋ० ८। १४। १—३ ॥

भा०—(१) व्याख्या देखो अविकल सं० [१२२] पृ० ६५।

(२) (यद्) यदि (अहं) मैं (गोपतिः) वाणी, भूमि और गौओं का पति = पालक (स्याम्) होऊं तो हे (शचीपते) शक्तिमन् ईश्वर, ! आत्मा और ब्रह्मविद्या के स्वामिन् ! मैं (अस्मै) इस (मनीषिणे) मनस्वी, जितेन्द्रिय बुद्धिमान् पुरुष को ही (दित्सेयं) दान करने की इच्छा करूं और (शिक्षेयम्) विद्या की शिक्षा दूं।

(३) हे (इन्द्र) परमात्मन्! (ते) तेरी (सूनृता) उत्तम सत्य तत्वों के दर्शाने हारी, सत्यमयी (धेनुः) ज्ञानरस का पान कराने हारी वेदवाणी (सुन्वते) ज्ञान सम्पादन करने वाले (यजमानाय) स्वाध्याय यज्ञ के करने हारे अध्येता को (पिप्युषी) पुष्ट करती हुई (गाम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी और (अश्वं) आत्मिक सामर्थ्य युक्त आत्मा का भी बल (दुहे) प्रदान करती है।

[१८३७] आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

[१८३८] यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

[१८३९] तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ १० ॥

ऋ० १० । ९ । १-३ ॥ अथर्व० १ । ५ । १-३ ॥

भा०—(१) हे (आपः) प्राप्त होने हारी ज्ञान-जलधाराओ ! तद्वत् शान्तिदायक आपके गुणमय प्रभो ! आप ही (मयोभुवः) शान्ति और कल्याण के उत्पन्न करने हारे (स्थ) हो। ज्ञानजल (नः) हमें (ऊर्जे) बल या आनन्द-रस प्राप्त करने के लिये (दधातन) अपने में धारण करें। और वे ही हमें (महे) बड़े (रणाय) रमणीय, दर्शनीय इष्टदेव के (चक्षसे) दर्शन प्रात करने के लिये (दधातन) समर्थ और पुष्ट करें।

(२) हे (आपः) प्राप्तव्य योगभूमियो वा प्रभु की शक्तियो ! (यः) जो (वः) आप का (शिवतमः) अति कल्याणकारी, शान्तिदायक, सर्वोत्तम (रसः) आनन्दरस है (तस्य) उसको (इह) इस लोक में (नः) हमें (भाजयत) प्राप्त कराओ। आप साक्षात् (उशतीः) पुत्रों के प्रति उनको पुष्टि करने की लालसा से भरी (मातरः) माताओं के समान हम मुमुक्षुओं को (मातरः) ज्ञान देने हारी हो।

(३) हे (आपः) प्राप्यतम योगभूमियो ! (तस्मा) उस रस के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करने के लिये ही (वः) आपके प्रति हम (अरं) अच्छी प्रकार (गमाम) प्राप्त हों । (यस्य) जिसके (क्षयाय) ऐश्वर्य के लिये आप (जिन्वथ) हमें प्रेरित करते । (नः) और जिसके लिये हमें (जनयथ च) उत्पन्न करती हो, उसके लिये समर्थ भी होती हो ।

इन मन्त्रों में आपः जल हैं । यह वे जल हैं जो आत्मा नदी में बहते हैं जिसका वर्णन व्यासदेव ने किया है—

"आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्थां सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः" ॥

अथवा जिसमें वह कर भक्त कहा करते हैं:—

"औषधं जान्हवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः ।"

२ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३२
[१८४०] वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।
२ ३ १ २
प्र न आयूंषि तारिषत् ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ ३ २उ ३ २ ३ १ २
[१८४१] उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा ।
१ २ ३ १ २
स नो जीवातवे कृधि ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
[१८४२] यददो वात ते गृहेऽऽमृतं निहितं गुहा ।
१ २ ३ १ २
तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ३ ॥ ११ ॥

ऋ० १० । १८६ । १—३ ।

भा०—(१) व्याख्या देखो अवि० सं० [१८४] पृ० ९८ ।

(२) हे वात ! सर्वव्यापक परमात्मन् ! आप (नः) हमारे (पिता असि) प्राणवायु के समान साक्षात् पालक हैं, (उत भ्राता) और प्राण वायु के समान भरण करने पोषण करने वाले और (नः सखा) हमारे

१८४०—ऋषिर्देवता च नान्यत्र संहितासूपलभ्यते । अवस्तस्योल्लेखस्तु जीवानन्दमुद्रापितसायणभाष्यमाश्रित्यैव ज्ञेयः । अजमेरमुद्रितसंहितायां केवलं 'इति साम' मात्रं प्रदर्शितम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा के समान हमारे प्रेमी मित्र हैं। (सः) वह आप (नः) हमें (जीवातवे) जीवनमय यज्ञ के लिये सदा समर्थ (कृधि) करो।

(३) हे (वात) प्राणों के प्राण परमात्मन्! (यत्) जो (अदः) वह कभी न भूलने योग्य (अमृतं) अमृतरस, परम ज्ञान (ते) तेरे (गृहे) शरण में (गुहा) हृदयरूप गुहा में (निहितं) गुप्तरूप से रक्खा है भगवन्! (तस्य) उसको (नः जीवसे) हमारे जीवन के निमित्त (धेहि) प्रदान करो।

[१८४३] अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं बिभ्रदत्कं सुपर्णः। सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान॥१॥

[१८४४] अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत्सं बभूव। अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः॥२॥

[१८४५] अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार। सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः॥३॥१२॥

ऋग्वेदे नास्ति। अथर्वणि यजुषि च नोपलभ्यते॥

भा०—(१) (विश्व-रूपः) नाना प्रकार के रूपों को धारण करने हारा जीवात्मा (वाजी) ज्ञानवान् और बलवान् होकर (सु-पर्णः) उत्तम प्रज्ञान और पालन करने के सामर्थ्य से सम्पन्न, या उत्तम मार्गगामी (ऋज्रः) कर्माशयों को परिपाक करके (हिरण्ययं) तेजःसम्पन्न (जनित्रम्) अपने मूलभूत (अत्कं) आत्मस्वरूप को (बिभ्रत्) परिपुष्ट करता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ (ऋतुथा) प्राणों के बलपर अथवा नियत काल के अनुसार स्वयं (सूर्यस्य) आदित्य के (भानुं) कान्ति और तेज को (वसानः) धारण करता हुआ (स्वयं) आप से आप (मेधं) उस पवित्र परम पुरुष को (परि जजान) ज्ञान कर लेता है, प्राप्त होजाता है।

(२) (विश्वरूपं तेजः) नाना प्रकार के नर, तिर्यङ् आदि रूप धारण करने हारे जीवात्मारूप ज्योति ने (अप्सु) जलों में (रेतः) वीर्य रूप होकर (शिश्रिये) आश्रय प्राप्त किया, (यत्) पुनः उसके बाद वह (पृथिव्याम्) पृथिवी में (अधि सं बभूव) जीवरूप से उत्पन्न हुआ। उसके बाद वह (स्वं) अपने (महिमानं) सामर्थ्य को (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में भी (मिमानः) व्यापारित करता हुआ अर्थात् पक्षी या सूर्य रूप में प्रकट होकर (वृष्णः) उस वीर्यसेक्ता सब के पिता (अश्वस्य) परमात्मा के (रेतः) वीर्य की (कनिक्रन्ति) महिमा का वर्णन करता है।

(३) वह विश्वरूप अग्नि (यज्ञः) आत्मारूप (दिवः) स्वर्ग का (धर्त्ता) धारक और (भुवनस्य) इस लोक की (विश्पतिः) समस्त देहधारी प्रजाओं का परिपालक, (सहस्र-दाः) सहस्रों पदार्थों का दाता, (शत-दाः) सैकड़ों पदार्थों का दाता और (भूरि-दावा) हरेक वस्तु की बहुतसी मात्रा का दाता, अथवा बहुत वार देने वाला, (सहस्रा) हजारों (युक्ता) देहों को (वसानः) धारण करता हुआ (सूर्यस्य) सूर्य के (भानुं) तेज को भी (दाधार) धारण करता है।

यह समष्टि रूप से जीव-शक्ति का वर्णन किया है जिसका संक्षेप से वर्णन श्वेताश्वतर उपनिषद् में इस रूप से किया है।

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्त्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता।
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः॥

अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितो यः।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यवरोऽपि दृष्टः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैर्ग्रासाम्बुवृष्ट्यात्मविवृद्धिजन्म ।
कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्यभिसंप्रपद्यते ॥
स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति ।
क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः ॥
अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥

[श्वेता० अ० ५]

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १र २र ३ १ २
[१८४६] नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ १ २ ३ १
त्वा । हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं
३ २ ३
भुरण्युम् ॥ १ ॥

३ १ २ २ २उ ३ १ २ ३ २ ३ ३ ३ १र २र
[१८४७] ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा बिभ्र-
३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १
दस्यायुधानि । वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वा३र्ण
२र ३ १ ३
नाम जनत प्रियाणि ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
[१८४८] द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
विधर्मन् । भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे
१ २ ३ १ २
रजसि प्रियाणि ॥ ॥ १३ ॥ ऋ० १० । १२३ । ६—८ ॥

भा०—(१) आत्मन् ! कान्तिमन् ! द्रप्सः (त्वा) तुझको (यद्) जब (हृदा) हृदय से, मन से (वेनन्तः) कामना करते हुए विद्वान् लोग (अभि अचक्षत) साक्षात् करते हैं तब वे (हिरण्य-पक्षं) ज्योतिः-स्वरूप, (वरुणस्य) सबसे वरने योग्य, दुःखों के निवारक परमात्मा के (दूतं) पास गमन करने हारे और (भुरण्युम्) अपने सामर्थ्यों को धारण करने वाले, (शकुनम्) शक्तिशाली तुझ को उस समय (यमस्य) समस्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार के नियामक जगदीश्वर के (नाके) दुःख रहित (योनौ) आश्रय-स्थान, मोक्षपद में (उप पतन्तं) विचरण करते हुए (सुपर्णं) उत्तम ज्ञान और कर्म रूप पक्षों के धारक पक्षी के समान (अभि अचक्षत) देखते हैं।

(२) (गन्धर्वः) गौ = किरणों के धारण करने हारे सूर्य के समान अपनी इन्द्रियों को धारण करने वाला वह आत्मा प्रत्यक्ष रूप से (चित्रा) विचित्र, दर्शनीय (आयुधानि) यमनियमादि साधनाओं को वा इन्द्रियों को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (कं) आनन्दमय, सुख रूप (स्वः न) सूर्य के समान तेजोमय (नाम) परम रूप को (दृशे) देखने के लिये (अधिनाके) मोक्ष मार्ग में (अस्थात्) स्थिति प्राप्त करता है और (प्रियाणि) अपने प्रिय, यथेष्ट कामनाओं को (जनत) उत्पन्न करता है, यथेष्ट विचरता है।

(३) वह ज्ञानी आत्मा (यत्) जब (द्रप्सः) स्वयं बहने हारे नद के समान गति करता हुआ (समुद्रम्) उस आनन्द-रस के अगाध समुद्र के समान गंभीर परम जगदीश्वर को (अभि जिगाति) प्राप्त होता है या (विधर्मन्) अपने विशेष धारण करने हारे भगवान् की दया में स्थित होकर (गृध्रस्य) इसकी आकांक्षा करने हारे याचक के समान मोक्षाभिलाषी की (चक्षसा) दृष्टि से (पश्यन्) अपने स्वामी को देखता है तब वह स्वयं (भानुः) सूर्य के समान (शुक्रेण) शुद्ध (शोचिषा) तेज से (चकानः) देदीप्त होता हुआ (तृतीये) तारण करने हारे, परम, सर्वोत्कृष्ट, (रजसि) प्रकाशमान पद में (प्रियाणि) अपने प्रिय मनोरथों को विमान के तुल्य (चक्रे) पूर्ण करता है।

इति सप्तमः खण्डः ।

इति ~~विंशो~~ ऐकविंशोऽध्यायः

इति नवमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वाविंशोऽध्यायः

अथैकविंशोऽध्यायः ।

अथ नवमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः ॥

ऋषिः—१—४, ५ (१—२) अप्रतिरथ ऐन्द्रः, ५ (३), ३ (३), ८ (१, ३) पायुर्भारद्वाजः । ७ (१, २) शासो भारद्वाजः । ६ (१) जय ऐन्द्रः (१—३), गोतमो राहूगणः ॥ देवता—१, २ (२—३), ३—४, ५ (२), ६, ७, ६ (१) इन्द्रः, २ (२) मरुतो वा । २ (१) बृहस्पतिः ५ (१) अप्वा (३) इषवः ६, ८ लिंगोक्तताः संग्रामाशिषः (३) देवव ब्रह्माणि । ६ (२—३) विश्वदेवाः ॥ छन्दः—४, ३ (१), ३ (१), ४ (१), ६ (१—२) त्रिष्टुप् । ५ (२,) ३ (२६) ५ (१, २), ८ (२) अनुष्टुप् ६ (३) पंक्तिः । ६ (३) विराट् स्थाना, ७ (३) विराड् जगती ॥

३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १र २र
[१८४९] आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्च-
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
र्षणीनाम् । सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना
३ १र २र
अजयत् साकमिन्द्रः ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
[१८५०] सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन
३ १ २ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
धृष्णुना । तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषु-
३ १ २
हस्तेन वृष्णा ॥ २ ॥

१र २र ३ १ १ २ १ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २
[१८५१] स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
गणेन । संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यू३ऽग्रधन्वा प्रति
३ १ २
हिताभिरस्ता ॥ ३ ॥ १ ॥ ऋ० १० । १०३ । १—३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(१) (इन्द्रः) ऐश्वर्यशील इन्द्र राजा जिस प्रकार (शिशानः) तीक्ष्णमति, (आशुः) शीघ्रगामी, (वृषभः न भीमः) वृषभ के समान अति भयंकर (घनाघनः) शत्रुओं को वार २ मारने वाला, (चर्षणीनां) मनुष्यों और प्रजाओं को (क्षोभणः) विक्षुब्ध करने, कंपा देने हारा, (सं-क्रन्दनः) शत्रुओं को रुलाने वाला या उनको संग्राम के लिये बुलाने वाला, (अनिमिषः) आलस्यरहित, (एक-वीरः) एकमात्र वीर होकर भी (साकं) एक साथ ही (शतं) सैकड़ों (सेनाः) सेनाएं (अजयत्) विजय कर लेता है, उसी प्रकार यह इन्द्ररूप आत्मा (आशुः) व्यापक, (शिशानः) अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म २ तत्वों में भी जाने के लिये तीक्ष्णमति, (वृषभः न भीमः) जिस प्रकार बैल अपने दोनों सींगों से भय पैदा करता है उसी प्रकार तप और ज्ञान से सबके हृदय में आतङ्क बैठाने वाला, (घनाघनः) आनन्द को निरन्तर वर्षाने के लिये साक्षात् धर्ममेघ स्वरूप, (चर्षणीनां) पदार्थ देखने हारा, इन्द्रियों को कंपाने हारा, उत्तम गति देने हारा, (सं-क्रन्दनः) उत्तम रीति से ईश्वरस्तुति का उच्चारण करने वाला, (अनिमिषः) आलस्यरहित, निद्रा को भी वशकारी (एकवीरः) इन्द्रियों में एकमात्र सामर्थ्यवान् होकर वह (साकं) एक साथ ही (शतं सेनाः) सैकड़ों चित्तवृत्तियों को (अजयत्) विजय कर लेता है ।

(२) हे (नरः) पुरुषो ! आप लोग (सं-क्रन्दनेन) शत्रुओं को रुलाने वाले (अनिमिषेण) आंख न झपकने वाले, निरालसी, सावधान, (जिष्णुना) विजयशील, (युत्कारेण) युद्ध करने हारे, (दुः-च्यवनेन) अविचलित रहने हारे (धृष्णुना) धैर्यवान्, (इषु-हस्तेन) धनुष वाण हाथ में लिये (वृष्णा) बलवान् (इन्द्रेण) राजा से जिस प्रकार शत्रुओं को दबाया जाता है और युद्धों में विजय प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार आप लोग स्वराज से भी अधिक कष्टसाध्य मोक्ष को (सं-क्रन्दनेन) स्तुतिशील, (अनिमिषेण) अनालसी, (जिष्णुना) सब इन्द्रियों, विषयों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जयी, (युत्-कारेण) विघातक विघ्नों से युद्ध करने हारे (दुश्च्यवनेन) साधना से अविचल (धृष्णुना) धैर्यवान् (इषु-हस्तेन) ज्ञान को हाथ में लिये (वृष्णा) सुखवर्षक (इन्द्रेण) इस इन्द्र आत्मा से (तत् सहध्वं) वह सब सहन करो और (युधः) आने वाले आभ्यन्तर शत्रुओं को (जयत) जीत जाओ।

(३) जैसे (सः, इन्द्रः) वह इन्द्र राजा (इषुहस्तैः) धनुष बाण हाथ में लिये सुभटों से (वशी) सब राष्ट्र पर वश करता है उसी प्रकार (सः) वह आत्मा भी इषु अर्थात् कामनाओं से प्रेरित, मरुत् अर्थात् एकादश प्राणों से समस्त शरीर पर वश करता है और ईश्वर अपने विद्युत् जल वायु एवं प्रवहण आदि मरुतों द्वारा समस्त संसार पर वश कर रहा है। (सः) वह इन्द्र राजा जिस प्रकार (निषङ्गिभिः) बाणों से भरे तूणीर तर्कस वाले सुभटों के द्वारा नगर वा राष्ट्र का (वशी) विजय करता है उसी प्रकार आत्मा, इन्द्र, नित्य निरन्तर संग रहने हारे प्राणों द्वारा ही शरीर पर एवं परमात्मा प्रतिपरमाणु में व्याप्त पञ्चभूतों द्वारा सब ब्रह्माण्ड पर वश कर रहा है, (सः इन्द्रः) वह इन्द्र राजा जिस प्रकार (युधः) युद्ध करने हारा होकर (गणेन) अपने सहायक प्रजागण से (संस्रष्टा) मिल कर (सृष्टजित्) अपने विपक्ष में मिले शत्रुसंघ को जीत लेता है उसी प्रकार वह इन्द्र आत्मा (युधः) समस्त देहों को चलाता हुआ (गणेन संस्रष्टा) अपने प्राणगण से ही इस देह को उचित रीति से निर्माण करके स्वयं अपने से विपक्ष में संगठन किये काम, क्रोध, लोभ, मोहादि इन्द्रिय व्यसनों को एक वार ही जीत लेता है। और परमात्मा भी (गणेन) प्राकृतिक वैकारिक गण द्वारा समस्त संसार का (स्रष्टा) रचने हारा होकर ही सब संसार के संघात से बने पदार्थों को अपने वश करता है। और जिस प्रकार राज्याभिषेक युक्त राजा (सोम-पाः) सोमरस का पान करके (बाहु-शर्धी) अपने बाहुबल में उत्कृष्ट होकर (उग्रधन्वा) भयंकर धनुष लेकर (प्रति-हिताभिः) फेंके गये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाणों से ही (सम् अस्ता) सब शत्रुओं का नाश करता है उसी प्रकार वह इन्द्र आत्मा (सोमपा) ज्ञान और योगाभ्यास रस का आस्वादन करके प्राण और अपान इन दो बाहुओं के बल से सम्पन्न होकर ओंकाररूप धनुष को तान कर (प्रति-हिताभिः) प्रेरित इडा, पिंगला, सुषुम्ना आदि नाड़ियों से इस देह-बन्धन को शीघ्र ही काट डालता है। और वह परमात्मा भी समस्त संसाररूप सोम या सूर्यरूप सोम का पान या आदान करने, या अपने वश करने द्वारा अपने प्रेरक बल से सर्वशक्तिमान् उग्ररूप में संसार की कर्म व्यवस्था से सब को धुन डालने द्वारा होकर अपनी प्रेरित शक्तियों से (अस्ता) संहार करता है।

[१८५२] बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः। प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ १ ॥

[१८५३] बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः। अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥ २ ॥

[१८५४] गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा। इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु संरभध्वम् ॥ ३ ॥ २ ॥ ऋ० १० । १०३ । ४, ५, ६ ।

भा०—(१) हे (बृहस्पते) बृहती—वाणी के परिपालक आत्मन्! जिस प्रकार बृहती—बड़ी भारी सेना का स्वामी, सेनापति (रक्षोहा) दुष्ट पुरुषों का विनाशक, (अमित्रान्) शत्रुओं को दूर ही से मार भगाता हुआ अपने (रथेन) रथ से युद्ध क्षेत्र में चारों ओर परिक्रमा करता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी प्रकार हे आत्मन् ! तू भी (रक्षोहा) सब समाधिविघातक विघ्नों- काम, क्रोध आदि भावों का विनाश कर, (अमित्रान्) स्नेह वृत्ति के विनाशक, शत्रुभावों के उत्तेजक प्रलोभनों या द्वेषभावों को वितर्कबाधना द्वारा दूर करता हुआ (रथेन) अपने मन या देहरूप रथ से (परिदीया) परिव्राट् होकर मोक्ष मार्ग पर गमन कर और जिस प्रकार सेनापति (सेनाः प्रभञ्जन्) शत्रु-सेनाओं को तोड़ता फोड़ता हुआ और (युधा) अपने प्रहारों से (प्रमृणः) प्रतिहिंसक शत्रु को (जयन्) जीतता हुआ अपने पक्ष के रथों का रक्षक होजाता है उसी प्रकार हे बृहस्पते = इन्द्र आत्मन् तू भी (सेनाः प्रभञ्जन्) मोह से उत्पन्न दोषवृत्तियों को विनाश करता हुआ (युधा प्रमृणः जयन्) प्राणायाम के बल से विरोधि द्वन्द्वों को वश करता हुआ (अस्माकं) हमारे (रथानाम्) इन देहों का (अविता) परिपालक (एधि हो) ।

(२) जिस प्रकार सेनापति (बल-विज्ञायः) अपने समस्त सेना- सामर्थ्य को भली प्रकार जानता हुआ और साथ ही शत्रुबल को भी जानता हुआ, (स्थविरः) पुराना, अनुभवी या स्थिर रूप से युद्ध के अवसर पर जमनेवाला, (प्रवीरः) सब वीरों में उत्तम, सामर्थ्यवान् (सहस्वान्) शत्रु के आक्रमण को सहन करने द्वारा, (वाजी) ज्ञान, और वेग से युक्त, (सहमानः) शत्रु पर विजय प्राप्त करता हुआ, (उग्रः) तीक्ष्णस्वभाव होकर (अभिवीरः) वीर सुभटों को साथ लिये, (अभिसत्वा) सात्विक बल और तेज को धारण कर (गोवित्) अपने अश्वों को रासों से सम्भालकर (जैत्रं रथं) विजयशील रथ पर चढ़ता है उसी प्रकार हे इन्द्र ! आत्मन् तू भी (बलविज्ञायः) आत्मिक बल को जान कर, (स्थविरः) योगसाधना अर्थात् मुमुक्षु मार्ग के योग्य तपः साधनों में स्थिर रूप से रह कर अथवा पुरातन, तू (प्रवीरः) उत्कृष्ट सामर्थ्यवान् प्राणों को संग लिये, (अभिसत्वा) सत्व गुण में प्रतिष्ठित होकर (सहौजाः) ओजस्वी और (गोवित्) जितेन्द्रिय, वेदवाणियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ज्ञानी या आत्मा-रूप गौ को प्राप्त होकर (जैत्रं रथं) मोक्षमार्ग पर विजय करने हारे रथ, परब्रह्म पर (आतिष्ठ) आ बैठ, उसी में स्थिर होजा।

(३) जिस प्रकार (गोत्रभिदं) शत्रुकुलों का नाश करने वाले (गोविदं) पृथ्वी के विजेता या विद्वान्, (वज्रबाहुं) वज्र—खड्ग हाथ में लिये (अज्म जयन्तं) संग्राम विजय करते हुए (ओजसा) अपने बल से (प्रमृणन्तं) शत्रु का नाश करते हुए सेनापति को उसके सहवर्त्ती सहायक लोग और बान्धव लोग प्रोत्साहित करते और उसके साथ ही स्वयं भी उसकी आज्ञा के अनुसार युद्ध करते हैं। इसी प्रकार हे (सखायः) समान आख्यान = नाम से पुकारे जाने वाले इन्द्रियगण! हे (सजाताः) उसके साथ ही अपना सामर्थ्य प्रकट करने हारो! आप लोग भी (गोत्रभिदं) उस देह-बन्धन को तोड़ने हारे (गोविदं) आत्मा को या परमेश्वर को प्राप्त करने हारे, ज्ञानी (वज्रबाहुं) वैराग्य या ज्ञानरूप तलवार को हाथ में लिये, (ओजसा) अपने तप और ज्ञान के सामर्थ्य से काम क्रोधादि अन्तःशत्रुओं को (प्रमृणन्तं) मर्दन करते हुए, (अज्म) चरम, प्राप्य स्थान तक (जयन्तं) विजय करने हारे (इमं) इस (इन्द्रं) आत्मा के (अनुवीरयध्वं) पीछे २ उसकी आज्ञा में रह कर सामर्थ्यवान् रहो और (अनुसंरभध्वं) उसके शासन में ही सब कार्य करो।

[१८५५] अभिगोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः। दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ १ ॥

[१८५६] इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः। देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१८५७] इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ३ ॥ ३ ॥ ऋ० १० । १०३ । ७—९ ।

भा०—(१) जिस प्रकार (इन्द्रः) वीर सेनापति या राजा, (गोत्राणि अभि) शत्रुकुलों के समक्ष, उनके प्रति चढ़ाई करता हुआ और उनको (सहसा) अपने बल से (गाहमानः) चीरता हुआ, (अदयः) उन पर दयाभाव न रखता हुआ, (वीरः) वीर, सामर्थ्यवान्, (शतमन्युः) सैकड़ों प्रकार से उन पर क्रोध करने हारा, (दुश्च्यवनः) शत्रुओं से अविचालित, (पृतनाषाड्) शत्रुसेनाओं का विजेता, (युत्सु) युद्धों में अपनी सेनाओं की रक्षा करता है उसी प्रकार (गोत्राणि अभि) देहों के भीतर (सहसा गाहमानः) अपने बल के सामर्थ्य से विचरता हुआ, (अदयः) तपस्यादि द्वारा शरीर के सुखों पर विचार न कर, निर्मम होकर तप करने हारा (वीरः) सामर्थ्यवान् (इन्द्रः) आत्मा (शतमन्युः) सैकड़ों प्रज्ञानों से युक्त होकर, (दुश्च्यवनः) ऋद्धि सिद्धि के प्रलोभनों में न गिरकर, कूटस्थ होकर, (पृतनाषाड्) दुर्वृत्तियों को दबाता हुआ (अयुध्यः) अद्वितीय होकर, (युत्सु) संग्रामों में आसुर और सात्विक भावों के परस्पर संग्राम के अवसरों पर (अस्माकं सेनाः) हमारी सात्विक सेना उत्तम प्राण वृत्तियों की (प्र अवतु) रक्षा करे ।

(२) (इन्द्रः) जिस प्रकार इन्द्र राजा (आसां) इन मरुद्गण, वैश्यों का या वायु के समान चढ़ाई करने में देव सेनाओं का नेता है, उसी प्रकार इन्द्र आत्मा मरुद्गण प्राणों का भी नेता है। उसके (पुरः) आगे २ (बृहस्पतिः) बृहती = वाक् का पालक मन राजा के मन्त्री के समान (दक्षिणा) कार्यकुशल बलशालिनी चितिशक्ति और (यज्ञः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजनीय परमात्मा और (सोमः) सब का प्रेरक प्राण ये आगे (एतु) चलता है। (अभिभञ्जतीनां) असुर सेनाओं का विनाश करने वाली (जयन्तीनां) असुर-वृत्तियों पर विजय करने वाली (देवसेनानां) दिव्यगुणवाली सात्त्विक वृत्तियों के (अग्रं) आगे मुख्य स्थान पर (मरुतः) एकादश प्राण (यन्तु) गमन करते हैं।

(३) (वृष्णः) सुखों की वर्षा करने हारे, सिद्ध, धर्ममेघ समाधि के साधक (इन्द्रस्य) इन्द्र आत्मा का, (राज्ञः) सब के स्वामी (वरुणस्य) सर्व श्रेष्ठ परमात्मा का और (आदित्यानां) १२ आदित्य और (मरुतां) ११ प्राण इनका (उग्रं) अति प्रबल (शर्द्धः) बल सफल हो। (महामनसां) विशालचित्त एवं ज्ञान के धारणकर्त्ता (भुवन-च्यवानां) भुवन = देह के बन्धन को नाश करनेहारे (जयताम्) आसुरभावों पर विजय करने वाले (देवानां) इन सात्त्विक साधकों का (घोषः) नाद (उद् अस्थात्) ऊपर उठ रहा है।

धार्मिक राजा और उसकी सेनाओं के विषय में यह मन्त्र स्पष्ट है। परमात्मा पक्ष में भी इन मन्त्रों की योजना है। प्रलय-काल में तीनों लोकों का विनाश ही त्रिपुरदहन है। उस कल्पना को चित्त में रखकर इस अलंकार को लगाना उचित है।

[१८५८] उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वनां मामकानां मनांसि। उद् वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद् रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१॥

[१८५९] अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१८६०] असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना । तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात् ॥ ३ ॥ ४ ॥

आद्ये द्वे ऋ० १० । १०३, १०, ११ । यजुः १७ । ४२ । ४३ । तृतीया ऋग्वेदे नास्ति किन्तु यजुः १७ । ४७ ॥ अथ० ३ । २ । ३ ।

भा०—(१) हे (मघवन्) राजन् (आयुधानि) युद्ध के साधनों को (उद् हर्षय) ऊंचा कर । (मामकानां) मेरे सम्बन्धी (सत्वनां) सात्विक वीर बलवान् पुरुषों के (मनांसि) हृदयों को (उत्) हर्षित करो । हे (वृत्रहन्) दुर्ग को घेरने हारे शत्रु के नाशक राजन् सेनापते ! (वाजिनां) ज्ञानी पुरुषों और अश्वों के (वाजिनानि) ज्ञान युक्त कला कौशलों और वेगों को (उत्) बढ़ाओ और (जयतां रथानां) विजयशील रथों के (घोषाः) नाद (उद्) ऊंचे उठें । इसी प्रकार अध्यात्मपक्ष में (मघवन् ! आयुधानि उद्हर्षय) हे परमात्मन् ! या आत्मन् ! हमारी दुष्टवृत्तियों से युद्ध करने के या उनको प्रहार करके निकाल भगाने के साधनों को उन्नत करो । (मामकानां सत्वनां मनांसि उत्) मेरे निजी बलशाली सात्विक प्राणों को उत्तम बलयुक्त करो । हे (वृत्रहन् ! वाजिनां वाजिनानि उत्) अज्ञान-आवरणों के विनाशक, प्रकाशस्वरूप आत्मन् ! इन्द्रियों की संविद् शक्तियों को बढ़ाओ । (जयतां रथानां घोषाः, उत्) विजयशील सिद्ध आत्माओं के घोष, वेदपाठ और स्तुतियां भी उच्च स्वर से हों ।

(२) (इन्द्रः) राजा (अस्माकं ध्वजेषु समृतेषु) हमारे झण्डे जब शत्रुओं के झण्डों में जा मिलें तब भी हमारी रक्षा करे । (अस्माकं याः इषवः ता जयन्तु) हमारे जो बाण हैं वे ही विजयशील हों । (अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु) हमारे वीर उत्कृष्ट बलशाली विजयी रहें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(देवाः हवेषु अस्मान् उ अवन्तु) देव = दिव्यशस्त्रधारी, विद्वान् सेनापतिगण युद्धों में भी हमारी रक्षा करें । अध्यात्मपक्ष में (इन्द्रः) आत्मा (अस्माकं) हमारे (ध्वजेषु) प्राणों के (समृतेषु) परस्पर संगत हो जाने पर रक्षा करे, (याः) जो (इषवः) मानस वृत्तियां हैं (ताः) वे (जयन्तु) बलवान् हों (अस्माकं वीरा) हमारे प्राणरूप बलशाली योद्धा (उत्तरे) उत्कृष्टतर होकर रहें । (देवाः) विद्वान् लोग या इन्द्रिय शक्तियां (हवेषु) ईश्वर की उपासना के अवसरों में (अस्मान्) हमें (अवन्तु) बुरे मार्ग में जाने से बचावें ।

(२) हे (मरुतः) वायु के समान वेगवान् वीरो ! या मारनेहारी विषैली गैसो ! (असौ या परेषां सेना) यह जो शत्रुओं की सेना (नः ओजसा स्पर्धमाना) बल से हमारे साथ स्पर्धा करती हुई (अभ्यैति) हमारी तरफ़ बढ़ती चली आरही है (तां) उसका (व्रतेन तमसा अपगूहत) क्रियाशक्ति को नष्ट करनेहारे तम या मूर्छा से ढक दो (यथा अमी अन्यो अन्यं न जानन्) जिससे वे एक दूसरे को न पहचान सकें, इसी प्रकार अध्यात्मपक्ष में—हे (मरुतः) प्राणो ! (असौ) यह (या) जो (सेना) मोहादि वृत्तियों की परम्परा (परेषां) प्रलोभनों की, अपने आत्मा से अतिरिक्त अन्य अनात्म पदार्थों की (ओजसा) आत्मा के बल से प्रतिस्पर्द्धा करती हुई, उसके बल या तेज पर आवरण डालती हुई (अभ्यैति) साक्षात् आरही है और मुग्ध कर रही है (तां) उसको (व्रतेन) कर्म और ज्ञान के दृढ़ संकल्प द्वारा (तमसा) उसको शिथिल कर डालने वाले बल से (अप गूहत) दूर करदो । (यथा) जिससे (अन्यः) एक अनात्मभाव (अन्यं) दूसरे भाव को (न जानात्) न उत्पन्न करे ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१८६१] अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा
सचन्ताम् ॥ १ ॥

[१८६२] प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ २ ॥

[१८६३] अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान् प्रपद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः॥ ३॥५॥

आद्ये ऋचौ, ऋ० १० । १०३ । १२, १३ ॥ आद्या, यजु० १७ । ४४ ॥ द्वितीया यजु० १७ । ४३ ॥ तृतीया. ऋ० ६ । ७५ । १६ ॥ यजु० १७ । ४५ ॥

भा०—(१) (अमीषां) इन शत्रुओं के (चित्तं) चित्त को (प्रति लोभयन्ती) विमोहित करती हुई हे (अप्वे) पापप्रवृत्ते ! व्याधे ! या हे भीते ! (अङ्गानि) उनके अंगों को (गृहाण) पकड़ ले अर्थात् उनके शरीरों का नाश करदे । (अभि प्रेहि) उन तक पहुंच और (हृत्सु) हृदयों में प्रवेश करके उनको (शोकैः) शोकों द्वारा (निर्दह) जला । (अमित्राः) शत्रुगण (अन्धेन तमसा) अन्धकारमय मोह से (सचन्ताम्) युक्त हो जाय । अध्यात्मपक्ष में—हे पापप्रवृत्ते ! (अप्वे) सन्मार्ग से दूर हटानेवाली (अमीषां) इन हमारे प्राणों के (चित्तं) चेतन सामर्थ्य को (प्रतिलोभयन्ती) प्रलोभन करती हुई तू (अंगानि) हमारे अंगों, शरीरों को (गृहाण) ग्रहण करती है । अतः (परेहि) तू दूर हटजा । और तू स्नेह न करनेहारे, द्वेष करनेवाले पुरुषों के पास

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अभि प्रेहि) जाती है और उनको (शोकैः) शोकों द्वारा (हृत्सु) हृदयों में (निदंह) दाह उत्पन्न करती है इसलिये (अमित्राः) द्वेष-भावों से युक्त पुरुष ही (अन्धेन तमसा) अन्धकार भरे मोह से (सचन्ताम्) घिर जावें।

(२) हे (नरः) नेता लोगो ! (प्रेत) आगे बढ़ो (जयत) और विजय करो। (वः) आप लोगों को (इन्द्रः) ऐश्वर्यशील परमात्मा (शर्म) सुख और शान्ति (यच्छतु) दे। (वः) आप लोगों की (बाहवः) बाहुएं (उग्राः) उग्र, बलवान् (सन्तु) हों (यथा) जिससे (अनाधृष्याः) आप लोग किसी के भी वशीभूत, अपमानित न (असथ) हों।

(३) हे इषो ! हे शरव्ये ! शरकाण्ड के बने बाण ! हे (ब्रह्म-संशिते) मन्त्र द्वारा तीक्ष्ण किये गये (अवसृष्टा) छोड़ी जाकर (परा-पत) दूर जा। और (अमित्रान्) शत्रुओं को (प्रपद्यस्व) पहुंच और (अमीषां) उनमें से (कंचन) किसी को भी (मा) मत (उच्छिषः) बचा रहने दे। अध्यात्मपक्ष में— हे (शरव्ये) अज्ञान के नाश करने वाली, हे (ब्रह्म-संशिते) ब्रह्मज्ञान से या ब्रह्मोपासना से तीक्ष्ण की हुई आत्मशक्ते ! (अवसृष्टा) मुक्त होकर (परा) इस देह-बन्धन से दूर मोक्ष धाम में (पत) चली जा और (गच्छ) ज्ञान प्राप्त कर, (अमित्रान्) मोहादि शत्रुओं और बाधक अन्तरायों को भी (प्रपद्यस्व) प्राप्त कर (अमीषां) उनमें से भी (कंचन) किसी एक को भी (मा-उच्छिषः) शेष न रहने दे।

तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ् मनः।
तदेतत् सत्यं तदमृतं तद् वेद्धव्यं सोम्य विद्धि॥
धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत।
आयम्य तद् भागवतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।

अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत् ॥ (मुण्डक २ । ३, ३, ४,)

मुण्डक उपनिषद् में ब्रह्म को वेधन योग्य लक्ष्य मानकर उसका वेध करने के लिये औपनिषद् ब्रह्मविद्यामय धनुष्, उपासना की शान पर चढ़ा आत्मा रूप बाण और प्रणव ओंकार रूप धनुष् से निष्प्रमाद होकर छोड़ने पर ब्रह्ममय होजाने का उपदेश किया है ।

[१८६४] कङ्काः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना । मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥ १ ॥

[१८६५] अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रुयतीमभि ।
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥ २ ॥

[१८६६] यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु ॥
विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ३ ॥ ६ ॥

आद्ये ऋग्वेदे न स्तः । तत्र द्वितीया अथर्व० ३ । १ । ३ ॥
तृतीया, ऋ० ६ । ७५ । १७ ॥ यजु० २७ । ४८ ।

भा०—(१) (सुपर्णाः) उत्तम पक्ष वाले (कंकाः) गीध (एना) उन शत्रुओं पर (अनु यन्तु) जा दौड़ें, (असौ सेना) वह शत्रुसेना (गृध्राणां) गीधों का (अन्नम्) भोज्य (अस्तु) हो । हे इन्द्र ! राजन् (एषां) इनमें से कोई भी (मा मोचि) न बच रहे

१८६४—(२) 'तं युवं', 'तामिन्द्र वृत्रहन्' इति ऋ०, अथर्व० ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (अघहारः च) कोई पापी भी (न) न छूट जाय । (एनान् सर्वान्) इन सब पर (वयांसि) गीध और कौवे ही (अनुसंयन्तु) आ लगें ।

अध्यात्म पक्ष में—(सुपर्णाः) उत्तम ज्ञान वाले (कंकाः) सुखाभिलाषी पुरुष (एनान्) अन्तःशत्रुओं, ब्रह्मविद्या के विघ्नों के (अनुसंयन्तु) पीछे लग जावें । अर्थात् उनका निर्मूल नाश किये बिना न छोड़ें । (असौ सेना) यह दुष्ट वासनाओं की सेना (गृध्राणाम्) गृध्र के समान उत्पतनशील प्राणों का (अन्नम्) भोज्य बने अर्थात् प्राणों के निरोध से उनका नाश किया जाय । (एषां मा मोचि) इन पापभावों में से एक भी न छूट जावे । हे इन्द्र ! आत्मन् (अघहारश्च न) पाप का भागी भी कोई विचार शेष न रह जाय । (वयांसि) गतिशील प्राण भी (एनान्) इनको (अनुसंयन्तु) पीछा करके सर्वनाश करें ।

(२) हे (मघवन्) इन्द्र ! राजन् ! (अस्मान्) हमारे प्रति (अभि शत्रुयतीं) साक्षात् शत्रुरूप होकर चढ़ाई करती हुई (ताम्) असह्य बलवती (अमित्रसेनां) शत्रु सेना को आप (अग्निः च) और अग्नि दोनों मिलकर (प्रति दहतं) भस्म कर डालो । अध्यात्म—पक्ष में—हे (इन्द्र) वृत्रहन् ! अज्ञान नाशक ! मघवन् ज्ञानघन् पुरुष तुम उस अमित्र = द्वेषभावों की परम्परा को अग्निरूप परमात्मा से मिलकर भस्म करदो ।

(३) (यत्र) जहां (विशिखाः) शिखारहित (कुमारा इव) बालकों के समान (बाणाः) बाण (सम्पतन्ति) पड़ रहे हों (तत्र) वहां (ब्रह्मणस्पतिः) वेद का विद्वान्, परमेश्वर (अदितिः) अखण्डित सामर्थ्य होकर हमें (शर्म) शान्ति और सुख (यच्छतु) प्रदान करें और (विश्वाहा) सदा (शर्म यच्छतु) कल्याण करें ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१८६७] वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ १ ॥

[१८६८] वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्मा अभि दासत्यधरं गमया तमः ॥ २ ॥

[१८६९] इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकाव-
सह्यौ । तौ युञ्जीत प्रथमो योग आगते याभ्यां जित-
मसुराणां सहो महत् ॥ ३ ॥ ७ ॥

आद्ये द्वे ऋ० १० । १५२ । ३ । ४ ॥ तृतीया ऋग्वेदे नास्ति ।

भा०—(१) हे इन्द्र ! हे वृत्रहन् (रक्षः) राक्षस पुरुष को (वि जहि) नाश कर और (मृधः वि जहि) हमारे उत्तम द्रव्यों पर लोभ करने हारे पुरुषों को भी विनाश कर (वृत्रस्य) हमें घेर कर नाश करने हारे विघ्नरूप शत्रु के (हनू) आघातकारी उन दाढ़ों को (विरुज) तोड़ डाल जिन्हें वे हमारे ऊपर गड़ाना चाहता है । और (अभिदासतः) हमारे नाश करने हारे और हमें दास की तरह पराधीन करने वाले (अमित्रान्) आभ्यन्तर व्यसनों के समान शत्रुओं के (मन्युं) अभिमान और क्रोध को भी (वि) विनाश कर ।

(२) हे इन्द्र ! (नः) हमारे (मृधः) शत्रुओं को (वि जहि) नाश कर और (पृतन्यतः) अपनी सेना बढ़ाना चाहने वाले लोगों को भी (नीचा यच्छ) नीचे डालदे । (यः) और जो (अस्मान्) हमें (अभि दासति) सब प्रकार से विनाश करता या दास के समान पराधीन करता है उसको (तमः) तृष्णा में या अन्धकार में (गमया) डाल । अध्यात्म-पक्ष में—आभ्यन्तर शत्रुओं को इन्द्र आत्मा नाश करे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय का स्पर्श करने वाले दुर्भावों का नियमन करे और विनाशक मोहादि भावों को दूर करे।

(३) (इन्द्रस्य) राजा के समान इस आत्मा की (युवानौ) जवानी भरी सदा बलवान् (स्थविरा) मज़बूत पक्की सदा स्थिर रहने वाली, (अनाधृष्यौ) कभी पराजित न होने वाली (सुप्रतीकौ) उत्तम रीति से शत्रु का मुकाबला करने वाली, (असह्यौ) शत्रुओं के लिये असह्य (बाहू) उनको पीड़ा देने हारी प्राण और अपान दो बाहुएं हैं (प्रथमे) प्रारम्भ में ही (योगे आगते) संग्राम के समान कठिन श्रम-दायी योग समाधि के अवसर प्राप्त होने पर (तौ) उन दोनों को उचित रीति से (युञ्जीत) समाधि साधना में प्रयोग करे अर्थात् चित्तवृत्ति के स्थिर करने के लिये प्राणायाम का अभ्यास करे। (याभ्यां) जिन से (असुराणां) अन्य प्राणों का (महत्) बड़ा भारी (सहः) बल (जितम्) वश किया जाता है।

[१८७०] मर्माणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्। उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १ ॥

[१८७१] अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव। तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥ २ ॥

१८७१—(३) 'यो नः स्वो यो अरणः स जात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति' इति (१ । १९ । ३) इत्यस्याः पूर्वार्धभागः। 'देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम्' इति (१ । १९ । ४) इत्यस्या उत्तरार्धभागः, इति पाठभेदविवेकः, अथर्व०।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१८७२] यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं
शर्म वर्म ममान्तरम् ॥ ३ ॥ ८ ॥

प्रथमा तृतीयः, च ऋ० ६ । ७५ । १८, १९ ॥ तृतीया अथर्व० १ । १९ । ३, ४ । एतयोः पूर्वोत्तरार्धे । द्वितीया ऋग्वेदे नास्ति ॥

भा०—(१) (ते) तेरे (मर्माणि) कोमल मर्मों को (वर्मणा) कवच से (आच्छादयामि) ढकता हूँ । (सोमः राजा) दीप्तिमान् राजा के समान सबका प्रेरक सोम परमेश्वर (अमृतेन) अमर आत्मशक्ति से (अनु वस्ताम्) और भी सुरक्षित करे । (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर (ते) तुझे (उरोर्वरीयः) अधिक से अधिक वरणीय उत्तम सुख (कृणोतु) उत्पन्न करे । (जयन्तं) परम मोक्ष को प्राप्त होते हुए (त्वां) तुझको देखकर (देवाः) विद्वान् लोग (अनुमदन्तु) हर्षित हों ।

(२) हे (अमित्राः) द्वेषभाव रखने हारे शत्रुओ ! तुम लोग (अशीर्षाणः) विना दिमाग के, विना सिरवाले, क्रोधी (अहय इव) सांपों के समान (अन्धाः भवत) अन्धे, अविवेकी होजाओ । (अग्निदग्धानां) अपने ही क्रोध की आग से फूंके हुए (तेषां) उनके (वरं-वरं) उत्तम २ पुरुष या शिर को (इन्द्रः) राजा नाश करे ।

(३) (यः) जो (नः) हमारा (स्वः) सम्बन्धी होकर भी या स्वयं (अरणः) अप्रियाचरण करनेवाला है और जो (निष्ट्यः) दूर रह कर भी छुपे रूप में (नः) हमें (जिघांसति) मारना चाहता है (तं) उसको (सर्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् पुरुष (धूर्वन्तु) विनाश करें । (ब्रह्म) वेदज्ञान और परमेश्वर (मम) मेरा (अन्तरं) भीतरी (वर्म) कवच या रक्षासाधन हो । (शर्म) वह सुखकारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द घन सब का शरण दाता ही (मम) मेरा (अन्तरन्) भीतर का एकमात्र रक्षक साक्षी है।

[१८७३] मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः। सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ १ ॥

[१८७४] भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

[१८७५] स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ३ ॥ ९ ॥

आद्या ऋ० १० । १८० । २ ॥ उत्तरे द्वे ऋ० १ । ८९ । ८, ६ ॥

भा०—(१) हे इन्द्र परमेश्वर ! आप (गिरिष्ठाः कुचरः मृगः न भीमः) पर्वतों में रहनेवाले, कुत्सित रूप से विचरण करनेवाले, जंगली, हिंसक हाथी या सिंह के समान भयकारी हैं एवं आप (मृगः) योगियों से भीतरी गुफा में खोजने योग्य या आत्म-परिशोधन करने योग्य हैं, आप (कुचरः) कहां नहीं व्यापक हो ? अर्थात् सर्वव्यापक हो, आप (गिरिष्ठाः) विद्वानों, वाणियों एवं वेदमन्त्रों में शब्द और उसके अर्थ रूप में विद्यमान हो और साथ ही सब के ऊपर शासक होने से सब के भयप्रद हो। (आ परस्याः परावतः) दूर से दूर देश, अलभ्य मुक्तिधाम से हमारे हृदयों तक या 'परा' ब्रह्मविद्या के भी (परावतः) निगूढ़ परम रहस्यमय भाग से आप (आ जगन्थ) आते हो या प्रकट होते हो। हे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र ! परमात्मन् (सृकं) प्रसरणशील, (तिग्मं) तेजोमय, तीक्ष्ण (पविम्) परमपावन ज्ञानवज्र को (संशाय) अति तीक्ष्ण करके (शत्रून्) अन्तःशत्रुओं को राजा के समान (विताढि) विनाश करो और (मृधः) हमारा सर्वस्व अपहरण करनेहारे चोर डाकुओं के समान तामस भावों को (वि नुदस्व) परे करो, दूर हटाओ।

(२) हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! हम सब (कर्णेभिः) कानों से (भद्रं) कल्याणकारी एवं सदा सुखपूर्वक उत्तम उपदेशों को (शृणुयाम) श्रवण करें। और हे (यजत्राः) सदा यज्ञ आदि धर्म कार्यों का अनुष्ठान करनेहारे भद्र पुरुषो ! हम सब (अक्षभिः) आंखों से (भद्रं) सुखकारी एवं कल्याणकारी पदार्थों का (पश्येम) दर्शन करें और (तुष्टुवांसः) ईश्वर का भजन एवं सत्य का वर्णन करते हुए (स्थिरैः) दृढ़ (अंगैः) अंगों और (तनूभिः) दृढ़ शरीरों से (यद्) जो (आयुः) आयु (देवहितं) विद्वानों के हित में लगे या देव परमात्मा जो दीर्घ आयु प्रदान करें उस दीर्घ ११६ या १२० वर्ष या इससे भी अधिक आयु का हम (व्यशेमहि) भोग करें।

(३) (वृद्ध-श्रवाः) महान् यशस्वी और ज्ञानवान् (इन्द्रः) परमेश्वर (नः) हमारा (स्वस्ति दधातु) कल्याण करे। (विश्ववेदाः) सर्वज्ञ, सब पदार्थों का स्वामी, (पूषा) सब संसार का पालक, पोषक परमात्मा (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे (अरिष्टनेमिः) जिसके कालरूप महान् शासन का कोई विनाश नहीं करता वह (तार्क्ष्यः) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पति, स्वामी, पालक परमात्मा (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

वह वेद-भगवान् का स्वामी भगवान् हमारा सदा कल्याण करे ।

इति तृतीयोऽर्धप्रपाठकः नवमश्च प्रपाठकः समाप्तः ॥

इत्युत्तरार्चिकः समाप्तः ॥

इति सामवेदसंहिता समाप्ता ॥

रामवस्वङ्कचन्द्रेऽब्दे षष्ठ्यां पौषे सिते शनौ ।
आलोकभाष्यं वेदस्य साम्नोऽवधिमुपागमत् ॥

इति श्री प्रतिष्ठितविद्यालंकारपदवीविभूषितेन कलिकातास्थसंस्कृतविद्यालयस्य मीमांसातीर्थोपाध्यलंकृतेन गुरुकुलप्रवर्त्तक श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्री १०८ पूज्यपादश्रीस्वामिश्रद्धानन्दसरस्वतीशिष्येण श्रीपण्डितजयदेवशर्मणा विरचितसामवेदालोकभाषाभाष्ये नवप्रपाठकात्मक उत्तरार्चिकभागः पूर्तिमगात् । समाप्ता चेयं सामवेदसंहिता ॥

स्वाध्याय २८-६-४६ को सायं ६ बजे समाप्त
पूर्ण किया जोहनलाल



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.